







S/O  
294-59214  
V 414 y-v

81.10.080574.







H. P. 5

वाजसनेयसंहिता ( वेदार्थप्रदीपाख्य-  
हिन्दीभाष्यसंहिता )

भाष्य-गिरिप्रसाद-  
देववर्मा

”

Mathura,  
Saka 1795

4/12/21

# शुक्लयजुर्वेदे

दनीया वाजसनेयसंहिता

द्विपाण्डवगिरिप्रसाददेववर्मसंचित

प्रदीपाख्यगिरिधरभाष्यसहिता

वश्रीगुरुडध्वजदेववर्मलिरविता

त ब्रह्मावर्तेकदेशे मथुरामण्डले धरणीधरक्षेत्रे

रीथनवलदुर्गस्थ श्रीव्याघ्रपादप्रकाशकाशमयन्त्रालये

कुलोद्भवद्वारकानाथदेवशर्मणोऽधिकारान्मुद्रिता

---

वेङ्कटार्कगते १४३० शके शालिवाहनीये १७४५

---



ब्रह्मयज्ञ इत्यादि व्रतस्याव्यवच्छेदे  
 १०० श्रुतिओं करि ब्रह्मयज्ञ की विधि  
 बाध्याय (साधारणत्व से अपने पितृ-  
 आत्मा वेदशारवा) तिस में विद्यमान  
 भी दिन-दिन अध्ययन करना सोही  
 यज्ञ में अन्न पशु सुचिसुवा इत्यादिक  
 नहीं इस में तो वाणी ही जुहू मन उप-  
 सत्य अवभृथ स्वर्गलोक उदय है जि-  
 वित्त करि पूर्ण देते लोक को जीतता है उस  
 और अक्षय जो विद्वान् कि दिन-दिन  
 है तिस से स्वाध्याय अध्ययन करना जो  
 वा गायत्र्यादि चतुर्दश छन्दयुक्ता ऋचाएँ  
 हंता वा देव्यादि छन्दयुक्त वारहित मन्त्र सा-  
 री ऋचाएँ अथर्वान्तरसः (अथर्वसंहिता  
 अन्तरों करि देखे मन्त्र) दिन-दिन स्वाध्याय  
 क पय घृत सोम मेद आहुतियों करि देवता  
 और तृप्त हुए देवता तिसै तृप्त करते हैं योगक्षे-  
 समस्त पुण्य सम्पदाओं करि तथा तिस के पि-  
 तृ स्वधा करिके स्वर्ग में घृत की नदी बहती है।  
 सबै सम्भारान्सम्भरतीत्यादि विधिवाक्यों वाशि-  
 विद्या (उपासनविधिवाक्यों वा न्याय मीमांसा



आदिकों) तथा वाकोवाक्य (सर्वे  
 त्युक्ति प्रत्युक्तिरूप ब्राह्मण वा उक्ति  
 (आपो ह वा इह भग्ये सलिलमेवास  
 ह्यण वा महाभारथादिकों) पुराणों  
 मेत्यादिक पुरातन पुरुष वृत्तान्त प्रति  
 गाथाओं (महाहिमिव वै हृदात् इत्या  
 न्सदमुक्षन्ति हयान् इत्यादिक मनुष्य  
 शंस्योगाथाः (मनुष्यों की प्रशंसा प्रति  
 स्वाध्याय अध्ययन करता है सो मधु  
 ओं को तृप्त करता है और तृप्त हुए देव  
 और सह वै देवानां चासुराणां यज्ञो  
 रीयारण्यक द्वितीय प्रपाठक में ब्रह्मयज्ञदि  
 में यज्ञोपवीत धारण २ सन्ध्यापासन ३४  
 होम ७ तिस होम की आख्या ८ दीक्षादिक ६  
 पारव्यान् १० पञ्च महायज्ञों के लक्षण ११ ब्र  
 से बाहिर पूर्व उत्तर वा ऐशानी दिशा में जाक  
 म के छप्पर में पड़ी न दीरें तहां सूर्य के अभ्यु  
 क्त प्रकार से यज्ञोपवीत लेकर शुद्ध प्रदेश में वी  
 ध्ययन करें और जहां पर आज का पाठ समाप्त  
 कलिह प्रारम्भ करें) १२ अशक्त का अनुकल्प (३  
 त्रि समय मन करि वा वाणी करिके खड़े होते च

प्रायश्चित्त है १७. आपदा में अपाजयाजन का प्रायश्चित्त  
जाकर स्वाध्याय करना इत्यादिक १८. प्रायश्चित्ता-  
पसङ्ग से अवकीर्ण प्रायश्चित्त है १९. सर्वयज्ञारम्भ  
कालीन सन्ध्यावन्दन से ऊपर ध्रुवमण्डल में परब्र-  
ह्म और शिशुमारोपस्थान के मन्त्र कहे २०. दिगुपस्था-  
यान के मन्त्र हैं ॥

इति रम्भ का शरीर न्यास कात्यायनभगवान् ने स-  
त्र अध्याय ४. खण्ड १३. में कहा है जिस की व्याख्या  
गा। यहां पर इतना ही कहिता हूं कि स्वाध्याय अथ  
पृथिवी आकाश में कोई पुरुषार्थ नहीं और जो कुछ  
विषय है सो सब वेद में है। तिस वेद के दो विभाग हैं  
संहिता दूसरा ब्राह्मण जिस में मन्त्रों की विधि और अर्थ  
पर भी आतिशम्भार वेद के अर्थवबोध के लिये महर्षि-  
णानुसार शिक्षादि षडङ्ग तथा षडङ्गवत् इतिहासपु-  
त्रासादिशास्त्र कहे ॥

में वेदवेदाङ्गों और ऊग्रट माधव सायन महोदय आ-  
दि भाष्यों का अनुसरण करिके ऋषिछन्द देवतावि-  
त मध्यन्दिनीया वाजसनेय संहिता का वालकों  
वृजभाषा में भाष्य लिखता हूं विद्वानों से प्रार्थना  
पर कृपा करिके इस वेदार्थप्रदीप का अवलोकन

॥ इत्युपक्रमः ॥

इत्येव न स्मर्यते। अध्या० १०. श्लो० ३. पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।  
विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशेति ॥

अध्याय अध्ययन करना और शौच आनेय महर्षि के म  
पक्ष है १३ मध्याह्न में प्रवृत्त अध्ययन करे १४ वेदग्रहण  
अविजली आदिक अनध्यायकरण हैं सो यज्ञाङ्ग होने से  
१५ यहां पर केवल दो अनध्याय (यज्ञकर्ता आप अशु  
जहां यज्ञ करे सो स्थान सूत्रपुरीषादि करि अशुचि होवे)  
त्व फलासिद्धि अनृणात् पापस्पर्शरहित्य दिखलाया  
वेद का वाङ्मात्र निष्यादन करि अध्ययन करता है तिस  
द्वारा और मोक्षपर्यन्त उत्तम गति देने से वेद प्यारा सखा  
चिन्तामणिरूप स्वाध्याय का जो त्याग करि कदाचित् वि  
त्तादिक सुनता है सो पुरुषार्थ पर्यवसान से अनृत् ने  
व्यनाटकालङ्कारादि श्रवण करि आयु की वृथाक्ष  
पुरुषार्थ नहीं दीखता जो काव्यादि पढ़ता है सो वृथा का  
न यहां का न वहां का। यहां के लिये हृषीवाणिज्यादि ज  
वहां के लिये वेद है। जो स्वाध्याय में वाजपेय राजसूयाश्वमे  
जिस क्रतु भाग को पढ़ता है तिस के फल को प्राप्त होता है  
यिक वाचिक मानसिक त्रिविध याग है तहां अध्ययन  
तथा उस के अर्थ का अध्ययन काल में सन्धान से मा  
है और द्रव्यार्जन रहित के अनधिकारित्व से कायिक क  
कार ही नहीं इस हेतु वाचिक मानसिक से ही कायिक  
विद् ब्राह्मण में समस्त देवता वास करते हैं तिस की नि  
१६ अनापदा में अयाजयाजन का उपवास पूर्वक स्वा

मनुना स्पर्धते च। अध्या १२ वेदमिव महाभ्यस्येत्तपस्तप्यन्ति तेजसः। वे  
प्रसू तपः परमिहोच्यते ॥ १६६ ॥ आहोव स मरवायुभ्यः परमे तप्यते तपः। य  
स्वध्यायं शक्तिता न्वहम् ॥ १६७ ॥ गोऽनर्थाय हि जो वेदानव्यव कुर्वते अ  
तमासु गच्छति सान्वरः ॥ १६८ ॥ इति ॥

हुआ। तहां व्यास का शिष्य वैशम्पायन याज्ञ  
 के अर्थ यजुर्वेद को पढ़ता हुआ। तहां दैवयो  
 ए वैशम्पायनं याज्ञवल्क्यं प्रति कहां कि मुरु रू  
 सनें योगसामर्थ्य से अग्निरूप मूर्तिमती विद्या  
 उगिले हुए यजुओं को ग्रहण करो यह गुरु ने शिष्य  
 और वैशम्पायन के शिष्य लोग तिजिरि होके यज्ञ  
 गये। ते यजुः बुद्धि की मलीनता से कृष्ण (काले)  
 दुःखित हो सूर्य को आराधन करि और शुक्ल यजुः  
 र तिन्हें जावाल गोधेय काएव माध्यन्दिन प्रभृति  
 को पढ़ाया तथा च श्रुतिः शतपथब्राह्मण १४.४  
 मानि शुक्लानि यजूंश्च वाजसनेयेन याज्ञव  
 ति। अस्यायमर्थः। 'इमानि' ये, 'आदित्यानि' अ  
 किये हुए, 'शुक्लानि' शुद्ध, 'यजूंश्च' यजुः, 'वाजसं  
 न' जिस का तिस के पुत्र, 'याज्ञवल्क्येन' याज्ञवल्क्य  
 यन्ते (शिष्यों के अर्थ) कहे गये, इत्यर्थः। तहां म  
 लव्य यजुर्वेद का शारवा विशेष माध्यन्दिन है। २  
 और जावालप्रभृति चतुर्दश शारवाओं को याज्ञ  
 व्यों के अर्थ उपदेश किया तथापि ईश्वर की वृ  
 द्वा शिष्यों के सम्बन्ध करि लोक में प्रख्यात हूं  
 वेद की जे अध्ययन करते जानते वा शिष्य पर  
 हैं तेभी माध्यन्दिन कहिलाते हैं ॥ ॥

Giridharas Bhashya

गिरिः श्रीम्॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय॥

भगवते तस्मै कृष्णायानुतकर्मणे । रूपनामवि-  
तियो यतः ॥२॥ नमामि बल्लभाधीशं परं ब्रह्म-  
सुतं विह्वलेशं च तत्सुतं गिरिधारिणम् ॥३॥ तद्वश्यं  
नन्द प्रदायिनम् । तथा चारुमतीमम्बां प्रणामा-  
मीशान् । सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे । यं न-  
मस्तु नमामि गजाननं ॥४॥ नमामि माधवाच्चा-  
द्वरम् । ऊष्णं भाष्यकारं च प्रणामामि महीध-  
रुनाथं च नमामि भवरूपिणम् । वेदार्थदीपकं  
मालबुद्धये ॥६॥ दूरादसूयां निर्धूय कृपां कृत्वा ममो-  
क्तभाष्योऽयं बुद्धिमद्भिर्बुद्धिजोतमैः ॥७॥  
मं ब्रह्मपरम्परा करि प्राप्त वेद को भगवान्वेदव्या-  
नुष्यो को सोचि तिन्हों पर कृपा करि चारि प्रका-  
जुः सामाथर्व नामा चारों वेदों को पैल वैशम्पा-  
मनु के अर्थ क्रमसे उपदेश किया और तिन्हों  
के अर्थ एवं परम्परा करि सहस्रशारवा वेद

## सर्वानुक्रमणीये

मंत्रा एतमृषिर्देवा वा प्रजापत्या इषे त्वाशा  
कल्पकारोक्त एवमूर्जे त्वा वायवो वायव्यं  
मानस्य शाखा वसोवायव्यं द्यौर्मानरिष्वन  
देवस्त्वापयः कामधुक्षः प्रश्नः सा विश्वायुस्त्री  
पुन्रं विष्णो पयः ॥२॥ योः

इदमाग्नेये कस्त्वा प्राजापत्या कर्मणे सुक् शूर्पे  
क्षसे उरु ब्रह्म रक्षोघ्नं सर्वत्र धूर्गसि धृदेवानां विष्णा  
रु हविष्या अपहतं रक्षो यच्छन्तारं हविष्या देवस्य त्वा सा  
॥४॥ सर्वत्राग्नेये लिङ्गोक्ते भूताय त्वा हविः स्वः शूर्पो हर्तृह-  
ता गृहाः पृथिव्यास्त्वा हव्यं पवित्रे लिङ्गोक्तं सवितुर्देवीः ओ-  
क्षता अपान्यग्नेये लिङ्गोक्ते देव्याय पात्राणि ॥३॥

शर्मास्यदित्याः कृष्णाजिनमवधूतं रक्षममद्रिर्गोवो  
रवले अग्नेर्हविर्बृहत्स इदं मौसले हविर्बृहदधिदेवतं वागाधि-  
यज्ञं पत्नी कुक्कुटो वाग्वषेवृद्धं शूर्पे प्रति त्वा हादेः परापृतम-  
पहतं रक्षसे वायुर्वो देवावस्ताण्डुला धृष्टिरुपवेशोऽपाग्न  
आ देवयजमाग्नेये ध्रुवमसि षण्णं कयालान्यग्ने ब्रह्माग्ने-  
यं धिषणासि दार्षदं दिवः शम्या धिषणोपलं धान्यमसि षण्ण-  
थं हविर्महीनामाज्यं ॥४॥ ठं

सं वपामि हविः समाग्र आपं जनयत्ये त्वेदं हविरिषे  
त्वाज्यं यर्मो षण्णं पुरांडाशस्त्रिताय त्वा त्रयाणां त्रितो द्वि-  
त एकत कर्मेणादद इन्द्रस्य स्फ्यः पृथिवि वेदिर्ब्रजं पुरीषं

हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनेर्वद्विरूपं  
स्वानन्द दायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तु.

मण्डलं दक्षिणमक्षिहृदयं चाधिष्ठितं येन रु  
जूंश्वि भगवान्याज्ञवल्क्यो यतः प्राप तं विवस्वन् त्रयीमयम्  
ष्मन्तमभिधायैमां माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नां  
सर्के सरिले सप्तुक्रिय जषिदैवतछन्दांस्स्यनुक्रमिष्यामो, य  
यामनियताक्षरत्वादेकेषां छन्दो न विद्यते, द्रष्टार ऋषयः स  
रः परमेश्वरादयो, देवता मन्त्रान्तर्भूता अग्न्यादिका हविर्भाजः स  
तिभाजो वाऽनः शारवोरवाशम्योपवेषकपालेध्मोलूखलादयश्च  
प्रतिमाभूताः, छन्दांश्चसि गायत्र्यादीन्येतान्यविदित्वा योऽधीते  
ऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निवीर्यं यातया  
मैभवत्यथान्तर्गन्धर्गं वा पद्यते स्याणु वद्धति प्रमीयते वा पापी  
यान्मभवत्यथ विज्ञायेतानि योऽधीते तस्य वीर्यवदथ योऽर्थवित्त  
स्य वीर्यवत्तरं भवति जपित्वा हुत्वेष्ट्वा तत्फलेन युज्यते ॥१॥ त  
इषे त्वादि स्वं ब्रह्मान्तं विवस्वानपश्यन्ततः प्रतिकर्मवि  
भागेन ब्राह्मणानुसारेण ऋषयो वेदितव्याः परमेशी प्राजाप  
म इति वा पाठः

धानान्तर्वानिति पंचार्षयो यज्ञो देवताग्नेऽहध्यायो ग  
 ज्गनये दक्षिणाग्निः सरस्वत्यै लिङ्गोक्ते वेदोसि वेदो  
 सस्पतिर्वातदेवत्या विराजठं सं बर्हिर्लिङ्गोक्ता त्रिष्टुबि  
 कस्त्वा प्रजापत्यठं रक्षसार्ठं राक्षसं ॥ ७ ॥ ४

अथ याजमानठं सं वर्चसा त्वाष्ट्री त्रिष्टुब्धि  
 वैष्णवान्यस्माद्वागोऽस्ये भूमिरगन्म देवतथं सं ज्यो  
 या स्वयंभूः सूर्यस्य सोरे अग्ने गृहपते गार्हपत्यः २,  
 मग्न इहमाग्नेये ॥ ८ ॥

पितृयज्ञः प्रजापतेरार्षमग्नये सोमाय द्वे ३  
 श्रुतेरयहता आसुरं ये रूपाणि कव्यवाहनोऽग्नि  
 मक्ता पित्र्ये नमो वः षड्विङ्गोक्तानि परे पित्रं  
 गायत्र्यूर्जमापी विराट् ॥ ९ ॥ ५

अग्न्याथेयं प्रजापतेरार्षं देवानामगं  
 मिधाग्नेप्यश्चतस्रो गायत्र्यः समिधा विरू  
 द्वाय वसुश्रुतस्तं त्वा भरद्वाजो भूर्भुवः  
 तयोऽग्निवायुसूर्यदेवत्याः क्रमेण द्यौः  
 कदेवतायं गौः सर्पराक्षस्त्रुचो गायत्र्यो  
 वता ॥ १० ॥

अग्निहोत्रं प्रजापतेरार्षमग्नि  
 वता गायत्र्य आद्याः पंचैकपद ३  
 जीवलक्षिलकिः ॥ ११ ॥



वेदार्थप्रदीपेगिरिधर हरिः

वेदिर्वधान सावित्रमपाररुमररो आसुरे ह्यस्ते वेदि-  
णा त्रीणि वैष्णवानि सुक्ष्मा त्रयाणां वेदिः पुरा घशठं  
प्रयच्छान्द्रमसीं त्रिष्टुभं प्रोक्षणीः त्रैषो द्वियत आभिचा-  
निशितः सुवोऽनिशिता सुगदित्यै विष्णोर्योक्त्रमूर्जे त्रया-  
ठं सवितुरापं तेजोसि धामाज्यं ॥३॥

णोऽसीध्मो वेदिर्वह्निर्लिङ्गोक्ते अदित्या आपं विष्णोः  
मिदं वेदिर्भुवपतये त्रीण्याग्नेयानि गन्धर्वस्त्र-  
ध्यो वीतिहोत्रं विश्वावसुराग्नेयीं गायत्रीठं समिदा-  
त्त्वा लिङ्गोक्ते सवितुर्विधत्तीः ऊर्णम्रदसमा त्वा-  
पसि त्रयाणां जुहूपभृद्भुवाः क्रमेण प्रियेण  
रदन्याहि मां वैष्णवे वाजजिदाग्नेयं नमो देव-  
तिं सुयमे सुवावधिणा वैष्णवं वसुमतीमाग्नेय-  
प्रतिनिषाज्यं मयीदमाशीः प्रति ग्रहणं मुपहृता  
ऽनुब्रू

मैभवरेष्ठानं ब्रह्मपतिरङ्गिरसोऽपश्यदग्नेष्ठा प्राशि-  
यान्मन्त्रं तेऽनुष्टुबग्ने वाजजिदाग्नेयमग्नीषोमयो-  
स्य वीर्यं पुत्र्यस्त्रयाणां परिधयः सं जानाथा व्यन्तु  
इत्रास्तरीमन्त्रः पाद आग्नेयो यं परिधिं  
भागैर्वा विराड्पुं यजुस्ताग्नेः प्रियं यजुः स-  
मं इति वा पावैश्वदेवी त्रिष्टुभं यजुस्ताधं साहा-  
रमाः सूर्यं पवमान्वावि रुदालवा-

युञ्जते प्रयावाम्बः सावित्रीं जगतीमिदं ।  
 वैष्णवीं गायत्रीमिरावती वसिष्ठस्त्रिष्टुभं देवश्रुता  
 चीस्वं गोष्ठमत्रहविर्धोने विष्णोर्नु तिस्रो वैष्णव्यः ५  
 यद्वरुन्ते विष्णोर्नु प्रतर्हीर्धतमा औतथ्यो विष्णो १९  
 वान्याददेभिरिदमर्हं रक्षोघ्नं बृहन्नौ परवाणीद  
 ज्ञोक्तानि स्वराडस्योपरवाणि चत्वारि रक्षोहणो २  
 वानि यवोऽसि यवो दिवे त्वौदुम्बरीं सुन्धन्तां पित्र्ये ३  
 नामौदुम्बरी घृतेन द्यावापृथिव्यमिन्द्रस्यैन्द्रं परि त्वा ४  
 निरुक्तामेन्द्रीमनुष्टुभमिन्द्रस्यैन्द्राणि त्रीणि चतुर्थे ५

विभूरस्यष्टानां धिषण्या अग्नयः संम्राडाह  
 रिषद्यो वहिष्यवमानदेशो नभोऽसि चात्वालो मृ  
 त्त्रः ऋतधामौदुम्बरी समुद्रोऽसि ब्रह्मासनमजोऽसि  
 ऽहिरसि प्राजहितो वागसि सदऋतस्य द्वार्ये अ६  
 मित्रस्यर्त्विजोऽग्नयो धिषण्याः ॥२१॥

ज्योतिरसि वैश्वदेवं त्वं सोमः क्रतुर्भार्गवः  
 मनवसानां जुषाणोऽप्रभुदेवत्यैकपदाविराड्यजुर  
 स्त्य आग्नेयीं त्रिष्टुभमयं नस्त्रिष्टुव्यजुरन्ताग्नेय्यु  
 व्यनुष्टुव्यजुरन्ता देव सवितः सावित्रमेतत्त्वं स्वा  
 वतमग्ने व्रतपाऽआग्नेयमत्यन्यान्वनस्यतिरोष  
 स्वधिते परशुर्धामतस्त्वं वनस्यतिः ॥२२॥

अग्नेणीः शकलं देवस्त्वा यूपः सुपिष्ट

तिर्वि

॥ त्रीण्यं चिरसि गोः सोमक्रयणी बाग्रूपाऽध्यारोपकल्प  
प्रयच्च

निष्कृतस्यनुष्टुप् हती वा सोमक्रयण्यास्तुतिरदित्या आ-  
र्धं लिङ्गोक्तादेवताः समख्ये पत्यांशीरास्तारपङ्क्तिरेष-  
एवतामास्मा कोऽसि सौम्यमभित्यर्धं सावित्र्यष्टि प्रजाभ्य-  
त्वा शुक्रं त्वा सौम्यानि सग्मेऽस्मे लिङ्गोक्ते तपसोऽर्धेजार्धे  
। न इन्द्रस्य सौम्ये स्वानादीनि धिषायनामानि परि मार्गे  
इहती प्रति यन्थामनुष्टुप्पथिदेवत्यादित्याः कृष्णाजिन-  
पमस्तम्ना त्रिष्टुभौ वारुण्यो सूर्यस्यानुष्टुप् कृष्णाजिनमु-  
थानडुही भद्रो मे सौम्य नमो मित्रस्यामितपनः सूर्यः  
। वरुणस्य पंच वारुणानि याते सौमीं त्रिष्टुभं गौतमः ॥१८॥  
ग्नेस्तनूरसि पञ्च वैष्णवान्यग्नेः शकलं वृषणो दर्म-  
वपयसि त्रयाणां लिङ्गोक्तादेवता गायत्रेण त्रीण्यानि-  
तं नः पङ्क्तिरग्नावग्निर्विराडेतयोर्निर्मथ्या हवली-  
आपतये वायव्यमनाधृष्टमाज्यमग्ने व्रतया आ-  
र्धंभ्युः प्रकृतिश्चतुरवसाना सौम्यमन्त्योऽर्धर्चो लि-  
या ते त्रीण्याग्नेयानि तप्तायनी चत्वारि पार्थिवानि वि-  
पङ्क्तिरो योऽस्यामनु त्वा लिङ्गोक्तानि सिर्धं ह्यसि  
इन्द्र घोषश्चतुर्णामुत्तरवेदिरिदमहमापठं सिर्धं ह्यसि  
भूतेभ्यः सुगध्रुवोऽसि परिधयस्त्रयाणामग्नेः  
ह्यः ॥१९॥

यज्ञामे मारुत्यनुष्टुवेऽनिरुक्तामोषूणोऽस्त्य ऐन्द्रा  
मकन्ननिरुक्ताग्नेय्यनुष्टुबवभृथ यज्ञदैवतं पूर्णा दा  
म ऐन्द्रावनुष्टुभावक्षं द्वे गौतम ऐन्द्रो पङ्क्ति मनो नु  
बन्धुर्गायत्रं वयठं सौमी गायत्री बन्धुरेषते द्वे रौद्रे अ  
ग्रावेका पंक्तिरपरा ककुप्त्र्यं वकं द्वे अनुष्टुभो पूर्वस्  
एतदास्तारपङ्क्तिस्त्रायुषं नारायण उष्णिह यजमान  
वो नाम क्षौरं निवर्तयामि लिङ्गोक्तदेवतामाशीः प्रा  
अग्निष्टोमः प्रजापतेरार्थं एदं द्वे अत्यष्टीः =

द्यावर्द्धर्ची देवयजनदेवत्या विमा आय श्रोषधे कुश  
धितेक्षोरमापो अस्मानापं दीक्षातपसोर्वासो महीनां  
वृत्रस्थाञ्जनंचित्पतिर्द्वे प्राजापत्ये देवो मा सावित्रमा  
ष्टुवाशीः स्वाहा यज्ञं चतुर्णी यज्ञ आकृत्ये चतुर्ण  
नामग्निरापो देवी लिंगोक्तदेवता विरट् ॥१६॥

विश्वो देवस्य स्वस्त्रात्रेयः सावित्रीमनुष्टु  
यो कृष्णाजिनेशर्मासि कृष्णाजिन मूर्गस्यङ्गिरोरि  
ठं सोमस्य नीविर्विष्टो वसि इन्द्रस्य सुसम्पा कृष्णा  
स्य दण्डेव्रतं यज्ञो दैवी धीर्ये देवा वाक्प्राणोदानं  
मध्यात्ममग्निर्मित्रावरुणा वादित्यो विश्वे देवाः  
त्रा आपी जगतीयं ते लोष्टमपो मूत्रं पृथिव्या लं  
माग्नेय्यनुष्टुपुनर्मन आग्नेयं त्वमाग्ने व  
यत्रीठं रास्वे यत्सोममेषा ते हिरण्याल्यदैवतं

आनाग्न्युपस्थानं बृहद्देवानामार्षमुप प्रयन्तइत्यनु-  
आग्नेय्यो गायत्र्यावुपवत्यो गीतमो राहूगणो मूर्द्ध-  
य उभा वां भरद्वाज ऐन्द्रानी त्रिष्टुभमयं ते देवश्वा-  
भारतावाग्नेयीमनुष्टुभमयमिह वामदेवो जगतीम-  
वत्सारो गव्यां वाग्नेयीं वा पयो देवत्यां वागायत्री त-  
यानींधाना आग्नेयी महापङ्क्तिं स्वयवसाना ॥१२॥

जावसो रात्रिदेवत्यमृषयोऽपश्यन्तं त्वमाग्नेयमन्धस्थ-  
हितेति त्रीणि गव्यान्त्युप त्वाग्नेयं तृचं गायत्रं मधुच्छं-  
मेवोऽग्नेत्वं चतस्रो द्विपदा आग्नेयीबन्धुः सुबन्धुश्चुतबन्धु-  
कैकश इडे काम्या गव्ये सोमानं ब्राह्मणस्पत्यं तृचं गा-  
णस्पतिर्मेधांतिथिर्वा महित्रीणार्धं सत्यधृतिर्वोरुणि-  
देवतं तृचं गायत्रं पथि स्वस्त्ययनं कदा चनैन्द्री प-  
मधुच्छंदास्तत्सवितुर्विश्वा मित्रः सावित्री गायत्री य-  
त्र आग्नेयीमनिरुक्तां गायत्रीं ॥१३॥

लकोपस्थानमासुरेण्यं भूर्भुवः स्वः प्रवत्स्यदुपस्था-  
गार्धं नर्यगार्हपत्यः शर्धं स्याहवनीयोऽथर्यदक्षिणा-  
वनीयोऽनुष्टुबयमग्निनर्यकुसारिणीवृहती गार्हप-  
ज्वाहार्यपचनोऽनुष्टुबृहा मा त्रिष्टुबिराष्ट्र पा ये-  
ता महापङ्क्तिः स्वयवसाना तिस्रोऽपि वास्तेवीः  
येः ॥१४॥

स्थानि प्रजापतेर्यं प्रघासिनो मारुती गायत्री

द्यामग्रेण यूपो या ते दीर्घतमा यूपदेवत्यां त्रिष्टुभं ब्रह्मवनि ब्र  
ह्महर्षं यूपदेवत्ये विष्णोः कर्माणि द्वे मेधातिथिर्वैष्णव्योग  
यज्यो परिवीर्यूपो दिवः स्वरुरेष ते यूप उपावीस्तृणमुप देवां  
लिङ्गोक्तमृतस्य त्वा पशुरग्नीषोमाम्यां लिङ्गोक्तमद्रोऽप्यां प  
शुरापो देवीरापठं सं ते पशुर्घृतेन स्वरुशासौ रेवति वाग्वर्षो  
तृणधं स्वाहा देवे ॥२३॥

माहिर्मूर् रज्जुर्नमस्ते यज्ञो देवीरापोऽर्धमापमर्धमाशीर्वा  
चं ते मनस्ते पशुः शं लिङ्गोक्तमोषधे तृणधं स्वधितेऽसी रक्ष  
सां लिङ्गोक्तं निरस्तमिदमहर्षं रक्षोहणं घृतेन द्यावापृथिव्यं वा  
नायव्यमग्निराज्यस्याग्नेयं धं स्वाहा कृते वपाश्रपण्याविद

॥ महापङ्क्तिः स्रजवसाना पावमानश्चान्त्यः पादः सं ते  
रिडसि वसा प्रयुतं लिङ्गोक्तं घृतं वैश्वदेवं दिशः य-  
न्येन्द्रः प्राणः पञ्चङ्गप्राणदानां लिङ्गोक्तं देव त्वाष्ट्री  
॥॥

तं लिङ्गोक्तानि द्वादश दिवं ते स्वरुर्मापो हृदयशू  
त्रो वारुणं यदाहुर्वारुणी गायत्र्यनवसानाः सुमित्रि  
रविष्मतीर्लिङ्गोक्तदेवतानुष्टवग्नेर्वश्वत्वार्यापान्य  
धातिथिर्हृदे सौम्यनुष्टुप्सोमराजन्तसौम्ये श्रु-  
ता त्रिष्टुन्देवीराप आयीपङ्क्तिः कार्ष्णि राज्यम-  
प आये यमग्ने मधुछन्दा आग्नेयीं गायत्री  
ध्या आपमिन्द्राय त्वा पञ्च सौम्यानि य

ने सौमी विपरीताबृहती आचाः पथ्याबृहती माभेः सौम्यमर्धं  
द्यावापृथिव्यमर्धं प्रागयाकंसौम्युष्णिह्वात्मजं गोतम ऐन्द्री प-  
थ्याबृहतीम् ॥२५॥

वाचस्पतये प्राणदेवत्या विराणमधुमती लिङ्गोक्तं यत्ते  
सौम्यं स्वाहोरु यजुषी लिङ्गोक्ते स्वाङ्कतोऽस्युपाथं शुर्वेदेभ्य-  
त्त्वा देवं देवाङ्कं शो लिङ्गोक्तमभिचारिकं प्राणाय ग्रहो व्याना-  
योपाङ्कं सुसवनऽउपयामगृहीतोऽस्पन्तरेन्द्रमन्तस्ते मधव देवत्या  
त्रिष्टुबुदानाय ग्रह आ वायो वसिष्ठो वायव्यां त्रिष्टुभमिन्द्रावायू  
मधुच्छन्दा ऐन्द्रवायवी गायत्रीमयं वां गृत्समदो मैत्रावरुणीर्ऽरया  
वयं त्रसदस्युस्त्रिष्टुभं या वां मेधातिथिराश्विनीं गायत्रीं तं अत्र-  
था वत्सारः काश्यपो वैश्वदेवीं जगतीमछिन्नस्य सौम्यं सा  
थमैन्द्री त्रिष्टुभम्यन्त याङ्गनील्लिङ्गोक्ते ॥२६॥

अयं वेनो वेनस्य त्रिष्टुप् सोमस्तुतिरधिदैव  
ज्ञं च मनो न त्रिष्टुप्सोमस्तुतिरधियज्ञानुवादिन्य  
ऽपमृष्टो मर्क आभिचारिके देवास्त्वा शुक्रमन्थि-  
ष्टासि दक्षिणोत्तरे वेदिश्रोण्यौ सुवीरः सुप्रजाः  
निरस्तौ द्वे आभिचारिके शुक्रस्य मन्थिनः शवर्ह्य-  
रुद्धेपो वैश्वदेवीं त्रिष्टुभमाग्रयणोऽसि लिङ्गोक्तं पा ये-  
सोमः षवते वैश्वदेवमिन्द्राय त्वा यज्ञस्तिवीः  
छानं भरद्वाजो वैश्वानरीं त्रिष्टुभं ध्रुवोऽसि  
बृहती पूर्वोऽर्धर्चो ध्रौव उत्तर ऐन्द्री यस्ते दे-  
ती गायत्री



यजुरन्तां देवानां चात्वालदैवतं प्राणाय मे लिङ्गोक्तदेवतान्येका-  
दश कोऽसि प्राजापत्योषिणर्वर्धमाना मधवे त्वा लिङ्गोक्तदेव-  
तानि त्रयोदश ॥२८॥

इन्द्राग्नी विश्वामित्र ऐन्द्राग्नी गायत्रीमाघ त्रिशोक  
आग्नेन्द्र मोमासो मधुच्छन्दा वैश्वदेवीं विश्वे देवासो गुत्समह  
इन्द्र मरुत्वश्चतस्रो विश्वामित्र ऐन्द्रामारुतीस्त्रिष्टुभो मरुतां त्वा  
यजुर्मरुत्वतीयं महो २॥ इन्द्रो भरद्वाजो माहेन्द्री त्रिष्टुभं य औ-  
जसा वत्सो गायत्रीमुदुत्यं प्रस्कएवः सौरीं गायत्रीं चित्रं कुत्स आ-  
ङ्गिरसस्त्रिष्टुभं रूपेण वो दक्षिणाश्चतुर्णां ब्राह्मणमद्य लिङ्गो-  
क्तदेवतान्यष्टौ ॥२९॥

विष्णो वैष्णवं कदाचनादित्यदेवत्ये बृहत्यो यज्ञो दे-  
वानां कुत्सस्त्रिष्टुभं विवस्वन्यजुः अदस्मे जगत्याशीर्वाममद्य  
भरद्वाजो बार्हस्पत्यः सावित्री त्रिष्टुभं सावित्रोऽसि सावित्रं सुश-  
र्मासि वैश्वदेवं बृहस्पतिसुतस्य लिङ्गोक्तमहं प्रजापतिरूपेणात्स  
देवता त्रिष्टुबग्ना इन्द्र पत्नी वन्नाग्नेयं प्रजापतिः प्राजापत्यं १  
रिरस्पृक्सामे हर्योर्यस्ते लिङ्गोक्ते देवकृतस्याग्नेयानि षट् ॥३०॥

समिन्द्रात्रिर्वैश्वदेवी त्रिष्टुभं धाता लिङ्गोक्त बहुदेव  
सुगावो देवी या २॥ आवहे वयमाग्नेयौ यज्ञयज्ञमेष ते नि  
क्ते यजुषी उरुर्हीहि सुनः शेषो वारुणीं त्रिष्टुभं नमो वारुण  
रनीकमाग्नेयी त्रिष्टुप्समुद्रे ते सौमी विराट् देवीरायः पर्ष-  
ती वा पूर्वोऽर्धर्च आप उत्तरः सौम्यो देवानामाग्नेय



अवसानामहापङ्क्तिर्यस्यै ते वशा पुरुदस्मो गर्भो मरुतो यस्य  
गोतमो मारुतीं गायत्रीं मही द्यौर्मिधातिथिर्द्यावापृथिव्यामि-  
त्यग्निष्टोमः ॥३१॥

अथ षोडश्यातिष्ठज्ञोतम ऐन्द्रीमनुष्टुभं युस्वाहिमधु-  
च्छन्दान्द्रमिज्ञतमो यस्मान्नेन्द्रीं त्रिष्टुप्परब्रह्मरूपेण षोडशिनः  
स्तुतिरिन्द्रश्चैन्द्रावारुणी षोडशिदेवत्या वा यजुरन्ताग्ने पवस्व  
वैरवानस आग्नेयीं गायत्रीस्तुतिष्ठन्कुरुस्तुतिरैन्द्रीमहश्रं प्रस्क-  
एवः सौरीं तिस्रोपि यजुरन्ता उदुत्यं देवानामार्षमाजिघ्रेडेकोसुरु-  
विन्दुर्गव्ये महापङ्क्तिः प्रस्तारपङ्क्तिः विनः शासो भरद्वाज ऐन्द्री मनुष्टुभं  
वाचस्पतिं वैश्वकर्मणीं त्रिष्टुप्वैश्वकर्मनेन्द्री वैश्वकर्मण्यग्नये  
त्वा देवार्षाण्यदाभ्यदेवत्यानि त्रेणीनां त्वा सौम्यानि ॥३२॥

सत्रोत्थानं देवानामार्षमिह रतिः पशुदैवतमुपसृजन्नुषिण-  
गाग्नेयी सत्रस्य बृहती यजमानानामात्मस्तुतिर्युवं तं परुच्छेप ऐ-  
न्द्रीमत्यष्टिं अवसानामाद्योर्ध्वं ऐन्द्रापार्वतः परमेष्ठी नैमित्तिका-  
पाध्यायाद्वसिष्ठस्यार्षं लिङ्गोक्तदेवतानि चतुस्त्रिंशद्ययौर्वेणा-  
वारुणीत्रिष्टुप्देवां दिवमाशीर्लिङ्गोक्तदेवता चतुस्त्रिंशत्  
देवत्या पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्बा यज्ञस्य यज्ञदेवत्या त्रिष्टुवा पवस्व  
गायत्री नैधुविः कश्यपः ॥३३॥

अथ वाजपेयो बृहस्पतेरार्षमिन्द्रस्य च देव सवितः सा-  
त्रेष्टुप्प्रधुवसदमैन्द्राणि त्रीण्यपार्षं रसदेवत्यानुष्टुप्ग्रहलि-  
वतानुष्टुप्संपृचो यजुषी इन्द्रस्य रथो वाजस्य पार्थिव्यति-

अन्त्यः पादः सावित्रीः स्वन्तरश्च देवताऽनवसाना पुरउषिण्वा  
। तिस्रोऽश्वस्तुतय उषिण्क्लिष्टुङ्गगत्यो वाजिनोऽश्वादेवस्या  
ङ्गोक्तानि वाजिनोऽश्वा एषस्य द्वे दधिक्कावा वामदेव्योऽश्वदे  
जगत्यो शन्नो वसिष्ठो विराजं तेनोनामानेदिष्टो जगतीं वाजे  
एस्त्रिष्टुभमा मा प्राजापत्यां वाजिनोऽश्वाः॥३४॥

आपय आयुर्यज्ञेन प्राजापत्यानि प्राजापतेः स्वरमृता  
यजमानोऽस्मे दिशो नमः पृथिवीयमासन्दी यन्ता सुन्वन्वाज  
स्य प्राजापत्यं तृचं त्रैष्टुभर्तं सोमं तृचं तापस आद्या वैश्वदे  
व्यनिरुक्तानुष्टुप् द्वितीया लिङ्गोक्तदेवता तृतीयाग्नेयी प्र नो  
लिङ्गोक्ता गायत्री सरस्वत्यै सुन्वन्नग्निः सप्तदश लिङ्गोक्तदे  
तानि॥३५॥

अथ राजसूयो वरुणस्यार्षमेव ते पार्थिवमग्निनेत्रेभ्य  
देवार्षाण्याध्यायाद्दृशाद्यानि देवान्यग्ने सहस्र देवश्च वादेवव  
तश्च भारतावाग्नेयीमनुष्टुभमुपार्थं शोस्त्रीणि रक्षोघ्नानि र  
विता द्वे यजमानः॥३६॥

अपो देवा आपी त्रिष्टुवृषा ऊर्मिलिङ्गोक्तानि मधुम  
रनाधृष्टा आपे सोमस्य चर्माग्नये लिङ्गोक्तान्यनिभृष्टमाय  
सधमादो वारुणी त्रिष्टुपक्षत्रस्य चतुर्णां तार्यपाण्डुधीव  
षाणीन्द्रस्य धनुर्मित्रस्य बाहू त्वयायं धनुर्हवाषाणे  
आविः प्राजापत्यं पराणि लिङ्गोक्तानि॥३७॥

अवेष्टा मृत्युनाशनं प्राचीं पञ्चानां

मासुरं मृत्योरोजोसि रुक्मो हिरण्यरूपो भैत्रावरुणी ।  
जुरन्ता सोमस्य सुन्वन्प्रपर्वतस्यापी त्रिष्टुविष्णोस्त्रीणि  
क्तानि सुन्वन्प्रजापतेन प्राजापत्यात्रिष्टुव्यजुर्मध्याय  
यजू रुद्र यद्वीद्रम् ॥३८॥

इन्द्रस्य लिङ्गेक्तानि मा ते संवरणः प्राजामृष्टम् ।  
त्रिष्टुभमग्नये लिङ्गेक्तानि पृथिवी मातर्भूमि हर्षसो वामदेव ।  
सोरीर्षं सप्रपञ्च परब्रह्माभिधायिनीमतिजगतीमियच्छतमाना-  
वूर्गसि शारवेन्द्रस्य बाहू स्योनास्यासन्दी क्षत्रस्याधीवासर्षं स्यो-  
नाथं सुन्वन्निषसाद शुनः श्रेयो वारुणी गायत्रीमभिभूरस्यक्षा  
यजमानो वा ब्रह्मस्त्वमाभन्वणानि पञ्चलिङ्गेक्तानीन्द्रस्यस्यो  
ग्निः पृथुराग्नेयर्षं स्वाहाकृताऽक्षः सवित्रा लिङ्गेक्तदेवतम् ॥३९॥

अथ चरक सौत्रामण्यश्विनोऽरार्षमश्विभ्यां त्रीणि लि-  
ङ्गेक्तानि वायुः सौमी गायत्री कुवित्चर्षं सुकीर्तिः काक्षीवित  
आद्या सौम्यनिरुक्ता त्रिष्टुव्युवमनुष्टुप्पुत्रमिव त्रिष्टुवश्विसर-  
स्वतीन्द्रदेवत्येऽश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्ये ॥४०॥

इति सर्वानुक्रमणीये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथाग्निं प्रजापतिरपश्यत्साध्यावापश्यन्त सोऽग्निः

चितिकः प्रथमा चितिः प्रजापतेर्द्वितीया देवानां तृतीयेन्द्रा-  
वकर्मणश्च चतुर्थयुवीणं पञ्चमी परमेष्ठिनोऽथ  
षोडशी युजानोऽष्टौ सानिवाणि सवितापश्यत्साध्या  
तृतीयैषण्यौ जगत्यौ द्वितीया गायत्री पञ्चमी

त्रिष्टुबिमं नो यजुरन्ता गायत्र्यनवसानाद्देभिर्हस्तेऽनुष्टु-  
ब्यजुरन्ता ॥१॥

प्रतूर्तं नाभानेदिष्व आश्वीमास्तारपङ्क्तिः पुञ्जायां कु-  
श्चिर्गार्दभी गायत्रीं योगे-योगे शुनः शेष आजीं प्रतूर्वं स्त्रि-  
ष्टुबिराङ्गपा यजुर्गर्भोरुयजुः पृथिव्यास्त्रीण्याग्नेयान्यन्वग्नि-  
राग्नेयीं त्रिष्टुभं पुरोधस आगत्यमयो भुव आश्वीमनुष्टुभमा-  
क्रम्यानुष्टुब्धोस्ते बृहत्युक्ताम विराडुदक्रमीत्रिष्टुवा त्वा द्वे गृ-  
त्समद् आग्नेय्यो परि सोमको गायत्रीं परि त्वा पायुरनुष्टुभं त-  
मग्ने गृत्समंदो जगतीम् ॥२॥

पृथिव्या आग्नेयमपां पुष्करपर्णीं स्वराट्पङ्क्तिः श-  
र्मा द्वे अनुष्टुभौ कृष्णाजिनपुष्करपर्णे पुरीष्योऽग्निस्त्वामग्ने तृ-  
चं भरद्वाज आग्नेयं गायत्र्यं सीदहोतर्देवश्रवादेववातश्च त्रि-  
भं नि होता गृत्समदः सठं सीदस्व प्रस्कण्वो बृहतीन् ॥३॥

अपो देवीः सिन्धुदीप आपीं न्यङ्कुसारिणीं सं ते नि-  
ष्टुष्यार्थिवोऽर्थो वायव्योऽर्थः सु जातोऽनुष्टुबाग्नेय्युदुतिष्ठ-  
श्चमनाः पथ्याबृहतीमूर्धः कण्व उपरिष्ठाबृहतीं स-  
तस्त्रिष्टुभं स्थिरो रासभेय्यनुष्टुबुषिगवा शिले-  
य्याबृहती प्रेतु लिङ्गीक्ता महापङ्क्तिस्त्र्यवसा-  
कपदाग्नेय्युतमग्निमाग्नेये ओषधयस्त्रि-  
देवत्ये व्यस्यन्नाग्नेयोऽर्थर्चो विपा-  
वमम् ॥४॥

आपो ह्यापर्धं सिन्धुद्वीपस्तत्रं गायत्रं मित्र उपरिष्ठा बृह-  
ती भैत्री रुद्रा अनुष्टुप्त्रौद्री स्रष्टं द्वे सिनीवालीदेवत्ये उ-  
षामदित्या मरुवस्य मृत्पिण्डो वसवस्त्वा लिङ्गोक्तानि सर्वत्रादि-  
त्ये रास्त्रादिति रैस्व कृत्वायादित्योषिण गदितिरावतं देवानां प-  
ञ्चौरवानि मित्रस्य विश्वामित्रो भैत्रीं गायत्रीं देवस्त्वा सावित्री  
बृहत्पुत्याय पूर्वोऽर्धं च और्व उत्तरो भैत्रः ॥५॥

आकूर्तिं लिङ्गोक्तान्योद्भूतानि मा स्वीरव्यो गायत्री  
त्रिष्टुभावगिनश्च पाद आग्नेयोद्भूतः सोमाहुतिराग्नेयीं गाय-  
त्रीं परस्या विरूप आङ्गिरसः परमस्या आरुणिरनुष्टुभं यदग्ने-  
दे जमदग्निरहरहर्नाभानेदिष्ठस्त्रिष्टुभो याः सेना अनुष्टुभः  
सर्वा आग्नेय्योन्त्योपरिष्ठा बृहती ॥६॥

दृशानो वत्सप्रीस्त्रिष्टुभं रैवमी नक्तोषासा कुत्स आ-  
ग्नेयीं विश्वा प्रयावाश्च सावित्रीं जगतीं सुपर्णः कतिश्चतुर-  
साना गारुत्मी विषघ्नी विष्णोर्लिङ्गोक्तान्यक्रन्द इत्सप्रीरा-  
मीं त्रिष्टुभमग्न ऊर्ध्वबृहत्पुग्ने महाबृहती पुनर्गायत्र्या-  
बृहत्पूर्वानुष्टुभमुत्तमं शुनः शेषो वारुणीं त्रिष्टुभम-  
ग्नेयीं हंस उक्ता जमती हयजुरन्तान्ते बृहद्य-  
नेयी त्रिष्टुबन्तरग्नेः त्रिष्टुभो ॥७॥

नेयं त्रिष्टुभं द्वादशार्धं वत्सप्रीर्भालन्दनः  
आङ्गिरस आग्नेयं गायत्रमुद्भूत्वा ताप

वीरस्वर्गे विरूप आग्नेयीं गायत्रीं गर्भो असि तिस्रोऽनुष्टु-  
भो बोधा मे दीर्घतमा त्रिष्टुभं स बोधि सोमाहुति राग्नेयीं य-  
जुरन्तां गायत्रीं यजुर्वेचकर्मणं पुनस्त्वा त्रिष्टुबाग्नेयी ॥ ८ ॥

अपेत लिङ्गोक्तबहुदेवत्या संज्ञानमूषदेवत्यानि त्री-  
ण्यग्ने सिकताश्रितः परिश्रितोऽयं सः पञ्चर्चमाग्नेयं त्रै-  
ष्टुभं विश्वामित्र चतुर्थ्यनुष्टुभं ते नुष्टुपचिदैष्टके लोकं  
लिङ्गोक्तानुष्टुप्ता अस्यापीं प्रियमेध ऐन्द्र इन्द्र जेता माधुक्-  
न्दसऐन्द्रीं समितं चतस्रोऽग्निरदेवत्या उष्णिगुपरिष्ठाबृह-  
त्युष्णिग्वयङ्गयो मा ते वोस्वास्तुतिस्त्रिष्टुप् ॥ ९ ॥

असुन्वन्तं नैर्ऋतं त्विचं त्रैष्टुभं यं ते यजमानदेवत्या  
नमो विरुद्धतिदेवत्यैकयदा निवेशन आग्नेयीं त्रिष्टुभं दि-  
श्ववसुर्देवगन्धर्वः सीरा द्वे सीरदेवत्ये बुधः सौम्यो गाय-  
त्री त्रिष्टुभो शुनं चतस्रः सीतादेवत्याः कुमारहारितो द्वे  
त्रिष्टुभो तृतीयापङ्क्तिश्चतुर्थ्यनुष्टुबिमुच्यध्वमानडुही ग-  
यत्री सजूर्लिङ्गोक्तदेवतम् ॥ १० ॥

या ओषधीः सप्तविंशतिमनुष्टुभ ओषधी  
माथर्वणो भिषङ्मुचन्तु बन्धुर्द्वादशानां रभ्या  
हिरण्यगर्भः कायीं त्रिष्टुभमभ्यावर्तस्त्रोष्णिग-  
षं त्रिष्टुवर्गे तव पावकौऽग्निरग्नेयं व-  
यं तिस्रः सतो बृहत्युपरिष्ठाव्योतिः

म्यो गायत्री त्रिष्टुबुष्णिगह \*



मधु वाता वैश्वदेवं तृचं गायत्रं गोतमोऽयां गम्भन्धङ्गि-  
स्त्रीन्समुद्रंस्त्रिष्टुप्कोर्म्यं द्युचं ध्रुवासि त्रिष्टुविषे बृहत्योरवंद्यु-  
प्रग्ने युक्त्वाग्नेयं द्युचं गायत्रमाद्यायां भरद्वाजो द्वितीयस्यां  
सम्यक्त्रिष्टुब्लिङ्गोक्तदेवतर्चं त्वा बृहत्यग्निर्ज्योति-  
र्यत्तं गर्भं पञ्चर्चमाग्नेयं त्रैष्टुभमिमं मा पञ्चर्च-  
भूमेव द्वे द्वे चान्ते यजुषी त्वं यविष्टोशनाः का-  
रुक्तां गायत्रीमयां त्वा विरिंशतिरेष्टकान्य-  
गमृदेवत्यानि लोकं ता इन्द्रं तिस्रस्तुष्टु

अथ द्वितीया चितिर्ध्रुवक्षितिः पञ्चाश्विन्यस्तासां प्रथ-  
मा विराड्भुवस्त्रिष्टुभो यजुरन्ताः शुक्रश्चतुर्व्यं सजूः पञ्च  
विश्वेषां देवानामार्षे ता एव देवताः प्राणं मे पञ्च वायव्यान्य-  
पः पञ्चापानि मूर्धा वय एकोनविंशतिर्लिङ्गेक्तदेवतानि ॥१५॥

अथ तृतीयेन्द्राग्नी अनुष्टुप्पूर्वोऽर्धे च ऐन्द्राग्न उतरः स्व-  
प्रमातृष्टदेवतो विश्वकर्मा वायव्यं सत्यसि पञ्च दिग्देव-  
त्यानि विश्वकर्मा वायव्यं नभश्चेषश्चतुर्व्ये आयुर्मे दश लि-  
ङ्गेक्तदेवतानि मा छन्दश्चषट्त्रिंशन्मूर्धानुष्टुव्यन्त्री परोषि-  
क्ततुर्दश यजूंषि प्राणदेवतानि ॥१६॥

अथ चतुर्थ्याश्चुरष्टादशाग्नेर्देशैकया सप्तदश सर्वा-  
णि लिङ्गेक्तदेवतानि सहश्चतुर्व्यम् ॥१७॥

अथ यच्चाम्यग्ने जातानाग्नेय्यो त्रिष्टुभो षोडशी चतु-  
श्चत्वारिंशो लिङ्गेक्ते अग्नेस्त्रिष्टुवेव चत्वारिंशद्रूपिमने-  
कोनत्रिंशद्राक्षसि पञ्चायं पुरः पञ्चेतानि सर्वाणि लि-  
ङ्गेक्तदेवतानि ॥१८॥

अग्निमूर्धाग्नेयोऽनुवाकः प्रथमस्तृचो गायत्रो द्विती-  
यस्त्रेष्टुभो भुवस्तृतीयो जागतोऽयमिह चतुर्थ आनुष्टुभः  
सरवायः सं पञ्चमः प्रगाथ एनावस्तत्र पूर्वा बृहती सतो बृ-  
हत्युत्तरा ताभ्यां तिस्रो बृहत्यः संपादिताः षष्ठ उषिाहोऽग्ने-  
वाजस्य सप्तमः पुनः काकुभः प्रगाथो भद्रो नस्तत्र पूर्वा क-  
कुप्सतो बृहत्युत्तरा ताभ्यां तिस्रः काकुभः संपादिता अष्टमः पा



होऽग्निं तं पदपाङ्क्तो नवमोऽग्ने तमग्निर्दं होतारमतिच्छ-  
न्दास्त्रयवसानाग्ने त्वं द्वैपदस्तृचः ॥ १४ ॥

अयमग्निर्विरूपोऽबोधि बुधगविष्टिरो जनस्य सुत-  
भरः सरवाय इषः स्रष्टं समित्संवन्नस्त्वा प्रस्कावः एना वो व-  
सिष्ठोऽग्ने वाजस्य गोक्षमो भद्रो नः सौभरिरग्निं तं कुमारवृषो  
येनाष्टावाग्नेयः षड्विष्टुभो द्वे अनुष्टुभो तपश्चर्तव्यं परमे-  
ष्ठी सौरं प्रोथदश्चो वसिष्ठस्त्रिष्टुभमाग्नेयीमायोर्द्वे स्वयमा-  
नृष्टदेवते सहस्रस्य पञ्चाग्नेयानि ॥ १५ ॥

रोदोऽध्यायः परमेष्ठिन आर्षं देवानां वा प्रजापतेर्वाद्यो  
ऽनुवाकः षोडशर्चं एकरुद्रदेवत्यः प्रथमा गायत्री तिस्रोऽनुष्टु-  
भास्तिस्त्रः पङ्क्तयः सप्तानुष्टुभो द्वे जगत्थो मा नो द्वे कुत्सः ॥ १६ ॥

अन्त्याऽनुवाके सप्तैकरुद्रस्तुतिराद्योपरिष्ठाद्बृहतीमा  
कुत्सस्य तृतीयानुष्टुब्दे त्रिष्टुभो द्वे अनुष्टुभावसंख्याता बहु-  
रुद्रदेवत्या दशानुष्टुभो मन्त्रा अवतानसंज्ञकास्ततोन्त्यानि  
त्रीणि यजूर्दसि बहुरुद्रदेवत्यानि प्रत्यवरोहसंज्ञका मन्त्राः ॥ १७ ॥

मध्ये सर्वाणियजूर्दसि हिरण्यवाहव इति तिस्रोऽशीत-  
यो रुद्राणां तेषामुभयतो नमस्कारा अन्येऽन्यतरतो नम-  
स्कारा अपरे जानानामरुद्राः सभाभ्य इत्यादयो नमोवः कि-  
रिकेभ्यः इत्यग्निवायुसूर्यहृदयभूताः पञ्च व्याहृतयो बहुरुद्र-  
देवत्याः ॥ १८ ॥

अश्वमन्मारुतमश्वमंस्तेऽश्वमय्याशीर्यं द्विष्म आभि-

चारिकमिमा म आग्नेयमृतवो बृहती पङ्क्तिर्वा समुद्रस्य द्वे गा-  
यत्र्योऽथन्मज्जगती त्रिष्टुब्बापामिदं बृहत्यग्ने पावक वसूयवः  
स नो मेधातिथरेते आग्नेय्यो गायत्र्यो पावकया जगतीं भर-  
द्वाजो नमस्ते बृहतीमाग्नेयीमृषिसुतालोपामुद्रा ॥२४॥

नृषदे पञ्चाग्नेयानि ये देवा जगत्यौ प्राणदेवत्ये प्रा-  
णदा बृहती पङ्क्तिर्वाग्नेय्यग्निस्तिग्मेनाग्नेयीं गायत्रीं भरद्वा-  
जो य इमा वैश्वकर्मणीस्त्रिष्टुभो विश्वकर्माभौवनः ॥२५॥

आशुरेन्द्रीर्द्वादश त्रिष्टुभोऽप्रतिरथोऽवसृष्टानुष्टुविष्टु  
देवत्या प्रेतयोऽहन्तेत्यनुष्टुवसौ या मारुती त्रिष्टुव्यत्र लिङ्गोक्तदे-  
वता पङ्क्तिर्मर्माणि लिङ्गोक्तैव त्रिष्टुबुदेनं तिस्रोऽनुष्टुभ आद्या-  
ग्नेयी द्वितीयेन्द्री तृतीया लिङ्गोक्तदेवता पञ्चदिशः पञ्च यज्ञा-  
ग्निसाधनवादिन्य आद्ये द्वे त्रिष्टुभौ तृतीया पङ्क्तिर्बृहती वाचतुर्थी  
बृहत्येवान्त्या त्रिष्टुविमा नो द्वे आदित्यदेवत्ये आद्या विश्वाव-  
सोर्द्वितीयाऽप्रतिरथस्य देवहर्विधृतिरनुष्टुव्यस्तदेवत्या वाज-  
स्येन्द्रानुष्टुबुद्धाममेन्द्राग्न्यानुष्टुवेव ॥२६॥

क्रमध्वं पञ्चाग्नेय्यः आद्यानुष्टुप्ततस्त्रिष्टुप्ततो बृहती पि-  
पीलिकमध्या ततोऽनुष्टुप्त्रिष्टुवन्त्याग्ने सहस्राक्ष विराडाग्नेयी सु-  
पर्णे द्वे पङ्क्तिस्त्रिष्टुभौ तार्हं सवितुः सावित्रीं त्रिष्टुभं परस्ताज्यो-  
तिषं कण्वो ददर्श विधेमाग्नेयी गृत्समदस्त्रिस्थानोऽग्निर्देवता  
प्रेद्धो विराडाग्नेयी वसिष्ठस्य चित्तिं वैश्वकर्मण्यतिजगती सप्तत  
आग्नेयी त्रिष्टुप्सप्तकृषीणाम् ॥२७॥

शुक्रज्योतिः षण्मास्य आद्या चतुर्थी चोषिणक् द्वितीया  
च तृतीया च गायत्री पञ्चमी जगती षष्ठी गायत्र्युषिणवेन्द्रं दे-  
वीर्मासुतमिमं त्रयोदशर्च आग्नेयस्त्रैष्टुभोऽनुवाको यज्ञस्तुति-  
र्नस्तुतिर्वा वसोर्धाराभिवादिनी वा घृतं मिमिक्षे गृत्समदः स-  
मुद्राह्वामदेवश्चत्वारिंशद्भ्यः यज्ञं पुरुषदेवत्यं ऋषभो मन्त्रः ॥२८॥

वाजश्च मे देवानामार्षमेतैर्यजुर्भिर्यजमानोऽग्नेः कामान्या-  
चते वाजप्रसवीयर्धं सप्तर्चं विश्वे त्रैष्टुभं वैश्वदेवं लुशोधानाको वा-  
जोनस्तिस्त्रोऽन्नदेवत्या आद्यानुष्टुब्धे त्रिष्टुभो सं मा विराजावाग्ने-  
य्यो सरस्वत्ये लिङ्गोक्तदेवतम् ॥२९॥

ऋताषाङ्गन्धर्वाप्सरसः स नः प्राजापत्याः प्रस्तारयङ्किः स-  
मुद्रोऽसि वायव्यानि त्रीणि रुचमाग्नेय्यनुष्टुप्त्वा वारुणीं त्रिष्टुभं  
शुनः शेषः स्वर्माग्नेयानि पञ्चाग्निं युनज्याग्नेय्यस्तिस्र आद्ये द्वे  
त्रिष्टुभो यङ्किस्तृतीया दिवो द्वे आग्नेय्यो परोषिणङ्गहापदपङ्क्तिः इष्टो  
यज्ञो ह्यृचं यजमानाग्निदेवत्यं गालव आद्योषिणद्वितीया गायत्री ॥३०॥

यदाकृतादष्टर्चमाग्नेयं विश्वकर्मणस्तृतीया देवी वाद्या जग-  
ती तिस्रस्त्रिष्टुभश्चतस्रोऽनुष्टुभोऽग्निरस्म्यग्न्यद्वैतवादिनीं त्रिष्टुभं  
देवश्चवादेववाताश्च भारतावृचो यजुर्येऽग्नयोऽनुष्टुवाग्नेयी ॥३१॥

वार्वहत्याय सप्तर्चमिन्द्रोऽपश्यदाद्ये द्वे वार्वह्यो गायत्री त्रि-  
ष्टुभो विश्वमित्रस्य च वि नोऽनुष्टुस्मृगो न त्रिष्टुभश्चमार्धं शासो  
भारद्वाजो द्वितीया जय ऐन्द्रो द्वे विश्वानर्यो गायत्री त्रिष्टुभो पृथे दि-  
वि कुत्सस्य चाश्याम द्वे त्रिष्टुभावाग्नेय्यो कामवत्यावश्याम भर-

हाजस्य च वयं ने कात्यस्योत्कीलस्य धामछदनुष्टुब्धैश्चदेवी ॥३२॥

अथ सौत्रामणी प्रजापतेरर्षमश्विनो सरस्वत्याश्च स्वांही त्वा  
नुष्टुप्सुरासोमदेवत्या सोमोऽसि चत्वारि सौरणि परितो भारद्वाजः  
सौमीं बृहतीं वायोस्तृचो गायत्रः सौम्य आभूतेर्ब्रह्मक्षत्रं त्रिष्टुप्सु-  
रासोमदेवत्या नानाहि जगती सुरासोमदेवत्या तेजोऽसि पयो देव-  
त्यान्योजोऽसि सुरादेवत्यानि याव्याघ्रं हैमवर्चं रनुष्टुब्धिषूचिकासु-  
तिर्यदा पियेषाग्नेयी बृहती संपृचस्थ पयग्रहा विपृचस्थ सुराग्र-  
हादेवा यज्ञं ब्राह्मणानुवाको विठं प्रतिरनुष्टुभः सोमसंपत् ॥३३॥

सुरावन्तं चतुर्ऋचं त्रैष्टुभमश्वि सरस्वतीन्द्रदेवत्यं पितृ-  
भ्यः सप्तपित्र्याणि पुनन्तु मा नवर्चं पावमानमाद्ये द्वे पित्र्ये अनु-  
ष्टुभौ प्रजापतिस्तृतीयां वैशानस आग्नेयीं गायत्रीं चतुर्थी लि-  
ङ्गाक्तदेवतानुष्टुप्चम्याग्नेयी गायत्री षष्ठ्याग्नेयी ब्राह्मी च गा-  
यत्री ब्राह्मस्तृतीयः पादः सौमी सप्तमी सावित्र्यष्टमी नवमी त्रि-  
ष्टुब्धैश्चदेवी ये समाना अनुष्टुभौ पित्राद्या द्वितीया यजमानाशी-  
र्द्धं सती त्रिष्टुब्धेवयानपितृयाणो पन्थानो ब्रवीतीदं हविष्यव-  
नाष्टिर्यजमानाशीः ॥३४॥

उदीरतां त्रयोदशर्चं पित्र्यं त्रैष्टुभं शङ्ख एकादशी तु ज-  
गत्याच्या जानु दशर्चोऽनुवाको नव पित्र्या दशम्येन्द्री गायत्री तृ-  
तीया चतुर्थी नवम्योऽनुष्टुभस्त्रिष्टुभ इतराः सोमो राजाष्टर्चमश्वि-  
सरस्वतीन्द्रा अपश्यन्नाद्यास्तिस्रो महाबृहत्युपान्त्या च चतुर्थ्यन्त्ये  
अतिजगत्यो शेषे अतिशक्न्येयौ त्र्यवसाने सीसेन तन्त्रमश्वि सरस्वतीन्द्र-

देवत्याः षोडश जगत्यः ॥३५॥

क्षत्रस्य योनिर्द्विपदा गायत्र्यासन्दी देवताका मा त्वा कृ-  
ष्णाजिनं मृत्यो रुक्मावश्विनोर्मैषज्येन लिङ्गेक्तदेवतानि  
त्रीणि कौंसि प्राजापत्या गायत्री शिरो मे यञ्चर्चमिन्द्रशरीरा-  
वयवदेवताकं तृतीया गायत्र्यन्त्या महापङ्क्तिस्त्र्यवसानानुष्टु-  
भोऽन्याः प्रति क्षत्रे वैश्वदेवं त्रया देवा देवीपङ्क्तिस्त्र्यवसाना  
प्रथमा द्वितीयैर्वैश्वदेवमाशीर्लिङ्गं लोमान्यनुष्टुब्धिर्ल्लोक्तदेवता ॥३६॥

यद्देवास्तिस्त्रोऽग्निवायुसूर्यदेवत्या अनुष्टुभः कूष्माण्डीर्पङ्क्ति-  
मे लिङ्गेक्तदेवतर्हं समुद्रे ते द्विपदाविराडापौ द्रुपदादिवानुष्टु-  
वाप्युद्वयर्हं सौर्यनुष्टुप्प्रस्कावस्यापो अद्याग्नेयीपङ्क्तिरेधोऽसिस-  
मिहदेवत्ये यजुषी समाववर्त्यनिरुक्ता गायत्री वैश्वानरज्योतिर्यजुर-  
भ्यादधाम्याग्नेयं तृचमानुष्टुभमाश्वतराश्विर्हं शुना सौर्यनु-  
ष्टुप्सिञ्चन्ति परि सौर्येन्द्री वानुष्टुप्प्रधानावन्तमैन्द्री गायत्री वि-  
श्वामित्रस्य च बृहदिन्द्राय बृहती नृमेध पुरुषमेधयोरध्वर्यो गायत्री ॥३७॥

यो भूतानामात्म प्रवादा यङ्किर्नारायणीया कौण्डिन्यस्य प्रा-  
णपा मे द्वे अनुष्टुबुपरिष्ठाद्बृहत्यौ लिङ्गेक्तदेवते समिद्ध इन्द्रका-  
दशाप्रीस्त्रिष्टुभ आङ्गिरस इध्मस्तनूनपान्नराशर्हंस इडो बर्हिर्द्वार  
उषासानक्ता देव्या होतारा तिस्रो देवीस्त्वष्टा वनस्पतिः स्वाहाकृतय  
इत्येता अप्रीदेवता आयातु सप्त त्रिष्टुभ ऐन्द्र्य आमन्त्रे बृहत्याया-  
तु वामदेवं स्वातार गर्ग आमन्त्रेर्विश्वामित्र एवेद्वसिष्ठः ॥३८॥

अथ होत्रं त्रिपशोः समिद्धो अग्निराप्रीर्द्वादश विदर्भिर-

अश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्या अनुष्टुभोऽश्विना हविस्तिस्त्रोऽनुष्टुभ एकैका-  
 श्वि सरस्वतीन्द्रदेवत्या य इन्द्रसवितृवरुणदेवत्या तिस्रोऽनुष्टुभोऽ-  
 श्विना गोमिस्तिस्त्रोऽनुष्टुभो युवं पुत्रमिवानुष्टुप्त्रिष्टुभो यस्मिन्न-  
 श्वास आग्नेय्यो जगती त्रिष्टुभावश्विना तेजसेकादशर्चैः शास्त्रं गोम-  
 द्भृत्समदस्तृचमाश्विनं गायत्रं पावकानो मधुछन्दाः सारस्वतमिन्द्रा-  
 यात्यैन्द्रं मधुछन्दा एवानुक्तमानुष्टुभमश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्यम् ॥ ३६ ॥

इमं मे गायत्री त्रिष्टुभौ वारुण्यौ शुनः शेषस्त्वन्नस्त्रिष्टुभावा-  
 ग्निवारुण्यौ वामदेवो मही मूषु त्रिष्टुवादित्या सुत्रामाणं गयत्रा-  
 त सुनावं नोः स्वर्ग्या गायत्र्या नो मैत्रावरुणीं गायत्रीं विश्वामित्रः  
 प्र बाहवा वशिष्टस्त्रिष्टुभर्तुं समिद्धोऽग्निरेकादशा प्रमाऽनुष्टु-  
 भर्तुं स्वस्त्यात्रेयस्पर्षं वयोधा इन्द्रो देवता वसन्तेन ऋतुना षडृच-  
 मानुष्टुभं लिङ्गोक्तदेवतर्तुं होता यक्षद्वादशाग्नी प्रैषा अश्विसरस्व-  
 तीन्द्रदेवत्या अश्विनौ छागस्य सप्तलिङ्गोक्तदेवताः प्रैषा वनस्पति-  
 मभि यूपोऽग्निरर्तुं स्विष्टकृतर्तुं स्विष्टकृदग्निर्देवं बर्हिरेकादशानु-  
 याजप्रैषा अश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्याऽग्निमद्यसूक्तावाकप्रैषो  
 लिङ्गोक्तदेवतो लिङ्गोक्तदेवतः ॥ ४० ॥

इति सर्वानुक्रमणीये द्वितीयोऽध्यायः २

अथाश्वमेधश्चतुरोऽध्यायान्प्रजापतिरपश्यत्तेजोऽसि सौव-  
 र्णीनिष्कमिमामगृह्णन्तं वत्सरो यज्ञपुरुषस्त्रिष्टुभमभिधा लिङ्गोक्ता-  
 नियो अर्वन्तं गायत्र्यर्थेनाश्वस्तुतिः परोऽर्थो लिङ्गोक्तोऽग्नये लिङ्गोक्ता-  
 न्येव हिङ्गागयेत्यश्वस्यैकान्नपञ्चाशच्चैष्ठितानि हिरण्यपाणिं पञ्चर्चैः सा-



वित्रं मयत्रमाद्यां मेधातिथिरग्निर्हं स्तोमेनाग्नेयं तृचं गायत्रिर्हं सु-  
तंभरो विश्वामित्रो विरूपो यथासंख्यमजीजनो हि पावमानीक-  
तिं पिपीलिकमध्यामनुष्टुभं अरुणत्रसदस्यू विभूरश्वदैवतं दे-  
वादैवमिह रन्तिराग्नेयानि चत्वारि कायैर्द्रुमणानि लिङ्गोक्ता-  
न्या ब्रह्मल्लिङ्गोक्तान्येवाध्यायात् ॥१॥

प्रजापतये प्राजापत्यं यस्ते देवं यः प्राणतः स्त्रिष्टुकायो  
हिरण्यगर्भस्य युञ्जन्ति मधुहन्ता आदित्यदेवत्यां गायत्रीं यु-  
ञ्जन्त्यस्याश्वस्तुतिर्यद्वातो बृहती वसवस्त्वा लिङ्गोक्तानि लाजी  
नश्वदेवत्यं कः स्वित्तस्त्रोऽनुष्टुभः प्रश्नप्रतिप्रश्नभूता ब्रह्मोद्यो-  
होतुर्ब्रह्मणश्च वायुष्ट्वा लिङ्गोक्तानि सर्हं शितस्त्रिस्तोऽश्वदेवत्या  
अनुष्टुबिराङ्गिष्टुभोऽग्निः पशुराश्वानि त्रीण्यश्वेऽनुष्टुवश्चस्तुति-  
र्मणानां त्वा चत्वारि लिङ्गोक्तानि ॥२॥

उत्सवथ्या गायत्र्याश्वीयका दशर्चमानुष्टुभं द्वितीयातू-  
परिष्टाद्बृहत्यध्वर्वादीनां कुमार्यादिभिरश्लीलभाषणं ता एव  
देवता दधिकावणो दधिकावा वामदेव्यः सुरभिमतीमनुष्टुभ-  
माश्वीं गायत्रीर्हं षडृचमाश्वमुषिणागाद्या चतस्त्रोऽनुष्टुभोऽन्या  
त्रिष्टुक्स्त्वा षडृचमाश्वमाद्या गायत्री पञ्चानुष्टुभः कः स्वित्तस्त्रो-  
दशर्चं ब्रह्मोद्योर्हं होत्रादीनां प्रश्नप्रतिप्रश्नभूतमाद्याश्चतस्त्रोऽ-  
नुष्टुभः कास्विदाद्याश्चतस्त्रश्चतस्त्रश्चान्या दश त्रिष्टुभः सुभूरनु-  
ष्टुव् लिङ्गोक्तदेवता होता यक्षत्प्राजापत्यः प्रेषः प्रजापते हिरण्यग-  
र्भः प्राजापत्या त्रिष्टुभम् ॥३॥

अश्वस्तूपर इत्यादयः पशवोऽध्यामेनोक्ता देवता चाप-  
र्यङ्ङ्रास्तथा रोहितादयो गुणयुक्ता आरण्याश्च कपिञ्जलादयः  
आध्यायाच्छादं दद्विरित्यादि त्वगित्येतदन्तं द्रव्यैर्देवतमुक्तम् ॥४॥

अश्वस्तूपरो ब्राह्मणोऽध्यायः शादं दद्विस्त्वचान्तश्च जुम्ब-  
काय वारुणीं द्विपदं मुण्डिभं श्रौदन्य एषा चाघनाशिन्यन्तर्जले,  
यस्येमे कायो त्रिष्टुभौ हिरण्यगर्भः प्राजापत्य आनो दशार्चं जा-  
गतं वैश्वदेवं गोतमः स्वस्तिनोविराट्स्थाना भद्रं कर्णेभिस्त्वचं  
त्रिष्टुभं मानोऽश्वस्तोमीयं दीर्यतमार्खैष्टुभं द्वाविठं शतृचमश्व-  
स्तुतिस्तृतीयां षष्ठ्यो जगत्याविमा नु द्वैपदं वैश्वदेवं तृचं भौव-  
न आस्थो वा साधनो भौवनो वा ॥५॥

अग्निश्च सप्त लिङ्गोक्तानि प्रियो देवानां लोगाक्षिरनुष्टु-  
भमनवसानां बृहस्पते गृत्समदो ब्राह्मीं त्रिष्टुभमिन्द्र गोमन्त्रे-  
द्यौ गायत्र्यौ रम्याक्षिर्ऋतावानं प्रादुराक्षिर्वैश्वानरीयां वैश्वान-  
रस्य त्रिष्टुभं कुत्सोऽग्निर्ऋषिराग्नेयीं गायत्रीं वसिष्ठ भरद्वाजौ  
महां २ ॥ इन्द्रो माहेन्द्री वसिष्ठस्तं व ऐन्द्री पथ्याबृहती नोधा  
गोतमो यद्वाहिष्ठं वसूयव आग्नेयीमनुष्टुभमेहि भरद्वाजो गाय-  
त्रीमृतवस्ते बृहत्युपव्हरे वत्सो गायत्रीम् ॥६॥

उच्चाते गायत्रं तृचं सौम्यमामहीयवोऽनुवीरैर्मुद्गलो  
यज्ञपुरुषस्त्रिष्टुभमग्ने पत्नीर्मेधातिथिराग्नेयीं गायत्रीमभि-  
यज्ञं ऋचमृतुदैवतं मेधातिथिस्तवायमेन्द्रीं त्रिष्टुभं विश्वामित्रो-  
मेव नो जगतीं गृत्समदः स्वादिष्टया मधुच्छन्दाः सौम्यावनु-



ज्ञानं गायत्रम् ॥ ७ ॥

समास्त्वाग्निर्कोऽध्यायः प्रजापतेरर्षेऽर्षेण सामिधेन्यो नवाग्नेयस्त्रिष्टुभोऽग्निना हृष्टा अग्निर्ऋषिः कर्मोद्भूतमग्निर्ऋत्तोत्सूधा द्वादशर्चमाप्रियमौषिहं विषमयदं प्राजापत्यमाग्नेयमग्निरपश्यदग्निर्हि प्रजापतित्वेन संस्तूयते तेन प्राजापत्यम् ॥ ८ ॥

पीवो अन्ना द्वे वायव्ये त्रिष्टुभौ वसिष्ठ आपो ह द्वे प्राजापत्ये हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः प्र याभिर्द्वे वायव्ये वसिष्ठो नियुत्वान्वायव्याः षड्वायोश्चक्रोऽनुष्टुवेकया च त्रिष्टुवन्या (न्या) गायत्र्यो नियुत्वान्वायो ये गृत्समदो वायो शुक्रं पुरुमीढाजमीदौ तव वायो व्यश्व आङ्गिरसोऽभि त्वा वसिष्ठ ऐन्द्रं प्रगाथं अथमा बृहती द्वितीया सतो बृहती त्वामिदेवर्षेऽंशुर्वर्हस्पत्यः कया न ऐन्द्रं तृचं गायत्रं वामदेवोऽन्त्या तु पादनिचृद्यज्ञायज्ञा व ऊर्जो नपातर्षेऽंशुः पाहि नो भर्गः प्रगाथ एतं (तत्) तृचं प्रगाथमाग्नेयं द्वे बृहत्यौ तृतीया सतो बृहती संवत्सरोऽस्याग्नेयम् ॥ ९ ॥

इन्द्रमिडः सौत्रामणिकोऽध्यायः एकादश प्रयाजप्रेषा ऐन्द्रा आप्रीदेवत्या (ता) आद्येऽनुवाके देवं बर्हिरनुयाजप्रेषा ऐन्द्रा एकादशैवाग्निमद्यैन्द्रः सूक्तवाकप्रेषस्त्वामद्य प्रतीक उभयत्रापि समिधानं महद्वायोधस आप्रिय एकादश प्रयाजप्रेषास्तथैव देवं बर्हिस्तुयाजप्रेषा अग्निमद्य वायोधसः सूक्तवाकप्रेषः ॥ १० ॥

समिद्धो अज्जन्नाश्वमेधिकोऽध्याय आद्या आप्रीस्त्रिष्टुभ ए-  
कादशाश्वस्तुतिर्बृहदुक्थो वामदेव्यो ददर्शाश्वो वा सामुद्रिर्यदक्र-  
न्दस्त्रयोदशाप्रीरश्वस्तुतिस्त्रिष्टुभो भार्गवो जमदग्निर्ददर्श दीर्घत-  
माश्व समिद्धो अद्य द्वादशाप्रीस्त्रिष्टुभोजमदग्निः ॥११॥

केतुं कृण्वन्नाग्नेयीमनिरुक्तां गायत्री मधुच्छन्दा जीमूत-  
स्येव पायुर्भारद्वाजः सङ्ग्रामाङ्गान्पृक्षो (क्वशो) स्तोषीत्संनाहं कार्मु-  
कं गुणमार्त्ती तूणं जगत्यर्धेन सारथिमर्धेन रश्मीन्हरीन्वथर्हं  
रथगोपायितृन् जगत्या लिङ्गोक्तदेवता द्वाभ्यां त्रिष्टुबनुष्टुभ्या-  
मिष्टुमनुष्टुभा कशां ततो हस्तघ्नं नतस्तृचो रथदुन्दुभिदेवत्या-  
वेन्द्रोर्ध्वैर्चोऽन्त्यः सर्वास्त्रिष्टुभोऽनुक्ता आग्नेयः कृष्णाग्नीव इत्या-  
द्या एकादशिन्योर्द्वयोः पशुदेवता अग्नये गायत्रायेति दशह-  
विषो वेष्टिर्देवताः ॥१२॥

देव सवितर्द्वावध्याय्यो पुरुषमेधो नारायणः पुरुषो ददर्श वि-  
श्वानि देव गायत्रीर्हं सावित्रीर्हं श्यावाश्वो विभक्तारं मेधातिथिर्ब्रह्म-  
णो ब्राह्मणमिति द्वे कण्डिके तपसेऽनुवाकश्च ब्राह्मणम् ॥१३॥

सहस्रशीर्षो षोडशर्चमानुष्टुभं त्रिष्टुवन्त्यं पुरुषो जगद्दी-  
जमन्त्रदेवताद्वयः षडृच उत्तरनारायणो मन्त्र आद्यास्तिस्त्रिष्टु-  
भो द्वे अनुष्टुभावन्त्या त्रिष्टुप् ॥१४॥

तदेव सर्वमेधोऽध्यायः आत्मदेवतः सप्तमेऽहनि सर्वहो-  
मे विनियुक्तः सर्वमेधं ब्रह्मस्वयंभैक्षं तदीयं मन्त्रगाणं प्र वायुम-  
हेत्येतस्मादाद्ये द्वे अनुष्टुभौ नतस्य द्विपदागायत्री हिरण्यगर्भ-

अतसो मा माहिर्हंसीद्यस्मान्न द्वे एताः प्रतीकचोदिता ब्रह्मयज्ञेऽध्ये-  
याः सर्वत्रैवमेषो ह चतस्रस्त्रिष्टुभ आपो ह यश्चित्प्रतीकचोदिते ॥ १५ ॥

वेनस्तत्पञ्च त्रिष्टुभः सदसस्पतिं तृचेन मेधाकामो मेधाया-  
चते प्रथमा गायत्री लिङ्गोक्तदेवता द्वितीयाग्नेय्यनुष्टुप् तृतीया  
लिङ्गोक्तदेवतानुष्टुबिदं मे मान्नवर्णिक्यनुष्टुवे तथा देवेभ्यः  
श्रीकामोयाचते श्रियम् ॥ १६ ॥

अस्याजरासः सप्तदशाग्निष्टोमिके प्रथमेऽहनि पुरोरु-  
च आग्नेय्य आद्ये द्वे ऐन्द्रवायवस्यास्याजरासो वत्सग्रीहख्योऽध्व-  
केतवो विस्वो यजानो द्वे मैत्रावरुणस्य यजानो गोतमो द्वे वि-  
स्वो सुक्रस्य कुत्सोऽयमिह मन्थिनो वैश्वदेवग्रहग्रहणे त्रीणि शता  
विश्वामित्र ऐन्द्राग्नस्याग्निवृत्राणि भरद्वाजो वैश्वदेवस्य विश्वे-  
भिः सोम्य मेधातिथिरायन्मरुत्वतीययोर्द्वे आयत्पराशरः शाक्तयो-  
ऽग्ने शर्धात्रिदुहिता विश्ववारां त्वाहं हि भरद्वाजस्त्वे अग्नेर्द्वे बृह-  
त्यावादित्यस्य त्वे अग्ने वसिष्ठ शुधि प्रस्काएव आदित्यग्रहग्रह-  
णे (अयणे) विश्वेषामदितिर्वामदेवो गोतमो महो अग्नेः सावित्र-  
स्य लुशोधानाकोऽनुक्तं गायत्रं त्रैष्टुभम् ॥ १७ ॥

इन्द्रस्तुत्युक्थ्ये द्वितीयेऽहन्येन्द्राः पुरोरुचो द्वादश प्रती-  
क चोदिते च द्वेतिस्त्रिष्टुभश्चिद्वसिष्ठो गाव उप पुरुमीढाजमीढौ  
यदद्य वसिष्ठ आसुते सुनीतिरातिष्ठन्तं विश्वामित्र प्रवः सुचीको  
बृहन्नित्रिशोक इन्द्रो हि मधुछन्दा इन्द्रो वृत्रं विश्वामित्रः कुतस्त्वम-  
गस्त्य आतङ्गौरीवितिः शाक्तयद्मां ते कुत्सो जगतीमनुक्तं गायत्रं

यजानो द्वे मैत्रावरुणस्य यजानो गोतम इत्येव पाठः यजान इत्यनया ग्रहणं तस्य अयणं तु प्रकृतिज्ञानेन धत्तां  
धेनुमग्नीं पुन न इत्युहितेनैव पुश्वाहीत्यनया अग्निग्रहणं प्रकृतिबन्धनकमाल्लिगाच्च । अतोऽत्र पुस्तके लिखितः  
पाठः प्रमाद एवेति निश्चयः । एवमेव देवः भाष्ये पठतो सर्वानुक्रमसूत्रभाष्ये पठतो संहिताभाष्ये च

\* यजानो मैत्रावरुणस्य गोतम इत्येव पाठः यजान इत्यनया ग्रहणं तस्य अयणं तु प्रकृतिज्ञानेन धत्तां  
धेनुमग्नीं पुन न इत्युहितेनैव पुश्वाहीत्यनया अग्निग्रहणं प्रकृतिबन्धनकमाल्लिगाच्च । अतोऽत्र पुस्तके लिखितः  
पाठः प्रमाद एवेति निश्चयः । एवमेव देवः भाष्ये पठतो सर्वानुक्रमसूत्रभाष्ये पठतो संहिताभाष्ये च

त्रैष्टुभम् ॥ १८ ॥

सूर्यस्तुत्युक्थ्ये तृतीयेऽहनि सौर्यश्चतुर्दश पुरोरुचस्तिस्त्रश्च  
प्रतीकोक्ता विभ्राड्बृहज्जगतीं विभ्राट् सौर्य उदुत्यं तिस्रः प्रस्कएव  
आनोऽगस्त्यो यदद्य श्रुतकक्ष सुतंकक्षौ तरणिः प्रस्कएव तत्सूर्यस्य  
हे कुत्सो वरामहा रं॥ हे जमदग्निर्बृहतीसतोबृहत्यो आयन्त इव नृ-  
मेधो बृहत्यद्या देवाः कुत्सः आ कृणो न हिरण्यस्तूप आङ्गिरसोऽ-  
नारव्यातर्हं सौर्यं गायत्रं त्रैष्टुभम् ॥ १८ ॥

वैश्वदेवस्तुति चतुर्थेऽहनि वैश्वदेव्यः पुरोरुच एकादश  
षट् प्रतीकोक्ताः प्रवावृजे वसिष्ठस्त्रिष्टुभ इन्द्रवायूबृहस्पतिं हे  
मेधातिथि अधि नः कुसीदी काणवोऽग्न इन्द्रं प्रतिक्षत्रं इन्द्राग्नी-  
मित्रावरुण जगतीं काश्यपोऽवत्सारोऽस्मे रुद्राः प्रगाथोऽवाञ्छो  
अद्य कूर्मो गात्समदो विश्वे अद्य लुशोधानाको विश्वे देवाः सु-  
होत्रो देवेभ्यो हि वामदेवो जगतीमनुक्तं गायत्रं त्रैष्टुभम् ॥ १९ ॥

अथानाराभ्याधीतं मन्त्रगणमर्वा विपतृमेधादादित्यया-  
न्तवल्क्यो ददर्शतुः प्र वायुं पञ्चदशर्चः पुरोरुग्गणो हे च प्रती-  
कोक्ते प्रवायुमृजि श्वो मित्रं हुवे हे मधुछन्दा मित्रं लिङ्गोक्ता-  
दस्त्रा युवा कव आश्विनीं विदद्यद्येन्द्रीं कुशिको न हि स्पशं  
विश्वामित्रो वैश्वानरीमुग्रा विघनिनेन्द्राग्नीं भरद्वाज उपास्मे सो-  
मीं देवलोऽसितो वा ये त्वा विश्वामित्रो जनिष्ठा उग्रो गोरीवितिरतू वाम-  
देवस्तु च ऐन्द्रस्त्वभिन्द्रेन्द्र्यो नृमेधः पथ्याबृहतीसतोबृहत्यो यज्ञो देवानां  
कुत्सोऽदव्येभिः सावित्रीं जगतीं भरद्वाजः ॥ २१ ॥

प्रवीरया पञ्चदशार्चः पुरोरुगणो द्वे च प्रतीकोक्ते प्रवीरया  
वसिष्ठो वायव्यां काव्ययो राजानेषु दक्षस्तिरश्वीनः परमेष्ठी प्रजाप-  
तिर्भाववृत्तं तृचमारोदसी जगती विश्वासित्र उक्थ्येभिर्वृत्रहन्त-  
मा वसिष्ठ उप नः सुहोत्रो वैश्वदेवीं ब्रह्माणि मे गस्त्यो द्वे इन्द्रमा-  
रुत्संवादे तदिदाथर्वणो बृहद्विष इमा उ त्वा द्वे बृहत्यौ मेधाति-  
थिर्यर्यं सहस्रं मेधातिथिः सतो बृहतीम् ॥ २२ ॥

आनस्त्रपोदर्शर्चः पुरोरुगणाश्चतुर्चर्चं प्रतीकचोदितं चा-  
नो वायव्यां जमदग्निरिन्द्रवायू सुसंहशैन्द्रवायव्यां तापस ऋधगि-  
त्या मैत्रावरुणी जमदग्निरायातमाश्विनीं वसिष्ठः प्रेतु वैश्वदेवीं  
कण्वश्चन्द्रमा अप्सेन्द्रीमाहुतिपरिणामवादिनीं वित आस्यो देव-  
देवं वोमनुर्वेदस्वतो वैश्वदेवीं दिविष्टो मेध ऐन्द्र इन्द्राग्नी अपात्सु-  
होत्रो देवासो हिमनुरपाधम द्वे नृमेधोऽस्येन्मेधातिथिर्दशम्येकाद-  
श्यन्त्या च सतो बृहत्यः शेषा बृहत्यः शेषा बृहत्यः ॥ २३ ॥

इति सर्वानुक्रमणीयेतृतीयोऽध्यायः ३

यज्जाग्रतः षड्य मानसं त्रैष्टुभं शिवसंकल्पः पितुं नूषिण-  
हमगस्त्योऽन्वस्तुतिम(२)न्विचतुर्चर्चमानुष्टुभं द्वयोरनुमतिर्द्वयोः  
सिनीवालीसरस्वत्यौ सिनीवालि पृथुष्टुके द्वे गृत्समदस्त्वमग्ने  
द्वे आग्नेय्यौ जगत्यौ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस उत्तानायां द्वे देवश्वा  
देववातश्च भारतावाद्या त्रिष्टुब्धितीयानुष्टुप् मन्महे नोधा ह्यच-  
मैन्द्रं त्रैष्टुभमिच्छन्ति त्वा ह्यचमैन्द्रं त्रैष्टुभमेव देवश्वादेववात-  
श्च भारती ॥ १ ॥

अषाढं युत्सु गोतमश्चतुर्ऋचं त्रैष्टुभं सौम्यमष्टौ व्य-  
ख्यच्चतुर्ऋचं त्रैष्टुभं सावित्रमाङ्गिरसो हिरण्यस्तूपो द्वितीया ज-  
गत्युभा पिवतमाश्विनं तृचमुभा पिवतं प्रस्कण्वो गायत्री मप्र-  
स्वतीमश्विना त्रिष्टुभो कुत्सः आ रत्रि पथ्याबृहतीर्हं रत्रिदेव-  
त्यां कशिपा भरद्वाजदुहितोषस्तदुषस्यां परोषिाहं गोतमः  
प्रातरग्निं वसिष्ठः सप्तर्चमाद्या जगती बहुदेवत्या पञ्च भगदे-  
वत्यास्त्रिष्टुभोन्त्योषस्या ॥२॥

पूषं तव सुहोत्रः प्रथमस्थः परिपतिमृजिष्वेते पोषोयो गा-  
यत्रीत्रिष्टुभो त्रीणि पदा वैष्णव्यो गायत्र्यो मेधातिथिर्द्युतवती मु-  
दनानां भरद्वाजो द्यावापृथिव्यां जगतीं ये नो लिङ्गेक्तदेवतां त्रि-  
ष्टुभं विहव्य आ नासत्या हिरण्यस्तूप आश्विनीं जगतीं मेषवो  
मारुतीं त्रिष्टुभमगस्त्यः सहस्तोमा ऋषिसृष्टिप्रतिपादिकां त्रिष्टु-  
भं यज्ञः प्राजापत्य आयुष्यं वर्चस्यं तृचं दक्ष उषिाक् शक्वीत्रिष्टु-  
भो हिरण्यस्तुतिरुत न ऋजिष्वो बहुदेवत्यां त्रिष्टुभमिमा गिरः  
कूर्मो गार्त्समद आदित्यदेवत्यां त्रिष्टुभं सप्तऋषयोऽध्यात्मवादि-  
नी जगत्युत्तिष्ठ तृचो ब्राह्मणस्पत्य आद्ये बृहत्यो कण्वोऽघो रो-  
न्त्या त्रिष्टुभं गृत्समदो य इमा चतुर्ऋचं प्रतीकोक्तम् ॥३॥

अपेतोऽध्यायः पित्र्य आदित्यस्य देवानां वाद्या गायत्री  
परं यजुः सविता ते गायत्री वायुः पुनातु चत्वारि लिङ्गेक्ता-  
नि सविता ते गायत्री परं मृत्योः संकसुकस्त्रिष्टुभं मृत्युदेवत्यार्हं  
शं वातोऽनुष्टुबृहत्यो वैश्वदेव्यावश्मन्वती सुचीकस्त्रिष्टुभं



वैश्वदेवीमपाद्यं लिङ्गोक्तदेवतामनुष्टुभं श्रुतः शेषो दुःस्वप्ना-  
 शानीमनङ्गाहमानडुह्यनुष्टुबिमं जीवेभ्यः संकसुको मृत्युदे-  
 वत्यां त्रिष्टुभमायुष्मानग्नः आग्नेयीं त्रिष्टुभं वैरवानसः परी-  
 मेऽनुष्टुभमैन्द्रीं भारद्वाजः शिरिम्बिठः क्रव्यादमग्निं त्रिष्टु-  
 भमाग्नेयीं दमनो वह वपां जातवेदसी त्रिष्टुप्स्योना पृथिवि  
 मेधातिथिः पार्थिवीं गायत्रीमस्मात्त्वमाग्नेयी गायत्र्यनि-  
 रुक्ता ॥४॥

ऋचं वाचं पञ्चाध्यायीं दध्यङ्गुथर्वणो ददर्शाग्निकश्च-  
 मधिकवज्जमाद्योऽध्यायः शान्त्यर्थो वैश्वदेव आद्यानि यजूर्ठ-  
 षि यन्मे वार्हस्पत्या यङ्गिः कया त्वमेन्द्र निरुक्ता गायत्रीन्द्रो वि-  
 श्वस्य विराट्द्विपदा शं नो द्वे अनुष्टुभावहानि द्विपदा गायत्री शं  
 न इन्द्राग्नी त्रिष्टुब्गायत्र्यावन्त्याशीर्धोः शान्तिर्यजूर्ठषि नमस्ते  
 अस्त्वनुष्टुभो तच्चक्षुः पुरउषिणक्सौरी ॥५॥

आददे नारिरस्यभिदैवतं देवी द्यावा पृथिव्यं देव्यो वम्नो  
 दल्मीकवपेयत्यग्ने वराहविहतमिन्द्रस्योज आदाराः प्रेतु मरव-  
 स्याश्वस्यर्जवे यमाय देवस्त्वारिचिरसि घर्मदेवत्यानि यो घर्मः स  
 आदित्यो य एष तपत्यनाधृष्टा पुरस्तात्सप्त पार्थिवानि यजमा-  
 नाशीर्मधुप्राणदेवत्यानि गर्भे देवानामवकाशा मा माहिर्ठ-  
 सी रित्येतदन्ता घर्मदेवत्या धर्ता दिव ऊर्ध्वबृहत्पश्यं गोपां  
 त्रिष्टुभं दीर्घतमा हृदं त्वा परोषिणक् त्वष्टमन्तः पत्न्याशीरहः  
 केतुना यजुषी घर्मदेवत्ये ॥६॥

आददेऽदित्यै स्त्रुरिड एहि गौर्यस्ते त्रिष्टुभं दीर्घतमा  
इन्द्राश्विना वैश्वदेवानि समुद्राय त्वा वातनामानि स्वाहा घर्मो-  
य घर्मदेवत्ये विश्वा आशाश्विन्यनुष्टुब्दिविधा घर्मदेव-  
त्यामश्विना घर्ममुष्णिगपातां ककुवमेन्यस्मे रवरः स्वाहा  
पूषो सप्त लिङ्गोक्तदेवतानि स्वाहा सं पयो देवत्यं मधुहुतं घ-  
र्मोऽभीमं गायत्री बृहत्यावनवसाने अतिशक्करीवाग्नेयी स-  
मस्ता अयवसाना या ते घर्म क्षत्रस्य बृहती चतुः सक्तिर्महा-  
बृहती घर्मोतदनुष्टुवचिक्रदत्परोष्णिग्यावती द्यावापृथिवी द-  
धिघर्मोमयित्य दित्यङ्गिर्यजमानाशीः पयसो रेतो गायत्र्यनव-  
साना त्विषः सं वृग्दधिघर्मोऽनुक्तं घर्म देवतं ॥७॥

स्वाहा आणेभ्यो मन्त्रवर्णिको देवता मनसः कामम-  
नुष्टुव्यजमानाशीः श्रीर्देवता प्रजायन्तिः संभ्रियमाणो यथा-  
कालं प्रायश्चित्तदेवताः सविता प्रथमेऽहन्यत्यहं क्रमेणोग्रश्च  
मारुती गायत्री विमुखारव्यो मन्त्रोऽग्नेो विनियुक्तस्तस्मादा-  
ग्निक एवास्य ऋषिः परमेष्ठी प्राजापत्यो वाग्निर्ऋं हृदयेना-  
श्वमेधिकानि त्रीणि तत्रोक्त एव ऋषिलोमभ्यः स्वाहेति प्रा-  
यश्चिन्नाहुतयो द्विचत्वारिंशत् ॥८॥

ईशा वास्यमात्मदेवत्य आनुष्टुभोऽध्यायोऽग्नेजदेकं  
त्रिष्टुप्परि जगती वायुरनिलं यजुषी उँश्मिति परमाक्षरस्य  
योगिनामालम्ब भूतस्य परस्य ब्रह्मणः प्रणवारव्यस्य स्थूला-  
दिगुणयुक्तस्य ब्रह्मार्षिश्छन्दो गायत्रं परमात्मा देवता ब्रह्मर-



म्मे विरामे च यागहोमादिषु शान्तिपुष्टिकर्मसु चान्येष्वपि  
काम्यनैमित्तिकादिषु विनियोगोऽस्य क्रतो विभिर्यजुर्भिर-  
न्ते यज्ञान्योगी स्मारयत्यग्ने नयान्ते नमस्कारोक्तिर्हिरण्मये-  
नादित्योपासनमोमिति नामनिर्देशो ब्रह्मणः खं ब्रह्मेत्याका-  
शरूपमन्ते ब्रह्म ध्यायेत् ॥ ६ ॥

हरिः ओम्

ॐ नमो कात्यायनाय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थः प्रदीपके  
देवर्षिछन्दबोधायानुक्रमार्थः समीर्यते

आदि में भगवान् कात्यायनाचार्य प्रारप्सितग्रन्थ के  
निर्विघ्नता पूर्वक परिसमाप्ति के अर्थ देवताध्यानलक्षण म-  
ङ्गलाचरण करिके श्रोतृबुद्धि के अव्याकुलत्व के प्रतिपाद्यग्र-  
न्थ को प्रकट करता है मण्डलं दक्षिणमक्षिहृदयं चाधिष्ठितं  
येन शुक्लानि यजूंश्चि मगवान्यान्तवल्क्यो यतः प्रापस्तं वि-  
वस्वन्तं त्रयीमयमर्चिष्मन्तमभिध्यायेति में तिसविवस्वन्त(सूर्य)  
तीनों वेदमय दीप्तिमन्त को कि जो जो आकाश में जगत्प्रकाश-  
कात्वं करि दृश्यमान मण्डल और पुरुष के दक्षिणनेत्र तथा

हृदय तीनों को आक्रमण करि स्थितहुआ पुनः जिस विवस्वन्त  
 से भगवान् याज्ञवल्क्य ने शुक्ल यजुः प्राप्त किये भले प्रकार  
 ध्यान करिके इसां माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्ना-  
 ये सर्के सरिवले सशुक्रियः ऋषिदेवत छन्दार्थं स्यनुक्रमिष्या-  
 म इति इस यजुर्वेद की आम्नाय में ऋषि, छन्द, देवता कहता  
 हूं तहां यजुर्वेद के छयासी भेद होने से नहीं समझ पड़ता कि कौन-  
 से यजुर्वेद की आम्नाय इसलिये कहता है कि वाजसनेयके और वा-  
 जसनेयक यजुर्वेद के भी पञ्चदश भेद होने से नहीं जानि पड़-  
 ता इस हेतु फिर भी कहता है कि माध्यन्दिनीय इति तहां यजु-  
 ओं का वेद यजुर्वेद है इसकारण ऋचाएँ पढ़कर न भूलै सर्कय-  
 ह युक्त है पुनः कैसा कि सरिवले, रिवल शब्द करि अनारभ्या-  
 धीताः क्वचित्कर्मण्यविनियुक्ता मन्त्रगणा कहिये हैं, प्रवायुम-  
 च्छा संहिता अध्या० ३३, काण्डी ५५, मुञ्चन्तु मा अध्या० १२, काण्डी  
 ४०, अग्निश्च अध्या० २६, काण्डी १, इत्यादि मन्त्र हैं तिन्हों सहि-  
 त ननु रिवलों का यजुर्वेद के मध्य होने से किस लिये न्याराज्य-  
 देश किया यों कि इन्हों के क्वचित्कर्म में अविनियुक्त होने से ऋ-  
 ष्यादिज्ञान निष्प्रयोजन होगा इस शङ्का के निरास करने को  
 क्यों कि इन्हों का भी ब्रह्मयज्ञ पारायण वाचस्लोमादि में विनि-  
 योग होने से ऋष्यादिज्ञान आवश्यक है पुनः सशुक्रिय इति  
 शुक्र (आदित्यधर्म) सम्बन्धि जो मन्त्र विभाग ऋचं वाचमि-  
 त्यादि अध्या० ३६, काण्डी १, तिस सहित और इस के भी पृथक्

कहने का यह कारण है कि यह शुक्रिय दिवस में तथा अरण्य में पड़ा जाता है और इस से अन्य वेद का भाग विनानियम के रात्रि दिन अरण्य ग्रामादिक में पड़ा जाता है

यजुषामनियताक्षरत्वादेकेषां छन्दो न विद्यत इति यजुषां के अनियताक्षर होने से किसी-किसी का छन्द नहीं है अयमर्थः जे यजुः अनियताक्षर हैं अर्थात् जिन्हों के १७० १४० २१० २३० २५० ३१० ३४० ३५० ३७० ३८० ४१० इत्यादिक अक्षर हैं तिन्हों का छन्द नहीं है और जो इषे त्वादिक नियताक्षर हैं तिन्हों का छन्द है क्यों कि दूसरे खण्ड में उक्त कात्यायनाचार्य कहेंगा यथा इषे त्वा शारवानुष्टुबिति इषे त्वा इस मन्त्र का शारवा देवता अनुष्टुप् छन्द तहां अनुष्टुप् छन्द तो वतीस अक्षर का और यहां पर तीनि अक्षर हैं तो यह कौनसा अनुष्टुप् है तहां पिङ्गल सूत्र से इस का निर्णय करना यदुक्तम् । छन्दः । गायत्री । दैव्येकम् । आसुरी पञ्चदश । प्राजापत्याष्टौ । यजुषां षट् । साम्ना द्विः । ऋचां त्रिः । द्वौ द्वौ साम्ना वर्धेत । त्रींस्त्रीनृचाम् । चतुरश्वतुरः प्राजापत्यायाः । एकैकं शेषे । जह्यादासुरी । तान्युषिणानुष्टुब्बहती पङ्क्तिः त्रिष्टुब्जगत्यः । तिस्रस्तिस्त्रः सनाम्य एकैका ब्राह्म्यः प्राग्यजुषामार्ष्ये इति । पिङ्गल छन्दः सूत्र खण्ड ३ अस्यार्थः संक्षेपतः । दैवी गायत्री छन्द एक अक्षर का आसुरी गा० छ० पञ्चदश अ० प्राजापत्या गा० अष्ट अ० यजुषी गा० षट्० साम्नी० द्वादश० आर्ची० अष्टादश० ब्राह्मी० षट्त्रिंशत्० अर्षी० चतुर्विंश

ति. हैं तहां देवी उषिणादि छन्दों पर एक-एक अक्षर बढ़ावै आसुरी से एक-एक घटावै प्रजापत्या पर चारि-चारि बढ़ावै याजुषी पर एक-एक साम्नी पर दो-दो आर्ची पर तीन-तीन ब्राह्मी पर छे-छे आर्षी पर चारि-चारि जैसे इस व्यसप्तति ७२ कोष्ठ के यन्त्र में

छन्द	गा०	उ०	अ०	बृ०	प०	त्रि०	ज०
आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
देवी	१	२	३	४	५	६	७
आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
प्रजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
साम्नी	१२	२४	१६	१८	२०	२२	२४
आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

और जहां एक छन्द की संख्या दूसरे के समान हो जैसे देवी त्रिष्टुप् याजुषी गायत्री तथा साम्नी गायत्री याजुषी जगती आसुरी बृहती इत्यादि और यह सन्देह होवे कि यहां कौनसा छन्द है तहां गायत्र्यादि छन्दों के देवताओं से कि जो चतुर्थ्याध्याय के स्वाङ् १०. ११. १२. में हैं निर्णय करें और उन देवताओं से व्यतिरिक्त अन्य देवता हों तो जो छन्द होसके तिनमें से चाहे जोनसा छन्द समझे अन्यच्च आर्षी गायत्री से आदि ले सतों छन्द और

पञ्चमाध्यायोक्त गायत्र्यादि सप्तछन्दों की अक्षर संख्या तो समान है परन्तु वीहाँ पाद नियम है और यहां पाद नियम नहीं और यह सन्देह हो कि उन गायत्र्यादि छन्दों में भी तो कोई-कोई अनवसाना अनियताक्षरा हैं तहां यह समाधान है कि उन गायत्र्यादि छन्दों की ऋचाओं पर आचार्य ने छन्द दिया है और इन्हें पर नहीं इति

ऋषि देवतछन्दश्चस्यनुक्रमिष्याम यह पहिले कहा गया अब ऋषि का स्वरूप कहिता है द्रष्टार ऋषयः स्मृतारः परमेष्ठ्यादय इति

परमेष्ठी से आदिले ऋषि हैं यह युक्त है क्योंकि संहिता की आदिमें दर्शपोर्णमास के मन्त्र हैं तिन्हों का परमेष्ठीप्रजापत्य ऋषि है। तहां परमेष्ठी से आदिले जिन्होंने जिस मंत्र को देखा ते उसके ऋषि हुए। अतएव यास्कः ऋषिर्दर्शनादिति। और देखे हुए के आख्यान की स्मरण किया ते ही स्मर्ता हुए। तिन वेद की प्राप्ति के अर्थ तप करते हुआ पुरुषों की स्वयंभू वेद पुरुष प्राप्त हुआ। तथाच श्रूयते। अजान्ते वै पृथ्वीं स्तपमानान्त्रहस्वयं च न्यानर्षत दृषयोऽभवन्निति। तथा अतीन्द्रिय वेद के परमेश्वरानुग्रह करि दर्शन से ऋषित्व है इत्यभिप्रेत्य स्मर्यते। युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेति हासान्महर्षयः। लेमिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयं भुवेति। यहां दर्शन मानस है क्योंकि मन्त्रों के वर्णोत्पत्तिक होने से नेत्रों करि दर्शन असम्भव है

अथ देवता स्वरूपमाह । देवता मन्त्रान्तर्भूता आग्न्यादि-  
का हविर्भाजः स्तुतिभाजो वा । अयमर्थः । जे मन्त्र के मध्य पढ़े-  
गये अग्निसोमेन्द्रविष्णवाद्यः देवता तिन्हो में कोई हविर्भोक्ता  
कोई सूक्तभोक्ता हैं । तथा च यास्कः । इतीमा देवता अनुक्रा-  
न्ताः । सूक्तभाजो हविर्भाज इति निरु० ७.१३.१ अपि च । यत्काम  
ऋषिर्यस्या देवतायामर्थयत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुञ्जे तद्देवतः स  
मन्त्रो भवतीति निरु० ७.१०.१ अयमर्थः । जिस कामना की ऋषि  
जिस देवता में अर्थपत्य की इच्छा करि, स्तुति करते हैं तिस मन्त्र  
का सो देवता हैं ।

भला आग्न्यादिक तो देवता हैं परन्तु अन्नः शाखा शम्या  
उपवेशादिक कैसे देवता हो सकते हैं क्यों कि वे न तो हवि ग्रहण  
समर्थ और न करी हुई स्तुति को जान संकते हैं । तथाह । अन्नः शा-  
खा शम्योपवेशकपालेध्मोलूरवलादयश्च प्रतिमाभूता इति यद्य-  
पि अन्नः शाखादिक अचेतन हैं तथापि तिन्हों के अभिमानीदे-  
वताओं के होने से देवतात्व है । अभिमानीव्यपदेशस्त्वेति व्या-  
ससूत्रोक्तेः अ० २. पा० १. सू० ५. । मृदब्रवीदापोऽब्रुवन्निति श्रुतेश्च ।  
अथ वा आग्न्यादिकों से उत्पन्न होने के कारण तिन्हों के प्रतिनिधि  
हैं । तथाच श्रुतिः । उतत्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् । अक-  
र्तं चतुरः पुनः ॥ ऋक्सं० अष्ट० १० अध्या० २० वर्ग २० ऋचा ६० अ-  
स्यार्थः ॥ और त्वष्टा देवता के बनाये हुए तिस चमस (सोमधारणक्ष-  
म काष्ठपात्रविशेष) की उसके शिष्य ऋम्वादिकों ने चारि प्रकार



रका किया ॥ यद्वा यज्ञ के साधक होने से देवत्व है। जो अनः शा-  
खादिकों की स्तुति वोह अग्न्यादिकों की वा यज्ञ की ही है। अपि  
ह्यदेवता देवता वत्स्तूयन्ते यथाश्व प्रभृतीन्योषधिपर्यन्तानिति या-  
स्कः निरु. ०. ७. ४. ॥

छन्दाथंसि गायत्र्यादीनि इति अथ छन्दाथंसि गाय-  
त्र्युषिगनुष्टुबिति पञ्चमाध्यायोक्त गायत्री आदि छन्द जानने  
चाहिये। छन्दशब्दस्यायमर्थः। पुरुष के पापसम्बन्ध वारण कर-  
ने के लिये आच्छादक होने से छन्द यह कहलाया। तथा च ऐत-  
रेयारण्यकारण्डे समागनायते। छादन्ति ह वा एनं छन्दासि पा-  
पात्कर्मण इति। अथ वा चीयमान अग्निसन्ताप के आच्छा-  
दक होने से छन्दः। तच्च तैत्तिरीया आमनन्ति। प्रजापतिरग्नि-  
मचिनुत। स क्षुरपविर्भूत्वातिष्ठत्। तं देवा विभ्यतो नोपायन्।  
ते छन्दोभिरात्मानं छादयत्वोपायन्। तच्छन्दसां छन्दस्त्वमिति।  
यद्वा अप मृत्यु वारण करने के लिये आच्छादन करता है इति  
छन्दः। तदपि छन्दोग्योपनिषद्याम्नातं। देवा वै मृत्योर्विभ्युः। त्रयी  
विद्यां प्राविशन्। तं छन्दोभिरात्मानमाच्छादयन्। यदेभिराच्छा-  
दयंस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वमिति॥

ऋषिदेवतछन्दों के ज्ञान बिना ही अध्ययनादि की सि-  
द्धि है और किस लिये ते कहे गये यह शङ्का ही तहां अनजानने  
में अनिष्ट कहिता है। एतान्यविदित्वा योग्यीतेः नुब्रूते जपति जु-  
होति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयाम भवतीति।

इन ऋषिदैवतछन्दों के विन जाने जो वेद पढ़ता और दूसरे को पढ़ाता गायत्र्यादि जपता व्याहृत्यादि होमता अपने अर्थ याग करता दूसरे को ऋत्विज हो याग कराता तिस पुरुष का ब्रह्म (वेद) नेवीर्य (स्वकार्यसाधन में शक्तिहीन) यातयाम (अकिंचित्कर-निःफल) होता है ॥

अनिष्टान्तरामाह। अथान्तराश्वगर्तं वापद्यते स्थाणुं वःर्हति प्रमीयते वा पापीयान्भवति। अथानन्तरं (ऋष्यादि विन जाने अध्ययन करने के अनन्तर) श्वगर्तं (अश्वों का गर्त-अशुचिस्थान-नरक) में पड़ता है। तथा अर्हति (अतीन्द्रियप्रलयमूर्ति करि) स्थाणु (वातादिकरि भानशाख दृष्ट शुकवृक्षयोनि) को प्राप्त होता है। तथा प्रमीयते (इस पाप से अचिर मृत्यु को पाता है)। अथ वा विप्रमीयते (अन्ध वा वधिर होता है) एष ह वै प्रप्रमायुषान्धो वा वधिरो वैति। तथा पापीयान्भवति (अतिशयेन पापाचारी होता है) पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापापापेनेति श्रुतेः॥ अतिशय पाप करि चाण्डालस्नेह्यादिजाति में उत्पन्न होता है इत्यर्थः॥ तथा च स्मर्यते। अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च। योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः॥ ऋषिच्छन्दोदेवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि। अविदित्वा प्रयुज्जानो मन्त्रकण्ठक उच्यत इति॥

एवं ऋष्यादि के अज्ञान में अनिष्टप्राप्त कहि कर ज्ञान से दृष्ट प्राप्ति कहता है। अथ विज्ञायेतानि योऽधीते त-



स्य वीर्यवदिति। ऋष्यादिदो को विशेषेण जानिकर जो वेद पढ़-  
ता है तिस का वेदवीर्यवान् (बलशक्तियुक्त होता है) ॥

अर्थज्ञाने फलविशेषमाह। अथ योऽर्थविनस्य वीर्य-  
वन्तरं भवतीति। जो द्विज मन्त्रों का ऋष्यादिज्ञानवान् और अर्थ  
जानने हारा तिस का वेद अतिशयेन वीर्यवत् वेद में अर्थज्ञान  
शून्य की निन्दा और अर्थज्ञ की प्रशंसा सुनियें है तहां आखान्त-  
र्गत दो वचन यास्क ने उदाहरण किये हैं निरु० अ. १. १८ स्थानपुरा  
आरहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थः। योऽर्थज्ञ इ-  
त्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥ यद्गृहीतमविज्ञा-  
तं निगदे नैव शब्ध्यते। अनग्नाविव शुक्रेधो न तज्ज्वलति कर्हि  
चित् ॥

जपित्वा ह्रत्वेष्टा तत्फलेन युज्यते ॥ १ ॥ ऋषिदेवत छ-  
न्द विनियोग अर्थ के ज्ञानपूर्वक पुरुषों को किये हुए जप होम  
इष्ट अवश्य फलदायक होते हैं। यतः वेदनविधिश्च स्मर्यते। स्व-  
रो वर्णोऽक्षरं मात्रा विनियोगोऽर्थ एव च। मन्त्र जिज्ञासमाने-  
न वेदितव्यं पदे पद इति ॥

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये

गिरिप्रसादरचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे प्रथमो खण्डः १  
अथ संहितापठितसर्वमन्त्रसाधारणऋषिमाह। इषे त्वादि  
खं ब्रह्मानं विवस्वानपश्यदिति। इषे त्वा इस से आरम्भ  
करि रह ब्रह्मपर्यन्त (समस्तसंहिता) को विवस्वान् ने देखाओं-

र स्मरण किया। आदित्यानीमानि यजूंषीति वा आहुरिति श्रुतेः॥ ततः प्रतिकर्मविभागेन ब्राह्मणानुसारेण ऋषयो वेदितव्या इति। फिरि सबों का साधारण ऋषि जानिकर सब कर्मों के विभाग करके इस कर्मका यह- इस कर्मका यह शतपथादिब्राह्मणानुसार ऋषि जानना। तत एतं परमेष्ठी प्राजापत्यो यज्ञमपश्यद्यहर्षा पूर्णमासाविति श्रुतेः॥ अथ सर्वेषां दर्शपूर्णमासमन्त्राणां साधारणमृषिमाह। परमेष्ठी प्राजापत्यो दर्शपूर्णमासमन्त्राणामृषि इति। यहिले अध्याय से आरम्भ करि दूसरे अध्याय की अष्टाविंशति २८ कण्डिका पर्यन्त दर्शपूर्णमास के मन्त्र हैं तिनहों का परमेष्ठी प्राजापत्य (प्राजापति से उत्पन्न परमेष्ठी संज्ञक) ऋषि हैं। और जहां ऋषिविशेष हैं जैसे पुराघ शर्ह से पश्यत् वीति होत्रं वा विश्वावसुरित्यादिकाः (पुरा कूरस्येति अधशर्ह सदृष्टा १. २८ वीति होत्रमिति विश्वावसुदृष्टा २. ४) तहां दोनों ऋषि हैं॥ दर्शपूर्णमासमन्त्राणामेव पुनरपि वैकल्पिकानृषीनाह देवा वा प्राजापत्या इति। अथवा प्राजापति के पुत्र देवता दर्शपूर्णमासमन्त्रों के ऋषि हैं। ते देवा अकामयन्तेत्युपक्रम्य त एतं हविर्यज्ञदहसुर्यहर्षा पूर्णमासाविति श्रुतेः॥ तत्र प्रकृतित्वादादौ दर्शपूर्णमासमन्त्राः। जहां कृत्स्नाङ्गों का उपदेश करिये है वोह प्रकृति। जहां विशेषाङ्गमात्र का उपदेश है और अङ्गान्तर प्रकृति में बताए गये वोह विकृति है॥ तहां प्रकृति तीन प्रकार की है। अग्निहोत्र १ इष्टि २ और

सोम ३ इति। तहां यद्यपि कृताधान के ही दर्शपूर्णमास में अधिकार से आदि में अग्न्याधान के मन्त्र कहिने उचित थे तथापि आधान में पवमान इष्टियें करनी तिन्हें के अनन्तर आधान की असिद्धि से। और पवमान इष्टियों की दर्शपूर्णमास के विकृतत्व से सोम में भी दीक्षणीयाप्रायणीयादि में दर्शपूर्णमास के सापेक्षत्व से आदि में दर्शपूर्णमास के मन्त्र पढ़ने के लिये युक्त हैं। ते च इषे त्वादयः भगवान्चेदपुरुष आह। तत्राद्यायां कण्डिकायां पञ्चमन्त्राः॥ द्वौ अक्षरौ। तृतीयश्चतुरक्षरः॥ चतुर्थो द्विषष्ट्यक्षरः॥ पञ्चमो नवाक्षर इति॥ इषे त्वा शाखानुष्टुपिति। इषे त्वेत्यस्य यजुषः शाखादेवता देव्यनुष्टुप्छन्दः॥ विनियोगः कल्पकारोक्त इति। विनियोगः कल्पकारोक्तो वेदितव्य इति शेषः॥ इस मन्त्र का किस कर्म में विनियोग है इस से क्या करते हैं यह कल्पकार का कहा जानना चाहिये इति शेषः कर्मानुष्ठान के समय विनियोग का जानना अत्यावश्यक है क्योंकि जिस के न जानने में दोष है। और जो कि कल्पकार महर्षि कात्यायनाचार्य ने नाना शाखागत विधिवाक्यों का संगृह करि श्रौतसूत्र निर्माण किया। तहां। पूर्णशाखां छिनति शामीलीं वेषे त्व्यूर्जे त्वेति वा। छिनग्नीति वोभयोः साकांक्षत्वात् संनमयामिति वीतरे। इत्यादि विनियोग सूत्रों करि कहा है इस हेतु से यहां नहीं कहा। ततः इषे त्वेत्यस्य शाखा छेदने विनियोगः॥ एवमूर्जे त्वेति। ऐसे ही ऊर्जे त्वेत्यस्य शाखादेवता देव्यनुष्टुप्छन्दः शाखाया अनुमार्जने विनियोगः॥

† यहां से आदि ले चतुर्थीध्याय के नवमे खण्ड पर्यन्त का अर्थ मन्त्र-मन्त्र की आदि में कटि कर शेष पीछे कहा जायगा

हरिः ओम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

श्री शुक्लयजुःसंहिताविवस्वदृष्टा  
ॐ पञ्चात्मकं द्विरूपं च सार्धैर्बहुरूपकम्  
स्थानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः १  
तत्रादौ

दशोपनिषत्समन्त्राः परमेष्ठी प्राजापत्यदृष्टा देवदृष्टा वा

प्रथमोऽध्यायः १

प्रथमोऽनुवाकः १

इ॒ये त्वे॒र्जे त्वा वा॒यव॑स्य दे॒वो वः॑ सवि॒ता प्रार्पि॑यतु अ॒ष्टुत॑  
भा॒य क॑र्मणः॒ आप्या॑यध्वम॒घ्न्या इन्द्रा॑य भा॒गं प्र॑जावती॒र  
नमी॑वा अ॒यक्ष्मा॑ मा व॒ स्तेन॑ ई॒शत॑ मा॒घशर्द॑सो ध्रु॒वा  
स्मि॒नोय॑तो स्या॒त ब॒ह्वीर्य॑ज॒मान॑स्य प॒शून्पा॑हि ॥१॥

इति संहितायां प्रथमोऽनुवाकः १

इ॒ये त्वा॑ ॥१॥ ऊ॒र्जे त्वा॑ ॥२॥ वा॒यव॑स्य ॥३॥ दे॒वो वः॑ सवि॒ता  
प्रार्पि॑यतु अ॒ष्टुत॑भा॒य क॑र्मणः॒ आप्या॑यध्वम॒घ्न्या इन्द्रा॑य भा॒गं  
प्र॑जावती॒र नमी॑वा अ॒यक्ष्मा॑ मा व॒ स्तेन॑ ई॒शत॑ मा॒घशर्द॑सो ध्रु॒वा  
स्मि॒नोय॑तो स्या॒त ब॒ह्वीः ॥४॥ य॒ज॒मान॑स्य प॒शून्पा॑हि ॥५॥ १॥

इति मन्त्रपाठः

हरिः श्रोम्

ओं ई नमो भगवते यान्तवल्क्याय

राज्ञा गिरिप्रसादेन श्रीविदार्थप्रदीपके

शारवाद्याज्यग्रहान्तोऽयं वर्ण्यतेऽध्याय आदिमः॥१॥

प्रतिपदा में दर्शयाग करने की इच्छा रखता यजमान अमावास्या में प्रातःसमय का अग्निहोत्र होमिके दर्शयाग के अर्थ कात्यायन मुनिप्रणीत श्रौत्रसूत्र अध्याय २ काण्डी १ सूत्र ३ में कहे हुए मार्गने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेधानास्तन्व पुषेम मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम इति मन्त्र में अग्निश्रेणों में समिदाधानरूप अन्वाधान करिके वत्सापाकरण करे ॥ दर्शयाग में तीनि हवियें हैं। अष्ट कपालों में पाक किया हुआ अग्निदेवताकश्रोदन इन्द्रदेवताक दधि इन्द्रदेवताक पय इति तहां प्रतिपदा में दधि होमने के लिये तिस की निष्पत्तिके अर्थ अमावास्या की रात्रि में गौएँ दोहनी चाहियें। तिन्हों के दोहने के अर्थ प्रातः लौकिकदोहन के ऊपर अपनी माताश्रेणों के साथ चरते वत्साश्रेणों को तिन माताश्रेणों से पलाशशारवा करि पृथक् करना है। तिस के अर्थ पलाशशारवाछेदन है। गायत्री में पक्षिरूप धारण करिके जब कि सोमबल्लि का आहरण किया तब सोमबल्लि का पत्र (फला) वा गायत्री का पार्ण (पक्ष) भूमिमें गिरा तिस से पलाश हुआ यह श्रुति शतपथब्राह्मण काण्ड १ अध्याय ० ब्राह्मण १ काण्डी १ तथा अध्या ०८ ब्रा ०२ का ०१० में

पलाश का प्राशस्त्य और ब्रह्मत्व कहा है तिस हेतु पलाश-  
शारवा छेदन है ॥

अथ मन्त्रः ॥ इषे त्वा । इषे त्वेति दैव्युनुष्टुप्छन्दः  
परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषिर्देवा वा प्राजापत्याः शारवादेवता य-  
लाशशारवाछेदने विनियोगः । तदुक्तं कात्या० ४.२.१ चतुर्द-  
शी कि जिस में चन्द्रमा उदय न हो वा अमावास्या में पलाश-  
वृक्ष वा शमीवृक्ष से इषे त्वेति मन्त्र वा ऊर्जे त्वेति मन्त्र से शा-  
रवाछेदन करे ॥ इति सूत्रार्थः ॥ ॥ अथ मन्त्रार्थः ॥ क्रियाप-  
दमध्याहारेण । हे शारवे वृष्टि के अर्थ तुम्हें छेदन करता हूँ (वा-  
ञ्छा की जाती है) सर्वों से धान्यनिधिति के अर्थ बोह इष्ट । श्रुति  
करि वृष्टि कही गई चृष्ट्ये तदाह यदाहेषे त्वेति श्रुतेः शत० १.  
७.१.२ । का० ४.२.२.३ पलाशशारवा वा शमीशारवा की यहां  
विकल्पिता । तिस के छेदन में इषे त्वेर्जे त्वेति दोनों मन्त्रों का  
विकल्प है । तिन्हों में क्रियापद के आकांक्षत्व से अर्थावबोध के  
लिये छिनत्नीतिपद अध्याहर्तव्य है इत्येकः पक्षः । इषे त्वेति  
छेदनार्थो मन्त्रः । ऊर्जे त्वेति संनमनार्थः । संनमन (ऋजूकरण-  
शारवामलधूल्यादि का दूर करना यह पक्षान्तर है) अर्थात् यह  
कर्म काण्वशारवापाठाश्रयों का है परन्तु माध्यन्दिनीय पाठाश्रय  
लोग दोनों मन्त्रों से विकल्पेन शारवाछेदन करते हैं ॥ इति मन्त्र-  
ार्थः ॥ ऊर्जे त्वा । ऋषिछन्द देवताविनियोगश्च पूर्ववत् ॥ मन्त्रा-  
र्थस्तु । हे शारवे ऊर्ज (बल यद्वा प्राणन) के अर्थ तुम्हें छेदन क-



रता हूं वा संनमन करता हूं। ऊर्जति (सब मनुष्य पशु आदिकों को ब-  
ल्यति पानादि करि हृदयशरीर करती। यद्वा प्राणयति (प्रकर्षण  
चेष्टा करती। इन दोनों व्युत्पत्तिओं से वृष्टिगत जलात्मक र-  
स ऊर्ज्यब्द करि कहा। तिस रस के अर्थ तुम्हें छेदन करता हूं।  
यौ वृष्ट्यादूर्गसे जायते तस्मै तदाहेति श्रुतेः १०. ७. १०. २०। इन  
दोनों मन्त्रों के पाठसे अध्वर्यु दूष्यमाण अन्न और बलकर  
आज्यक्षीरादि रस को यजमान में संपादन करता है। इषे त्वो-  
र्जे त्वेत्याहेशमेवोर्जे यजमाने दधातीति श्रुतेः तैत्तिरीय ब्राह्म-  
ण काण्ड ३. प्रपाठ २. अनुवाक १॥ का. ०४. २. ७. छे ६ गोओं  
के साथ से छेओ ६ वत्साओं को पुथक् करि प्रतिवत्स को वायव स्थं-  
ति मन्त्र से शारवा करि उपस्पर्श करें। इति सूत्रार्थः॥ देवी बृहती छन्दो  
वायुदेवता। मन्त्रार्थस्तु। हे वत्साओ तुम माताओं के स-  
काश से अन्यत्र चलनहारे होओ। माताओं के साथ चलने  
से साथ समय दोह न मिलेगा यह अभिप्राय है। यद्वा वायुसा-  
दृश्य से वत्सों का वायुत्व है। जैसे पादप्रक्षालन मलमूत्रादि से  
अशुद्ध हृद् भूमि को शोषण करि वायु पवित्र करता है ऐसे  
वत्सा भी अनुलेपन भूतगोमयादिदान से भूमि को पवित्र क-  
रते हैं। अथवा मनुष्यों की जैसे अपने निवास के लिये गृह-  
निर्माण सामर्थ्य है ऐसे पशुओं की तिस के न होने निरावरण  
अन्तरिक्ष में चरने से अन्तरिक्ष ही पशुओं का देवता तिस अ-  
न्तरिक्ष का वायु अधिपति। और सौ वायु अपने अवयव ऐसे

पशुओं को पालन करता है यह पशुओं का वायुरूपत्व है। तैसे पालन के अर्थ पशुओं को वायु के अर्थ समर्पण करने के लिये वायुरूपत्व को संपादन करि वायवस्येति मन्त्र प्रवर्त हुआ। तदुक्तं निगिरिणा। वायव स्येत्याह वायुर्वाऽन्तरिक्षस्याध्यक्षोऽन्तरिक्षदेवत्याः खलुपशवो वायवऽएवैतान्परिददातीति तै० ब्रा० ३० का० २० अ० १० अ०। यद्वा तृणभक्षण के अर्थ दिवस में तिस-तिस आरण्य में चरि करि सायंकाल में वायुवेग करि यजमान के घर में समागमन के अर्थ पशुओं को प्रवर्त करने के लिये वायुरूपत्व कहा गया ॥ का० ४० २० ५० १० वत्साओं की माता जे ह गौएँ हैं तिन्हों में से एक गौ को पृथक् करिके देवा व इति मन्त्रेण शारवा करि उपस्पर्श करै। तैसा करते गोसबन्धि दधिरूप हवि इन्द्र वा महेन्द्र का होता है ॥ इति सू०॥ देवो व इति इन्द्रदेवत्यं यजुः॥ हे गौओ सविता (स्वस्वव्यापार में प्रेरणोद्धार) देवः (द्योतमानः परमेश्वरः) तुम्हें प्रभूत तृणोपेत वन को प्राप्त करै। किमर्थ कि श्रेष्ठतम कर्म के अर्थ (लोक में चारि प्रकार का कर्म है, अप्रशस्त प्रशस्त श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम। लोक विरुद्ध बधबन्धचौर्यादिक अप्रशस्त ॥ १॥ लोक करि श्लाघनीय बन्धुवर्गपोषणादिक प्रशस्त ॥ २॥ स्मृत्युक्त वापीकूपतडागादिक श्रेष्ठ ॥ ३॥ वेदोक्त यज्ञरूप श्रेष्ठतम है तत्तत्क्षणं ॥ ४॥ यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्मेति श्रुतेः १०७० १०५० हे अघ्न्याः (गावः गोबध के उपपातकरूप होने से अनमार्ते योग्याः) तुम इन्द्र के अर्थ भाग (इ



न्द्र की उद्देश करि संपादयिष्यमाण हवि के हेतुरूपक्षीर) की  
 आप्यायध्वम् (समन्तात् बटाओ) सब गौशों में क्षीर करों। तुम्हें  
 अपहरण के लिये स्तेन (चोर) समर्थ मत ढूँजियें। अधशांस (अ-  
 क्षणादि तीव्रपाप करि घातक व्याघ्रादि) भी तुम्हारे की हिंसक  
 मत ढूँजियें। कैसी हो तुम कि प्रजावती: (बह्वपत्या:॥ अनमीवा:  
 (अमीवा:० व्याधि से नहीं है जिन्हें के ता: कृमिदुष्टत्वादिस्वल्प-  
 रोगरहिता:०) अयक्ष्मा: (यक्ष्मा: रोगराज:० प्रबलरोगरहिता:॥  
 किं च तुम अपने स्वामी यजमान के यहां बहुविधा होओ॥  
 का० ४० २० ११० अग्न्यागार (आहवनीयागार वा गार्हपत्यागार)  
 के पूर्वभाग में यजमानस्य पशूनिनि तिस शाखा को खुरसे॥  
 याजुषी बृहती शाखा देवत्या। हे यलाशाशाखे तू उन्नतप्रदेश में  
 स्थित हो प्रतीक्षा करती हुई यजमान के पशुओं की अरण्य में  
 चरते हुए चोर व्याघ्रादिभय से रक्षा कर। आशय यह है कि  
 शाखा करि रक्षा की हुई गौएँ निरुपद्रव पूर्वक सायं समय  
 भले प्रकार घर को लौटेंगी॥ १॥ प्रथमा कण्डिका के मन्त्र  
 पूर्ण लिखे गये आगे की कण्डिकाओं के आर्वल पर आद्य-  
 न्त के अक्षरों की समस्या से लिखे जावेंगे॥ यथा॥ इषे त्वा-  
 इ-त्वा। ऊर्जे त्वा- ऊ-त्वा। वायव स्थ- वा-स्थ। दे-ह्वी:॥ य-  
 हि॥ और तहां मन्त्रों के पृथक् करने के लिये अकारादि अक्षर दि-  
 ये जावेंगे। यथा॥ इ-त्वा। अ० क-त्वा। इ० वा-स्थ। उ० दे-ह्वी:॥ ऋ०  
 य-हि। ल०॥ १॥ ॥ इति श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये प्रथमोऽनुवाकः १



धाम (उत्तम बहुक्षीरधारण सामर्थ्यरूपतेज) से हे उरवे तू हटा हो  
तेरे हट होने से क्षीर न गिरेगा नहो कि तेरे भग्न होने से छिद्र क-  
रि दुग्ध गिरे। किं च हे उरवे कुटिला (टेटी) मत हो (जो उरवा कुटिला  
होंवे तोटेटे मुख होने से तत्स्थ क्षीर गिरे) इस कारण क्षीरधारण के  
लिये दारुण और अकौटिल्य प्रार्थना किया। किं च तेरा यज्ञपति  
(सम्बन्धी-यजमान) कुटिल नहो क्यों कि त्वन्निष्ठक्षीरस्कन्दन  
करि अनुष्ठानविघ्न में ही यजमान का कौटिल्य है और सो तेरे  
दारुण और अकौटिल्य से न होगा यह प्रार्थना है ॥ २ ॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सह  
संधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण  
शतधारेण सुध्वा कामधुक्षः ॥ ३ ॥ +

का० ४० २० २१० वसोः पवित्रमिति हाँडी के मुख पर प्रागग्र वा  
उत्तराग्र कुशाओं का पवित्रा शारवा से खोलि वा शारवा वद्ध  
ही स्थापन करें ॥ वायुदेवत्यं यजुः ॥ हे शारवापवित्र वसु (इन्द्र-  
देवता के निवास हेतु पय) का शोधक (पवित्र) तू है। पवित्रा करि  
ढकने से दुग्ध सहित स्थाली में गिरते नृणपर्णादिकों के बध्यमा-  
नत्व से पवित्रा का क्षीरशोधकत्व है। कैसा पवित्रा कि शतसंख्या  
धारण जिसमें। तथा सहस्र धारण। सूक्ष्मों पवित्र छिद्रों से स्था-  
ली में गिरती क्षीरधाराओं के शतसहस्रसंख्याक होने से शोध-  
कत्व है वसोः पवित्रमिति द्विरुक्तिः + ॥ का० ४० २० २३० देवस्त्वेति  
स्थाली में आसिच्यमान पय विषे अध्वर्यु जपे ॥ साम्नी त्रिष्टुप्

+ व-मू। अ० दे-चा। इ०। का-धः। उ० ॥ ३ ॥

+ अ० अ० से भूयासमर्थं मन्यते निरु १००४२.

पयोदेवत्या। दोहन से ऊर्ध्व स्थाली में स्थितमान हेदुग्ध सविता  
(अथैक) देव पूर्वोक्तीति से वसु के शतधार पवित्रा करि तुम्हें शोभे।  
कैसे पवित्रा कि भले प्रकार पवित्र करता ॥ का० ४० २० २४ एक  
गौ के दुहने में दोग्धा की अध्वर्यु पूछे कामधुक्ष इति ॥ देवी बृ-  
हती प्रश्नदेवत्या। हे दोग्धः विद्यमान गौश्लो के मध्य कौनसी  
दुही ॥ ३॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः। इ-  
न्द्रस्यत्वा भागर्हसोमेनातनन्मि विष्णो हव्यर्ह-  
रक्ष ॥ ४॥ †

का० ४० २० २५ पूर्वोक्तप्रश्न के उत्तर में अमुकी गौ यह दोग्धा  
करि कहते सा विश्वायुरिति मन्त्र करि दोग्धा प्रति अध्वर्यु बो-  
ले ॥ जीणि गोदेवत्यानि १० देवी बृहती २० ३० देवी पङ्क्त्यो। जो गौ  
तू ने दुही और मैंने पूछी वोह विश्वायु शब्द करि जानना।  
विश्वायु (यजमान की सम्पूर्ण आयु की देने हारी है ॥ का० ४० २०  
२६० जैसे पहिली गौ पूछी ऐसे ही दूसरी तीसरी गौश्लो को दोहने  
से ऊपर में कामधुक्ष इति मन्त्र करि पूछे। और दोग्धा करि अ-  
मुकी यह उत्तर देते सा विश्वकर्मा सा विश्वधाया इन मन्त्रों से क-  
म करि आशिष कहें ॥ जो दूसरी गौ तुरु से पूछी वोह विश्व-  
कर्मा (यजमान को समस्त कर्मफल की देने हारी है ॥ जो ती-  
सरी तुरु से पूछी वोह विश्वधायाः (सब देवताओं की क्षीरदध्या-  
दि हवि के दान करि पुष्ट करने हारी वा समस्त इन्द्र देवता-

ओं को क्षीरादि हव्य पिलाने हारी हैं ॥ का० ४० २० २३० ओंटे दूध को अग्नि से उतारि मन्दोष्ण (सुहाते) में दधि जमाने के लिये प्रातः काल के होमावसिष्ठ दधि करि आतञ्चन करें (जामन-सहेजा दे ॥ यजुर्जंगती इन्द्रदेवत्या । हे दुग्ध इन्द्र के भाग को तु-  
 में सोमवल्लीरस करि दधि के लिये आतञ्चन (कठिन) करता हूं । यद्यपि यहां आतञ्चनहेतु दधिशेष है तथापि भावना करि तिस का सोमत्व सम्पादन करिये हैं । जैसे कोई पुरुष बन्धुत्व करि चाहा बन्धु होता है । और प्रातिकूल्य करि चाहा शत्रु होता है । तदुक्तं वशिष्ठेन । बन्धुत्वे भावितो बन्धुः परत्वे भावितः परः । विषामृतदृशेवेह स्थितिर्भावनिबन्धिनीति । अथवा भोज्य-  
 पदार्थ विषत्व करि भावना किया वान्ति को करता है । अमृतत्व करि भावित जीर्ण हो बलहेतु होता है । तैसे यहां दधिशेष का भावना करिके सोमत्व है ॥ का० ४० २० ३४० विष्णो हव्यमिति दोहस्थाली को जलसहिति अमृन्मयपात्र करि ठकें ॥ यजुर्गयात्री पयदेवत्या । हे विष्णो इस हवि (क्षीर) को रक्षा करि । सर्वत्र सृजन पालन और संहार में ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः अभिमानिदेवता हैं इस हेतु विष्णु को सम्बोधन करि हवि की रक्षा प्रार्थना करिये हैं ॥ ४॥

अ० ३० अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छ्रेयं तन्मे राध्यताम् । इदमुहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ५॥ +

का० २० १० ११० यजमान स्फुल्ले गार्हपत्य दक्षिणाग्निओं के अ-

न्तराल में चलिकर आहवनीय के पश्चात् समीप में पूर्वाभिमुख  
ख खडे हो आहवनीय को देवते जल को दक्षिण हस्त से स्पर्श  
करि अग्ने व्रतपते इस मन्त्र अथवा इदमहम् इस मन्त्र से स-  
त्यवदनादि नियमों को अङ्गी करै ॥ अग्ने व्रतपते आर्ची उषिण-  
क इदमहम् सामगायत्री हे अग्निदेवत्ये । हे व्रतपते (अनुष्ठेय-  
कर्म के पालक) हे अग्ने तेरी अनुज्ञा करि कर्म को करूंगा ।  
तिस कर्म करने को समर्थ होऊँ । तेरे प्रसाद से । सो मेरा कर्म  
निर्विघ्न होके फलपर्यन्त सिद्ध हो ॥ इदमहम् । में यजमान इ-  
स अनृत (मनुष्यजन्मात्मक) से निकलि कर सत्य (देवताश-  
रीर) को प्राप्त होता हूँ ॥ ॥ शीघ्रविनाशित्व से मनुष्यजन्म  
अनृत है जैसे स्वप्नगजादिक बोधमा से निवर्त हुए अनृत क-  
हिलाते हैं । बहुकालस्थायित्व से देवजन्म सत्य है जैसे जाग-  
रण गजादयः ५ । यद्वा लोक प्रसिद्धे सत्यानृते ग्राह्ये । नानृतं व-  
देदिति (नहीं कूँठ बोलें) कर्म में कूँठ बोलने के निषेध से । कूँठ  
बोलने से निकल करि सत्य बोलने को प्राप्त होता हूँ । इस  
हेतु यह सत्यवदन कमाई होने से कर्म काल में पालनी  
य है ॥ ५ ॥

कत्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति  
तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ ६ ॥

एवं सत्यवदनादिव्रत को अङ्गी करि ब्रह्मा को वरण करि के अ-  
था प्राणयन करै ॥ का० २०३०२ ब्रह्मन्नपः प्रणोष्या यह य-

१ सत्यमनुष्ठीयमान कर्मरूपिण प्रत्यक्षमिति मन्वान इदमिति विशिष्टम् ।  
५ इदमहमन्त्रतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपावर्तत इति १११०४ शतश्रुतेः ।

अग्निर्वै देवानां व्रतपतिरिति शत० १०१०१

+ क-क्ति।अ०।क-म।दे०॥६॥



जमान ब्रह्मा को पूछता है ॥ का० २०  
 ध्वय त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानोऽस्तु १०८ प्रणय यज्ञं देवता च  
 तां यत्र लोकस्तत्रेवं यज्ञं यजमानं च धीः सप्तऋषीणां सुक-  
 त्या पठिकर ओम् प्रणय यह ऊँचे स्वर से ॥ यह धीरे-धीरे ब्र-  
 ध्वर्यु सुनें ॥ का २० ३० ३० फिरि अध्वर्यु चमस को प्रज्ञा करे कि जैसे अ-  
 य से उत्तरदिशा में वेदि के बाहिर दर्भों पर प्रणय लेकर आहवनी-  
 स्त्वा पुनर्होति मन्त्र करि सम्प्रति (सीधेसे) स्थापयिता चमस को द-  
 त्रिष्टुप् प्रजापतिदेवत्या । यहां मन्त्र को प्रयुक्त करता पुन करे ॥ साम्नी  
 र्यु यज्ञारम्भकर्म में अपना कर्तृत्व त्यागि कर प्रजापति हस्ता अध-  
 र्जकर्तृत्व प्रश्नोत्तररूप मन्त्रवाक्यों से प्रतिपादन करता प्रति का य-  
 णीता (जल) के धारक है पात्र तुम्हें कौन पुरुष आहवनीय है । प्र-  
 उत्तरभाग में स्थापन करता है इति प्रश्नः । सब वेदों में जगन्नि-  
 वाहकत्व से प्रसिद्ध जो प्रजापति है सोही परमेश्वर है पात्र तु-  
 में स्थापन करता है इति उत्तरम् । पुनरपि किस प्रयोजन के  
 लिये तुम्हें स्था० इति प्रश्नः । तिस प्रजापति के प्रीत्यर्थ तुम्हें  
 स्था० इत्युत्तरम् ॥ परित्तरण करि दो-दो पात्रों को रखि श्रू-  
 र्ष और अग्निहोत्रहवणी को लेवें । का० २० ३० १०० कर्मणे वामि-  
 ति श्रूर्पाग्निहोत्रहवणी का अध्वर्यु आदान करे ॥ प्राजापत्या  
 गायत्री सुक्श्रूर्पा देवते । हे अग्निहोत्रहवणी हे श्रूर्य तुम दो-  
 नों को कर्म के अर्थ में ग्रहण करता हूं इति शेषः । और सूचित  
 कर्म के अर्थ तुम दोनों को मैं ग्रहण करता हूं ॥ शकट में अ-

† सर्वे कर्मणि परमेश्वर प्रीत्यर्थमनुष्ठेयानीति भगवद्गीतास्वर्जुन प्रति भगवतोक्तम् अ० गी० ४०  
 २४ ब्रह्मार्पणं ब्रह्मविद्ब्रह्माग्निं ब्रह्मणा हुतम् । ब्रह्मेव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ ४० ॥  
 यत्करोषि यदश्नासि यत्तुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्थम् ॥ १८ ॥ ५६  
 सर्वे कर्मण्यपि सदा कुर्वन्ते मध्यमाश्रयः । मन्त्रसाहायवाप्नोति शम्भतपदमव्ययम् ॥





ङोपेत शकट के धूर (बलीवर्दे वहन योग्य प्रदेश) को धूरसीति मन्त्र करि स्पर्श करें ॥ धूर्देवत्यं यजुः ॥ ब्रीहिरूप हवि के धारक शकट के दोनों बलीवर्दों के (गाता) वहनप्रदेशों में कोड़ हिंसक अग्नि शास्त्रदृष्ट है तिसै प्रार्थना करिये है ॥ हे वहनै तू धूः (हिंसक) है जो कि धूः है इस हेतु हिंसा करते पापी को विनाश करि किं च जो राक्षसादि यागविघ्न करि हमारी हिंसा करने को उद्युक्त है तिसै नाश करि और जिस आलस्यादिरूपवैरि को हम अनुष्ठान करनेहारे हिंसा करने को उद्दिष्ट हैं तिसै भी विनाश ॥ शकटस्थिताग्न्यतिक्रमणनिमित्त अपराध दूर करने को अग्न्याधारभूता शकट की धूः इस मन्त्र करि स्पर्श करिये है ॥ का० २३१४ देवानामित्यादि हार्षोदित्यन्त मन्त्र करि शकट के दीर्घकाष्ठ ईषाति सके अग्न का भूमिस्पर्श नही इस लिये तिस के आधारत्व करि स्थापित उपस्तम्भनकाष्ठ के पश्चाद्भाग में तिस ईषा ( ) को स्पर्श करें ॥ ब्राह्मणुष्टु शकटदेवत्या ॥ हे शकट तू देवताओं का सम्बन्धि है ॥ कैसा कि अतिशयेन ब्रीहिरूपहवि का प्रापक ॥ तथा अतिशयेन शुद्ध वा दृढता के अर्थ चर्मादि से अतिशयेन वैष्टित ॥ अतिशयेन ब्रीहिओं से पूरित ॥ देवताओं का अतिशयेन धारा ॥ देवताओं का अतिशयेन आह्वान करनेहार ॥ ब्रीहिओं से पूर्ण शकट को देखि देवता आह्वान करते ही शीघ्र आते हैं ॥ ८॥

अहुतमसि हविर्धानं दृष्ट्वैव मा ह्वामी ते यज्ञ-  
पतिह्वामीन् । विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायाप-

हृत् रक्षो यद्धन्ताम्यञ्च ॥४॥+

पूर्वमन्त्रशेष ॥ अद्भुत (अकुटिल) है अर्थात् आरोहण में भङ्ग होने की भय नहीं है। ब्रीहिरूप हवि का धारक पोषक है। इस हेतु दृढ ह्रस्व मा ह्वार्मा ते यत्तपतिर्हवीषीदिति पूर्ववद्व्यारब्धम् काण्डीय ॥ का० २३१५० पीछे फिरिके विष्णुस्त्वेति दक्षिण चक्र (पहिया) पर चढ़े ॥ यजुर्गायत्री शकटदेवत्या । हे शकट विष्णु (व्यापक-यज्ञ) तुम्हें चरण उठाकर चढ़े भाव यह है कि मैं चढ़ने को समर्थ नहीं हूँ ॥ का० २३१६० उरु बातायेति हवियों (शकट में भरे हुए धान्य वा यवों) को देखें ॥ देवीपङ्क्तिर्हविष्याः ॥ हे शकट अपने अन्तर्वर्ति ब्रीहिओं में वायुसंचार कं अर्थ विस्तीर्ण हो। अर्थात् शकट स्थित ब्रीहिओं के तृणदिकों करि आच्छादित होने से संकोच में वायुप्रवेशन होने से आच्छादन को दूर करि जैसे वायु प्रवेश करे तैसे संकोच को त्यागि। वायुरूप प्राणप्रवेश से मन्त्र करि हवि को सप्राण करिये है। किं च वायुप्रवेशरहित सब वस्तु वरुणदेवत्य होती है। और वरुण बन्धकारित्व से यज्ञनिरोधक तिस की निवृत्त्यर्थ यह मन्त्र है ॥ का० २३१७० १७० १८० अपहतमिति ब्रीहिओं से अन्यत्र तृणदिक जो हैं तिन्हें निकालें और तृणदिकों के अभाव में ब्रीहिओं को ही स्पर्श करें ॥ यजुर्गायत्री राक्षसम् । राक्षस (यज्ञविधातक-तृणदिक) निकाले ॥ का० २३१८० यद्धन्तामिति पञ्चाङ्गुलियुक्त हस्त करि ब्रीहिओं का ग्रहण करें ॥ देवीपङ्क्तिर्हविष्याः ॥ पञ्चसंख्याका अङ्गुलियें ब्रीहि

+ पूर्वकण्डिकाया मन्त्राण्युक्तानि

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषाणो  
हस्ताभ्याम् । अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां  
जुष्टं गृह्णामि ॥ १० ॥

का० २३२०-२२० देवस्य त्वेति अग्निहोत्रहवणि में तीनि मुष्टि  
मन्त्रपूर्वक चौथी चुपके से डालें. एवं अग्नीषोमीय को यथा  
देवता औरों को ॥ देवस्य त्वा प्राजापत्या बृहती सवि रुद्रदेवत्या  
सर्वत्र। अग्नये जुष्टम् प्राजापत्या गायत्री लिङ्गोक्तदेवत्या। अ-  
ग्नीषोमाभ्याम् याजुषी पङ्क्तिः लिङ्गोक्तदेवत्या। हे हविः सविता  
देवता का प्रेरित में अग्नि के अर्थ तुम्हें प्यारे को ग्रहण करता  
हूँ। और अग्नीषोम व्यासक्तदेवताओं के अर्थ तुम्हें प्यारा कि-  
न्हीं करि कि अश्विनीकुमारों के बाहुओं (अंस मणि बन्ध के  
मध्यभाग दण्डाकार) और पूषा के हस्तों (पञ्चाङ्गुलियुक्त अ-  
ग्रभाग) करि। क्यों कि अश्विनीकुमार देवताओं के अध्वर्यु हैं  
और पूषा देवताओं का भागधुक इस हेतु ग्रहणसाधन में अ-  
पनी बाहुओं प्रति अश्विनीकुमार के बाहुओं की भावना कर-  
ना और हस्तों में पूषा के हस्तों की। अर्थात् सर्वात्मक अग्नि  
के हवि को तादृश मनुष्य कैसे ग्रहण करने को समर्थ है  
इसलिये सविता से अनुज्ञात अश्विनीकुमारों के बाहुओं पूषा  
के हाथों से ग्रहण करता हूँ। किं च सत्यं देवा अनृतं मनुष्या  
इति १०१०२१७ श्रुतेः देवताओं के सत्यरूपत्व से तिन्हीं के

स्मरणपूर्वक हवि को ग्रहण करना फलपर्यवसायित्व से सत्य होता है। और देवतास्मरण के अभाव में मनुष्यों के अनृतरूपत्व से सो किया अनुष्ठान निःफलत्व से अनृत होता है यह देवतास्मरण का अभिप्राय है। हवि ग्रहण करते अध्वर्यु को देवता से वन करते हैं कि मेरा नाम ग्रहण करेगा। विन नाम लिये हवि ग्रहण करते में तिन्हें का कलह होवे यह कि इंसें मेरे अर्थ लिया। तिस कलह के निवृत्त्यर्थ अग्नये जुष्टम् अग्नीषोमाभ्यां जुष्टम् इस देवतानिर्देशपूर्वक हविर्ग्रहण है इत्यभिप्रायः ॥१०॥

भूताय त्वानारातये स्वरुभिविर्येषं दृढं हन्तां दुर्योः  
पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वमि पृथिव्यास्त्वानाभौ साद-  
याम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यर्धरक्ष ॥११॥

का० २० ३० २३ भूतायत्वेति शकट में जो परिशिष्ट हवि तिसें स्पर्श करे ॥ प्राजापत्या गायत्री हविदेवत्या ॥ हे शकटावस्थित ब्रीहिशेष भूत (भुवन) यागान्तर ब्राह्मणभोजन और फिरि भी सद्भाव के अर्थ तुम्हें शेष छोड़ना हूं इति शेषः। कुछ अराति (अदांन) के अर्थ नहीं ॥ का० २० ३० २४ स्वरिति पूर्वाभिमुख हो यज्ञभूमि को देखे यजुर्गायत्री सूर्यदेवत्या में स्वः (यज्ञ) को देखता हूं ॥ दृढं हन्तामिति शकट से उतरे ॥ प्राजापत्या गायत्री गृहाः देवताः पृथिवी में वर्तमानाः दुर्योः (गृहाः) दृढाः हों। हवि लेकर उतरने अध्वर्यु के भार करि गृहक्षोम की सम्भावना है सो इस मन्त्र से दूर करिये है ॥ का० २० ३० २६ उर्वन्तरिक्षमिति उत्तरदेश प्र-

॥ यज्ञो वै स्वर्गहर्देवाः सूर्य इति १० २० २३ अंतिः ॥

ति चले ॥ व्याख्यातम् काण्डी ७ ॥ का. २. ३. २७. गार्हपत्य वा  
आहवनीय के पश्चात् कि जिस में पाक करे तहा शर्पस्थ हवि-  
यों को पृथिव्यास्त्वेति स्थापन करे ॥ साम्नी पङ्क्तिः हविदेवत्या। हे  
हविः पृथिवि के नाभि (मध्य) में तुम्हें स्थापन करता हूँ। जैसे सो-  
ते हुए बालक पुत्र को माता अपनी गोदी में स्थापन करती है ऐ-  
से इस हवि को अदिति (अखण्डिता-पृथिवी) के अङ्क में स्थाप-  
न करता हूँ। हे अग्ने अपने समीप में इस स्थापित हव्य को तू  
रक्षा करि। पुत्र ऐसे सोते को बाधकों से पालि ॥ ११ ॥

अ. ४. पवित्रे स्थो वैष्णव्यो सवितुर्वः प्रसवं उत्पुनाम्य-  
छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। देवीरापोऽ-  
अग्ने गुवोऽअग्ने पुवोऽग्रं दुममद्य यज्ञं नयता-  
ग्रे यज्ञपतिर्हं सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥ +

का. २. ३. ३२. दो वा तीन कुशा के अन्तर्गर्भ पत्र साग्र पवि-  
त्रे स्थ इति क्षुरिकास्थानीय कुशाओं से छेदें ॥ देवी जगती  
लिङ्गोक्त देवत्या। हे पवित्रे (शोधके कुशाद्वयरूपे) तुम वैष्ण-  
व्यो (यज्ञसम्बन्धिनी +) हो ॥ का. २. ३. ३३. हविग्रहण में ज-  
ल करि तिन्हों से उत्पवन करे सवितुर्व इति ॥ प्राजापत्याय-  
ङ्किरापो देवता। सबों के प्रेरक की आज्ञा से हे जल तुम्हें उ-  
त्पवन करता हूँ किस करि कि अछिद्र पवित्र (शोधक वायु-  
रूप) करि के। सूर्य की रश्मियों करिके उत्पवन करता हूँ।  
वायु और सूर्य रश्मियों का पाद प्रक्षालनादि करि उपहतभू-

+ यज्ञो वै विष्णुपतिर्यस्य इति १. १.  
३. १. श्रुतिः ॥

+ प-व्यो। अ. १. स-भिः। द. १. दे-ये। उ. १. प्रो-स्थ। अ. १. अ-मिलु। आ. १. दे-मि। ई. १. १. १. ३.  
३. यो वा अयं पवत एषोऽछिद्रं पवित्रमिति १. १. ३. ६. श्रुतिः ॥

मिका शुद्धि हेतुत्व प्रसिद्ध है ॥ का० २० ३० ३५० उत्पूता जल  
करि पूरिता अग्निहोत्रहवणि को सव्यहस्त में स्थापन करिके  
देवीराप इति दक्षिणहस्त करि ऊपर को चलावै ॥ देवीराप इ-  
त्यारभ्य वृत्रतूर्य इत्यन्तस्य यजुषः आपो देवता । हे देवीः (द्यो-  
तनात्मिकाः) आपः तुम आज के दिन में इस प्रवर्तमान यज्ञ  
को अग्ने नयतः (निर्विघ्न समाप्त करें) । कैसी हों जल कि पुरतः  
निम्न देश प्रति गमनशीलाः । तथा अग्ने पुवः (जहां पूर्वभाग में  
चलती हों तहां अपहतिनिवारण करिके शोधनशीलाः । य-  
द्वा अग्ने पुवः (प्रथम सोमरस की पान करतीं) । किं च यज्ञप-  
ति (यजमान) को फलभोग के अर्थ प्रेरो कैसे यजमान कि भ-  
ले प्रकार से दक्षिणादानादि करि यज्ञ को पुष्ट करता तिस यज्ञ  
के पालक को तथा देवयुवम् (देवताओं) को यज्ञादि करि मि-  
श्री करते वा चाहते को ॥ १२॥

युष्मा इन्द्रो वृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं  
वृत्रतूर्ये प्रोक्षितास्थः अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्य गी-  
षोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि देव्याय कर्मणे शुभ-  
ध्वं देवयज्याये यदो शुद्धाः पराजघुरिदं वस्तु  
क्षुन्धामि ॥ १३॥ + पूर्वकण्डिकायां मन्त्राणि

पूर्वमन्त्रशेषः । हे आपः इन्द्रो देवः वृत्रबधनिमित्तभूत में  
तुम्हें अपने सहाय होने को प्रार्थना करता हुआ और तुम्हीं  
उसके सहायक हुए ॥ का० २० ३० ३६० प्रोक्षिता स्थिति तिन्हों का



हाथ से प्रोक्षण करें ॥ देवी बृहती आपो देवता ॥ हे आपः तुम प्रोक्षिता हो ॥ असंस्कृता अन्यसंस्कारक्षमा नहीं होती ॥ का० २. ३. ३७. ३८. हवि को अग्नयेत्वा. अग्नीषोमाभ्यां त्वा. और यथा देवत अन्यहवियों को प्रोक्षण करें ॥ हे लिङ्गोक्ते याजुषी बृहती. याजुषी त्रिष्टुप् ॥ हे हवि अग्नि के अर्थ तुम्हारे को प्रोक्षण करता हूँ ॥ अग्नीषोम ॥ का० २. ३. ३६. कृष्णाजिनो लूरवत्सादि पात्रों को दैव्यायेति प्रोक्षण करें ॥ पात्रदेवत्यं यजुः ॥ हे यज्ञपात्रो तुम शुद्ध होओ किमर्थम् कि दैव्य (देवतासम्बन्धि) कर्म के अर्थ ॥ तदेव कर्म विशिष्यते देवयज्या (देवसम्बन्धिनि यागक्रिया दर्शयित्वा) के अर्थ ॥ किं च नीचजाति तक्षादिकों ने तुम्हारे जिस अङ्ग को पीड़ा दी है (छेदनतक्षणदिकाल में अपने अशुद्ध हाथों से स्पर्श किया ॥ तिस तुम्हारे अङ्ग को प्रोक्षण करिके शुद्ध करता हूँ ॥ १३ ॥

अ० ५. शर्मास्यवधूतं रक्षोऽवधूता आरातयोऽदित्यस्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेतु ॥ अद्रिसि बानस्यत्योग्रावांसि ॥ पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेतु ॥ १४ ॥ †

का० २. ४. १. शर्मासीति कृष्णाजिन को हाथ से ग्रहण करें ॥ दैव्यनुष्टुप् ॥ कृष्णाजिनदेवत्या ॥ हे कृष्णाजिन (काले हिरण के चर्म) तू उलूखल के धारणार्थ शर्म (सुरवहेतु) है ॥ का० २. ४. २. पात्रों से परे कृष्णाजिन को ढाँड़े अवधूतमिति ॥ आसुर्यनुष्टुप् ॥ राक्षसम् ॥ कृष्णाजिन गुप्त राक्षस ढाँड़े से भूमि में गिराये ऐसे

† श-सि। अ० ५-यः। इ० अ-तु। उ० अ-त्य॥ क० ग्रा-तु। ल० ॥ १४ ॥

† अजिनस्य चर्ममिति मानुषं नाम शर्ममिति दैव्यं नाम।

अरातयः भी गिरये ॥ का० २४०३० अदित्यास्त्वगिति कृष्णाजि-  
न की दैनों हाथों से प्रत्यग्गीव विछावै ॥ आसुर्यनुष्टुप् कृष्णा-  
जिनम् । हे कृष्णाजिन तू अदिति (भूमिदेवता) की त्वग्रूप है  
तिस हेतु भूमि तुम्हें जानें कि यह मेरी त्वचा है ॥ का० २४०४०  
५० वामहस्त से न छूटे कृष्णाजिन पर दक्षिणहस्त से अदिरसि  
अथवा ग्रावासि इति उलूरवल को स्थापन करें । विकल्पितमन्त्रों  
में प्रतित्वेति शेष जोड़ें ॥ हे उलूलदेवत्ये यजुरनुष्टुप् आसुरी  
गायत्री । हे उलूरवल यद्यपि तू दारुमय है तथापि दृढत्व से पाशा-  
ण है । कैसा कि पृथुबुधः (मुसलघातोपद्रव से चाञ्चल्यरहित-  
स्थूलमूलः) हे उलूरवल तैसा तू ग्रावा (दारुण पाषाणसदृश)  
है । नीचे विछाई हुई कृष्णाजिनरूपा भूमि की जो त्वचा है सो  
तुम्हें अपना करिके जानें ॥ १४ ॥

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृ-  
हामि बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यो  
हविः शमीध सुशमि शमीध । हविःकुदेहि हवि-  
कुदेहि ॥ १५ ॥ †

का० २४०६० अग्नेस्तनूरिति ओरवली में छरने केलिये हवि डा-  
लें ॥ आर्ची उषाकू हविदेवत्या । हे हविः तू आहवनीयाग्निका  
शरीर है । जो कि अग्नि डालते ही हवि अग्नि हो जाता है इस  
कारण हवि अग्नि का शरीर है । कैसा हवि कि यजमान की बा-  
णी का खोलने वाला । अथां प्रणयनकाल में खोलने वाला ॥ अ-

† अ-मि।अ०।३०-त्यः।६०।स-ध।उ०।ह-हि।अ०॥१५॥

पुरं यज्ञो देवेभ्यु तृष्टः कृष्णामृगो भूत्वागमत्तदा देवा ज्ञात्वा नदीयां त्वचमुत्क्षिप्य जग-  
द्भुस्तस्माच्चर्ममसि स्तरणमित्यभिप्रायः श्रुतावाग्नातः १०१४११।



पां प्रणयनकाल में मौनहुई यजमानवाणी का हवि आवपनकाल में विसर्ग होता है। तिस हेतु हवि वाणी का खोलने वाला है। इस हेतु देवताओं की तृप्ति के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता (उलूखल में डालता) हूँ ॥ का० २४० ११० बृहद्भावेति मुसल को ग्रहण करें ॥ आसुरी जगती मुसल दे० ॥ हे मुसल तू यद्यपि दानरुमय है तथापि दृढता करिके पाषाण सदृश है। तथा दीर्घत्व करि बड़ा है ॥ का० २४० १२० स इदमिति मुसल को उलूखल में स्थापन करें ॥ मुसलदेवत्वं यजुः ॥ हे मुसल तू देवताओं (अग्न्यादिकों) के उपकारार्थ इस हवि (व्रीहिरूप) की शमन (भक्षणविरोधि) तुषों के दूर करने में शान्त) करि। तस्मैव पदस्यव्याख्यानम्। भले प्रकार शान्त जैसे तैसे शमन करि। द्विविधा शान्ति है वाह्यतुषापनचनाद्या सो पहिले अवयात से होती है। और अन्तः स्थित मालिन्य के अपनयन से दूसरी फलीकरण करिके होती है। तिस द्विविध तण्डुलसंस्कार को करि इत्यर्थः ॥ का० २४० १३० हविष्कृदेहंति हवि करने वाली (वाले) यजमान की पत्नी वा अग्नीध को अध्वर्यु तीन बार कहि कर बुलावै ॥ यजुः पङ्क्तिः अधिदैवतं वागधियज्ञं पत्नीदे० ॥ हे हविष्कृत् (हवि करनेहारी, हारे) यहां आ। तीन बार कहे अर्थ को देवता मानते हैं इस हेतु तीन बार आह्वान है ॥ १५ ॥

कुक्कुटोसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वयं  
हं संघातर्हं संघातं जेष्य वर्षवृद्धसि प्रति

त्वा वर्षवृद्धं वेतु परापूतुं रक्षुः परापूता अरा-  
तयोऽपहतुं रक्षौ वायुर्वो विविनक्तु देवो वः  
सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण  
पाणिना ॥१६॥

जिस समय अध्वर्यु हविष्कदेहि इससे आह्वान करता है ति-  
सी समय साथ ही आग्नीध्र कुक्कुटोसीति मन्त्रकरि शम्या से  
दोवार दृषद को कूटता है दोनों बार मन्त्र पढ़ कर उपला को  
शम्या से एकवार कूटता है इसी मन्त्र से ॥ आर्ची त्रिशू वा-  
ग्देवत्या । हे शम्यारूप यज्ञायुधविशेष तू कुक्कुट है असुरों  
का और मधुजिह्व है देवताओं का । असुरलोग क्व क्व (कहां-  
कहां) यह तिन्हे मारने को इच्छा करि सर्वत्र चलता वोह ककु-  
टः । यद्वा कुक् (कुत्सित) शब्दको कूटता (विस्तारता) सो कुक्कु-  
टः । यद्वा कुक्कुटारव्यपक्षिवत् धनिविशेष को असुरों की भय-  
के अर्थ विस्तारता यह कुक्कुट है । मधुजिह्वकनामा कोईक  
देवताओं का भृत्य है । मधुर्मधुरभाषिणी जिह्वा जिस कीत-  
द्रूप है यज्ञायुध तू असुरों को पराभव करि के यजमान का अ-  
न्न और रस वोलि (अन्न और रस जैसे आवैं तैसे शब्द क-  
रि । तेरे शब्द करि असुरों के पराभव में तिन्हीं के अन्न औ-  
र रस को यजमान प्राप्त होता है । फिरि तुरू करिके हम अ-  
सुरों के साथ क्रियमाण संघात-संघात तिस-तिस सङ्ग्राम )  
को जीतेंगे (अर्थात् हमलोगों की कभी भी पराजय नहोगी

संघातः युद्धः  
संघातः युद्धः  
संघातः युद्धः

मनुगजा का एक वृषभ था तिस में असुरघ्नीवाणी स्थित हो शब्द करती थी तिसै सुन करि असुर मरते थे फिर किलात और अकली नामा असुरों के याजकोंने मनु के निकट जाकर तिस ही वृषभ से यज्ञ कराया तिस वृषभ के मरते वोह वाणी मनु की स्त्री में प्रविष्ट हुई फिर तिस स्त्री से भी तिन्हों ने मनु को यज्ञ कराया ततः सो वाणी यज्ञपात्रों में प्रविष्ट हुई इस हेतु से असुरों के पराभव के लिये तिस वाणी के प्रकटनार्थ शम्भा करि दृषत् और उपल का हनन हे इति श्रुत्युक्तोऽभिप्रायः शत० २० १४० १४० ॥ का० २० ४० १६० तुषों के विमुक्त होने पर अध्वर्यु शूर्प को हाथों से ग्रहण करे वर्षवृद्धमसीति ॥ यजुर्गायत्री शूर्पदेवत्या ॥ हे शूर्प-तू वर्षवृद्ध है (वर्षों में बड़े वंश की शलाकाओं से बनने के हेतु शूर्प का वर्षवृद्धत्व है ॥ का० २० ४० १७० प्रति त्वेति उत्तरवल से बाहिर निकाल कर हवि को शूर्प में डाले ॥ यजुर्बृहती हविदेवत्या ॥ हे हविः वर्षवृद्ध (शूर्प) तू मे अपना करिके जाने ब्रीहि शूर्प का वर्षवृद्धत्व से भ्रातृत्व है ॥ का० २० ४० १८० परापूतमिति तुषों को फट के ॥ आसुरी उषिाक् राक्षसम् । राक्षसलोग निकाले (शूर्प करिके तुषों के निकालने में राक्षस भी तिन्हों के साथ भूमि में गिराये ॥ और अपरातयः (हवि के प्रतिकूल आलस्यादि शत्रु) निकाले ॥ का० २० ४० १९० अपहतमिति पृथिवी में गिरे तुषों को भेले करि उत्करदे-शमें डाले ॥ यजुर्गायत्री राक्षसम् । राक्षसलोग दूर में चला-

के मारे ॥ का० २० ४० २० वायुर्व इति सतुषों और निस्तुषों को  
पृथक् करें ॥ यजुरुषिणक् तण्डुलदेवत्या । हे तण्डुलओ शूर्य  
चलने से उठा वायु तुम्हें सूक्ष्मकणों से पृथक् करें ॥ का० २० ४०  
२१ शूर्य में स्थिति तण्डुलों को पात्र में रख देवो व इति मन्त्र  
से अभिमन्त्रण करें ॥ साम्नी त्रिष्टुप् तण्डुल देवत्या । हे तण्डुल-  
ओ सविता देवता तुम्हें अछिद्र पाणि (मिली अङ्गुलियों के हा-  
थ) करि ग्रहण करें ॥ पात्री प्रक्षेपसमय भूमि में पतन न हो इ-  
स हेतु सवितृ ग्रहण अर्थना करिये हैं । केसा सविता कि हिर-  
ण्यपाणि ॥ (हिरण्य युक्त अङ्गुलीयादि आभरण युक्त पाणि जि-  
सके यद्वा दैत्यों से प्राणित्रहार करि छिन्न हुए सविता के हाथ  
देवताओं ने स्वर्णमय किये यह सविता का हिरण्यपाणित्व  
है इति बहुच श्रुतौ कथा ॥ १६ ॥

अ० ६ धृष्टिरस्य पाग्नेऽग्निमामादे जहि निष्क्रव्या-  
दं सेधा देवयजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं हर्षह  
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्पुषदधामिभ्रा-  
तृवस्य वधाये ॥ १७ ॥ +

का० २० ४० २६ धृष्टिरसीति उपवेष को ग्रहण करिके + ॥ देवी  
बृहती उपवेषदेवत्या । हे उपवेष तू धृष्टि (प्रगल्भ-धीठ) है  
तीव्र अङ्गारों के इधर उधर चलाने में प्रसुत्व से इस का  
प्रागल्भ्य है ॥ का० २० ४० २६ अपाग्न इति उपवेष से खर-  
स्थ अपरभाग अङ्गारों को खर के प्रागभाग में करे । तहां

तीनि अग्नियें है। पहिली आमान् (अपक को भक्षण करने वाला लौकिकी अग्नि। दूसरा क्रव्यात् (मांस का खानेवाला चिताग्नि। तीसरा देवयज (यागयोग्य) तैसै तीनि अङ्गारों को गार्हपत्य से प्राग्भाग में पृथक् कर के तिष्ठों में से यागयोग्यताहीन आमान् क्रव्यात्संज्ञक दोनों अग्निओं को छोड़ि गार्हपत्य प्रति कहि नाहै॥ प्राजपत्यानुष्टुप् अग्निदेवत्या। हे अग्ने हे गार्हपत्य आमोदग्नि को परित्याग करि। तथा क्रव्यादग्नि को दूर में छोड़ि॥ का० २०४०२७० उपवेश करि दूरस्थ अङ्गारों से आदेवयजमिति एक अङ्गार को लेकर॥ देवी जगती अग्निदेवत्या॥ हे गार्हपत्य देवताओं के योग्य तीसरे अङ्गार को समीप में ला॥ का० २०४०२७० ध्रुवमसीति देवयज अङ्गार को कपाल करि ठकै॥ कपालदेवत्यं यजुः॥ हे कपाल तू स्थिर है (अङ्गार के ऊपर में होने से भी इधर उधर नहीं गिरता) पृथिवी को हठी करि अर्थात् पुरोडाशपाकसमय में तेरे किये व्यवधान से भूमि का दाहकत शैथिल्य न होगा। किं च तुम्हें अङ्गार परस्थापन करता हूँ। किस लिये कि भ्रातृव्य (शत्रु, असुर, पापी) के बध के अर्थ। कैसे तुम्हें कि ब्राह्मण ने पुरोडानिष्यत्ति के अर्थ स्वीकार किया। तथा क्षत्रियों ने और समानकुल में हुए यजमानों ने पुरो० किया॥ २७॥

अग्ने ब्रह्म गृभणीष्व धरुणं तस्मिन्तरिक्षं दृष्ट्वह  
ब्रह्मवर्नि त्वा क्षत्रवर्नि राजान्वन्युपदधामिभ्रा





अन्यत्पूर्ववत् का० २४३३ प्रथम के दक्षिण भाग में चौथे को विश्वाम्य इति स्थापन करे ॥ यजुस्त्रिष्टुप् । हे चतुर्थ कपाल सब दिशाओं की दृढता के अर्थ तुम्हें स्थापन करता हूँ । एवं तीनों कपालों के उपधान करि तीनों लोकों को जीतता हूँ । चौथे से दिशाओं को जीतता हूँ । आशय यह है कि तद्गत पुरोडाश लोकत्रयरूप होके देवताओं को वृष करता है । का० २४३४ आग्नेय पुरोडाश के अष्टाकपालत्व और चारों के स्थापितत्व से अविशिष्ट चारों के मध्य में दो-दो दक्षिण और उत्तर में चितस्थेति प्रत्येक को स्थापन करे ॥ यजुगार्यत्री कपालदेवत्या । हे कपालविशेषाः तुम प्रथम कपालोपचयकारिणः हो तथा ऊर्ध्व उपहित द्वितीयादि कपालों के उपचयकारिणः हो ॥ का० २४३५ भृगूणामिति अङ्गुरों से कपालों को आच्छादन करे ॥ आसुर्यनुष् कपालदेवत्या । हे कपालओ तुम भृगुनामकों और अङ्गिरानामकों देवर्षियों के तपोरूप इस अग्नि करि तप्त होओ ॥ इस अग्नि का तदीय तपोरूप से भावना करे इत्यर्थः ॥ १८ ॥ †

अ० ७. शर्मास्यवधूतं रक्षोऽवधूता अरातयोदित्यास्त्व-  
गसि प्रति त्वादितिर्वेतु । धिषणासि पर्वती प्रति  
त्वादित्यास्त्ववेतु दिव स्कम्भनीरसि धिषणासि  
पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेतु ॥ १९ ॥ †

का० २५२ जैसे अन्धकार के अर्थ कृष्णाजिन प्रयोग है ते-

सै यहां भी ॥ शर्मासि । अवधूतम् । अदित्याः इति मन्त्रत्रयं व्याख्यातम् काण्डी १४ ॥ का० २० ५ ३ तिस चर्म पर धिषणासीति दृषद (चाकी के नीचेले पाट) को स्थापन करै ॥ आसुरी गायत्री दृषदेवत्या । हे शिले पेषणाधारभूते तू पवनात्मिका तदुत्पन्ना तू धिषणा (बुद्धि वा कर्म को व्याप्त वा देती) हे वा पर्वतवत् धारण करने वाली है । अदिति (भूमि) की त्वचा कृषणाजिनरूपा तुरू तैसी और तेरे अवस्थान को अनुजानै ॥ का० २० ४० दृषद के पश्चिमभाग में नीचे को शम्या स्थापन करै दिव इति । यजुरुषिणक् शम्यादेवत्या । हे शम्ये धुलोक की सत्म्भन करने वाली तू है । पतनवारण के अर्थ अन्तरिक्षरूप करि सत्म्भन कारित्व है । ॥ का० २० ५ ५ धिषणासीति दृषद पर उपला (चाकी के ऊपरले पाट) को स्थापन करै ॥ प्राजापत्यानुष्टुप् उपलादेवत्या । हे उपले (उपरितनशिल) तू धिषणाव्यापारधारिका है । कैसी कि पार्वतेयी (अधस्तनदृषद की पुत्री) बालस्वरूपा ॥ अतः पर्वती मातृसमा तुरू पुत्री को जानै ॥ १४ ॥

धान्यमसि धिनुहि देवान्प्राणाय त्वोदानाय  
य त्वा व्यानाय त्वा दीर्घामनु प्रसितिमायुषे  
धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णा  
त्वछिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीना पयो  
असि ॥ २० ॥ +

का० २० ५ ६ धान्यमसीति तण्डुलों को चाकी में डालिकर

+ धा- न। अ० प्रा- त्या । द० उ- त्वा । उ० व्या- त्वा । ऋ० दी- ना । लृ० च- त्वा । आ० म- सि । ई० ॥ २० ॥

+ कनीयसी हेषा दुहित्वे भवतीति श्रुतेः १२११६



प्राणायत्वेति प्रतिमन्त्र करि पीसे ॥ धान्यमसीति षण्णं हवि-  
 देवता १. यजुर्वृहती २. ४. ६. देवी बृहती ३. देवी यजुः ५. आ-  
 ची विष्टुप् । हे हविः तू धान्य (तृप्तिकरनेवाला) है इस का-  
 रण अग्न्यादिक देवताओं को तृप्त करि ॥ १ ॥ हे तण्डुलओ तु-  
 म्हे प्राण (प्रकर्षण अनिति सर्वदा मुखमें चेषा करने वाले श्वास वायु-  
 प्राणदान) के अर्थ पीसता हूं इति शेषः एवमुत्तरमन्त्रयोर्येज्य-  
 म् ॥ २ ॥ उदान (ऊपर से चेषा करनेवाले उत्क्रान्त वायुदान)  
 के अर्थ ॥ ३ ॥ व्यान (व्याप्त हो चेषा करनेवाले बलहेतु वायुः)  
 के अर्थ ॥ अभिप्राय यह है कि देवताओं का हवि सजीव हो-  
 ता है इस हेतु इन मन्त्रों से हवि का प्राणदिदान करि सजीव-  
 त्व करिये ॥ ४ ॥ का. २. ५. ७. दीर्घामिति पिसे तण्डुलों को  
 कृष्णाजिन पर पतन करे ॥ दीर्घा (अविच्छिन्ना) प्रसिति (कर्मसं-  
 तति) को अनुलक्षण करि आयु (यजमान की आयुवृद्धि) के अ-  
 र्थ हे हवि तुम्हें कृष्णाजिन पर स्थापन करता हूं । भाव यह  
 है कि यजमान की आयुवृद्धि के होते में कर्मसंतति वर्त-  
 ते । यद्वायमर्थः । पूर्वमन्त्रों से हवि का प्राणदिदान करि स-  
 जीवत्व किया इस करि पुनः आयु दीजिये ॥ हे हविः दी-  
 र्घा प्रसिति (कृष्णाजिनारव्या) में तुम्हें स्थापन करता हूं । कि-  
 मर्थम् कि तेरी आयु की वृद्धि के लिये । देवो व इत्यादि म-  
 न्त्रशेषो व्याख्यातः काण्डी १६. ई. ॥ का. २. ५. ८. कृष्णाजि-  
 न पर ररे पिष्ट को चक्षुषे त्वेति देरें ॥ हे हवि यजमान की

† प्रसितिः प्रसपनात्तन्तुर्वा जालं वेति निरु. ६. १२. यास्कौक्तेः पिष्टयाहकत्वात्  
 सिति शब्देन कृष्णाजिनमुच्यते ।

चक्षुषादिव के अर्थ तुम्हें देखता हूँ इति शेषः॥ यद्वा चक्षु  
आदि बाह्येन्द्रियादिदान के अर्थ तुम्हें देखता हूँ। भाव यह है  
कि हवि के सजीवत्व करने में चक्षुषादि कों की अपेक्षा हो  
ती है सो इस से करिये है॥ का० २५०८० पात्रान्तर से आज्यस्था  
ली में आज्य को करे महीनामिति॥ आज्य देवत्या देवी विष्णुप्रा  
आज्य तू महीओं (गोओं) का पय (क्षीर) है॥ २०॥

अ० ८० देवस्य त्वा सवितुः प्रसुवे० श्विनोर्बाहुभ्यां पूषो  
हस्ताभ्याम्। सं वपापि समाप ओषधीभिः समो  
षधयो रसेन। सृष्टिं रेवतीर्जगतीभिः पुन्यन्ता  
सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्॥ २१॥+

का० २५०१०० पवित्र सहित बड़े पात्र में देवस्य त्वेत्यादि सं-  
वपामीति पिष्टों को आवपन करे॥ देवस्य त्वेत्यादि हस्ताभ्या-  
मित्यन्तं व्याख्यातम् कण्डिका १०० अ०। संवपामि देवी वृ-  
हती हविर्देवत्या। इन पिष्टों (पिसेहुओं) को बड़े पात्र में भले  
प्रकार स्थापन करता हूँ॥ का० २५०१२० १३० उपसर्जयः (पि-  
ष्ट में डालने योग्य जल) आग्नी ध्र के डालते अक्षर्यु पवित्रा-  
ओं से ग्रहण करे समाप इति॥ समापो यजुः आपो देवता।  
उपसर्जनीरूप जल पिष्टरूप ओषधीओं के साथ भले प्र-  
कार एकी हों। तथा ओषधीः (पिसीहुई) रस (उपसर्जनी-  
रूपजल) करि भले प्रकार एकी हों ॥ तथा रेवत्यः (जल)  
ओषधीओं (पिष्टारव्याओं) करि भले० ५॥ मधुमतीः (माधुर्यो-

+ दे-मू। अ०। सं-मि। २०। स-मू। उ०॥ २१॥

॥ आपो हि ओषधीना रसः।

५ रेवत्य आपो जगत्य ओषधय इति श्रुतेः

पेता जल) माधुर्यो येतों (पिष्टरूपा ओषधीओं के साथ भले)।  
अर्थात् जल और ओषधीओं के परस्पर प्रीतिहेतुत्व से संप-  
र्क होंवे ॥ २१ ॥

जनयत्ये त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे  
त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुप्रया उरु प्रयस्वोरु ते  
यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिंसीद्देव-  
स्त्वा सविता अपयतु वर्षिष्ठे ऽधि नाके ॥ २२ ॥

का० २० ५० १४० जल और पिष्टों को मिश्रित करे जनयत्ये त्वे-  
ति ॥ प्राजायत्या गायत्री हविदेवत्या । हे जलपिष्ट रूपपदार्थ-  
द्वय तुम्हें भली भाँति मिश्री करता हूँ । किमर्थ कि यजमान  
की प्रजा के उत्पादनार्थ । जल और पिष्ट का जैसे मिश्रण  
तैसै शुक्रश्रोणित के मिश्रण करि यजमान की प्रजोत्पत्ति  
होती है तिस लिये तुम्हें मिश्रण करता हूँ । यद्वा पुरोडा-  
श की उत्पत्ति के अर्थ तुम्हें मिश्र ॥ का० २० ५० १५० मिश्री-  
किये पिष्ट के अवदानाङ्कित समान दो पिण्ड बनाकर पु-  
नः विनमिलाये इदमग्नेः इदमग्नीषोमयोरिति क्रमपूर्व-  
कस्पर्श करे ॥ हे हवि देवते १ देवी बृहती २ देवी जगती । यह अग्निसं-  
म्बन्धि होवें ॥ यह अग्नीषोमसम्बन्धि हो ॥ का० २० ५० १७०  
इषे त्वेति आज्य को गलाने के अर्थ पात्र में अग्नि पर रखे ॥  
देव्यनुष्टुप् आज्यदेवत्या । हे आज्य वृष्टि के अर्थ तुम्हें ग-  
लाता हूँ ॥ का० २० ५० १८० घर्मोऽसीति पुरोडाश (पिण्ड) को

† ज-मि-अ-ग्ने-॥ इ-॥ इ-यो-॥ उ-॥ इ-त्वा-॥ क-॥ घ-यु-॥ ल-॥ उ-मू-आ-॥  
अ-त-॥ इ-॥ इ-॥ के-॥ क-॥ ॥ २१ ॥

अधर्यु कपालों में पकावै ॥ यजुर्गायत्री पुरोडाशदेवत्या । हे पुरोडाश तू धर्म (दीप्यमान-प्रवर्ग्य) + है । तथा विश्वायुः (सर्वायुः) है । जिस से यजमान सर्वायु को पाता है इति भावः ॥ का० २५० उरुप्रथा इति पुरोडाश को बटावै जितना कि कपाल में समावै ॥ आर्ची गायत्री पुरोडाश ॥ हे पुरोडाश तू स्वभाव से उरुप्रथाः (विस्तीर्ण) जैसे तैसे प्रसरनेहारा । इस कारण यहां भी विस्तीर्ण प्रख्यात हो । किं च तेरा यज्ञपति (यजमान) उरु (विस्तीर्ण) पुत्रपश्चादिकरि के प्रख्यात हो ॥ का० ५२२१ अग्निष्टु इति जल करि पुरोडाश को सर्वतः स्पर्श करे ॥ प्राजापत्या गायत्री पुरोडाश अग्निः अपण के अर्थ तेरी त्वचा (त्वक्महश ऊपरले भाग) को विनाश न करे । अर्थात् अतिदाह करि प्यामता न हो । अवघात पोषण से उठा और अपण में उत्पन्न हुआ हवि का उपद्रव जलस्पर्श करि शमन करिये है इति भावः ॥ का० २५२३ देवस्त्वेति पकावै ॥ प्राजापत्यानुष्टुप् पु० । हे पुरोडाश सविता देवता वर्षिष्ठ (अत्यन्तबृद्ध) नाक (द्युलोकवर्ति नाकनामा अग्निः) में तुम्हें ररि कर पक करे । मनुष्य का अपण करने में कर्तृत्व नहीं है यह समझ कर देवस्त्वेति कहा गया ॥ २२ ॥ +

मा भेर्मा संविक्था अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥ २३ ॥ +

+ मा-क्याः । अ० अ-तू । इ० वि-त्वा । उ० द्वि-त्वा । क्र० ए-त्वा । त्वा ॥ २३ ॥  
+ अव्ययमाणाया दीप्यमानत्वात्

को नाम स्वर्गस्थोऽग्निः । किति रिरि रानानि । रक्षोहेति । नामाग्नी रक्षोः ।

का० २० ५० २४० पक्वापक्वज्ञान के लिये मा भेरिति दोनों पुरोडा-  
शों के स्पर्श करें॥ यजुर्गायत्री पु०॥ हे पुरोडाश तू भय मत क-  
रि। चलन मत करि॥ का० २० ५० २५० अतमेरुरिति अपक्व  
को भूमल करिके दाँवै वेद वा उपवेश करिके॥ अर्चि गा-  
यत्री पु०॥ यज्ञः (याग का हेतु पुरोडाश) अतमेरुः (भस्माच्छा-  
दन करि ग्लानिरहित) होवै। यजमान की पुत्रपौत्रादि प्रजा  
ग्लानरहिता हो। अर्थात् यजमान की प्रजा को कदापि दुःख-  
न हो॥ का० २० ५० २६० पिष्टलिप्तपात्र का प्रक्षालन और पिष्ट-  
लिप्ताङ्गुलियों का प्रक्षालन पात्र में स्थित ही उल्मुक से तपाक-  
र गार्हपत्य के उत्तरतः परस्पर संगति को न प्राप्त होते को औ-  
धावै त्रितायत्वेति प्रति मन्त्र से॥ १० देवी बृहती त्रितदेवत्या २०  
देवी बृहती द्वित देवत्या ३० देवी पङ्क्तिः एकतदेवत्या। हे पात्र-  
ङ्गुलिप्रक्षालनोदक त्रितनामक देवता के अर्थ तुम्हें ओज-  
ता हूँ इति शेषः। तथा द्वित के अर्थ तु०। तथा एकत के अ०॥

॥ पहिले किसी हेतु से डरे हुए अग्नि ने जल में प्रवे-  
श किया फिर देवताओं ने तिसै जानि कर ग्रहण किया तहां  
अग्नि ने जल में वीर्य छोडा फिर त्रित द्वित एकत तीनिपुत्र  
हुए ते देवताओं के साथ यज्ञ में पात्री प्रक्षालनजललक्षण  
भाग को लेते हुए यह श्रुति में कथा है शत० १० २० ३० १॥ २३॥

अ० ४० देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनौर्बाहुभ्यां पूषणौ  
हस्ताभ्याम्। आददेऽध्वरुक्तं देवेभ्य इन्द्रस्य



बाहुरसि दक्षिणाः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायु-  
रसि त्रिगुणतेजा द्विषतो बधः ॥२४॥ +

का० २.६.१३. देवस्य त्वेति स्फ्य लेकर ॥ देवस्य त्वेति व्याख्या-  
तम् कण्डिका १०. अ० १. आददे यजुः पङ्क्तिः स्फ्यदेवत्या । देव-  
ताओं के उपकारार्थ वेदिरवननादिद्वारेण अध्वर करने हारे  
स्फ्य को ग्रहण करता हूँ ॥ का० २.६.१३. तृणसहित सव्यहस्त में करि-  
के दक्षिणाहस्त से स्पर्श करि संहितास्वर से इन्द्रस्य बाहुः यह  
जयें ॥ प्राजापत्या जगती स्फ्यदेवत्या । हे स्फ्य तू इन्द्र का दक्षि-  
णाबाहु है + । कैसा कि सहस्रभृष्टिः (सहस्रं व्याक शत्रुओं का भू-  
जने हारा । शततेजाः (बहुधा दीप्यमानः) किं च वायु (केवल  
इन्द्रबाहु सदृश ही नहीं किन्तु वायुसदृश भी) है । अत एव  
तीक्ष्णतेजाः (जैसे वायु वह्नि को प्रदीपन करि तीव्रज्वाला को  
उत्पन्न करने से तीव्रतेजा होता है । एवं स्फ्य भी स्तम्बछेदरू-  
प कर्म करने से तीव्रतेजा है । तथा द्विषतो बधः (द्वेषि असुरों  
का हन्ता ॥२४॥

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं माहिर्दसि-  
षं ब्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बिधान  
देव सवितः परमस्यां पृथिव्याथं प्रातेन पाशो-  
र्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा भौ-  
क ॥२५॥ + पृ-म। अ० १. ब्र-म। इ० व-द्यौः । उ० व-क। अ० १२५

का० २.६.१५. १६. पृथिवि देवयजनीति तृण के नीचे भूमि-

स्फ्यस्य बाहु रूपत्वात् +  
तेन बाहुना धृतत्वात् तस्मान्नवीर्येयत्वाद्वा

को स्फ्य से प्रहार करे ॥ वेदिदेवत्यं यजुः ॥ हे पृथिवि हे देवयज-  
नि (देवता यजे जाते हैं जिसमें) तेरी ओषधीओं (तृणरूपाओं)  
का मूल नहीं विनाश करता हूं ॥ का० २६१७० ब्रजं गच्छेति पु-  
रीष (स्फ्यप्रहार करि खुदी मृदा) को ग्रहण करे ॥ देवी जग-  
ती पुरीषदेवत्या ॥ हे पुरीष (स्फ्यप्रहारोत्पन्ना मृदा) तू ब्रज (स्थि-  
त होने के लिये चलती है) गोएँ जहां तिस) को प्राप्त हो ॥ तिस  
कैसे कि गोष्ठान (गोयुक्तस्थान गोत) को ॥ का० २६१८० जि-  
स स्थान से पुरीष ग्रहण किया तिस वेदि के स्थान को वर्षतु  
नः इति देखें ॥ देवी षड्भिः वेदिदेवत्या ॥ हे वेदे तेरे अर्थ द्युलोका-  
भिमानी देव वर्षे (जलसेक करे) अर्थात् वर्षण करि खननजनि-  
त दुःखवशान्ति हो ॥ का० २६१९० बधानेति स्फ्योत्खाता मृदा  
को उत्कर में डाले ॥ सावित्रं यजुः ॥ हे देव सवितः जो हमलो-  
गों को द्वेष करता और जिस शत्रु को हम द्वेष करते हैं तिस  
उभयविध शत्रु को इस पृथिवी के छोर पर बन्धन करि (तहां  
उत्कर में डाली हुई धूलि विषे निगूढ़ शत्रु का बन्धन करि  
कि जहां भूमि के छोर पर अन्धतामिश्रनरक है) ॥ किन्हीं से  
बन्धन करना तदाह कि शतसंख्या को बन्धनरज्जुओं से ॥  
किं च इस अन्धतामिश्रनरक से तिससे कभी भी मत छूट-  
ने दे ॥ २५ ॥

अपारं पृथिव्यै देवयजनादध्यासं ब्रजं-  
गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव स-

+ अने नमसि बधानेति यवाव या-  
मस्या येष व्यामिति २०४ २६० पुनेः।

+ अ-मू.अ.०.ब्र-मू. २०४.ब-द्यौः ॥ ३०४.ब-कू. ॥ अ.०.अ-मू. ॥ ल.०.द्र-मू. ॥ आ.०.ब-मू.  
२०४.ब-द्यौः ॥ क.०.ब-कू. ॥ ऋ.०.॥ २६ ॥

वितः परमस्यां पृथिव्याथं शान्तेन पाशैर्योऽस्मान्देष्टु-  
यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। अररो दिवं मा  
पप्नो द्रप्सस्तु द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठाम्  
वर्षतु ते द्यौर्विधान देव सवितः परमस्यां पृथि-  
व्याथं शान्तेन पाशैर्योऽस्मान्देष्टु यं च वयं द्वि-  
ष्मस्तमतो मा मौक्॥२६॥+

का० २०६० २१० अपाररुमिति दूजीवार प्रहरण आदिक करे॥  
आसुरी गायत्री असुरदेवत्या। पृथिवि के सम्बन्धि देवयजनारव्य-  
वेदिस्थान में अररुनामा असुर को अपबध्यासम् (निकालिकरजे-  
से हत हो तैसे करता हूँ॥ इस मन्त्र से दूसरी वार प्रहार करें और ब्रजम्  
वर्षतु वधानंति तीनों मन्त्रों का प्रयोग तथा अर्थ पूर्ववत्॥ का० २०६० २२० अ-  
ररो दिवमिति उत्कर के अभिमुख हाथों को रखे॥ यजुरनुष्टुप्॥ हे अररो  
(असुर) दिव (द्युलोक यागफलरूप) को तू मत प्राप्त हो॥ का० २०६० २३०  
द्रप्सस्त इत्यादि तीसरी वार प्रहरणादिक करे॥ यजुर्गायत्री वेदिदेवत्या।  
हे वेदिदेवते तुरू पृथिवी से जो द्रप्स (उपजीव्य रस) है सो द्युलोक  
को न जावे॥ व्रजं गच्छेत्यादि पूर्ववत्॥ २६॥

गायत्रेण त्वा छन्दसां परि गृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्द-  
सां परि गृह्णामि जागेतेन त्वा छन्दसां परि गृह्णामि।  
सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुप्रदाचा-  
स्यूर्जस्वती चासि ययस्वती च॥२७॥+

का० २०६० २४० जिम स्थान से अररु निकाला तहां वेदिका परिमा-



एण निश्चय करने के लिये दक्षिण पश्चिम उत्तर तीनों दिशाओं में  
 स्फ्य से तीनी रेखाएँ करे गायत्रेणेति प्रतिमन्त्र करि। इस कर्म को  
 पूर्वपरिग्रह कहिते हैं ॥ गायत्रेण १ त्रैष्टुभेन २ जागतेन ३ त्रयाण-  
 मासुरी अनुष्टुबिषणुर्देवता। ते प्राञ्च विषणु निषाद्य छन्दोभिर-  
 भितः पयगृह्णन्निति श्रुतेः १.२.५.६.। हे विषणो तुम्हें गायत्र्यादि  
 तीनों छन्दों की स्फ्य में भावना करि तीनों दिशाओं में परिग्रह  
 ए करता हूँ। एवं त्रैष्टुप् जागत उत्तर मन्त्रों में। ततः छन्दोदेवता ती-  
 नों दिशाओं में असुरों से तम्हें पालन करेंगे। पूर्वदिशा में आहवनी-  
 य पालक है इति भावः। प्रजापति के पुत्र देवता और असुरों ने स्पर्धा  
 (लड़ाई) की ई जब देवताओं को हारे जानि भूमि को असुरों ने बाँटा  
 तहां देवताओं ने वामन रूपविषणु को आगे में करिके असुरों के निक-  
 ट जाकर याचना की ई कि हमारे अर्थ भी भूमि का अंश देना उचित  
 है। फिर असुरों ने देवताओं को निरादर से कहा कि यह विषणु जि-  
 तने भू भाग में शयन करे तितना आपलोगों का है। फिर देवता  
 ओं ने हम को इतना ही बड़ुत है यह कहिकर पूर्व में विषणु को डा-  
 लि गायत्रेणेत्यादि मन्त्रों से यज्ञभूमि को ग्रहण किया। सो यज्ञो  
 विषणुः जहां ठैरा है वोह ही यज्ञभूमि है यह तिन्हें करि विदित  
 होने से वेदि यह तिस भूमि का नाम हुआ यह शत० १.२.५.१-७.  
 श्रुति कथा समर करि वेदि ग्रहण है ॥ का० २.६.३१. वेदिखनन से  
 पहिले किया पूर्व परिग्रह पीछे किया उत्तर परिग्रह है। तहां भी पूर्व-  
 वत् तीनों दिशाओं में सुक्ष्मा स्पोना ऊर्जस्वतीति मन्त्रों करि स्फ्य

से तीन रेखाएँ करें ॥ त्रयाणां वेदिर्देवता १. प्राजापत्या गायत्री २. आसुरी जगती ३. आसुरी पङ्क्तिः ॥ हे वेदे तू सुक्ष्मा (खनन करि अप्रमादि दोष दूर होने से शोभना भूमि) है। शिवा (उग्र असुर के निका लने से शान्ता) है। गुणद्वयस्यान्योन्यसमुच्चयार्थो चकारौ एकोऽयं मन्त्रः ॥ स्योना (सुखरूपा) है। सुरवदा (देवताओं के भली भाँति बैठने योग्या) है। चकारौ पूर्ववत्। द्वितीयोऽयं मन्त्रः ॥ ऊर्जस्वती (अ न्नवती) है। ययस्वती (दध्यावती) है। चो पूर्ववत्। तृतीयो मन्त्रः ॥ २३ ॥

पुरा क्रूरस्य विसृषो विरप्षिन्नुदादाय पृथिवीं जीव-  
दोनुम्। यामैरयं चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरांसो  
ऽपनुदिष्य यजन्ते ॥ प्रोक्षणीरासादाय द्विषुतो  
बुधोऽसि ॥ २८ ॥ +

का० २. ६. ३२. पुरा क्रूरस्येति मन्त्रेण खोदी जुद्ध वेदि में लोष्टक-  
त विषमता की निवृत्ति के अर्थ समीकरण रूप मार्जन करें ॥ अथ-  
शर्षसदृष्टा चन्द्रदेवत्या त्रिष्टुप्। आत्रेयमारव्यायिका मन्त्रेऽभिप्रे-  
ता। कभी देवताओं का असुरों के साथ संग्राम उपस्थित हुआ तब दे-  
वताओं ने आपुस में मन्त्र किया कि जो इस भूमि का उत्कृष्ट देवय-  
जन स्थल है तिसै चन्द्रमा में स्थापन करिके युद्ध करें तहां जो हमारी  
पराजय हो तो देवयजन में याग करिके फिरि देव्यों को पराजय करें-  
गे यह भली भाँति विचारि भूमि के सारभाग देवयजन को चन्द्र-  
मा में स्थापन करते हुए सो हृषावर्ण अवनी चन्द्रमा में दीरव-  
ता है इस आख्यान को मन्त्र कहिता है शत० १. २. ५. १८ ॥ मन्त्रार्थस्तु।

हं विगच्छान् (विष्णोः परमेश्वरः) तू सुनि अनुग्रह करि इति शेषः। विसृप (नाना योधयुतः) क्रूर (युद्धः) से पहिले अर्थात् देवता जीवदानु (जीव की धारण करने हारी सारभूता) जिस पृथिवी को जेची ग्रहण करिके स्वधाओं (वेदों) सहित चन्द्रमा में स्थापन करते हुए पीरः (मेधावीलोग) तिसी (चन्द्रस्था पृथिवी) की अनुदिश्य (दर्शन से संपादन करिके सोही भूमि इस वेदी में है यह भावना करि) याग करते हैं ॥ का० २०६३४ प्रोक्षणी रासादयेति आग्नीध्र प्रति प्रेषा (अधर्यु का वचन) है ॥ यजुरुष्णिक् प्रेषः ॥ हे आग्नीध्र तू प्रोक्षणी (जलों) को वेदी में स्थापन करि ॥ का० २०६४२ द्विषतो बध इति स्य को उदगग्र करि उत्कर में फेंके ॥ यजुर्गायत्री अभिचारिकम् ॥ हे स्यः तू द्वेषीओं (शत्रुओं) का हिंसक है ॥ २८ ॥

अ० १०० प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टं रक्षो निष्टं अरातयः ॥ अनिशितो गसि सपत्नक्षिद्वाजिनी त्वा वाजेध्याये संमार्ज्मि ॥ प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टं रक्षो निष्टं अरातयः ॥ अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनी त्वा वाजेध्याये संमार्ज्मि ॥ २९ ॥

का० २०६४६ जेसै सूर्य और अग्नि होत्र हवीण प्रतपन किया (तैसै खुब का भी करना ॥ हे व्याख्याते काण्डी ७ ॥ का० २०६४६ वेदाग्र करि भीतर से पूर्व को संमाजन करे मूल से ले अग्रपर्यन्त अनिशितोऽसीति मन्त्र से फिरि वेदमू

ल से बाहिर में सुवपुष्कर का बुध से ले मूलपर्यन्त पश्चिम को संमार्जन करे इसी मन्त्र से फिरि अग्निसमीप में जाकर पूर्ववत् तपाके जल उपस्पर्श करि अध्वर्यु के अर्थ समर्पण करे ॥ प्राजापत्या बृहती सुवदेवत्या । हे सुव तू अनिशित (हमारे विषय में तीक्ष्ण उपद्रवकारी नहीं होता) हे यत्तः सपत्नक्षित (शत्रुओं का मारने हारा) अत एव तुम्हें भले प्रकार शुद्ध करता हूं। कैसे तुम्हें कि वाजिन (अन्नवन्तः) यद्वा यन्नवन्तः) को। किसलिये संमार्जन करता हूं कि वाजेध्या (यज्ञ की दीप्ति के अर्थ) अर्थात् शोधित सुवा करि घृत लेते और होम ते में अग्नि प्रकाशे हैं। तिस के प्रकाश से आहुतिफलभूत अन्न प्रकाशित होता है ॥ का० २०६०४०४०० अनिशितेति मन्त्रेण तीनों सुचाओं (जुहु उपभृत् ध्रुवां) को संमार्जनकरि (प्रत्युष्टमिति तपा-तपाकर) वेदि में स्थापन करने को अध्वर्यु के अर्थ देवे ॥ प्रत्युष्टम् निष्टप्तम् व्याख्याते। अनिशितेत्यपि व्याख्यातम्। सुव के पुरुष होने से आदि में संमार्जन है। सुचा का स्त्री होने से पीछे ॥ जुह्वादिक सुचाओं के स्त्रीलिङ्गत्व से अनिशिता वाजिनीमिति विशेषण का स्त्रीत्व विशेष है ॥ २६ ॥

अदित्ये रास्नासि विष्णोर्वेष्ट्योऽस्यूर्जे त्वादव्येन  
त्वा चक्षुषा वपश्यामि ॥ अग्नेर्जिह्वासि सुहृद्वे  
भ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥ ३० ॥ +

+ अ-मि। अ० वि-सि। १००३-त्वा। उ० अ-वे। अ० ३० ॥

+ यज्ञो हि देवानामन्नमिति अन्ते ॥ ५०१०१२० वाजं यज्ञारव्यमन्नमहतीति वाजिनः ॥

यस्यैवाग्निं तत्तुल्यं पचयन्तः  
+ यज्ञो हि देवानामन्नमिति अन्ते ॥ ५०१०१२० वाजं यज्ञारव्यमन्नमहतीति वाजिनः ॥

का० २०७१० आग्नीध्र योक्त्र (त्रिगुण मुञ्जमयी रशाना) करि गार्हपत्य से नैऋत्य दिशा में ईशानाभिमुखी बैठी हुई यजमानभार्या को परिधानवस्त्र से बाहिर नाभि से नीचे कटि प्रदेश में अदक्षिण वेष्टित करे अदित्यै रास्नासीति॥ हे योक्त्र देवत्ये १० यजुर्गायत्री २० दैव्यपङ्क्तिः हे योक्त्र तू अदिति (पृथिवी) की रशाना (करधनी) है॥ का० २०७२३ तिस योक्त्र के दक्षिणपाश को प्राङ्मुखस्थानीय उत्तरपाश में द्विगुण खुरसि करि दक्षिणयोक्त्रपाश को ऊपर को उड़हन करे विष्णोर्वेष्योऽसीति ग्रन्थि न करे॥ हे दक्षिणपाश तू विष्णु (यज्ञ) का वेष्य (व्यापक) है॥ का० २०७४० ऊर्जे त्वेति आज्य को गार्हपत्य से उतारि करि पत्नी के आगे में खरिव पत्न्याज्यमवेक्षस्वेति कहे॥ आज्यदेवत्यानि त्रीणि १० दैव्यनुष्टुप् २० यजुः ३० साम्नी जगती॥ हे आज्य तुम्हें ऊर्ज (उत्तररसलाभ) के अर्थ अग्नि परसे उतारता हूँ इति शेषः॥ उतागृह्णाद्यृत सुखादु होता है॥ का० २०७४० अदब्धेनेति पत्नी आज्य को देखे॥ हे आज्य तुम्हें अनुपहंसित आरवों से अधोमुखी होकर देखती हूँ किं च हे आज्य तू अग्नि की जिह्वा है (जब आज्य अग्नि में होमा जाता है तब जिह्वा ऐसी ज्वाला उत्पन्न होती है अतः तू अग्नि की जिह्वा है) कैसा है तू कि देवताओं के अर्थ सुहृः (भले प्रकार होमिये है वोह) यद्वा जिह्वाविशेषणम् भली भांति बुलाइये हैं देवता जिस से वोह अर्थात्

ज्वाला देखि देवता आते हैं। इस हेतु मेरा धाम्ने धाम्ने (तत्तद्यागफलोपभोगस्थानसिद्ध्यर्थ) हो। यजुषे यजुषे (तत्तद्यागसिद्धि के अर्थ योग्य) हो ॥३०॥

सवितुस्त्वा प्रसवः उत्पुनाम्यहिद्रेण पवित्रेण  
सूर्यस्य रश्मिभिः। सवितुर्वः प्रसवः उत्पुनाम्यहि-  
द्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तेजोऽसि शुक्र-  
मस्यसुतमसि धाम्नामासि प्रियं देवानामना-  
धृष्टं देवयजनमसि ॥३१॥ +

इति संहितायां दशमोऽनुवाकः १०

इति श्री शुक्लयजुर्वेदे माध्यन्दिनीयायां वाजस-  
नेयसंहितायां दीर्घपाठे प्रथमोऽध्यायः १

का० २०७७ सवितुस्त्वेति आज्य को उत्पवन करें ॥ सविता  
देवता की आज्ञा में वर्तमान हो तुम्हें उत्पवन करता हूँ।  
व्याख्यातमन्यत् काण्डी १२॥ का० २०७८ और प्रोक्ष-  
णी को पूर्ववत् उत्पवन करें सवितुर्व इति ॥ प्राजापत्याप-  
ङ्गिरापो देवता। तुम्हें उत्पवन करता हूँ इति व्याख्यातम्  
काण्डी १२॥ का० २०७९ तेजोऽसीति अध्वर्यु वा यजमान  
आज्य को देरेवे ॥ आज्यदेवत्ये द्वे १ यजुस्त्रिष्टुप् २ आर्ची

+ स-भिः। अ०। इ०। ते-सि। उ०। धा-सि। ऋ० ॥३१॥



उष्णिक् । हे आज्य तू तेज (शरीरकान्ति का हेतु होने से तेज) है । शुक्र (स्निग्धरूपत्व से दीप्तिमान्) है । अमृत (विनाशरहित) है । बहुत दिवस ररबने से ओदनादिवत् पर्युषितत्वादि दोषों के अभाव से वा यज्ञहेतुत्व से अविनाशित्व है ॥ का० २० ७० ११० १२० धाम नामेति एकवार मन्त्र पूर्वक और तीनिवार चुपके से चारि सुवाओं को घृत से पूर्ण करें ॥ हे आज्य तू धाम (देवताओं की चित्तवृत्ति का स्थान) है । तथा नाम (अपने प्रति नमानेवाला) आज्य को देखि भोजन के लिये सब नमते हैं । तथा देवताओं का प्रिय है । अनाधृष्ट (अनभिभूत) गतसारत्व दोष करि अतिरस्कृत चरुपुरोडाशादिकचिरस्थिति से गतसार होते हैं ऐसा नहीं) है । देवयजन (यागसाधन) है ऐसे तुम्हें ग्रहण करता हूँ इति वाक्य शेषः ॥ ३१ ॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्द निवारयन्

पुमार्थीश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः १

इति भाष्ये दशमोऽनुवाकः १०

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशारवाध्येतृवेयाघ्रपद-  
न्वयविश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजं ऐकि-  
ण्य नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये  
शारवाद्याज्यग्रहान्तः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु



हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च माधनैर्वह्मरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः २

अ.१० १० कृष्णोऽस्याखरेष्टोऽनये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरमि ब-  
र्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि बर्हिरसि सुगम्यस्त्वा जुष्टं प्रो-  
क्षाम्यदित्ये व्युन्दनम् ॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

राजागिरिप्रसादेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ॥

इध्मप्रोक्षादिपित्र्यान्तोद्वितीयोऽध्यायइत्येते १

कृष्णोऽसीति आसुरी उष्णिक् इध्मो देवता। वेदिरसीति आसुरी अनुष्टुप्  
लिङ्गेऽक्त देवता। बर्हिरसीति प्राजापत्या उष्णिक् लिङ्गेऽक्त देवता। का०  
२.७.१४ इध्म पूलक को छुडा कर प्रोक्षण करें। और वेदि को प्रोक्षण  
करें। बर्हि ले वेदि में पूर्वग्रन्थि करिके प्रोक्षण करें क्रमपूर्वक कृष्णो  
सीति प्रतिमन्त्र से इति सूत्रार्थः॥ अथमन्त्रार्थः॥ हे इध्म तू कृष्ण  
(ऋणामृगरूपयज्ञ) है +। कैसा है कि आखरेष्टः (समन्तात् कठिनं वृ-  
क्ष में स्थित। यद्वा खं (स्वर्ग) की राति (देता) रवर (आवनीय) तहां स-  
मन्तात् स्थित ॥ यज्ञ कभी देवताओं से दुरिखित हो अपने छिपने के  
अर्थ कृष्णामृग होके वन में यज्ञियतरु के मध्य में प्रवेश करि कहीं  
कठिन वृक्ष में स्थित हुआ सो इस अभिप्राय से कृष्ण आखरेष्ट ये  
दो शब्द कहे गये तथा च शत० १.१.४.१ यज्ञो ह देवेभ्योऽपचक्राम

इध्म पूलकस्य यज्ञमाधनत्वात् यज्ञत्वेनोपचारः ॥

† पुष्पिणी गायत्री वेदिः प्राजापत्या गायत्री वेदिः अथर्ववेदिः

स हृषणो भूत्वा चचारेत्यादि श्रुतिः। अतः अग्निदेवता के अर्थ प्रिय तुम्हें प्रोक्षण करता हूँ शुद्धार्थ जल से इति शेषः॥ वेदिं रसीति वेदी को प्रोक्षण करें। तू वेदि (देवताओं की असुरों से लब्ध होने के कारण वेदि) है इस हेतु वहिर्ओं के धारणोपयोगिता करि प्रिय तुम्हें प्रो०†। वहिर्ं रसीति वहिः प्रोक्षणम्। हे दर्भ वहिः (बहुत होने से वेदिकी वृद्धि करने समर्थ) है। अतः स्तुतिधारण से प्रिय तु०॥१॥

अदित्ये व्युन्दनमसि विष्णोः स्तुपोऽमृणम्रदसं त्वा  
स्तुणामि स्वामस्थां देवेभ्यो भुवंपतये स्वाहा भुवनप  
ये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा ॥२॥†

का० २०७० २० प्रोक्षणी के शेषजल को वहि पूलक के मूल में ओंधावे अदित्ये व्युन्दनमिति॥ प्राजापत्या गायत्री आपोदे०। हे प्रोक्षण शेषोदक तू अदिति (भूमि) का क्लेदन (प्रस्वेद) है॥ का० २०७० २१ अध्वर्यु हाथ करि यवित्रा प्राणिता में रख तिस वहि पूलक के पूर्वभाग से विष्णोरिति प्रस्तर को निकाले॥ देवी यङ्कुः प्रस्तरों दे०। हे प्रस्तर दर्भसुष्टिरूप तू विष्णु (यज्ञ) की शिरवा है॥ का० २०७० २२ ऊर्णम्रदसमिति वेदि को दर्भों से आच्छादन करें॥ आसुरी गायत्री वेदिर्दे०। हे वेदे तुम्हें दर्भों से आच्छादन करता हूँ। कैसी तुम्हें ऊर्ण जैसी कोमल को (जैसे स्वामी के विहलाने की भूमि की काठिन्यता के अभावार्थ कम्बलादि विहलाने हैं) तैसे दर्भों से आच्छादिता वेदि कोमल हो। पुनः कैसी कि देवताओं के उपकार के लिये स्वास्था (सुखपूर्वक भोजन के लिये) आसन करि बैठते हैं जिसपर तिस को॥ का० २५० २० भुवपये

स्वाहेति स्कन् (हवि के ग्रहण काल में परिधियों से बाहिर विखरे ह-  
वि) की स्पर्श करे ॥ भुवपत्या इति देवीजगती । भुवनपतयेति द्वौ प्रा-  
जापत्या गायत्र्यौ । त्रयाणामग्निर्देवता । एतन्मन्त्रत्रयस्यात्रोत्क-  
र्षः । भुवनपत्यादयः तीनों अग्नि के भ्राता । स्वाहा शब्द निपात  
देवताओं प्रति दानवाची + । मन्त्रार्थस्तु । हविग्रहण काल में परिधि-  
यों से बाहर जो हवि विखिरा सो भुवपत्यादयः अग्नि के भ्राताओं  
को दिया इति ॥ आशय यह है पहिले अग्नि के भ्राता वषट्कार की  
भय से भूमि को प्रवेश करते हुए और तिस दुःख करि अग्नि भी  
भाग करि जल में प्रवेश करता हुआ फिर देवताओं करि लाया अ-  
पने अधिकार पर स्थाप्यमान ऐसे बोला कि जो दून मेरे भाइयों क-  
रि मुझे धारण करें और तिन के लिये यज्ञ भाग की कल्पना करें ।  
फिर ते अग्नि के भाई परिधि हुए और तिन्हें का स्कन् हवि भाग  
किया इति कथा तथा च शत० १०३३१३-१६ ॥२॥

गन्धर्वस्त्वा विश्वावेसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्ये य-  
जमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । इन्द्रस्य वा  
दुरसि दक्षिणे विश्वस्यारिष्ट्ये यजमानस्य परिधि-  
रस्यग्निरिड ईडितः । मित्रावरुणे त्वोत्तरतः परिधि-  
त्तां ध्रुवेण धर्मेण विश्वस्यारिष्ट्ये यजमानस्य प-  
रिधिरस्यग्निरिड ईडितः ॥३॥+

का० २०८० मध्यम दक्षिण उत्तर परिधियों को गन्धर्वः इन्द्रस्य मि-  
त्रावरुणौ प्रातिमंत्र करि स्थापन करें ॥ गन्धर्वस्त्वा इन्द्रस्य मित्रा-

स्वाहाकार च वषट्कार च  
त्रयः उपजीवन्तीति पुनः ।

वरुणो वीणियजूर्ध्वित्रयः परिधयो देवता । आदौ पश्चात् । हे प-  
रिधे विश्वावसु नामा गन्धर्वः । तुम्हें आहवनीय में पीछे सर्वतः स्था-  
पन करें (सर्वत्र वास करता विश्वावसु) द्युर्लोकस्थ सोम की रक्षा  
करने तिस के मर्माप में सर्वत्र गन्धर्व वास करते हैं इति श्रुत्यन्तर-  
कथा । किसलिये स्थापन करें । आहवनीय स्थानरूप के हिंसा परि-  
हारार्थ । परिधि के अभाव में असुर हिंसा करते हैं । किं च तू केव-  
ल अग्निही का परिधि नहीं यजमान को भी असुरों से रक्षा कर-  
ने पश्चिम दिशा में स्थापित है । ओम् आहवनीय का प्रथम आता  
भुवपतिनामा अग्निरूप तू है । स्तुति योग्य अत एव होताओं क-  
रि स्तुति किया ॥ दक्षिणं परिधिं परिदधाति । हे अग्नि के द्वितीय  
आता भुवनपतिनामा द्वितीय परिधे तू रक्षा करने को समर्थ है  
इस हेतु इन्द्र का दक्षिण बाहू है विश्वस्येत्यादि व्याख्यातम् ॥ तृ-  
तीयमुत्तरं परिधिं परिदधाति । हे तृतीय परिधे (अग्नि के तीसरे आ-  
ता भूतानां पते) मित्रावरुणो (वाय्वादित्यो) स्थिरधारण करि उत्तर  
दिशा में तुम्हें सर्वतः स्थापन करें । अन्यत्पूर्ववत् ॥ ३ ॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने  
बृहन्तमध्वरे ॥ ४ ॥

का० २. ८. २. प्रथम परिधि को समिध छुवा करि वीतिहोत्रमिति  
मन्त्र से आहवनीय में आधान करें ॥ विश्वावसु दृष्टा अग्निदेवत्या गा-  
यत्री छन्दस्का । हे कवे (क्रान्तदर्शिनू भूतभविष्यतवर्तमान दूरवर्ती  
पदार्थों के जाननेवाले) हे अग्ने यागनिमित्त में तुम्हें हम इस इधम



ए ररेवे ॥ आसुरी अनुष्टुप् प्रस्तरो दे०। वसवो रुद्रा आदित्याः क्र-  
मेण प्रातः-माध्यन्दिन-तृतीय) तीनों सवनों के देवता तुम्हें सर्व-  
तः प्रसारें ॥५॥

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियेण सद्  
आसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना  
प्रियेण सद् आसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं  
प्रियेण धाम्ना प्रियेण सद् आसीद प्रियेण धाम्ना प्रि-  
येण सद् आसीद ध्रुवा असदन्वृतस्य योनौ ता विष्णो  
पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥६॥

का० २. ८. १२. १३. अध्वर्यु आग्नीध्र करि समर्पिता जुहू को लेक-  
र सव्य हस्त से अविमुक्त प्रस्तर पर प्रागग्र ररेवे इतर मन्त्रों से  
उपभृत् और ध्रुवा को ररेवे ॥ घृताच्यसि जुहूर्नाम्नेति साम्नी त्रिष्टुप्  
जुहूर्दे०। हे जुहू तू घृताची (घृतपूर्ण) और नाम करि जुहू (हो-  
मनेवाली) है। सो तू प्रियधाम (देववल्लभमध्युत) सहित इस प्र-  
स्तर पर स्थित हो ॥ उपभृत् को ररेवे ॥ सा-त्रि० उपभृदे०। उप (समी-  
प में स्थित हो आज्य को धारण करता) उपभृत्। अन्यद्वारव्या-  
तम् ॥ ध्रुवा को ररेवे ॥ सा-त्रि ध्रुवादे०। जैसे होम के अर्थ जुहू उप-  
भृत् चलते हैं तैसे यह नहीं चलता इस हेतु नाम करि ध्रुवा है। अ-  
न्यदुक्तम् ॥ का० २. ८. १४. प्रियेण धाम्नेति आज्यस्थालीं पुरोडा-  
शादि प्रत्येक हवियों को वेदिपर रखिके ॥ माजुषी जगती हविर्दे०।  
हे हवि घृत सहित प्रियस्थान में स्थित हो इत्येकैक हविः सम्बो-

+ प्रियधाम प्रकीर्तनम् एतदेवैवास्मिन् प्रियतमं  
यदुपमिति शत० १. ३. २. २०. अन्ते।

+ घृ-दा.अ.१.३.३. प्रि-दा.अ.१.३.३. ध्रु-माल.०.पा-मू. आ.भा.६॥



अवचनम् ॥ का० २. ८. १६. ध्रुवाभ्यसदन्निति सर्वों को स्पर्श करे ॥ यजुः विष्णुर्दे० ॥ ऋत (अवश्य भाविफलोपेत सत्य यज्ञ) के स्थान में जे हवि ररेवे तिन्हें हे विष्णो (व्यापक यज्ञ पुरुष) रक्षा करि और यज्ञ को तथा यज्ञयति (यजमान) को रक्षा करि ॥ का० २. ८. २०. पाहि मामिति अपने को स्पर्श करे ॥ याजुषी गायत्री विष्णुर्दे० ॥ मुख्य यज्ञ करानेवाले अध्वर्यु को रक्षा करि ॥ ६ ॥

अ० २. अग्ने वाजजिह्वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितॄं सम्मार्ज्मि । नमो देवभ्यः स्वधा पितॄभ्यः सुयमे मे भूयास्तमस्केन्नमद्य ॥ ७ ॥ †

अस्केन्नमद्य देवेभ्य आज्यॄं सम्भ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिष वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषु विष्णो स्थानमसीत इन्द्रो वीर्यमक्रणोद्धूर्ध्वध्वर आस्थात् ॥ ८ ॥ †

अग्ने वेहोत्रं वेदूत्यमवतां त्वा द्यावापृथिवी अब त्वं द्यावापृथिवीस्विष्टकृद्देवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९ ॥ †

का० ३. १. १३. इध्मवाधने के तृणमय जून से दक्षिण परिधि के समीप अग्नि को तीन बार मार्जन करे अग्ने वाजजित् मन्त्र करि एकवार चुपके से दो बार तैसे ही मध्यमोत्तर परिधियों को ॥ यजुः अग्निदे० ॥ हे वाजजित् (अन्नों के जीतनेवाले) हे अग्ने तुम्हें शोधन करता हूँ । कैसे तुम्हें कि अन्नसम्पा-

† अ-ज्मि । अ० न-म्यः । इ० स्व-म्यः । उ० सु-म । ऋ० ॥ ७ ॥

† अ-मू । लु० क-सि । आ० इ-हा । ई० ॥ ८ ॥

† सं-तिः । ऊ० ॥ ९ ॥



तस्य भाष्यं निपातः पितृ उदिष्य देवदत्तस्य दत्ते वर्तते।

दनीपयुक्त तथा अन्नप्रतिबन्धनिवारक को ॥ का० ३० १० १५० आह-  
वनीय से पश्चिम हाथ जोड़े नमो देवेभ्य इति ॥ देवीपंक्तिः देवा  
दे० जे देवता अनुष्ठान को अनुग्रह करते हैं तिन्हों के अर्थ  
नमस्कार ॥ का० ३० १० १५० पूर्वमुख करि आदि में देवताओं  
को अत्यर्थ अञ्जलि करी स्वधा पितृभ्य इति पितरों को अ-  
त्यर्थ दक्षिणमुख उत्तान अञ्जलि करै ॥ देवीपंक्ति पितरों  
दे० जे पितर (पालक) हैं तिन्हों के अर्थ स्वधा हो + अर्थीतु जो  
देने योग्य है सो दूंगा ॥ अन्नमन्त्र द्रव्येन देवाः पितरश्चापच-  
र्यन्ते ॥ का० ३० १० १६० सुयमे मः इति जुहु उपभृत को लेंके ॥  
आर्ची उषाक जुहूपभृदेवते। हे जुहूपभृतों मेरे अर्थ जैसे  
तुम में स्थित आज्य न गिरै तैसे धारण करै ॥ ७॥ तथा सति आ-  
ज इस अनुष्ठानदिन में देवताओं के उपकारार्थ तुम में स्थि-  
त धृत भूमि में जैसे न गिरै तैसे पोषण वा धारण करता हूँ ॥  
का० ३० १० १६० अङ्घ्रिणा विष्णुविति दक्षिणदिशा (यजने के स्था-  
न) प्रति गमन करै ॥ याजुषी विष्णुपू विष्णुर्दे० हे विष्णो (व्या-  
पक यज्ञपुरुष) पाद करि तुम्हें अवक्रमण नहीं करता अर्थी-  
तु पाद करि अतिक्रमणदोष मुझे न हो ॥ का० ३० १० १७० वसुम-  
तीमिति अवस्थान करि ईशानाभिमुख स्थित होके ॥ अग्निदेव-  
त्यं यजुः ॥ हे अग्ने तेरी छाया (छायावत्समीपवर्तिनी) वसुमती  
(भूमि) की सेवन करूंगा। स एव सेवाप्रकारः कथ्यते। हे वसु-  
मति तू विष्णु (यज्ञ) का स्थान है। अर्थीतु यहां बैठ कर यज्ञ

करने को समर्थ होते हैं। आहुवनीय के समीपवर्तित्व से इस भूमि का यज्ञस्थानत्व है। यद्वायमर्थः। हे अग्ने तेरी धनवती (धनप्राप्ति करी) छाया को सेवन करूंगा (तेरी पादछाया में वाम करूंगा क्यों कि तू विष्णु का स्थान है ॥ का० ३. २. १० इत इन्द्र इति त्वाम् ॥ इन्द्रदेवत्यं यजुः। पूर्वमन्त्र में यज्ञसम्बन्धि जो स्थान कहा सो ही देवताओं के विजयहेतुत्व से इतः शब्द करि परामृश्यते। देवयजनव्यतिरिक्त भूमि के असुरार्थान्वय करि तहां देवताओं की पराजय में भी यज्ञप्रदेश पराजय गहित है। सो ही मन्त्र करि कहिये हैं ॥ इन्द्र इस देवयजनस्थान से उद्युक्त होकर इति शेषः। वीर्य शत्रुवधरूपकर्म करेगा अत एव यज्ञ उन्नति को प्राप्त होगा। इन्द्र के वीर्य करते शत्रुघ्नतविघ्नाभाव से यज्ञ का शोन्नत्य है ॥ ८ ॥ तिस हेतु हे अग्ने तू हाता के कर्म को जानि अपौरुषतकर्म को जानि +। तुरु ऐसे को द्यावापृथिवी पालन करें। हे अग्ने तू भी द्यावापृथिवी दोनों लोक देवताओं को पालन करि ऐसे अन्योन्यपालन से इन्द्र हमारे दिये आज्य हवि करि देवताओं के अर्थ स्विष्टकृत (भले अभीष्टफल का दाता) हो। जो-जो हम करें सो-सो इष्ट सर्व वै कल्यारहित करें। स्वाहा सुहुतमम्तु। अर्थात् इन्द्र देवता को उद्देश करि यह आज्य दिया ॥ का० ३. २. २० संज्योतिर्योत जूह के आज्य का विन्दु ध्रुवा में डालें ॥ याजुषी गायत्री आज्य दे० ध्रुवास्थिताज्यरूपज्योति सहित जुहामिच्यमानरूपज्योति संगत हो ॥ ८ ॥

उभय  
श्रुति. १. ४. ५. ४  
कर्म, तथा च पातः श्रुति. १. ४. ५. ४  
+ ज्योतिर्योत जूह के आज्य का विन्दु ध्रुवा में डालें

अ० ३. मयीइमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान्नायौ मघवीनः स-  
चन्ताम् । अस्माकर्तुं सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वा-  
शिष उपहृता पृथिवी मातोप मायुपृथिवी माता  
हव्यतामग्निराग्नी धात्स्वाहा ॥१०॥

का० ३.४.२४. प्रधानयाग के अनन्तर पुरोडाशशेष आशन के स-  
मय होता के आशिष देते यजनान जपे ॥ आशीः प्रतिग्रहणं यजुः ॥  
इन्द्र (परमेश्वर) मेरा अपेक्षित इन्द्रिय (वीर्य) मुझ यजमान में स्था-  
पन करें । किं च देवमानुषभंद करि द्विविध धन और धनवन्त ह-  
म यजमानों को सेवन करें । किं च हम यजमानों के आशिष अभी-  
ष्टार्थ के आशंसन हों । किं च हमारे पूर्वोक्ता आशिषः सत्य हों ॥  
का० ३.४.१८-२०. जब कि होता द्यावापृथिवी का उपह्वान करें  
तब दोनों पुरोडाशों से एक-एक अंश को छै-छै भाग करि आग्नी-  
ध के अर्थ देवों और सो उपहृतेति मन्त्र करि भक्षण करें ॥ पृथिवी दे-  
यजुः । जो यह पृथिवी दीरे है सो जगत की माता (निर्मात्री) मु-  
झ करि अभ्यनुज्ञाता और सो पृथिवी मातृत्व करि हमलोंगों  
से भावितासती मुझे हविः शेष भक्षण के अर्थ आज्ञा दे । और  
में आग्नीध (अग्नि कर्म करने वाला) हूं तिस कारण अग्नि हो ति-  
स भाग को भोजन करता हूं इति शेषः । स्वाहा (जाठराग्नि में सुहु-  
त हो ॥१०॥

उपहृतो द्यौष्यतोप मां द्यौष्यता हव्यतामग्निराग्नी-  
धात्स्वाहा ।

ब्रह्मत्वम् आङ्गिरसो बृहस्पतेरार्षभू  
 देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणो हस्ता-  
 भ्याम् । प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्टुास्येन प्राञ्जामि ॥१२॥  
 द्वितीयं प्रश्नाति उपहृतोद्यौरिति यजुः द्यौर्दे० एव द्यौः पिता  
 (जगत्यालक) उपहृतयतामित्यादि समानार्थ हैं ॥ देवस्य त्वा ।  
 इतः प्रश्नाति ताम् प्रातिष्ठेत्यन्त कण्ड० १३ ब्रह्मत्वम् तिस का अ-  
 ङ्गिरा का पुत्र बृहस्पति ऋषि है ॥ का० २.२.१६ ब्रह्मा देवस्य त्वे-  
 ति प्राशिन्न को गृहण करे ॥ देवस्य त्वा व्याख्याता १.१० प्रतिगृ-  
 ह्णामि देवीपति । प्रतिगृह्णामि स्वीकार करता हूं इति शेषः ॥  
 का० २.२.२० अग्नेष्टिति विनदांत लगाये प्राशिन्न को ब्रह्मा अ-  
 नामिका अङ्गुष्ठ में ले भांजन करे ॥ प्राजापत्या गायत्री प्राशिन्न-  
 दे० हे प्राशिन्न अग्नि के मुख करि तुम्हें भक्षण करता हूं ॥११॥  
 एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । ते-  
 न यज्ञमेव तेन यज्ञपतिं तेन मामेव ॥१२॥  
 मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं ते-  
 नोत्वरिष्टं यज्ञं समिमं दधातु । विश्वे देवांस इह  
 मादयन्तामोऽम्प्रतिष्ठ ॥१३॥

का० २.२.२१ समिदाधान करने को आज्ञाप्रदान के अर्थ बोधन  
 किया ब्रह्मा एतं त इत्यादि ओम्प्रतिष्ठेत्यन्त मन्त्र करि आज्ञा दे ॥  
 वैश्वदेवं यजुः ॥ हे देव दातादिगुणयुक्त हे सवितः उत्पन्नकारक  
 इस समय क्रियमाण यह यज्ञ तेरे अर्थ यजमान कहिते हैं । किं

च तुम् कारे प्रेरित देवताओं के यज्ञ में जो ब्रह्मा तिस ब्रह्मा और  
 बृहस्पति के अर्थ भी कहते हैं। जैसे बृहस्पति देवताओं का ब्रह्मा  
 ऐसे ही तदधिष्ठित यह मनुष्य ब्रह्मत्व को करता है कि च तिस  
 हेतु करि अपने यज्ञ को रक्षा करि। तथा तिस ही हेतु से यज्ञपति  
 (यजमान) को रक्षा करि। तथा मुम् ब्रह्मा को पालन करि ॥१२॥  
 किं च हे सवितः अपन्न मन (चित्त) को यज्ञ सम्बन्धि आज्य में स्था-  
 पन कारि। कैसा मन कि भूतमविष्यद्वर्तमान तीनों कालगत पदा-  
 र्थों में गमन शील को। किं च बृहस्पति इस यज्ञ को विस्तार करे,  
 क्यों कि ब्रह्मा है। फिर इस यज्ञ का हिंसारहित करि के स्थापन  
 करे। क्यों कि इडामक्षणा से मध्य में यज्ञ विच्छन्न हुआ इस हेतु क-  
 हा। और सब देवता इस यज्ञ कर्म में तृप्त हों। एवं प्रार्थितः सविता  
 ओम्प्रतिष्ठ यह अनुज्ञा दे। ओम् अङ्गीकारार्थः। प्रतिष्ठ प्रयाण  
 कुरु। अर्थात् समिदाधान काल में यजमान के अभिप्रेत प्रयाण  
 को जानि सविता देवता अङ्गीकरि प्रयाण में प्रेरणा करे ॥१३॥

॥ ब्रह्मत्वं समाप्तम् ॥

एषा तेऽग्ने समिन्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व ॥  
 वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि। अग्ने  
 वाजजिह्वाजं त्वा सस्वार्धसं वाजजितुर्धं सम्मा-  
 र्जिम् ॥१४॥ + ए-हि। अ०। अ-जि। दृ०॥ १४॥

का० ३.५.२. एषा त इति होता समिधा को अनुमन्त्रण करे। अ-  
 तः प्राकृतमार्घ्यम्। इयमनुष्टुबग्निदेवत्या। हे अग्ने यह तेरी





को प्राप्त होंगा। अन्न (पुरोडाशादि) की अभ्यनुज्ञा करि में जुहूरूपधारी यजमान प्रकृष्ट उत्साह को पहुंचेंगा॥ उपभृत् को पश्चिम में स्थापन करें अग्नीषोमाविति। जो असुरादि शत्रु हमारे यज्ञ विनाश के अर्थ द्वेष करें और जिस आलस्यादिस्वप्न हमारे अनुष्ठानविरोधी शत्रु को विनाश के अर्थ हम उद्योग करें तिन उभयविध शत्रु को अग्नीषोमों देवों निरा करें। किं च में भी इन द्विविधशत्रुओं को उपभृद्रूप पुरोडाशदेवता की अनुज्ञा करि तिरस्कार करूंगा॥ उत्तरी मन्त्रों दर्श देवता विषयों समानार्थी॥ १५॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वा दित्येभ्यस्त्वा संजानाथाद्य-  
वापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु  
वयोऽक्तं रिहाणा मरुता पृषतीर्गच्छ वशा पृश्नि-  
भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्या  
अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि॥ १६॥ +

का० ३५२४० अध्वर्यु जुह उपभृत् का प्रोक्षण करि पूर्ववत् यथा स्थान लाके उपभृत् को स्थापन करि जुहू से मार्जन करें वसुभ्यस्त्वेति मन्त्र करि प्रत्येक परिधियों को॥ वसुभ्यस्त्वेति द्वे १२ देवीबृहती आदित्येभ्यस्त्वा ३ देवीपङ्क्तिः त्रयाणां परिधयो देवता। हे मध्यम परिधे वसुदेवताओं की प्रीत्यर्थ तुम्हें मार्जन करता हूँ। एवं दक्षिणोत्तरपरिधि मन्त्रों व्याख्यायें। तीनों परिधियों के मार्जन करि तीनों सबनों के देवता नृप होते हैं इति भावः॥ का० ३६३ संजानाथामिति अध्वर्यु प्रस्तरग्र-



हण करै ॥ प्रस्तरदेवत्यं यजुः ॥ हे द्यावापृथिवी (द्युलोकभूलोकदे-  
व्यौ) तुम गृह्यमाण प्रस्तर को भले प्रकार जानों ॥ किं च हे प्रस्तर  
मित्रावरुणौ (प्राणापानवायू) जलवर्षण करि तुम्हें रक्षा करें ॥ वायु  
वैवर्षस्येष्टे १.८.३.१२ इत्युक्तवात् वायु वर्षा का स्वामी है ॥ और  
र वोह अध्यात्मगतः प्राणोदानरूप मित्रावरुणशब्दसे कहिला  
ता है ॥ और सो प्रस्तररूपयजमान की वृष्टि से रक्षा करै ॥ का  
३.६.४.१० ग्रहण किये प्रस्तर के अग्रमध्यमूलभागों को क्रम  
से जुहु उपभुत् ध्रुवास्थित घृतसे लिप्त करै व्यन्तु वय इति ॥  
प्रास्तरं यजुः ॥ यक्षिरूपापन्न गायत्र्यादि छन्द मृतलिप्त प्रस्तर  
को लेंके आस्वादन करते हुए जावें ॥ का० ३.६.८ मरुतामिति  
एक तृण को प्रस्तर से पृथक् करिके प्रस्तर को नीचे ले अग्नि  
में डालें ॥ प्रस्तरदेवत्योपरिष्ठाहृहती कपिदृष्टा चतुर्थः पादश्रा  
ग्नयः ॥ हे प्रस्तर तू मरुन्नामक देवताओं सम्बन्धिनी पृषतीः (वा  
हनरूपा चित्रवर्णा अश्वारुणौ) को प्राप्त हो (वायुवाहनवहेग, अ-  
न्तरिक्ष को जा ॥ वशा (स्वाधीना) पुष्णि (अल्पशरीरगो) (कामधेनु  
वत्पुष्पिकरी) होकर स्वर्ग को जा ॥ फिर स्वर्गप्राप्ति के अनन्तर हमा-  
रे अर्थ भूलोक में वृष्टि ला ॥ यद्वा ॥ वशा पुष्णि (पृथिवी +) सम्बन्धि  
भागों को लेकर स्वर्ग को जा ॥ हे प्रस्तर तू अन्तरिक्ष को जाके तत्र  
स्थ सवाहन मरुतों को तृप्त करिके स्वर्ग को जाकर और देवता-  
ओं को तृप्त करिके वृष्टि करि इत्याहुति परिणाम सूचित इति भा-  
वः ॥ का० ३.६.१५ चक्षुष्या इति अपने को स्पर्श करै ॥ हे अग्ने

यजमानः वे प्रस्तर इति १.८.३.१२

प्रास्तरं यजुः ॥ यक्षिरूपापन्न गायत्र्यादि छन्द मृतलिप्त प्रस्तर को लेंके आस्वादन करते हुए जावें ॥ का० ३.६.८ मरुतामिति एक तृण को प्रस्तर से पृथक् करिके प्रस्तर को नीचे ले अग्नि में डालें ॥ प्रस्तरदेवत्योपरिष्ठाहृहती कपिदृष्टा चतुर्थः पादश्राग्नयः ॥ हे प्रस्तर तू मरुन्नामक देवताओं सम्बन्धिनी पृषतीः (वाहनरूपा चित्रवर्णा अश्वारुणौ) को प्राप्त हो (वायुवाहनवहेग, अन्तरिक्ष को जा ॥ वशा (स्वाधीना) पुष्णि (अल्पशरीरगो) (कामधेनु वत्पुष्पिकरी) होकर स्वर्ग को जा ॥ फिर स्वर्गप्राप्ति के अनन्तर हमार

तू जिस कारण ज्वाला से अन्यकार को निवारण करि के नेत्रों का पालक है इस हेतु मेरे नेत्रों को पालि (प्रस्तर प्रहरण प्रसक्त नेत्रों के उपद्रव को निवारण करि ॥१६॥

यं परिधिं पर्यधत्वा अग्ने देव परिधिर्गुह्यमानः।  
तं तः एतमनु जोषम्भराम्येष नेत्रदपचेतया-  
ता अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥१७॥†

का० ३०६०१७० अर्धयु परिधिओं को आहवनीयाग्नि में डाले यं परिधिमिति प्रथम को ॥ विरडूपात्रिष्टुबाग्नयी यजुरन्ता। अग्नेः प्रियमिति यजुः। देवलदृष्टा। हे अग्ने देव आहवनीयाप-  
णि असुर करि संरुध्यमानः सन् तू जिस परिधि को पश्चिम दि-  
शा में असुरों पद्रवनिवारण के अर्थ स्थापन करता हुआ। तिस-  
तेरे प्यारे इस परिधि को अग्नि में डालता हूँ। अनुः (भिन्न-  
क्रमः)। यह परिधि तेरे सकाश से अपगत चित्त न हो। तुरू में  
ही स्थित हो ॥ का० ३०६०१७० अग्नेः प्रियमिति दक्षिणोत्तरप-  
रिधिओं को साथ ही डाले ॥ हे परिधी तू म आहवनीयाग्नि-  
के अभिप्रेत अन्न (अन्नत्व) को प्राप्त होओ ॥१७॥

सथं स्रवभागा स्थेया बृहन्तः प्रस्तरेष्टाः परिधि-  
योश्च देवाः। इमां वचिमभि विश्वे गृणान्त आ-  
सद्यास्मिन्वर्हिषि मादयध्वं स्वाहा वाट ॥१८॥†

का० ३०६०१८० सथं स्रवभागा इति सथं स्रवों को हमें ॥ वैश्व-  
देवी त्रिष्टुब्यजुरन्ता। स्वाहा वाडिति यजुः। सोमसुक्ष्मदृष्टा।

† सं-मू.  
अ० ११०॥

† यं-ते। अ० ११०-मू। इ० ॥१७॥

† सं-मू। अ० ११०-स्वा-ट। इ० ॥१८॥



रिक्त यज्ञ को करें †। मेरी शोभनयाग में प्राप्ति करें ॥१५॥

अ० ५० अग्नेऽद्व्यायोऽशीतम पाहि आ दिद्योः पाहि प्रसि-  
त्ये पाहि दुरिक्ष्ये पाहि दुरद्व्याऽऽविष नः पितुं  
कृणु सुषदा योनौ स्वाहा वाङ्मनये संवेशयतये  
स्वाहा सरस्वत्ये यशोभगिन्ये स्वाहा ॥२०॥ †

का० ३०७०१७० सुक् और सुवा को होम के अर्थ अध्वर्यु ग्रहण  
करें। अग्नेऽद्व्यायविति संस्त्रवों को होमें ॥ गार्हपत्याग्निदेवत्यं य-  
जुः॥ हे अद्व्यायो (अहिंसितयजमान) हे अशीतम (भोक्तृत्तम वा  
व्यापकतम) हे अग्ने गार्हपत्य मुझे वज्र (शत्रु प्रयुक्त वज्रस-  
म आयुध) से रक्षा करि। प्रसिति (बन्धनहेतु भूतजाल) से मुझे रक्षा  
करि। अशास्त्रीययाग से मुझे र०। दूषित भोजन से मुझे ० किं-  
च हमारे पितु (अन्न हविरूप) को विष रहित करि। सुषदायो-  
नो (सम्यगवस्थानयोग्य घर में) मुझे स्थापन करि इति शे-  
षः॥ यहा घर में स्थित हमारे अन्न को अविष करि। स्वाहा  
वाङ्मिति पदे व्याख्याते ॥ का० ३०७०१८० दक्षिणाग्नि में होमें  
अग्नये इति और सरस्वत्ये इति ॥ अग्नये दक्षिणाग्निदे० स-  
रस्वत्ये लिङ्गोक्त दे० हे यजुस्त्रिष्टुबो। स्त्रीपुरुष के अभिलाष-  
पूर्वक शयन के पति अग्निके अर्थ स्वाहा (हवि दिया ॥ जीवन  
पर्यन्त पुरुष के यश (प्रशंसा) की बहिनि सरस्वती (वाग्मूपा)  
के अर्थ स्वाहा ॥२०॥

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन

महं वेदो भूयाः॥ देवा गातुविदो गातुं विन्त्वा गातुमि-

त॥ मनसस्यत इमं देव यज्ञं स्वाहा वाते ध्याः ॥ २१ ॥

का० ३. ८. १. यजमानपत्नी वेद (कुशमुष्टिपूलक) को खोलि वेदोऽ-

सीति॥ वेददेवत्यं यजुः॥ हे कुशमुष्टिनिर्मित पदार्थ तू वेद (ऋगाद्या-

त्मक यद्वा ज्ञाता) है। हे द्योतनात्मक वेद जिस कारण करि तू देवताओं

का ज्ञापक हुआ तिसी कारण मेरा ज्ञापक हो॥ का० ३. ८. ४. सानिष्ट-

यजु हमें देवा गातुविद इति॥ मनसस्यति दृष्टा विराट् कन्दरका वा-

तदेवत्या॥ अस्याः पूर्वार्धेन देवता विसृजति॥ हे गातुविदः (यज्ञवेता-

रे देवाः) हमारा यज्ञ प्रवृत्त हुआ यह जानिकर यज्ञ प्रति आण वा-

गातुं (मन्तव्य-मार्ग) हमारे यज्ञ करि तुष्ट हुआ स्वमार्ग को जाओ। ग-

वं देवान्विसृज्य चन्द्रं प्रत्याह॥ हे मनसस्यते (मनके अधिपते चन्द्रः) वा-

देवताओं के यजने के लिये मन के प्रवर्तक परमेश्वरः तं प्रत्युच्यते॥ हे म-

नसस्यते (परमेश्वरः) हे देव यह अनुष्ठित यज्ञ स्वाहा (तं हाथ में

देता हूँ) और तू तिस यज्ञ को वायुरूप देवता में स्थापन करि वाते

हि यज्ञोऽवतिष्ठते॥ तदुक्तं श्रुत्या॥ वायुरेवाग्निस्तस्माद्यदेवाध्वर्यु-

रुत्तमं कर्म करोत्यथे तमेवाप्येतीति॥ २१ ॥

सम्बर्हिरङ्गाथं हविषा घृतेन समादित्येव सुमिः सम्म-

रुद्धिः॥ समिन्द्रो विश्वदेवभिरङ्गा दिव्यं तमो गच्छतु

यत्स्वाहा॥ २२ ॥

का० ३. ८. ५. सम्बर्हिरिति बर्हि हमें॥ लिङ्गोक्तदेवत्या त्रिष्टुब्धिरङ्गा-

इन्द्रहविः संस्कारयुक्त घृत करिके बर्हिँ भले प्रकार अञ्जनोपेत (लिप्त)

वेदो भूयाः॥ देवा गातुविदो गातुं विन्त्वा गातुमि-  
त॥ मनसस्यत इमं देव यज्ञं स्वाहा वाते ध्याः ॥ २१ ॥  
का० ३. ८. १. यजमानपत्नी वेद (कुशमुष्टिपूलक) को खोलि वेदोऽ-  
सीति॥ वेददेवत्यं यजुः॥ हे कुशमुष्टिनिर्मित पदार्थ तू वेद (ऋगाद्या-  
त्मक यद्वा ज्ञाता) है। हे द्योतनात्मक वेद जिस कारण करि तू देवताओं  
का ज्ञापक हुआ तिसी कारण मेरा ज्ञापक हो॥ का० ३. ८. ४. सानिष्ट-  
यजु हमें देवा गातुविद इति॥ मनसस्यति दृष्टा विराट् कन्दरका वा-  
तदेवत्या॥ अस्याः पूर्वार्धेन देवता विसृजति॥ हे गातुविदः (यज्ञवेता-  
रे देवाः) हमारा यज्ञ प्रवृत्त हुआ यह जानिकर यज्ञ प्रति आण वा-  
गातुं (मन्तव्य-मार्ग) हमारे यज्ञ करि तुष्ट हुआ स्वमार्ग को जाओ। ग-  
वं देवान्विसृज्य चन्द्रं प्रत्याह॥ हे मनसस्यते (मनके अधिपते चन्द्रः) वा-  
देवताओं के यजने के लिये मन के प्रवर्तक परमेश्वरः तं प्रत्युच्यते॥ हे म-  
नसस्यते (परमेश्वरः) हे देव यह अनुष्ठित यज्ञ स्वाहा (तं हाथ में  
देता हूँ) और तू तिस यज्ञ को वायुरूप देवता में स्थापन करि वाते  
हि यज्ञोऽवतिष्ठते॥ तदुक्तं श्रुत्या॥ वायुरेवाग्निस्तस्माद्यदेवाध्वर्यु-  
रुत्तमं कर्म करोत्यथे तमेवाप्येतीति॥ २१ ॥  
सम्बर्हिरङ्गाथं हविषा घृतेन समादित्येव सुमिः सम्म-  
रुद्धिः॥ समिन्द्रो विश्वदेवभिरङ्गा दिव्यं तमो गच्छतु  
यत्स्वाहा॥ २२ ॥  
का० ३. ८. ५. सम्बर्हिरिति बर्हि हमें॥ लिङ्गोक्तदेवत्या त्रिष्टुब्धिरङ्गा-  
इन्द्रहविः संस्कारयुक्त घृत करिके बर्हिँ भले प्रकार अञ्जनोपेत (लिप्त)

करे। और केवल सो इन्द्र ही नहीं किं नु आदित्य वसु मरुत और विश्व नामक गण देवों सहित लिप्त करे। वस्वादि सहित इन्द्र करि लिप्त करी सो बर्हि जो कि दिव्य नभो (आदित्यलक्षणा ज्योति) है तिसै प्राप्त हो। स्वाहा (यह बर्हि देवता के उद्देश करि दिया)॥२२॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा वि-  
मुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषय रक्षसाम्भा-  
गोऽसि ॥२३॥ + - + क-य।अ.१.र.सि.दू०॥२३॥

का० ३.८.६. अध्वर्यु आहवनीयाग्नि को परिक्रमा दे वेदी के दक्षिणभाग में उदङ्मुख बैठि प्राणीता ले वेदी के मध्य में रख तहां ही ओंधावे कस्वेति॥ कस्वेति यजुः प्रजापतिदे०। व्याख्यातो अध्या० १०.६. मन्त्रः तहां यज्ञयोग में परं तु यहां यज्ञविमोक में नियुक्त है। पोषय (यजमान के पुत्रादिकों के पोषण के अर्थ तुम्हें) ओंधाता हूं इति शेषः +॥ का० ३.८.७. पुरोडाशकपाल करि कृष्णाजिन के नीचे ही कणों को उत्कर में डालें॥ रक्षसामिति याजुषी गायत्री रक्षो देवता। हे कण समूह तू रक्षसों का भाग है (तिन्हों के नीचजातित्व से निरुष्टभाग युक्त है)॥२३॥

अथ याजमानम्

अ० ६. सं वर्चसा पर्यसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सर्गं शि-  
वेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रक्षोऽनुमार्ष्टु तन्वो य-  
द्विलिष्टम्॥२४॥

+ यो वे यज्ञं यजुष्य न विमुञ्चत्यप्रतिशान्तिं वे  
स भवतीति श्रुत्यन्तरवचनात्।



त्वष्ट्रदेवत्या त्रिष्टुप्। का० ३.८.८-१० पूर्णपात्र को ले पूर्व से आहवनीय को फेर दे दक्षिण से उत्तरभिमुख यजमान की अञ्जलि में संतत जल छोड़े छूटते पूर्णपात्र को यजमान संवर्चसेति अञ्जलि करि गृहण करे फिरि चुपके से मुँह धोवै ॥ अर्थः। ब्रह्मतेज करि हम संगत हुए। क्षीरादिरस करि संग०। तनूः (अनुष्ठानक्षम शरीरावयवों वा भार्यापुत्रादि) करि संग०। शान्त कर्म श्रद्धा युक्त मन करि संग०। यज्ञ को समीप जाते मनुष्य के ब्रह्मतेजादि प्राप्त होते हैं तिनहें फिरि भी इस से पूर्ण करता है। किं च शोभनदानः त्वष्टा धनों को विविध स्थापन करे। हमारे शरीर का जो न्यून अङ्ग तिसे न्यूनत्वपरिहारेण अनुकूल करिके शोधै। अर्थात् धन शरीर की पुष्टि करे ॥ २४ ॥

दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्देष्टि यं च वयं द्विष्मोन्नरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्देष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्देष्टि यं च वयं द्विष्मोस्मादन्नादुस्यै प्रतिष्ठायाऽअगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ॥ २५ ॥ +

का० ३.८.११.१२ यजमान अपने आसन से उठि वेदी की दक्षिणश्रीणि से ले आहवनीय के पूर्व में तीनि विष्णुक्रमसंज्ञक प्रदक्षिणा (विष्णुपाद बुद्धि करि अपनेपाद का भूमि में क्षपण) क-

+ दि-ष्मः। अ० अ-ष्मः। त्रै० पृ-ष्मः। उ० अ-त्। अ० अ-पै। ल० अ-स्वः। शा० सं-म। इ० ॥ २५ ॥



दे दिवि विष्णुरित्यादि तीन मन्त्रों वा पृथिवी अन्तरिक्षदिवी-  
 त्यादि ऊँचे आरोहण क्रम से ॥ दिवि विष्णुरिति त्रीणि यजूंश्च  
 यि विष्णुदेवत्यानि । विष्णु (यज्ञपुरुष) जगती छन्दस्वरूप अपने  
 पाद से ध्रुलोक में विशेषण परिक्रमा करता हुआ । तथा सति त-  
 तो ध्रुलोक से निर्भक्तः । भागरहित करिके निकाला । कोन कि जो हमें देखे प्रीति  
 नहीं करता और जिसे देखे हम प्रीति नहीं करते सो दिवि विष्णु ॥ एव मुत्तराव-  
 पि विष्णुक्रममन्त्रो आख्येयौ ॥ का० ३. ८. १३. अस्मादन्नादिति  
 अपने भाग को देखे ॥ अस्मादन्नादिति देवी बृहती भागो दे०  
 जो यह भाग दीखता है मुझ यजमान के भाग से निर्भक्त इति  
 वाक्य शेषोऽनुवर्तनीयः ॥ का० ३. ८. १४. अस्मै प्रतिष्ठाया इति  
 भूमि को देखे ॥ याजुषी गायत्री भूमिर्दे० । इस सामने दृश्यमाना  
 प्रतिष्ठा हेतु यज्ञभूमि से निर्भक्त इत्यादि पूर्ववत् ॥ का० ३. ८. १५.  
 अगन्मस्वरिति पूर्व को देखे ॥ देवी बृहती देवा देवता । पूर्वदिशा में  
 स्थिति स्वः (सूर्य वा आकाश) को हम यज्ञानुष्ठान करि प्राप्त हुये ॥  
 का० ३. ८. १६. संज्योतिषेत्याहवनीय को देखे ॥ याजुषी गाय-  
 त्री आहवनीयाग्निदे० आहवनीयलक्षणज्योति करि हम  
 संगत हुए ॥ १५ ॥

स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि ।

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ १६ ॥ +

का० ३. ८. १७. स्वयम्भूरिति सूर्य को देखे ॥ सूर्य देवतं यजुः । हे सूर्य  
 तू स्वयंसिद्ध है । श्रेष्ठ (प्रशस्यतम) रश्मि (माण्डलशरीर) अभिमानी

हिरण्यगर्भः है। सूर्य की सप्त रश्मि हैं। चारोंदिशा में चारि। एक ऊपर। एक नीचे। सातवीं मण्डलाभिमानि हिरण्यगर्भ पुरुष वोह श्रेष्ठ है सो तू है। यतः तू वर्चोदा (तेजकादाता) है + अतः मुझे ब्रह्म तेज दे॥ का० ३० १४० सूर्यस्येति प्रदक्षिणा करे॥ याजुषी बृहती सूर्य दे० सूर्य की सम्बन्धिनी आवर्तन को अनुसरण करि में भी आवर्तन करता हूँ॥ २६॥

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाग्नेऽहं गृहपतिना भूयामर्षं सुगृहपतिस्त्वमयाग्ने गृहपतिना भूयाः॥ अस्थूरि रौ गार्हपत्यानि सन्तु शतर्षं हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते॥ २७॥† अ-माः॥ अ० स-र्ते॥ इ०॥ २७॥

का० ३० २१० अग्ने गृहपते इति गार्हपत्याग्नि को उपस्थान (प्रकाश) करे॥ ब्राह्मी बृहती गार्हपत्याग्नि दे० हे मेरे गृह के पालक हे अग्ने तू गृहपालक के प्रसाद करि में शोभन गृहपालक होऊँ। तथा हे अग्ने तू भी मुझ गृहपति की करी सेवा से शोभन गृहपति हो। एवं सति हम गृहपतियों (स्त्रीपुरुषों) करि निष्पाद्य कर्म शतवर्ष पर्यन्त अस्थूरीव हों (निरन्तर अव्यवहित प्रवर्ते) एक पार्श्व में बलीवर्द युक्त शकट को स्थूरि कहिते हैं। लुप्तोपमानम् बलीवर्द युक्त शकट जैसे निरन्तर अव्यवहित चर्ते हैं तैसे हम गृहपतियों के हों॥ का० ३० २३० सूर्यस्येति प्रदक्षिणा दे॥ याजुषी बृहती सूर्य दे० व्याख्याता २६० इ०॥ २७॥

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीद-

† का० ३० १८० अथवा वर्चोदा के स्थान पर पुत्ररा धनरा गोदा अथवा इत्यादि जो कामना रखता है तिसे उच्चार करे॥

महं य एवास्मि सोऽस्मि ॥२८॥†

का० ३. ८. २४. व्रतग्रहण में दो मन्त्र कहे गये अध्या० १. का-  
ण्डी ५. तिन्हों के मध्य जिस (पहिले वा दूसरे) से व्रतादान किया  
हो यहां भी तिसी के अनुसार से व्रत को विसर्जन करें ॥ अग्ने  
व्रतपतः इति साम्नी यङ्क्तिः इदमहमिति याजुषी यङ्क्तिः हे आ-  
ग्नेये। हे अग्ने हे व्रतपते (कर्मपालक) मैं नें कर्म का अनुष्ठान  
किया और तेरे प्रसाद से कर्मशक्त हुआ और तूनें मेरा कर्म सि-  
द्ध किया ॥ द्वितीयो मन्त्रः ॥ हे अग्ने यह कर्म समाप्ति करि जो मैं  
पहिले था वोह ही मनुष्य हूं ॥२८॥

॥ इति यजमानर्हिसमाप्तम् ॥

॥ इति भाष्येषष्ठोऽनुवाकः ॥

॥ इति दर्शपूर्णमासेष्टि मन्त्राः समाप्ताः ॥

अतः परं पिण्डपितृयज्ञमन्त्रास्तेषां प्रजापतिर्ऋषिः

अ० ७० अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वा-  
हा। अपहता असुरा रक्षा धंसि वेदिषदः ॥ २६ ॥ +  
का० ४० १०७० अग्नि से थोड़े दके चोवन कि जिन्हों से स्थाली  
पूरण न होवै आसादित आज्य करि अभिघारि दक्षिणतः  
निकालि दक्षिणाग्नि के पूर्वमार्ग करि प्रदक्षिण उत्तरतः ला-  
करि सव्य करिके ठैरि तीनि समिधाँ आधान करि वैठि प्रा-  
कुमुख मेक्षण करि अग्नये और सोमाय दो मन्त्र करि चरु  
की होमें ॥ हे देव देवत्ये यजुयी स्वाहाकारस्य श्रुतेः। कवयः  
(कान्तदर्शिनः) पितरों के सम्बन्धि हवि के बहाने का अधि-  
कार जिस का बौह कव्यवाहन तिस अग्नि के अर्थ स्वाहा (हवि दिया)।  
पितृसंयुक्त सोमनामक देवता के अर्थ हवि दिया ॥ स्वाहाकारेण ब-  
षट्कारेण वा देवेभ्योऽन्नदानश्रुतेर्देवाविमो मन्त्रो ॥ का० ४० १०८०  
दक्षिण से उल्लेखन करे अपहता इति ॥ आसुरी उष्णिक् आसु-  
रम्। वेदी में स्थित असुर वेदी के सकाश से निकाले तथा राक्ष-  
स भी निकाले (असुर और राक्षस जाति हैं देवताविरोधीओं की) ॥ २६ ॥  
ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वश्रया  
चरन्ति। परापुरं निपुरं ये भरन्त्यग्निष्मन्तीका-

कात्प्रणुदात्यस्मात् ॥ ३० ॥

का० ४. १. ६. रेखा के उल्मुक को दक्षिणग्नि के एकदेश में स्थापन करें ॥ ये रूपाणीति त्रिष्टुप् कव्यवाहनग्निदेवत्या ॥ (स्वधा) पितृकान्त्र निमित्तः पितरों का अन्न हमलोग भक्षण करें इस हेतु करि अपने रूपों को प्रतिमुञ्चमान (पितृसमान रूपों को स्वीकार) करते हुए जे असुर देवविरोधि पितृयज्ञस्थान में प्रसरते हैं । तथा जे असुर पग पुरों (स्थूलदेहों) और निपुरों (सूक्ष्मदेहों) को धारण करते हैं अपने असुरत्व छिपाने के लिये । उल्मुकरूप अग्नि इस लोक (पितृयज्ञस्थान) से तिन असुरों को प्रकर्षण निकाले ॥ ३० ॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् ।

अमीमदन्त पितरौ यथाभागमावृषायिषत ॥ ३१ ॥

का० ४. १. १३. १४. अत्र पितरः इति पिण्डों के संमुख संहितास्वर करि पटि के प्रदक्षिण लौटि उदङ्मुख हो यथाशक्ति आसधारण करि बैठे । प्रदक्षिण फिरि लौटि कर पिण्डसंमुख हो अमीमदन्त इति संहितास्वर से ही पढ़ें ॥ हे साम बृहत्यो पित्र्ये । हे पितर्यो तुम इन बर्हिओं पर हृष्ट होओ । फिरि हवि में यथा भाग (अपने-अपने भाग) को बाँटि भले प्रकार वृषवत् आचरो (जैसे वृष अपने अभीष्ट घास को प्राप्त हो तृप्तिपर्यन्त स्वी करता है तद्वत् स्वी करो ॥ जिन पितरों प्रति हृष्ट होओ यह कहा ते हृष्ट हो यथाभाग वृषवत्स्वी करते हुए अर्थात् अपने भाग को खाते हुए ॥ ३१ ॥

नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय

नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधा-  
यै नमो वः पितरो यौराय नमो वः पितरो म-  
न्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः  
पितरो दत्त सतो वः पितरो देवैतद् वः पितरो वासु-  
आधत्त ॥३२॥+

का० ४० १० १५ नमो व इति छै बार नमस्कार करें ॥ नमो वः १-  
५ यजुर्वेदहयः षष्ठ्यर्ची उषिणक् ई षड्विंशोक्तदेवत्याः ॥ पङ्काव-  
तवः पितर इति श्रुते रसादि शब्देन वसन्तादि षडृतव उच्यन्ते।  
ते च पितृणां स्वरूपभूता अतस्तेभ्यो नमस्करोति। हे पितरः  
तुम्हारे रस (रसभूत वसंत) के अर्थ नमस्कार। क्योंकि मध्यादि  
रस वृक्षों में उत्पन्न होते हैं इस हेतु रसशब्द करि वसन्त है। अ-  
र्थात् तुमरूप वसन्त के अर्थ नमः ॥१॥ एवमग्नेतना मन्त्राव्य-  
ख्येयाः। शोषाय (शुष्क होती हैं ओषधीं जहं ग्रीष्म ॥२॥ जीव (जीव-  
न हेतु जलवर्षनेहारी वर्षा ॥३॥ स्वधा (शरद् स्वधा वै शरत्स्वधा  
वै पितृणामन्नमिति श्रुते। शरद् में ही प्रायशः अन्न होते हैं ॥४॥  
घोर (विषम हेमन्त। हेमन्त शीत प्रचुरत्व करि दुःखदान होनेसे  
घोर है ॥५॥ मन्यु (क्रोध तद्रूपी शिशिर) शिशिर ही ओषधीं  
जलाती है। हे पितरः एवंविध तुम ऋतुरूपीओं के अर्थ नम-  
स्कार हे पितरः तुम्हारे अर्थ नमः इत्यभ्यास आदरातिशया-  
र्थः ॥६॥ गृहान्न इति साम्नी अनुष्टुप् पितरो देवता। हे पितरः  
हमारे अर्थ धरौ (भार्या पुत्र पौत्रादिकों) को देओ। हे पितर ओ तु-



सूत्रे विद्यमान से देवें। अर्थात् देते हुए हमारा द्रव्यक्षय कभी नहो॥ का० ४.१.१६-१८ एतद् इति प्रति पिण्ड के ऊपर तीन-तीन सूत्र स्थापन करें वा ऊर्ण के वस्त्र से ऊर्ण निकालि वाप-चाशवर्ष से ऊँची अवस्था का यजमान अपने हृदय के रोमों से पिण्डों को ढकें॥ आज्ञापत्या गायत्री पितरो दे० हे पितरओ तुम्हारे अर्थ यह सूत्र ही परिधान हो॥ ३२॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत्॥ ३३॥

का० ४.१.२२ आधत्तेति धर्मपत्नी पुत्रकामा मध्यमपिण्डको प्राशन करें॥ पितृदेवत्या गायत्री हे पितरओ जैसे जिस प्रकार यह पुरुष देवपितृ मनुष्यों के अपेक्षितार्थ का पूरण करने हारा होवे तैसे इस ही ऋतु में कुमार (पुत्ररूप) गर्भ को तुम सम्पादन करें। कैसे कुमार कि पुष्करस्रज। जैसे अश्विनी कुमार देवताओं के वैद्य कमलों की माला धारण करें हैं तिस तुल्य को। अश्विसमान कहने से रोगहीन और सुन्दर पुत्र आधान करो यह सूचना की॥ ३३॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्नुतम्॥

स्वधा स्थे तर्पयत मे पितॄन्॥ ३४॥

इति सर्गं हितायां सप्तमोऽनुवाकः॥

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयस-

र्गहितायां दीर्घपाठे द्वितीयोऽध्यायः॥ ३॥



का० ४. १. १४. ऊर्जं वहन्तीति उदपात्रस्थं अवनेजनाव-  
शिष्ट उदक को पिण्डों के ऊपर सींचें ॥ अबदेवत्या विराट् ।  
हे जल तुम स्वधा (पितरों की हविः स्वरूपा) हो इस हेतु मेरे  
पितरों को तृप्त करौ। कैसी जल कि परिस्रुत् (पुष्पों से निक-  
लेसार) को वहतीओं। और वोह सार ऊर्जशब्द घृतशब्द प-  
यशब्द करि तीन विध है। तहां ऊर्ज शब्द करि अन्नगत स्वा-  
दु है और घृत तथा पय प्रसिद्ध हैं। और वोह त्रिविध भी कैसा  
कि अमृत (सर्वरोगनाशक और मृत्युनाशक। पुनः कैसा कि  
कीलाल (सर्वबन्धनिवर्तक) है। ऐसे त्रिविधसार वहने से ज-  
लों का पितृतर्पकत्व उपपन्न है ॥ ३४ ॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ७

श्री वेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन्  
पुमार्थाश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः २

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शारवा ध्येतृवैया-  
घ्रपदान्वय श्री विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मा-  
त्मज रौक्मिण्य नृपति गिरिप्रसाद रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरि-  
धरभाष्ये इधमप्रोक्षादिपितृयज्ञान्तो द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरुपं च साधनेनैव ह्यु रूपकम्  
स्वानन्द दायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३

अग्न्याधेयं प्रजापतेरांघ्रं देवानामग्नेर्गन्धर्वाणां वा

अ० १० समिधाग्निं दुवस्यत घृतेर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन्ह  
व्या जुहोतन ॥ १॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

राज्ञा गिरिप्रसादेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

अग्न्याधानादिपित्र्यान्तस्तृतीयोऽध्याय इर्यते ३

प्रथमद्वितीय अध्यायों में दर्शयौर्णमासेष्टिविषयक मन्त्र कहे  
अव अष्टमी कण्डिका पर्यन्त आधान के मन्त्र कहे जाते हैं ॥  
का० ४० ७० १० अमावास्या में अग्न्याधान करना इस से आदि  
ले कालविशेषादि कों और ब्रह्मोदनपाकपर्यन्त कार्यों को क-  
हिकर पीछे यह कहिता है ॥ का० ४० ८० ४-७० चारि ऋत्विजों  
करि भोजनयोग्य ओदन पकाकर स्थाली में बाहिर निकालि  
तिस के मध्य घृतसेन के अर्थ गर्त करि तिस में घृत भरि आश्व-

तृती तीनि समिधाँ उसी घृत में डुबो समिधाग्निमिति तीनि ऋचाओं से प्रत्येक समिधा को अग्नि में आधान करे। पहिली दूसरी तीसरी ऋचा से आधान करे चौथी को जपे। वा पहिली से आधान करि दूसरी को जपे फिर तीसरी चौथी करि आधान करे॥ चतसृणां गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता १ विरूपाङ्गिरसहृष्टा २ वसुश्रुतः ३ भर्द्वाजः॥ मन्त्रार्थस्तु॥ हे ऋत्विजः तुम समिधा (मलीभाति से दीपन करिये) है अग्नि तिस काष्ठरूपा समित्) करि अग्नि को परिचरो। पूर्णहुति सम्बन्धि होष्यमाण घृत करि अतिथि (आतिथ्यकर्म करि पूजनीय अग्नि) को बोधन (प्रज्वलित) कराओ। इस प्रज्वलित अग्नि में नानाविध हविषों को सर्वतः होमो॥ १॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे॥ २॥

हे ऋत्विजः अग्नि के अर्थ तुम घृत करिके होम करो। कैसे अग्नि कि सुसमिद्ध (शोभनदीप्त) अत एव शोचिष्मन्त (ज्वलित) जातवेद (जात वेनि वा वेदयति वा जात प्रज्ञान। कैसे घृत कि तीव्र (स्वादुतम वा समग्र वा पदुतर ग्रहणोद्वासनाधिश्रयणावेशणादि करि संस्कृत॥ २॥

तं त्वा समिद्धिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ट्र॥ ३॥

हे अङ्गिरः (तत्तद्यागों में गमन्वन्नग्ने) तिस (उक्तगुणस्तथाविध) तुम्हें समिधाओं और संस्कृताज्य से प्रबुद्ध करते हैं। हे यवि

ष्ट्र (कदाचिदपि स्थविरत्वरहित) प्रवृद्ध जैसे जैसे दीप्त हो ॥३॥  
उप त्वाग्ने हविष्यतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत । जुषस्व समिधो-  
मम ॥४॥

हे अग्ने हविर्युक्ता घृताक्ता : ये समिधाँ तुम् प्रति प्राप्त हों । हे हर्यत  
(प्रेप्सावन) मेरी समिधाँ तू सेवन (अङ्गी) करि ॥४॥

अ. २. भूर्भुवः स्वर्धैरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृ-  
थिविदेवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्त्रादमुन्नाद्यायादधे ॥५॥†

का. ४. २५. १. १६. आपः हिरण्य ऊषा आखूत्कर और शर्करा इन  
पाँच सम्भारों का सम्पादन करि स्फ्य से लिरवी हुई शुद्ध भूमि में  
तिन सम्भारों को स्थापि तिन्हें पर यज्ञियकाष्ठ करि ज्वलित अ-  
ग्नि को भूर्भुवः इन तीनि अक्षरों का उच्चारण करि आधान करें।  
यह आहवनीय का आधान है। एवं अष्टाक्षर होने से अग्नि का गा-  
यत्री होना श्रुति में कहा है। गायत्री सहित अग्नि का प्रजापति के मुख  
से उत्पन्न होने से इति सूत्रार्थः ॥ मन्त्रार्थस्तु । भूरिति देवी गायत्री अ-  
ग्निदेवता । भुवरिति देव्युष्णिग्वायुदेवता । सुवरिति देवी गायत्री सू-  
र्यो देवता । इन आधानमन्त्रों में ये तीनों व्याहृति हैं । ये ही तीनों  
व्याहृति हैं पृथिव्यादि तीनों लोकों के नाम हैं । इन्हों के उच्चारण पूर्व-  
क प्रजापति करि तीनों लोकों के उत्पन्न होने से । अतः इनों से  
स्थापन करि तीनों लोकों को इन्हों करि स्मरण करें इन व्याहृतिओं  
की महिमा हो । यद्वा भूर्भुवः स्वः शब्द करि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ती-  
नों जातियें वा आत्मप्रजापशु ये सब भैरवशवर्तिनः हों यह प्रार्थना

करि अग्निओं को स्थापन करै इत्यर्थः॥ का० ४.२५.१७. फिर यजमान ईधन के पूर्वार्ध को ग्रहण करि द्यौरिव भूमेति जपे॥ यजुषो यजमानाशीर्लिङ्गोक्तदेवता। हे पृथिवि देवयजनि (देवता पूजियें हैं जिसमें वोह) तिसनेरे पृष्ठ (ऊपर) में अन्नाद (अन्न की आहुतिके भक्षण करनेहारे) अग्नि (गार्हपत्यादिरूप) को स्थापन करती हूँ। किमर्थम् कि भक्षणयोम्य अन्न की सिद्धि के अर्थ वा अन्नभक्षण के अर्थ। जिस पृष्ठ में अग्नि रखि के जैसे आकाश में तारे बहुत हैं ऐसे हम पुत्र पश्चादिकरि बहुत होवें इति शेषः। जैसे पृथिवी सब प्राणियों का आश्रय है ऐसे हम यज्ञ पूर्वार्धस्यायमर्थः। कैसे अग्नि को कि जैसे द्यौः नक्षत्रादि बहुत करि युक्त है तैसे ज्वालाबहुत्व करि युक्त को। किंच जैसे पृथिवी सब प्राणिओं के आश्रयत्वरूप करि श्रेष्ठत्व से युक्त है तैसे सब वस्तुओं के शोधकत्व रूप करि श्रेष्ठत्व से युक्त को। अत एव क्वचिद्विधिवाक्ये अग्नये पावकायेत्याम्नातम्॥ ५॥

आयं गौः पृश्निरकमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्स्वः॥ ६॥  
का० ४.२५.१८. १९. और आयं गौरिति तीन ऋचाओं सार्वराजीनांमाओं से आहवनीय का उपस्थान करै। फिर अध्वर्यु गार्हपत्य से कर्पर करि अग्नि ले दक्षिणाग्नि को आधान करै आयं गौरिति तिसूणाम् च। सार्वराजी (कद्रू पृथिव्यभिमानी) दृष्टी गायत्रीछन्द अग्निः परावरूपेण देवता। अग्निः परावरूपेण स्तूयते। यह हृष्यमान अग्निः सर्वतः आहवनीय गार्हपत्यदक्षिणाग्निस्थानों में क्रमेण (पादविक्षेप) करता हुआ। वेसा अग्नि कियज्ञनिष्पतिके अर्थ तिस-ति-

स यजमानगृह में चलता। तथा चित्रवर्ण (लोहितशुक्लादिबहुविधज्वालो-  
पेत) आक्रमणमेवाह। आचीदिशा में माता (पृथिवी) को आहवनीयरू-  
प करि प्राप्त हुआ और तैसेही आदित्यरूपकरि स्वर्ग में चलता पिता (द्यु-  
लोक) को प्राप्त हुआ + ॥ ६ ॥

+ सः शब्देन सूर्यः निय० १४. ध्रुवलोका भूलोकयोर्महाभितन्व मन्यजापि श्रूयते। धीः पिता पृथिवी मातरिति।  
\* अन्तरिक्षे यं नियं जगुः पवन इति श्रुतिः।

अन्तश्चरति रेचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ७ ॥

एवमादित्य रूपेणग्निं स्तुत्वा वायुरूपेण स्तौति। इस अग्नि की दीप्ति  
कोइक शक्ति वायुनामा अन्तः (द्यावापृथिवी के शरीर मध्य में) चल-  
ती +। क्या करती कि प्राणादपानती (सर्वशरीरों में प्राणव्यापार के अनन्त-  
र अपानव्यापार को करती। अपान के अनन्तर प्राणतीत्यप्यर्थो लभ्य-  
ते सामर्थ्य से प्राणपानवायुविशेष का प्रेरक है इत्यर्थः। क्योंकि जह-  
रग्नि में जीवनहेतु उष्णता के सद्भाव से शरीर में प्राणपान प्रवर्तते हैं  
तिस हेतु से अग्नि प्राणपानरूप है। एवं स्वशक्तिभूत वाय्वादित्य  
करि इस जगत का अनुग्रह करिके जो ऐसे को उपतिष्ठे है तिस का  
क्या करता है। इत्याह। कि महिषोऽग्निः दिवं व्यख्यत् (द्युलोकभो-  
गस्थान को अनुष्ठाताओं के अर्थ विशेषेण प्रकाश करता हुआ और  
प्रकाश करता है। महि (महात्म्य-यागकर्तृस्वरूप) को देता + ॥ ७ ॥

त्रिंशद्दामविराजति वाक्यं तद्गुणं धीयते। प्रतिवस्तो-  
रह द्युभिः ॥ ८ ॥

त्रिंशत् धामों (तीस ३० महूर्तनामा स्थानों +) में जो बाणी विरा-  
जै (शोभे) है सो स्तूयमाना बाणी अतद्गु (अग्नि ५) के अर्थ उ-  
च्चारण करिये है (सर्वदेवसम्बन्धिनी स्तुतिओं करि अग्नि ही स-

\* अग्निर्वै महिषः स इदं जातो महा निति श्रुतेः।

+ धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानि निरु० ८. १८. २६। अत्र धामशब्देन स्थानमुच्य-  
ते। अहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्तं धामशब्देनाभिप्रेताः। ५ पतन् गच्छति पतङ्गः। अग्निः।  
सह्यरण्ये। पतन् गार्हपत्यभाव गच्छति गार्हपत्यात्यतन्नाहवनी अतामित्यादि।



वात्मक होने से स्तुति करिये है। केवल विंशत् धामों में जो वाणी  
 विराजे है सो ही अग्नि के अर्थ उच्चारण करिये है यही नहीं किंतु प्र-  
 ति वस्तोः (दिन) में जो स्तुतिलक्षणावाणी और जो युग्मों (याग-  
 पारायणद्युत्सवभूतदिनों) करि स्तुतिलक्षणावाणी विराजे है  
 सो अग्नि० नही अन्यदेवता के अर्थ०। सब काल में सब स्तु-  
 ति वाचा अग्नि के ही अर्थ है इत्यर्थः॥ यद्वा स्या ऋचोऽयमर्थः।  
 धाम (स्थान) और सो विंशत्संख्याक मासगत दिनभेद करि-  
 के विशेषेण राजे (दीपे) है (आलस्यरहित यजमानों के अ-  
 नुष्ठान करि आहवनीयाद्यग्नीष्मों का स्थान मास गतविंश-  
 त्संख्याक दिनों में विशेषेण शोभे है। स्तुति रूपा वाणी पतङ्ग  
 (अग्नि) के अर्थ उच्चारण करिये है। पतङ्गः पक्षी तिसके सदृश हो-  
 ने से अग्नि पतङ्ग है क्योंकि जैसे पक्षी एक स्थान से दूसरे स्थान को  
 जाता है तैसे अग्नि भी गार्हपत्यस्थान से आहवनीयस्थान को जाता  
 है। अहेति निपातः पूर्वोक्तनिषेधार्थः॥ इस ऋचा के पूर्वार्द्ध में अ-  
 ग्निमाहात्म्यज्ञापक दो वाक्यों करि जो दो अर्थ कहे गये तैसे ही  
 नहीं होता किंतु और भी कहिये है इत्यर्थः। प्रति वस्तः (दिन) युग्मों  
 (द्योतनों) करि यह अग्नि स्तुति करिये है इत्यध्याहारः॥ ८॥ इत्य-  
 ग्न्याध्येयमन्त्राः समाप्ताः॥ ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः २

अथाग्निहोत्रहोममन्त्राः प्रजापतिदृष्टाः

अ० ३ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा॥ अग्निवर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्यो-

+ वस्तोः युः भानुरित्यहर्नामसुपठितम् निघ० १८० अहेति निपातो विनिग्रहे।



तिर्वर्चः स्वाहा ॥ ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ ४ ॥ +  
 अग्निर्ज्योतिरिति दो कण्डिओं में अग्निहोत्र के मन्त्र हैं। सप्तलिङ्गो-  
 क्तदेवता। पञ्चैकपदा गायत्र्यः। हे गायत्र्ये। अग्निर्ज्योतिः सूर्यो  
 ज्योतिः एते हे तक्षामुनिरपश्यत। ज्योतिः सूर्यः इमां चेलकस्य पुत्रो  
 जीवल ऋषिरपश्यत ॥ का० ४. १४. १४. प्रकाशित समिध के मध्य में  
 अग्निर्ज्योति इस मन्त्र से होम करे ॥ काएव शारवीया वाजसनेयस  
 संहिता के अध्या० ३. अनु० २. मन्त्र १. अग्निर्ज्योतिषं त्वा वायुमतीं  
 प्राणवतीम् ॥ स्वर्ग्योऽहं स्वर्गयोपदधामि भास्वतीम् ॥ अग्निर्ज्योति  
 र्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ सै समित्प्रक्षेप है ॥ मन्त्रार्थस्तु। जो यह अग्नि-  
 देव सोही ज्योति (दृश्यमान ज्योतिः स्वरूप) है। जो यह दृश्यमान  
 ज्योति सोही अग्निदेव है। देव और ज्योतिका कभी भी अविद्योग से  
 एकत्व करि प्रतिपादन है। स्वाहा (ज्योतीरूप अग्नि के अर्थ हविदिया।  
 अयं सायंकालीनोऽग्निहोत्रहोममन्त्रः ॥ काएव ३. २. २. सूर्यज्योतिषं  
 स्वाहा ॥ प्रातर्होममन्त्रः ॥ सायं होममन्त्रवद्ध्या ख्ययः। सूर्यसम्बन्धि-  
 तेज एत्रि में अग्नि को प्रवेश करता है इस हेतु सायं समय अग्नि-  
 र्ज्योति यह मन्त्र युक्त हुआ। उदयकाल में अग्निसम्बन्धि ज्योति सूर्य  
 को प्रवेश करती है तिस से प्रातः समय सूर्यो ज्योति यह मन्त्र है +  
 का० ४. १४. १५. ब्रह्मतेज का चाहनेवाला अग्निर्वर्चः सूर्यो वर्चः  
 इन्हों से साँझ और सबेरे होम करे ॥ जो अग्निर्वर्चः (ब्रह्मतेज) अन-  
 न्यभूत है। जिस का सो ज्योतिर्वर्चः अनन्यभूत है। तिस के अर्थ सु-  
 हुत हो। एवं सूर्यो वर्च इति ॥ का० ४. १५. ११. अथ वा प्रातः समय ज्यो-

+ अ-हा। अ०। सू-हा। उ०। अ-हा। उ०। सू-हा। अ०। ज्यो-हा। लु० ॥ ४ ॥

+ अग्निमादित्यः सायं प्राविशति तस्मादग्निदेवत्वं दृश्ये। उमे हि तेजसी सम्पद्येते उद्यन्तं वा-  
 दित्यमग्निरनु समारोहति। तस्माद्भूम एवाग्नेर्दिवौ दृश्ये इति तिनिरिश्चुतेः ॥

तिः सूर्य इति होम करै ॥ जो ज्योति सो सूर्य ही है । जो सूर्य सो ज्योति ही है । तिस के अर्थ सुद्धत हो ॥४॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजूरग्येन्द्रवत्या ॥ जुषाणोऽग्निर्वेतु  
स्वाहा ॥ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः  
सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ १० ॥ † इतिसं ० अ० ३०

का० ४० १४० १४० पूर्वोक्त मन्त्रों (अग्निर्ज्योतिः सूर्यो ज्योतिः) के साथ ये दोनों मन्त्र विकल्पित हैं ॥ मन्त्रार्थः ॥ अग्निः वेतु (हमारे कर्म को प्राप्त हो यद्वा आहुति को भक्षण करै) केसा अग्नि कि सविता देव (अथवा परमेश्वर) करि सहित सजूरः (सामान प्रीति जिस की वो-  
ह ॥ तथा इन्द्रवती (इन्द्रदेवयुक्ता) रात्रिदेवता करि सजूरः ॥ तथा हमारे विषे प्रीतियुक्त । जो उक्तगुणवान् अग्निदेव तिस के अर्थ स्वाहा  
हूयमान यह द्रव्यदिया ॥ प्रातः सूर्य उच्यंते । अग्निमन्त्रवदयं सूर्यमन्त्रो व्याख्येयः ॥ पूर्वार्धे रात्रिदेवतायाः स्थाने उपोदेवता योजनीया ॥ १० ॥

यजमानाग्न्युपस्थानं बृहदुपस्थानं देवदृष्टम्

अ० ४० उपप्रयन्तोऽध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरेऽस्मे च शृण्वते ॥ ११ ॥

का० ४० १२० १-३ सायं समय के अग्निहोत्र होम में काएव ० ३०  
३० मन्त्र ० समिद्धसि समिद्धो मेऽग्ने दीदिहि ॥ समेद्धा तै अग्ने दीद्यासम् ॥ सै समिधाधान के अनन्तर उप प्रयन्त ११ से ले-  
रि ते ३६ तलक वात्स प्रसंज्ञक उपस्थान करि के आहवनीय

गार्हपत्य देने को अग्नियों को उपतिष्ठे अथवा न करे। तहां उप-  
स्थानपक्ष में उप प्रयन्त ११ अस्यां प्रत्ना १६ परि ते ३६ इन तीनों  
ऋचाओं और चित्रावसविति १८ ई० को यथा स्थानास्थित ती-  
नि-तीनि वारजये॥ आद्ये द्वे आग्नेय्ये गायत्र्यो क्रमेण गोतम-  
विरूपाभ्यामपि दृष्टे॥ आहवनीयोपस्थानमन्त्रा आदौ। हम  
अनुष्ठान करने हारे अग्नि के अर्थ मन्त्र (मनन करिके वाणक-  
रने वाला शब्द समूह कहते हैं। कैसे हैं हम कि अध्वर (यज्ञ) को  
समीप में चलते। कैसे अग्नि कि दूर और समीप में इति शेषः  
हमारे वाक्य सुनने को उद्युक्त॥ ११॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।

अपाथं रेताथं सि जिन्वति॥ १२॥

यह अग्नि जलों के रेतों (द्युलोक से वृष्टिरूप करि गिरती हुई  
ई जलों के सार व्रीहियवादिरूपों करि परिणतों को प्रीति कर-  
ता (बटाता) है। यद्वा जलों के कारणों को पुष्ट करता है। आहुति  
परिणाम करि वृष्टि को उत्पन्न करता है इत्यर्थः\*। कैसा अग्नि  
कि द्युलोक के शिरः समान (जैसे शिर शरीर के ऊपर में बैठे  
हैं तैसे अग्नि दिन में अपने तेज करि आदित्य में प्रविष्ट हो-  
ने से आदित्यरूप करि द्युलोक के ऊपर में बैठे हैं। तथा ककुत्  
(गोपृष्ठवत् आदित्यरूप करि सर्वोपरि स्थित होने से ककुत्सह-  
श है। यद्वा महत् जगत्कारण है†। तथा पृथिवी कापालक। दा-  
हपाकप्रकाश करि भूलोकस्थों का उपकारी होने से॥ १२॥

\* ते बाण्ये आहुती उत्क्रामत इत्यादि श्रुतेः। अग्नेो प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।  
आदित्याज्जायते वृष्टिर्दृष्टेरन्तः ततः प्रजेति स्पृतेश्च।

† ककुदमिति महन्नाम निघ० ३. ३.

उ॒भा वा॒मिन्द्रा॒ग्नीऽआ॒हुव॒ध्याऽउ॒भा राध॑सः सह मा-  
द॒यध्वै॑। उ॒भा दा॒तारा॑वि॒षाधं॑ र॒यीणा॑मु॒भा वा॒जस्य॑ सा-  
तये॑ हुवे वाम् ॥ १३ ॥

भारद्वाजहृष्टा ऐन्द्राग्नी त्रिष्टुप्। इन्द्रशब्देनाज्ञाहवनीयः। तस्य  
यज्ञसाधकत्वरूपैश्वर्ययुक्तत्वात्। अग्निशब्देन गार्हपत्यः। अ-  
ग्रे नीयत इत्यग्निरिति यास्कव्युत्पत्तेः। स हि प्रथममाधीयते।  
हे इन्द्राग्नी तुम दोनों को बुलाने की इच्छा रखता हूँ इति शेषः।  
और हविलक्षण धन से तुम दोनों को प्रसन्न करने के लिये इ-  
च्छा। क्यों कि तुम दोनों अन्न और धन के दातार हो इस लिये अ-  
न्नदान के अर्थ तुम दोनों को बुलाता हूँ ॥ १३ ॥

अ॒यं ते॒ योनि॑र्ऋ॒त्वियो॒यतो॑ जा॒तोऽअ॒रोच॑थाः। तं जा-  
नन्ना॒ग्नऽआ॒रोहा॑था नो वर्ध॑यार॒यिम् ॥ १४ ॥

भारतौ देवश्च देववानश्च दृष्टाग्निदेवत्यानुष्टुप्। हे अग्ने (आ-  
हवनीय) तेरी यह गार्हपत्य योनि (उत्पत्तिस्थान) है। कैसी कि  
ऋत्वियः (उत्पादनयोग्य काल को प्राप्त) जिस ऋतुकालोपे-  
त गार्हपत्य से उत्पन्न हो तू कर्मकाल में दीप्त हुआ। हे अग्ने  
तिस गार्हपत्य अपने जनक को आरोहण करि (पुनः उद्धारण के  
अर्थ कर्म के अन्त में प्रवेश करि। अथानन्तर हमारे अर्थ ध-  
न बढ़ाय (पुनर्याग के अर्थ समृद्ध करि ॥ १४ ॥

अ॒यमि॒ह प्र॒थमो॑ धा॒यिधा॒तृभि॒र्होता॑ यजि॒ष्ठोऽअ-  
ध्व॒रेष्ठी॑ डः। यम॑प्र॒वानो॑ भृ॒गवो॑ विरु॒रुचु॒र्वने॑षु चि-

योनिः। काले उत्पादनयोग्यो योनिः। मायं ज्ञातः काले उत्पादनयोग्यो योनिः।

त्रं विम्बं विशेषे विशेषे ॥१५॥

आग्नेयी वामदेवदृष्टा जगती। यह आहवनीय इस कर्मानु-  
ष्ठानस्थान में मुख्य + होते आधान कर्ताओं करि आहित हुआ।  
कैसा कि होता (देवताओं का बुलाने वाला। अतिशयेन यथा।  
तथा अध्वर्ये (सोमयागादिकों) में ऋत्विजों करि स्तुतियोग्य।  
अप्रवानः (पुत्रवन्तः) भृगुवंश में हुए मुनयः वा अप्रवान् (भृगु-  
प्रमृति मुनिलोग) जिस आहवनीय को विशेषे विशेषे (वनों में वा  
विडिति मनुष्यनाम निघं ०२२ यजमानरूपमनुष्यों के अर्थ  
ग्राम से बाहिर यजनारव्य अरण्य प्रदेश में) दीपन करते हुए।  
कैसे जिस अग्नि को कि चित्र (विविध कर्मोपयोगित्व करि  
आश्चर्यकारि। अत एव विभूत्व शक्तियुक्त को ॥१५॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतर्हं शुक्रं ददुहेऽअहयः। पयः सह-  
स्रसामृषिम् ॥१६॥

गायत्र्यवत्सारदृष्टा गोऽग्निपयोदेवत्या। इस अग्नि की प्रत्ना।  
(चिरंतनकालभवा) ज्योति को अनुसरण करि के अहय (लज्जा  
रहिता दोग्धारः) ऋषि (दोहस्थान में चलती-गों) को होम के  
अर्थ शुद्ध पय दुहते हुए। सायंदोहनकाल में अग्नि के प्रकाश  
न होने से दुहा दुग्ध भूमि में गिरेगा इस प्रका करि दोग्धाओं  
को लज्जा होती है जब कि अग्नि का प्रकाश हुआ फिरि यह शं-  
का कहा। कैसी ऋषि कि सहस्रसंख्याक कर्मों को क्षीरदध्यादिह-  
विः प्रदान करि समाप्त करती ॥ यद्वास्या ऋचोऽर्थान्तरम्। गा-

म्प्रकृत्याग्निहोत्रब्राह्मणे श्रूयते २०२४ १५० तामु हाग्निरभिदध्या-  
वित्यादि। तदभिप्रायमेषा ऋग्वदति। अहयः (अलज्जा उज्ज्वला  
प्रशस्या) गोएँ इस अग्नि की अपने में चिरंतनी अनुषक्ता शुक्र-  
रूपापन्ना दीप्ति (पय) को क्षरती हैं। अग्नि करि शुक्ररूप से सींची  
अपनी कान्ति को ही गोएँ दुग्धरूप से मरती हैं इत्यर्थः। कैसे प-  
य कि सहस्र सा (चातुर्मास्य पशुसोम के सम्भक्ता। तथा ऋषि  
द्रष्टारः) को ॥ यद्वा सहस्रमृषिमिति विभक्तिलिङ्गवचनव्यत्य-  
येन अहय इत्यस्य विशेषणद्वयम्। कैसे अहयः कि सहस्रसाः  
ऋषयः। पूर्ववदर्थो वा ॥ १६ ॥

तनूपा अग्नेर्गसि तन्व मे पात्यायुर्दो अग्नेः स्यायुर्मे  
दिहि वर्चोदा अग्नेर्गसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा  
कुनं तन्मः आप्राणा ॥ १७ ॥†

चत्वार्यग्निदेवत्यानि यजूंश्च १० तनूपा आसुरीपंक्तिः २० आ-  
युर्दो आसुरीचिष्टुप ३० वर्चोदा आसुरीपङ्क्तिः ४० अग्ने आसुरी  
चिष्टुप ५० हे अग्ने तू स्वभाव से ही तनूओं (अग्निहोत्रियों के शरीरों)  
का पालक है। उदरग्निके होते अन्न के जीर्ण होने में शरीर का  
पालन है अतः मेरे शरीर को पालि ॥ १ ॥ हे अग्ने तू आयु का दा-  
ता है अतः मुझे आयु दे। अपमृत्यु परिहार करके। जितने काल  
शरीर में उषणता दीरवै है तितने नही मरता यह प्रसिद्ध है  
२॥ हे अग्ने तू वर्चः (वेदिकानुष्ठानप्रयुक्त तेजः) का दाता  
है अतः मुझे वर्चः दे ॥ ३ ॥ किंच हे अग्ने मेरे शरीर के जो अङ्ग-

अग्नि ऐसे प्रकाशित है कि यह ब्राह्मण बड़ा अग्नि है कि यह ब्राह्मण बड़ा अग्नि है कि यह ब्राह्मण बड़ा अग्नि है

† त-हि। अ०। प्रा-हि। इ०। व-हि। उ०। अ-णा। ऋ० ॥ १७ ॥

† गवि वर्तमानं दृष्टत्वं पयस्युपवर्चयते। सा हे नानुदीक्ष्य हि चकारेत्युपक्रम्य ते देवा विदा चकुरेष साम्नो हिकार इत्यादिना ग्रन्थेन गोभिर्हिकारे दृष्ट इति प्रत्ययादि।



(चक्षुःश्रोत्रादिरूप) ऊन (दृष्टिपाटवादि रहित) तिन मेरे अङ्गों  
को सर्वतः पूरि ॥ ४ ॥ १७ ॥

इन्धानास्त्व। श्रुतं हिमा द्युमन्तं समिधीमहि। वय-  
स्वन्तो वयस्कृतं सहस्वन्तः सहस्कृतम्। अग्ने सप-  
त्नदम्भेन मदब्धासोऽअदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्तिते  
पारमशीय ॥ १८ ॥ + इ-म्। अ०। चि-या। इ०॥ १८॥

इन्धानास्त्विति महाप्रद्विस्त्रवसानाग्निदेवत्या। हे अग्ने श-  
तवर्षं पर्यन्तं हम अपनी आयु में वर्तमान तुम्हें निरन्तर दी-  
पन करते हैं। हम कैसे कि तेरे अनुग्रह करिके दीप्यमान  
तथा अन्नवन्त तथा बलवन्त किसी करि भी न मारे जावें।  
तुम्हें कैसे को कि दीप्तिमन्त। अन्न के करनेवाले। बल करनेवाले।  
शत्रुओं के मारनेहारे। किसी करिके भी मारने के लिये अयोग्य  
को॥ चित्रावसो। इति रात्रिदेवत्यं ऋषिदृष्टं यजुर्जगतीच्छन्दः।  
हे चित्रावसो (चित्र-विविध चन्द्रनक्षत्रान्धकाररूप वास  
करते जिस में रात्रे) जैसे कल्याण हो तैसे तेरे पार (समाप्ति)  
को पहुँचें। जैसे लोक में मनुष्यों के सौने पर घर में चोर प्र-  
वेश करते हैं तैसे यहां देवयजन में राक्षस प्रवेश करते हैं  
इस शंका के निवारणार्थ रात्रि से प्रार्थना है ॥ १८ ॥

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणाश्च स्तुतेन।  
सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया  
संह रायस्योर्षेण मिषीय ॥ १९ ॥

+ रात्रिर्वै चित्रावसुः सा हीयते संगृह्येव चित्राणि वसतीति २. ३. ४. २२. श्रुतेश्चित्रावसु-  
शब्देन रात्रिः।



का० ४.१२.४. उपप्रयन्त इत्यादि चित्रावसो इत्यन्त मन्त्रों करि  
खंडे होके उपस्थान है इस से वै० कर यह विशेष है ॥ अग्नि  
देवत्या ब्राह्मन्नुष्टुप् । हे अग्ने तू सूर्य के तेज करि रात्रि में सं  
गत है + । ऋषीणो (मन्त्रों) के स्तोत्रों करि संगत है (बहुत से  
मन्त्र अग्नि को स्तुति करते हैं) । प्रियधामो (आहुतिओं) क  
रि सं० ५॥ जैसे तू इन तीनों करि सं० । तैसे में भी तेरे प्रसाद  
से आयु (अपमृत्यु दोष राहित्य) करि संगत होऊँ । तथा वर्च  
(विद्येश्वर्यादितेज) करि सं० । तथा प्रजा (पुत्रादि) करि सं० ।  
तथा रायस्योष (धन की पुष्टि) करि सं० । आयुरादि मेरे हों  
इत्यर्थः ॥ १४ ॥

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय महस्थ महो वो भक्षी  
योज्जं स्थोज्जं वो भक्षीय रायस्योषं स्थ रायस्योषं वो  
भक्षीय ॥ २० ॥

का० ४.१२.५. अन्धस्थ रेवती रमध्वम् इन दो मन्त्रों से गो  
प्रतिजावे ॥ वीणि गोदेवत्यानि १. यजुः २. प्राजापत्याविष्टु  
प् । हे गोओ तुम अन्ध (अन्नरूपा) हो । क्षीराज्यादिरूप  
अन्न के जनक होने से । अतः तुम्हारे प्रसाद से तुम सम्ब  
न्धि क्षीराज्यादिरूप अन्न को मैं भक्षण करूँ । तथा तुम  
महः (पूज्य) हो अतः तुम पूज्यों के प्रसाद में भी पूज्य होऊँ ।  
यद्वा महः शब्द करि दश वीर्य कहियें हैं । यथा गौर्वे प्रतिधु  
क् तस्यै शृतं तस्यै शरस्तस्यै दधि तस्यै मस्तु तस्या आतञ्च

प्रसिद्धम् । पूज्यत्वं प्रसिद्धम् । गोर्वा वद साध्वेत्यादि स्मृतेर्गो वा पूज्यत्वं प्रसिद्धम् ।

+ तद्यदस्त्वयन्नादित्य आहवनीर्यं प्रविशति ते नैतदाहीते श्रुतेः २.३.४.२४.  
+ तद्यदुपतिष्ठते ते नैतदाहीते श्रुतेः २.३.४.२४.  
+ आहुतयो वा अस्य प्रियधामेति श्रुतेः २.३.४.२४.॥

22.2.69. P. C. S. +

नं तस्यै नवनीतं तस्यै धृतं तस्या आमिक्षा तस्यै वाजिनमि-  
ति श्रुत्युक्तानि॥ प्रतिधुक् सद्यदुग्ध १ शृत उष्णदुग्ध  
२ शर दुग्ध का मण्ड ३ दधि दही ४ मस्तु दही का रस  
५ आतञ्चन दही का पिएडा ६ नवनीत लोनी ७ धृत  
घी ८ आमिक्षा फटादुग्ध ९ वाजिन फटे दुग्ध का जल  
१० इति श्रुत्यर्थः॥ ये दशवीर्यरूपा तुम हो अतः तुम दश-  
पाशों के प्रसाद से मैं दशवीर्य सेवन करूँ। तथा तुम ऊर्ज  
बलरूपा हो गों के क्षीरादि बल का हेतु होने से बलरूपत्व  
है। तुम्हारे प्रसाद से मैं बल का सेवन करूँ। तथा धनपुष्टि-  
या हो। क्यों कि वैश्य लोग क्षीराज्यादिविक्रय करि धन को  
पुष्ट करते हैं। अतः धनपुष्टित्वोपचारः॥ तुम्हारे प्रसाद से ध-  
न की पुष्टि को सेवन करूँ॥ २०॥

रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन्गोष्ठेऽस्मिन्लोकेऽ-  
स्मिन्क्षये ॥ इहैव स्त मायगात् ॥२१॥

हे रेवत्यः (धनवती गौश्रौ) इस योनि (अग्निहोत्रहविर्दोहन-  
स्थान) में तुम रमों (क्रीडाकरों) दोहन के उपर इस यजमान सम्बन्धि  
गोष्ठः (गौत) में रमों। सर्वदा इस लोक (यजमान की दृष्टि)  
में रमों। रात्रि समय इस यजमान के घर में रमों। इस यजमा-  
न के घर में ही रहो। अन्यत्र मत जाओ ॥२१॥

संहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविष् गौपत्येन । उ-  
प त्वाग्ने दिवेदिवे दौषावस्तथिया वयम् । नमो

† धनहेतुत्वेन धनवत्त्वं गवाम् । रयिर्विद्युतौ आहंता रेवत्यः । पशदो वै रेवन्त इति  
श्रुतेः २. ३. ४. २६. ‡ गोष्ठशब्देन गृहाद्विहिर्विश्रब्धेण संचारप्रदेशः ।

भरन्त एमसि॥२२॥† स-न।अ०।उ-सि।दू०॥२२॥

का० ४०१२६० गौतमें जाकर संहितेति गौ को हाथ से ग्रहण  
करे ॥ ३० साम्यनुष्टुप् ॥ हे गौः तू संहिता (क्षीराज्यरूप हविर्दान  
के अर्थ यज्ञकर्मा करि संयुक्त) है। कैसी कि विश्वरूपी (शुक्ल-  
कृष्णादिबहुरूप युक्ता)। सो तू क्षीरादिरस और गोपतित्व क-  
रि मूर्ध्नि सर्वतः प्रवेश करि (तेरे प्रसाद से मेरे बहुविध रस  
और बहु विध गोस्वामित्व होवै ॥ का० ४०१२०७० गार्हपत्य प्र-  
ति चलि कर उप त्वेति तृच से सर्वतः उपस्थान करे ॥ तिस्रो  
गायत्र्य आग्नेय्यो विश्वामित्रसुतमधुच्छन्दोदृष्टाः ॥ हे अग्ने दो-  
षावस्तः (रात्रि में वास करने हारे) अजस्रं धार्यमाणत्वान्नोप-  
शाम्यति यद्वा अग्नेो ह देवा इत्युपक्रम्य तैः संगृह्य रात्रिं प्र-  
विवेश इम इतिहास करि अग्नि में रात्रि के समय प्रवेश कहा  
तिसे यह मन्त्र कहिना है। हे दोषावस्तः (रात्रि में वसनशील गा-  
र्हपत्य) प्रति दिन हम यजमान तुरु प्रति गमन करते हैं। कैसे ह-  
म किधी (अहोयुक्त बुद्धि) करि नमः (नमस्कार) करते वा नमः (ह-  
वि +) देते ॥ २२ ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमान्  
ॐ स्वर्गम् ॥२३॥

क्रियापद मनुवर्तते। हम ऐसे अग्नि को गमन करते हैं। कैसे  
को कि दीप्यमान यज्ञों का रक्षक। सत्यवदन लक्षणाव्रत का  
प्रकाश करने द्वारा आशय यह है कि अग्नि समीप में व्रत लेके

सत्यबोलें। हमारे घर में वर्धमान (चातुर्मास्य सोमपञ्चादि करि वृ-  
द्धि को प्राप्त ॥२३॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा-  
नः स्वस्तये ॥२४॥

हे अग्ने गार्हपत्य सो पूर्वोक्त गुणयुक्त तू हमारा सूपायनः (सु-  
ख करिके समीप में प्राप्त होने के लिये समर्थ) हो। तत्र दृष्टा-  
न्तः। जैसे पुत्र के अर्थ पिता विना भय के सुख क०-मर्थ है।  
किं च हमारी क्षेम के अर्थ सचस्व (इस कर्म करि समवेता हो वा  
सेवन करि ॥२४॥

अग्ने त्वं नोऽनन्तम अज ज्ञाता शिवो भवा वस्तुष्य ॥

वसुरग्निर्वसुश्रवा अछा नक्षि द्युमन्तमर्षं रयिर्दा ॥२५॥  
चतस्रो द्विपदा विराज आग्नेय्यः बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुः विप्रब-  
न्धुः दृष्टाः क्रमेण। हे अग्ने गार्हपत्य तू हमारे सर्वदा समीप व-  
र्ती वा साधु हो। और पालन करने हारा। शान्त। वस्तुष्य (पुत्रादि-  
समूह वा घर के अर्थ हित) हो। कैसा है तू जनों का वास करा-  
नेवाला। तथा अग्निः (आहवनीयादिरूप करि गमनशील।  
तथा वसुश्रवा (धन करिके कीर्ति जिस की धन देनेवाला य-  
ह कीर्ति जिस की। किं च हे अग्ने तू हमलोगों को अछा न-  
क्षि (अमिव्याप्त हो वा हे निर्मल स्वभाव अग्ने हमारे होम-  
स्थान को प्राप्त हो। जब-जब हम होम करें तब-तब भले  
प्रकार आगमन करि। किं च अतिदीप्ति युक्त धन दे ॥२५॥

नं त्वा शोचिषु लीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे स-  
खिभ्यः॥ सनो बोधि श्रुधी हव सुख्याणोऽपघाय-  
तः समस्मात् ॥२६॥ नं तं-भ्यः॥ अ० स-त् ॥ २६॥

हे शोचिष्ठ (दीप्तिमन्तम) हे दीदिवः (सब के प्रकाश करनेवा-  
रे) तिस (पूर्वोक्तगुणयुक्त) तुम्हें सरिवश्यों के अर्थ सुरवको नि-  
श्चयेन याचना करते हैं। वा सुरव के अर्थ और सरिवश्यों के  
उपकारार्थ तुम्हें याचना करते हैं। सो नूहम (अपनेसेवकों) को बो-  
धन करि हमारे आह्वानों को सुनि सब शत्रुओं से हमें रक्षा करि ॥ २६ ॥

इडग्रहदितग्रहि काम्या एत । मयि वः काम-  
धरणां भूयात् ॥२७॥ + इ-हि।ग्रणका-त।इ०॥२७॥

का० ४० १२० ८० इडं एहीति फिरि तिसी गो प्रति जावे ॥ गोदेव-  
त्या प्राजापत्या गायत्री । हे इडे (मनुपुत्री) आगमन करि । हे  
अदिति (देवमाता) आगमन करि होमस्थान को । इडा मनु  
को ऐसे हमलोगों प्रति आ । अदिति आदित्यों कों ऐसे हम  
लोगों प्रति आ ॥ का० ४० १२० ४० काम्या एतेति तिस गो का  
ग्रहण करै ॥ साम्नी उषिणग्गोदेवत्या । हे काम्याः (सवें)  
करि कामयितव्याः । तुम आइयो तुम्हारा अपेक्षितफल  
धारकत्व मुरु अनुष्ठातार विषे होवै (तुम्हारे प्रसाद से मैं  
अभीष्टफल का धारयिता होऊँ ॥ २७ ॥

सोमान्धं स्वराणं कण्ठहि वस्यणमने । कक्षाव-  
न्तं य औशिजः ॥२८॥

का० ४.१२.१०. ब्रतोपायनवत् (का० २.१.११.) विना जलका  
उपस्पर्श किये आहवनीय को पूर्व में खड़े हो देरवता हुआ सो-  
मानमिति नौ २८-३६. ऋचाओं को जपे ॥ सोमानं च स्वरणं  
तृचो गायत्रो ब्रह्मणस्पतिदेवत्यस्तेनैव दृष्टो मेधातिथिदृ-  
ष्टो वा । अग्निमीक्षमाणस्य यजमानस्य जपे विनियुक्तः ॥ हे  
ब्रह्मणस्पते (वेद के पालक) सोमान (सोमयागकर्तार) और  
स्तुतिरूपशब्दयुक्त धनप्रदान करिके मुझे करि । तत्रोपमान-  
मुच्यते । जैसा कि कक्षीवन्त (दीर्घतमा के पुत्र कक्षीवन्नाम-  
क ऋषि को सोमयागयुक्त और स्तुतियुक्त किया तैसा मु-  
झे करि + । कोन कक्षीवान् कि जो उषिजा (अङ्गिराजी की  
दासी) में हुआ ॥ २८ ॥

यो रेवान्योऽग्नीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । स-  
नः सिषक्तु यस्तुरः ॥ २९ ॥

जो ब्रह्मणस्पति धनवान् और जो रोगहन्ता धन का दाता  
पुष्टि का बढ़ानेवाला और जो अविलम्बकारी सो हमें से-  
वन करें ॥ यद्वानयर्चा पुत्रः प्रार्थ्यते । जो पुत्र धनवान् और जो  
जपादि करि व्याधि का हन्ता जो धन का लानेवाला और पुष्टि  
का बढ़ानेवाला जो शीघ्रकारी तैसा पुत्र हे अग्ने तेरे प्र-  
साद से हमें सेवन करें ॥ २९ ॥

मानः शर्गसोऽग्निरूपो धूर्तिः अण्डगर्तस्य । र-  
क्षाणो ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

+ कक्षीवन्तः पुष्टान् पुनिष्ठ प्रसिद्धिर्लैनिरीये रम्भायते । एवं धे पर आहारः कक्षीवानो-  
षिजा वीतहव्यः आयसस्त्र सुदस्युः प्रजाकामा अचिन्वतेति । ऋगन्तरेऽप्यष्टित्वकथ-  
नेना नुष्टान्त्व प्रसिद्धिः सच्यते । अहं कक्षीवा ऋषिरस्मि विप्र इति । तस्मादस्यानुश-  
तार शति दृष्टान्तत्वं युक्तम् ।



अरुषः (हविर्दान को न करने वाला वा उपद्रवी मनुष्य) का शं-  
सन (अनिष्टचिन्तन) और धूर्ति (हिंसा) हमें प्रकर्षण व्याप्त न हो  
अर्थात् शत्रुकृतमनिष्टचिन्तन और शत्रुकृताहिंसा हमें व्याप्त न हो।  
तिस के लिये हे ब्रह्माणस्पते (वेद के पालक अग्ने) हमें रक्षा करि ॥ ३० ॥  
महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्ष मित्रस्यार्यम् ॥ दुराधर्ष  
वरुणस्य ॥ ३१ ॥

वरुणसुतसत्यधृतिदृष्ट आदित्यदेवत्यस्तु चो गायत्री जपे वि-  
नियुक्तः पथिजप्त उपद्रवनाशकश्च। मित्र अर्यमा वरुण इन्  
तीनों देव सम्बन्धि पालन हो। कैसा पालन कि बड़ा तथा जिस  
पालन में सुवर्णादि द्रव्यें वास करती हैं तैसा। तिरस्कार कर-  
ने को अशक्य ॥ ३१ ॥

नहि तेषाममा च न नाध्वसु वारुणेषु । ईशे रिपुर-  
घशर्ठसः ॥ ३२ ॥

अमाओं (घरों) में भी वर्तमानों तथा वारुणों (चोरव्याघ्रादि-  
क जहां स्थित हुए निवारण करते हैं पथिकों को तिन्हें) में अ-  
थवा चोरव्याघ्रभयादयमार्गों में वर्तमान तिन मित्र अर्य-  
मा वरुण तीनों देवताओं करि पालन किये यजमानों को  
उपद्रव के अर्थ इति शेषः। अधशंस (सर्वदा पाप का प्रशंस-  
क) शत्रु समर्थ नहीं होता। अर्थात् मित्रादि करि पालित हम  
लोगों का घर और वन में शत्रुबाधा नहीं है ॥ ३२ ॥

तेहि युवांसोऽदितेः प्र जीवसे मर्त्याय ॥ ज्योतिर्य-

छन्त्यजस्रम् ॥३३॥

कैसे तिन्हों करि रक्षाकिये यजमानों को शत्रुभय नहीं होती  
तहां कहिता है। क्यों कि ते अदिति (अरवाण्डितशक्ति देवमाता)  
के पुत्र (पूर्वोक्त मित्रार्यमवरुण) मनुष्य (यजमान) के अर्थ नि-  
रन्तर अनुपक्षीण तेज देते हैं। किसलिये कि जीवन को। जैसे  
चिरजीवन हो तैसे तिसके उपाय का ज्ञान देते हैं इत्यर्थः ॥३३॥

कदा च न स्तरीरसि नेन्द्रसच्चसि दाश्रुषे। उपोपेन्नु म-  
घवन्भूय इन्नुते दानं देवस्य पृच्यते ॥३४॥

ऐन्द्री पथ्याबृहती मधुछन्दोहृष्टा जपे विनियुक्ता। हे इन्द्र परमे-  
श्वर्ययुक्त कदापि तू स्तरीः (हिंसक) नहीं है किं तर्हि हविदेनेवा-  
ले यजमान को सेवन करता है। किं च हे मघवन् (धनवन्)  
तेरा प्रकाशमान बहुतर दान यजमान के साथ सम्पर्क को  
प्राप्त होता है। भाव यह है कि कभी यजमान प्रति क्रुद्ध नहीं हो-  
ता और सेवन कर्ता है तिस तेरा बहुतर धन यजमान को स-  
म्पर्क होता है ॥३४॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो  
नः प्रचोदयात् ॥३५॥

विश्वामित्रहृष्टा गायत्री सावित्री जपे विनियुक्ता। 'यः' जो  
सविता देव, 'नः' हमारे, 'धियोः' धर्मोदिविषया कर्मों वा  
बुद्धि को, 'प्रचोदयात्' प्रेरण करता है, 'तत्' तिस, 'देवस्य'  
प्रकाशमान, 'सवितुः' सर्वों के अन्तर्यामि प्रेरक जगत् सृ-

जनेवाले परमेश्वर विज्ञानानन्दस्वभाव वा हिरण्यगर्भोपाध्यव-  
 छिन्न वा आदित्यान्तरपुरुष वा ब्रह्मके, 'वरेण्यं' सर्वों से उपासना  
 और ज्ञान करि के संभजनीय (अद्वापूर्वक सेवनीय), 'भर्गो' अ-  
 विद्या के कार्यों सब पापों और सब संसार के भर्जनसमर्थ, सत्य-  
 ज्ञानादिवेदान्तप्रतिपाद्य स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मक तेज को,  
 'धीमहि' हम ध्याय करते हैं ॥ यद्वा तदिति भर्गोविशेषणम्। मण्ड-  
 लं पुरुषो रश्मय इति त्रयं भर्गः शब्दवाच्यम्। भर्गो वीर्यं वा। वरु-  
 णाद्वा वा अभिषिषिचानाद्भर्गोऽप्यचक्राम। वीर्यं वै भर्ग इति ५  
 ४. ५. १. श्रुतेः। 'सवितुर्देवस्य' सविता देवता के, 'तत्' तैसे, भर्ग  
 को ध्यान करते हैं। तिस कैसे को कि जो भर्ग धियः प्रचोदया-  
 त् तिसै ध्यान करते हैं इति समन्वयः ॥ यद्वा जो सविता (सूर्य) धि-  
 यः कर्मों को सत्कर्मानष्ठान के अर्थ, 'प्रचोदयात्' प्रेरणा करता  
 है, तिस 'सवितुः' सब के प्रसविता, 'देवस्य' द्यौतमान सूर्य के,  
 'तत्' सर्वों से दृश्यमान करि के प्रसिद्ध, 'वरेण्यं' सर्वोंकरि संभ-  
 जनीय, 'भर्गः' पापों के तपानेवाले तेजोमण्ड को, 'धीमहि' मनसे  
 ध्यान करि के धारण करते हैं ॥ यद्वा भर्गः शब्देनान्नमभिधीयते।  
 जो सविता देव धियः प्रचोदयात् तिस के प्रसाद से अन्नादिलक्ष-  
 ण फल को 'धीमहि' धारण करते हैं (अर्थात् तिस के आधार भूता  
 होंवें) ॥ भर्गः शब्दस्यान्नपरत्वे धी शब्दस्य कर्मपरत्वे चाथर्वणम्।  
 वेदांश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः क-  
 र्माणि धियस्तद्गु ते प्रब्रवीमि प्रचोदयन्सविता याभिरेताति।

गोपथ ब्रा० १०३२॥ अयमर्थः सायनानुसारेण (ऋक्संहिताभा-  
 श्वेदार्थ प्रकाश अष्टक ३ अध्याय ४ वर्ग १० मण्डल ३ अ-  
 नुवाक ५ सूक्त ६२ ऋचा १०) महीधरानुसारेण च ॥ ३५ ॥

परि ते दूढभो रथोऽस्मां २॥ अश्रोतु विश्वतः। येन र-  
 क्षसि दाशुषः ॥ ३६ ॥

आग्नेयी गायत्र्यनिरुक्ता वामदेवदृष्टा जपे विनियुक्ता। हे अग्ने  
 तेरा रथ हम यजमानों को सब दिशाओं में परितः व्याप्त हो (ह-  
 मारी रक्षा के अर्थ सर्वतः तिष्ठे)। कैसा रथ कि किसी करि भी  
 सहसा हिंसा करने के लिये अशक्य। जिस रथ करि तू यजमानों  
 को रक्षा करता है ॥ ३६ ॥ इति बृहदुपस्थानं समाप्तम् ॥

अथ क्षुल्लकोपस्थानमासुरिदृष्टम्

अ० ५ भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याथ सुवीरौ वीरैः  
 सुपोषः पोषैः ॥

प्रवत्स्यदुपस्थानमागतोपस्थानंचादित्यदृष्टम्

नर्यं प्रजां मे पाहि शशंसं पशून्मे पात्यथर्यं पितुं मे  
 पाहि ॥ ३७ ॥

का० ४१२०१२० अथवा पूर्वोक्त उपप्रयन्त इत्यादिकरि कहेहु-  
 ए उपस्थान के स्थान में भूर्भुवः स्वरित्यादि सुपोषः पोषेरित्य-  
 न्तमन्त्र करि आहवनीय का उपस्थान करिके इसी से गार्हप-  
 त्य का उपस्थान करै ॥ आहवनीय गार्हपत्य देवत्यं यजुः। हे अ-  
 ग्ने भूर्भुवः स्वः तू व्याहृति त्रयात्मक वा तिस के अर्थ भूतलो-

कत्रयात्मक है। अतः तेरे प्रसाद से मैं प्रजा (बन्धुभृत्यादिरूपा) करिके सुप्रजाः (अनुकूलत्वेन शोभनप्रजावाला) हों। तथा वीरों (पुत्रों) करि सुवीर (शास्त्रीयमार्गवर्तिशोभनपुत्रयुक्त) हों॥  
क्षुल्लकोपस्थानं + समाप्तम्॥

+ पूर्वोक्तरीतिपि स्थानोपस्थानं-  
यास्य लघुत्वं तेन क्षुल्लको-  
पस्थानम्

का० ४.१२.१३. जब यजमान प्रवास + करे (अपने ग्राम से दूसरे ग्राम को जावे) तब सब अग्नियों को नर्येत्यादिमन्त्रों करि उपतिष्ठे॥ नर्य प्रजामिति गार्हपत्यो देवता यजुरुषिावच्छन्दः गार्हपत्योपस्थाने विनि०। हे नर्य (मनुष्यों-यजमानों-के अर्थहितकारी गार्हपत्य) मेरी प्रजा को रक्षा करि॥ शरिं स्येति आहवनीयो देवता यजुरुषिाक् आहवनीयोपस्थाने वि०। हे शंस्य (अनुष्ठाताओं) करि शंसा करने के लिये योग्य आहवनीय) मेरी प्रजा पुत्रादिका को पालि॥ अथर्येति दक्षिणाग्निर्देवता प्राजापत्या गायत्री दक्षिणाग्न्युपस्था०। हे अथर्य (गार्हपत्य से अपने ध्यान को चलंत दक्षिणाग्ने) मेरे पितु (अन्न) को रक्षा करि॥ ३७॥ प्रवत्स्यदुपस्थानं समाप्तम्॥

आगन्म विश्ववैदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्॥ अग्नै  
सम्राडभि ह्युन्नमभिसह आयच्छस्व॥ ३८॥

का० ४.१२.१८. अन्यग्राम से लौटि अपने ग्राम को प्राप्तहुआ समिधा हाथ में लिये उपस्थान से पहिले पिता गुरु वा राजा के निकट न जावे तथा अपने समीप में आये हुएों को भी नमस्कारदि न करे तत्काल स्नान करि अन्यागार में प्राप्त हो आगन्मेत्या-

† प्रवास प्रवार्थमाह कारिकाकारः। ग्रामान्तरं नगर्या वा यन्त्या वान्यत्र वा क्वचित्। सीमा-  
मतीत्य चेद्वात्रो वासः प्रवसनं स्मृतमिति॥

दि तीनों मन्त्रों से आहवनीयादिकों को उपतिष्ठे ॥ आदावाहवनी-  
यमुपतिष्ठते । अनुष्टुबाहवनीयदेवत्या । हे अग्ने सम्म्राट् (सम्यक्  
राजमान् आहवनीय) हम तुम्हें उद्देश करि ग्रामान्तर से लौटि-  
के आये । तुम्हें कैसे को कि विश्ववेदा (सर्वज्ञ चा सर्वधन) तथा हमारे  
अर्थ धन के लब्धार्थकों । किं च हे अग्ने हमारे विषे द्युम्न (पशुवा  
अन्न) तथा सह (बल) को आयच्छस्व । (आगमन वा स्थापन करि ॥ ३६ ॥

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः । अग्ने गृ-  
हपतेऽभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥ ३७ ॥

गार्हपत्यमुपतिष्ठते । न्यङ्कुः सारिणी बृहती गार्हपत्याग्निदेवत्या ।  
यह सामने उपस्थित गार्हपत्यनामा अग्नि घर का पालक है ।  
प्राजा (पुत्र पौत्रादिका) के अनुग्रहार्थ अतिशयेन धन का  
लब्ध । हे अग्ने गृहपते सो तू द्युम्न और सह दे ॥ ३८ ॥

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान्पुष्टिवर्धनः ॥ अग्ने पुरीष्या-  
भि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥ ४० ॥

दक्षिणाग्निमुपतिष्ठते । दक्षिणाग्निदेवत्यानुष्टुप् । जो यह अ-  
ग्नि पुरीष्य (पशव्य) धनवान् पुष्टिका बढ़ानेवाला है तिसे याचना  
करता हूँ । हे अग्ने पशुहित द्युम्न और सह सर्वतः दे ॥ ४० ॥

अ० ६० गृहा मा विभीत मा वेपथ्वमूर्जं विभ्रत एमसि । ऊर्जं  
विभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानेमि मनसा मोदमानः ॥ ४१ ॥  
का० ४० १२० २२० गृहामेत्यादि घर को प्राप्त होवे ॥ तिस्रोऽपि वास्तुदे-  
वत्याः बृहस्पतिसुतशम्युदृष्टाः ॥ आद्यात्रिष्टुच्चिराङ्गपा । हे घर-

† द्युम्नं द्योतते येषां वानं वा निरु० १० २१ ॥



औ तुम भय मत करो यह कि पालक यजमान गया। और कोई शत्रु आके विनाश करेगा यह बुद्धि करिके मत काँपौ। क्यों कि हम ऊर्ज (अक्षीणअन्न) को धारण किये तुम में आये। जैसे तुम ऊर्ज धारण किये हो तैसे हम भी ऊर्ज को धारण किये शोभनमनस्क शोभनधारणप्रज्ञोपेत मन से दुःख रहित करि प्रसन्न तुम घरों को आये हैं ॥४१॥

येषामध्येति प्रवसन्त्येषु सौमनसो बद्धः। गृहानुपहृत्यामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥४२॥

अनुष्टुप्। देशान्तर को गया यजमान जिन गृहों का स्मरण करता (गृहविशेषक्षेम को सदाचिन्तन करता) है। तथा जिन गृहों में यजमान की बहुत करिके प्रीति है। हम तिन गृहों को बुलाते हैं (गृहाभिनानीदेव हमारे समीप आवें। ते गृहदेवा आकर के हमें उपकाराभिज्ञ जानें (येकतज्ञ नहीं हुए यह जानें ॥४३॥

उपहृता इह गाव उपहृता अजावयः। अथोः अन्नस्य कीलाल उपहृतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शान्त्ये प्रपद्ये शिवर्धं शुग्मर्धं शुम्योः शुम्योः + ॥४३॥

अवसानामहापट्टिः। इन घरों में गौएँ और बलीवर्द सुख करिके तिष्ठें यह हमने आज्ञा दी। तथा छेरियें और भेड़ियें सुखपूर्वक रहें यह हमने आज्ञा दी। और अन्न सम्बन्धि रसविशेष हमारे घरों में समृद्ध हो ऐसी हमने आज्ञा दी ॥ का० ४० १२० २३ क्षेमायव इति गृह में प्रवेश करें ॥ हे गृहओं तुम को

प्राप्त होता हूँ। किमर्थम् कि क्षेम (विद्यमान धन की रक्षा) के  
अर्थ। शान्ति (अपने सर्वानिष्ट शमन) के अर्थ। मुरुशाम्य  
(सुरव चाहने हारे+) का शिव (ऐहिक सुरव) शरम (आमु-  
ष्मिक सुरव)† उभयविध सुरव होवै इति शेषः॥ शाम्योरि-  
त्यभ्यासोऽत्यादरार्थः॥ ४३॥ इत्युपस्थानमन्त्राः समाप्ताः॥

अथ चातुर्मास्यमन्त्राः प्रजापतिदृष्टाः

अ० ७. प्रधासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः। कुरुम्भेण  
सुजोषसः॥ ४४॥

चातुर्मास्य के मन्त्र प्रजापति ने देरवे। सो चातुर्मास्यनामा य-  
ज्ञ पर्वचतुष्टयात्मक है। वैश्वदेव १. वरुणप्रधास २. साक-  
मेध ३. शुनासीरीय ४. नामा चारि पर्व हैं। तहां वरुणप्रधा-  
सारव्य दूसरे पर्व में दक्षिणोत्तर दोनों वेदियों पर हविःओं  
के रखने में प्रतिप्रस्थाता यजमानपत्नी से पूछे 'केन चर-  
सि' अपने पति से व्यतिरिक्त किस पुरुष के साथ मैथुनसु-  
ख का अनुभव करती है। यदि लज्जा करि जार का नाम  
न कहै तदा प्रति जार का एक-एक तृण हाथ से गृहण करें।  
और जो जार न हो तौ भर्तृव्यतिरेकेण न केनापि चरमिंभ-  
र्तार से व्यतिरिक्त किसी से भी मैथुन नहीं करती- यह कहै ॥  
का० ५. ५. १०. पत्नी करि प्रतिवचन देते प्रतिप्रस्थाता तिस-  
पत्नी को उठाकर आहवनीय प्रति लाके प्रधासिनः यह म-  
न्त्र बुलवावै ॥ मारुती गायत्री। हम मरुतों और ५ तदीयपरि

+ शाम्योः शाम्यति सुखनाम निघ० ३. ६. तत्काम्यवति इति श्रुत्युः। इदम्युदि कामयमान इति निरु० ६. ३१ याज्ञोक्त्यात्।

† शिवं शाम्यमिति हे सुखनामनी निघ० ३. ६.

‡ चकारेण तदीयपरिचारका समुच्चीयन्ते

चारकों को बुलाते हैं। कैसे मरुतों कि प्रधासिनः (प्रकर्षण भक्षण करिये हैं) हविर्विशेष तिस युक्तों प्रधासीनामाओं तदुपलक्षितों को। पुनः कैसे कि रिशादसों (वैरिहता हिंसा के नाश करनेवालों वा हिंसकों के मारनेवालों) को। तथा कर्मभ (यवमय हविर्विशेष) से समान प्रीति है जिन्हों की तिन्हों को ॥४४॥

यद्गामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चक्रमा  
वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥४५॥

का. ५. ५. ११. यवपिष्ट करि बनाये एकाधिक संतानपरिमित वर्तुलादिरूप कर्मपात्रों को जुहूस्थानापन्न श्रृंष करिके दक्षिणाग्नि में पत्नी होमें इत्येकः पक्षः। अथवा जायापती दोनों होमें इत्यपरपक्षः। और सो जायापती दक्षिणामागे करि तिन पात्रों को लेके वेदि के पूर्व दिशां वा पश्चिमदिशा में स्थित हो होमें ॥ मरुदेवत्यानुष्टुबनिरुक्ता । ग्राम में वास करि जो हमनें ग्रामोपद्रवरूप पाप किया। तथा अरण्यमें वास करि जो पाप मृगोपद्रवरूप किया। तथा सभा में स्थित हो जो पाप महाजनतिरस्कारादिक किया। तथा इन्द्रियों जिह्वोपस्थरूपाओं करि हमनें प्रीति करिके जो पाप कलञ्ज भक्षण परस्त्री गमनादि किया। तथा अन्यत्र भी भृत्यस्वाम्यादि में जो पाप ताडनावज्ञादिक किया तिस इस सब पाप को नाश करते हैं। स्वाहा (यह हवि पापविनाशिनी देवता के अर्थ दिया ॥४५॥

+ शुक्लज्योतिरित्यादयः सप्त सप्तका मरुता गणाः । तत्र स्वतर्वाश्च प्रधासी चेति पठ्यते अध्या. ० १७. ४५।

मो दू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मि-  
न्नवयाः । महश्चिद्यस्य मीढुषीयव्या हविष्मतो  
मरुतो वन्दते गीः ॥४६॥

का० ५. ५. १२. त्याग के अनन्तर यजमान जपे ॥ आगरत्यष्ट-  
ष्टा ऐन्द्रमरुदेवत्या चतुष्यदा विराट् । हे इन्द्र इन संग्रामों में  
वर्तमान सर्व को प्राप्त मरुदेवताओं सहित हमलोगों को वि-  
नाश न करि इति शेषः । मोषाब्दो निषेधार्थः सुषाब्दो विना-  
शाभावस्य सौष्ठवं ब्रूते । तथा सति विनाशालेश न हो इत्यर्थः  
संपद्यते । क उपकार इति चेत् । हे शुष्मिन् (बलवन्निन्द्र +)  
तेरा अवयाः (अवयुतो यागः पृथग्भागः) विद्यमान है ।  
हे मीढुषः (वृष्टिप्रदत्वेन सेक्तुः) । तुरू हविर्योग्य की यव्या  
(यवमय-करम्भयात्रों करि निष्पन्ना) होमक्रिया महश्चि-  
त्पूजा है भाव यह है कि तिस तुरू यथोक्त पूजोपेत का हम-  
लोगों में कृपालुत्व युक्त है । किं च मेरी स्तुतिरूपा वाणी तेरे  
मरुत् सर्वाओं को नमस्कार करती है । अर्थात् मरुद्विषय-  
नमस्कार करि तुरू तुष्ट की कृपा युक्त है ॥४६॥

अक्रन्कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयो भुवा । देवेभ्यः  
कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥४७॥

का० ५. ५. १३. यजमान जपे ॥ आग्नेय्यनुष्टुबनिरुक्ता । वरुण-  
प्रधासारव्यकर्मकारिणः ऋत्विजलोग स्तुतिरूपा वाणी सहित  
वरुणप्रधासानुष्ठानरूपकरते हुए । कैसी वाणी कि मयो भुवा (सुख

† अर्थात् तिस बलवान्मिन्द्र +  
तिथि ० ३. ५. १

† नमो मरुद्व्य इत्येवमाकारयाः स्तुतेर्नमस्काररूपत्वात् ।

होता है जिस करि तिस मन्त्ररूपस्तुति से। हे सचाभुवः (सहभवनशीलाः) परस्पर यजमान वा पत्नी करि इस कर्म में साथ बैठे ऋत्विज लोगो (देवताओं के अर्थ वरुणप्रधासारव्य कर्म करि के घरो को जाओ) ॥४७॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अवदेवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमवमर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुषाणो देव रिषस्याहि ॥४८॥

का० ५. ५. ३०. ३१. वरुणप्रयास कर्म के अन्त में तदङ्गभूत जो अवभृथनामा कर्म जलसमीप में होता है तहां। दम्पती (यजमान यजमान्या) इस मन्त्र करि जल में स्नान करते हैं ॥ यज्ञदेवत्यम् ब्राह्मणुष्टम्। हे अवभृथ (अवाचीनपात्र जलमें डालते हैं तिस यज्ञविशेष में सो) हे निचुम्पुण (निरन्तर मन्द चलनेहारे यद्वा नीचशब्द करि कर्म करते हैं) तथाविधावभृथ यद्यपि नू निचेरुः (निरन्तर गमनशील) है तथापि यहां निचुम्पुण हो। किस प्रजयोनि को सो कहिता है। देवों (द्योतनात्मकों अपयनी इन्द्रियों) करि देवकृत (हविः स्वामिओं देवताओं में किया) जो पाप है सो इस जल में डालता हूं। तथा मनुष्यों (अपने सहायभूत ऋत्विजों) करि किया मनुष्यों (यज्ञदर्शनार्थ आये हुओं) में अवज्ञारूप जो पाप है तिसै भी जल में डालता हूं। यह मेरा त्याग हुं या पाप जैसे तुम्हें व्याप्त न हो तैसे मन्द चलि इति भावः। किं च हे देव (अवभृथारव्य यज्ञ) रिषः (बध)

सै रक्षा करि। कैसारिषः कि पुरुरावाः (बहुत विरुद्ध फल को देता। अ-  
र्थात् विरुद्ध फलदायी बध तेरे प्रसाद हमलोगों को नहो ॥४८॥  
अ० ८. पूर्णं दर्वि परं पत सुपूर्णं पुनरपत। वस्त्रेव विक्रीणा-  
वहा इषमूर्जं शतक्रतो ॥४९॥

साकमेधगतं कर्म किंचिदुच्यते ॥ का० ५. ६. ३६. पूर्णं दर्वीति  
दर्वी करि स्थाली से ओदन ग्रहण करे ॥ हे ऐन्द्रावनुष्टुभौ ओ-  
र्णवाभहृष्टे। हे दर्वि (अन्नप्रदान साधनभूते काष्ठादिनिर्मिते) तू  
पूर्ण (स्थाली) के सकाश से अन्न ग्रहण करिके पूर्ण (पूर्णत्वसे  
ही उत्कृष्ट) हुई पत (इन्द्र प्रति गमन करि। सुपूर्ण (कर्मफल  
करि भलीभाँति से पूर्ण) हुई फिरि हमारे प्रति आगमन करि।  
एवं दर्वीमुक्त्वा इन्द्रमाह। हे शतक्रतो (बहुकर्मन् इन्द्र) तू ओर  
हम दोनों वस्त्रेव (मूल्य करिके ही। इष (अभीष्ट हवि रूप अन्न)  
ओर ऊर्ज (हविर्दानफल रूप रस विशेष) को विक्रीणावहै (परस्पा-  
र द्रव्यविनियमरूप विक्रय करें। मैं तेरे अर्थ हवि देता हूँ तू  
मेरे अर्थ फल दे इत्यर्थः ॥४९॥

देहि मे ददामिते निमै धेहिनि ते दधे। निहारं च हरा-  
सि मे निहारं निहरणि ते स्वाहा ॥५०॥

का० ५. ६. ४० देहि मे इससे होम करे ॥ इन्द्र कहिता है। हे यज-  
मान तू मुझ इन्द्र के अर्थ प्रथम हवि दे। पश्चात् तू यजमान के  
अर्थ में अपेक्षित देता हूँ। एवं प्रथमपादोक्त एवार्थो द्वितीयपा-  
देनाद्वार्थ पुनरुच्यते। पहिले मुझ इन्द्र के अर्थ निरन्तर हवि



दे। तुरु यजमान के अर्थ अपेक्षित फल निरन्तर देता हूँ। ऐसा इन्द्र का वाक्य सुनि उत्तरार्ध करि यजमान कहिता है। निहार (मूल्यकरि केतव्य वस्तुरूपफल) तुरु यजमान के अर्थ दे। निहार (मूल्यभूत हवि) तुरु इन्द्र के अर्थ निरन्तर समर्पण करता हूँ। स्वाहाशब्दो हविर्दानार्थः। पूर्वार्ध में दो पादों से आदर करि इन्द्र के दो बार कहे अर्थ को उत्तरार्ध करि यजमान भली भाँति से अङ्गीकार करता है इत्यर्थः॥५०॥

अ०४. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तौषत स्वभानवो विप्रानविष्टया मती योजा त्विन्द्र ते हरी॥५१॥

साकमेधगतपितृयज्ञारव्यकर्मणि आहवनीयोपस्थानम्॥ का० ५.४.२१ सव्य यज्ञोपवीत करि सब ऋत्विग्यजमान निकलि के उत्तराभिमुख हो आहवनीय के समीप में अक्षन्नमीमदन्त सुसंहसं त्वेति दो कण्डिकाओं करि आहवनीय को उपतिष्ठें॥ हे इन्द्रदेवत्ये गौतमदृष्टे पञ्चपदा पङ्क्तौ॥ पितृयज्ञारव्य कर्म में जे पितर हैं ते हमलोगों करि दिये हविःस्वरूप अन्न को भक्षण करते हुए। यह कैसे जाना। यों कि हमारी भक्ति को जानि प्रीति युक्त हो अपने शिरो को कम्पाते हुए वा अपनी प्यारी देही को कम्पाते हुए। किंच स्वभानवः (स्वयंदीप्ति युक्ताः) विप्राः (मेधाविनः) नवीन बुद्धि करिके युक्त स्तुति करते हुए (अहो बहुत स्वादिष्ट अन्न हमको दिया भली भक्ति है) अतः हे इन्द्रक्षिप्र अपने हरीनामा (हरितवर्ण) घेड़े रथ में जोड़ि अपनी अभीष्टा पितृतृप्ति करि संपन्न होने से

तिन पितरों के साथ तुम्हें जाना चाहिये इत्यर्थः ॥५१॥

सुसंहर्षो त्वा वयं मधवन्वन्दिषीमहि । प्रनूनं पूर्णव-  
न्धुरं स्तुतो यासि वशं ॥ अनुयोजान्विन्द्र ते हरी ॥५२॥  
हे मधवन् हम तुम्हें (तेरे) स्तुति करने वाले हैं यह प्रार्थना करते हैं ।  
कैसे तुम्हें कि शोभनदर्शन (अनुग्रहदृष्टि करि सब के द्रष्टार को ।  
ऐसे हमलोगों करि स्तुति किया तू कामयमानयजमानों को ल-  
रिवके अवश्य जाता है कैसा कि पूर्णवन्धुरः (स्तोत्रों के अर्थ दात-  
व्य धन करिके सम्पूर्णरथनी डोपित होके जाता है । हे इन्द्र सो तू क्षिप्र ॥५२॥

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसोऽस्मै । पितॄणां च म-  
न्मभिः ॥५३॥

का० ५० अ० २२ मनो न्वाह्वामहे इनतीनि ऋचाओं करि गार्हपत्य  
को उपतिष्ठे ॥ तिस्र ऋचो मनोदेवत्या गायत्र्यो बन्धुदृष्टाः ॥ हमशीघ्र  
मन को बुलाते हैं (पितृयज्ञानुष्ठान करि चित्त पितृलोक को  
गया था अतः बुलाइयें हैं । यद्वा मनोऽभिमानि देवता को बु-  
लाते हैं । किस साधन कि स्तोम (स्तोत्र) करिके कैसे स्तोत्र कि ना-  
राशंस (मनुष्यों के योग्य शंस नराशंस तिस सम्बन्धि) करिके ।  
स्तोत्र द्विविध है एक दैव दूसरा मानुष जहां देवता स्तुति करियें हैं  
सो दैव और जहां मनुष्य प्रशंसा करियें हैं सो मानुष तैसे मानुष स्तो-  
त्र करिके यह युक्त है कि च पितर जिस स्तोत्र को मानते हैं  
तैसे स्तोत्र करि के बुलाते हैं ॥५३॥

आ न एतु मनः पुनः कृत्वे दक्षाय जीवसे । ज्यो-

क्व सूर्ये हृषो ॥५४॥

हमारा मन (पूर्वोक्तचित्त) फिरके आगमन करें किमर्थ कि क-  
तु (यज्ञसंकल्प) के लिये दक्ष (कर्म में उत्साह) के लिये +। ज्यो जी-  
वन (चिरजीवन) के लिये और सूर्यावलोकन के लिये। इन सं-  
कल्पादिकों की सिद्धि के अर्थ मनः पुनः आगमन करें ॥५४॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु देव्यो जनः। जीव व्रात-  
र्हं सचेमहि ॥५५॥

हे पितरओ आपकी अनुज्ञा करि देवसम्बन्धि पुरुष हमारे अर्थ पू-  
र्वोक्त चित्त को पुनः देवों (ऐराणा) करें। तथा सति अनुष्ठान करिके आप  
के प्रसाद से जीवनवन्त व्रात (पुत्रपश्चादिगण) को हम सेवन करें ॥५५॥

वयर्हं सोम व्रते तव मनस्तनूषु विभ्रतः। प्रजावन्तः  
सचेमहि ॥५६॥

सोमदेवत्या गायत्री बन्धुदृष्टा जपे विनियुक्ता। अत्र पितृयज्ञे सोम-  
नामको देवो गतिः। सोमाय पितृमते २. २४. ६० इत्येवं हविषो  
विहितत्वात्। हे सोम हम यजमानाः तेरे व्रत (कर्म) में वर्तमानाः  
तेरे शरीरों में अपने चित्त को धारण करते हुए तेरी कृपा से प्र-  
जावन्तः (पुत्रपौत्रादिसंपन्नाः) होकर सेवन करते हैं सेवित-  
व्य वस्तुओं की इति शेषः। यद्वा सर्वदा तेरे सम्बद्धा हों ॥५६॥

अ० १०० एष ते रुद्र भागः सह स्वस्वामि कया तं जुषस्व स्वा-  
ह्वेष ते रुद्र भाग आषुस्ते पशुः ॥५७॥ +

साकमेधगतत्र्यम्बकहविर्विषया मन्त्रा उच्यन्ते ॥ का०

+ तथा च श्रुतिः यदेव मनसा कामयत इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव  
कतुरथ यदस्मै तत्समृद्धयेत म दक्ष इति। + ए-हा। अ० १०१ ए-शु। इ० ॥५७॥

५१०१२ एष ते इस से होमें ॥ एष ते हे रोद्रे यजुषी १ प्राजापत्या  
 बृहती अवदान होमे विनि० हे रुद्र (विरोधियों के भाँतिभाँति  
 से रुलानेवाले) तेरी स्वसा (भगिनी-बहनि) अम्बिकानाम्नी  
 करि सहित यह हमलोगों करि दीयमान पुरोडाश भाग (भज-  
 नीय-स्वीकरने के लिये योग्य है) तिस तैसै पुरोडाश को तू से-  
 वन करि स्वाहा (यह दिया हवि सुहुत हो ॥ अम्बिका का रुद्र  
 की भगिनी होना श्रुति में कहा है। शत० २६२४ अम्बिका  
 ह वैनामास्य स्वसा तयास्यैष सह भाग इति। जो यह रुद्रना-  
 मा क्रूरदेव है तिस की विरोधि को मारने के लिये इच्छा होती है  
 तब इस भगिनी क्रूरदेवता साधन मूता करि तिसै मारता है।  
 और सो अम्बिका शरद्वय को प्राप्त हो जगदिक को उत्पन्न करि  
 तिस विरोधि को मारती है। तिन रुद्र और अम्बिका का उग्रत्व  
 इस हवि करिके शान्त होता है। तथा च तित्तिरिः। एष ते रुद्र भा-  
 गः सह स्वस्वाम्बिकयेत्याह शरद्वयः अस्याम्बिका सामियाः  
 एषा हिनस्ति यर्धं हिनस्ति तयैवैनर्धं सह शमयतीति ॥ का०  
 ५१०१२१३ यजमान के जितने पुत्र मृत्यादिक पुरुष हैं  
 तिन्हें गिनिकर प्रति पुरुष एक-एक पुरोडाश बनाकर फि-  
 रि एक अधिक बनावै सो अतिरिक्त कहिलाता है। तहां जो  
 यह अतिरिक्त तिसै न होमें किंतु उत्तरदिशा में जाकर मूसे-  
 ओं की खोदी हुई मृदा में प्रवेश कराय के टकि देवै ॥ २० एष  
 ते यजुर्जगती। हे रुद्र यह हमलोगों करि उपकीर्यमाण अति-

रिक्त पुरोदाश नेरा भाग (तुम करि भजनीय) है तथा नेरा आ-  
खुः। मूषक मूसा चूहा पशुत्व करिके समर्पित है। अर्थात्  
आखुदान करि तुम हुआ रुद्र अम्बिका करि यजमान  
के पशुओं को नहीं मारता ॥५०॥

अव रुद्रमं दीमत्यक् देवं अम्बकम्। यथा नो वस्य  
सस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥५१॥  
का० ५-१०-१५ तहां से लोपि करि अव रुद्रमं दीमहीति जपे ॥ हे  
रुद्र देवत्ये प्रथमा पञ्चपदापङ्क्तिर्द्वितीया ककुप ह्वयोर्जदेदिति०  
रुद्रमव असौ रुद्र इति, यह रुद्र है यह मन करि तिमै जानना तेरे  
अनुग्रह मे हम अन्न को भक्षण करेगे तथा अम्बक इस देव के  
तीनि नेत्र है यह मन० यद्वा अन्यदेवताओं से मूषक करिके रुद्र  
को भोजन करते हैं। अन्य दे० के अम्बक को भोजन करते हैं।  
जैसे यह हम लोगों को वसनशील करे। और जैसे हम को ज्ञाति  
में प्रशस्यतर करे। और जैसे हम को सबकार्यों में निश्चययुक्त  
करे। तैमै इसै जपते हैं इत्यर्थः। आशीरियम् ॥५०॥

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् ॥  
सुखं मेषाय मेष्ये ॥५२॥

हे रुद्र तू भेषज (ओषधवत्सर्वोपद्रवनिवारक) है इस कारण  
हमारे गो अश्व और पुरुषों के अर्थ सर्वव्याधिनिवारक ओष-  
ध दे। मेष और मेषी के अर्थ सुख (सुहित है प्राणों के अर्थ)  
दे। अनेन मन्त्रेण गृहपशूनां क्षेमप्राप्तिर्भवति ॥५२॥

अम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुक-  
मिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ अम्बकं यजा-  
महे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादि-  
तो मुक्षीय मामृतात् ॥ ६० ॥ + अ-त् ॥ अ-त् ॥ अ-त् ॥ ६० ॥

का० ५. १०. २५. १६. जैसे पितृमेध में पुत्रादयः पुरुषाः अपनी वा-  
मोरू को ताडना करते तीनिवार अप्रदक्षिणा फिरते हैं । और जैसे देव-  
ता सेवा में दक्षिणोरू को ताडन करते तीनि प्रदक्षिणा फिरते हैं ।  
एवं यहां पुरुषाः पहिले अम्बकमन्त्र करिके अग्नि को तीनि अप्र-  
दक्षिणा और तीनि प्रदक्षिणा फिरें । तहां एक-एक मन्त्र पूर्वक और  
दो-दो चुपके से परंतु अप्रदक्षिणा फिरते अपसव्य न होंवें ॥  
हे अनुष्टुभो पूर्वस्यां वसिष्ठदृष्ट्या ॥ सुगन्धि (दिव्यगन्धोपेत) मर्त्यध-  
र्म हीन पुष्टिवर्धन (धनधान्यादि पुष्टि के बढ़ानेहारे) अम्बक (तीनि  
नेत्रयुक्त) रुद्र को पूजन करते हैं । ततः रुद्र के प्रसाद से मृत्यु (अपमृ-  
त्यु और संसारमृत्यु) से मुक्त होवेंगे और अमृत (स्वर्गरूप और मुक्तिरू-  
प) से मुक्त न होंवेंगे (मेरा अभ्युदयनिः श्रेयसरूप दोनों फलों से भू-  
षण हो इत्यर्थः) । मृत्योर्मेचने दृष्टान्तः ॥ उर्वारुकमिव बन्धनादिति  
जैसे बदरी आदि फल अत्यन्त पक्क होने पर अपने डंठरे से छूटता है  
तद्वत् ॥ का० ५. १०. १३. और यजमानसम्बन्धिन्यः कुमार्यः (विन वि-  
वाही पुत्रीएँ) पूर्वोक्तपुरुषवत् अग्नि को तीनि-तीनि फेरे देंवें एक-ए-  
क चार उत्तर अम्बक मन्त्र पढ़िकर दो-दो बार चुपके से इति ॥ इम  
अम्बक को पूजती हैं । कैसे को कि पतिवेदन (भर्तार के देनेवाले)

+ इत आख्याध्यायसमाप्तिपर्यन्तं सर्वमाशिषदेवत्य । आशीः पापमित्युक्तत्वात्  
कात्या० अनु० १. १५ ।



को। अन्यत्पूर्ववत्। इतो मुक्षीय, मातृपितृभ्रातृवर्ग से छूटें, अमु-  
तो मा, विवाह में ऊपरपति से न छूटें, पिता के गोत्र और घर को छो-  
डि के पति के गोत्र और घर में अश्वक प्रसाद से सर्वदा वास करें।  
सा यदित इत्याह ज्ञातिभ्यस्तदाह मामुत इति पतिभ्यस्तदाहेति श-  
त० २. ६. २. १४. श्रुतेरितोऽमुतः शब्दाभ्यां पितृपतिवर्गे ग्राह्यो॥ ६०॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन पुरो मूजवतोऽतीहि। अवततध-  
न्वा पिनाकावसः कृतिवासा अहिर्ऋसन्नः शिवोऽ-  
तीहि॥ ६१॥

का० ५. १०. २१. ब्रीहियवादिकों को वहने के अर्थ तृणवंशादिनिर्मि-  
त पात्रविशेष भूत कहलाता है। तैसे दो मूतों में अश्वक के हविः-  
शेषों को डालिकर अपने कन्धों से वहने योग्य वंश वा यज्ञिय-  
काष्ठ की लाठी में तिन दोनों मूतों को बाँधि उन्नत स्थाणु (ठूठ)  
वा वृक्ष वा वंश वा वल्मीक पर दोनों मूतयुक्त लाठी को छोड़ि-  
दे। तैसे गोंगें न सूँघ सकें इससे गौओं की रोग नहीं होता॥ गेद्या-  
स्तारपङ्क्तिः॥ हे रुद्र यह तेरा अवस + (हविः शेषाख्य भोज्य) है ति-  
स सहित तू मूजवान् पर्वत † से परभागवती हो अतिक्रम्य जा। कैसा है  
तू कि अवततधन्वा (अवरोपितधनुष्कः) हमारे विरोधियों के तुम  
करि निवारतत्त्व से इस पीछे धनुष में ज्या चढ़ाने का प्रयोजन न रहि-  
ने से यहां अवरोपण युक्त है। तथा पिनाकावसः (पिनाकनामा अप-  
नी धनुष को सर्वतः ढाँपता। जैसे धनुष को देखि प्राणी न डरें तैसे वस्त्रा-  
दिसे ढाँपिके गमन करि इत्यर्थः॥ का० ५. १०. २२. २३ कृतिवासेति

† मूजवान्नाम कश्चित्पर्व सो रुद्रस्य वासस्थानम्।

श्री-  
भक्तव्य-  
तथाकादिसमीपि भोक्तव्य-  
मार्गमध्य-  
गच्छते-  
अवसंशब्देन देशान्तरं गच्छते-  
वनविशेष उच्यते।

दोनों मूर्तों को निश्चल करे केचित् नहां से लौटते हुए दोनों मूर्तों को न देखते वेदी के समीप में आकर जल का स्पर्श करे ॥ मन्त्रार्थस्तु हे रुद्र नू कृतिवासाः (चर्माम्बरः) हम लोगों को न भारते शिव (हमारी पूजा करि संतुष्ट हुआ को परहित) होके पर्वत को अतिक्रम्य गमन करि ॥ ६१ ॥

आयुषं जमदग्नेः कश्यपस्य आयुषम् । यद्देवेषु आयुषं तन्नोऽप्रस्तु आयुषम् ॥ ६२ ॥

का० ५००१६ यजमान समय संहितास्वर से यजमान जपे ॥ नारायण हृष्टाशी देवता शिवाक् । जमदग्नि मुनिका जो आयुष (बाल्ययौवनस्थाविर तीनों अवस्थाओं का समाहार) तथा कश्यप नामा प्राजापतिका जो आयुष तथा देवताओं (इन्द्रादिकों) में जो आयुष है सो सब आयुष हम यजमानों का हो । जमदग्न्यादिकों का बाल्यादि में जैसा चलन तैसा हमारा होवे इत्यर्थः ॥ ६२ ॥

शिवो नामासि स्वधितस्ते पिता नमस्तेऽप्रस्तु मा मा हिर्हंसीः । निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्यय प्रजननाय गायस्योषाय सुप्रजा स्वाय सुवीर्याय ॥ ६३ ॥ †

इति श्री संहितायां दशमोऽनुवाकः १०

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनी शार्वीयायां वाजसनेय संहितायां दीर्घ पाठे तृतीयोऽध्यायः ३

का० ५०२१७ शिवो नामेति लोहे का क्षुरा लेकर निवर्तयामीति वपे ॥ शिवो नामेति प्राजापत्या ब्रह्मती क्षुरदे० १० निवर्तयामीति यजुर्लिङ्गेक्त (यजमान) दे० २॥ आशीः प्रायम् । मन्त्रार्थस्तु ।

† शिवो नामेति लोहे का क्षुरा लेकर निवर्तयामीति वपे ॥ शिवो नामेति प्राजापत्या ब्रह्मती क्षुरदे० १० निवर्तयामीति यजुर्लिङ्गेक्त (यजमान) दे० २॥ आशीः प्रायम् । मन्त्रार्थस्तु ।

† शि-सीः अ० नि-य। इ० ॥ ६३

हे क्षुर तू नाम करिके शिव (शान्त) हे स्वधितिः (वज्र) तेरा पिता  
तेरे अर्थ मेरी नमस्कार सुरूको मत मारि ॥१॥ हे यजमान ते-  
रा मुण्डन कर्ता हूँ किसलिये कि जीवन के अर्थ अन्न भक्षण-  
सन्तान धन की पुष्टि शोभन प्रजा शोभन सामर्थ्य के अर्थ ॥  
२॥ ६३॥

श्री वेदार्थ प्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
पुमार्थोश्चतरोदयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः ३  
इति श्री गिरिधरभाष्ये दशमोऽनुवाकः १०

श्री मच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृवैयाघ्रपदा-  
न्वय विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जय किशोरदेववर्मात्मज  
गौकिमणाय नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थ प्रदीपे गिरिध-  
रभाष्ये गिरिप्रसाद सर्वस्वे अग्न्याधानादिष्वन्यन्तसृतीयोऽ-  
ध्यायः ॥३॥

हरिः ओम्  
ॐ नमो यज्ञपुरुषाय  
पञ्चात्मकं द्विरुत्तमं साधनेर्बहुरूपाकम्  
स्वानन्दलायकं चक्षुषां ब्रह्मरूपं परं सुभः ४

अथारिन्नष्टोममन्त्रास्तेषां प्रजापतिर्वरिषिः

अ० ११ शतम् ॥ एतु मगन्मदेव यजनस्पृधिव्यायवदेवा सो-

अजुषन्तविश्वे ॥ ऋक्सामाभ्यां सन्तरन्तो यजुर्भी  
रायस्योर्वेण समिषा मदेम ॥ इमा आक् शमु मे सन्तु दे-  
वीरोषधे त्राय स्वस्वधि ते मे न हं हिंसीः ॥ १॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

शालागमाद्वाचनान्तश्चतुर्थोऽध्याय ईर्यते ४.

आधानकण्डिका १-८ अग्निहोत्र ४-१० उपस्थान ११-४३ चातु-  
र्मास्य ४४-६३ के मंत्र तीसरे अध्याय में कहे चौथे अध्याय की आ-  
दि से ले आठवें अध्याय की वत्तीस ३२ कण्डिका पर्यन्त अग्नि-  
ष्टोम के मंत्र कहियें हैं। तिन्हें का प्रजापति ऋषि है ॥ तहां चौथे  
में यजमान के संस्कार पूर्वक सोमत्रय के मंत्र प्रधान करि क-  
हियें हैं तहां पहिले यजमान सेल्ले १६ ऋत्विजों का वरण  
करि के अरणी में अग्नि का आरोपण करि शाला में जावें ॥ का०  
७० १० १६ अग्नि का आरोपण करि के शाला के स्तंभ का पूर्व भाग  
गृहण करि अरणी हाथ में ले एदमगन्म पढ़ें ॥ एदमगन्म १०  
आपोऽप्रस्मान् २ दोनों कण्डिकाओं का व्यवसाना अत्यष्टीकन्द  
और तिनों में मंत्र सात ७ हैं। एदमगन्म ऋक्सामाभ्याम् द्वे यजु-  
षी देवयजन देवत्ये ॥ ॥ मंत्रार्थः ॥ इदम् यह हाथ से संकेत  
करि दिखलाता है। हम यजमान इस पृथिवी संबंधी देवयज-  
न (देवताओं की पूजा के स्थान) में आये हैं। यह कैसा है कि जि-  
स देवयजन में सब देवता प्रीति पूर्वक बैठे हैं और हम धन की

शत० ३३१०० तेरे यहां पशु होवें ॥३॥ मेराय इति दे- अ०  
का० ७० ६० २२ स्थाली में स्थित पद को यजमान गृहण करें ॥ अ०  
र्थः ॥ मुरु यजमान विसें धन वा पशु इस पद करि तिष्ठियों ॥४॥ मा-  
वयमिति या- वि० का० ७० ६० २३ अध्वर्यु हृदय का स्पर्श करें ॥  
अर्थः ॥ हम अध्वर्यु से आदिले धन की पुष्टि करि वियुक्त न हो-  
वें ॥५॥ तो तो राय इति दे- इ० का० ७० ६० २४ २५ अध्वर्यु यजमा-  
न से ले पत्नी को देवै अनेक पत्नी होने से नेष्टा सब पत्नीयों से  
कहवावै ॥ अर्थः ॥ पत्नी के यहां धन वा पशु पद रूपेण तिष्ठियों  
अथवा तोतः ॥ तेरे धन वा पशु तिष्ठियों ॥ ६॥ २२॥

समेत्ये ॥ देव्याधिया यज्जिह्वेण योरुचक्षसा ॥ माभ्यायुः  
यस्यैयोम्योः अहन्तव वीरमिन्देयतव देविसन्धिशि ॥ २३॥  
आस्तारपडिः पत्न्याशीः सोमक्रयणी से पत्नी आशिष माग-  
ती है का० ७० ६० २६ सोम क्रयणी को देखती हुई पत्नी को अ-  
ध्वर्यु पदवावे ॥ अर्थः ॥ हे सोम क्रयणी अपनी प्रकाशमान बुद्धि पू-  
र्वक मुझे देखि कैसी अपनी कि दक्षिणायोग्य तथा बहुत देखने  
वाली ऐसी तू मुरु पत्नी की आयु को खण्डित न करि क्यों कि मैं ते-  
री आयु को खण्डित नहीं करती ॥ किंच दे देवि गौ तेरे दर्शन से  
वीर (पुत्र) मिले ॥ २३॥

अ० ८० एषते ॥ गायत्रो भागः इति मे सोमाय व्रता देषते वैष्टभो  
भागः इति मे सोमाय व्रता देषते जागतो भागः इति मे  
सोमाय व्रता छन्दो ना माना ॥ साम्ना ज्यङ्ग छेति-

॥ तोतः शब्दः कलत्रवाची अव्ययम् । यद्वा व्ययानामनेकाद्यत्वात् तोतः शब्दे  
युष्मत्प्रत्ययार्थः ॥

मे सोमाय ब्रूता आस्माकोऽसि शुक्रस्तेग्रहो विचिन्तस्व  
विचिन्त्वन्तु ॥ २४ ॥ ए-तु ॥ अ० ॥ आ-तु ॥ इ० ॥

एषते द्वे यजुषी लिङ्गे क्त देवता का० ७७०८ चारिमन्त्रों को यज-  
मान पढ़े ॥ अर्थः ॥ हे अध्वर्यो सोमाभिमानि देवता के अर्थ यह मेरा व-  
चन तू कहि। यह क्या कि हे सोम तेरा यह दृश्यमान भाग गायत्री  
संबन्धी है (गायत्री छन्द के अर्थ तेरा कय है कुछ बध के अर्थ नहीं य-  
ह यजमान का अभिप्राय है। तिस मेरे अभिप्राय को सोम के अर्थ कहि  
तेरा यह त्रिष्टुप् छन्द सम्बन्धी भाग इस मेरे अभिप्राय को सोम के  
अर्थ कहि ऐसे ही आगे भी जगती छन्द सम्बन्धी इत्यादि अर्थ पढ़ि-  
ले समान ३ छन्द है नाम जिनों का रोमे उषिष्क से आदिले तिनहों के  
आधिपत्यत्व को प्राप्त हो। यह मेरा वचन सोम के अर्थ कहि ४। जो  
सोम के अर्थ छन्दों का आधिपत्य देके लाता है सो अपनों का आधिपत्य  
पाता है। तदुक्तं नितिरिण। यो वै सोमं राजानं साम्राज्यलोकं गमयि-  
त्वा क्रीणाति गच्छति स्वानां साम्राज्यमिति। इस हेतु इन मन्त्रों से  
सोम की राज्यप्राप्ति सूचित है। गायत्री से आदिले छन्दो देवता ज-  
हां रहते हैं सो छन्दों का लोक तिस के आधिपत्य को प्राप्ति कर  
सोम को लायके अपनों के आधिपत्य का भागी होता है यह अभि-  
प्राय है ॥ का० ७७०८ बैठि करि आस्माकोसि इस मंत्र से सोम को  
स्पर्श करें ॥ अर्थः ॥ हे सोम तू कय मार्ग होकर आने से आस्माक हे  
शुक्र + ऐन्द्रवायव से आदिले सब तेरे ग्रह हैं। विवेक पूर्वक चयन के क-  
रने वाले तुझे सार असार का विवेक करिके सारभूत को इकट्ठा करें ॥ २४ ॥

+ शुक्रपद मैन्द्रवायवादियहणामुपलक्षणम् ।



रु को मत देखियों। तथा वृका (लिरिये वा दुर्जन) तुम्हको मति देखियों कैसे हैं वृकाः कि पशये पाप करने की इच्छा करते। किञ्च श्येन (शीघ्रगामी पक्षी) का रूप धारण करि वा श्येन वत रूप धरि। यजमान के घर को चलितिस यजमान के घरमें तेरे ओर मेरे लिये सर्वोपकरण संयुक्त स्थान है ॥ २४ ॥

नमो मित्रस्य ॥ नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवा यत हतर्हं सपर्यत ॥ दूरे दृष्टो दं वज्रोताय के तवे दिवस्यु त्राय सूर्याय शरि सत ॥ ३५ ॥

अभि तपन सूर्य दृष्टा जगती छन्दस्का मुख्य देवत्या का ०७. ४. २१. २२. शाला के पूर्व में प्रतिप्रस्थाता यजु को लेके ठहरै कृपा सांग स्थूल वा लेहित सांग को यजमान से यजुका आत्मनः कृत्य नमो मित्रस्य पठवावे ॥ अर्थः ॥ इस मन्त्र में सूर्य सप्तर्षि सोमवां न्युति करते हैं ॥ गेसे सूर्य के अर्थ हमारी नमस्कार ॥ किसे सूर्य के अर्थ कि मित्र और वरुण देवता रूप करि वर्तमान ॥ मित्र जगत के हित करने वाले वरुण अपनी किरणों से जगत को प्रकाश करने वाले देवर्ग वाले के अर्थ ॥ यद्वायमर्थः ॥ मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे (सर्वजगत के देखने वाले के अर्थ) तथा तेजस्वी के अर्थ ॥ प्रकाशवान के अर्थ ॥ तेसे ही दूर में वर्तमान प्राणियों का दीर्घे तिसके ॥ अथवा दूर में देवता है तिसके परमात्मा से उत्पन्न हुआ तिसके अथवा देवताओं के अनुग्रहार्थ उत्पन्न हुआ वा देवता जिससे उत्पन्न हुआ तिसके ॥ विज्ञान धन के अर्थ ॥ द्युलोक के पुत्र वत्प्यारे के ॥ वा द्युलोक के पालक के

नियत  
कि  
कादि  
॥

+ मित्रावरुणशब्देन सर्वे अंगल्लक्ष्यते ।

अर्थ। ऐसे सूर्य के अर्थ तिस अवश्य फल के देने वाले ज्योतिषो-  
मरूप कर्म को हे रित्विजः। तुम अनुष्ठान से पूजा करो। वातिसू-  
र्य रूप ब्रह्म को पूजो। किंच सूर्य की प्रीति के अर्थ स्तुति करो। अर्थान्  
शस्त्रों को पढ़ो क्यों कि यागानुष्ठान में तिसका आवश्यकत्व है ॥ ३५ ॥

वरुणस्योत्तमनम् ॥ वरुणस्योत्तमनमसि वरुणस्य  
स्कम्भसर्जनीस्थो वरुणस्य ऋतुसदन्यसि वरुण  
स्य ऋतुसदनमसि वरुणस्य ऋतुसदनमासीद ॥ ३६ ॥

वरुणस्येति पञ्च वारुणानि अथमा आसुरी जगती का ० ० ४ २५  
शाला के समीप शकट की पूर्वमुख वा उत्तरमुख खड़ा कर उत्तमन  
काष्ठ (तिपाये) से बांधें। अर्थ। हे काष्ठ तू वरुण (वस्त्र में धँसे सोम) का  
उत्तमन है। कुछ शकट का नहीं ॥ का ० ० ४ २६ उत्तमन काष्ठ पर शकट को स्थापन करें। यज्ञो यज्ञार्थ  
(सौते) ऊपर को निकालें ॥ अर्थ ॥ हे शकट पर सोम को स्थापन करें  
(वैलों को धर उधर से लेकने वाली हो) ॥ का ० ० ४ २७ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२  
नाभि समान भस्त्रिका गुँसे से बनाएँ। यज्ञो यज्ञार्थ शकट के निकट  
रवि वरुणस्य ऋतुसदनमसि करि अध्वर्यु हाथ से स्पर्श करें ॥ अर्थ ॥  
हे आसन्दी तू सोम की यज्ञार्थ बिठलाने वाली है ॥ आयुषी विष्टु  
का ० ० ४ २४ तिस आसन्दी पर कृष्णाजिन को पूर्वमुख करि बिछा  
वें ॥ अर्थ ॥ हे कृष्णाजिन बंधे हुए सोम के यज्ञार्थ बैठने का स्थान है ॥  
साम्नी गायत्री ॥ का ० ० ४ ३० तिस पर सोम को स्थापन करें ॥ अर्थ ॥  
हे सोम तू यज्ञार्थ बैठने के स्थान भूत आसन्दी संस्थित कृष्णा-

+ व-सि। अ० व-स्य ॥ दू० व-सि। उ० व-रि। ऋ० व-द। लृ० ॥ ३६  
+ व्रियते वेष्ट्यते वस्त्रादिनेति वरुणशब्देनात्र वस्त्रवद् सोम उच्यते

जिनपर सुखपूर्वकवैठि ॥३७॥

याते ॥ याते धामानि हविषायजन्ति ताते विश्वापरिभूर-  
स्तुयन्तम् ॥ गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो वीरहाप्स्रचरा-  
सोमदुर्यानु ॥३७॥

इति संहितायां दशमोऽनुवाकः १०

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिनशारदीयायां वाजसने-  
यसंहितायां दीर्घपाठे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

गोतम दृष्ट्वा त्रिष्टुप् छन्दस्का सोम देवत्या का ०७. ४. ३२. सोम  
के प्रवेश्य हुणपीरे अघ्नर्यु यजमान कोषदवोवे ॥ अर्थः ॥ हे सोमने  
जिन प्रातः सवन से आदिले स्थानों को प्राप्त हो ऋत्विज तेरे स-  
रूप हवि से याग करते हैं। यज्ञ को देखकर इतिशेष ॥ तिन सब स्थानों  
को प्राप्त हो ॥ अर्थात् ऋत्विज जिन स्थानों में यजन करें तिनको  
तू प्राप्त हो ॥ अथवा ऋत्विज जिन स्थानों को प्राप्त हो यजन करें  
ते सब तेरे यज्ञ के हों ॥ किंच हे सोम तू धरों को प्राप्त हो ॥ कैसा है  
तू कि धरों को बढ़ाने वाला ॥ आपदा से तिराने वाला ॥ अथवा यज्ञ  
के पारका प्राप्त करने वाला ॥ तेरे प्रसाद से पाये हैं हमने सपूत वे-  
दा नाती ॥ अवीरहा (नहीं है वीरों का मारने वाला) ॥ अर्थात् वेदाना-  
तियों का परिपालक ॥३७॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये दशमोऽनुवाकः ॥१०॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्द निवारयन्

पुमार्थोऽश्वतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः ४

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्यैतव्याघ्रपादान्वर  
विश्वामित्रपुराधिपतिश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजैरेकिमणाय  
नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येगिरिप्रस  
दसर्वस्वे शालागमाद्वाचनान्तश्चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनेर्वह रूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ५

अ० प्र० अग्नेस्तनूः॥ अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि  
विष्णवे त्वा तिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सो  
मभृते विष्णवे त्वा गनये त्वा रायस्योषदे विष्णवे त्वा॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके॥

आतिथ्यात्स्थाणुहोमान्तः पञ्चमोऽध्याय ईर्यते ५

चौथे अध्याय में ऋत्विजसहित यजमान के शालाप्रवेश से ले क्रीत  
सोम के शालाप्रवेशतलक मन्त्र कहें॥ अव पाँचवाँ अध्याय तिस  
की आदि में आतिथ्य के आठ हविर्ग्रहण से ले मन्त्र कहियें हैं॥ का०  
८० १०४० अग्नेस्तनूः इस पहली कंडिका के पाँच मन्त्रों से हविर्ग्रह  
ण करे। वैष्णवानि पञ्च यजूंश्चि १५ या-पं० २५ या-त्रि० ३४ या-ज  
५ आसु० अ०॥ अर्थः॥ हे हविः तू अग्नि का शरीर है। अग्नि संज्ञक  
जो देवता सोम राजा का भृत्य तिसका गायत्री छन्द अधिष्ठाता

१ अ-त्वा। २ अ०। सो-त्वा। ३ अ-त्वा। ४ अ०। श्ये-त्वा। ५ अ०। अ-त्वा। लु०॥१॥

होंका शरीर (तृप्तिकरनेवाला) है तैसे हे हवि विष्णु (बहुयज्ञव्यापक सोम) की प्रीतिके अर्थ तुरुको ग्रहण करताहूं १ सोम नामा सोमराजा का भृत्य त्रिष्टुप् छन्द अधिष्ठाता तिसका शरीर (तृप्तिकाहेतु है) और अर्थ पदिलेके समान २ अतिथि संज्ञक सोमराजा का अनुचर जगता छन्द अधिष्ठाता। हे हवितृ अतिथि संज्ञक सोमके भृत्य का आतिथ्य नामक संस्कार रूप (अर्थात् विना तिथिके क्षुधाकरि पीडित विप्रके आनेपर तिमके पैर धोने भोजन करानेसे आदिले संस्कारके को आतिथ्य कहितेहैं सो है। और अर्थ पूर्ववत् ३ प्रयेन नाम देवता सोमराजा का अनुचर स्वर्गसे सोमको लाने वाला प्रयेन रूप धरने वाली गायत्री अधिष्ठाता तिस प्रयेन और विष्णु, सोमके अर्थ तुरुको ग्रहण करताहूं। केसे प्रयेनके अर्थ कि सोमका लानेवाला तिसके ४ धनकी पुष्टिका देनेवाला तिसके राजाके धनको लैन देनेसे बहुत वढायकर राजा को देवे सो राघस्योषदा, अग्नि संज्ञक और सोमका अनुचर हे अनुक्त छन्द अधिष्ठाता देवता तिस धनकी पुष्टि देनेवाले अग्निके अर्थ है हवि तुरुको ग्रहण करताहूं। विष्णवेति पूर्ववत् ५ विष्णु शब्दाभिधेयि सोमराजा के हविमें तिसके अनुचर अग्न्यादिक देवताओं और तिनद्वारा तिनके सम्वन्धी गायत्र्यादि छन्दोंकी तृप्ति हांती है ॥१॥

अयाग्निनयनमंत्राः

अग्नेर्जनित्रम ॥ अग्नेर्जनित्रमसि बुधणेऽस्थ उच्चै  
श्यस्यायुरसि पुरुरवाऽअसि ॥ गायत्रेण त्वा छन्दसा

मन्या मित्रैष्टुभेन त्वा छन्दसामन्या मिजागतेन त्वा-  
छन्दसामन्यामि ॥ २ ॥ +

अग्नेर्जनित्रमितीया-उ० शकल देवता का० ५० १० २८० इससैशक  
लले वेदीपर उत्तराग्ररखै ॥ अर्थः ॥ हे शकल तू अग्निके उत्पन्न  
होनेका आधार भूत है ॥ १ ॥ वृषणोऽस्य इति कुशतरुणं २ उर्व  
श्यसीति ३ आयुरसीति त्रयाणां देवी वृहती ० ४ पुरुरवा असीति  
या-गा० त्रयाणां लिङ्गोक्ता देवता ५ का० ५० १० २४० पूर्वको अगा  
डी कर कुशतरुण तिसपर रखै ॥ अर्थः ॥ हे दूर्भो तुम वृषणो (सी  
चनेवाली) हो। जैसे पुत्रजनने के अर्थ स्त्री पुरुष वीर्य के सीचने  
वाले तैसे तुम दोनों अरणियों को अग्निजनन सामर्थ्य सम्पादक हो  
२ ॥ का० ५० १० ३०० कुशतरुणों के ऊपर उत्तराग्र अधरारणि नी  
चे की अरणि रखै ॥ अर्थः ॥ हे अधरारणे तू उर्वशी है। जैसे उ  
र्वशी पुरुरवारजा के भोग के अर्थ नीचे प्राप्त है तैसे ही तू नीचे स्थि  
त है ॥ ३ ॥ का० ५० १० ३१० उत्तरारणि से आज्य स्थाली गत आज्य  
का स्पर्श करि ॥ अर्थः ॥ हे स्थाली गत आज्य तू आयु (अर्थात् दे  
अरणि से उत्पन्न हुए अग्निको आयु का देनेवाला) हे ४ का० ५० १० ३१०  
उत्तरारणिको अधरारणिके ऊपर रखै ॥ अर्थः ॥ हे उत्तरारणि तू पुरु  
रवा है। जैसे पुरुरवारजा उर्वशी के ऊपर वर्तते है तैसे तू भी है ५ उर्वशी  
सै आदिले तीन मंत्र श्रुति में कहे हैं शत० ३० ४० १० २२० ॥ गायत्रीणे  
ति० त्रयाणां या-त्रि० अग्निर्दे० का० ५० २० २० तीनों मंत्रों से अ  
ध्वर्यु अरणियों का मन्थन करै ॥ हे अग्ने गायत्री छन्द के अभिमा

+ अ-सि॥ अ० ॥ वृ-स्थः ॥ इ० ॥ उ-सि॥ उ० ॥ आ-सि॥ अ० ॥ पु-सि॥ लृ० ॥ गा-मि॥ आ० ॥ त्रि-  
मि॥ दे० ॥ जा-मि॥ लृ० ॥



नीदेवता सैं में तुरुको मन्यन करता (अरणि के मन्यन से उत्पन्न क  
 रता) हुं ॥ ६ ॥ त्रैष्टुभेन ७ जागतेन ८ दोनो मंत्रों का अर्थ पहिले के समान २  
 भवतन्त्रः ॥ भवतन्त्रः समं न सो सचेतसा वरेपसौ ॥ मायज्ञ  
 ६ हिं ६ सिष्ट म्मा यज्ञ पतिज्ञा तवेदसौ शिवो भवतमद्यनः ३  
 पङ्क्तिः ३ अग्नावग्निः पङ्क्तिर्विराज एतयोर्निमथ्या हवनीयावग्नि  
 देवते का ० ५ २ ५ ० मन्यन करके उठे अग्नि को आहवनीय में प्रक्षे  
 प करें ॥ हे जात वेदसो (दोनो अग्नि) हमारे अर्थ ऐसे हो ॥ कैसे हो दोनो  
 कि मन सा सहित ॥ तथा परस्पर समान चिंत युक्त अन्य विषय सैं  
 मन को निकाल हमारे अनुग्रह को मन सहित परस्पर विप्रतिपत्ति  
 रहित सचेत ॥ तथा पापरहित (अर्थात् भूल से हमारे किये पाप  
 के विषे को पनहीं करते ॥ तिसको स्पष्ट करते हैं ॥ हमारे यज्ञ कर्म  
 को नही विनाश करते और यज्ञपति यजमान को नही विनाश  
 करते ॥ तथा इस अनुष्ठान के दिन में हमारे अर्थ कल्याण कारी हो ३  
 अग्नावग्निः ॥ अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः ऋषिणा  
 स्पृचोः अभिशस्ति पावो ॥ सनः स्योनः सुयजायजेह  
 देवेभ्यो हव्यर्धं सदमप्स्युच्छन्त्स्वाहा ॥ ४ ॥

का ० ५ २ ६ स्थाली सैं घृत ले खुवा करि होमे ॥ अर्थ ॥ मथ्यमान  
 अग्नि आहवनीय में प्रविष्ट हो जे सैं हविका भक्षण करता है ॥ कैसे  
 सा है अग्नि कि ऋत्विजें  
 तथा विकलता के निमित्त  
 गनें ते सा तू हमारे लिये स

में इन्द्रादिक देवताओं को सोमादिरूप हवि दे (अर्थात् हमारे दिये हविको देवों प्रति पहुँचा। क्या करि कै सदा प्रमाद छोड़िके। स्वाहा। यह आज्य तुरको हुन हजियो) अथवा सो अग्नि हमारा हवि देवताओं को देवे ॥४॥

अ० २ आपतयेत्वा ॥ आपतयेत्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्रे शाकुराय शक्नः ओजिष्ठाय ॥ अनाधृष्टमस्य नाधृष्ट्य न्देवानामो जो नभि शस्त्यभि शस्तिपाः अ नभि शस्ते - न्य मज्जेसा सत्यमुप गेष ॥ स्विते माधाः ॥५॥ †

† शस्त्येन्यमज्जे  
सा इति वा पाठः

आपतयेत्वेति प्रा-त्रि० वायुर्दे० का० ८० १० १४० २० जिस पात्र कर के देते हैं तिस पात्र में ध्रुवास्थ आज्य को ग्रहण करे। ऐसे ही स्थाली में से सुवा करि व्रत प्रदान पात्र में तनून प्रेशाकुराय शक्नः ओजिष्ठाय से आज्य ग्रहण करे ॥ अर्थः ॥ सतत गति वायु तिसके अर्थ हे आज्य तुरको ग्रहण करता हूँ ॥ कैसे के अर्थ कि सर्व व्यापी ॥ तथा विश्व के विस्तार करने वाले (आत्मा) के नाती ॥ आकाश के वेरा तिसके। सब करने को समर्थ तिसके। बड़े बलवान ॥ अथवा इसका दूसरा अर्थ तितरे में कहा ॥ हे आज्य तुरको प्राण देवता की प्रीतिके अर्थ इस पात्र में लेता हूँ। मन की प्रीतिके अर्थ ग्रहण करता हूँ। जठराग्नि देवता की प्रीतिके अर्थ तुरको ग्रहण करता हूँ। शक्तिमान पुरुष तिसके शक्ति स्वरूपाभि मानी देवता की प्रीतिके अर्थ तुरको ग्रहण करता हूँ। शक्तिमान पुरुष में जो मार है तिस सागभि मानी देवता की प्रीति

॥ अनाधृष्टमित्याज्य देवतं य  
पूज्य है तिस तानून प्र आज्य

को वेदी के दक्षिण ओणी पर रवि के ऋत्विज यजमान अनाधुष्ठ मंत्र पटि स्पर्श करें। जिनों ने साथ तानून प्र आज्य का स्पर्श किया सो तानून प्र तिने के साथ द्रोहन करे ॥ अर्थः ॥ हे आज्य तू ऐसा है। के सा- कि- किसी ने भी तिरस्कार नहीं किया न तिरस्कार किया जावे किसी से। अग्न्यादिक देवताओं का भोजन सारभूत नहीं है निन्दा जिसकी सो। ऋत्विजों को निन्दन (आपसके विरोध से रक्षा करता है)। अ निन्दित स्वर्गादिकों को पहुंचाता है। जो कि तू ऐसा है इस लिये हे तानून प्र आज्य हम ऋत्विज मनसा की कुटिलता छोड़ कर सत्य आज्य स्पर्श रूपी शपथ करते हैं। किंच हे आज्य शोभन मार्ग यज्ञकर्म में हम को तू स्थापन कर ॥ ५ ॥

अग्ने व्रत पाः ॥ अग्ने व्रत पा स्वे व्रत पा यात व त नूरि  
यठं सामयि यो मम त नूरेषा सात्वयि ॥ सह नो व्रत पते  
व्रतान्यनु मे ही क्षान्ही क्षा पतिर्मन्यतामनु तपस्तप  
स्पतिः ॥ ६ ॥

आग्नेयं यजुः का० ७. २. ४. इससे आहवनीय में समिध डाले ॥ यजमान इस यजुः से अग्नि के शरीर और अपने शरीर को एक करे ॥ अर्थः ॥ हे व्रत पा (सम्पूर्ण वृत्तों के पालन करने वाले अग्ने) तू हमारे वर्तमान व्रत का पालक हो। तू रूतै से व्रत पालक का जो शरीर है सो यह शरीर मेरा ही। और जो यह मेरा शरीर सो यह तेरा होवे ॥ तै से ही हे व्रत पते व्रत के पालक अग्ने अनुष्ठान किये हुए कर्म नो (हमारे तेरे) एक हैं। जितना व्रतों में मुरुकों आदर इतना ही तू रू

को भी हो। किंच दीक्षा का पति सोम मुझे दीक्षा को आज्ञा देवै। तथा  
उपसङ्ग पतप का पति सोम तप की मुझ को आज्ञा दे ॥ ६ ॥

अर्धं शुर्वर्धं शुष्टे ॥ देव सो माप्या यता मिन्द्रा यैक धन विदे ॥  
आतुभ्य मिन्द्रप्या यता मात्व मिन्द्रा यप्यायस्व ॥ आप्या  
ययास्मान्त्सखीन्त्सन्ध्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्याम  
शीय ॥ एष्टा रायः प्रेषे भगायः ऋत मृतवादिभ्यो न मो  
द्यावा पृथिवीभ्याम् ॥ ७ ॥

चतुरवसाना प्रकृति सौम्यम् अंत्योर्ध्वेर्चो लिङ्गोक्त देव० का० ८० २० ६०  
ब्रह्मा० उद्गाता० होता० अध्वर्युः० आग्नीध्रः यजमानः सोमको आलंभ  
नकरें ॥ अर्थः ॥ हे सोम देव तेरे अंशु अंशु (सम्पूर्ण) अवयव इन्द्र की  
प्रीतिके अर्थ वटें। पुराने सोम के जो अवयव म्लान और शुष्क सो-  
दोंनो इससे बटते हैं इति तित्तिरिः ॥ कैसे इन्द्र के अर्थ कि एक मुख्य  
धन सोम रूप को प्राप्त होता है। अथवा दूसरा अर्थ सोम कंडन के अ-  
र्थ जिनसे जल लाते हैं ते घड़े एक धनाः (एक धन सोम रूप जिनमे  
यह जानता है। अर्थात् सोम कंडन के अर्थ जल के घड़े आये। किं  
च हे सोम तेरे पान के अर्थ इन्द्र वटों। हे सोम तू भी इन्द्र के पान के अर्थ  
अच्छे प्रकार वृद्धि को प्राप्त हो किंच हे सोम प्यारे हम ऋत्विजों को स-  
न्ध्या (धन के दान) और मेधया (अर्थ की धारणा शक्ति) से बढा। किंच  
हे सोम देव तेरा कल्याण हुआ जियो। तेरे प्रसाद से हम सोमाभिषव कृ-  
या समाप्त दिन को पहुँचें ॥ का० ८० २० ४० सव ऋत्विज प्रस्तर के  
ऊपर दोनो हाथों को ऊँचा करके अथवा दहिने हाथ को ऊपर रख

कर सोम न गिरै ऐसी परि चर्या करें ॥ अर्थः ॥ सोम तेरे प्रसाद से ह  
मारे धन हूँ जियो अथवा दक्षिणा सब ओड़ी से हूँ जियो किसलिये  
कि प्रेषे भगाय तिस प्रेष्य मान ऐश्वर्य के अर्थ । अथवा अन्न और  
ऐश्वर्य के अर्थ । किंच अग्नि होत्रियों को अवश्य हों न हार फला  
पेत कर्म संपादन कर । अथवा हम ऋतवादियों को कर्म का फ  
ल हो । द्या वा पृथिवी तिनके अभिमानी देवतों को नमस्कार है ।  
तिनके अनुग्रह से यजमान के अर्थ निर्विघ्नता की स्थित होती है  
इस हेतु नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥

यातेऽअग्नेयः शयात नूर्ध्वर्षिष्ठा गच्छरेष्ठा ॥ उग्रं च चोऽ  
अपावधी त्वेष चोऽअपावधी त्वाहा ॥ यातेऽअग्ने  
रजः शयात नूर्ध्वर्षिष्ठा गच्छरेष्ठा ॥ उग्रं च चोऽअपावधी त्वे  
ष चोऽअपावधी त्वाहा ॥ यातेऽअग्ने हरि शयात नूर्ध्व  
र्षिष्ठा गच्छरेष्ठा ॥ उग्रं च चोऽअपावधी त्वेष चोऽअपाव  
धी त्वाहा ॥ ८ ॥ पा-हा ॥ १० ॥ या-हा ॥ १० ॥ या-हा ॥ ३ ॥

अग्नेयानिर्वीणा यजुश्च षि का ० ८ २ ३४ सुवाकरि उपसदं सज्जक हो  
म करै ॥ अर्थः ॥ यहां क्या है । देवताओं से हार कर असुरों ने तप-  
तप कैं तीनों लोकों में तीनि पुर बनाये लोहे का पृथिवी में चांदी का  
अन्तरिक्ष में सोने का दिवि में । तब देवताओं ने तिनके जलाने को  
उपसद नामा अग्नि की आराधना की फिर उपसदेवतारूपी अ  
ग्नि ने जब तिन पुरों में प्रवेश करि कैं तिनको जलाया तब तीनों पुर  
अग्नि के शरीर हुए । सो अभिप्राय इस मन्त्र में है ॥ मन्त्रार्थस्तु ॥

+ श० ३४४३।

हे अग्नेजेतेरीलोह मयी देही देवताओं को अति शाय करिके अभिमत फल की वरसने वाली। तथा असुरों के विषम देश में ठेरी है ति सतेरी देही ने काठ फांस इत्यादिक असुरों का कहा तीव्र वचन विनाश किया। तैसे ही असुरों का कहा त्वेषं वचः (देवाधि क्षेप रूपी प्रदीप्त वचन) विनाश किया। स्वाहा (तैसे ही उपकार के लिये तुरु अग्नि के अर्थ हवि दिया) ॥१॥ उग्र वचन और त्वेष वचन का दूसरा अर्थ करते हैं। जैसे असुरों से हारे देवताओं ने न पाने अन्न और जल के भूष प्यास से हम दुषी यह कहा सो उग्र वचः तैसे ही किंवा वीर हत्यादिक महा पातक हमने किया यह क्लेश पाय जो कहा सो तीव्र वचः ॥ तदा ह तित्तिरिः । अशनाया पिपासे ह वाऽ उग्र वच एनश्च वै वीर हत्यं च त्वेषं वच इति का० ८० २ ३८० यातेऽ अग्ने रजः शयासे दूसरे और यातेऽ अग्ने हरिः शयासे तीसरे दिन आहुति दे ॥ अर्थः ॥ रजः शया चं दी की देही ॥ २॥ हरिः शया सोने मयी ३ और अर्थ पहिले के समान ॥ ८॥ इति भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २॥

अ० ३ तत्रायनी मे सिञ्चितायनी मे स्य वतान्माना यिता दवन्मा व्यथितात् ॥ द्विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽ अद्भिरऽ आयुना नाम्ने हियो स्याम्यथिव्या मसि यते नाधृष्टन्नाम यशियन्ते नत्वादधे द्विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽ अद्भिरऽ आयुना नाम्ने हियो द्वितीय स्याम्यथिव्या मसि यते नाधृष्टन्नाम यशियन्ते नत्वादधे द्विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽ अद्भिरऽ आयुना नाम्ने हियस्तृतीय स्याम्यथिव्या



मसि यत्नेनाधृष्टन्नामयुक्तियन्तेनत्वादधे॥ अनुत्वादे  
ववीतये ॥४॥ +

इस कंडिकामें चोदह १४ यजुषिः हैं तप्तायनी·वितायनी·दोंनों दै-त्रि-  
अवतान्·अवतान्·दोंनों दै-ज० चारों का पृथिवी देवता का० ५३  
२०-२५ उत्तर वेदी करने को जो पृथिवी का प्रदेश खोदते हैं उसे चात्वा  
ल कहते हैं तिसके निर्माण करने की उत्तराग्रशम्या रखकर तिसकी  
बराबर उसके पूर्व में स्फुल्ले रेखा करे फिर तिसके पूर्व में तैसे ही रखि  
रेखा को तैसे ही दक्षिण उत्तर में। तप्तायनी·इत्यादि प्रति मंत्र करि प्रति-  
दिशामें रेखा करे ॥ मंत्रार्थस्तु ॥ हे पृथिवी तू मेरे अनुग्रह के अर्थ तप्ता  
यनी है। अर्थात् जो दारिद्री कि क्षेत्र रहित में ऐसे दुरवकरत पै है तिस  
ताप की शांतिके अर्थ प्राप्त होती है। अथवा तप्त होने पर मनुष्य जिस  
को प्राप्त होता है सो तप्तायनी·मेरे लिये हैं ॥१॥ वित्त के अर्थ मनुष्य जि  
सको प्राप्त होता है। अथवा वित्त के अर्थ निर्धन पुरुष प्रति प्राप्त होती  
है। कारण यह कि पृथिवी में प्राप्त हुए पर खेती द्वारा बहुत धन मिल  
ता है ॥२॥ हे पृथिवी मागने से मुरु को तूरक्षा कर ॥ जैसे किसी से न मां  
गें तैसा मुरु को कर ॥३॥ भय और स्थान भ्रंश से मुझे रक्षा कर ॥४॥  
का० ५३ २६ विदेदग्नि·इस मंत्र से चात्वाल की मट्टी खोदें प्रा-गा  
अग्नि देवता ॥ अर्थ ॥ हे चात्वाल गत मृत्तिके नभना मातेर अधिष्ठाता अग्नि  
मेरी खोदी हुई तुरु को जाने। शत० ३५१ ३१ अग्नि के नामोच्चार  
ण पूर्व कर खोदें ५ का० ५३ २७ अग्नेऽअङ्गिरः इससे पुरीष (खोदी  
हुई मृदा) को हाथ वा स्फुल्ल करिले वे आसु-पं इस मंत्र से लेके सा

+ त-सि॥ अ० वि-सि॥ इ० अ-तु॥ उ० ऋ० वि-माल० अ-हि॥ आ० पो-धै॥ ई० वि-म  
ऊ० ॥ अ-हि॥ ऋ० यो-धै॥ लृ० वि-म॥ क० अ-हि॥ च० यो-धै॥ ए० अ-या० त०

नौ० कालिङ्गोक्तदेवता ॥ अर्थः ॥ हे अग्ने हे अद्भिरः (गतिवान्)  
 तू आयुनामसै इ स यज्ञमें प्राप्त हो ॥ कारण यह कि अधिष्ठाता के आ-  
 ने पर अधिष्ठेय आता है इसलिये अग्नि को आने की प्रार्थना की ॥ द-  
 का० ५३२८ योस्याम् इ ससै उत्तर वेदी के पूर्व में मृदा की राशिको  
 सा-वि ॥ अर्थः ॥ हे अग्ने जो तू इस दृश्य मान पृथिवी में है किंच ते  
 राय ज्ञके योग्य जो अग्नि नाम प्रसिद्ध किसी याज्ञक से नहीं तिरस्कार  
 किया गया तिस नाम युक्त तुम्हको स्थापन करता हूँ ॥ का० ५३३०-  
 ३१ जैसे पहिले तीन मन्त्रों से मृदा खोद के ले के पटकी फिरि भी दो  
 नों मन्त्रों से पूर्वोक्त कर्म करै तहां अस्यां पद के स्थान में द्वितीयस्यां  
 तृतीयस्यां यह पाठ है ॥ वि-म। खोदे ॥ ८॥ अ-हि। लेवे ॥ ९॥ यो द्विती-  
 यस्याम् यजुः। पटके ॥ १०॥ वि-म। खोदे ॥ ११॥ अ-हि। लेवे ॥ १२॥ यो तृतीय-  
 स्याम् यजुः। पटके ॥ १३॥ अर्थः ॥ यद्यपि पृथिवी शब्द से भूमि ही है-  
 तथापि द्वितीयस्यां तृतीयस्यां इस विशेषण से दूसरी पृथिवी का अ-  
 न्तरिक्ष तीसरी पृथिवी का द्यौः अर्थ करना और अर्थ पहिले के समा-  
 न ॥ ८॥ १०॥ ११॥ १२॥ १३॥ का० ५३३२ अनुत्वा प्रा-गा से जैसे कि पहि-  
 ले तीन पर्यायों में मृदा ले के पटकी ऐसे चौथे भी प्रक्षेपण पर्यन्त मृदा हर-  
 ण करै ॥ इति सूत्रार्थः ॥ देवताओं की प्रीति को हे मृतिके तुम्हको पूर्वोक्त  
 तीन्यो आहरण करि कै लेता हूँ ॥ १४॥ १५॥

सि० ५० अ० १० ॥ सि० ५० अ० १० ॥ सि० ५० अ० १० ॥  
 ह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुभ्रस्वसि० ह्यसि सपत्नसाही  
 देवेभ्यः शुभ्रस्व ॥ १०॥ +

त्रयाणां सा-उ-वेदिदेवता का० ५०३३२ इससे शम्या मात्र वेदी को मु-  
दासे सम करे ॥ प्रात० ३०५१३२ दूकती हुई पृथिवी सिंहिनी हो असुरों  
प्रतिचली-सो अभिप्राय इस मंत्र में कहिते हैं ॥ मन्त्रार्थः ॥ हे उत्तरवेदे  
जो तू सिंह समान हो शत्रुओं प्रतिचलती है ॥ इस हेतु देवताओं के उप-  
कार के अर्थ उत्तरवेदिरूप करि संपन्न हो ॥ १॥ का० ५०३३१ प्रोक्षण  
करे २ शर्करा डाले ३ सिंठ ही प्रति मंत्र से ॥ अर्थः ॥ हे उत्तरवेदे तू शुद्ध  
हो ॥ और अर्थ पहिले के समान ॥ २॥ हे उत्तरवेदे तू सिकता के प्रक्षेप  
से शोभित हो ॥ और अर्थ पूर्ववत् ॥ ३॥ इति भाष्ये न्त वाकः ॥ ३॥

अ० ४ इन्द्रघोषस्त्वावसुभिः पुरस्तात्यातु प्रचेतास्त्वारुद्रेः पश्चा-  
त्यातु मनोजवास्त्वापितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा  
त्वादित्ये रुत्तरतः पात्विदमहन्त पृथ्वीर्वाहिर्द्वीयज्ञानिः  
सृजामि ॥ ११॥ †

का० ५०४११ अध्वर्यु वेदी के भीतर जल रखकर इन्द्रघोषस्त्वा प्रति  
मन्त्र करि प्रतिदिशामें उत्तरवेदीका प्रोक्षण करे ॥ इन्द्रघोषस्त्वा आ-  
सु-अ० ११ प्रचेतास्त्वा आसु-वि० २॥ मनोजवास्त्वा सा-उ० ३॥  
विश्वकर्मात्वा आसु-अ० ४॥ चारोंका उत्तरवेदी देवता ॥ अर्थः ॥  
इन्द्रघोष (विष्वक् कहनेवाला देवता) वसुभिः आठ संख्याक गण देव-  
ताओं से युक्त है उत्तरवेदे तुरुको पूर्वदिशामें रक्षा करे ॥ १॥ प्रचे-  
ता (प्रकष्ट प्रज्ञ) वरुण रुद्रेः (एकादश संख्याक गण देवों सहित  
पश्चिम दिशामें तुरुको रक्षा करे ॥ २॥ मनका सावेग युक्त यम देवता  
पितरों † सहित दक्षिण दिशामें तुरुको रक्षा करे ॥ ३॥ जगतकी

† सतीकनिवा  
सी देवता विशेष



इस अभिप्रायसे सिंही कहिते हैं ॥ मन्त्रार्थस्तु ॥ हे उत्तरवेदी तू सिंह रूप  
पाहे तैसी तुर्रुको हवि दिया ॥ १ ॥ कैसी सिंही है कि आदित्यों को प्रस-  
न्न करने वाली । और अर्थ पहिले के समान ॥ २ ॥ ब्राह्मणजाति और  
क्षत्रीजाति की प्रसन्न करने वाली ॥ ३ ॥ पुत्रपौत्रादि शोभन प्रजा का स-  
म्पादन करने वाली सुवर्ण रजतादि धन की पुष्टि करने वाली ॥ ४ ॥ हे सिं-  
ही यजमान के उपकारके अर्थ देवताओं को ला ॥ ५ ॥ भूतेभ्यस्त्वेति  
दे- वृ० सुगदे० का० ५० ४० १५० होमके अर्थ सुचिको जंची करै ॥ अर्थः  
भूतेभ्यः ॥ अण्डज० उद्भिज० जरायज० स्वेदज० चारों प्रकार के प्राणि-  
यों की प्रीति के अर्थ हे होम विशेष आज्य युक्त जुहू तुर्रुको जंची क-  
रता हूँ ६ ॥ भूतेभ्यस्त्वेति सुचमुद्गृह्णातीत्यादित्तरिः ॥ १२ ॥

ध्रुवोसि ॥ ध्रुवोसि पृथिवीन्दृष्टं ह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षन्दृष्टं  
हाच्युतक्षिदसिदिवन्दृष्टं हाग्नेः पुरीषमसि ॥ १३ ॥ †

१ ध्रुवोसि प्रा-गा २० ३ या-पं० त्रयाणां परिधयो दे० का० ५० ४० १६ पी-  
तदारु (देवदारु) के परिधिओं को उत्तरवेदी के मध्यदेश (नाभि) पर म्या-  
पन करै ॥ अर्थः ॥ हे मध्यम परिधे तू स्थिर है इसहे तू पृथिवी को दृढ  
करि ॥ हे दक्षिण परिधे तू स्थिर यज्ञमें रहता है तिस कारण अन्तरि-  
क्ष को दृढ करि विनाश रहित यज्ञमें वास करने वाले हे उत्तरपरिधे तू  
तैसा ही है तिसलिये चुलोक को दृढ करि ॥ अग्नेः पुरीषमसि दे-  
ज० गुग्गुलादिक संभारो दे० का० ५० ४० १० से गुग्गुल (धूपकाद्रव्य)  
सुगन्धि तेजन (तृणविशेष) में टाके रोम इन्हीं को नाभि में डालै ॥ अ-  
र्थः ॥ हे गुग्गुल प्रभृति सम्भार समूह तुम अग्निके पूरक हो ॥ १३ ॥

† ध्रु-ह ॥ अ० ॥ ध्रु-ह ॥ इ० ॥ ध्रु-ह ॥ उ० ॥ अ-सि ॥ ऋ०

अ० ५ यु॒ञ्जते॑ मनः॥ यु॒ञ्जते॑ मनः॥ उ॒त यु॒ञ्जते॑ धियो॒ विष्ठा॑ विष्णो  
स्य बृ॒हतो॑ वि॒पश्चितः॥ वि॒होत्रा॑ दधे॒व यु॒ना वि॒देकः॑ इ॒न्म  
ही॒ देव॑स्य स॒वितुः॑ परि॒ष्टुतिः॑ स्वाहा॥१४॥

हे तिनने प्राचीनवंश शाला। और तिसमें आहवनीयादि तीनों अग्नि के इष्ट की वेदी हैं। तिस शाला के सामने छतीस ३६ पद दीर्घा सोमिकी वेदी बनावें। तिस वेदी के अग्रभागमें पूर्वोक्त उत्तर वेदी तिसके पीछे को बीचमें हविर्धान नामा मण्डप बनाके और तिसके पीछे सदोभिधान उदगवंश शाला निर्माण करें। तिसके स्थानमें प्राचीन शाला के सामने दक्षिण उत्तर भाग करि हविर्धान संज्ञिक दो शकट स्थापन करें। तिन दोनों शकटों को आगे चलाय के तिन के आवरण करने को हविर्धान नामा मण्डप बनावें। तिन दोनों शकटों को सावित्र होम के पीछे चलाना। तदाह तित्तिरिः। सावित्र्यर्चा हुत्वा हविर्धाने प्रवर्तयतीति॥

यु॒ञ्जते॑ति श्यावाश्व ऋषिर्जगती छन्दः सविता देवता का० ८०३२६३०  
प्राचीन शाला के द्वार के समीप पूर्वसिद्ध आहवनीय वर्तते हैं तिसमें चार बार लिये आज्य को होम और सो पहिले आहवनीय होने से उत्तर वेदी के दूसरे आहवनीय के निष्पन्न होने तक तिसमें गार्हपत्य के कार्य करें॥ अर्थः॥ यजमान के संबंधी ऋत्विज लौकिक चिंताओं में से मन को निकाल यज्ञचिंता में डालते हैं॥ और इन्द्रियों को भी यज्ञकार्य में प्रवेश करते हैं। कैसे यजमान के किमहतः (वेद का पढ़ने वाला) तथा विपश्चितः (सर्वज्ञ अर्थ का जानने वाला)। कैसे हैं ऋत्विज कि होम के करने वाले। सो इन ऋत्विजों ने मन को एक किया। कैसे एक कि सब प्राणियों की मन की वृत्ति का जानने वाला॥ यों कहें कि एक को सर्व सृष्टि के



जानने की कहाँ सामर्थ्य है। तहाँ कहते हैं। जहाँ कि प्रेरण करने वा-  
ले अन्तर्यामी देवता की सब वेदों में कहीं स्तुति बड़ी है। तथा चाय  
र्वणिकाः। यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तप इति॥ बृहदारण्य  
के पिमा ०४. २. २४. का ० ४. ४. २९. स एव सर्वस्य वशी सर्वस्येश  
नः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं ज्ञास्ति यदिदं किंचेति॥ श्वेताश्वतर  
श्च। परस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाचेति॥  
अथवा इस मन्त्र का दूसरा अर्थ। ऋत्विज सर्वज्ञ यज्ञ में मनबुद्धि और  
वाणी को लगाते हैं। किंसा है यज्ञ कि विशेष करके फलका पूर्ण कर  
ने वाला। तथा सर्वसाधन संपन्न। सातों बषट्कर्त्ता अपने अपने कर्म  
कर्ते हैं। तिनके बीच तीन वेद का जानने वाला ब्रह्मा संज्ञक एक ही है।  
सविता देवता की बड़ी स्तुति है। ब्रह्मा से आदिले ऋत्विज जो कर्म क  
र्ते सो सविता की प्रेरण से हैं यह सविता की बड़ी स्तुति है ॥ १४ ॥

इदं विष्णुः॥ इदं विष्णुचक्रं मे त्रेधा निदधे पदम्॥ सम्पूर्ण  
मस्य पाथं सुरे स्वाहा ॥ १५ ॥

विष्णु देवत्या गायत्री मैधातिथिदृष्टा का ० ८. ३. ३९. दक्षिण शकटं सं-  
बन्धी दक्षिण चक्र (पद्म) के गार्ग में हिरण्य रत्नकर होम करे ॥ अ-  
र्थः॥ विष्णु त्रिविक्रम (वावन) अवतार करके इस विश्व का विभाग करि  
चला सो कहते हैं तीन प्रकार से चरण रखा पृथिवी में एक पद अन्तरि-  
क्ष में दूसरे दिवि में तीसरे को इस कर्म से अग्नि-वायु-सूर्य-रूप करि  
के। पांसवः-भूम्यादि तीनों लोक विद्यमान हैं जिस में सो पांसुरंतिस  
पांसु अर्थात् इस विष्णु के पद में सम्पूर्ण विश्व अन्तर्भूत है ॥ अथ

वा दूसरा अर्थ इसविष्णु का पर अद्वैतस्वरूप अक्रतात्मा ओं करि  
गुप्त है कैसे कि जैसे। पांसुरे-इवलुप्तोपमानम् रजस्वल रजमय प्रदे  
श विषे निहित जैसे नही जाना जाता तद्वत् ॥ तदुक्तं अध्या० ६५ त  
द्विष्णो रित्यादि ॥ स्वाहा तस्मै विष्णवे हविर्दत्तम् ॥ १५ ॥

इरावती धेनु मती ॥ इरावती धेनु मती हि भूतर्हं सूर्यवसिनी  
मन वेद शस्या ॥ व्यस्केभ्यो रोदसी विष्णवे ते दाधर्यं पृ-  
थिवी मभितो मयूषैः स्वाहा ॥ १६ ॥

विष्णवी त्रिष्टुवसिष्टदृष्टा का० ८० ३३५ : जैसे दक्षिण चक्र मार्ग में अ  
ध्वर्यु ने होम किया तैसे उत्तर शकट के उत्तर चक्र मार्ग में प्रतिप्रस्थाता  
होम करे ॥ अर्थ ॥ हे द्यावा पृथिवी औ तुम ऐसी हो। कैसी हो कि अन्नवती  
वा सत्यवती। बहुत धेन युक्त। अभ्य वहार वस्तु युक्त। तथा यजमान के अर्थ  
यज्ञ के साधनों को देने वाली। ऐसे द्यावा पृथिवी से प्रार्थना करि विष्णु प्र  
ति कहता है। हे विष्णो इन द्यावा पृथिवियों को तुमने विभाग करि थां भा  
है। किंच पृथिवी को अपने तेज रूप अनेक जीवों वा वराहादि अवतारों  
करि धारण किया है। स्वाहा तस्मै विष्णवे हविर्दत्तम् ॥ १६ ॥

देवश्रुतौ देवेषु ॥ देवश्रुतौ देवेष्वधोषतं प्राची प्रेतमध्वरं क  
ल्पयन्तीः कुर्ध्वं यज्ञं नयतस्माजिह्वरतम् ॥ स्वद्धोष्टमा  
वदतन्देवी दुष्ये आयुर्मा निर्वोदिष्टमृजाम्मा निर्वोदि  
ष्टमत्रमेयाम्मन्मृथिव्याः ॥ १७ ॥ †

देवश्रुतौ १ या जुषी पङ्क्तिः अक्षधुरौ देवते का० ८० ३३२ प्रतिप्रस्था  
ता से लार्ह पत्नी होम के शेष घृत से अक्ष के दोनों अग्र भागों को

आंजे (ओंगे) ॥ अर्थः ॥ हे अक्षधुरों (अर्थात् देवताओं की सभामें) सु-  
ने प्रसिद्ध अक्षके दोनों अग्रभाग तुम यजमान यह पूजा करता है  
देवताओं में ऊंची ध्वनि करिकें कहो ॥ १॥ प्राची प्रेत० २ स्व गोष्ट० द्वे  
यजुषि ३ अत्र रमेथाम्० याजुषीप० ४ तीनों का हविर्धान दे० का०  
८० ४० ३ दोनो हविर्धान शकट जवचलें तव यजमान २ पढ़ें ॥ अ-  
र्थः ॥ हे दोनों शकट तुम सामने कोशीघ्र चलो। कैंसेही तुम किइस  
कर्मके करानेको समर्थ किंच इस यज्ञको देवताओं प्रति प्राप्ति क-  
रानेवाले। नहीं कुटिल होनेवाले ॥ २॥ का० ८० ४० ४० चलते हुए शक-  
टों के अक्षकी धुनिकरते यजमान ३ पढ़ें ॥ अर्थः ॥ हे देवी दुर्यधर  
सदृश दोनों शकट देवते अपने गोस्थान को कहो। जो यह अक्ष  
का शब्द है तिससे यजमान के घर में बहुत सींगोंओंको जैसे स्थान  
हो तैसे कहो क्योंकि तुमारे उच्चारणसे तैसा हो होगा। किंच आयु  
मोनिर्वा दिष्टं० यजमान की जितनी आयु है तितनी सब मत दूरि-  
करो। अथवा पशुधन रहित मत उच्चारण करो। यजमान की पुत्र  
पौत्रादिरूप प्रजाका दूरीकरण मत करो। अर्थात् इस अक्षके श-  
ब्दसे आयु और प्रजाका निराकरण मत हो ॥ ३॥ उभयवद्वजो अ-  
क्ष है सो दुष्ट बोलनेसे वरुण देवरूप है० शत० ३० ५० ३० १८० ॥ तिस-  
हेतु शाप रूप दुर्वाक्य के परिहार केलिये आशीर्वाद रूप सुवाक्य  
की इस मंत्रसे प्रार्थना करते हैं ॥ का० ८० ४० ५० उत्तर वेदी की ती-  
न्यां परिक्रमा हुए पीछे वेदी के निकट दोनों शकटों को स्थापन करि  
४ से अभि मंत्रित करें ॥ अर्थः ॥ हे दोनों शकट पृथिवी के शरीर

भूत इस देव यजन में तुम रमण करो ॥४॥ ॥ देव यजन को पृथिवी का शरीरत्व तितिरिमें कहा है ॥ वर्षमस्य तत्पृथिव्या यद्देव यजनमिति ॥१७॥

विष्णोर्नु ॥ कम्वीर्याणि प्रवोचंयः पार्थिवानि विममे रजा  
थंसि ॥ योऽपस्कभाय दुर्तरं सधस्य म्विचक्रमाणस्त्रेधो  
रुगायो विष्णावेत्वा ॥१८॥ वि-यः। अ. वि-त्वा। इ०॥

तिस्रो ३ वैष्णव्यस्त्रिष्टुभः। प्रथमा. द्वितीया. विष्णावेत्वा यजुः १८. १९  
विष्णोर्नु १८ प्रतत् २० हे उतथ्य पुत्रो दीर्घ तमा दृष्टा का. ०. ४. ६.  
अध्वर्यु दक्षणा शकट के अग्र को काष्ठ के खंभ पर खड़ा करै ॥ अ  
र्थः ॥ नुकं यह अव्यय है अवधारण के अर्थ। विष्णु के ऐसे कर्मों  
को हम कहें कैसे कर्मों को सो कहते हैं। कि जिस विष्णु ने पृथिवी अ  
न्तरिक्ष द्यूलोक स्थानों को गिना। अथवा जिसने पृथिवी के परमा  
णों को गिना। और जिस विष्णु ने देवताओं के रहने के स्थान द्यूलो  
क रूप को जैसे नीचे नगरे तैसे थाभा। कैसा विष्णु है कि तीन प्रका  
र करि तीन्यो लोक में अग्नि. वायु. सूर्य रूप करि तीन्यो पदधार  
ण किये। तैसे उंचा गमन है जिसका वाम हात्माओं करि गाया गया का.  
८. ४. ७. विष्णावेत्वा इससे शकट के बांधने के अर्थ खंभ को अ  
ग्नि कोण में गाड़ै ॥ अर्थः ॥ हे स्थूण काष्ठ (काठ के थून्) हविर्हो न  
शकटाभिमानि विष्णु की प्रीति के अर्थ तुम्हें गाड़ ताहूँ ॥१८॥

दिवोवा ॥ विष्णा उतवा पृथिव्या महोवा विष्णा उरोरन्त  
रिक्षात् ॥ उभा हि हस्ता वसुना पूण स्वाप्प्रयच्छदक्षिणा

द्वौ तस्य व्याद्विष्णावेत्वा ॥ १४ ॥ दि-त् अ० वि-त्वा ॥ इ० ॥

का० ८० ४० ८० ४० जैसे अध्वर्यु ने दक्षिण शकट को मन्त्र से खड़ा-  
करि विष्णावेत्वा इससे खंभगाड़ो से ही प्रतिप्रस्थाता उत्तर शकट प्रति  
करै ॥ अर्थः ॥ हे विष्णो धूलोक और पृथिवी और बड़े विस्तीर्ण अ  
न्तरिक्ष लोक से लाये हव्य से अपने दोनो हाथों को पूर्ण करि फिर ध  
न से पूर्ण दाहिने और बांये हाथ से मणि मुक्ता दि धन हम को दे ॥ वि  
ष्णावेत्वा इसका अर्थ पहिले के समान ॥ १४ ॥

प्रतत् ॥ प्रतद्विष्णुस्तवते र्वीर्येण मृगो न भीमः कुचगे गि  
रिष्ठाः ॥ यस्योरुषु त्रिषु चिक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि  
विश्वा ॥ २० ॥

का० ८० ४० १३० मध्यम छद्दी का स्पर्श कराय पदै ॥ अर्थः ॥ सो प्रसिद्ध  
विष्णु असाधारण वीर कर्म करि स्तुति करिये है ॥ कैसा विष्णु है मृ  
गः शोधन करने वाला नपाद पूरण के अर्थ भीमः विभेदन करने  
वाला ॥ कुचरः पृथिवी में मत्स्यादि रूप करि चलने वाला ॥ गिरिष्ठा-  
वेद वाणी वादे ही में बहरने वाला ॥ अथवा न इव के अर्थ मैं ॥ पर्वत  
पे स्थित कुचलनी प्राणियों के बध से जीवे मयं करे सा सिंह सो जे  
से वीर्य करि स्तुति करिये है तैसा ॥ सो कोन कि विष्णु यह कहते हैं ॥  
कि जिस विष्णु के उत्पन्न हुणे तीन्यो पाद प्रक्षेपण स्थानों (लोकों) में  
सब प्राणी मात्र वास करते हैं ॥ सो स्तुति करिये है ॥ २० ॥

विष्णोरगदं मृ ॥ विष्णोरगदं मसि विष्णोः अत्रे स्थो विष्णोः  
स्यूरसि विष्णो ध्रुवोसि ॥ वैष्णवमसि विष्णावेत्वा ॥ २१ ॥

विष्णोर राटम्. या-उ० पांचों मन्त्रों का विष्णु देवता. का ०. ८. १५  
 राट (ललाट) का स्पर्श करि पढ़े। हविर्द्वा न नामा दोनों शकटों को  
 दक्षिण उत्तर में स्थापन करिकें तिनके आवरण करि ऊपर को  
 हविर्द्वा न नामा मंडप बनावै और तिस मंडप को विष्णु देवता कहने  
 से विष्णु कहते हैं। और मूर्तिधारी विष्णु के सब अवयवों के सद्भाव  
 से ललाट संज्ञक अवयव है तैसे हविर्द्वा न मंडप के भी पूर्व द्वार प्रति  
 दोनों खंभों के बीच कोई दर्भों की माला गुंधती है। तिस माला वाति  
 सके वंथन के आधार तिरछे बांस को संबोधन दे पुरुष के ललाटत्व क  
 रि उपचरण करते हैं ॥ अर्थः ॥ हे दर्भ मय माला के आधार वंशतू मू  
 र्तित्व करि उपचरण किये विष्णु (हविर्द्वा न मंडप) का ललाट स्थानी  
 यहै ॥ १॥ विष्णोः शन प्रेस्थः ० तीनों का देवी पंक्ति का ०. ८. ४. १६ वि  
 षणोः शन प्रेस्थ इससे उच्छाईयों (राटियों के प्रांत) को स्पर्श करि पढ़े  
 अर्थः ॥ हे राटों के प्रांतों तुम विष्णु नामा हविर्द्वा न मंडप के ओष्ठ  
 (होंठ) संधि रूपी हो ॥ २॥ का ०. ८. ४. १८ विष्णोः सूरसि सैल स्पूजनी  
 (काठ की सुई) में रस्सी डालि द्वार शारवा को सीवै ॥ अर्थः ॥ हे लस्पूज  
 नी तू विष्णु (हविर्द्वा न) की सुई है ॥ ३॥ का ०. ८. ४. १९ विष्णोर्ध्रुवो  
 सि इससे गांठ लगावै ॥ अर्थः ॥ हे रस्सी की गांठ तू विष्णु हविर्द्वा  
 न की ग्रंथि है ॥ ४॥ वैष्णव मसिया जुषी रहती - का ०. ८. ४. २१  
 पूर्व को अगाड़ी करि बांसों का मंडप बनाइ इस मन्त्र से स्पर्श करे  
 ॥ अर्थः ॥ हे हविर्द्वा न तू विष्णु देवता कहने से तिसका संबंधी है। तिसह  
 तुसे विष्णु की प्रीति के अर्थ तुम स्पर्श कर्ता हूँ ॥ ५॥ २१॥



अथ उपरवमन्त्राः

अ० ६ देवस्यत्वा ॥ सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पूषणो हस्ताभ्याम् ॥  
आदेनायसीदमहर्हं रक्षसाङ्गी वाऽपि क्कंता मि ॥  
वृहन्नसि वृहद्रवा वृहती मिन्द्राय वाचं च म्वद ॥ २२ ॥ †

यहां से ले देवस्यत्वा क० २६ पहिले उपरव के मन्त्र हैं ॥ का० ८० ४० २५  
५० १० जैसे यूपके लिये अवट करते हैं तैसे यहां भी उपरव संज्ञिक  
चारि गर्तों को अभिलेने से आदिले परिलेखन पूर्वक करें। अव  
ट के अर्थ अभिका स्वीकार कहते हैं का० ६० २० देवस्यत्वा से अ  
भि (काष्ठका बना हुआ खोदने का हथियार) लेकर देवस्यत्वा प्रा  
वृ० आदेना-गा० अभिदेवता ॥ अर्थः ॥ हे अश्वे सविता देवता में  
वर्तमान होकर अश्विनी कुमार के बाहुओं पूषा के हाथों करतुर्ग को  
ग्रहण कर्ता हूं। तू खोदने के साधन करि कर्म के उपयोगी होने से अनु  
ष्ठान करने वालों की संबंधिनी है ॥ १॥ इदमहमित्यासुरी उषिाहम्  
रक्षोघ्नम् का० ६० २० से यूपके अवट करने को लिखे ॥ अर्थः ॥ जो  
कि मैं चारों अवटों को लिखता हूं। और इस परिलेखन से रक्षकों य  
ज्ञघ्नो की ग्रीवा काटता हूं ॥ २॥ वृहन्न सीत्यारभ्य वैष्णवीमित्यंतमा  
र्षी यद्वि उपरवदे० का० ८० ५० १० अग्नि कोणसे ले चारों विदिशामें  
चारों उपरव खोदने का भूमिलिषीतिस परिलेखन कामसे अवट  
खोदें ॥ अर्थः ॥ हे उपरवनामा गर्त तू बड़ा है (अर्थात् वर्तुल गर्त  
को प्रादेश मात्र व्यास होने और बाहु परिमाण खात होने से बड़ प  
न है। तैसा तू बड़ी ध्वनि युक्त। कारण यह कि खोदने के समय प्रह

† दे-म। अ० आ-सि। इ० इ-मि। त० वृ-म। क० नु-ना। लृ० आ० इ० क० उ-मि। कृ०

र करि पृथिवी में वडी ध्वनि होती है तिस हेतु सैतू इन्द्र की प्रीतिके अर्थ वडी ध्वनि युक्त वाणी कहि ॥२२॥

रक्षो हणम्बल गहनम् ॥ वैष्णवी मिदमहन्तम्बल गमुक्ति  
रामियम्मे निष्ठो यममात्यो निचखानेदमहन्तम्बल गमु  
क्तिरामियम्मे समानो यमसमानो निचखानेदमहन्तम्बल  
गमुक्तिरामियम्मे सर्वन्धुर्यमसर्वन्धुर्निचखानेदमहन्तम्बल  
गमुक्तिरामियम्मे सजातो यमसजातो निचखानोत्क  
त्याङ्किरामि ॥२३॥

कैसी वाणी कि रक्षो हणम् (रक्षसों के वध विषयक) तथा बल गहनम्  
(बलगों की मारने वाली) पराजय को प्राप्त हो भागे हुए रक्षसों ने इन्द्र  
के वध के अर्थ अभिचार रूप करि पृथ्वी खोदिके अस्थिकेशनख आ  
दि पदार्थ कृत्या विशेष बल ग बाहु मात्र में गाडे । इस हेतु उन्हों के निकाल  
ने को बाहु मात्र खोदे । तदाह तितिरिः ॥ असुरा वै निर्यन्तो देवाना  
मित्यादि ॥ तथा वैष्णवी (यज्ञ के रक्षक विष्णु की संवधिनी) ऐसी बो  
ली इन्द्र के अर्थ बोली ॥३॥ इदमहमिति १ आर्षी अनु० २३४ य  
जुषि० उक्त्यामिति याजुषीगा० ५ पञ्चलिङ्गाक्तानि । का० ८० ५० ८०  
जिस क्रम से चारों गत खोदे तिसही क्रम से चारों गतों के खुदे मृदतृ  
ण आदि कों को निकाले ॥ अर्थः ॥ किसी निमित्त करि कोय में आपुत्र  
वा अमात्य नें मेरे वध के लिये जो बल ग डाले तिन बल गों को मैं नि  
काल कर अन्यत्र फैकता हूं । यह जैसे प्रतिक्ष हो तैसे निकालता हूं  
॥१॥ दूसरे के मृदतृण निकाले ॥ समान (यनकुल आदिकों से वरावर

+ शत० ३५  
४४०

असमान (छोटा वा बड़ा) और अर्थ पहिले के समान ॥ २॥ तीसरे के निकाले। सवंधुः (कुलशील आदि) से समान अर्थात् मामा फूफी के वेटे आदि असवन्धुः तिन्हों के विपरीत अन्यत्पूर्ववत् ॥ ३॥ चौथे के निकाले। सजातः (समानजन्मा) अर्थात् भाई असजातः तिसके विपरीत अन्यत्पूर्ववत् ॥ ४॥ का० ८० ५०४ चारों अपसाधारण मन्त्रों करि पूर्वोक्तक्रम से उक्तिरण करे पीछे। उक्त्यांकिरामि ५ साधारण मन्त्र से चारों गर्तों की मृदादि निकाले ॥ अर्थः ॥ जो यह कृत्या बलगरूपा अभिचार करने वाले शत्रुओं ने संपादन की तिस को निकाल कर दूर में फेंकें ताहं ॥ ५॥ २३॥

स्वराडसि ॥ सपत्नहासत्रराडस्यभिमातिहाजनराडसिरक्षोहासर्वराडस्यमित्रहा ॥ २४ +

स्वराडसि १०३४ प्राजापत्या गायत्री २ याजुषी बृहती चारों का उपर वदेवता का ०८० ५०१३ खनन क्रम से चारों गर्तों में यजमान के हाथ का चारों मन्त्रों से स्पर्श करावे ॥ अर्थः ॥ पहिले के। हे पहिले गर्त तू आ पही प्रकाशमान है इस हेतु से शत्रुओं का मारने वाला हो ॥ १॥ दूसरे यजमानों में राजमान। शतीसे यज्ञ के विनाश करने वाले राक्षसों का धोती ॥ ३॥ चौथे। सर्वराट वेरियों का मारने वाला ॥ २४॥

रक्षोहणोवः ॥ रक्षोहणोवोबलगहनः प्रोक्षामिवैष्णावान्क्षोहणोवोबलगहनोवनयामिवैष्णावान्क्षोहणोवोबलगहनोवस्तणामिवैष्णावान्क्षोहणोवाबलगहनाः उपदधामिवैष्णावीरक्षोहणोवाबलगहनोपर्युहामिवैष्णा

वीवैष्णवमंसिवैष्णवास्थ ॥२५॥ +

रक्षोहणोवः १ प्रा-अ० २० ३० ५० यजुः ४ आर्षी गा० ६ दै-प० ७ दै-वृ  
सातों का विष्णुदेवता का० ८० ५० २२० २३० अध्वर्यु जलकरि एकहा  
थसै उपखों का मार्जन करै ॥ अर्थः ॥ प्रोक्षण का मंत्र। विष्णुदेवता  
क गर्तो तुमको प्रोक्षण कर्ता हूं के से हो कि रक्षकों के मारने वाले बल  
हूँ। अभिचार के साधन के मारने वाले ॥ १ ॥ का० ८० ५० २४० गर्तो में  
प्रोक्षण के शेष जल का सींचना (अवनयन) दूर्भों से आच्छादन क  
रना (संस्तरण) सो दोनों मंत्रों से करै ॥ अर्थः ॥ अवनयामि सींच  
ता हूं। और अर्थ पहिले के समान ॥ २ ॥ अवस्तृणामि दूर्भों से आच्छा  
दन कर्ता हूं। अन्यत् पूर्ववत् ॥ ३ ॥ का० ८० ५० २५० जिन फलकों के  
ऊपर सोम निचोड़ते हैं सो दोनों अधिषवण फल का तिन दोनों के  
बीच दो अंगुल का बीच दे अरुन्नी प्रमाण संतृण्णा कुछ बंधन सहि  
त चारों गर्तों के ऊपर स्थापन करै तिन्हों के ऊपर मृदालगावे ॥ अ  
र्थः ॥ उपधान का मंत्र। जो दोनो अधिषवण फल क विशेष रक्षकों  
के नाश करने वाले कृत्या के विनाश करने वाले वैष्णव तिन दोनों  
को चारों गर्तों पर (अर्थात् दो गर्तों पर एक-दो गर्तों पर एक स्थाप  
न करता हूं ॥ ४ ॥ अथ पर्यूहण मन्त्रः ॥ मृदा करि ऊपर से आच्छा  
दन करता हूं। अन्यत् पूर्ववत् ॥ ५ ॥ का० ८० ५० २६० जिस चर्म में सोम  
रुपकाते हैं सो अधिषवण। अग्र भाग छिन्न लोहित वर्ण तिन  
फलकों के ऊपर स्थापन करै ॥ अर्थः ॥ हे चर्म तू वैष्णव (यज्ञ के  
रक्षक विष्णु का संबंधी है ॥ ६ ॥ का० ८० ५० २७० तिस चर्म में सोम

के अभिषेक के हेतु पांच ५ पाषाणों को स्थापन करें ॥ अर्थः ॥ हे  
ग्रावाणो तुम यज्ञरक्षक विष्णु संबंधी हो ॥ १॥ २५ ॥ इत्योपरवाणिसमाप्त

अथोदुम्बरीमंत्रः

अ० ७ देवस्यत्वा ॥ सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्याम्पूष्णोहस्ता  
भ्याम् ॥ आददेनार्यमिदम् हर्षं रक्षसाङ्गीवाऽऽपि कृन्ता  
मि ॥ यवोसि यवयास्मद्वेषो यवयारातीर्दिवेत्वान्तरिक्षा  
यत्वापृथिव्यैत्वा सुन्धन्नाऽन्त्रोकाः पितृषदनाः पितृषद  
नमसि ॥ २६ ॥ †

यहां से ओदुम्बरी के मंत्र का ०८५.३१-३३ उदंबर (गूलर) के वृक्ष  
से उत्पन्न हुई किसी शाखा को यज्ञमान की देही की बराबर सदाना  
मा मंडप के बीच गाड़ें और तिस शाखा गाड़ने से पहिले यूपवत्  
भूमि में पड़ रहने पर यूप के अवट खोदने के अभिस्वीकार से ले द  
भों के उपस्तरण पर्यंत पदार्थों को मंत्रों से करें ॥ यूप के अवट प्रदेश  
में का० ६.२० देवस्यत्वाम् अभिलेकर मंत्र की व्याख्या की।  
का० ६.२० इदमहं से यूप के अवट करने को लिखे इसकी भी व्या  
ख्या की ॥ १॥ २॥ यवोसि आसूरी उषिाह यव दे० का० ६.२.१५ से  
पात्र में भरे जल में यव (जौ) डाल कर ॥ अर्थः ॥ हे धान्य विशेष तू  
यव है जिस कारण द्वेष करने वाले शत्रुओं वा दुर्भाग्य को हम  
से प्रथक करि और तेरे ही निर्धनता को दूर कर ॥ इससे सौभाग्य  
और धन की प्रार्थना करते हैं ॥ २॥ दिवेत्वेति या-ज ओदुम्बरी  
दे० का० ६.२.१५-१६ यवों के जल से अग्र मध्य मूल को दिवे

† दे-म। अग-आ-हि। द्वा-इ-मि। उ-य-ती। ऋ-दि-त्वा। लृ-नाः। आ-पि-मि। इ-॥

त्वादि प्रतिमंत्र करि प्रोक्षण करै ॥ दिवेत्वा प्रोक्षामि १० हे औदुंबरी के अग्रभाग द्यूलोक की प्रीति के अर्थ तुम्हें प्रोक्षण करता हूँ ॥ अन्तरिक्षाय त्वा प्रोक्षामि २० हे मध्यभाग अन्तरिक्ष की प्रीति-हूँ ॥ पृथिव्यै त्वा प्रोक्षामि २० हे मूलभाग पृथिवी की-हूँ ॥ ३॥ शुन्धन्ताम् या-पं० ॥ ४॥ पितृ षदनम् देवीज० द्वे पित्र्ये । का० ६० २० १० शुद्धताम् से प्रोक्षण के शेष जल को अवट में सींचें ॥ अर्थः ॥ जिन लोकों में पितर निवास करते हैं तेलोक इस जल के सींचने से शुद्ध हों ॥ ५॥ का० ६० २० १० तिस अवट में पितृ षदनम् से प्रागग्र उत्तराग्र दर्भाएँ डालें ॥ अर्थः ॥ हे वहि-तू पितरों के बैठने की जगह है ॥ ६॥ २६॥

उहिवम् ॥ उहिवं स्तभानान्तरिक्षमृणद्धं हस्वपृथिव्यान्धुतानस्त्वामारुतोमिनोतुमित्रावरुणो ध्रुवेण धर्मणा ॥ ब्रह्म वनित्वाक्षत्रवनि रायस्योषवनि पर्युहामि ॥ ब्रह्म हृद्धं क्षत्रं हृद्धं हायुर्हृद्धं प्रजां हृद्धं ॥ २७॥ †

पांचमंत्रोका औदुंबरीदे० उहिवं यजुः का० ८० ५० ३४० औदुंबरी को खड़ा करै ॥ अर्थः ॥ हे औदुंबरी तू द्यूलोक को यांभि अन्तरिक्ष को पूर्ण करि । पृथिवी में दृढ़ हो अथवा पृथिवी को दृढ़ करि ॥ १॥ द्युतानस्त्विति आशी-उ० का० ८० ५० ३५० शारवा को गर्त में डालें ॥ अर्थः ॥ हे औदुंबरी दीप्यमान वायु स्थिरधारण करि तुम्हें गर्त में डालियो । तथा मित्र वरुण-देवते स्थिरधारण करि तुम्हें गर्त में डालियो ॥ २॥ ब्रह्म वनित्वा यजुः का० ८० ५० ३६० पर्युहण से ले उपसेचन पर्यन्त जैसे यूप के करते हैं तैसे यहां भी करि कै । तहां यूप स्थान में का० ६० ३० १००



ब्रह्मवनित्वा सै मृदा करि पर्यहण करै । ॥ अर्थः ॥ हे औदुम्बरी तेरे फे  
रमें मृदा पटकता हूं कैसी है तू कि ब्राह्मण जाति को भजती क्षत्री जा  
तिको भजती धन की पुष्टि को भजती ॥ ३ ॥ ब्रह्मदृष्टं आसुरी गा  
का ० ६. ३. ११. अध्वर्यु तिस मृदा सै पूरित गर्त को मैत्रावरुण डंड क  
रि तीनि वार कूट कै मृदा को अवर के भीतर प्रवेश करै ॥ अर्थः ॥ हे  
औदुम्बरी ब्राह्मण जाति क्षत्री जातिकी आयु और प्रजा को दृढ करि  
धुवासि ॥ ध्रुवोयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भू  
यात् ॥ घृतेन द्यावा पृथिवी पूर्येथा मिन्द्रस्य छदि रसि विश्व  
जनस्य छाया ॥ २७ ॥ ध्रु-त। अ० घृ-माई। इ-या। उ०

ध्रुवासीतियजुः का ० ७. ५. २६. औदुम्बरी का आलम्भन करि पढ़ै ॥  
अर्थः ॥ हे औदुम्बरी तू स्थिर है ऐसे ही यह यजमान इस अपने घर में  
पुत्रादि प्राजा और गवादि पशुओं करि स्थिर रहजियो ॥ ५ ॥ घृतेनेतिया  
त्रि० द्यावा पृथिवी दे० का ० ७. ५. ३७. औदुम्बरी शाखा के विशाखा-  
नाम प्रदेश में अध्वर्यु स्तुवा करि होम करै ॥ अर्थः ॥ इस होम किये-  
घृत से द्यावा पृथिवी पूरित रहजियो ॥ १ ॥ इन्द्रस्येति सा-उ० इन्द्रो दे०  
का ० ७. ६. १०. औदुम्बरी गाड़ने के पीछे सदानामा मंडप निर्माण करि  
तिसके ऊपर आवरण के अर्थ मध्य में छदि (तृणनिर्मित कट) आ  
रोपण करै ॥ अर्थः ॥ हे तृणमय कट तू इन्द्र का छदि है इस कारण  
सद के मध्यवर्ति सर्वजन यजमान ऋत्विज प्रभृतिका छाया हो ॥ स  
द को इन्द्र देवता के होने से तिस की छदि को इन्द्र संबंधित है ॥ २७ ॥  
परित्वा ॥ गिर्वणोगिरिः इमा भवन्तु विश्वतः ॥ वृद्धायुम

नुवृद्धयोजुष्टाभवन्तुजुष्टयः॥२४॥

ऐन्द्री० अनुष्टुबनिरुक्ता० मधुच्छन्दोदृष्टा० का० ८० ६० १२० ऊपरसे आछादन करिके ॥ अर्थः ॥ गीर्भीः० अर्थात् स्तुतियों करि भजनीय सदोभिमानी देवता इन्द्र॥ हे गेर्वण इन्द्र स्तोत्र शस्त्ररूपा गिरा तुमसे सब आड़ी से कर रूप करि गृहण कीजिये। कैसे तुमको कि वृद्धायुम् बहुत है यजमानादिक मनुष्य वा मरुत जिसके तिसको। अथवा महा मनुष्य को। कैसे है गिरा कि अनुवृद्धयः सवन के क्रमसे वृद्धि है जिसकी सं अर्थात् धीरेसे प्रातः सवन तिससे ऊंची माध्यन्दिन सवन तिससे ऊंची तृतीय सवन में। किंच हमारी सेवा तेरी प्यारी हूजिये ॥ २४ ॥

इन्द्रस्यसूः॥ इन्द्रस्यसूरसीन्द्रस्यध्रुवोसि॥ ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि॥ ३० ॥

इन्द्रस्येति द्वेया-गा० १० २० ऐन्द्रमसीति द्वे-वृ० ३० ऐन्द्राणि त्रीणि का० ८० ६० १२० तीनों इन्द्र देवता क मन्त्रोंसे परिषीवण १ ग्रन्थि २ अभिमर्शन ३ क्रम पूर्वक करे ॥ अर्थः ॥ हे रज्जो तू इन्द्र सदोभिमानी देवता की संवंधिनी सीवने की वस्तु है ॥ १ ॥ हे ग्रन्थि तू इन्द्र संवंधिनी हो के स्थिर है ॥ २ ॥ हे सद तू इन्द्र संवंधी है ॥ ३ ॥ वैश्वदेवमसि० या-गा० विश्वेदेवादे० का० ८० ६० १३० १४० हविर्धान मंडप के वायव्य कोण के उत्तर भागमें किंचित् आग्नीध्र नामा अग्नि स्थापन करिके तिसका स्पर्श करे ॥ अर्थः ॥ हे आग्नीध्र तू सर्व देव संवंधी है ॥ ४ ॥ ३० ॥ इति भाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

अथ षोडशधिषायमंत्राः

अ. ८ विभूरसि॥ प्रवाहणो वन्हिरसि हव्यवाहनः॥ श्वात्रे सिप्सु  
चे तास्तु योसि विश्ववेदाऽग्निगंसि॥ ३१॥†

यहां से ऊपर षोडश धिषायों के मंत्र॥ तदाह कात्यायनः ८. ६. १५ धि  
षाया ओं अर्थात् अग्नीध्रादिकों के बैठने की मृदा से बनाई हुई छोटी वे  
दियों को उदङ्मुख बैठ अध्वर्यु विभूरसि प्रतिमंत्र से पुरीष करि संभाले॥  
विभूरसीति अष्टयजुषां धिषाया अग्नयो देवताः॥ विभूरसीति प्रा-गा.  
का. ८. ६. १६ प्रथम अग्नीध्र की वेदी को संभाले॥ अर्थः॥ विभू शब्द  
प्रवाहण शब्द दोनों अग्नीध्रीय धिषाया के नाम हैं प्रातः ३. ६. २४ हे-  
अग्नीध्रीय धिषाय तू विभू और प्रवाहण है॥ अनेक प्रकार होने और इसी  
धिषाय से और और धिषायाओं में अग्नि विहरण के कारण इसको विभु  
त्व है। तिस के दक्षिण उत्तर में ऋत्विजों के चलने अथवा हविके प्रवाह  
ण से प्रवाहणत्व है॥ धिषाय गत अग्नीन् प्रति और देवताओं ने कहा कि  
प्रत्येक अपने नाम को सम्पादन करे॥ तदाह तिलिरिः॥ तान् देवा अब्रुव  
नू द्वे-द्वे नामनी कुरुतेति॥ १॥ मैत्रावरुण होतृ ब्राह्मणा छंसि पोतृ ने  
ष्ट अच्छावाक के धिषायाओं को सदस में करे वन्हिरसीतिया-वृ० तदा  
ह का. ८. ६. १८ - ३१ अग्नीध्रीय के निवाप के अनन्तर में छे धिषाया  
ओं को संभाले पूर्व में सद का द्वार जिसके उत्तर में होता की धिषाय ति  
सको प्रत्यङ्मुख हो अध्वर्यु संभाले औ दुम्बरी के अग्नि को ण दिश में  
मैत्रावरुण के धिषाय को उदङ्मुख हो संभाले होतृ धिषाय के उत्तर में  
ब्राह्मणा छंसि पोतृ नेष्ट अच्छावाक चारों के धिषायाओं को तुल्य अन्तर  
से संभाले॥ अर्थः॥ हे होतृ धिषाय तू वन्हि और हव्य वाहन है॥ यज्ञकर्म

कानिर्वाह करे इस हेतु वह्निः और देवताओं प्रति हविके पहचाने सै हव्य  
वाहन। जैसे आग्नीध्रीय धिषाय के दो नाम कहे तैसे ही होत्रादि धिषयाओं  
कों जानन्य ॥ २॥ अत्रोसीतिया-गा० हे मेत्रा वरुण धिषाय तू अत्र और  
प्रचेता है ॥ अत्रक्षिप्र गतिवान् मित्रः प्रचेता प्रकृष्ट ज्ञानवान् वरुण ॥ ३॥  
तुयोसीतिदैजः हेत्रास्याण्डं सिधिषाय तू तुय और विश्ववेदा है ॥ तुय ब्रह्म  
रूप है शत० ४० ३० ४० १५ ब्रह्म वै तुय इति श्रुतेः विश्ववेदाः सर्वज्ञ है।  
यद्वा तुय शब्द करि देवताओं प्रति दक्षिणाकाविभाग करने वाला पुरुष सू-  
चित्त होता है। तदाह तितिरिः ॥ तुयो ह स्म वै विश्ववेदा देवानां दक्षिणा  
विभजतीति ॥ ३१ ॥

उशिगसि कविरङ्गारिरसि वम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वान्धुस्यूर  
सिमाञ्जलीयः सम्म्राड् सिक्कशानुः परिषद्यो सिपर्वमानोन  
भोसिप्रतकोमृष्टोसिहव्यसूदनः ऋतधामासिस्वर्ज्योतिः ॥ ३२ ॥

उशिगसीतिया-गा० हे पोतृ धिषाय तू उशिक और कवि है ॥ उशिक का  
मनीय कविः विद्वान् ॥ ५॥ अंधारिरसीतिया-अ० हे नेष्ट्र धिषाय तू  
अंधारी और वंभारी है ॥ पापका वैरी अंधारी पोषण करने वाला वं-  
भारी ॥ दिवि मे दो सोम के रक्षक अंधारी और वंभारी सो सोम रक्षक मं-  
त्र स्वान भ्राजाङ्गारे वम्भारे मे कहे गये अध्या० ४ काण्डी २७ ॥ ६॥ अव-  
स्यूरसीतिया-अ० हे अच्छा वाक धिषाय तू अवस्यू और दुवस्वान है। अ-  
नका इच्छा करने वाला अवस्यू और हविष्मान है कारण यह कि अ-  
च्छा वाकही पुरोडाश के भाग को पाता है ॥ ७॥ ऐसे होत्रादिकों के धिषया  
ओं को सद में निर्माण करि ॥ का० ८० ६० २२ वेदी के दक्षिणा भाग में मार्जा

+ उ-विः। अ० अ-रिः। इ० अ-न। उ० शु-यः। ऋ० स-नुः। ल० प-नः। आ० न-  
को। ई० मृ-नः। ऊ० ऋ-तिः। ऋ०

लीयकानिर्माणकरै ॥ अर्थः ॥ शुंध्यूरसि.या. — अ. ० शुद्धकरनेवा  
 ला शुंध्यूः माजनेवाला मार्जोली तहां पात्रोंको धोतेहैं ॥ ८ ॥ का. ०  
 ६. २३. आठो धिष्ण्या ओं के निवापके अनंतर अध्वर्यु सदके द्वार  
 के पूर्वभागमें स्थित हो सम्राडसिसे आदिले आठों मंत्रोंकरि क्रमपूर्  
 वक आहवनीयादि कों को देखें ॥ सम्राडसीत्यादि आठ मंत्रों के आह  
 वनीय १ वहिष्यवमानदेश २ चात्वाल ३ शामित्र ४ ओदुम्बरी ५ ब्र  
 ह्मासन ६ शालाहार्य ७ प्राजहित ८ देवता ॥ १६ ॥ गा. ० अर्थः ॥ हे उत  
 रवेदिगत आहवनीय तू बहुविधि आहुतिके आधार होनेसे सम्रा  
 ट् और पयोव्रतादिकरि कृश (क्षीन) हुए यजमान प्रति प्राप्ति होनेमें  
 कृशानुहै ॥ १ ॥ परिषद्योसि. या. ० अर्थः ॥ हे वहिष्यवमानदेश  
 तू स्तुति समेत ऋत्विजः (परिषत्) तिसके योग्य परिषद्यः और शुद्ध  
 होने से पवमानहै ॥ २ ॥ नभोसि. या. — गा. ० अर्थः ॥ हे चात्वाल तू खन  
 न करि छिद्ररूप होनेवान दीखनेसे नभः तथा ऋत्विजों के प्रदक्षि  
 ण चलनेसे प्रतक्काहै ॥ ३ ॥ मृष्टोसि. प्रा. गा. ० अर्थः हे शामित्र पशु  
 विशसन प्रदेशतू मृष्ट अर्थात् पशुविशसन के विहित होनेसे अशु  
 द्ध हेतुत्वके अभावकरि निश्चय विशसन के अर्थ शुद्धहै । यद्वा मृष्टमी  
 ठ पक्व हवि और तैसैही हृदय जिह्वादिरूपकरि हविके पाक काहेतुहै ॥ ४ ॥  
 ऋतधामासि. प्रा. गा. ० अर्थः ॥ हे ओदुम्बरितू सामगान उपवेश  
 नस्थानहै । कारण यह कि ओदुम्बरीका स्पर्श करि गातेहै । उन्नतत्वक  
 रि स्वर्गमें प्रकाशमान वासूर्यज्योतिहै ॥ ५ ॥ ३२ ॥

समुद्रोसि ॥ विश्वव्यचा अजुस्येकपादहिरसिबुध्नोवागी

स्यैन्द्रमसिसदोस्त्युतस्य द्वांगे मामासन्ताप्तमध्वनामध्वप  
ते प्रमातिरस्वस्ति मेस्मिन्पथि देवयाने भूयान्मित्रस्य

मा॥ ३३॥ स-वाः। अ० अ-तू। इ० अ-ध्याः। उ० वासिपा०। ऋ-मू। लू-अ-तू। आ०

समुद्रोसि प्रा-गा०॥ अर्थः॥ हे ब्रह्मासन तू समुद्र सब देवता अच्छे  
प्रकार द्रवें हैं जहां वोह अथवा समुद्रवत् ज्ञान करि गाढ़ ब्रह्माज  
हां बैठता है सो। और विश्वव्यचा-सब यज्ञ के कृताकृत देखने प्रतिजा  
ता है सो है ॥ ६॥ अजोसि दे-पं०॥ हे प्राचीन वंश प्राला द्वारवर्तिनू अ  
ग्ने तू अज आहवनीय रूप करि यज्ञप्रदेश में जाता अथवा परब्रह्म  
त्व करि उपचरण करिये हैं। और एकपात् एक ही पालन करने वाला  
वा एक पाद है ॥ अथ्या० ३१० काण्डी ३ पादोस्य विश्वाभूतानीति ॥ ७॥  
अहिरसि दे-त्रि० हे प्राजहितपत्नी शालाके पश्चिम भागवर्ती गार्हपत्य अ  
ग्नि तू अर्ह शालादारीय नूतन गार्हपत्य के उत्पन्न होने पर भी अपने स्वरूप  
करि नहीं हीन होता और बुध्य-आधान काल में प्रथम आहित हो  
ने से मूल अर्थात् प्रथम मंथन करते हैं सो है ॥ ८॥ नामों करि यहां  
भी धिषण्यों की स्तुति है ॥ इति षोडशधिषण्यमंत्राः समप्ताः॥ वाग  
सीतिया-द्व० सदो दे० का० ४० ८० १४० सदका अभिमर्शन करे ॥ अ  
र्थः॥ हे सद तू वाक् है। क्योंकि वाक् जिसमें कर्म करती है वाक्शब्द  
करि अभेदोपचारण से सद कहते हैं। और इन्द्र देवता है। सीदंति  
बैठते हैं जिसमें वोह सद ॥ १॥ ऋतस्ये-तिया-पं० द्वार्ये दे० का० ४०  
८० २०० सदकी द्वार शाखाओं का अभिमर्शन करे ॥ अर्थः॥ हे ऋ  
त (यज्ञ) के द्वार देश में स्थापन की हुई शाखाओं तु ममुं रै मत संतापक



रौ॥२॥ अध्वनामिति यजुः सूर्यो दे० का० ४०. ८. २१. यहां से तीन मंत्रों करि अभि मंत्रण करै. अध्वनाम् से सूर्य का अभि मंत्रण करै॥ अर्थः॥ हे मार्गों के पालक, रवे (मार्गों के बीच वर्तमान) मुझको तुम वटाओ किंच इस देवयान प्रापक पथि (यज्ञमार्ग) में मेरा कल्याण हो॥१॥ ३३  
मित्रस्य मा चक्षुषे क्षध्वमग्नयः सगराः सगरास्थ सगरेण  
नाम्ना रौद्रेणानी केन पात माग्नयः पिपृतमाग्नयो गोपा  
यतमानमोघोस्तु मामाहिर्धे सिष्ट॥३४॥ मि-म। अ। अ. ४६. १०।  
मित्रस्य माया-वृ० ऋत्विजो दे० का० ४०. ८. २३. यजमान सब ऋत्विजों का अभि मंत्रण करै॥ अर्थः॥ हे ऋत्विज मित्र (आदित्य) के नेत्रों से मुझे देखो। अथवा जैसे सखा सखा को देखता है तैसे मुझे देखो॥ २॥  
अग्नयः यजुः धिषायाः दे० का० ४०. ८. २४. आग्नीध्रीयादिक आठों धिषायाओं को यजमान अभि मंत्रण करै॥ अर्थः॥ हे अग्नयः सग  
रस्तुति सहित आग्नीध्रीयादिकों तुम स्तुति सहित धिषाणाम  
करि समान स्तुति हो। हे अग्नयः तुम शत्रु विनाशक अपनी उग्र से  
न्य करि मेरी रक्षा करै अथवा रुद्र देवता के मुख करिके मुझे रक्षा क  
रै। हे अग्नयः मुझे धनादिकों से पूरण करै। मुझे निरन्तर में रक्षा  
करै। तुमको नमस्कार है मुझे मत भारी निर्विघ्न पूर्वक यज्ञ कराओ  
॥३४॥ इति भाष्ये अष्टमोऽनुवाकः॥८॥  
अ० ४० ज्योतिरसि॥ विश्वरूपं विश्वेषां देवानां च समित्॥ त्वष्ट्रस्यै  
मतनूकज्यो देवोऽभ्योन्यकृतेभ्य उरुयन्तासि चरुय  
श्च स्वाहा जुषाणो अमु राज्यस्य चेतु स्वाहा॥३५॥

अवसानहीना अवसानरहिता

साम्यनुष्टुप् विश्वे देवादे० का० ५. ४. २६. ध्रुवामें सैष पदाज्य आज्य को पांचवार ज्योतिरसीत्यादिसमिदन्तमन्त्र से ग्रहण करें ॥ अर्थ ॥ हे आज्य तू ज्योति है कैसा कि सर्व रूप, बहुत आहुतियों में युक्त होने से सर्व रूप कहा। आज्यत्व वादीप्यमानत्व से ज्योतिष्टु है। सब देवताओं का दीपक अर्थात् देवता आज्य का भोजन करि दिपते हैं ॥ त्वं सोमे त्यनवसाना गायत्री भृगु सुत क्रतु दृष्ट्वा सोम देवत्या का० ८. ७. १. प्रदी प्रदूध्मके ऊपर प्रचरणी अर्थात् जुहू से होम करें ॥ शरीर के छेदन वाले अर्थात् रक्षसों। द्वेष करने वाले दोर्भाग्य। और भी हमारे वैरियों के प्रेरण छेदन। हे सोम तू तिनों को जानता है। जैसे वे हमको न बाधा करें तैसे हमको सुरक्षित प्रदेश में स्थापन करि पालन करता है। तिस हे तू तू ही हमारा उरु प्रभूत बल है तैसे तुरु को यह हत हो। सोमने ताको उद्देश करि यह आज्याहुति होमें इति भावः ॥ जुषाणेऽअप्नुदे वत्येकपदा विरज्य जु रन्ता ॥ का० ८. ७. २. फिरि प्रचरणी से एक बार आज्य ले होम करें ॥ अर्थः ॥ प्रीयमाणऽअप्नुः (सोम) आज्य को पान करें। स्वाहा तिसके अर्थ सुद्धत हो ॥ ३५ ॥

अग्ने नय ॥ सुयया रायेऽअस्मान्नि श्वानि देव ब्रयुनानि विद्वान् ॥ पुयोध्यस्मज्जुहु राण मे नो भूयिष्ठान्ते नमः ॥ उ किं विधेम ॥ ३६ ॥

आग्नेयी निष्टुव गस्त्य दृष्ट्वा का० ८. ७. ६. आग्नीध्र प्रति गमन के अर्थ प्रवृत्त यजमान को अध्वर्यु पढ़ें ॥ अर्थः ॥ हे अग्ने हे देव सब मार्गों वा शानों के जानने वाले तू हम अनुष्ठान करने वालों को



यमान इस आज्य को पान करि। किंच यज्ञयति (यजमान) को अति शय वडा। स्वाहा तैसै तुम्हको सुदृत हो ॥ ३८ ॥

देवसवितः ॥ देवसवितरेषते सोमस्तर्ह रक्षस्व मात्वादभनू ॥ एतत्त्वन्देव सोमदेवो देवा रे ॥ ३९ ॥ उपागा इदमहम्मनुष्यान्त्सह रायस्योषेण स्वाहानिर्वरुणस्य पाशांन्मुच्ये ॥ ४० ॥ दे-न। अ० ए-ण। इ० स्वा-च्ये। उ०।

देव सवितः आर्षी गा० सावित्रम् का० ८० ७० १७० दक्षिण हविर्धान प्राकट में कृष्णा जिन विछायति सपर सोम रखै ॥ अर्थः ॥ हे सबके प्रेरक देव यह सोम तेरे अर्पण किया तिस सोमको तू पालन करि सोमके रक्षा करने वाले तुम्हको असुर मत हिंसा करौ ॥ एतत्त्वम् प्रावि० सौम्यम्। का० ८० ७० १८० कृष्णा जिन पर स्थापन किये वद्ध सोमको छोडि उपस्थान करै ॥ अर्थः ॥ हे सोम देव तू देव हो अपने देवताओं प्रति ऐसे प्राप्त है में यजमान अपने मनुष्यों प्रति ऐसे ही धनकी पुष्टि (पशु आदि धन) सहित लौह ॥ स्वाहानिरितिया-त्रि० लिं गोक्त देवतम् का० ८० ७० १९० हविर्धान मण्डप सैनिकल ॥ अर्थः ॥ सोमसे आत्मा को निकाल आत्मीही भेग है। अथवा स्वाहा सोम रूप अन्न देवताओं को दिया इस सोम प्रदान करि में वरुण पाश सै छूटा ॥ ४० ॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपाया तव तनू र्मय्य भू देवा सात्वयियो मम तनू र्मय्य भूदियठं सामयि ॥ यथा यथन्त्रौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षान्दीक्षा पतिरमुं स्तानु तपस्तपस्यति ॥ ४० ॥ का० ८० ७० १९० अग्ने व्रतपाः इस सै आहवनीय में समिध

डालि। आग्नेयं यजुः यजमान अग्निके के शरीरसे अपने शरीरको  
 एक करि अधस्तन कर्म कलाप करिके ॥ अवजैसे अपने शरीर प्रतिकि  
 यासो कहते हैं। हे अग्ने स्वभाव करि सब व्रतों का पालक है तिस कारण  
 यहां भी तू मेरे व्रत का पालक हो। हे अग्ने व्रत की प्रार्थना के समय तेरीसं  
 वन्धिनी जो देही मेरी थी सो यह तेरी हो। और जो मेरी देही तेरी हुई तो यह  
 मेरी हो। हे व्रत के पालक अग्ने हमारे तुम्हारे व्रत (कर्म) जों के त्यों हों अ  
 र्थात् अनुष्ठान रूप व्रत मेरा और तिस के पालन रूप व्रत तेरा हो किंच  
 दीक्षा का पालक अग्नि मेरी दीक्षा के अर्थ नियम को अंगीकार करे।  
 तप का पति अग्नि मेरे उपसद को स्वीकार करे ॥ ४० ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥  
 अ० १० उरुविष्णो ॥ उरुविष्णो विक्रमस्वोरुक्षयाय न स्कधि ॥ घृत  
 हुतयोनेपिवप्स्यं यज्ञ पति न्ति रस्वाहा ॥ ४१ ॥  
 इदानीं यूपसम्पादनमन्त्राः ॥ का० ६. १. ३-४ घरमें चारि बार लिये  
 आज्य करि उरुविष्णुः इस मंत्रमें आहवनीय में यूपाहुति अर्थात्  
 यूप छेदने के अर्थ होमें ॥ काण्डी ३० में व्याख्या की गई ॥ ४१ ॥

अत्यन्या न ॥ अत्यन्या रं ॥ ३ अग्नौ नान्या रं ॥ ३ उपांगाम  
 र्वात्का परेभ्यो विदम्यु रोर्वरेभ्यः ॥ तत्वा जुषामहे देव वनस्य  
 ते देव यज्याये देवास्त्वा देव यन्याये जुषन्तां म्विष्णां वेत्वा ॥ ओ  
 षधे त्राय स्वस्वधि ते मे न ठं हि ठं सीः ॥ ४२ ॥ †

अत्यन्या रं ॥ वनस्यति देवतम् यजुः का० ६. १. ५-७ यूपाहुति के शेष  
 आज्य सहित यूपंतक्षण के अर्थ वन में जाकर यूप का स्पर्श वा अभि  
 मंत्रण करे ॥ इति सूत्रार्थः ॥ वृक्ष दो प्रकार के यूप्या-अयूप्या-पलाश-

खदिरः वित्वादिक यूष्याः निम्बः जम्बीरादि अप्यूष्याहं ॥ हे पुरोवर्ति  
 यूप वृक्ष तुम्हें अन्य यूषों को सम प्रदेश जन्मादिलक्षण रहित देख  
 ताहं और भी अन्य अप्यूषों को नहीं जाता किंच दूरवर्ती वृक्षों से निक  
 ल तुम्हें पाया और हे वनस्पते (वन के पालक) हे दीप्यमान वृक्ष देवता  
 ओं के याग के अर्थ तै से तुम्हें सेवन करूं और देवता देवयज्या  
 में तेरा सेवन करें ॥ का० ६० १०११० घृताक्त सुवा करि छेदने के स्थान  
 विष्णावेत्वा से उपस्पर्शन करे ॥ हे यूप वृक्ष तुम्हें विष्णु (यज्ञ) के अर्थ  
 उपस्पर्शन करताहं + ॥ ओषधः इति या- गा० कुश तरुणो दे० का०  
 ६० १०१२० यूप वृक्ष के कुश को अन्तर्धान करिकें ॥ हे ओषधे तू स्वधि  
 तिभय से मुझे रक्षा कर ॥ स्वधितः इति दे- ज० परशुदे० का० ६० १०१२०  
 परशु से प्रहार करे ॥ हे परशु इस यूप को मत हिंसा करि ॥ ४२ ॥ +

+ यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुते

द्याम्ना ॥ लेखी रन्तरीक्ष म्माहिंसीः पृथिव्या सम्भव ॥ अय  
 ठं हित्वा स्वधिति स्तेति जानः प्रणिनाय महते सो भगाय ॥ अ  
 तस्त्वन्देव वनस्पते शत वल्गु विरोह सहस्र वल्गु विव  
 यं रुहेम ॥ ४३ ॥ + इति संहितायां दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनी शाखी यायां वाजस  
 नेय सर्गहितायां दीर्घपाठे पंचमोऽध्यायः ५

द्याम्ना लेखी वनस्पति देवतं यजुः का० ६० १०१६० गिरते हुए यूप को अभि  
 मंत्रण करे ॥ अर्थः ॥ हे यूप वृक्ष तु लोक तेरी मत हिंसा करे अन्तरिक्ष  
 मत हिंसा करे पृथिवी के साथ संगत हो ॥ यूप को वज्र रूप होने से लोकों  
 की शांति चाहते हैं इति भावः ॥ का० ६० १०१७० अपठं हित्वा से छिन्न



जो यूप वृक्ष है उसका कुठार करि शोधन (शाखा पर्णी दिकों का पतन) करे १० अथवा यह अभिमंत्रण का शेष है शोधन चुपकें से करे ॥ अर्थ जिस कारण हे छिन्न वृक्ष अति तीक्ष्ण यह कुठार बड़े सौभाग्य दर्शनीय अथवा यज्ञ के अर्थ तुम्हें यूप होने को प्राप्त करेगा। इस हेतु तुम्हें छेदने को नहीं भेदता हूं इति भावः ॥ अतस्त्वमिति आधी वृ० वनस्पतिर्दे० का० ६. १. २. २१ स्थाली में सेंजुह करि लिये आज्य से होम करि छेदन प्रदेश को संस्कृत करे अथवा यूप में इस आहुति को होमें ॥ मंत्रार्थस्तु हे देव वनस्पते इस स्थाणु से तू बहु अंकुर सहित होके विशेष करि उत्पन्न हो औ और हम भी पुत्र पौत्रादिकों करि बहु शाखा पे तहों दें ॥ ४३ ॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

श्री वेदार्थ प्रदीपेन तमोऽहर्दं निवारयन् ॥

पुमार्थोऽतुरो देया यज्ञयुरुषः सनातनः १

श्री मच्छुक्त यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी श्राद्धे तृत्याग्रपादान्वय विश्वामित्र पुराधिपति श्रीमज्जय किं शां र देव वर्मा जगै किमणे य नृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये श्रा तिथ्यात् स्थाणु होमान्त वर्णनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वह्निरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्म रूप परं स्तुमः १

अ० १ देवस्यत्वा ॥ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेद्विनीर्वाहुभ्याम्यूषणो  
हस्ताभ्याम् ॥ आर्देनार्यसीदमहर्षे रक्षसां ग्रीवाः ॥ अ  
पि कृन्तामि ॥ यवीं सि यव यास्महे यो यवया राती हि वेत्वान्त  
रिक्षायत्वा पृथिव्येत्वा शुन्धन्तान्छोकाः पितृषदनाः पितृ  
षदनमसि ॥ १ ॥ †

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थ प्रदीपके ॥ ॥

अभ्या दाना द्वाचनान्तः षष्ठोऽध्यायः समीर्यते

सौमिक वेदी के प्रधान करियां चवे अध्याय में आतिथ्य से ले यूप  
निर्माण पर्यन्त मंत्र कहें ॥ अग्नीषोमीय पशु के प्रधान करिछठे  
अध्याय में यूप संस्कार से ले सोमाभिषव के उद्योग पर्यन्त मन्त्र क  
हते हैं का० ६० २० देवस्यत्वा से अभिलेकर इदमहं से यूप के अव  
ट करने की लिरखें। देनो मन्त्रों की अध्या० ५ काण्डी २२ में व्याख्या  
की ॥ का० ६० १५-१८ यवीं सि से पात्र में भरे जल में जो डालकर। यवीं  
के जल से अग्र मध्य मूल को दिवेत्वादि तीन मन्त्रों करि प्रोक्षण करें  
शुन्धन्ताम् से प्रोक्षण के शेष जल को अवट में सींचें। पितृषदन से  
प्रागग्र उत्तराग्र दर्भा ऐं डालें ॥ इन चारों मन्त्रों की भी ओदुम्बरी  
विषय में ५० २६ व्याख्या की ॥ १ ॥

† दे-मू। अ० १ आ-सि। दू० इ-मि। उ० य-ती। ऋ० दि-त्वा। ल० शु-ना। आ० पि-सि। ई० ॥ १ ॥

अग्रेणीरसि ॥ स्वावेशः उन्नेतृणा मेतस्य विना दधित्वा स्यास्य  
 ति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्यलाभ्यस्त्वोषधीभ्यः ॥ द्या  
 मग्रेणास्पृक्षः आन्तरिक्षमध्यैनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृढं हीः ॥ २ ॥  
 अग्रेणीः शकल देवत्यं यजुः का० ६० २१४० यूपके अवट में प्रथमश  
 कल कूडालें ॥ अर्थः ॥ हे यूप शकल तू छिद्यमान यूपका प्रथम अवयव  
 है अथवा प्रथम यूपकी अवट प्रति पहुंचानेवाली है। कैसी है तू कि उन्नय  
 न करनेवाले अध्वर्युओंकी सुख पूर्वक विठानेवाली, ते इस यूपके अव  
 ट में छोटे होनेके कारण सुख पूर्वक विठलाते हैं। सो तू इसकर्मको जा  
 निबोह कौन कर्म कि जो यूप तेरे ऊपर अवस्थान करेगा सो तुझे समस्त  
 ना उचित है ॥ देवस्त्वा या-पं० यूप देवत्यं का० ६० ३२ यूपके ऊपर देश  
 को छोड़ि अंजन करे ॥ हे यूपः सविता देवता मधुर आज्य करि तुझे अंजो ॥  
 सुपिप्यलाभ्यः चषालदे या-बृ० का० ६० ३३४० नीचे ऊपर आज्य करि  
 लिप्त चषाल को यूपके आगे स्थापन करे ॥ अर्थः ॥ हे चषाल तुझे यूपके आ  
 गे छोड़ता हूँ किसलिये कि व्रीह्यादि ओषधी की निष्पत्तिके अर्थ कैसी ओ  
 षधी कि शोभन फलयुक्त ॥ द्यामग्रेणेति यूपदे० यजुः का० ६० ३७० से ऊँ  
 चा करे ॥ अर्थः ॥ यूपकी महिमा कहिते हैं। हे यूप तूने अग्र भाग करि दि  
 वी को स्पर्श किया है। मध्यभाग करि अन्तरिक्षको पूरित किया है। अधो  
 भाग करि पृथिवी को दृढ किया है ॥ २ ॥

याते ॥ याते धामान्युश्मसि गमध्वे यत्र गावो भूरिशृङ्गाः  
 अयासैः ॥ अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमम्यदमव  
 भारिभूरि ॥ ब्रह्मवनि त्वाक्षत्रवनि रायस्योषवनि पर्यहमि ॥

ब्रह्म हर्षं हृक्षं ब्रह्म हर्षं हायुर्हर्षं हृष्यजान् हर्षं ॥ ३ ॥ †

याते दीर्घ तमा ऋ० त्रिष्टु० यूपदे० का० ६. ३. ८. अवट में यूपको डालें ॥  
अर्थः ॥ हे यूपजिन तेरे धामों (स्थानों) के जानें को हम कामना करते हैं।  
किंच जिन तेरे स्थानों में किरिणें बर्ते हैं कैसी हैं किरिणें कि बहुत है दी  
क्षिजिनकी । इस विष्णोः- व्यापक ब्रह्म का सो परम उत्कृष्ट पद बड़ा  
आदित्य मंडल रूपी यहां दीखता है । अथवा भूरि बहुत प्रकार इ  
न स्थानों में शोभित है कैसे बिष्णु का कि बड़ी है गति जिसकी अ  
थवा महात्माओं करि स्तुति किया गया तिसका । तैसे स्थानकी प्राप्ति  
के हेतु भूत कर्म के अर्थ हे यूप तू इस अवट में ठहिर ॥ का० ६. ३.  
१०. ११. ब्रह्म वनित्वा से मृदा करि पूर्ण करै । ब्रह्म हर्ष से मैत्रावरुण द  
ड करि तीनि फेर से कूटे ॥ दोनों यजुषिः औदुंबरी में व्याख्या की अ  
ध्या० ५ कांडी २७ ॥ ३ ॥

विष्णोः कर्माणि ॥ पश्यन् यतो ब्रतानि पश्य शो ॥ इन्द्र  
स्य युज्यः सर्वा ॥ ४ ॥

हे वैष्णव्यो गायत्र्यो मेधा तिथि दृष्टे का० ६. ३. १२. विष्णोः कर्माणि  
यूपको स्पर्श करते हुए यजमान प्रति पढ़े ॥ अर्थः ॥ हे ऋत्विज्यो यज्ञ  
के अधिष्ठाता बिष्णु के कर्मों (सृष्टि संहार दिचरितों) को तुम देखो  
जिन कर्मों करि तुम्हारे लौकिक वैदिक कर्म निर्माण हुए सो बिष्णु  
इन्द्र का वृत्रवधादि कर्मों में अनुरूप सर्वाहु आ ॥ अथवा विष्णोः अ  
र्थात् यज्ञ के कर्माणि- वीर्यों को देखो कि जिन वीर्यों से ब्रतानि आ  
धान पशुरोमादिक कर्म पश्य शो- आत्म में निर्माण किये यद्वा जिन

वीर्यो करि व्रतानि, कर्म अग्नि वायु सूर्योदिकों में अपने अपने अन्न  
मनहोकरों यह निवद्ध किया। सिद्धं समानं ॥४॥

तद्विष्णोः परमम्यदर्शं सदा पश्यन्ति सूरयः ॥ दिवी चक्षुरा  
ततम् ॥५॥

का० ६.३.१३. चक्षुः को देखते हुए यजमान प्रति पेटे ॥ सूरयः वेदा  
न्तपारगाः विद्वानविष्णु के तिस परमपद (स्वरूप) को सदा देखते हैं कै  
से को कि आकाश में चक्षु ऐसे वात्त हैं। यद्वा जिसने आकाश में आदि  
मंडल को विस्तार किया ॥ चक्षुः शब्द से यहां मंडल लेना चक्षुर्मित्रस्य  
वरुणस्य ७.४२. तच्चक्षुर्देवहितम् ३६. २४. ॥५॥

परिवीरसि ॥ परिवीरसि परित्वा देवीर्विशो व्ययन्ताम्परीमं य  
जमानं रथो मनुष्याणाम् ॥ दिवः सूनुरस्येषते पृथिव्या  
ल्लोकः आरण्यस्ते पशुः ॥६॥†

परिवीरिति राजा- त्रि० यूपदे० का० ६.३.१५. तीनि अवयवों करि स  
म्यादित कुणाओं की जोरसना (लेज) तिससे यजमान की नाभिवरा  
वरि यूप प्रदेश में तीनि आवृत्ति जैसे हों तैसे यूप का आवेष्टन करें ॥  
अर्थः ॥ हे यूप तू ऊपर से रसना करि वेष्टित है। अथवा हम लोगों करि परिवेष्टि  
त है किंच देव संबंधिनी मरुद्गणादिक प्रजा तुम्हें वेष्टन करें। अथवा यशु  
तुम्हें वेष्टन करें। किंच मनुष्यों के संबंधी धन इस यजमान को सब ओड़ी  
से वेष्टन कीजियों अथवा मनुष्यों के बीच धन इस यजमान को सब ओ  
ड़ी से वेष्टन कीजियों ॥ दिवः सूनुरति देवी० त्रि० स्वरुदेवत्या का० ६.३.  
१७. अष्टास्त्रि यूप की जो अस्त्रि अग्नि के समी में स्थित सो अग्निष्ठा

तिसके उत्तरभाग रसना में स्वरु नामा शकल को प्रवेश करै ॥ अर्थः  
हे स्वरो तू द्युलोकका पुत्र है • द्युलोकसे वर्षे तव यूप उत्पन्न हो यूपसे स्वरु  
इस प्रणालिका करि दिविका पुत्र स्वरु ॥ एषते सा०-उ० यूपदे० का० ७  
७० २३ यूपे का दशिनी पक्षे यूपके दक्षिणभागमें विनछिला वार मां यूप  
स्थापन करै उसे न गडें ॥ अर्थः ॥ हे यूप पृथिवी में यह तेरा स्थान है । ननु  
पशवो वै यूपमुच्छ्रयंतिति श्रुतेः शत० ३७० ३४ वन में वर्तमान पशु तेरे  
ही हैं ॥ ६ ॥

अ० २ उपावीरसि ॥ उपावीरस्य पदेवान्देवीर्विशः प्रागुरुशिजोवन्हि  
तमान् ॥ देवत्वष्टृर्वसुरमहव्याते स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥

उपावीरसि दै० पं० वृणदे० का० ६३ १६ तृणलेके ॥ अर्थः ॥ हे तृण  
विशेषतु समीपमें आता है । अथवा समीपमें अवस्थित रक्षाकर्ता है पशु का  
दूसरा सर्वा तू है ॥ उपदेवानिति यजुः लिंगोक्तम् का० ६३ १६ सामने  
तिससे स्थित पशु का स्पर्श करे ॥ अर्थः ॥ पशु अग्नीषोमादिक देवता  
ओं प्रति प्राप्त हजियों कैसे देवता ओं प्रति किमेधावि । अथवा हवि के  
चाहने वाले बन्धितमानू बहुत चलाने वाले अर्थात् यजमानू को स्वर्ग प्रा  
प्ति प्राप्त करने वाले देवता ओं के बीच बहुत श्रेष्ठ । ऐसे पशु ओं को प्रार्थ  
ना करि त्वष्टा प्रति कहता है । हे देव हे त्वष्टः तू पशु लक्षणधनको रमण क  
रि । ऐसे त्वष्टा से कहिके फिर पशु से कहता है । हे पशु तेरी हवि स्वादित ह  
जियों अथवा हवियों को देवता स्वीकार कीजियों ॥ ७ ॥

रेवतीरमध्वम् ॥ रेवतीरमध्वमृहस्पतेधारया बसूनि ॥ ऋत  
स्यत्वा देव हविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षामानुषः ॥ ८ ॥



हे क्षीराधिधनवंत पशुः औ तुम यजमान के घरमें अच्छी प्रकार क्रीडाक  
रें। ऐसे पशुओं से कहिकरि बृहस्पति से कहिता है। हे बृहस्पते हे ब्रह्मन्  
पशुओं को निश्चल करे। ऋतस्यत्वा आपी - उ० पशु दे० का० ६३२०  
बहरी कुशाओं की रस्सी का नागपाश बनाय शृंगों के बीच पशु के बांधे द  
क्षणशृंग के सामने पाश को बांधे ॥ अर्थः ॥ हे देवताओं के हविरूप पशु  
अवश्य भाभि फलोपेत यज्ञ पाश करि तुम्हें बांधता हूँ। ऐसे पशु को  
संबोधन करि शमित्र के अर्थ समर्पण करे। मानुषः (शमिता) धर्षा धृषणो  
तु शमयतुं शक्नोतु समर्थ हूँ जियो इति भावः ॥ ८ ॥

देवस्यत्वा ॥ सवितुः प्रसवेष्टिनोर्वाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम्  
अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं निर्युनज्मि ॥ अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यो नुत्वा  
माता मन्यतामनु पिता नुम्वाता सगम्यो नु सखासयूथ्यः अ  
ग्नीषोमाभ्यान्त्वा जुष्टम्योक्षामि ॥ ९ ॥ †

देवस्यत्वा प्रा० - वृ० का० ६३३० यूपसै पशु को बांधे व्याख्याता ५२६  
अग्नीषोमाभ्यां या० - त्रि० लिंगोक्तं अग्नीषोम देवताओं को अभिरुचि  
न पशु को बांधता हूँ ॥ अद्भ्यस्त्विति यजुः का० ६३३१ पशु को प्रोक्षणी  
से प्रोक्षण करे ॥ अर्थः ॥ हे पशो जल और ओषधी करि के तुम्हें प्रोक्षण (मे  
ध्य) कर्ता हूँ केसे तुम की कि अग्नीषोम की प्रीति को। दर्भ और जल के पवित्र हो  
ने से ओषधीओं को भी प्रोक्षण साधनत्व है। अपनी माता के भक्षित तृ  
ण और उदक करके उत्पन्न होने से तिन दोनो कर प्रोक्षणा युक्त हैं। तदा  
हति तिरिः अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः प्रोक्षामीत्याहाद्भ्योऽसौषधौषधीभ्यः  
संभवति यत्पशुरिति। किंच हे पशो ऐसे प्रोक्षित तुम को माता पृथिवी

आज्ञा दीजियो तथा पिता आकाश आज्ञा दीजियो सोदरभ्राता आज्ञा दीजियो समान यूथीसखा आज्ञा दीजियो ॥४॥

अपा म्येरुः ॥ अपा म्येरु रस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वानं चित्सहै  
बहुविः ॥ सन्ते प्राणो वा तेन गच्छतां समङ्गानि यजत्रैः  
संयज्ञपतिरुशिषा ॥१०॥ + /

अपा म्येरु या - गा यशु दे० का० ६३३२ यशु के मुख के नीचे पीने  
के अर्थ प्रोक्षणी को था भे ॥ अर्थः ॥ हे पशो तू पानियों का पीने वाला हेति  
सहेतु इसको पी ॥ आपो देवी रित्या सुरी गा आपो दे० का० ६३३३ य  
शु के उदर हृदय का प्रोक्षण करे ॥ हे पशो जल रूप देवी तू मे भक्षण क  
रो ॥ अथवा आपो देवी यशु का भक्षण करो ॥ क्या गुण सो कहते हैं कि जै  
से देवताओं का यशु लक्षण हवि आस्वादित होने से शोभन देवयो  
ग्य होवे इति शेषः ॥ अद्भ्यस्त्वेत्यादि तीन मंत्रों करि ऊपर मुख नीचे में  
यशु के प्रोक्षण करने से सब को मेध्य करे यह तितिरिने प्रति पादन किया  
तदाह उपरिष्ठात्प्रोक्षत्युपरिष्ठादैवेन मेध्यं करोति पाययत्यन्तरत ए  
वैनं मेध्यं करोत्यधस्तादुपोक्षति सर्वमेवैनं मेध्यं करोतीति ॥ संतेयजुः  
यशु दे० का० ६४२ उत्तराघार होम के अनन्तर ध्रुवासमञ्जन से पहि  
ले यशु के ललाट स्कन्धों और दक्षिणेत्तर कटियों का जुहूस्थ आज्य करि  
तीनों प्रति मंत्र से अंजन करे ॥ ललाटाञ्जनमंत्रः ॥ हे पशो तेरे प्राण वाद्य  
वात में पहुँचौ ॥ अथांसयोर्मंत्रावृत्तिः ॥ अंसादिक अंग याग में पहुँचौ ॥ अ  
थ श्रोण्योः ॥ यज्ञपति (यजमान) आशिषा यज्ञफल में पहुँचौ ॥१०  
घृतेनाक्तौ पशुं त्रायेथा धरेव तियजमाने प्रियन्धाः आवि

श ॥ उरो रन्तरिक्षात्सजूर्हेवेन वातेना स्पृहविषस्मना यज  
समस्य तन्वा भव ॥ वर्षो वर्षी यसि यज्ञे यज्ञ पतिन्याः स्वाहा दे  
वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः २

घृतेनाक्तौ या - अ० स्वरुशाशदेवतम् का० ६.४.१२ विशसिवादि यैः  
एशास(कटारी) को गृहण करि आपही यूपसे स्वरुले तिन कटारी और स्वरु  
रुको जुह्वाके अग्रमें घृतसे चुपगिति न कटारी और स्वरु करि पशुके ललाट  
का स्पर्श करे इति ॥ हे स्वरुशास तुम घी करि सींचेहुए इस पशुका पालन  
करे ॥ रेवतीति ब्राह्मी उष्णिग्वाग्देवतम् का० ६.५.११ यजमान प्रतिपदे  
हे रेवति (धनवति) वाग्देवते † यजमान विषे इस अभिषेक को स्थापन करि  
ज्ञान प्रदान करि यजमान में प्रवेश करि किंच हे रेवति वात देवता करि समा  
न प्रीति हो कर विस्तीर्ण अन्तरिक्ष से यजमान को रक्षा करि इति शेषः किंच  
इस पशु लक्षण हविसे अपने को पूजि किंच इस पशुके शरीर करि एक हो  
हे रेवति यजमान रूप और पशु रूप करि एक हो और अपने को पूजि इति  
तात्पर्यार्थः ॥ वर्षो वर्षी यसि आसु-अ० तृणदे० का० ६.५.१५ शामित्र के  
पीछे हस्तस्थ दो तृणों के बीच एक को पटके विशमनीय (हिंसनीय) पशुके  
भूमि स्पर्श के परिहार के अर्थ इति सूत्रार्थः ॥ हे वर्षा से उत्पन्न हुए हे तृण  
अथवा विस्तीर्ण बहुत विस्तीर्ण यज्ञ में यज्ञ पति (यजमान) को स्थापन  
करि ॥ स्वाहा देवेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा हे दे-पं० का० ६.५.२२.२४ होम  
करे ॥ अर्थः ॥ दोनो मंत्रों का अर्थ एक है परन्तु पाठ भेद का तात्पर्येति  
तिरीने कहा है ॥ पुरस्तात्स्वाहा कृतयोऽन्ये देवा उपरिष्ठात्स्वाहा कृतयो  
ऽन्ये स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति ॥ ११ ॥ इति भा० द्वितीयोऽनुवाकः २

† वाग्देवतेवतीति प्रातः ३.०.१.२२

अ० ३ महिः ॥ माहिर्भूर्मापृदाकुर्नमस्तः आतानानुर्वीप्रेहि ॥ घृत  
स्य कुल्याऽउपऽऋतस्य पथ्याऽअनु ॥ १२ ॥ †

माहिर्दे-ज० रज्जुदे० का० ६० ५० २६० वपाश्र पणीभ्यां० वपाश्रपणके  
देनों काष्ठों में करिकें नियोजनी (पशुबंधनरज्जु) को दुहरी चात्वालमें  
रखें ॥ अर्थः ॥ हे रज्जु तू सर्पाकार मत हो और अजगराकार मत हो ॥  
नमस्ते प्रा०-पं० यज्ञदे० का० ६० ६० २० पान्नेजन हस्ता अर्थात् पैर घौनेके  
अर्थ० पादग्रहणसे और भी सुखाद्यवयव जानना तिनहों के शोधन के  
अर्थ० जल कलश हाथमें जिसके वोह पान्नेजन हस्ता तिस पत्नी को  
गाह पत्य के समीप से लाकर इस मंत्र को प्रतिप्रस्थाता तिस पत्नी प्रति  
पठे ॥ अर्थः ॥ सब ओड़ी से विस्तार करते हैं वोह यज्ञ शत० ३० ८० २० २० ॥  
हे आताना यज्ञ तुरूको नमस्कार तू शत्रु रहित होके समाप्त पर्यंत प्रकर्ष  
करिआ किंच यज्ञ के मार्गमें घी की नदी को देखि कर आसान्नायि (प्रष  
दाज्य कुलोपलक्षण) के अर्थ में घृत कुल्या लेना । कारण यह कि इस  
यज्ञ में बहुत घी का होम है ॥ १२ ॥

देवीरायः शुद्धाबोद्धुं सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टाव्ययम्  
रिवेष्टारोभूयास्म ॥ १३ ॥

ऐसे यज्ञ की स्तुति करि जल की स्तुति करते हैं । यजुः अर्धमच्छे वत्य मर्ध  
माशीर्देवतम् ॥ आपो देवी तुम इस पशु को देवताओं प्रति प्राप्त करे  
के सीहो तुम कि स्वभाव करि शुद्ध तथा पान्नेजनीपात्र में सब ओड़ी से  
निविष्ट । किंच हम भी देवताओं के बीच अवस्थित तिन देवताओं से तर्पित  
हों तिनही देवताओं के परिवेषण करिने वाले हों ॥ १३ ॥



और जो छेदादिक करने को शमित्रा उपस्थित है सो सब तेरे पूरित हों। किं  
च सो सब संहत अर्थात् संघात में अनुन्न हों सो सब तेरा शुद्ध हो ॥ शम  
होभ्यः दे-व-लिंगोक्तं का० ६. ६. ७. पशुके जंघाओं पर पान्ने जनकेश  
षजल को सींचे ॥ अर्थः ॥ दिवसादिकाल विशेषों में सुख हमको वा प  
शु को हो ॥ ओषधेया-गा-तृणदे-का० ६. ६. ८. अध्वर्यु पशुको ऊंचा  
करि नाभिके आगे चारि अंगुल त्यागिके प्रागग्र तृण रखे इति सूत्रा  
र्थः ॥ मंत्रो व्याख्याता अध्या. ४. १० ॥ स्वधिते दे-ज-असिदे-का० ६. ६.  
४. किये हुए चिन्ह घीसे चुपरी हुई असिकी धारा, तृण के ऊपर असि  
की धारा को रखकर चुपकै से तृण सहित उदर की त्वचा को छेदे ॥ अ  
र्थः ॥ इस पशु को हे असि मतिहिं से ॥ १५ ॥

रक्षसाम्भागः ॥ रक्षसाम्भागोऽसिनि रस्तं रक्षः इदमह  
र्षं रक्षोभितिष्ठा मीदमहर्षं रक्षोववाधः इदमहर्षं रक्षो धम  
न्तमोनयामि ॥ घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णवायां द्यायो वै स्तो  
कानां मग्निरज्यस्यैवेतु स्वाहा स्वाहा कृतेऽ ऊर्ध्वं नभसम्मा  
रुतङ्गं छतम् ॥ १६ ॥ †

रक्षसां या-गा-लिंगोक्तम् का० ६. ६. ४. जो तृण नाभिके अग्र में स्थाप  
न किया तिस छिन्न तृण के अग्र को वामहस्त में रखकर दक्षिणहस्त में मू  
ल को रखति से दुहरा कर अग्र और मूल को पशु छेदन से निक ले रक्त  
से लेपे ॥ अर्थः ॥ हे लोहिताक्त तृण तू राक्षसों का भाग है ॥ निरस्तम् दे-पं०  
द्वे रक्षोघ्नम् का० ६. ६. १०. लोहिताक्त तृण को उत्कर में फैके ॥ जो यज्ञवि  
घातक राक्षस है तिसै त्याग किया ॥ इदमहम् यजुः का० ६. ६. ११. उत्क

† र-सि। अ-नि-क्षः। इ-मि। उ-घृ-मू। कृ-वा-मू। त-म-हा। आ-स्वा-मू। ई-१६



रमें फेंके रुधिराक्त तृण को यजमान पैर से दाव करि खड़ा हो ॥ जो तृण  
 रूप राक्षस का अध्वर्यु ने त्याग किया तिस इस राक्षस को में यजमान पै  
 र से दाव खड़ा होता हूं । कुछ खड़ा ही नहीं होता किंतु में इस राक्षस का अ  
 वाचीन जैसे होते से नाश करता हूं किंच में इस राक्षस को नरक में पहुंच  
 जाता हूं ॥ घृतेन या-ज० द्यावा पृथिवी दे० का० ६६१२ पशु के उदर से  
 वपा को निकाल तिस वपा से वपाश्रयणीयों को आच्छादन करे ॥ वपा  
 श्रयणीयों को द्यावा पृथिवी की उपमा दे कहते हैं । हे द्यावा पृथिवी तु  
 म घृत (उदक) करि आत्मा को आच्छादन करे ॥ यह आहुति परिणाम  
 का अभिप्राय है ॥ तथा चोक्तम् ते वाऽ एतेऽ आहुती हुतेऽ उत्क्रामत इ  
 त्युप क्रम्या हुति परिणाममिदं जगदिति ॥ वायो या-गा० वायुर्दे० का०  
 ६६१५ वाम हस्त में रखे तृणग्र को आहवनीय में डाले ॥ हे वायो नृ  
 स्तोको (वपा संबंधियों) को जान कर पीदित्यर्थः ॥ ते यहां हैं रे हैं अग्नि  
 राज्यस्य या-वृ० आग्नेयम् का० ६६१७ सुवा करि वपा का होम करे ॥ आ  
 हवनीयाग्नि आज्य का पान करे स्वाहा सुह तमस्तु ॥ स्वाहा कृते आसु-  
 गा० वपाश्रयण्यो दे० का० ६६२० वपा को होम कर उत्तर में बैठि वपा  
 श्रयणीयों को आहवनीय में डाले तिसका प्रकार यह है कि विशारवा  
 (द्विशृंगा) को प्रागग्र डाले औ एक शृंगा को प्रत्यग्र इति ॥ स्वाहा कार  
 से आहुति भाव के उपगत हो कर तुम वायु को प्राप्नो ओ । कैसी हो  
 कि नम (आकाश) के विषे वर्त्तमान हो ॥ १६ ॥

इदमापः ॥ इदमापः प्रवहता व द्यच्च मज्जयत् ॥ यच्चा  
 मिदुद्रोहान्नुत यच्च शोयेऽ अभी रुणम् ॥ आपो मातस्मादे

नसुः पवमानश्च सुचतु ॥ १७ ॥

अब देवता व्यवसाना महा पङ्क्तिः पवमानश्चान्त्यः पादः का० ६.  
६.२४. सब ऋत्विज यजमान चात्वाल के समीप में जल से आत्मा  
(अपने) को मार्जन करे ॥ हे आपः, जल इस पशु संज्ञापन निमित्त  
पाप को बहाओ किंच जो कुछ अन कहने योग्य, अभिशापादि  
और जो मल, शरीर का मैल तिससे दूर करे ॥ किंच जो हमने अनृत  
कहा द्रोह किया और अनपराधी प्रति जो हमने शाप दिया आ  
पः, जल तिस पाप से हम को पृथक् कीजिये और पवमान अ  
र्थात् सोम वा वायु तिस पाप से मुझे छुड़ाओ ॥ १७ ॥

अ० ४ संते ॥ सन्ते मनो मनसा सम्प्राणः प्राणेन गच्छताम् ॥ रेड  
स्यग्निष्ठा श्रीणात्वा पस्त्वा समं रिणन्वा तस्य त्वाद्वाज्यं  
पूषणो रथं ह्याः ॥ ऊष्मणो व्ययिषत्पयुतन्देवः ॥ १८ ॥

संते प्राजापत्या नुष्टुपः हृदय देवम् का० ६. ८. ६. जुहूस्थ पृष  
दाज्य करि पहिले हृदय को अभिधारन करि चुप के से सब पशु  
को अभिधारन करे ॥ हे हृदय पृषदाज्य करि अभिधारन से तेरे  
पशु का मन देवताओं की मनसा के संगत है । और तेरे प्राण अ  
भिधारण किये से देवताओं के प्राण करि संग तहें । रेड सीति  
आर्षी - पं. वसा दे० का० ६. ८. १२. मांस पाक करने के भांड में  
स्थित स्नेहात्मक द्रव्य विशेष (वस) को ग्रहण करे ॥ हे वसे तू अ  
ल्प है । अग्नि तुझे पाक करि भूयसि करे अथवा आहवनी अग्नि  
तुझे स्वीकार करे किंच जल तुझे पोषे अथवा जल तुरु को अच्छे

प्रकार प्राप्त हो अर्थात् तेरा शोष मत हो। जल ही पच्यमान पशु के अंगों से जो रस उत्पादन करता है उसे वसा कहते हैं तिस तुम्हें गृहण कर्ता हूँ इति शेषः। किस लिये कि वात की अन्तरिक्ष में गति हो यह तथा आदित्य की ध्रुव लोक में गति हो यह अर्थात् वायु आदित्य के अप्रतिहत गमन की सिद्धि के अर्थ तुम्हें गृहण कर्ता हूँ। किंच ऊष्माणो अन्तरिक्ष को वसा व्यथा करे अथवा ऊष्मा व्यथा को प्राप्त हो अर्थात् वसा को पीके विषण के बढ़ाने से जैसा रहे तैसा वसारूप हवि हो। अन्तरिक्षस्य हविरसि १४० होम के मंत्र में। अर्थात् यह वसा अन्तरिक्ष की तृप्ति करिके अतिरिक्त हो और अन्तरिक्ष की तृप्ति होने से वायु और सूर्य की अपने कर्म में कुशलता होती है तिस हेतु वातस्य तन्धा न्या इत्यादि कहते हैं॥ प्रयुतं द्वेषः दे०-पं० लिंगोक्त दे० का० ६० ८० १२० असि वा कटारी करिके वसा और घी को दो बार मिलावें। वसा से घी मिलाने के कारण द्वेष दोर्भाग्य प्रयक हुआ॥ १८॥

घृतद्वृतपावानः॥ पिवतु वसां वसा पावनः पिवता न्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा॥ दिशः प्रदिशः अपदिशो विदिशः उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा॥ १४१॥

घृतमित्यापी-पं० वैश्वदेवम् का० ६० ८० १२० वसा होम हवनी करि वसा का एक देश होमे॥ अर्थः॥ वसा को दो विरियां अभिघारण करने से घृत कहते हैं॥ हे घृत के पान करने वाले तुम घृत को पीओ। हे वसा के पीने वाले तुम वसा को पीओ। ऐसे देवताओं से क

† घृ-हा० अ० दि-शः॥ इ० प्र-शः॥ उ० आ-शः॥ ऋ० वि-शः॥ ल० उ-शः॥ आ० दि-

२५१

हिके वसा प्रति कहता है हे वसे तू अंतरिक्ष का हवि है स्वाहा सुहुतमस्तु  
 का ०६.८.२१. जैसे शेष वाजिन फटे दूध के पानी से दिशाओं का व्या-  
 धारण कहा तैसे ही यहां करे तद्यथा का ०४.४.१६. १७. दिशाओं  
 को व्याधारण करे दिशा इति प्रति मंत्र करि चारों को पहिले प्रदक्षि-  
 णा करि उद्दिशः दिग्भ्यः से क्रम पूर्वक अग्नि के बीच और पूर्व भाग  
 में व्याधारण करे षट् दिग् देवतानि १६. दै. ३. २. ३. ४. ५. दै. - अ. का ०  
 ४.४.१८. स्वाहाकार का सर्वत्र योजन करे ॥ अर्थः ॥ दिग्भ्यः स्वाहा १ प्रदिग्भ्यः  
 स्वाहा २ आदिग्भ्यः स्वाहा ३ विदिग्भ्यः स्वाहा ४ उद्दिग्भ्यः स्वाहा ५ स-  
 र्वोभ्यः दिग्भ्यः सुहुतुमस्तु अर्थात् उक्त दिशाओं को सुहुत हो ॥ १६

ऐन्द्रः प्राणः ॥ ऐन्द्रः प्राणोऽपङ्गः अङ्गे निधीयतेन्द्रः  
 उदानोऽपङ्गः अङ्गे निधीतः ॥ देवत्वष्ट्रभूरिति संहं स  
 मेतु सलक्ष्माय दिषु रूपं भवति ॥ देवत्रायन्तमवसे  
 सखा यो नु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २० ॥ +

ऐन्द्रः प्राणः पञ्चङ्गः प्राणदानमूलिङ्गोक्तम् यजुः का ०६.८.१.  
 पशु रूप हवि का स्पर्श करे ॥ अर्थः ॥ इन्द्र आत्मा के संबंधी प्राण  
 प्राण वायु इस पशु के सब अंगों में निधीयत् धारण करे तथा  
 इन्द्र संबंधी उदान वायु पशु के समस्त अंगों में निधीत उदाला ऐसे  
 इस यजु करि पशु के अंगों में प्राण दे के त्वष्ट्रा से कहता है ॥ देवत्वष्ट्र-  
 रितित्वाष्ट्री - त्रि ॥ हे त्वष्ट्र नामा देव जो पशु के अंगों का समान ल-  
 क्षण छेदने से नामा रूप हुवा वोह सब तेरे अनुग्रह से अत्यन्त करि  
 अच्छे प्रकार एक हो ॥ फिर पशु को कहता है हे पशु ऐसे प्राणों

और अंगो के इस मंत्र करि हटकिये देवताओं प्रति जाते हुए तुरको  
मित्र भूत इतर पशु और माता पिता अनुमदन्तु अम्यनु जानन्तु  
जाने। अथवा अवसे तुरकरिके अपने सब कुल को स्वर्ग पहुंचा  
जाने ॥ २० ॥

अ० ५ समुद्रं द्रुक्षु ॥ समुद्रं द्रुक्षु स्वाहान्तरिक्षं द्रुक्षु स्वाहा देवर्षे  
सवितारं द्रुक्षु स्वाहामित्रावरुणो गच्छ स्वाहा हो रात्रे गच्छ  
स्वाहा छन्दां द्रुक्षु स्वाहा द्यावा पृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञ  
द्रुक्षु स्वाहा सोमं द्रुक्षु स्वाहा दिव्यन्नभोगच्छ स्वाहाग्नि  
वैश्वानरं द्रुक्षु स्वाहा मनो मेहार्हि यच्छ दिवन्ते धूमोगच्छ  
तु स्वर्ज्योतिः पृथिवीम्भस्मना पूर्ण स्वाहा ॥ २१ ॥ +

का० ६० ४० १० होम किये हुए अनुयाजों से पूर्व स्थापित गुदा के ती  
सरे भाग को प्रति प्रस्थाता इग्यारह खंड काटि प्रति मंत्र करि हो में  
समुद्रं लिङ्गोक्तानि द्वादश १० ६० १२० या-उ० २० प्रा०-गा० ३० ११० या-  
पं० ४० ७० या-वृ० ५० १० या-अनु० ८० ४० या-गा० ॥ अर्थः ॥ हे हवि  
गुदा के अवयव रूप तू समुद्रादि नामा देवताओं प्रति प्राप्त हो तू  
मित्रिके अर्थ इति शेषः ॥ स्वाहा सुहुतमस्तु ॥ का० ६० ४० ११० प्रति वषट्  
कार करि एक एक गुदा के कांड को होम के सब के अंत में १२वें से मुख  
को स्पर्श करें ॥ अर्थः ॥ हे समुद्रादि देवता समूह हृदय संबंध मे  
रे मन को यच्छ अर्थात् निवद्ध करें निवद्ध मन अपने स्थान से न  
टरे। दिवन्ते आर्षी-उ० स्वरुदैवतं का० ६० ४० १२० अनुयाज के  
अन्त में स्वरु को होमें ॥ अर्थः ॥ हे स्वरु तेरा धूँ आँ वृष्टिके अर्थ

+ स-हा। अ० अ-हा। इ० दे-हा। उ० मि-हा। ऋ० अ-हा। लृ० छ-हा। अ० पा० या-हा। ई० य-  
हा। ऊ० सो-हा। ऋ० दि-हा। लृ० अ-हा। क० य-छ। व० दि-हा। ट० २१ ॥

द्यु लोक को जावें। तेरी ज्वाला आदित्य वा अन्तरिक्ष को जावे।  
 भस्म करि पृथिवी को सब ओड़ी से पूरि। स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ २१ ॥  
 मापः ॥ मापो मौषधीर्हिर्हं सीर्यो मन्त्रो धाम्नो राजंस्त तो  
 वरुण नो मुञ्च ॥ यदा ह्रुर्ध्या इति वरुणेति शपामहे त  
 तो वरुण नो मुञ्च ॥ सुमित्रियानः आपः ओषधयः सन्तु  
 दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो स्मान्देष्टिय च वयन्दिष्मः ॥ २२ ॥  
 मापो दे - ज. हृदय शूल देवत का ० ६. १०. ३. जल में प्रवेश करि  
 आलव्य किये हुए पशु का हृदयस्थ मांस जिसमें पाक किया वोह  
 हृदय शूल तिस हृदय शूल को, सुगसि. मापः. दोनों मंत्रों करि  
 शुष्क आर्द्र भू प्रदेश की सन्धि में अधोमुख डाले ॥ अर्थः ॥ हे हृद  
 य शूल तू जल और ओषधी को मत हिंस ॥ धाम्नो धाम्न साम्नी उ  
 ष्णि० वरुण दे०. यदा ह्रुर्ध्या रुणी गायत्र्य नवसाना. सुमित्रियानः  
 यजुः आपो दे०. का ० ६. १०. ५. समस्त ऋत्विग्य जमान धाम्न. सु  
 मित्रियान. दोनों मंत्रों से जल का स्पर्श करें ॥ अर्थः ॥ हे राजन् व  
 र्ण जिन-जिन तेरी पाश सहित स्थानो से हम डरे तिन-तिन स्था  
 नों से हम को छुड़ाये। अघ्या गौ से कहिते हैं निघं २. ११. परन्तु यहां  
 अनू वन्ध्या लेना बहु वचन बहुतों के अर्थ में और एक अनू वन्ध्या  
 के पक्ष में पूजा के अर्थ है ॥ अघ्या इति यदा ह्रुः. वेद स्मृति लोकों के  
 वाक्य अघ्या (अहंतव्या अर्यान् अवध्या पूजनीया पूजा के योग्य  
 यह कहिते हैं। इस करने से वाक्य का अर्थ अभिनय करि दीखता  
 है ॥ हे वरुण हमने इति शपामहे इस विधि करि अघ्या को हिंसा किया



अर्थ इस हेतु तुम याच्ना करते हैं कि हे वरुण तिस अघ्यावधजात पाप से हमको छुड़ाय ॥ सुमित्रियाः ॥ जल और ओषधी हमारे अर्थसुमित्रियाः साधु मित्रत्व करि अवस्थित हूजियों। जो शत्रु हमसे द्वेष करें और जिस शत्रु से हम द्वेष करें तिन दोनों प्रकार के शत्रुओं के अर्थ आप और ओषधी दुर्मित्रियाः अमित्रत्व करि अवस्थित हूजियों ॥ का० ६० १०० ६० अथवा धाम्नो धाम्न यह मंत्र शूलोप गूहन मंत्र का शेष और सुमित्रिया यह मंत्र जल के अभिमन्त्रण के अर्थ ॥ पूर्वोक्त सूत्र के साथ इस काविकल्प है और का० ६० १०० ५ का कर्म काण्व शारवा वालों का और यह माध्यन्दिनी शारवा वालों का ॥ २२ ॥ इति भाष्ये तृतीयो नुवाकः ॥ एवमग्नीषोमीयः पशुः समाप्तः ॥

अथ सोमाभिषव युक्तानां वसती वरी संज्ञानाम पां गृहणमभिधीयते अ० ६ हविष्मती रिमाः ॥ हविष्मती रिमा आपो हविष्मा रं ॥ आवि वासति ॥ हविष्मा देवो अर्ध्वरो हविष्मा रं ॥ अस्तु सूर्यः ॥ २३ का० ८० ४० ७-१०० अग्नीषोमीय पशु के वषामार्जन पर्यन्त कर्म किये पीछे विना अस्त हूए सूर्य के वहते हुए जल के एक देश से वसती वरी संज्ञिक सोम के अर्थ हविष्मतीः इस मंत्र करि जल ग्रहण करे। जो रवि अस्त को प्राप्त हुआ और यजमान पुराना सोम याजी तो घर में ही खो दे हुए मणि का (तडाग) से वसती वरी को ग्रहण करे। और जो यजमान पहिला सोम याजी नहीं तो समीप में स्थित अन्य सोम याजी के मणि का से ग्रहण करे। अपने और अन्य के यज्ञ कर्त्तृत्व के अभाव में उल्का वा कनक को वहती हुई जल के समीप रख वहती हुई से वसती वरी का ग्र

+ अथानिमिषः ॥ अथानिमिषः ॥ अथानिमिषः ॥ अथानिमिषः ॥

† यान० ३.६.२.९. यज्ञवेद्यस्य शिरोऽविद्यतेति ॥

हण करै ॥ अनुष्टुप्त्रिङ्गोक्तदेव० ॥ अर्थः ॥ हविकरि संयुक्तयजमान हवि  
संयुक्ता इस जल की वसती वरी की परिचर्या करता है - जब कियत्तका  
शिर छेद हुआ तिसका रस चलकर जल में प्रवेश करता हुआ + इस हेतु  
जल को हविष्मत्त्व है - तिस कारण द्योतमान अध्वर (याग) भी अपने  
शरीर की निष्पत्तिके अर्थ जल करिके हविष्मान् हो ॥ किंच सूर्य देव  
भी यजमान के फलदान और तृप्तिके अर्थ हविष्मान् होवै । एतस्मै वै गृ-  
ह्णातियः षतपतीति शत० ३.६.२.१२. इस श्रुति से वसती वरी क  
रि सूर्य का हविष्मत्त्व है ॥ २३ ॥

अग्नेर्वैः ॥ अग्नेर्वोपन्न गृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्यो  
र्भागधेयी स्थमित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवा  
नाम्भागधेयी स्थ ॥ अमूर्याः उपसूर्येयाभिर्वासूर्यैः सह ॥  
तानो हि न्वन्त्वध्वरम् ॥ २४ ॥ †

चत्वारि यजूंष्यन्देवत्यानि अग्नेर्वैः आसु-गा० का० ७.६.११. नृ-  
तन गार्हपत्य से पश्चिम भाग में तिस वसती वरी का आसादन करै ॥  
अर्थः ॥ हे वसती वरी तुम को शाला द्वारीय अग्नि के निकट स्थान में  
स्थापन करता हूँ ॥ १॥ इन्द्राग्न्योः प्रा-गा० का० ७.६.१७. शाला द्वार्य समी-  
पस्था वसती वरी को ले शाला के दक्षिण द्वार में होकर उत्तर वेदी के दक्षि-  
ण ओणी पर रखै ॥ हे वसती वरी तुम इंद्राग्नी देवताओं का भाग रूपा हो  
॥ २॥ मित्रा० ६.३.४. या-त्रि० का० ७.६.२१. २२. पूर्ववत् इन्द्राग्न्यो इस  
मन्त्र अथवा मित्रावरुणयो इस मंत्र से उत्तर वेदी के उत्तर ओणी पर व-  
सती वरी को रखै ॥ हे वसती वरी संज्ञका जल तुम मित्रा वरुण देवताओं

का भाग रूपा हो ॥ ३ ॥ का० ८. ४. २३. विश्वेषां देवेनां ४ करि उत्तर वेदी की ओणी में से वसती वरी को लेकर आग्नीधीय के पीछे रखे ॥ हे वसती वरी तुम सब देवताओं की भाग रूपा हो ॥ ४ ॥ यह अभिनय से दिखला कर कहता है । अमूर्याः ऋक् मेधा तिथि दृष्ट्वा अदेवत्या पाद नृच द्वायत्री । जो प्रसिद्ध दृश्यमान वसती वरी नामा जल सूर्य के समीप में स्थित है । विभक्ति व्यक्तयः वा शब्दः समुच्चये । और जिस जल सहित सूर्य चलता है सो जल हमारे यज्ञ को तृप्त करो ॥ २४ ॥ इति भाष्ये षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥ अ० ७ हृदेत्वा ॥ हृदेत्वा मनः सेत्वा दिवेत्वा सूर्यायत्वा ॥ ऊर्ध्वमिममध्वरन्दि विदेवेषु होत्राय छ ॥ २५ ॥

सोम देवत्यानुष्ठुप् का० ४. १. ५. आज्य सादन पर्यन्त कर्म करि के सोम ले हविर्धान में जाकर सोम को खोलि तिसके आधि को दक्षिण शकट के नीचे के चर्म के ऊपर अभिषवण के अर्थ पाषाणों के स्थूल भाग में रखे ॥ हे सोम हृदे बुद्धे निश्चयात्मिका अर्थात् यह मेरा हों ऐसी कामरूपा के अर्थ तुम्हें उपावहरामि अभिषवण करता हूँ । सूक्ष्मत्वविकल्पात्मक मन के अर्थ तुम्हें उपावहरण करता हूँ । द्युलोक की प्राप्ति के अर्थ तुम्हें उ-हूँ । सूर्य को आगे दे देवताओं की तृप्ति के अर्थ तुम्हें उ-हूँ ॥ अथवा यह अर्थ ॥ हे सोम हृदय वद्भ्यः मनुष्यों के अर्थ । मनस्विभ्यः पितरों के अर्थ । द्युलोक वासी देवताओं और विशेष करि सूर्य के अर्थ त्वा मुपावहरामीति शेषः यह तिति रिमें कहा ॥ सवाः अध्वर्युः सोम मुपावहरन्त्सर्वाभ्यो देवताभ्य उपावहरे दिति हृदेत्वेत्याह मनुष्येभ्य एवेतेन करोति मनसेत्वेत्याह पितृभ्य एवेतेन करोति दिवेत्वा सूर्याय

त्वेत्याह देवेभ्य एवेतेन करोत्येतावतीर्वै देवता स्ताभ्य एवेन ईसर्वाभ्य  
उपा बहरतीति॥ किंच ऐसे उपा बहरण और अभिषवण किया तू इस  
मेरे यज्ञ को उत्कृष्ट द्युलोक में वर्तमान देवताओं प्रति होत्राः वष  
ट्कारवादी सातों होताओं प्रति निबद्ध करि ॥ २५ ॥

सोमं राजन् ॥ सोमं राजन् विष्वास्त्वाम्प्रजाऽउपावरोह वि  
ष्वास्त्वाम्प्रजाऽउपावरोहन्तु ॥ शृणोत्वग्निः समिधा हव  
म्मे शृण्वन्त्वापोधिषणाश्च देवीः ॥ श्रोता ग्रावाणो विदु  
षो न यज्ञं शृणोतु देवः सविता हवम्मे स्वाहा ॥ २६ ॥ †

सोम राजन् सा-उ० सोमदे० किंच । हे सोम राजन् समस्त प्रजा के  
आधिपत्य को करि ॥ विश्वास्त्वायः- त्रि० का० ४० १६० ग्रावाणों के  
ऊपर स्थापित सोम को छोड़ि उपस्थान करै ॥ हे सोम समस्त प्रजा तुम  
प्रत्युत्थान (अभिवादन) आदि करि प्राप्त हो ॥ शृणोत्वग्निः त्रिष्टुभ  
लिंगो दे० का० ४० २० २४० ३० १० अभूत् इस मंत्र से होत्रा करि शस्यमा  
न अध्वर्यु प्रचरणी संज्ञक सुवासै चारिवार आज्यकोले अति प्र  
णीता में होम करै ॥ अग्निः समित् पूर्वक आहुति कर मेरे आह्वान को  
सुनो जल मेरे आह्वान को सुनियों । और वाक् देवी मेरे आह्वान को  
सुनियों । तृतीय पाद को प्रत्यक्ष करि कहते हैं । हे ग्रावाणो अभिषव  
के अर्थ यहां उपस्थित तुम मेरे आह्वान को सुनो । जैसे विद्वान प्रत्य  
क्ष करि यज्ञ को सुनते हैं तैसे तुम सुनो तथा सविता देव मेरे आह्वा  
न को सुनो स्वाहा सुहुत मस्तु अथवा स्वा वाक् आह् वचन क  
हते हैं ॥ २६ ॥

देवी रापोः॥ देवी रापोऽपान्न पाद्यो वऽऽर्जुर्मिर्ह विष्मऽइन्द्रिया चान्मदिन्तमः॥ तद्देवेभ्यो देवत्रा दन्त शुक्रपेभ्यो येषां  
म्भागस्य स्वाहा॥ २७॥

अब देवत्या पंचपदा पंक्तिः का० ४० ३०० जिस चारि वार लिये आज्यको साथ लिया तिसै जल प्रति जाइ के होमें॥ अर्थ॥ हे आपो देवी तुम्हारा अपानपात् आपत्य रूप जो यह ऊर्मि अर्थात् अप्सद्वात कल्लोल है तिस देवताओं प्रति जाने योग्य ऊर्मि को देवताओं के अर्थ देओ कि जिन देवताओं का भाग रूप हो। कैसे हैं ऊर्मि किं हविष्य तथा इन्द्रियवान अर्थात् पीते ही इन्द्रियों के वीर्य की वृद्धि करने वाला तथा मदिन्तमः पीने वाले को अत्यन्त हर्ष करने वाला अतिशय तृप्त करने वाला। कैसे देवताओं के अर्थ कि शुक्रपेभ्यः अर्थात् शुक्रादिक सोमग्रहों के पीने वाले अथवा शुक्र (दीप्ति) सोम के पीने वाले। स्वाहा यह आज्य तुम को हुत हो॥ गृहीष्य माण जल के मूल्यत्व करि यह आहुति तित्तिरिने कही॥ देवी रापोऽपान्न पादित्या हा हुत्या वै निष्क्रीय गृह्णातीति॥ २७॥

कार्षिरसि॥ समुद्रस्य त्वाक्षित्याऽऽन्नं यामि॥ समापोऽऽग्नि रग्मत समोषधी भिरोषधीः॥ २८॥

कार्षिरसित्यादि तीनि मंत्रों को मिला करि अनुष्टुभ छन्द पहिले का आज्य दे० का० ४० ३०० जल में होमे आज्य को कार्षिरसि इस मंत्र करि मैत्रावरुण चमस से दूर करै॥ हे आज्य पदार्थ तू कार्षिः आकृष्ट अर्थात् देवता करि भक्षित है अथवा अन्तर्गत शमलापका नेता है। तदाह तित्तिरिः। कार्षिरसीत्याह शमल में वासामपलावय

तीति ॥ का० ४०. ३. ४०. समद्रस्यत्वा इस करि मैत्रावरुण चमसंसे  
तडागादिस्थ जल को ग्रहण करै । हे यजुषि आये । आपो वैसमुद्र  
शत० ३. ४०. ३. २७० ॥ वसती वरी लक्षण जल को अपक्षीणत्व के अ  
र्थ हे जल तुम को ग्रहण करता हूँ ॥ वसती वरी की वृद्ध के अर्थ इस  
जल को ग्रहण करते हैं ॥ का० ४०. ३. १२. समाप इस करि जलाशय से  
लोटे चात्वाल के ऊपर मैत्रावरुण चमसस्थ जल को वसती वरी में  
संयोजन करै ॥ मैत्रावरुण चमसस्थ जल अग्निः वसती वरी में मिला  
तथा मुद्गम सूर दिक ओषधी ब्रीहि यवादिक ओषधियों में संगृह्य  
ताम् मिलो । जल को कारण होने से ओषधियों को भी योग हो ॥ २८ ॥

यमग्ने ॥ पृत्सुमर्त्यमवावाजेषु यं जुनाः ॥ सयन्ता शश्वती  
रिषः स्वाहा ॥ २९ ॥

आग्नेयी गायत्री मधुच्छन्दो हृष्टा का० ४०. ३. १६. अग्निष्टोम संस्थक्रतू  
में प्रचरणी पात्र लिप्त आज्य शेष को होम करै शेष आज्य की हो  
म पर्याप्त के अभाव में चारिवार लिये आज्य को लेकर होम इति  
सूत्रार्थः हे अग्ने संग्राम में जिस मनुष्य को तू रक्षा करै किंच हवि  
र्लक्षण अन्न में अन्न के निमित्त जिस पुरुष को तू प्राप्त हो अर्थात्  
ग्रहण करिकें जिसके पास पहुँचै । सो मनुष्य तेरे अनुग्रह से नित्यनि  
त्य अन्न धन को प्राप्त होगा स्वाहा सुद्धतमस्तु ॥ उक्थमे स्थित यम  
ग्ने इस मंत्र से पहले परिधिका स्पर्श करै षोडशी में रगटी का अ  
तिरवि में छड़ी का स्पर्श करै अन्य कर्म विषे हविर्दीन में प्रवे  
श करै ॥ २९ ॥ इति गिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ॥ १० ॥



अ० ८ देवस्यत्वा ॥ सवितुः प्रसवेष्टिनो वाहुभ्याम्पूष्पोदस्ताभ्याम्  
आददे एवा सिगभीरमिममध्वरुधीन्द्राग्रसुषूतमम् ॥  
उत्तमेन पविनोर्जिस्वन्तम्मधुमन्तम्ययस्वन्तन्निग्राभ्या  
स्थदेवश्रुतस्तर्प्ययतमामनोमे ॥ ३० ॥

देवस्यत्वा प्रा०-ह० आददे० यंजुः ग्रावादे० का० २५०४०५०६ सोमके  
अभिषव के हेतु पाषाण को ग्रहण करि के हिंकार से पहिले मंत्र हो  
ने से तिस पाषाण की उपांशु सवन संज्ञा है उपांशु ग्रह के अर्थ जिन  
हों से सोमका सवन कर्ते हैं ॥ अर्थः ॥ देवस्यत्वा व्याख्याता अ० १ का०  
४ ॥ हे अभिषवसाधन पाषाण तू आहुति और दक्षिणा का दाता है  
तिस हेतु इस मेरे याग को महान्त करिः तुरु उक्त वज्र सदृश से मैं  
सोम से ऐसा करूँ कैसा कि इन्द्र के लिये अति शय करि अच्छा अ  
भिषुत तयार सवन्त मधुमन्त पयः स्वादु करि युक्त अर्थात् ऐसे  
सोम को तुरु से मैं करूँ निग्राभ्यो यजुः आपो दे० का० २५०४०९० अभिष  
वन कर्ते सोम के सेवनीय जल को निग्राभ्या कहते हैं तिस के गृह  
ण कर्ते अध्वर्यु पढ़े अथवा यजमान निग्राभ्या को अपने उर से आल  
म्भन करि मंत्र को पढ़े अर्थः ॥ हे जल तुम हम लोगों करि निरन्तर ग  
हण करने योग्य हो जिस हेतु इन्द्र के उरु करि तुम गृहण किये तिस  
हेतु निग्राभ्य हो देवश्रुतः देवताओं में प्रख्यात तिस हेतु बहुत मान  
और नाम युक्त तुम मुरु से प्रीति करो ॥ ३० ॥

मनो मे ॥ तर्प्ययत वाचं मे तर्प्ययत प्राणं मे तर्प्ययत चक्षुर्मे  
तर्प्ययत श्रोत्रं मे तर्प्ययतात्मानं मे तर्प्ययत प्रजाम् मे तर्प्य

यत पशून्मे तर्पयत गुणान्मे तर्पयत गुणा मे मा वितृषन् ॥ ३१ ॥  
 यजुः ऐसे समास से कहकर व्यास से कहते हैं मेरे मनः वाचं प्राणं च  
 स्तुः श्रोत्रं तर्पयत अर्थात् मेरी मन से आदिले इन्द्रियों से प्रीतिकरो।  
 ऐसे विस्तार पूर्वक कहिकर फिर संक्षेप से कहते हैं आत्मा (शरीर) प्रजा  
 (पुत्रादिसंपत्ति) पशु (गवादिक) और गुण (मनुष्यों) से प्रीति करो मेरे म  
 नुष्य समूह मा वितृषन् सुभ्रकरि हव्यदान से पूरित हुए भी विगत तृ  
 ष्णा मत हूँ जियों अर्थात् मैं अनुरक्त गुण होंऊँ यह यजमान आ  
 शीष चाहता है ॥ ३१ ॥

इन्द्रायत्वा ॥ इन्द्रायत्वा वसुमते रुद्रवत इन्द्रायत्वा दित्यवत  
 इन्द्रायत्वा भिमातिघ्ने ॥ श्येनायत्वा सोमभृते ग्नयेत्वा रा  
 यस्योषदे ॥ ३२ ॥ ते। अ० इ-ते। इ० इ-घ्ने। उ० श्ये-ते। ऋ० अ-दे। ल०।

पंचयजूंषि सौम्यानि १ सा-गा-२ ३ ४ प्रा-गा-५ या-चु-का-  
 ६ ७ ८ उपंशु सवन पूर्वोक्त पाषाण को अधियवण चर्म पेरखि  
 कर तिसके ऊपर पांच मंत्रों से पांच बार अभिषोत व्यसोम की पां  
 च मुष्टि डाले ॥ अर्थः ॥ तत्राद्यं हे सोम इन्द्र के अर्थ तुम्हें मानकर्ता हूँ  
 इति शेषः ॥ कैसे इन्द्र के अर्थ कि वसुमते वसुसंज्ञक प्रातः सवन  
 देवता युक्त के अर्थ रुद्रवते रुद्र नामक माध्यंदिन सवन देवता युक्त  
 के अर्थ अथ द्वितीय आदित्य नामक तृतीय सवन देवता युक्त इ  
 न्द्र के अर्थ हे सोम तुम्हें मानकर्ता हूँ अथ तृतीयं शत्रूँ के मारन  
 वाले इन्द्र के अर्थ हे सोम तुम्हें मानकर्ता हूँ अथ चतुर्थी सोम के  
 लाने वाली श्येन पक्षी रूपा गायत्री के अर्थ हे सोम तुम्हें मानकर्ता हूँ ॥

अथ पंचमं। धनके देने वाले अग्निके अर्थ हे सोम तुम्हें मान कर्ता हूं ॥३२॥  
यत्ते ॥ सोमदिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्या यदु एवन्तरिक्षे ॥ ते  
नास्मै यजमाना योरुरा ये हव्यधि दात्रे वीचः ॥३३॥

सोम देवत्या विपरीता ब्रह्मती का ० ४० ४० ४० पांचवार प्रक्षेपन किये सो  
म का स्पर्श करे ॥ इस मंत्र का निदान श्रुति में कहा शत ० ३० ४० १२  
जब कि सोम देवताओं का हविर्हूआ तब अपने तीनि शरीर इन लो  
को में धारण करता हुआ। तिन शरीरों की इस मंत्र से प्राप्त करते हैं ॥ अ  
र्थः ॥ हे सोम द्युलोक में तेरा जो तेज और जो पृथिवी में तेज अंतरिक्ष  
में जो तेज शरीर लक्षणतिस तेज से इस यजमान के यज्ञ में बड़ा अ  
पने शरीर को करि और ऋत्विजों के दक्षिणा की प्राप्ति के अर्थ बड़ा श  
रीर को करि किंच यजमान के अर्थ बड़े शरीर से मे आया यह कह अ  
थवा इस मंत्र का अर्थ दूसरा है। हे सोम तीन्यो लोकों में जो तेरी  
ज्योति है तिस ज्योति से इस यजमान के अर्थ धन की समृद्धि से  
स्थान को करि किंच फल के देने वाले इन्द्र के अर्थ यह कहि कि जो  
अधिक यह यजमान हो ॥३३॥

आत्रास्य ॥ बृत्र तुरे राधो गृतो अमृतस्य पत्नीः ॥ ता देवी  
है वने मं यज्ञ न्यतो पृहताः सोमस्य पिवत ॥३४॥

पत्न्या ब्रह्मती दो अक्षर ब्रह्मती का ० ४० ४० १२ सोम के ऊपर होत्र चम  
स करि के निग्राभ्या का आसिंचन करे ॥ हे जल तुम कैसी हो कैसी कि  
क्षिप्र कार्य करने वाली धन की देने वाली। अमृत सोम की पत्नी पालने  
वाली। हे देवी दीप्यमान तैसी तुम इस यज्ञ को देवताओं प्रति प्राप्त क

रौ आज्ञा पाके तुम सोम को पीओ ॥३४॥

मामेः ॥ माभे म्मा सं विव्याञ्जन्त्यस्वधिषणे वीड्रीसती  
वीडयेथा मूर्ज्जन्धायाम् ॥ पाप्मा हुतो न सोमः ॥३५॥

यजुः अर्द्धं सौम्य मर्द्धं द्यावा पृथिव्यं का० ४०४०१५० उपांशु सवन के  
पाषाण से सोम को पीसे ॥ हे सोम तुम मति डरे मति कापो जो कि देवता  
ओं की तृप्तिके अर्थ में तुम्हे अभिषवण कर्ता हूँ इस हेतु रस को स्थाप  
न करो ॥ ऐसे सोम को संवेधन देकर द्यावा पृथिवी से कहें । हे धिषणे हे द्या  
वा पृथिवी ओ हमारे पाषाण करि उद्यत होने से तुम हट होते अपने को  
हट करो । किंच इस सोम मे रस को स्थापन करेंगे । इस वज्र संस्तुत पाषाण  
से यजमान का पाप मार कुछ सोम न ही मार ॥३५॥

प्रागपाक् ॥ प्रागपा गुदं गधं राक्सर्वतस्त्वादिशः आधावन्तु ॥

अम्वनिष्य रसमुरीर्विदाम् ॥३६॥

सोम देवयोषिणक् का० ४०४०२० प्रतिग्रहार वर्ग में होत्र चमस के वीच  
सोम के अंशुओं को रविके प्रागपाक् इन निग्राभ संज्ञ क दो ऋचाओं  
को यजमान प्रतिपदै ॥ अर्थः ॥ सोम दिशाओं से मिथुन की दृच्छा क  
र्ता हुआ और तिसको देवताओं ने संपादन किया तब ये ऋचा कहीं ॥ हे  
सोम प्राक् प्रागञ्चना अपाक् अपागञ्चना अर्थात् दक्षिण और पश्चि  
म की उदक् उदगञ्चना उत्तर की अधरक् अधराञ्चना ऐसे प्रागादि  
क सब दिशारें अपने अपने प्रदेश से तुम्हें प्राप्त हों क्या कहिकें तुम्हें प्राप्त  
हों सो कहिते हैं हे अंब हे मात निष्यर अपने भाग से सोम को पूर्ण करि  
किस प्रयोजन को कि हमारे सोम समागम को अनेक दिशाओं के वासी

जनजाने ॥ ३६ ॥

त्वमङ्ग प्रशंसां सौमित्रो देवः शविष्ठमर्त्यम् ॥ न त्वदन्वयो मय व  
नस्ति मर्द्धितं नृबर्वा मितेव च ॥ ३७ ॥ इति संसप्त वाकः ॥  
इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनी शास्त्रीयायां वाजसनेयसं  
हितायां दीर्घपाठे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इन्द्र देवत्या पत्न्या रुहती गोतम दृष्टा ॥ हे अति शय करि बलवान् इन्द्र  
दीप्यमान तू मनुष्य यजमान की प्रशंसा करि अर्थात् यह यजमान  
समीचीन, होता-श्रद्धावान् इत्यादिक स्तुति करि किंच हे धनवान् इन्द्र  
यजमान का सुख करने वाला तू मुझे अन्य नहीं है इस हेतु हे इन्द्र तू ही  
सुख करि ऐसे तेरे वचन को हम कहते हैं ॥ ३७ ॥ गिरिप्रसाद सर्वस्य  
सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्द निवारयन्

पुमार्थंश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः १

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाध्येतव्याघ्रपादान्वयवि  
श्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जय किशोरदेववर्माजरीविमलेश्वर  
पति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये अस्या  
दानाद्वाचनान्तः षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वह्निरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपपरं स्तुमः १

अ० १ वाचस्पतये ॥ वाचस्पतये पवस्व बृषणोऽर्धं शुभ्याङ्गं  
भस्ति पूतः ॥ देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भ्रा गोसि ॥ १ ॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

उपांश्चादिप्रदानान्तः सप्तमोऽध्यायवर्णितः १

छठवें अध्यायमें यूपसंस्कार सै आदिले सोमाभिषवतकमंत्रकहे  
सातवें में ग्रहग्रहणके मंत्रकहते हैं। का० ८० ४० २३ वाचस्पतये देवो देवे  
भ्यः मधुमती तीन्यों मंत्रों सै प्रतीक पूर्वक एक एक मंत्र सै उपांशु गृ  
हको एक एक बार गृहण करै उपयामगृहीतोसि यह तीन्यों मंत्रों की आदि  
में योजे। प्राण देवत्या नष्टरूपा नुष्टुविराट् छन्दः पूर्वोत्तरार्धयोर्दशैर्न  
ष्टरूपेति लक्षणान्ष्टरूपा विराट् प्रथमद्वितीयग्रहणे क्रमेण विनि  
योगः। हे सोम तू प्राणके अर्थ जा प्राणों वे वाचस्पति शत० ४० १० २०  
अथवा पतये पालक देवताके अर्थ वाचा वा वाचस्स वंधी मंत्र सै पव  
स्व शुद्ध हो। कैसा है तू कि वृषाः वरसने वाली अपने संवंधी अंशुओं  
के अर्थ कारण यह तिसकू तहां डालते हैं। तथा गभस्ति पूतः याणी  
वे गभस्ती शत० ४० १० १० ४० और अध्वर्यु के हाथों करि पूत है ॥ द्वि  
तीयं गृह्णाति ॥ हे सोम देव है इस हेतु देवताओं के अर्थ प्रवृत्तिकरि



क्योंकि नहीं बिना देवता के देवताओं की लक्ष्मि करने को समर्थ होता  
किन देवताओं के अर्थ कि जिन देवताओं का तू भाग है तिन्हों के प्रति  
जा ॥ १॥

मधुमतीर्त्तः ॥ मधुमतीर्त्तः इषस्क धियन्ते सोमा दाभ्य न्ना  
मजा गृवितस्मै ते सोम सोमा य स्वाहा स्वाहोर्ध्वन्तरिक्षमन्वे  
मि स्वाङ्कुतोसि ॥ २॥ म-धि। अ० य-हा। इ० स्वाहा। उ० उ-मि। ऋ० २॥

तृतीयं गृह्णाति मधुमती-या-ह-लिंगोक्तदे० ॥ हे सोम तू हमारे लिये  
अन्न को मधुर रसोपेत करि का० ४०४२० यन्ते सोम्यं यजुः स्वीका  
र किये अंशुओं को सोम मे स्थापन करे ॥ हे सोम तेरा अदाभ्यं हिंसाहि  
त जागृवि जागरणशील जो नाम है सो हे सोम तिस नाम सहित तू सोम  
के अर्थ स्वाहा दत्त मस्तु का० ४०४३४ स्वाहा उरु हे यजुषिलिङ्गोक्ते  
स्वाहा ये हो अक्षर कहि कर निकले ॥ उरु विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को अ  
नुसरण करि जाता हूँ ॥ २॥

स्वाङ्कुतोसि बिभ्वेभ्यः इन्द्रियेभ्यो देवेभ्यः पार्थिवेभ्यो म  
नस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो  
देवांश्च शोयस्मे त्वेदे तत्सत्यमुपरि प्रुता भङ्गेन हतो सो फट  
प्राणायत्वा व्यानायत्वा ॥ ३॥ †

का० ४०४३० उपांशु ग्रहका होम किये पीछे पात्रका मार्जन करे उपां  
शुग्रह देवतं यजुः प्राणो वा अर्येष ग्रहः स स्वयमेव क्रतः स्वयं जात श  
त० ४०११२२ प्राण को उपांशुग्रह कहते हैं ॥ हे प्राण रूप उपांशुग्रह तू  
स्वाङ्कुत अपने आप किया अपने आप उत्तपन्न है कि न्होंसे किस वंश

योंसे और देवताओंसे और पृथिवी के द्विपद चतुष्पदोंसे अपने आप  
 उत्पन्न है जो तू ऐसा स्वतंत्र तिस तुरको मनः प्रजापति अष्टु, व्याप्त  
 हूजियो। प्रजापतिर्वे मनः प्रजापतिष्ठा श्रुतामिति शत० ४०१०२२०। शो  
 भन है उत्पन्न जिसकी ऐसे हे सुभव अर्थात् हे उत्तम जन्मग्रह सूर्य के  
 अर्थ तुम्हें स्वाहा कार करि होम कर्ता हूँ॥ अथवा इस होम मंत्र का यह अर्थ  
 है॥ हे प्राण रूप ग्रह तू स्वाङ्कृतोसि अर्थात् मुझकरिके स्वीकार किया गया  
 है कि सलिये कि दिव्येभ्यः देवताओं के जन्म में स्थित हैं तिन्हें के अर्थ पा  
 र्थिवेभ्यः मनुष्य जन्म में स्थित हैं तिन्हें के अर्थ सर्वेभ्यः इन्द्रियेभ्यः अ  
 र्थात् इन्द्रियों के हित के अर्थ। और तिन इन्द्रियों का अधीश मन तुम्हें  
 प्राप्त हो हे सुभव प्राण रूप उपांशु ग्रह तैसे तुरको वहिः प्राण रूप सूर्य  
 के अर्थ स्वाहा कार करि के होम कर्ता हूँ। सूर्य का वहिः प्राणत्व अथर्व  
 ण की श्रुति में लिखा है आदित्यो ह वै वास्यः प्राण उदय त्वेष ह्येनं चाक्षु  
 षं प्राण मनु गृह्णीत इति॥ स्वाङ्कृत शब्द से प्राण रूप ग्रह का स्वाधीन  
 त्व और दिव्य पार्थिव शब्द से जन्म द्वय विवक्षित तिन्निरिने कहा। स्वा  
 ङ्कृतोऽसी त्याह प्राण मेव समकृत विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यः दिव्येभ्यः पार्थि  
 वेभ्य इत्याहो भयेष्वेव देव मनुष्येषु प्राणान्द्रधा तीति॥ का० ४०४३८०  
 पश्चिम स्थ परिधि मे सोम लिप्त ऊर्ध्वाभि मुख हाथ को करिके प्रागभिमुख  
 जैसे तैसे मार्जन करै देवेभ्य स्त्वाया - वृ० देवं॥ हे लेप मरीचियेभ्यः मरीचि  
 पालक देवताओं के अर्थ तुरपरिधिका मार्जन कर्ता हूँ इति शेषः॥ का०  
 ४०४३४० वस्त्रादिक में स्निष्ट जो सौ मांशु तैसे अभिचार के अर्थ  
 होमे॥ देवाथं शोलिङ्गोक्त (सोमाथंशु) देवतं अभिचारिकं यजुः॥ हे दे

व दीप्यमान हे अंशो सोमांशो जिसके वधके अर्थ तुम्हें प्रार्थना कर्त्ता हूँ सो वधकर्म सत्यहजियो इति शेषः तिस उपरि प्रत् ऊपर आनेवाले भंगेन अमर्दसै असौ। उपायुधनामावैरीहतः माराहुआ फट। विशीर्णहो। फलतीति फट डल्यो रैक्यं स्वाहा कार के स्थापन पै अभि चार कर्म में फट का योजन कर्त्ते हैं। का. ०. ४. ४१. जिस प्रदेश में पहिले उपांशु पात्र को स्थापन किया तहां ही स्थापन करे प्राणायत्वेति दे- वृ. ग्रह दे ॥ हे उपांशु पात्र प्राण देवता के सन्तोषार्थ तुम्हें आसादन कर्त्ता हूँ इति शेषः ॥ का. ०. ४. ४२. जिस पाषाण सै सोम पीसा सो उपांशु सवन तिस को हाथ सै धो करि उपांशु पात्र के संलग्न स्थाप करे व्यानायत्वेति दे- वृ. उपांशु सवन दे ॥ हे उपांशु सवन व्यान देवता की प्रीतिके अर्थ तुम्हें आसादन कर्त्ता हूँ ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

अ. २ उपयाम गृहीतोसि ॥ उपयाम गृहीतोऽस्य र्यन्त छमघवन्याहि सोमम् ॥ उरुष्यरायः राषो यजस्व ॥ ४ ॥

उपयाम गृहीतोऽस्यन्तरेन्द्रम् प्रा- वि. का. ०. ४. ६. १. सूर्योदय के अनन्तर में अन्तर्याम ग्रह को ग्रहण करे ॥ अर्थः ॥ उपयाम गृहीतः उपयाम करनेवाला ग्रह तिस करिके ग्रहण कर्त्ते है सो उपयाम गृहीतः ॥ हे सोम रसतू तैसा है। हे मघवन धनवान् इन्द्र तू तैसे रस को अन्तर्ग्रह पात्र के बीच में ग्रहण करि। अथवा शत्रु सै अन्तर्धान व्यवधान जैसे हो तैसे नियमय परिवेष्टन करि अर्थात् तैसे सोम को पालन करि तथा रायः धनवा पशुओं को रक्षा करि। इषः अन्न वा प्रजा को सब ओडी सै दे ॥ ४ ॥

यह केरीय हो पर यजमान ने ग्रह को तैल में डुबाने का विधि बताया है।  
का. वि. ग. पा. अ. ल. का. उपांशु यजमान

अन्तस्ते ॥ अन्तस्ते द्यावा पृथिवी दधा म्यन्तर्हृदाम्युर्वन्तरिक्ष  
म् ॥ स जूह्वे वेभिरवरेः परैश्चान्तर्यामि मघवन्मादयस्व ॥ ५ ॥  
मघव देवत्याः त्रिष्टयं अन्तर्यामः ग्रहण एव विनियोगः ॥ हे मघव  
न तेरे अनुग्रह से द्यावा पृथिवी व्यवधायक कर्ता हूँ अथवा हे अन्तर्या  
म प्राण रूप अविनश्वर तेरे भीतर शरीर के बीच में द्यावा पृथिवी को स्था  
पन कर्ता हूँ किंच विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को द्यावा पृथिवी के बीच में स्थाप  
न कर्ता हूँ । हे मघवन् धनवान् इन्द्र पृथिवी स्थान के देवताओं और द्यु  
स्थान के देवताओं से समान नीति युक्त होकर अन्तर्याम ग्रह से आत्मा  
(अपने) को मादयस्व-हर्षित वा तृप्तिकरि ॥ ५ ॥

स्वाङ्गुतोसि ॥ विश्वेभ्यः इन्द्रियेभ्यो दिद्येभ्यः पार्थिवेभ्यो  
मनेस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभवसूर्यो य देवेभ्यस्त्वामरीचिपेभ्यो  
उदानाय त्वा ॥ ६ ॥ सा-या-अ० दे-भ्यः । इ० उ-त्वा । उ० ।

का० ४० ६२ वरवरण और दान हुत शेष का आज्य स्थाली में आसेच  
न इन सब पदार्थों को छोड़ि सब उपांशु ग्रहवत् होता है ॥ स्वाङ्गतः इस  
निः शेष का होम करिके ॥ व्याखातो यजुः काण्डी ३ ॥ का० ४० ६३ ४०  
देवेभ्यस्त्वा- इस मंत्र से प्रथम परिधिको अथो मुख हाथ करि पश्चिमा  
भिमुख मार्जन करे ॥ पाठ-व्याख्या ता काण्डी ३ ॥ का० ४० ६५ उदानाय  
त्वा इससे पात्र का आसादन करे ॥ दे-पं-ग्रह दे० हे ग्रह उदान के सं  
तोषार्थ तुम्हें सादन कर्ता हूँ ॥ ६ ॥

अ० ३ आवायो ॥ भूष शुचिपाऽउपनः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ॥ उ  
पौतेऽअन्यो मद्यमयामि यस्य देवदधिषे पूर्वपेयं चापवेत्वा ॥ ७ ॥

का० ८६. ५. सूर्योदय में ऐन्द्र वायव ग्रह को ग्रहण करें ॥ वायु देवत्या  
त्रिष्टुप् वसिष्ठ दृष्टा वायवेत्वेति यजु रन्ता ॥ हे वायो हे शुचि पा ॥ शुचि प  
वित्र प्रथम वषट् किया और देवताओं करि अप्राप्त ऐसे सोम का पीने  
वाला शुचि पा अर्थात् पवित्र सोम पानः । तू हमारे समीप मे आजा  
किस प्रकार करिके हमारे आ सो कहते हैं कि सब में व्याप्त वा सब जिस  
की प्रार्थना करते हैं सो विश्व वार अर्थात् सर्व व्यापक तेरे सहस्र असंख्या  
त बाहन भूत नियुत मृग हैं तिन्हो से आ + किंच मद्य मदनीय नृप्तिज  
नक अंध सोम लक्षण अन्न तेरे समीप मे लाता हू अर्थात् सोम तुम्हे  
समर्पण कर्ता हू । हे देव दीप्यमान वायो जिस सोम का पूर्व पेय प्रथम व  
षट्कार लक्षण पूर्व पान को तू धारण कर्ता है ॥ ऐसे वायु की प्रार्थना क  
रि सोम प्रतिकहता है । हे सोम रस वायु देवता के अर्थ तुम्हे ग्रहण कर्ता हू  
इति शेषः ॥ ७ ॥

इन्द्रवायू इमे ॥ सुताः उपप्रयो भिरागतम् ॥ इन्द्रो वा मुशन्ति  
हि ॥ उपयामगृहीतो सिञ्चाय वः इन्द्रवायुभ्यान्त्वेष्टेयोनि  
सजोषोभ्यान्त्वा ॥ ८ ॥ इ-हि। उप-उ-त्वा। इ-रा-निः। उ-म-त्वा। ऋ-

का० ४० ६६ एकवार आधे को ले पृथक् करि फिरि इन्द्र वायू ग्रहको  
ग्रहण करै ॥ ऐन्द्र वायवी गायत्री मधुच्छन्दो दृष्टा उयया मेति यजुः स  
हितो मंत्रः ॥ हे इन्द्र वायू तुम्हारे अर्थ यह सोम अभियवण किया इस  
प्रयः सोम रसरूप अन्न के निमित्त समीप में तुम आओ अथवा प्रय  
ज्ञिः शीघ्र अश्व करि आओ जो कि सोम की तुम चाह करते हो। तिस  
हेतु आओ इत्यर्थः ॥ सोम से कहते हैं। हे सोम रस तू पाव करि के ग्रह

एकिकिया है वायु देवता के अर्थ और इन्द्र वायु देवता के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्त्ता हूँ इति शेषः का० ४. ५. २५. दशा पवित्र करि ग्रहण किये ग्रहको मार्जन करि पात्रसे बाहिर निकले सोमको मार्जन करिके एषते योनिः इस मंत्रसे ग्रह का सादन करे वीष्मा सर्व ग्रहार्थ इति सूत्रार्थः॥ एषते योनिः सयोषोभ्यां त्वा० मिल करिया—पं॥ हे पात्र यह खरका एक देश तेरा स्थान है इस हेतु यहां समान प्रीति युक्त इन्द्र वायु के अर्थ तुम्हें सादन कर्त्ता हूँ इति शेषः॥ ७॥

अ० ४ अयम्वा० म० अयम्वा० मित्रावरुण सुतः सोमः ऋता बृधा॥ ममेदिह श्रुतं हवाम्॥ उपयाम गृहीतो सिमित्रावरुणभ्या त्वा॥ ४॥ अ-मा० अ० ४-त्वा॥ इ० ॥ ४॥

का० ४. ६. १. मैत्रावरुण ग्रहको ग्रहण करे मित्रावरुण देवत्या गायत्री गृत्समदं दृष्ट्वा उपयामेति आसुरी-गायत्री॥ हे मित्रावरुण हे ऋत यज्ञ वासत्य के वटाने वाले तुम्हारे लिये यह सोम अभिषेक किया तिस हेतु इस यज्ञ में मेरे इस आह्वान को सुनो। हे सोम रस तू उपयाम, मैत्रावरुण यह पात्र करि गृहीत है। मित्रावरुण के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्त्ता हूँ इति शेषः॥ ४॥

गयावयम्॥ गयावयं ससवाश्च सोमदे महव्ये न देवाय वसेन गावः॥ तान्धनुमित्रावरुण युवन्तो विश्वा हा धत्त मनपस्फुरन्ती मे षते योनिः ऋता तायुभ्यान्त्वा॥ १०॥†

का० ४. ६. ८. मैत्रावरुण पात्र में दो कुशारखिके सोमरस को लोकि क दुग्धसे श्रुत करे॥ मित्रावरुण देवत्या त्रिष्टुप् त्रसदस्यु दृष्ट्वा मंत्र द



कामदुष्टां प्रार्थयते । जिस धेनु के घर में होंने से हम धन करिके सम्पन्न होकर हर्षित हों । कैसे कि हव्येन देवा जैसे हविकरि के देवता हर्षित होते हैं और यवसेन गावः घास करि के गो हर्षित होती हैं हे मित्रावरुण तुम तिस धेनु को हमारे लिये सर्वदा देओ कैंसी धेनु को कि अनपस्फुरन्ती दूसरे पुरुष प्रतिनजाने वाली अर्थात् अनन्य गामिनी देओ ॥ एषत इति या-पं. पात्रका सादन करे । हे ग्रहा यह तेरा स्थान यहां ऋतायुभ्यां अर्थात् मित्रावरुण के अर्थ तुम्हें सादन कर्त्ता हूं । ब्रह्म वा ऋतं ब्रह्म हि मित्रो ब्रह्मो ह्यृतं वरुण एवायुरिति शत० ४.१.४. १० ऋतशब्द से मित्र आयुशब्द से वरुण यह श्रुति के अनुसार कहा ॥ और पद कारने ऋतायुभ्यां पद किया तिस करिके ऋत सत्य वा यज्ञ की इच्छा करने वाले मित्रावरुण के अर्थ । यह अर्थ पद के अनुसार है ॥ १० ॥

अ० ५ यावाम् ॥ यावां कशामधुमत्यश्विनासूनुतावती ॥ तथा यज्ञमिमिक्षतम् ॥ उपयामगृहीतो स्पृश्विभ्यान्त्वेषते योनिर्माध्वीभ्यान्त्वा ॥ ११ ॥ या-मा अ० उ-त्वा इ० रा-त्वा उ० ११

अथवा यजमान के अन्वारंभ करि आश्विन ग्रह को गृहण करे ॥ आश्विनी गायत्री मेधातिथि दृष्टा उपयामेति या-त्रि सहितो मंत्रः ॥ हे अश्विना जो तुम्हारी कशावाणी कैंसी कि मधुमती मधु ब्रह्मतिस युक्त अर्थात् मधुब्राह्मणोपनिषत्प्रशंसा युक्ता तथा सूनुतावती सत्य प्रिय वचनोपेता । हे अश्विनो इस वाणी को हमारे यज्ञमें निष्पादन करे ॥ हे ग्रह तू पात्र करिके ग्रहीत है अश्विनी कुमारों

के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्त्ता हूँ ॥ इति शेषः ॥ एष ते या-वृ-पात्रकासादन  
करे ॥ हे ग्रह यह तेरा स्थान माध्वीभ्यां-मधुब्राह्मण के अध्येन करने  
वाले अश्विनीकुमारों के अर्थ तुम्हें सादन कर्त्ता हूँ ॥ इति शेषः ॥ दध्यद्-ह  
वाः आभ्यामाथर्वणौ मधुनाम ब्राह्मणमुवाचेति शत० ४.१.५.१८ ॥ ११ ॥  
अ० ६ तस्य त्वया ॥ पूर्वथा विश्वथे मया ज्येष्ठतातिस्वर्हिषदं  
स्वर्विदं ॥ प्रतीचीनं मृज नन्दो हसे धुनिमा शुज्जयन्तमनु  
या सुबर्द्धसे ॥ उपयाम गृहीतोसि शंडाय त्वेष ते योनिर्दीर  
ताम्या ह्यपमृष्टः शब्दो देवास्त्वां शुक्रपाः प्रणयन्त्वानां धृ  
ष्टासि ॥ १२ ॥ †

का० १. ४. ६. १०० विल्वपात्रवावैकङ्कतपात्रकरि शुक्रग्रहको ग्रहण क  
रे ॥ अवत्सारः काश्यपो वैश्वदेवीजगती । द्वादर्णचतुः पादाजगती  
उपयामेति या-ज० युक्तो मन्त्रः ॥ हे इन्द्र जिन यज्ञक्रियाओं में अनु  
वर्धसे-वार-वार सोम पान करि वृद्धि को प्राप्त होता है । तिन यज्ञक्रि  
याओं में बलवद्यज्ञफल को यजमान के अर्थ देता है । कैसे देता है तहां  
दृष्टान्त कहते हैं । प्रत्नथा-प्रत्नशब्दः पुराणवाची निधं० ३.२७ पुराणे  
मृगवादिकों को जैसे फल देता है । पूर्वथा-पहिले ऋषी अर्थात् साध्यों  
को जैसे । विश्वथा-समस्त ऋषिपुत्रों को जैसे । इमथा-इस समय के य  
जमानों को इस फल को देता है तैसे तुरुको स्तुति करते हैं । कैसे तुरुको  
कि ज्येष्ठताति-बड़े विस्तार वाले वावडों में प्रशस्त तथा वर्हिषदं-य  
ज्ञमें वर्हिओं पे बैठने वाले तिस को । स्वर्विदं-द्यू लोक के जानने वाले ति  
स को-तहां ही तिसका निवास है प्रतीचीनं-आत्मा से अभिमुख-शत्रु

ओं के कपाने वाले शीघ्रही वस्तुओं के जीतने वाले ॥ यद्वास्या ऋचो र्थीत  
रम् । हे इन्द्र जो तू प्रतीचीनं हमारे प्रतिकूल वर्जनीय आलस्य अ  
यद्वा दिकों को विनाश कर्ता है ॥ किंच जिन क्रियाओं में तेरे अनुग्रह  
से शत्रुओं के कपाने । क्षिप्रकराने जयन्तं संम्यक् अनुष्ठान से और और  
र यजमानों से अति शय करिके इस यजमान के सोमपान और स्तुति से जो  
तू वृद्धि को प्राप्त होता है तिन क्रियाओं में तुम्हें स्तुति कर्ते हैं इति शेषः ॥ के  
से कि प्रत्नथा-प्रत्यय उपमा के अर्थ में जैसे पुराने भगवादि क तुम्हें स्तुति क  
र्ते हुए पूर्वथा-पित्रादि क जैसे विश्वथा-गये हुए सब यजमान जैसे इमथा-  
ये वर्तमान के यजमान जैसे तुम्हें स्तुति कर्ते हैं इत्यर्थः । के से तुम्हें कि अय  
ने अर्थ बढ़ाता है ज्येष्ठता को वर्हिषदं याग में संनिहितत्व करि बैठे को स्व  
र्विदं-यजमान के देने योग्य स्वर्ग के जानने वाले को ॥ ऐसे इन्द्र को कहिकरि  
सोम प्रतिकहता है हे शुक्र ग्रह तू उपयाम करिके गृहीत है शुक्र के पुत्र शंड  
वा शण्डनामा असुर के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्ता हूं इति शेषः ॥ एष ते या-  
पं से सादन करे । हे ग्रह यह खर प्रदेश तेरा स्थान तू यजमान के वीरत्व  
(शूरत्व) को पालन करि ॥ का० अ. १०. १-५ अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता शुक्रा  
मन्थिग्रहों का यथा क्रम अनुतिष्ठन करे । तत्प्रकारः । प्रोक्षण की नी दो  
नों यूपशकलों से अप्रोक्षत दो यूप शकल लेकर प्रोक्षतों से तिन ग्रहों  
का क्रम पूर्वक प्राच्छादन करिके अप्रोक्षतों से ग्रहों का अपमार्जन  
(नीचे को मार्जन) करे तहां अध्वर्यु प्रोक्षत शकल से ग्रह को ठकिक  
र शुक्र ग्रह का मार्जन करे ॥ अपमृष्टः-या-गा-आभिचारिकं ।  
शंडनामा असुरों का पुरेहित शुक्र का पुत्र अपमार्जनी किया ॥

का० ४०१०६० अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता क्रमपूर्वक शुक्रमन्थी इन दोनो प  
दवाचिक मंत्रको समरि करि हविर्दानसै निकलें। तहां शुक्लिङ्ग करि  
अध्वर्यु निकले देवास्वा० या०—पंशुक्र दैवतं ॥ शुक्र नामक ग्रहमे स्थित  
सोम को पीनेवाले शुक्रपा देवता हे शुक्र ग्रह तुम्ह पूजा के स्थान को प्राप्त हों  
का० ४०१०७० अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता वेदी के पीछे के भागमें अरत्नी  
का संयोजन करि ग्रहों का छोड़े विसर्ग कर्त्ते उत्तर वेदि श्रोणिमें ग्रहों का  
सादन करिके दक्षिण श्रोणीमें अध्वर्यु शुक्र को उत्तर वेदि श्रोणिमें प्र  
ति प्रस्थाता मंथि को सादन करै ॥ अनाधृष्टा सिद्धे—पं वेदि श्रोणि दै  
वतं ॥ हे उत्तर वेदि श्रोणे तू अनाधृष्टा (अनुपहिंसता) हे ॥ १२ ॥

सुवीरो ब्हीरान् ॥ सुवीरो ब्हीरान् प्रजनयन्परीत्युभिरायस्योपै  
ण यजमानम् ॥ संजग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्र शो  
चिषानिरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥ १३ ॥ †

का० ४०१०८० सुवीर इस मन्त्र से दक्षिण यूप देश प्रति अध्वर्यु जावै।  
सा-त्रि० शुक्र दैवतम् ॥ हे शुक्र ग्रह तू सुवीरः शोभन वीर्योपेत होने से य  
जमान के श्रोत्रोपेत भृत्यादिकों को उत्पादन करता धन की पुष्टि से यज  
मान को देवता हुआ जा ॥ का० ४०१०९० अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता यूप के प  
श्चिम भागमें तीन ग्रह वाचक पदों के चिन्हों को विचारि अरति संधान  
करै। शुक्रलिंग से अध्वर्युः ॥ संजग्मानः सा-अ० ॥ शुक्र ग्रह शुद्ध  
दीप्ति करि के यूप को भरै इति शेषः कैसा है शुक्र कि द्युलोक ओर भूलो  
क करिके संजग्मानः अर्थात् संगच्छ मान ॥ का० ४०१०१२ अध्व  
र्यु अप्रोक्षत यूप शकल को निकाल के फेंके ॥ निरस्तः शण्डः—दै०—पं०

आभिचारकं ॥ शण्ड नामक शक्रपुत्र असुरों का पुरोहित यज्ञसे बाहिर  
निकाला का० ४०.१०.१३. अध्वर्यु आहवनीय में प्रोक्षित यूप शकल को  
डाले शक्रस्येति प्रा-गा. शकल देवतं हे यूप शकल तू शक्रग्रहका  
अधिकरण है ॥ १३ ॥

अच्छिन्नस्यते ॥ देवसोम सुवीर्यं स्परा यस्योषं स्यददितारः  
स्याम ॥ सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो  
ऽऽग्निः ॥ १४ ॥ अ-मा. अ. स-हा. इ. त-हा. उ. अ. त. ऋ. ॥ १४ ॥ १५

का० ४०.१०.१४. अच्छिन्नस्य इससे यजमान जयें प्रा-पं. सोम्य ॥ हे देव दी-  
प्यमान सोम तुरू अनवरंडित (सन्तत) कल्याण प्रभाव के हम दाता हों  
और धन की पुष्टि के दाता हों बार बार यज्ञ करने की अशीष चाहते हैं।  
अथवा तेरे प्रसाद से धन की पुष्टि के दाता हों। अच्छिन्नस्य इसके दो विशेष  
षण ऐसै ही रायस्योष के ॥ का० ४०.११.१०. अध्वर्यु और प्रति प्रस्थाता यूप  
के दोनों ओड़ी पश्चिमाभिमुख खड़े हो के होम करें पहिलें अध्वर्यु शक्र  
को फिर प्रति प्रस्थाता मन्यिको होमे ॥ सा प्रथमा- इन्द्र देवत्या त्रिष्टुप्  
सा प्रथमा- वोह मुख्य संस्कृतिः सोम संस्कार इन्द्र के लिये सोम संस्कार  
करिये हैं सोम क्रय के अध्या० ४. काण्डी २० में सा देवि देव मछे हीन्द्राय सो  
मको इन्द्र के अर्थ कहा गया कैसी है संस्कृति- कि विश्ववारा- समस्त ऋ  
त्विजों और अर्त्विजों से वरण करिये हैं जहां सोम वोह अथवा सबका  
वरण करने वाला सोम जहां है वोह विश्ववारा- जगत के उत्पन्न होने का  
बीज होने से सोम के वरुण मित्र और अग्नि स प्रसिद्ध मुख्य जिसके भू  
त्य इति शेषः अर्थात् वरुण मित्र अग्नि करि जय लक्षण और-और भी

देव गणों का जो प्रभु है ॥१४॥

स प्रथम ॥ स प्रथमो बृहस्पतिश्चि कित्वां स्तस्मा इन्द्राय सुतमा  
जुहोत स्वाहा ॥ तृम्य न्तु होत्रा मध्वोयाः सिष्टायाः सुप्रीताः सुह  
तायत्स्वाहाया उग्नीत् ॥ १५ ॥

स. प्रसिद्ध चेतनावान उत्कृष्टधी बृहस्पति जिस इन्द्र का मुख्यमंत्री  
हूँति शेषः ॥ अथवा संस्कृति समीचीन कृति समस्त देवताओं की  
वरणीय बोह प्रथमाः अर्थात् देवताओं के मध्यमें मुख्य और जिस इ  
न्द्र के वरुणा मित्र अग्नि से ऐसा इन्द्र मुख्य और चेतनावान बृहस्प  
ति सो भी इन्द्र ऐसा हे ऋत्विजो तैसे इन्द्र के अर्थ अभिषुत सोम को  
स्वाहाकार करि के होमो ॥ का. ०. ११. ४. तृम्यन्तु इस्का अध्वर्यु ज  
प करे प्रा. - वृ. होत्रा देवतम् ॥ वोह होत्राः छन्दों के अभिमानी देवता  
तृप्त हों। होत्र शब्द से याज्या छन्दांसि स्मरण होते हैं। वोह कौन कि जो  
मधुस्वादु सोम के सिष्टा साधु इष्टा अर्थात् तिसके होम में नियुक्त  
हैं। और जो होत्राः सुष्टु प्रीताः कैसे जाने गये ऐसे कि स्वाहा कार करि  
के सुहताः होम के अर्थ नियुक्त हैं ॥ का. ०. ११. १०. अध्वर्यु होता के  
समीप में प्रत्यक्ष मुख खड़ा हो ॥ अया उग्नीत् दे- वृ. होत्र देवतम् ॥ अ  
ग्निरयात् अयाक्षीत् अग्नीधाने याग किया यह होता से कहें ॥ ११ ॥  
अ. ७ अयं चैनः ॥ अयं चैनश्चोदयत्पृथ्विं गर्भो ज्योतिर्जगत्पूरजं  
सो विमाने ॥ इममपा ॥ सङ्गमे सूर्यस्य शिशुन् विप्राम  
तिभी रिहन्ति ॥ उपयाम गृहीतो सिमक्ती यत्वा ॥ १६ ॥ +  
का. ०. ६. १२. मंथिग्रहको ग्रहण करे त्रिष्टुप् इस मंत्र से आधिदेव



और अधि यज्ञमें अवस्थित सोम स्तुतिकरिये है ॥ अधिदेवं चन्द्रात्मना स्तूयते ॥ अयं वेनः ॥ यह कान्त ॥ चन्द्र उदक के निर्माण समय अर्थात् ग्रीष्मान्त में प्राप्त प्रथिन गर्भ ॥ जल को प्रेरण कर्ता अर्थात् वर्षता है ॥ पृथ्वि ॥ आदित्य वा द्युलोक गर्भ ॥ जिसका अवस्थान ॥ द्युलोकस्था ॥ अथवा विस्था जल वर्षता है कैसा है वेनः ॥ किं ज्योतिर्जरायुः ॥ विद्युन्लक्षण ज्योति को जरायु वत बेष्टन है जिसका बोह ॥ इदानीं मधियज्ञं लतात्मना सोमः स्तूयते ॥ विप्रः मेधावी ब्राह्मण इस सोम को शिशुन ॥ जैसे कोई बालक को लालन कर्ता है तैसे ही इस सोम को स्तोत्र शस्त्र रूपा वाणी करि स्तुति कर्ते हैं ॥ कैसा है यह कि सूर्य और जल के संगमे ॥ ग्रहण किये जल से अभिषुत अर्थात् सोम के अभिषवार्य वसती वरी जल और सूर्य के संगमे ग्रहण कर्ते हैं ॥ ताँवे वहन्ती नारदस्य नन्दमाना नां गृह्णीयाद्दिवा गृह्णीयादिति श्रुतेः ॥ अथवा यह अर्थ जल और सूर्य के समागम निमित्त अर्थात् वृष्टि गर्भ निष्पत्त्यर्थ ब्राह्मण इस सोम को स्तुति कर्ते हैं जैसे बालक किसी वस्तु के लाभ के अर्थ किसी की स्तुति कर्ता है ॥ उपयामेति सा ॥ गा ॥ ऐसा है सोम तू उपयाम ग्रह पात्र करिके गृहीत है तिस मर्क नामा शुक्र पुत्र असुरों के पुरोहित के अर्थ तू मे ग्रहण कर्ता हूँ ॥ १६ ॥

मनो न ॥ येषु हवनेषु तिग्मं द्विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ।  
आयः शर्याभिस्तु विनृमणः ॥ अस्या श्रीणी तादि शुद्ध  
भस्ता वेषते योनिः प्रजाः पात्यपं मृष्टो मर्की देवास्त्वाम  
न्यिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १७ ॥ †

का० ४०. ६. १३. मन्थिग्रह को यव पिष्ट करि मिश्रित करै ॥ मनोनविष्टु  
 सोम स्तुतिः अधि यज्ञानुवादिनी ॥ मेधावी, अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता  
 जिन सोम होमोंमें प्राच्या (कर्मः) करि कै मनवत् उत्साह युक्त जैसे  
 तैसे शुक्रमन्थीग्रहों को प्राप्त हैं। कैसे हैं मेधावी कि कर्तव्य होमोंमें प्रच  
 रते। जो अध्वर्यु अंगुली करि हाथमें स्थित इस मन्थिग्रहका सब ओड़  
 से सक्तु यव पिष्ट करि मिश्रित करता है। कैसा है जो अध्वर्यु कितुवि  
 (बहुत) नृणां धन युक्त ॥ यद्यपि यहां अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता समान क  
 र्मा हैं तथापि जो यव पिष्ट करि अर्पण करता है सो मुख्य है ॥ एष ते या  
 ह ० से सादन करै। हे मन्थिग्रह तेरी यह जगह तू यजमान संबंधिनी प्रजा  
 का पालन करि ॥ का० ४०. १०. ६. प्रतिप्रस्थाता प्रोक्षित यूप सकल से  
 मन्थिग्रह का आच्छादन करि अप्रोक्षित से अपमार्जन करै ॥ अपमृ  
 ष्टो मर्कः या-गा० आभिचारिकम्। मर्क नामा असुरों का पुरोहित अप  
 मार्जन किया ॥ का० ४०. १०. ६. प्रतिप्रस्थाता हविर्धान से निकलें देवा  
 स्त्वेति या-पं० मन्थिदेवतम्। हे मन्थिग्रह मन्थिग्रह के पीने वाले देव  
 ता तुरू पूजा के स्थान को प्राप्त हों ॥ अनाधृष्टासि यह मन्त्र पहिले का  
 एड़ी १२ में विनियोग सहित व्याख्या किया ॥ १७ ॥

सुप्रजाः ॥ प्रजाः प्रज नयन्परीह्यभिरायस्याषेण यजमान  
 म् ॥ सज्जग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थि शौचिषा  
 निरेस्तो मर्कौ मन्थिनेधिष्ठानं मसि ॥ १८ ॥ †

का० ४०. १०. ४०. प्रतिप्रस्थाता उत्तर यूप देश को जावे सुप्रजाः सा-वि  
 मन्थिदेवतं ॥ हे शोभन प्रजा युक्त मन्थिग्रह तू यजमान संबंधिनी प्र

जा का उत्पादन करि कै धनकी पुष्टि सहित यजमानके संमुख आ॥ का०  
 ६०१०१०० प्रतिप्रस्थाता अरनिका सन्धान करै सजगमानः० सा-अ०॥  
 मन्थिनाम ग्रह द्युलोक भूलोक मेजाताहुआ अपनी दीप्ति से यूप को  
 विभरण कर्ता है इतिशेषः॥ का० ६०१०११० प्रतिप्रस्थाता अश्रोक्षत  
 यूप शकल को निकाले निरस्तः० दे०-पं० आभिचारिकं॥ मर्कनामा  
 असुरों के पुरोहित का निराकरण किया॥ का० ६०१०१३० प्रतिप्रस्था  
 ता श्रोक्षत यूप शकल को आहवनीय में डाले मन्थिनः० प्रा०-गा-  
 शकल देवतं॥ हे यूप संकल तू मन्थि ग्रह का अधिष्ठान है॥ १८॥  
 अ० ८ ये देवासः॥ ये देवा सो दिव्ये का दश स्थ पृथिव्या मध्ये का दश  
 स्थ॥ असुक्षितो महिने का दश स्थ ते देवा सो यज्ञमिमं जु  
 षध्वम्॥ १९॥

दोनों धाराओं के मरते आग्रयण ग्रह को ग्रहण करें वैश्वदेवी त्रिष्टुप्  
 परछेव दृष्टा॥ हे देवताओं तुम द्युलोक में एकादश संख्या कहो कि  
 समहिमा से कि अपने अपने माहात्म्य से सर्वत्र महाभाग्य के अविशेष  
 होने से महिना यह यद तीनों स्थानों में जुड़ता है तथा पृथिवी के ऊपर  
 एकादश हो तथा तुम अन्तरिक्ष निवासी एकादश हो हे देवताओं  
 विविध तुम इस यज्ञ यजनीय आग्रयण ग्रह को सेवन करें॥ १९॥  
 उपयाम गृहीतो स्या ग्रयणो सि स्वाग्रयणः॥ पाहियज्ञम्य  
 हियज्ञपतिम्विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण यातु विष्णुन्त्वम्याह्य  
 भिसर्वनानियाहि॥ २०॥

आग्रयण देवतं यजु राग्रयण ग्रहण एव विनियुक्तम्॥ हे आग्रयण

ग्रह तू उपयाम पात्र करि के स्वीकार किया है आग्रयण नामा है कैसा  
है तू कि स्वाग्रयण अच्छे प्रकार प्राप्त होता है सातू यज्ञ को रक्षा क  
रि। विष्णुः यज्ञका अधिष्ठाता देवता इन्द्रियेण अपनी सामर्थ्य से तु  
म्हें रक्षा करे और तू भी तै से विष्णु की रक्षा करि। सब नानि प्रातः सवना  
दि कों को सब ओड़ी से रक्षा करि ॥२०॥

सोमः पवते ॥ सोमः पवते सोमः पवते स्मै ब्रह्मणे स्मै क्षत्रिया  
स्मै सुन्वते यजमानाय पवतः इषः ऊर्जे पवते द्यः ओष  
धीभ्यः पवते द्यावा पृथिवीभ्यो पवते सुभूताय पवते विश्वे  
भ्यस्त्वा देवेभ्यः एषते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥२१॥ †

का० ६० ६१५ सोमः पवते को तीन बार करि के जपे वैश्वदेवं यजु ॥ सोम  
ग्रह पात्र में जाता अर्थात् अपने कर्म में प्रवृत्त होता है ॥ द्विरुक्ति शब्द अ  
र्थः किसलिये कि इस ब्राह्मण जातिकी प्रीतिके अर्थ इस क्षत्रिय जातिकी  
प्रीतिके अर्थ इस सोमाभिषव करने वाले यजमान के कामकी प्राप्तिके  
अर्थ। अन्न के अर्थ वृष्टिके ब्रीहियवादिक ओषधियों की सिद्धिके अ  
र्थ जाता है। द्युलोक पृथिवी लोक की प्रीतिके अर्थ जाता है। किंवा वह नो  
क्तेन सब अच्छे मनुष्यों के अर्थ जाता है। हे आग्रयण ग्रह तै से तू मे को  
समस्त देवताओं की प्रीतिके अर्थ ग्रहण कर्ता हूँ इति शेषः ॥ एषते चा  
जः इससे सादन करे ॥ हे ग्रह यह तेरा स्थान समस्त देवताओं के अर्थ  
तु मे सादन कर्ता हूँ इति शेषः ॥२१॥

अ० ६० उपयाम गृहीतो सी। न्नायत्वा बृहद्वते ब्रह्म स्वतः उव प्रा  
व्यं गृह्णामि ॥ यतः इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वे ष

ते यो निरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यु यज्ञस्या युषे गृ  
ह्णामि मित्रावरुणाम्ब्यान्त्वा ॥२२॥ †

का० ४०६२० उक्थ्यग्रहको ग्रहण करें ॥ उपयाम ग्रह देवतानि यजु  
थंषि उपयामेति यजुः ॥ हे सोम तू उपयाम पात्र करि गृहीत है ॥ हे उक्थ्य  
ग्रह तुम्हें इन्द्र के अर्थ स्वीकार करता हूँ ॥ कैसे इन्द्र के अर्थ कि वह त्सा मप्रि  
यके तथा वयस्वते सोम रूप अन्न वा सदा योवन लक्षण वीर्य सहित ॥  
कैसे तुम्हें कि उक्थ्याव्यम् उक्थ्यानि मित्रावरुणं ब्राह्मणं छंस्य छावा  
कसंवंधी शास्त्रों की अवतिरक्षा करनेवाले तिसै ॥ तहां ही इसका वि  
नियोग है ॥ किंच ऐसै सोम को कहिकर इन्द्र प्रति कहिता है हे इन्द्र जो  
तेरा बड़ा सोम रूप अन्न है तिसके पानार्थ तुम्हें प्रार्थना करते हैं इति शो  
षः ॥ हे सोम विष्णु देवता के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ अथवा हे इन्द्र जो  
तेरा बड़ा ऊर्जित योवन लक्षण तिसके अर्थ सोम तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥  
हे सोम जो इस इन्द्र का वह द्वय है तैसे के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ और  
विष्णु (यज्ञ) के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ एष ते या०-व० सै सादन करें ॥  
हे ग्रह यह तेरा स्थान उक्थ्य के अर्थ तुम्हें सादन करता हूँ ॥ का० ४१४  
८० उक्थ्य स्थालीस्थ सोम को तीन बार ग्रहण करें ॥ समस्त प्रशास्तु  
ब्राह्मणं छंस्य छावाकतिन्हों के किये याग के अर्थ देवेभ्यस्त्वा आ  
सुरी गा० ॥ हे सोम देवताओं के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ कैसे तुम्हें कि  
देवाव्यम् देवताओं की तृप्ति करनेवाले यज्ञस्या युषे अन्नवच्छि  
न्न कर्मों के दोष रहित परिसमाप्ति यज्ञ की आयु तिसके अर्थात् य  
ज्ञसमाप्तिके अर्थ और फलपर्यन्त अवस्थान के अर्थ ग्रहण कर





रम्यतः आज्ञातमग्निम् ॥ कुर्विठं सुम्प्राजमतिथिञ्जनाना  
मासन्नापात्रं जनयन्त देवाः २४

वैश्वानरदेवत्या त्रिष्टुब्धभरद्वा ज दृष्टावैश्वानरश्चात्र सर्वात्मनामूथते  
का० ६० ६० २० २० ध्रुवसंज्ञकग्रहको ग्रहण करै ॥ देवता ऐसे अग्निको  
उत्पादनकर्त्ते हुए ॥ कैसे अग्निको किद्यु लोक के शिखर उन्नत प्रदेश  
में सूर्य रूप करि अवस्थित हो भासक ॥ तथा पृथिवी के ऊपर रति रहि  
त ॥ नहीं पृथिवी के ऊपर कदाचित् अग्नि उपरमाण करता किंतु दाह  
पाक प्रकाश से सबों की अनुग्रह कर्त्ता सर्वदा वर्त्ते है ॥ अथवा पृथिवी श  
ब्द से अन्तरिक्ष लेना ॥ अन्तरिक्ष का अरति अर्थात् पूरक क्योंकि यह  
तहां स्थित हो यथा काल दृष्टिकरि के भूतों का पोषण कर्त्ता है तथा वैश्व  
नर ॥ समस्त नरों का जठर अग्निरूप करि अन्न का पाचक होने से हित  
तिसको ॥ तथा कवि ॥ काति दर्शी अपने भक्तों के अनुग्रह करने वाले  
अभिज्ञ को ॥ तथा सम्यक् राजमान को ॥ तथा यजमानों के अतिथि  
हवियों करि के सत्कार योग्य को ॥ आसन् ॥ आसनि ॥ मुख में आ  
पात्रम् ॥ आभि मुख करि के पीते है इस से इस आपात्र को ॥ ये  
से अग्नि को देवाः अर्थात् इन्द्रादिक देवता उत्पादन करते हुए ॥ २४

उपयामगृहीतोसि ॥ ध्रुवोसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणामध्रुवतमो  
च्युतानामच्युतक्षितम ॥ एष ते योगिर्वैश्वानरायत्वा ॥ ध्रु  
वन्ध्रुवेण मनसा ब्रान्वा सोममवनयामि ॥ अथान इन्द्र  
इक्षिणो सपत्न्याः समनसस्करत ॥ २५ ॥ ॥  
ध्रुवोसि ध्रुवदेवतं यजुः ध्रुवग्रहण एविनियुक्तम् ॥ हे सोम

तू उपयाम पात्र करिके गृहीत है ध्रुवनामक है कैसा है तू कि ध्रुवक्षितिः स्थिर है निवास जिस का वोह क्षितिर्वास गत्योः आवैश्व देवी संस्थान से स्थिर निवास है । तथा ध्रुवाणां आदित्य स्थाल्यादिकों के मध्य ध्रुवतमः अतिशय करिके स्थिर तथा च्युतरहितों क्षरणशून्यो में अच्युतक्षिप्तमः अर्थात् च्युतरहित पात्र में अतिशय करिके निवास करता ॥ एषते या-त्रि० इति सादनम् । हे ग्रह यह तेरी जगह वैश्वानर (अग्नि) के अर्थ तुम्हें सादन करता हूँ ॥ का० १००७७ ध्रुवं ध्रुवेणेति ध्रुवपात्रस्य समस्त सोम को होतृ चमस में सींचे ॥ बृहती पूर्वार्धर्चो ध्रुव देवतः उत्तर ऐन्द्रः ॥ ध्रुवेण एकाग्र मनसा वाचा करि ध्रुवग्रह में अवस्थित सोम को होतृ चमस में सींचता हूँ अथवा ध्रुवग्रह होतृ चमस्य सोम को प्रत्यवनयामि फिरि सींचता हूँ ॥ निरन्तर में यह इन्द्र हमारी प्रजा को ऐसी करे । कैसी कि शत्रु रहित स्थिर मनस्का अर्थात् धृति युक्ता ॥ २५ ॥

अ० ११ यस्ते ॥ द्रुप्सस्कन्दतियस्तेऽर्धं शुर्गवच्युतोधिषणां यो रूपस्यात् ॥ अध्वर्योर्वापरिवाजः पुत्रित्रातन्ते जुहोमि मनसा ब्रूषे द्रुतं स्वाहा देवानां मुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥ +

का० १४०६२० अभिषव और ग्रहण में पतित सोम विन्दुओं के ग्रहण करने में अपशक्त होने से तिस प्रत्यवाय के परिहारार्थ घृत होम की विप्रद होम यह संज्ञा है तिसै अध्वर्यादिक होमें ॥ सैमी त्रिष्टुप् स्वाहेति यजु रन्ता देवश्वा देव वात दृष्टा ॥ हे सोम तेरा द्रुप्सः जो रसका एक देश भूमि में अन्यत्र गिरा और जो तेरा

खण्ड ग्राह्यों के शकाश से गिरा और जो अधिषवण फलकाओं के उ  
त्संग से गिरा अथवा जो अंशु अध्वर्यु के शकाश से गिरा अथवा जो  
अंशु पवित्रा से जहां कहीं गिरा हे सोम तेरे तिस द्रस और अंशु को  
स्वाहाकार करिके होम करता हूं। कैसा है कि मनसा करि बषट्कार किया (संकल्पित)  
अर्थात् बषट्कार और स्वाहाकार करिके होम करता हूं। का० ४.६.३२  
अध्वर्यु ने वेदी में जो तुल्य ग्रहण किये तिन्हो में से एक को चात्वाल  
में डाले। देवानामिति या-हृचात्वाल दे०॥ हे चात्वाल तू देवता  
ओं का उत्क्रमण है उत्क्रामन्ति जाते हैं स्वर्ग को जिस से वोह उ  
त्क्रमण अर्थात् तुरुकरिके देवता स्वर्ग को जाते हैं ॥ अतोहि  
देवाः स्वर्गमुपोदक्रामन्ति शत० ४.२.५.५ ॥ २६॥

अ० १२ प्राणायमे ॥ वच्चो दावच्च से पव स्वव्या नायमे वच्चो दाव  
च्च से पव स्वो दा नाय मे वच्चो दा वच्च से पव स्ववा चे मे वच्चो  
दा वच्च से पव स्व कतू दक्षा म्या म्मे वच्चो दा वच्च से पव  
स्व श्रोत्रा यमे वच्चो दा वच्च से पव स्व चक्षुर्म्या म्मे वच्चो  
दसो वच्च से पवेथा मात्मने मे ॥ २७॥ +

का० ४.७.४ प्राणायेत्यादिक मंत्रों की अवकाश संज्ञा तिन्हों  
को पढ़ें- ग्रहण क्रम से ग्रहों को अध्वर्यु यजमान को दिखला  
वे। लिंगोक्त देवतान्येकादश यज्ञके ये प्राण तिन्हो की प्राण क  
रि दिखलावे हैं ॥ १.२.६. आसुरी अ० ३.७ आसुरी उ० ४.५  
आसुरी गायत्री ॥ उपांशुम् हे उपांशो जो तू स्वभाव से ही तेज-  
का दाता सो तू मेरे हृदय स्थित वायु के तेज के अर्थ प्रवर्त हो ॥ उपां

+ प्रा-स्व। अ० व्या-स्व। ६. उ-स्व। उ० वा-स्व। क्र० क-स्व। ल० आ-स्व। आ० च-

॥ २७॥  
म० ५३॥

शु सवनम्। हे उपांशु सवन मेरे सर्व शरीर गत वायु के अर्थ प्रवर्त हो  
अन्यत्पूर्ववत्॥ अंतर्यामम्। कंठदेशस्य उदानवायुः॥ ऐन्द्रवायव  
म्। वाक् इन्द्रिके अर्थ॥ मैत्रावरुणम्। क्रतु-काम् दक्ष, तिसकी समृ  
द्धि तिन दोनो के अर्थ॥ आश्विनम्। ओत्र इन्द्रिके अर्थ॥ शुक्रामन्यि  
नौ युगपत्। हे शुक्रामन्यिनौ मेरी चक्षुओं की पटुता तिसरूप ते-  
ज के अर्थ तुम प्रवर्त हो ओ॥ २७॥

आत्मने मेवर्चो दावर्च से पव स्वौज से मेवर्चो दावर्च से प  
व स्वायुषे मेवर्चो दावर्च से पव स्व विश्वाभ्यो मेष्पुजाभ्यो  
वर्चो दसो वर्च से पवेथाम् ॥ २८ ॥ †

८० ४० १०० आसुरी अ० ११ यजुः॥ आग्रयणम्। मेरे जीवकी स्व  
स्थता के तेज के अर्थ॥ उक्थ्यम्। समस्त इन्द्रियों का पाटव शरीर  
वावल तिस रूप तेज के अर्थ॥ ध्रुवम्। आयु का निर्दुष्ट जीवन ति  
स रूप तेज के अर्थ॥ पूतभृदाधनी यो युगपद वेक्षते। हे पूतभृत आ  
धवनीय समस्त मेरी प्रजा के अर्थ जो तेज है तिस के अर्थ तुम प्रव  
र्त हो ओ॥ कैसे हो तुम कि तेज के देने वाले। अथवा प्राण व्यानादि  
कों का जो तेज तिस के अर्थ प्रवर्त हो ओ॥ अथवा जो तू प्राण के  
अर्थ तेज का देने वाला सो मेरे ब्रह्म तेज के अर्थ प्रवर्त हो  
एवं सर्वत्र ॥ २८ ॥

कोसि॥ कतमोसि कस्यासि कोनामासि॥ यस्य तेना  
मामन्महि यन्त्वा सो मेनाती तृपाम्॥ भूर्भुवः स्वः  
सु प्रजाः प्रजाभिः स्याथं सु वीरौ वीरैः सुपोषः

पोषैः ॥२६॥†

का० ४०७०१४० द्रोण कलश को देखे। कोसीति प्राजापत्या वर्धमानो  
षिणक् ॥ अध्यस्त प्रजापतिं द्रोण कलशमाह हे द्रोण कलश तू प्र  
जापति है अतिशय करके प्रजापति है तथा प्रजापति का है प्रजा  
पति नामा है अर्थात् प्रजापति का अनन्य भूत है। किंच हम  
जिस्का तेरा नाम जानते हैं मन और ज्ञान से फिर जिस द्रोण क  
लश रूप तुरू को हम सोम करिकें तृप्त करते हैं सो तू हमको नाम  
करिके विदित करि और कामों करिके तृप्त करि इति शेषः ॥ का०  
४०७०१५० भूर्भुवस्वः यजुः जपकरे ॥ हे भूर्भुवस्व अग्निवायुसू  
र्योः प्रजा करिके मे शोभन प्रजा युक्त हों ऊं वीरों करिके सुवीरः हो  
ऊं धन की पुष्टि करिके शोभन पुष्टि युक्त हों ऊं ॥ २६ ॥

अ.प.१३ उपयाम गृहीतोसि ॥ मध्वेत्योपयाम गृहीतोसिमाध  
वायत्वोपयाम गृहीतोसि शुक्रायत्वोपयाम गृहीतो  
सि शुचयेत्वोपयाम गृहीतोसि नभसेत्वोपयाम गृही  
तोसि नभस्यायत्वोपयाम गृहीतोसीषेत्वोपयाम गृ  
हीतोस्यूर्जैर्वोपयाम गृहीतोसि सहसेत्वोपयाम गृहीतो  
सि सहस्रायत्वोपयाम गृहीतोसि तपसेत्वोपयाम गृही  
तोसि तपस्यायत्वोपयाम गृहीतोस्यैहसेस्पतयेत्वा ॥ ३० †

का० ४०१३०१-४० अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता द्वादश ऋतुग्रह करिके अ  
नुतिष्ठे उपयामेत्यादिक द्वादश मंत्र हैं तहां षट् युग्म मंत्रों में पूर्व-  
पूर्व मंत्र करिके अध्वर्यु उत्तर- उत्तर करिके प्रति प्रस्थाता इति मंत्र

† को-मः। अ० भू-षैः इ० ॥ २६

† उ-त्वा० अ० ६५३०। ऋ० त०। आ० हि०। ऊ०। ऋ०। लृ०। क०। च०। ट० ॥ ३०

विवेकः॥लिंगोक्तानि त्रयोदश १०३४५६११० आसुरी ०२६१०  
 १२० आसुरी ०७०८० आसुरी त्रि०॥हे ऋतु ग्रह तू उपयाम करिकें  
 गृहीत है मधवे मधुना मा चैत्र मास के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्त्ता हूँ  
 ति शेषः ॥१॥ माधवाय वैशाख के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्त्ता हूँ ॥२॥ म  
 धु माधवौ वासन्तो मधु प्रमुख अन्न वसंत में होता है ॥ शुक्राय  
 ज्येष्ठ के अर्थ तुम्हें ॥३॥ शुचये आषाढ मासा भिमानी देवता  
 के अर्थ तुम्हें ॥४॥ शुक्र शुची ग्रीष्म मासौ शुच शोषणो ॥ नभ  
 से आषाढ मास के अर्थ सोम तुम्हें ॥५॥ नभस्याय भाद्रपद मासा  
 भिमानी के अर्थ तुम्हें ॥६॥ नभोनभस्यौ वार्षिकौ मासौ मेहकी  
 बाहुल्यता से सूर्य के नदी खने के कारण नभ और नभस्य कहा  
 ॥ इषे आश्विन मास के अर्थ तुम्हें ॥७॥ ऊर्जे कार्तिक मास के अ  
 र्थ तुम्हें ॥८॥ इष अन्न ऊर्ज तिसका उप सेचन दध्यादितिसकी  
 बहुती होती है मनुष्यो लोपाद भेदोपचार द्वाद्दशब्देन ऊ  
 र्क शब्देन च शारदौ मासा बुध्यते ॥ सह से मार्गशीर्ष मास के  
 अर्थ ॥९॥ सहस्याय पुष्य मास के अर्थ ॥१०॥ सहः सहस्यौ  
 है मन्ति को मासौ ॥ तपसे माघ मास के अर्थ ॥११॥ तपस्याय  
 फाल्गुण मास के अर्थ ॥१२॥ तपस्तपस्यौ शैशिरो मासौ तपति  
 सूर्यो यत्रात्यन्तं सतपास्तपस्यश्च ॥ का० ४० १३ १८० जो अश्वर्य  
 की इच्छा हो तो त्रयोदश में ऋतु ग्रह को ग्रहण करें ॥ ऐच्छ को वि  
 कल्पः आसुरी- उ० १३ ॥ हे ग्रह तू उपयाम पात्र करि गृहीत है ते से तु  
 र्क को अंहसः पतये अधिक मासा धिष्ठातृ के अर्थ ग्रहण कर्त्ता हूँ



इति शेषः अंहः पाप तिसका पति । मल मास होनेसे यह वारहों महीना से गिरता है अथवा अहंतेर्गतिकर्मानः निघं० २१४ गतिका पति त्रयोदशवां महीना आदित्य की गति के वश से होता है ॥३०

अ० १४ इन्द्राग्नीः आगतं सुतङ्गीभिर्नभो वरेण्यम् ॥ अस्य पातन्धियेषिता ॥ उपयाम गृहीतोसीन्द्राग्निम्व्यान्त्वे षते यो निरिन्द्राग्निम्व्यान्त्वा ॥३१॥ +

का० १४० २३० २०० प्रति प्रस्थाता इन्द्राग्नी देवता के ग्रह को ग्रहण करने ऐन्द्राग्नी देवतं गायत्री विश्वामित्र दृष्टा ॥ हे इन्द्राग्नी तुम अभिखुत सोम प्रति आओ । कैसा है सोम कि गीर्भिर्नभो वरेण्यं अर्थात् त्रयी लक्षण वाचा करिके जैसे आदित्य प्रार्थनीय है सो नव आदित्य को कहते हैं निरु० २२२ अथवा स्तुति रूपा वाणी करिके युक्त इति शेषः ॥ नभो वरेण्यं स्वर्गस्थ देवताओं करिके प्रार्थनीय किंच हे इन्द्राग्नी तुम इस सोम संबन्धी अंश को पान करो । कैसे हो तुम कि यजमान की बुद्धि करिके प्रार्थना किये गये ॥ ऐसे देवताओं प्रति कहि कर सोम को कहता है उपयामेतिया - ज । सोम तू उपयाम ग्रह करिके ग्रहीत है हे ग्रह इन्द्राग्नी के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्त्ता हूँ ॥ एषत इतिया - यं सादनं । यह तेरा स्थान इन्द्राग्नी के अर्थ तुम्हें सादन कर्त्ता हूँ ॥३१॥

अ० १५ आघायेऽग्निमिन्धुते स्तृणन्ति वर्हिरनुष क ॥ येषामिन्द्रो युवासखा ॥ उपयाम गृहीतोस्यग्नीन्द्रा म्व्यान्त्वे षते यो निरग्नीन्द्रा म्व्यान्त्वा ॥३२॥ +

अग्नीन्द्र देवत्या गायत्री त्रिशोक दृष्ट्वा अस्या विनियोगः कात्याय  
नेन नोक्तः ऐन्द्राग्नग्रहे एव विकल्पः शाखान्तरे ॥ जे यजमान अग्नि  
को सब ओड़ी से दीपन कर्ते अर्थात् इष्टिपशुसोमचातुर्मास्य करि  
के पूजा करते हैं धेत्यनर्थकः । और जे आनु पूर्व से वहि ओं को आच्छा  
दन कर्ते हैं किंच जिन यजमानों का युवा, जरा मृत्यु रहित इन्द्रसखा,  
मित्रवत् उपकारक ॥ उपयामेति या - ज ॥ हे सोम तिन्हों के यज्ञ  
मे उपयाम ग्रह करिके तू स्वीकार किया है अग्नीन्द्र के अर्थ तुम्हें  
ग्रहण कर्त्ता हूं ॥ एषते या - पं सादयति ॥ हे सोम यह तेरा स्थान अ  
ग्नि और इन्द्र के अर्थ तुम्हें सादन कर्त्ता हूं ॥ ३२ ॥

अ. १६ ओमासश्चर्षणीधृतः ॥ ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास  
ऽआगत ॥ दाश्वाश्च सोदाशुषः सुतम् ॥ उपयाम गृहीतो  
सिं विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः एषते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा दे  
वेभ्यः ॥ ३३ ॥

का. ०. १४. १. अध्वर्यु यजमान करिके स्पर्श कर्ते वान कर्ते द्रोण  
कलश से शुक्र पात्र करिके वैश्वदेव ग्रह को ग्रहण करे वैश्वदेवी  
गायत्री मधु छन्दो दृष्ट्वा ॥ हे विश्वे देवा ओ तुम आओ कैसे हो तुम  
कि ओ मासः, रक्षा करने वाले वा अवनीय निरु. १२. ४०. तर्पयि  
तार वा तर्पणीय । तथा चर्षणीधृतः, मनुष्यों के धरण पोषण कर  
ने वाले । अनिष्ट का निरसन, रक्षण, दृष्टका प्रापण, पोषण, इत्य  
वन धरणयोर्भेदः । तथा सोम देने वाले यजमान को फल के देने वा  
ले अर्थात् पूरने वाले । यद्वा सोम को पीने वाले ॥ उपयामेत्यासु

रीगा० हे सोम तू उपयाम पात्र करिके स्वीकार किया है विश्वे देवाओं के  
अर्थ तुझे ग्रहण कर्ता हूँ ॥ एष ते या० ज० सादयति । यह तेरा स्थान विश्वे  
देवाओं के अर्थ तुझे सादन कर्ता हूँ ॥ ३४ ॥

अ० १७ विश्वे देवास ॥ विश्वे देवास ॥ आगतं शृणुताम ॥ इमं हवाम  
एदम्वर्हिर्निषीदत ॥ उपयाम गृहीतो सि विश्वेभ्यस्त्वा दे  
वेभ्यः ॥ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥ †

वैश्व देवी गायत्री गृत्समदृष्टा वैश्व देव ग्रह ग्रहण ॥ एव विकल्पेनाम्ना  
ता ॥ हे विश्वे देवाओं तुम मेरे यज्ञ प्रति आओ और आके मेरे इस आ  
ह्वान को श्रवण करो सुन कर इन मेरी बर्हिओं के ऊपर बैठो ॥ उपया  
मेति पूर्ववत् ॥ ३४ ॥ इति प्रातः सवनं गृहा समाप्ताः

अथ माध्याह्निकं सवनं गृहा उच्यते

अ० १८ इन्द्रमरुत्वः ॥ इन्द्रमरुत्वः ॥ इह पाहि सोमं यथा शर्याते  
अपिवः सुतस्य ॥ तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवास  
न्तिकवयः सुयज्ञाः ॥ उपयाम गृहीतो सिन्द्रायत्वा म  
रुत्वतः ॥ एष ते योनिरिन्द्रायत्वा मरुत्वते ॥ ३५ ॥ †

माध्यन्दिने सवने मरुत्वतीया ग्रह्यन्ते ॥ इति तितिरिबचनात् । तत्र त्र  
यो मरुत्वतीया स्तत्र प्रथममाह का० १००११४० ऋतु पात्र करिके म  
रुत्वतीय ग्रह को ग्रहण करे ऐन्द्रमारुतीश्च तस्त्रिष्टुभो विश्वामित्र  
दृष्टाः ॥ मरुतों करिके सहित हे इन्द्र इस हमारे यज्ञ में सोम को पी।  
केसे पी सो कहते हैं जैसे शर्याति नाम राजा के यज्ञ में अभिषुत सोम  
के अंश को पी आते से यहां पान करि । शर्यातो हवा शत० ४०१५२

किंच हे शूरवीर) तेरी अनुज्ञा करि सुयज्ञाः (कल्याणयज्ञ) कवयः  
(क्रान्तदर्शी) तेरे सुख के निमित्त यज्ञ गृह में तुम्हें परिचार कहते हैं ॥  
हे सोम तू उपयाम करिके गृहीत है मरुतों सहित इन्द्र के अर्थ तुम्हें  
गृहण करता हूँ ॥ सादयति यह तेरी योनि मरुतों सहित इन्द्र के अर्थ  
तुम्हें सादन करता हूँ ॥ ३५ ॥

अ० १५ मरुत्वन्तम्बुषभम् ॥ मरुत्वन्तम्बुषभम्बावृधानमकं वा  
रिन्द्रिव्यर्षं शासमिन्द्रम् ॥ विश्वासाहमवसेनूतनायोग्र  
र्षं सहोदामिह तर्हवेम ॥ उपयामगृहीतोसीन्द्रायत्वा  
मरुत्वतः एषते योनिरिन्द्रायत्वा मरुत्वते ॥

अ० २० उपयामगृहीतोसिमरुतान्त्यौजसे ॥ ३६ ॥ †

द्वितीय मरुत्वतीयमाह । का० १० ३६ रिक्तपात्र करिके शस्त्र सहित  
मरुत्वतीयको लेवे ॥ इस अपने यज्ञ में तिस इन्द्र को हम आह्वान करते  
हैं । कैसे इन्द्र को कि मरुत्वन्त, मरुद्गणोपेत । जल के बरसने वाले । का  
मों के बढाने वाले । अकवारिम् अकुत्सित शत्रुओं वृत्रादि कों वाले  
अथवा उत्कृष्ट ऐश्वर्य वाले । द्युलो में रहने वाले दुष्टों की शासना-  
करने वाले अथवा प्रशासनवन्त । विश्वासाहम्, विश्वं पालय-  
तुं सहते सविश्वसाद् अर्थात् आलसरहित अथवा अभिभव  
के अर्थ में सहति अपने धर्म से बृद्ध हुए सर्वों के अभि भवितार । नूतना  
य नवीन, पालन, इस यजमान की रक्षा के अर्थ उग्र उद्गूण, वज्र  
को । सहोदाम्, बल देने वाले तिस को ॥ उपयामः एषते द्वेयार्या  
ते ॥ ३६ ॥

तृतीयं मरुत्वतीयमाह । का० १००३३ प्रतिप्रस्थाता दूसरे ऋतु पात्र  
करिकें मरुत्वतीय ग्रहको ग्रहण करे उपयाम गृहीतोसि मरुतां त्वो  
जसे मरुद्देवत्यं यजुः । हे मरुत्वतीयग्रह मरुद्देवता ओंके बलके अ  
र्थतुम्हे ग्रहण कर्त्ताहं इति शेषः ॥ सोतू उपयाम करिकें गृहीत है । अ  
पने बलको धारण करि कारण यह कि इन्द्र प्रति आये मरुत इसग्रह  
के ग्रहण करनेसे सबल होते हैं ॥ ३६ ॥

अ० २१ सजोषाऽइन्द्र ॥ सजोषाऽइन्द्रसंगणो मरुद्धिः सोमं म्पिव  
वृत्रहाशूरविद्वान् ॥ जहि शत्रु रं ॥ रपमृधो नुदस्वाथा  
भयङ्कुराणि बिश्वतो नः ॥ उपयाम गृहीतो सीन्द्रो य  
त्वा मरुत्व तः एष ते यो निरिन्द्रो यत्वा मरुत्व ते ॥ ३७ ॥ +

सजोषाऽइन्द्रेति ३७ मरुत्वा इन्द्रेति ३८ ऋग्वेदस्य सोपयामस्य  
मरुत्वतीयग्रहणे एव विनियोगः । वाचः स्तोमे वाचस्तोमाश्चत्वारः  
इति कात्यायनोक्तेः २२६२४ मरुत्वा इन्द्रेति मरुत्वतीमित्याश्रत्वा  
यनोक्तेश्च ७२१ ॥ हे इन्द्र हे शूर वीर तू सोमको पीकें साहें तू कि  
प्रीति करिकें वर्तमान (संतुष्ट) मरुद्गण सहित । इस सोम पान करि  
के वृत्र दैत्य को मारैगा । विद्वान् इस अर्थको जानता है तिस  
हेतु सोमको पीकें वृत्रादिक शत्रुओंको मारि किंच मृधः, युद्ध  
को निवर्तहो ॥ अथवा मृधः संग्रामसे अपनुदस्व जे मारनेसे व  
चे शत्रु तिन्होंको संग्रामसे पालनके अर्थ प्रेरण करि अर्थात् प्रा  
णदान करि । ऐसे वैरियों का नाश करिके निरंतरमें हमको अभय  
करि ॥ उपयामेति व्याख्याते ॥ ३७ ॥

का० १००३०१०० जैसै वैश्व देव ग्रह शुक्र पात्र करिके ग्रहण किया ते सै-  
ही महेन्द्र ग्रह को तिस सै ग्रहण करै ॥ माहेन्द्री त्रिष्टुप् भरद्वाज दृष्टा  
इन्द्र वीर कर्म के अर्थ बढ़ता है । कैसा है इन्द्र कि महा प्रभव तथापि  
मनुष्यवत् आहूय मान आता है अथवा मनुष्यवत् सब ओड़ी सै



मनुष्यों को अभीष्ट कामों से पूरण करता है जैसे राजा अमात्यादि मनुष्यों (सेवकों) को अभीष्ट कामों करि पूरण करता है तद्वत् । और द्विवर्ह वृद्धि वृद्धौ वर्हणं वर्हः- दैत्यों प्रकृति विकृति रूपी सोम याग की वृद्धि है जिसे से वोह अथवा दैत्यों उत्तम और मध्यम स्थानों का वर्हः, वृद्धः प्रभु । तथा बल करि के अमित उपमा रहित अर्थात् अतो लित बल अथवा शतबल करि के अमित अप्रक्षिप्त अर्थात् अनुपहिंसित । तथा अस्मद्वक्- हमारे अभिमुख । सो वर्धमान इन्द्र ऐसा होवे कि सा कि यज्ञ करि के विपुल बल करि के विसृत यजमानों करि के सत्कार (यज्ञ) किया ॥ उप- त्यासुरी अनु० हे ग्रह-महेन्द्र के अर्थ तुम्हें ॥ एष- इत्यासुरी त्रि० सादयति ॥ ३८ ॥

अ० २४ महा ३० ॥ इन्द्रः ॥ ३० ॥ महा ३० ॥ इन्द्रो यः ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमा ३० ॥ इव ॥ स्तोमैर्बृत्सस्यैवावृधे ॥ उपयाम गृह्णातोसिमहेन्द्राय नैषते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ४० ॥ †

माहेन्द्रो गायत्री बल वृष्टा माहेन्द्र ग्रहण एव विकल्पेन विनियुक्ता ॥ जो इन्द्र वत्स- वसन शील- वा वत्सस्थानीय यजमान के स्तोम करि के वृद्धि को पाता है । कैसे है इन्द्र कि तेज करि के महान् कैसे कि वृष्टि युक्त पर्जन्य जैसे वर्षते मेघों की धारा बल करि के बहूतवृत्ता है ॥ उपयामेति द्वे व्याख्याते ॥ ४० ॥

अ० २५ उदुत्यम् ॥ उदुत्यं ज्ञात वेद सन्देवस्वहन्ति केतवः ॥ हरे विश्वाय सूर्यं ॥ स्वाहा ॥ ४१ ॥

का० १० २ ४ ५ वस्त्र बद्ध सोम को जुह्वा में रखकर शाला द्वारा य

† दानाधीनता हेनि, निरु०७.२०.

अग्नि में चतुर्गृहीत आज्य करि कै दक्षिण संज्ञ कहो मकरे ॥ सोरी गा  
यत्री प्रस्क एव दृष्टा ॥ रश्मि तिस प्रसिद्ध सूर्य देव † को उद्धहन क  
रती हैं। कैसे सूर्य को कि जात वेद समू जात ज्ञान बाधन को किस  
लिये उद्धहन करती हैं कि विश्वाय दृशो ऽसव (जगत) के देखने क अर्थ  
तस्मै स्वाहा सु हुत मस्तु ॥ ४१ ॥

चित्रदेवानाम्॥ चित्रदेवाना मुदगादनी कश्चक्षुर्मि  
त्रस्य बरुणस्याग्नेः॥ आप्राद्यावापृथिवीः॥ अन्तरिक्ष  
र्हसूर्यः॥ आत्माजगत्तत्तस्युषश्च स्वाहा॥४२॥

का० १००२६ चतुर्गृहीत आज्यसै शाला- अग्निमें दूसरी आहु  
तिको होमें ॥ सौरी त्रिष्टुप्कुत्स दृष्टा ॥ परापर रूपेण स्थित सूर्यो  
नस्तूयते, सूर्यचित्र (आश्चर्य) जैसे तैसे उदय हुआ वा होता है  
उदय होते ही अपने तेज करिके रात्रि जनित अन्धकार को नाश  
करता है और और ज्योतियों को देते यह आश्चर्य है। कैसा है सूर्य  
कि किरणों का आश्रय वा किरण पुंज। तथा मित्र वरुण अग्नि का नेत्र वत्स काश मित्रादि उपलक्षक समस्त देव मनुष्यों  
के रूप सूर्योदयमें प्रकाश करते हैं इस हेतु मित्रादिकों का चक्षु बोह  
सूर्य उदय होते दिवि भूमि और अन्तरिक्ष को पूरण करता हुआ  
वा अपने तेज करि पूरण करता है इति शेषः। एवमपररूपे  
ण स्तुत्वा पररूपेण स्तोति। कैसा है सूर्य जगतः (जङ्गम) तस्थुषः  
(स्थावर) का अन्तर्यामी। यमेत मादित्ये पुरुषं वेदयन्ते सऽइन्द्रः  
स प्रजापतिस्तद्व्यमेति श्रुतेः सूर्योऽद्वैत मनेनोच्यते इति भावः

तस्मै स्वाहा सुहृतमस्तु ॥४२॥

अग्नेनय॥ सुपथा॥ राये॥ अस्मान्निश्चानि देवव्युनानि चि  
द्वान्॥ युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनोभूषिष्ठान्तेनम॥ उक्ति  
न्विधेम स्वाहा॥ ४३॥

अप्यन्नः ॥ अप्यन्नोऽग्निर्वरिवस्त्रणोत्वयम्मृधः पुर  
ः एतुप्रभिन्दन् ॥ अप्यम्बाजा जयतु बाजसातावययैश  
वृजयन्तु जर्ह्याणः स्वाहा ॥ ४४ ॥

का० १०२७० आग्नाधीय अग्नि में एक बार लिये आज्य को अग्नि  
नय से होमें ॥ का० १०२८० अयंनः से दूसरी आहुति को आग्नी धी  
य में होमें ॥ द्वे ऋचौ व्याख्याते अ० ५ कं० ३६३७ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

रूपेणवः॥रूपेणवोरूपमभ्यागन्तुयोवोविश्ववेराधि  
भजतु॥अतस्यपथाप्रेतचन्द्रदक्षिणाद्विस्वःपश्यव्यन्त  
रिक्षंयतस्वसदस्यैः॥४५॥ +

का० १००२१०० हिरण्य सहित यजमान शाला के पूर्व में खड़ा हो वंदी के  
बाहिर दक्षिण में अवस्थित दक्षिण गोकामभि मन्त्राण करे ॥ रूप  
एत्यादि दक्षिण रित्यन्तं महीधर मते नष्ट रूपानुष्टुप् । कात्यायने-  
पिचतुर्णी दक्षिणा प्रथमा प्रा-हृ० द्वितीयाया-ज० इत्यादि चतुर्णी  
मन्त्राणां छन्दो हलायुधेन व्याख्यातः ॥ पूर्वं पशवः स्वदानमसहमा  
नारूपान्तराणि जगृहुः देवाः स्वैरूपैस्तानुपागतास्ततस्ते स्वैरूपैराज  
गुरिति शत० ४३४०१४० मन्त्रस्य निदानम् ॥ हे दक्षिणारूपा गोकाम  
रूप (मूर्ति) करिके तुम्हारे रूपका में आया हूं इस हेतु तुम भी आओ ।

+ रू-तु।२५०।ऋ-णाः।६०।वि-मू।७०।य-स्यैः।त्रि०॥४५॥

+ ब्रह्मवेत्तुष इति शत० ४०३४१३५

सबही अपने स्वरूप को प्राप्त होओ इति भावः॥ किंच तु यः ब्रह्मरूपः प्रजापति तु मे यथा योग्य ऋत्विजों के अर्थ देवै + कैसा है तु यः किं विश्ववेदा (सर्वज्ञ) किंच तु मयह जान कर यज्ञ के मार्ग करि कैचलो कैसी हो तुम कि चन्द्र दक्षिणः चन्द्र सुवर्ण यजमान के हाथ में स्थित दूसरी दक्षिण जिन्हों की वोह चन्द्र द्वितीय दक्षिण॥ का० १०२१७० सदमें जावें विस्वरितिया- अ०॥ हे दक्षिण में स्वर्ग (देवयान मार्ग) की देखता हूं तुम सोमयान भूता करि कै इति भावः॥ का० १०२१८० यजमान ऋत्विजों को देखे यतस्व सदस्यै रितिया- गा०॥ हे दक्षिणे तू यत्न करि जैसे ऋत्विजों के पूरण करने से न घटे इति शेषः तैसे तुम यत्न करना योग्य है जैसे ऋत्विज धन से पूरण करि कै तू अधिक हो इति भावः॥ ४५॥

ब्राह्मणमद्य॥ विदेयमपि तृमन्तम्ये तृमत्यमृषिभार्षे-  
यर्ह सुधातु दक्षिणम्॥ अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदा-  
तारुमा विशत॥ ४६॥ +

का० १०२१८० ब्राह्मणमद्य इससे स्वस्थान स्थित आग्नीध्र (ऋत्विज) प्रतियजमान जावें॥ लिंगोक्त देवतान्यष्टौ ब्राह्मणमद्येत्या र्षी वृ० ब्राह्मण देवत्यम् में ने आज के दिन में ऐसे ब्राह्मण को पाया कैसे को कि पितृमन्तम् प्रशस्त है पिता जिसका तिसको नहीं कोई विना पिता के उत्पन्न होता परन्तु यहां प्रशस्त के अर्थ में मतुष अर्थात् विशिष्ट जन को उत्पन्न को। तथापै तृमत्यम् पिता महादिक जगन्मान्य है जिस के तिसे। अथवा सर्वथा जिसके पिता महादिक

श्रोत्री हैं सो पैतृमत्य । तथा ऋषिम् मंत्रों की व्याख्या करने वाले को । तथा आर्षेयम् ऋषियों में बिख्यात । जाति करके बड़ा अर्थात् ज्ञान करि सुज्ञान को । तथा सुधातु दक्षिणम् सुवर्ण है दक्षिण है जिसकी तिसको ॥ का० १००२२० वैठिके आग्नीध्र के अर्घ्यदक्षिणा देवै ॥ अस्मद्राता आर्षी गा० दक्षिणा दे० । हे दक्षिणा तुम हमारी दी हुई देवताओं प्रति जाओ । तिन्होंकी तृप्ति करिके फिरिय ज फलका साधन कर तीयजमान प्रति प्रवेश करौ ॥ ४६ ॥

अग्नयेत्वा ॥ अग्नयेत्वा मह्यम्बरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीयायुर्हीत्रं अधिमयो मह्यम्प्रतिग्रहीत्रे रुद्रायत्वा मह्यम्बरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीय प्राणो दात्रं अधिचयो मह्यम्प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतयेत्वा मह्यम्बरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीयत्वग्दात्रं अधिमयो मह्यम्प्रतिग्रहीत्रे इन्द्रायत्वा मह्यम्बरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीय हयो दात्रं अधिचयो मह्यम्प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

का० १००२२० अग्नयेत्वा सै अर्ध्वर्यु प्रति प्रस्थातारहिरण्य प्रति ग्रहण करें ॥ आर्षी त्रि० हिरण्ये दे० । हे हिरण्य वरुण मे अग्नि रूपा यज्ञ मेरे अर्घ्य तुम्हें दिया । पहिले वरुण ने अग्न्या दिकों के अर्घ्य सुवर्णदि दिया इस हेतु तिन देवताओं के आदेश करि प्रतिग्रहण करनेवाला विप्र नाशको नहीं प्राप्त होता । इसविधिसे ग्रहण करनेवाला सो में अमृतत्व (आरोग्यता) को प्राप्त होउं हे हिरण्य तू दाता की आयु का जीवन हो मुरु प्रतिग्रह करने वाले का सुख हो । दाता आ

युष्मानहोवै में सुखीहोंउं इतिभावः॥का०१००२०२६० रुद्रायत्वेतिगो  
 का प्रतिग्रह करै॥यजुः गोदे० हेगो रुद्र रूप मेरेलिये वरुणनेतुमै  
 दिया सोमें अमृतत्व को प्राप्त होंउं हेगोतू देनेवाले यजमानके अ  
 र्थ प्राण हो मुरु प्रतिग्रहीता के अर्थवय (अन्नवापशु)हो॥अर्थात्  
 दुग्ध दध्यादिरूपकरि अन्न और सन्तति द्वारा पशुहो॥का०१००२०  
 ३०० बृहस्पतयेत्वासे वस्त्र ग्रहण करै॥यजुः वासो देव० हेवस्त्र बृ  
 हस्पति रूप मेरे अर्थ वरुण ने तुमै दिया सोमें अमृतत्व को प्राप्  
 त होंउं और तू दाता के अर्थत्वक् इन्दी का सुखकारी हो और मुरु  
 प्रतिग्रहीता के अर्थ सुखहो॥का०१००२०३१० यमायत्वासे अश्वग्रह  
 ण करै॥यजुः अश्वदेव० हे अश्व यमरूप मेरेलिये तुमै वरुणनेदि  
 या सो यम रूप में प्रतिग्रहीता अमृतत्व को प्राप्त होंउं हे अश्व तू दाता  
 के अर्थ अश्व हो मुरु प्रतिग्रहीता के अन्न वा सन्तति द्वारा पशुका  
 दाताहो॥४७॥

कोदात्॥कोदात्कस्मा० अदात्कामोदात्कामायादात्॥

कामोदाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतै॥४८॥

इतिसर्गहितायां पञ्चविंशोऽनुवाकः २५

इतिश्री शुक्लयजुषि माध्यदिनीशाखीयायां वाजस

नेयसर्गहितायां दीर्घपाठे सप्तमोऽध्यायः ७

का०१००२०३२० हिरण्यादिद्रव्यसै अन्यमन्योदनतिलादिप्रतिग्रह  
 करै॥प्राजापत्यात्रिष्टुप् कामदेवत्यम्। दातुर्दानाभिमानाभावाय  
 स्वस्यच प्रतिग्रहजदोषाभावायचदेहेन्द्रियात्म संघाते संधाने



कामं विनि नक्ति। किस मनुष्य ने दिया किस मनुष्य के अर्थ दिया।  
प्रश्नद्वयोत्तरमाह। कामने दिया काम के ही अर्थ दिया नतूदातान  
में प्रति गृहीता तेरे कामाभि मानी देवताने मेरे कामाभि मानी देव  
ता के अर्थ दिया एवं च काम एव दाता काम एव प्रति गृहीतानान्यः  
हे काम तेरे दातृ प्रति गृहीतृ होने से यह द्रव्य तेरा है ॥४८॥

इति श्रीगिरिधरभाष्ये पञ्चविंशोऽनुवाकः २५  
श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
पुमार्याश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः १

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाध्येत व्याघ्रपादा-  
न्वय विश्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेववर्माजगै  
किमण्य नृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधर  
भाष्ये उपांश्चादिदानान्तवर्णनेनाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्म रूप परं स्तुमः १

अ०१ उपयाम गृहीतोसि ॥ उपयाम गृहीतो स्यादित्येभ्यस्त्वा ॥

विष्णोऽ उरुगायैष ते सोमस्तर्हिरक्षस्व मात्वा दभन् ॥१॥

ओं नमो यज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ॥

गृहगृहानिमित्तान्तोष्टमोऽध्यायः प्रकथ्यते ८

सात वै अध्याय में उपांशु ग्रहसँ आदित्ये सवन द्वयगतदक्षिणादय  
नान्तमन्त्र कहे आठवेमें तृतीयसवनगत आदित्य ग्रहादिमन्त्र क  
हतेहैं॥ तत्र का० ४० ४० १५० प्रतिप्रस्थाता दो देवताओं सहित होम के  
अर्थ आदित्य पात्र करिके द्रोण कलश सँ सोम को ग्रहण करै॥  
उपयाम गृहीतोसीतिया-अ० सोम देवत्यम् । हे सोम तू मुझ करिके  
उपयाम पात्र सँ गृहीत है॥ का० ४० ४० २०० दो देवताओं के होम कि  
ये पीछे हुत शेष को आदित्य स्थाली में डालै॥ आदित्येभ्यस्त्वा-  
दै०-पं० सोम देव० । हे सोम आदित्यों के अर्थ तुम सँ चिताहूँ इति  
शेषः॥ का० ४० ४० २१० संस्त्रव का आसिंचन करिके तिस आदि  
त्य पात्र सँ स्थाली को ढकै॥ विष्णावेत्वा सा-वृ० विष्णु दै० । हे विष्णो  
(यज्ञ पुरुष) हे उरुगाय (बहुतों करि गाये गये) यह सोम तेरा तेरे  
अर्पण है तिस सोम को रक्षा कर सोम के रक्षा करने में तुम रक्षस  
लोग मत हिंसा करे इति शेषः॥ १॥

कदाचन ॥ स्तरीरसिनेन्द्रसश्चसिदाशुषे॥ उपोपेन्नु  
मघवन्भूयः इन्नु ते दानेन्देवस्य पृच्यतः आदित्ये  
भ्यस्त्वा॥ २॥ + क-ते। अ०। आ-स्त्वा। इ०॥ २॥

का० १०० ४० ४० होम शेष संस्त्रव सँ आदित्य ग्रह को ग्रहण करै।  
आदित्य देवत्ये बृहत्यो यजुरन्ते आदित्येभ्येति यजुः । सा बृहती  
बृहदुपस्थान मध्ये ३३४० इन्द्र देवत्या प्रथमोक्ता व्याख्याता च  
इह त्वादित्य देवत्या यजुरन्ता चेति विशेषः॥ हे इन्द्र कभी हिंस  
क नहीं है किन्तु हवि देने वाले यजमान का हवि स्वीकार करता है

कों कियजमानके अत्यन्त समीप हैं हे धनवान् इन्द्र फिर भी तेरे हे  
ने योग्य हवि तुम्हें करिके संबन्ध करिये हैं अर्थात् यजमान करिके  
दिया हवि तुम्हें करिके स्वीकार करिये हैं ॥ आदित्येभ्यस्त्वा २३४  
यजुः हे ग्रह आदित्यों के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ इति शेषः  
यहां इन्द्र नाम करिके आदित्य ही स्तुति करिये हैं ॥ २ ॥

कदाचन ॥ प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी ॥ तुरीयादि  
त्यसर्वनन्त इन्द्रियमातं स्यावमृतं न्द्रियादित्येभ्य  
स्त्वा ॥ ३ ॥ †

का० १००४५ धारा से तोड़ कर पूत भृत में से अपने समीप में ले  
ते हैं ही फिर आदित्य ग्रह को ग्रहण करें ॥ हे आदित्य तू किसी का  
ल में भी प्रमादित नहीं है । उदय तप पाक प्रकाश से प्राणि यों  
का अनुग्रह करता है कभी आलस्य नहीं करता इति भावः ॥ अ  
थवा कदाचनेति पदत्रय चकारोप्यर्थे कदापि अपने कर्म में नहीं  
प्रमाद करता है । किंच दोनों मनुष्य जन्मनी देवा संवधिनी का  
पालन करता है । किंच तेरा तुरीय चौथा माया तीत शुद्ध सत्त्व अ  
पने कार्य से जगत की प्रेरणा करता जगत्प्रवर्तक अमृत अविना  
श्वर विज्ञान आनन्द स्वभाव जो इन्द्रिय वीर्य सोद्युलोकम  
ण्डलान्तर में अभिमुख्य करि स्थित तदुक्तम् पादोऽस्य विश्वाभू  
ताति ३१३ । एवमादित्यः परापररूपेण स्यामृचिस्तुतः ॥ यद्वा स्या  
अचोर्थान्तरम् प्रशब्दो निषेधे च न शब्दोऽप्यर्थे हे आदित्य तू क  
भी नहीं प्रमाद करता है किंतु दोनों वर्तमान भाविनी जन्मों में

क्षाकरताहै। तृतीयमित्यर्थे व्यत्ययेन तुरीयशब्दः प्रयुक्तः हे आदित्य तेरा जो तृतीय सवन में इन्द्रियों की वृद्धि करने वाला अमृत समान हवि सब ओड़ी से स्थित ॥ हे आदित्य ग्रह आदित्यों के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ इति शेषः ॥३॥

यज्ञो देवानाम् ॥ यज्ञो देवानाम्प्रत्येतिसुम्नमादित्या  
सो भवेतामृडयन्तः ॥ आवोर्ध्वो ची सुमतिर्विवृत्यादृष्टं  
होश्चिद्यावरिवो विन्नरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥४॥†

का० १००४६० आदित्य ग्रह को दधि से मिश्रित करें ॥ आदित्य देवत्या यजुरन्ता त्रिष्टुप् कुत्सदृष्टा आदित्यभ्येस्त्वेति यजुः। यज्ञ देवताओं (आदित्यों) के सुख करने प्रति आता है। हे आदित्य ओ तुम हमारे सुख करने वाले हो ओ। किंच जो तुम्हारी भक्तानुग्रह पराशोभन वृद्धि सो हमारे अभिमुखी वर्ते। किंच अंहो श्वित् (हनन शील पाप कारी की भी जो सुमति वरिवो विन्नरा (अत्यन्त धन की लाभ करने वाली) हो सो सुमति हमारे अभिमुखी वर्ते इति संबंधः। हे सोम आदित्य देवताओं के अर्थ तुम्हें दधि से मिश्रित करता हूँ इति शेषः ॥४॥

विवस्वन्नादित्य ॥ विवस्वन्नादित्येषते सोमपीथस्तस्मि  
न्मत्स्व ॥ अदस्मै नरोवच सेदधातनु यदाशीर्हादम्यती  
वाममंश्रुतः ॥ पुमान्पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विन्वाहा  
रुपः राधते गृहे ॥५॥

का० १००४७० पाषाण करि दधि और सोम को मिलावें ॥ आदि

त्य देवत्यं यजुः॥ तमों का नाश करने वाला वा विशिष्ट वसुधनवाला वि  
वस्वान् तिसका संबोधनवि वस्वन् हे विवस्वन् हे आदित्य यह यात्र  
में स्थित तेरे पीने योग्य सोम तिसपीने योग्य सोमसे तू तृप्ति करि का०  
१०५४ अदस्मै से पत्नी पूत भृत को देखे। आशीर्देवत्या जगती नर दे  
वत्या वा †॥ पत्नी वदति। हे नरः॥ नेतार ऋत्विग्य जमानो आशि  
षा के देने वाले तुम मेरे आशीष वचन में श्रद्धा (आस्तिक्य बुद्धि)  
करो मेरा कहा हुआ आशीर्वचन तुम लोगों की श्रद्धा करि धारण  
करने से तेसाही होगा इति भावः। कोन बोह आशीर्वचन उसे क  
हती हूं जो दम्पती (जायापत्नी पत्नी यजमान) संभजनीय यज्ञ फ  
ल को प्राप्त हों। किंच पुमान् पुंस्त्वधर्म संपन्न पुत्र होवै किंच वोह  
पुत्र वसुधन को पावै निरन्तर में धन पाने पर सर्वदा पापरहित  
अपने घर में बैठे। आशिषा के देने वाले दम्पती यज्ञ फल को प्रा  
प्त हों तिन्हों के पुत्र हो और सोधन का लाभ करि कै पापरहित अ  
पने घर में बैठे इस आशीर्वचन में श्रद्धा करो इति सर्वार्थः॥ ५॥

† इति महीधरः

अ० २ वाममद्य॥ सवितर्वा ममुष्वोदिवेदिवेवा ममस्मभ्यर्था सा  
वी॥ वामस्य हि क्षयस्य देवभूरै र्याधिया वामभाजः स्याम॥ ६॥

का० १०५१३ सवनीय पुरोडश इडामक्षण सवनीय संबधिकर्म  
समाप्त करि उपांश्वन्त यमि से अन्यतर सावित्र को ग्रहण करे।  
कण्डिका द्वायात्मको मन्त्रः प्रथमा त्रिष्टुप् बृहस्पति पुत्रो भरद्वा  
ज दृष्टा द्वितीया यजुषी द्वे सवितृ देवते॥ हे सवितः सव के त्रेरक  
देवता आज के दिन हमारे लिये वाम सावीः वननीय पक्ष फल-

को प्रेरि अर्थात् दे। और श्वः भी अच्छे प्रकार निरंतर दिन में वामंसा  
वीः। तिस के ऊपर दिन दिन में हमारे अर्थ वामंसावीः। जिस हेतु इ  
स श्रद्धा युक्त बुद्धि से हम यज्ञ के अनुष्ठान कर होंगे। किसलिये कि  
वननीय विस्तीर्ण बहु कालीन स्वर्गनिवास की सिद्धि के अर्थ। य  
द्वोतरार्धस्यायमर्थः हे देव वननीय धनपूर्ण निवास का दाता हो इ  
ति शेषः इस धियाऽधीरिति कर्मनामनिघं ०२१० सोमारव्य कर्म  
से हम वामभाजः स्वामः अमिलषित भागी होंगे ॥ ६ ॥

उपयाम गृहीतोसि ॥ सावित्रोसि चनोधाश्चनोधाऽअसि  
चनो मयि धेहि ॥ जिन्वयज्ञं जिन्वयज्ञं पतिम्भगाय  
देवायत्वासवित्रे ॥ ७ ॥

हे सोम तू उपयाम करि गृहीत है हे ग्रह तू सवित देवता के हे चनोधाः  
अन्न का धारण करने वाला जो कि तू अत्यन्त करि चनोधा है इस हे  
तु अन्न मेरे स्थापन करि किंच यज्ञ को प्रीति करि और यज्ञ पति  
यजमान को तृप्त करि ऐश्वर्यादि गुण युक्त सवित्रे समस्त प्राणियों  
के प्रसवादि करने वाले देवता के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ इति  
शेषः ॥ भग का अर्थ ऐश्वर्य, वीर्य, यज्ञ, श्री, ज्ञान, वैराग्य, इ  
न्हों का समुदाय ॥ ७ ॥

अ० ३ उपयाम गृहीतोसि सुशर्मासि ॥ सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षा  
यनमः ॥ विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः एषते योनिर्विश्वेभ्य  
स्त्वा देवेभ्यः ॥ ८ ॥ † उभ्यः ॥ अ० १ ए-भ्यः ॥ ६० ८ ॥

का० १००६२ विन भक्षण किये सावित्र ग्रह यात्र करि कैपूत भृत में से



अध्वर्यु महावैश्वदेवग्रह का ग्रहण करे ॥ वैश्वदेवं यजुः ॥ हे वैश्वदेव ग्रह  
तू उपयाम करिके ग्रहण किया है जिस कारण सुशर्मा शोभन शर्म वा  
सुरव का आश्रय है। तथा सुप्रतिष्ठानः पात्र में स्थिति है जिसकी तैसा  
है। अर्थात् दोनो विशेषण करिके प्राणरूप है +। ग्रह को अन्नरूप औ  
र अन्न को प्राण का हेतु होने से ग्रह को प्राणत्व है। जो कि ऐसा है तिस  
कारण बृहदुक्ष वडे उक्षा सेक्ता अर्थात् जगत के उत्पन्न करने वाले प्र  
जापति + के अर्थनमः ५ अन्न होने योग्य है इति शेषः ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यो  
ऽर्घ्यायत्वा गृह्णामि ॥ सादयति। एष ते या-ज० व्याख्यातन् ॥ ८ ॥

अ० ४ उपयाम गृहीतां सि ॥ बृहस्पति सुतस्य देवसोमतः इन्दोरि  
न्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहा रं ॥ ५ ऋध्यासम् ॥ अहम्परस्ता  
दहमवस्ताद्यदन्तरिक्षन्तदुमेपिताभूत् ॥ अहर्ठसूयं  
मुभयतो ददर्श हन्देवानां म्परमद्गुहायत् ॥ ६ ॥ +

का० १०. ६. १६. उपांशु अन्तर्याम दोनों में से किसी एक करि प्रतिप्रस्थ  
ता पत्नीवत ग्रह को ग्रहण करे। ब्राह्मीगा० सोमदेवतम् ॥ हे दीप्यमा  
न हे सोम तू उपयाम पात्र करिके गृहीत है इस हेतु तेरे संबंधी उपांशु  
प्रभृति अन्य ग्रहों को में ऋध्यासम् भरता हूँ। कैसे हैं तेरे कि बृहस्प  
ति सुतस्य बृहतः- वडे यज्ञकर्म के पति- यजमान के अभिषुत अ  
थवा बृहस्पतियों ब्राह्मणों ऋत्विजों के अभिषुत। तथा इन्दोः उन्दी  
लेदे- लेदन रूप अर्थात् रस रूप। तथा वीर्यवान्। तथा पत्नी संयुक्त ॥  
का० १०. ६. १७. प्रचरणी केशिष्ठ आज्य करि पत्नीवत ग्रह को मिश्रि  
त करे। प्रजापति रूपात्म देवत्या त्रिष्टुप् अन्न मंत्र द्रष्टा स्वस्य सर्वगत

प्रजापति रूपात्म देवत्या त्रिष्टुप् अन्न मंत्र द्रष्टा स्वस्य सर्वगत  
+ प्रजापति रूपात्म देवत्या त्रिष्टुप् अन्न मंत्र द्रष्टा स्वस्य सर्वगत  
+ प्रजापति रूपात्म देवत्या त्रिष्टुप् अन्न मंत्र द्रष्टा स्वस्य सर्वगत

परमात्मरूपमभिप्रेत्य वदति। में परमात्मरूपहो सुलोकादिक औरत  
था में भूलोकादिक में ठैराहूँ इति शेषः जो मध्यवर्ती अन्तरिक्षलोक  
रूपहै सो मेरी देहको धारण करनेवाला पितृवत्पालकहूँ। में परमात्म  
रूपहो ऊपर और नीचे में स्थित होकर सूर्य को देखताहूँ। इन्द्रादिक  
देवताओं के जो अत्यन्त गोप्य हृदय में हैं सो में हूँ ॥८५॥

अग्ना ३॥ १ इ पत्नीवन् ॥ सजूर्देवेन त्वष्टा सोमं पिब स्वाहा  
प्रजापतिर्वृषासिरेतो धारेतो मयि धेहि प्रजापते स्तेवृ  
षाणो रे तो धसौ रे तो धामंशीय ॥ १०॥ +

+ अग्ना ३ इति वापा ६।

का० १०० ६ १४ पत्नीवत ग्रह को अग्नि के उत्तर भाग में हो में  
अग्नि देवत्यं यजुः ॥ हे अग्ने हं पत्नीयुक्त त्वष्टा देवता से समा  
न प्रीति होके तू सोम को पी स्वाहा सुहृतमस्तु ॥ का० १०० ७ ३  
नेष्टा पश्चिम द्वार से पत्नी को सद में प्रवेश कराये उद्गाता के उत्तर  
स्थित पत्नी प्रति (उद्गातारं पश्य) उद्गाता को देखिय यह कहै तब वो  
ह पत्नी प्रजापतिर्वृषासीति मंत्र पढ़ि कर उद्गाता को देखे ॥ ओ  
षीत्रि० प्रजापतिदे० ॥ हे उद्गातः प्रजा का पालक तू सेक्ता है और  
र वीर्य का धारण करानेवाला है। ऐसा तू वीर्य को मेरे स्थापन  
करि ततः वीर्य के सींचने वाले वीर्य के धारण कराने वाले  
प्रजापति तेरे अनुग्रह से प्रजोत्पादन समर्थ पुत्र की प्राप्ति हो ॥ १०  
अ० ५ उपयाम गृहीतोसि ॥ हरिरसि हारि योजनो हरि  
भ्यान्त्वा ॥ हय्यैर्ध्यानास्थ सुहसो मा इन्द्रा  
य ॥ ११॥ +

का० १००८१० आग्रयण स्थालीस्थ सोम से हारियोजन ग्रह का  
 अश्वर्यु ग्रहण करे ॥ उप० हरिरसी त्यायी उ० ऋक्सा मदेव० ॥ हे  
 ग्रहतू हरितवर्ण है ॥ और उपयाम करि गृहीत है कैसा है तू कि हारियो  
 जन हरी इन्द्र के घोड़े तिन्हो कायोजन करनेवाला इन्द्र तिसका संबंधी हा  
 रियो जन तिस तुम्हें हरिभ्यां ऋक्सा मंत्रो के अर्थ ग्रहण करता हूँ  
 ॥ का० १००८२० हारियोज में भृष्टयवों को बपे ॥ हर्योर्धना या-जन्धा  
 नादेव० ॥ सोम सहित भृष्ट यवों तुम इन्द्र के हरित वर्ण अश्वों के हो  
 अर्थात् इन्द्राश्व संबंधी तुम हो ॥ ११ ॥

यस्ते अश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य त इष्टयजुषस्तु त  
 स्तोमस्य स स्तोक्थस्योपहृतस्योपहृतो भक्षयामि ॥ १२

का० १००८५० सब ऋत्विज भृष्टयवों को ले यस्ते मंत्र से घ्राण भक्षण  
 करि उत्तर वेदी में डालें भक्षद्रव्य दैवत्यं यजुः ॥ हे धाना सहित सो  
 म भक्षद्रव्य जो तेरा भक्षण अश्वों का दाता और जो तेरा भक्षण गौओं  
 का दाता तिस तेसे तेरे भक्षण को जानिकर भक्षण करता हूँ। कैसे  
 तेरे कि इष्टयजुषः इष्टयजुका। तथा स्तुत सोमस्य उद्गाताओं क  
 रिस्तुतिकिया तिसका। तथा शस्तोक्थस्य होताओं करि शस्त उ  
 कथ शस्त्र जिसके तिसका। तथा उपहृतस्य जानेहुए का अर्थात्  
 तिसमें ये हैं ॥ १२ ॥

देवकृतस्यैनसः ॥ देवकृतस्यैनसो वयजनमसि मनुष्यक  
 तस्यैनसो वयजनमसि पितृकृतस्यैनसो वयजनमस्यात्  
 कृतस्यैनसो वयजनमस्यैनसः एनसो वयजनमसि ॥ यच्च।

हारि रसी त्यायी उ० ऋक्सा मदेव० ॥ हे  
 ग्रहतू हरितवर्ण है ॥ और उपयाम करि गृहीत है कैसा है तू कि हारियो

१ मक्सा २  
 री ३ ऋक्सा  
 ४ हेनं ग ५ त  
 शत ० ४

हमेनोविद्वांश्च कारयच्चाविद्वांसस्य सर्वे स्येन सो वयं न  
नमसि ॥१३॥†

का० १००६८० छेमन्त्रों से छेयूप शकलों का आहवनीय में आधान  
करै। आग्नियानिषट् १३४ आसुरी अ० २ आसुरी उ० ५ आसुरी वृ०  
६ आषी वृ० ॥ हे शकल तू देवविषय में किये यजन के अभावादिल  
क्षण पाप का नाश कहै ॥ मनुष्यों में किये द्रोह निन्दादि पाप का नाश  
कहै ॥ पितरों में श्राद्धाकरण पाप का नाश कहै ॥ आत्मविषय किये  
आत्मनिन्दादि पाप का नाश कहै ॥ जितने क पाप हैं तितनों का नाश  
कहै ॥ किंच ज्ञान पूर्वक अर्थात् जान बूझ कर जो कुछ पाप हमने कि  
या और विनजाने जो हमने किया तिन सब जाने अनजाने का नाश  
कहै ॥१३॥

संवर्चसा ॥ पर्यसा सन्तनूभि रगन्महिमनं सा सर्वं शिवेन ॥

त्वष्टा सुदक्षो विदधातु रायो नु मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१४॥

का० १००८०० चात्वाल से निकट में होत्रादि क्रम पूर्वक जागग्रदश-  
चमस स्थापन किये थे तिनहों को जल से पूर्ण करि तिनहों पर आर्द्र द  
भों को रखयथा क्रम स्पर्श करै ॥ त्वाष्ट्री त्रिष्टुप् व्याख्यातापि २०२४  
व्याख्यायते ॥ ब्रह्म तेज करि हम संगत होते हैं ॥ क्षीरदिरस क  
रि ॥ अनुष्ठान सामर्थ्य शरीर वयवों करि ॥ समीचीन कर्म अद्वा  
युक्त मन सा करि ॥ किंच शोभन दानी त्वष्टा देव धन स्थापन करै  
हमारे शरीर के जो न्यून अङ्ग तिनहों के न्यूनत्व का परिहार करि अ  
नुकूलत्व करि कै शोधै ॥१४॥

† हे सि। अ० म-सि। इ। पि-सि। उ० आ-सि। ऋ० ए-सि। लृ० य-सि। आ० ॥१३॥

अथसमिष्टयजुर्मन्त्राउच्यन्ते  
अ० ६ समिन्द्र ॥ एणो मनसानेषि गोभिः सर्धं सूरिभिर्मघव  
न्स थं स्वस्त्या ॥ संब्रह्मण देवकृतं यदस्ति सन्देवानां थं सु  
मृतौ यज्ञिया नां थं स्वाहा ॥ १५ ॥

का० १००८११ समिन्द्रणः इन्ननवध मन्त्रों की समिष्टयजुः संज्ञा है  
तिन्हों से नव आहुति होमें : तत्राद्यः ॥ विश्व देवत्या त्रिष्टुप् अत्रि दृष्टा ॥  
हेमघवनू धनवनू हे इन्द्र अनुग्रह युक्त मनसा करि हमें तू संने  
षि भले प्रकार योजन करि । वाणी वा पशु ओं करि संनेषि । सूरि  
भिः ॥ होत्रादि पण्डितों करि संनेषि और क्षेम करि संनेषि । ब्राह्म  
णार्थ ज्ञान सहित वेद करि । देवकृतं देवताओं के अर्थ किये वादे  
स्वे यज्ञाख्य कर्म तिस करि । तथा यज्ञ संबंधी देवताओं की अनुग्र  
ह बुद्धि में संयोजयसि । जो तू हमको एवं मन आदि करि संयोजय  
सि तस्मै स्वाहा एतद्विः सुहृतमस्तु ॥ १५ ॥

सम्बर्चसा ॥ पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सर्धं शिवेन  
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रयोनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १६ ॥  
अथ द्वितीयः त्वाष्ट्री त्रिष्टुप् प्रजापति दृष्टा व्याख्याता १४ ॥ १६ ॥  
धाता एतिः ॥ संबिते दक्षुषन्ताम्यजापतिर्निधिपादेवो  
अग्निः ॥ त्वष्टा विष्णुः प्रजया सर्धं रराणा यजमानाय द्रवि  
णन्दधातु स्वाहा ॥ १७ ॥

तृतीयः ॥ धातु सवितु प्रजापति देवाग्नि त्वष्टा विष्णु देवत्य त्रिष्टुप् ।  
धाता सविता प्रजापति अग्नि त्वष्टा विष्णु एते षट् देवता इत्यह

मारे समिष्ट यजु रूप हवि को सेवन करें। कैसे हैं कि धाता दानशील  
प्रजापति महा शङ्ख पयादिनिधियों का पालक। अग्नि दीप्यमान।  
किंच वे इतने देवता यजमान की संततिके साथ अच्छे प्रकार रम  
ए करते यजमान के अर्थ धन देवें। स्वाहा एतेभ्यः सुहुतमस्तु ॥ १७ ॥

सुगावः ॥ सुगावो देवाः सर्वनाः ॥ अकर्म्यः ॥ अजग्मे दर्शं  
वर्नं जुषाणाः ॥ भर्माणा ब्रह्माना हवींश्च प्यस्मिधतवसवो  
वस्तुनि स्वाहा ॥ १८ ॥

चतुर्थः ॥ देवदेवत्या त्रिष्टुप्। हे देवताओं तुम इस यज्ञ को सेवन करते  
आए तिन तुम्हारे स्थानों को हम सुगम कर्ते हुए। किंच हे निवास के  
हे तु देवताओं हममें तुम धनों को स्थापन करें। कैसे हो तुम कि य  
ज्ञ की समाप्ति में हवियों को भरते जे रथी हैं ते रथों पर रखते रथ ही  
नि कंधों पर रखते अथवा पुष्ट हो रथादिकों करि चलते हो तिन तु  
म्हारे अर्थ स्वाहा सुहुतमस्तु ॥ १९ ॥

पाशैः ॥ आवहः ॥ पाशैः ॥ आवहः ॥ उशतो देवदेवांस्तमन्त्रैर  
यस्वेः अग्ने सधस्ये ॥ जक्षिवांश्च संः पपिवांश्च संश्च विश्वे  
सुधर्मश्च स्वरातिष्ठ तानु स्वाहा ॥ २० ॥

पञ्चमः ॥ आग्नेयी त्रिष्टुप् इदानीं देवान् विसृजामि। हे अग्ने हे दी  
प्यमान हवियों की कामना करने वाले जिन देवताओं को तुमने बुला  
या है तिन देवताओं को अपने निवास स्थान प्रति चलाओं। क्या  
कहि कर चलाओं सो कहिते हैं कि हे देवताओं तुम सब सवनीय पुरो  
डाशों को भोजन करि चुके। तथा सोम पी चुके हो इस हेतु यज्ञ की



समाप्ति में असुं - हिरण्य गर्भ प्राण लक्षण वायुमण्डल वास्वः -  
द्युलोक को आश्रय करौ अर्थात् जिन जिन के जहां घर हैं तिन ति  
न को आश्रय करौ स्वाहा सुहृत मस्तु हविः ॥ १८ ॥

वयं हि त्वा प्रयति यज्ञेऽस्मिन्नग्ने होतारुमवृणीम  
हीह ॥ ऋधं गयाऽऋधं गुताशमिष्ठाः प्रजानन्यज्ञ  
मुपयाहिविद्वान्त्वाहा ॥ २० ॥

षष्ठः ॥ आग्नेयी त्रिष्टुप् इदानीमग्निं विसृजति ॥ हे अग्ने जि  
स कारण पाय इस दिन वास्थान में तुरू यज्ञ में वर्तमान हुए देवता  
ओं के होता वा होम निष्पादक को हम वरण करते हुए तिस कार  
ण वरण किया तू समृद्धि जैसे हो तैसे करता हुआ अथवा यज्ञ  
करता हुआ । और यज्ञ प्रायश्चित्त वा विघ्न शान्ति करता हुआ सो  
तू इस यज्ञ की समाप्ति को जानकर अपने घर को जा कैसा है तू कि  
विद्वान् (पण्डित) अपने अधिकार को जानता है स्वाहा तुभ्यं सु  
हृतमस्तु ॥ २० ॥

देवा गातुविदः ॥ देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ॥  
मनसस्यतऽदुमन्दैव यज्ञं स्वाहा ब्रातैधाः ॥ २१ ॥

सप्तमः ॥ वातदेवत्या विराट् मनसस्यतिदृष्टा ॥ व्याख्यातापि २२  
उच्यते । नानाविधि वेदशब्दोक्तिप्रतिपाद्य यज्ञतिस के जानने वाले हे  
देवताओं हमारे यज्ञ प्रवृत्त हुआ यह जान यज्ञ को प्राप्त हुए अथ  
वा यज्ञ समाप्ति को मानि यज्ञ से तुष्ट हुए अपने मार्ग को जाओ ।  
एवं देवानुक्ता प्रजापतिमाह । हे मनसस्यते - हमारे मन को यज्ञक

रने के अर्थ प्रेरणे वाले पालक परमेश्वर हे देव इस अनुष्ठान किये  
यज्ञ को स्वाहा जेरे हाथ में रखता हूं और तू वायु रूप देव में स्थाप  
न करि ॥ २१ ॥

यज्ञं यज्ञम् ॥ यज्ञं यज्ञं द्रुह्य यज्ञं पतिं द्रुह्य स्वां योनिं द्रु  
ह्य स्वाहा ॥ एष ते यज्ञो यज्ञं पते सह सूक्तवाकः सर्व वीर  
स्तं जुषस्व स्वाहा ॥ २२ ॥ † य-हा। अ० १-हा। इ० ॥ २२ ॥

अष्टमः ॥ यज्ञं दैवतं यजुः ॥ यज्ञं विसृजति ॥ हे यज्ञ तू स्वप्रतिष्ठार्थ  
यज्ञ नामक विष्णु को जाफलदान करिय जमान को प्राप्त हो अ  
पनी निष्पत्य के अर्थ अपने कारण भूत वायु की क्रिया शक्तिको  
जा। द्रव्य और देवता यज्ञ की योनि तू सर्वात्मा है इति भावः स्वाहा  
सुहुतमस्तु ॥ अथ नवमः ॥ यज्ञं पतिं दैवतं यजुः ॥ हे यज्ञ पते यज  
मान यह अनुष्ठान किया यज्ञ तेरा है। कैसा है कि सूक्तवाकः स्तोत्र  
सहित। तथा समस्त वीरों तथा सोम पशु सब नीय चरु पुसे डाश  
दुन्हों को भी वीर कहिते हैं तिन्हों सहित है तिसरे से यज्ञ को फल भो  
ग करिके सेवन करि स्वाहा सुहुतमस्तु ॥ २२ ॥ इति समिष्ट य  
जुर्मन्त्राः समाप्ताः ॥ इति गिरिधर भाष्ये षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

अ० ७ माहिः ॥ माहिर्भूर्मापृदाकुः उरुर्दहि राजा वरुणश्च  
कार सूर्या यपन्या मन्वेत वा ॥ ३ ॥ अप दे पादा प्रतिधा  
तवे करुताप वक्ता हृदया विधश्चित् ॥ नमो वरुणाय भि  
ष्टि तो वरुणस्य पाशः ॥ २३ ॥ †

का० १००८० १३ यजमान हस्तस्य मृगशृङ्ग और मध्य में बंधी

मेखला इन दोनों का विसर्जन करि चात्वाल में डालै ॥ माहिर्दे-ज०  
 रज्जुदेवतं व्याख्यातम् ६१२॥ का० १००८१५० अवभृथ के अ  
 र्थजाताहुआ अध्वर्यु चात्वाल के समीप में स्थित प्राङ्मुख यज  
 मान प्रतिवांचै । वरुण देवत्या त्रिष्टुप् सुनः शेषदृष्टा ॥ जैसे वरुण  
 एव राजा सूर्य के अनुक्रमण पूर्वक जाने योग्य जिसमें दिये पद का  
 चिन्ह न हो ऐसा अन्तरिक्ष में विस्तीर्ण मार्ग करताहुआ तैसे  
 ही हमारे अर्थ अपद अर्थात् अन्तरिक्ष में पैर रखने (स्वर्ग जाने)  
 के योग्य मार्ग करे । किंच जो वरुण पापियों को मर्मोच्चारण पी  
 डा देने वाला अर्थात् निंदकों का तिरस्कार करने वाला है । ऐसा  
 वरुण अवभृथ के अर्थ मार्ग दो । का० १००८२१० अवभृथ के  
 स्नानार्थ जल में प्रवेश कर्ते यजमान प्रतिवांचै । वरुण आसुरी  
 गा० ॥ वरुण का पाश छुटा तिस हेतु न बधुंगा तैसे वरुण के अर्थ  
 नमस्कार हो ॥ २३ ॥

अग्ने रनीकम् ॥ अग्ने रनीक मयः आविवेश पान्नपा  
 त्प्रतिरक्षन् सूर्यम् ॥ दमे दमे समिधं यक्षग्ने प्रति  
 जिह्वा घृतमुच्चरयत्स्वाहा ॥ २४ ॥

का० १००८२२० जल में समिध को डाल चतुर्गृहीत आज्य क  
 रि तिसपर होमें । अग्नि देवत्या त्रिष्टुप् ॥ हे अग्ने तू जिस अंगन  
 शील के अपान्नपात् संज्ञक मुख को जल में अभिमुख करि के  
 प्रवेश करता हुआ । सो हे अग्ने तू तिस-तिस यज्ञ गृह विषे यज्ञ  
 विघ्न प्रति रक्षकों को निवर्त करते समिधन साधन घृत को अ

पने संयुक्त कर। तिसके अनन्तर में तेरी जि ह्वा (ज्वाला) घृतप्र  
ति उद्युक्त हो स्वाहा सुहुत मस्तु† ॥२४॥

समुद्रेतै ॥ समुद्रेते हृदय मप्सुवन्तः सन्त्वा वि शन्त्वोषधी  
रुतापः ॥ यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमो वाके विधेम  
यत्स्वाहा ॥ २५ ॥

का० १००४०१० ऋजीष (साररहित सोम) के कुम्भ को जल में डालें।  
सोम देवत्या चतुष्पदा विराट्। विराडूपा त्रिष्टुविति हलायुधः ॥  
हे सोम जो तेरा हृदय समुद्र समान जल विषे धँते हैं तिस तुरूको  
गमन कराता हूँ तत्रस्थ तुरै ओषधीँ भले प्रकार प्रवेश करें और  
रजलभी तुरूमें प्रवेश करें। किंच हे यज्ञपते यज्ञ के पालक सो-  
म यज्ञ के शोभन वचनोच्चारण और नमस्कार वचन विषे तुरै  
स्थापन कराते हैं स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ २५ ॥

देवी रापः ॥ देवी रापः एष वो गर्भस्तर्हं सुप्रीतर्हं सुभृतं  
विभृतं ॥ देव सोमैषते लोकस्तस्मिन् च वक्ष्व परिच  
वक्ष्व ॥ २६ ॥

का० १००४०२० ऋजीष कुंभ को छोड़कर उपस्थान करें। पंक्ति  
वृहती वा पूर्वार्द्ध मन्देवत मुत्तरार्द्ध सोम देवतं ॥ हे देवी हे जल तु  
म्हारा यह सोम गर्भ स्थानीय है तिसै तुम धारण करो। कैसा है वो  
ह कि शोभन प्रीति युक्त वा साधु तर्पित तथा भले प्रकार पुष्ट। इदा  
नीं सोमं वदति हे सोम हे देव तेरा यह जल स्थान है तिसमे अवस्थित  
होकर तू सुख को प्राप्त हो और हमसे सब आर्तियों को दूर कर ॥ २६ ॥

† रमे-रमेवतिवीक्षाश्च मेधविषया तत्र हि नानावभृषा न्यहानिभवति

अवभृथनिचुस्युण॥निचेरुरसिनिचुस्युणः॥अवदेवे  
देवकृतमेनोयासिषमवमर्त्यैर्मर्त्यैकृतस्युरुखाणोदेव  
रिषस्याहि देवानां२२सुमिदसि॥२७॥ अ-हि।अ०दे-सि।द०

का०१००४०३ ऋजीष कुंभकोजलमें प्रवेश करे ब्रा-अ० यज्ञदेवत  
व्याख्यातं ३४८ देवानामितिषा-उ० अग्नदेवतं ॥ देवताओं की सं  
वन्धिनी दूधनहै अथवा हमारा प्रकाश करनेवाला है ॥२७॥

॥ इतः परमनूवंध्यायां गर्भे एयां प्रायश्चित्तं कथ्यते ॥

अ०८ एजंतु दशमास्यः ॥ एजंतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह ॥  
यथा यम्बायुरेजति यथा समुद्र एजति ॥ एवायन्दशमा-  
स्योऽसंज्जरायुणा सह ॥२८॥

का० २५१०५ जो अनूवंध्या वशां गर्भिणी हो तौ विशसनविषे प्रथक्  
क्रिये हुए गर्भको अभिमंत्रित करे । अवसान त्रय युक्ता गर्भदेवत्या  
महापंक्ति ॥ गर्भजरायु सहित चलें । कैसे हैं गर्भ कि जैसे दशमास  
काला बछिन्न चलता है । कैसे चलें सो कहते हैं कि जैसे यह वायु चल  
ता है- और जैसे समुद्र कंपता है ये दोनों सदा कंपनशील हैं । ऐसे ही य  
ह दशमास्य अर्थात् संपूर्ण वयव गर्भजरायु सहित चलें । यद्यपि य  
ह गर्भ दशमास्य नहीं हैं तथापि संपूर्ण होकर चलने की आशा करि  
ये हैं- तमेतदप्य दशमास्यमित्यादि शत० ४५२४० ॥२८॥

यस्यैते ॥ यस्यैते यज्ञियोगर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी ॥ अ  
ङ्गान्यर्हता यस्य तन्मात्रा समं जीगमं स्वाहा ॥२९॥

का० २५१०४ वशाके अवदानों को होम के गर्भरक्त को होमे आ

धी- त्रि० वशादेवतां ॥ हे वशो जो ते ग गर्भ यज्ञ योग्य है और जो तेरी यो  
नि सुवर्ण मयिते सी तुम्हें गर्भ करिके संयुक्त करता हूं इति शेषः ॥ जिस गर्भ  
के अंग अखंडित है तिस गर्भ को अनूबध्या जगनी से संयुक्त कर्ता हूं  
स्वाहेति होमार्थः ॥ २४ ॥

पुरुदस्मो बिषु रूपः ॥ पुरुदस्मो बिषु रूपः इन्दुरन्तर्म हि  
मानमानं जुधी ॥ एकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पदी मृष्टा प  
दी म्भुवनानु प्रयन्ता ॥ स्वाहा ॥ ३० ॥

का० २५ १०० १३ प्रचरणी में प्रति प्रस्थाता सब गर्भ रस की ले अध्वर्यु क  
रि स्विष्टकृत् होम करते हो में । ब्रा-अ० गर्भ देवत्यम् ॥ इन्दुरूपेण गर्भः  
स्तूयते इन्दुः क्लेदन रूप सोम सह श गर्भ महत्व को एक करे । विशेष  
ण करि महिमान को कहते हैं कैसा है इन्दुः कि बहुदान युक्त वह रूप  
उदर विषे स्थित मेधावी ऐसे महिमान को करते हैं । एवं महिमा वत ग  
र्भ की माता अनूबध्या को समस्त प्राणी प्रस्थाता करियों । विशेष  
ण करि प्रस्थाता को कहते हैं । कैसी कि एक पदी मृष्टा करि एक पद  
युक्त द्विपदी मृष्टा और अंग करि द्विपद युक्त त्रिपदी मृष्टा उपयद्गोम  
करि चतुष्पदी मृष्टा पत्नी संयाज वा चारी पाद युक्त अष्टा पदी अपने  
और गर्भ के पाद करि एवं भूता वशा को गिण कर समस्त भूत जात  
प्रस्थात करे । स्वाहा सुहुन मस्तु ॥ ३० ॥

मरुतो यस्य ॥ मरुतो यस्य हिक्षर्ये पायादि बोवि महसः ॥

ससु गोपा तमोजनः ॥ ३१ ॥

का० २५ १०० १६ समिष्ट यजु के होमान्त विषे शामिव अग्नि में मंत्र



के अन्तमें स्वाहाकारका उच्चारकरि उष्णीषवेष्टित गर्भको होमें।  
मरुदेवत्या गायत्री गोतम दृष्टा ॥ हे तेज युक्त औवाद्युलोकके पूज  
क औ हे मरुत औ जिस यजमान के यज्ञ गृह विषे तुम सोमपान  
करते हो। निश्चय सो यजमान अपति शय करि शोभन रक्षा किया है  
अर्थात् तुम्हारे रक्षा किये हु ओ को भय नहीं है ॥३१॥

महीद्योः ॥ महीद्योः पृथिवीचनः शुभं यज्ञमिमिक्षताम् ॥  
पिपृता नो भरी ममी ॥ ३२ ॥

का० २५. १०. १६. शामित्र में डाले गर्भको अंगारों से ठके। द्यावापृ  
थिदेवत्या गायत्री मेधातिथि दृष्टा ॥ द्युलोक और भूलोक हमारे  
यज्ञको अपने-अपने भाग से पूरण करें। हिरण्यपशुधानादिकरि अपने-  
अपने भागों से हमारे घर को पूरण करें ॥३३॥ इत्यग्निष्टोममंत्रा समाप्ताः ॥

अथ षोडशी मन्त्रा उच्यन्ते

अ० ६ आतिष्ठ ॥ वृत्रहन् द्रय युक्ता ते व्र ह्यण हरी ॥ अर्वाचीन  
ठ सुते मनो ग्रावा कृणोतु वरुना ॥ उपयाम गृहीतो सी  
न्द्रायत्वा षोडशिनः एष ते योनिरिन्द्रायत्वा षोडशिनः ॥३३॥†

अग्निपयस्व से पहिले कण्डि ३७ पर्यन्त षोडशी के मंत्र का० १२.  
५. २. शतः सवन विषे आग्रयण ग्रहण के अनन्तर में आग्नेय अ  
तिग्राह्य को ले खदिर के चतुः कोण उलूखल करि आतिष्ठ वायु  
स्वाहि. इन दोनों मन्त्रों और भी उपयाम सहित षोडशिग्रह को ग्रह  
ण करे ॥ इन्द्रदेवत्यानुष्टु गोतम (गौतम) दृष्टा ॥ हे वृत्रहन् इन्द्र ते  
रे हरित वर्ण घोडे त्रयी लक्षण इन्द्रा गच्छे त्यादि मन्त्र करि रथमें यु

कहें इस हेतु तूरयमें बैठे । इन्द्र का आह्वान सुन योजन का समय  
आया यह जान घोडे आपही रथमें जुड़ें । किंच सोमाभिषवपाषा-  
ण तुरुरयारूढ के मनको हमारे यज्ञ के अभिमुख सोमाभिषव-  
शब्द करि भले प्रकार करें ॥ उपयामेत्या सुरी गा० । हे सोम तू उ-  
पयाम करि गृहीत है षोडशिने षोडश स्तोत्र वाले इन्द्र के अर्थ  
तुम्हें ग्रहण कर्ता हूँ ॥ एषतः इत्या सुरी अ० सादयति । हे ग्रह यह ते-  
रा स्थान षोडशिने इन्द्र के अर्थ तुम्हें सादन कर्ता हूँ ॥ ३३ ॥

अ० १० युक्ष्वहि ॥ युक्ष्वहि के शिना हरी वृषणा कक्ष्य प्रा ॥ अ-  
थानः इन्द्र सोम पागिरा मुप श्रुति चर ॥ उपयाम गृही-  
तो सीन्द्रायत्वा षोडशिनेऽ एषते यो निरिन्द्रायत्वा षो-  
डशिने ॥ ३४ ॥ + यु-र। अ० उ-ने। इ० ए-ने। उ० ॥ ३४ ॥

द्वितीयो ग्रहणमन्त्रः । इन्द्र देवत्या नुष्टुब्धधु छन्दो दृष्टा ॥ हे इन्द्र  
निश्चय अपने हरित वर्ण अश्व रथमें जोड़ि । कैसे हैं हरी कि बड़े  
केशों वाले तथा सींचने वाले वा तरुण तथा स्थूला वयव । रथारो-  
हण के अनन्तर हे इन्द्र सोम पान करने को हमारी ऋग्यजुः साम  
लक्षणा वाचा को उपश्रवण करके प्राप्त हो । हमारी वाणी को सुन  
अर्थात् वाणी सुनकर हमारे घरको आ ॥ उपयाम एषते एते व्या-  
ख्येते ॥ ३४ ॥

अ० ११ इन्द्रमित्र ॥ इन्द्र मित्ररी वह तो प्रतिधृष्टशवसम् ॥ ऋषी-  
णाञ्च सुतीरुपयज्ञ च मानुषाणाम् ॥ उपयाम गृहीतो  
सीन्द्रायत्वा षोडशिनेऽ एषते यो निरिन्द्रायत्वा षोडशिने ॥ ३५ ॥

षोडशग्रहे तृतीयोमन्त्रविकल्पः आग्रयणा द्वेन्द्रमिद्वरी इति गृही  
त्वेति कठसूत्रोक्तेः । इन्द्रदेवत्या नुष्टुबो तमदृष्टा ॥ हरितवर्णघोडे  
वसिष्ठारि मुनियों की स्तुतिसमीप इन्द्रको जैसे प्राप्त करते हैं । और  
यजमानों के यज्ञके समीप प्राप्त करते हैं । कैसे इन्द्रको किनहीं है प  
राभव किया बलजिस्का ॥ उपयाम एषते इति व्याख्याते ॥ ३५ ॥

अ० १२ यस्मान्न ॥ यस्मान्न जातः परोऽन्योऽस्ति यः आविवे  
शभुवनानि द्विश्वा ॥ प्रजापतिः प्रजया सर्द्धं रणस्त्रीणि  
ज्योतींश्च पिसच ते सर्वो दुशी ॥ ३६ ॥

का० १२५२० षोडशग्रह को उपस्थान करे । इन्द्रदेवत्या त्रिष्टुप्  
विवस्वदृष्टा । परब्रह्म रूपेण षोडशी स्तूयते ॥ जिस पुरुष से व्यतिरि  
क्त उत्कृष्ट देवादिकों में नहीं हैं और जो समस्त भूतजातों में अन्तर्यामी  
रूप करिके प्रवेश करता हुआ सो प्रजापति अपने से उत्पन्न प्रजापाल  
क तीनिज्योति अग्नि वायु सूर्य रूप तेजविषय की ज्ञापन करनेवालि  
ये स्वीकार करता है अर्थात् अपने तेज करि तिन ज्योतियों का उज्जी  
वन करता है + कैसा है प्रजापति कि प्रजारूप करि भले प्रकार  
रममाण । तथा षोडशकलात्मक लिङ्ग शरीरोपहित अर्थात्  
सर्वव्यवहाराश्रय है ॥ ३६ ॥

इन्द्रश्च सम्म्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं च क्रतु रम् एत  
म् ॥ तयो र ह मनु भक्ष म्भक्षया मिवाग्देवी जुषाणा सोम  
स्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥ इ-तु अ० स-ह ॥ इ० ॥ ३७ ॥

का० १२६२० षोडशग्रह को भक्षण करे । इन्द्रवरुणदेवत्या षोड

† यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठान्नित्यादिभ्युतेः

यदादियुगं ते जीजगद्वा सयते खिलं । यच्चन्द्र  
इत्यादि भूते । यदादियुगं ते जीजगद्वा सयते खिलं । यच्चन्द्र  
मसि यस्मान्नो तन्ने जीवि द्विमात्र ॥ मिति स्मृतेः भगवद्गीता १५१२

शिदेवत्या वा विष्टुव्यजुरन्ता अन्यपादौ द्वादशाणां सह प्राणेनेतिपजुः  
विवस्वदृष्टा ॥ हे षोडशिग्रह वे इन्द्रवरुण तेरे इंसोमको प्रथम भक्षण  
करते हुए। वे कोन कि इन्द्र और वरुण कैसा है इन्द्र कि परमैश्वर्य युक्त  
अर्थात् वाजपेययाजी कैसा है वरुण कि राजसूययाजी +। तिन इन्द्रावरु  
ण संबंधी भक्षकी पीछे में भक्षण कर्त्ता हूँ अर्थात् सोमको पीता हूँ। मेरे  
भक्षके सेवन से सरस्वती प्राणदेवता सहित सोम करितृप्त हो। स्वाहा सु  
हुतमस्तु ॥ ३७ ॥ इति षोडशियागः संपूर्णः ॥

अथ द्वादशाह मन्त्राः

५०१३ अग्ने पवस्व ॥ अग्ने पवस्व स्वपाः अस्मेवर्चः सुवीर्यम् ॥  
दधद्रयिम्मयिपोषम् ॥ उपयामगृहीतो स्पग्नयेत्वा व  
र्चसः एषते योनिरग्नयेत्वा वर्चसे ॥ अग्नेवर्चस्विन्व  
र्चस्वाँ त्वन्देवेष्वसि वर्चस्वानहम्मनुष्येषुभूयासम् ॥ ३८ +

का० १२३१२० हे कोई गृह्य षडह नामा क्रतु और बौह छे दिनों  
करि निष्याद्य तहां पहिले तीनि दिनों में अग्ने पपस्वेत्यादि तीनि मंत्रों  
से अति ग्राह्य ग्रहको ग्रहण करे। अग्नेवर्चस्विन् इत्यादि मंत्रों से तिन  
तिन ग्रहों के शेषको भक्षण करे ॥ तत्र प्रथमो यथा अग्ने पपस्व अ  
ग्निं देवत्या गायत्री वैखानसदृष्टा ॥ हे अग्ने तू हमारे विषे शोभन की  
र्य जिसमें तैसा शोभन सामर्थ्योपेत ब्रह्मतेज प्राप्त करि। कैसा है तू कि  
स्वपाः शोभनकर्मा +। एवं ऋत्विजों सहित प्रार्थना करि आपयाचना  
करता है मुख्यजमान विषे धनको स्थापन करते पुत्रपश्वादि वृद्धिके  
प्रवर्त करि इतिसंबंधः ॥ उप० ५० पासुरी ३० ॥ हे सोम तू उपयामग्रह करि

+ राजा वै राजसूयने राजनवति सप्ताह उपयामग्रहनेति श्रुतं ० ५१० १२३१

अप दतिकर्मा म  
नृष ० २११

+ अ-मू. ५० उ-से। दृ० ए-से। उ० अ-मू. ऋ० ॥ ३८ ॥

गृहीत है हे ग्रह तेजस्वी अग्नि के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूं ॥ एष० या-  
ज० सादयति । यह स्वर प्रदेश तेरा स्थान वर्चस्वी अग्नि के अर्थ तुम्हें  
सादन करता हूं ॥ भक्षण मन्त्रो यजुः ॥ हे विशिष्ट तेज युक्त हे अग्ने तू  
इन्द्रादिक देवताओं के मध्य अति दीप्तमान है अतः तेरे प्रसाद से मैं  
मनुष्यों के मध्य ब्रह्म तेज करि संपन्न होऊं ॥ ३० ॥

अ० १४ उतिष्ठन्नोजसा ॥ उतिष्ठन्नोजसा सह पीत्वीशिप्रेऽपवे  
पयः ॥ सोममिन्द्रचमू सुतम् ॥ उपयामगृहीतोसीन्द्राय  
त्वोजसः एषते योनि रिन्द्राय त्वोजसे ॥ इन्द्रो जिष्णो जि  
षुस्त्वन्देवेष्वस्योजिष्णोह ममनुष्येषु भूयासम् ॥ ३५ ॥ +  
द्वितीयोऽति ग्राह्य ग्रहण मन्त्रः ॥ इन्द्रदेवत्या गायत्री कुरुस्तुति (कु  
रुस्तुति० कुरुमुनि० कुरुस्तुति) दृष्टा ॥ हे इन्द्र तू बल सहित उठते शिप्रे  
(हनू वा नासिका) करि कम्पितवान् है । क्या करि कै कि सोम पी कै । कैसा  
है सोम कि अधिषवण चर्म में अभिषुत सोमपान करि कै अति हर्ष  
के वश हो नासिका करि कम्पितवान् है ॥ उप० आसुरी अ० हे ग्रह तू  
उपयाम करि गृहीत है बलवान् इन्द्र के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूं  
एष० या-त्रि० सादयति । यह तेरा स्थान बलवान् इन्द्र के अर्थ तुम्हें सा  
दन करता हूं ॥ भक्षण मन्त्रो यजुः ॥ हे इन्द्र हे अत्यन्त बल युक्त तू जै  
सै देवताओं के विषे ओजिष्ठ है ऐसै मैं मनुष्यों में अति बल होऊं ॥ ३५ ॥ +

अ० १५ अहमस्य ॥ केतवो विरश्म योजना रं ॥ अनु ॥ आजन्तो  
ऽअग्नयो यथा ॥ उपयामगृहीतोसि सूर्या यत्वा भ्राजयेष  
ते योनिः सूर्या यत्वा भ्राजाय ॥ सूर्यम्राजिष्ठम्राजिष्ठुस्त्व

देवेषु सिञ्चाजिघ्रोहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥४०॥†

तृतीयोऽतिग्राह्यमन्त्राः। सूर्यदेवत्या गायत्रीप्रकण्वदृष्टा॥ इस सूर्य की प्रज्ञा का हेतु किरणों विशेष कर दीखती हैं अर्थात् सूर्यकरः सब जनों के अनुगता व्यापका दीखती हैं तहां दृष्टान्त है जैसे ज्वलते अग्नि की जनों के अनुगता तैसैं॥ उप० आसुरी गा० हे ग्रह तू उपयाम करि गृहीत है दीप्तिमान सूर्य के अर्थ तू मे ग्रहण करता हूं॥ एष० या- ज० सादयति। यह तेरा स्थान दीप्तिमान सूर्य के अर्थ तू मे सादन करता हूं॥ भक्षण मन्त्रो यजुः। हे अति दीप्ति हे सूर्य तू जैसे देवताओं में अति दीप्ति है तैसे मेंनुष्यों में अति दीप्ति मान हों ॐ॥४०॥ इति द्वादशाहः संपूर्णः॥

अ० १६ उदुत्यम्॥ उदुत्यञ्जातवेदसन्देवम्बहन्तिकेतवः॥ दृशे विश्वायसूर्यम्॥ उपयामगृहीतोसि सूर्या यत्वा भ्राजा-  
येषते योनिः सूर्या यत्वा भ्राजाय ॥४१॥†

का० १३. २. ११. गवामयन नामक संवत्सर सन्त्र के विषुवन संज्ञक मध्यमदिवस में सौर्य पशु के उपालम्भ सैं योछे अति ग्राह्य का ग्रहण करें। सौरी गायत्री देवदृष्टा। पुनर्व्याख्यायते ७. ४१. प्रस्कण्वदृष्टा व्याख्याता अत्र तु देवदृष्टा इति विशेषः॥ निसुप्रसिद्ध उत्पन्न हई प्रजाओं के ज्ञातार वा जात प्रज्ञ देवन शील सूर्य की प्रज्ञा का हेतु किरणें समस्त जगत के दर्शन के अर्थ उद्गमन कराती हैं। उप० एष० व्याख्याते ॥४१॥†

अ० १७ आजिघ्र॥ आजिघ्रकलशम्मह्यात्वा विशन्ति चन्द्रवः॥



पुनरुज्जीनिवर्त्तस्वसानः सहस्रन्धुश्चोरुधारापयस्व  
तीपुनर्म्माविशतादृयिः ॥४२॥

का० १३.४.१६. गर्गत्रिरात्रके आदि अहीन त्रिसुत्य में गोसह  
स्र दक्षिणार्हे तहां संख्या पूरणी ऐहिणी धेनु है तिसहविर्धान आ  
ग्नीध्र के मध्यमें स्थित को द्रोण कलश को सुंघावै। गोदेवत्या महा  
पङ्क्तिः कुसुरुविन्दुदृष्टा ॥ हेमहि हेधेनो तू द्रोण कलश को अभि  
मुख करि सुंघ। किंच हेधेनो द्रोण कलशस्थ सोम तुरूमें प्रवेश क  
रै। किंच पयोभूत विशिष्ट रस सहित हमारे प्रति निवर्त्त हो। जोतू  
एवं मुख करि स्तुति की गई सो तू हमारे सहस्र संख्य धन को दे अथ  
वा गो सहस्र जो हम करि दी गई सो हमारे अर्थ फिरि दे। किंच तेरे  
प्रसाद से बहु पयस्वती धेनु मेरे फिरि आवें तथा धन मेरे प्रवेश करै ॥ ४२॥

दुडेरन्ते ॥ दुडेरन्ते हव्ये का म्ये चन्द्रे ज्योतिर्दिति सरस्व  
ति महि विश्रुति ॥ एतातेऽप्येनामानि देवेभ्यो मासु  
कृतम्ब्रूतात् ॥४३॥

का० १३.४.२०. पूर्वोक्ता धेनु के दक्षिण कर्ण में यजमान जपे। गोदे  
वत्या प्रस्तार पङ्क्तिः कुसुरुविन्दुदृष्टा ॥ दुडा मनु की दुहिता तिसकेतु  
त्य। रन्ता रमाण करने वाली। हव्या होमते हैं यज्ञ में जिसका दूध  
वा सवकी आह्वान करने वाली। काम्या कामना करते हैं जिसकी  
मनुष्याणां ह्येतासु कामाः प्रविष्टा इति श्रुतेः। आल्हाद करने  
वाली। अदीना अनवर खण्डिता। सरस्वती सरः क्षीरं तद्वती सरस्व  
त्युदकनामसर्तेरिति नि० ४. २६. उदक शब्द से यहां क्षीर लेना

४२॥

दिते दुः  
वापाः

अर्थात् दुग्धवती। वडी। नाना प्रकार स्तुति करिये हैं। नहीं हनन योग्या। तिन्हों का संबोधन हे धेनो एवं भूते तुम्हारे ये अति प्रायगुण युक्त नाम हैं इन नामों करि अभिहित होती देवताओं से शोभन कर्म करनेवाला मुझे कहौ अर्थात् यह यजमान पुण्य कर्त्ता यह देवताओं से कहौ ॥४३॥

अ० १८ विनः ॥ विनः इन्द्रमृधोजहिनीचायच्छृतन्यतः ॥ यो  
ऽ अस्मा २ ॥ अभिदासत्यथरङ्गमया तमः ॥ उपयामगृही  
तो सीन्द्राय त्वा विमृधः एष ते यो निरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥४४॥

का० १३० २० १० गवा मयन के उपान्त्य महाव्रत के दिवस में प्राजापत्य पशु के उपालम्भ के ऊपर ऐन्द्र ग्रह के ग्रहण में ४४-४६ तीन मन्त्र। तत्राद्यः। इन्द्र देवत्यानुष्टुप् त्रयाणां शासो, श्यास-सास-श्यावास० भारद्वाज ऋषिः ॥ हे इन्द्र हमारे शत्रुओं वा संग्रामों को विशेषतः नाश करि। किंच सेना की दुच्छा करनेवाले शत्रुओं का निग्रह (युद्ध से उपरत) करि। किंच जो कोई और हमको उपक्षय करे तिस शत्रु को नरक में प्राप्त करि ॥ उप० आसुरी उ०। हे ग्रहतू०-विशिष्ट संग्रामवान् इन्द्र के अर्थ ॥ एष० या-ज० सादयति। विशिष्ट संग्रामवान् इन्द्र के ० सिष्टं समानम् ॥४४॥

अ० १९ वाचस्पतिम् ॥ वाचस्पतिं विश्व कर्मण मृतये मनो यु  
वम्वाजेऽ अद्याहुवेम ॥ सनो विश्वानि हव नानि जोषद्भि  
श्व शम्भूरवे सेसाधु कर्म ॥ उपयामगृही तो सीन्द्राय  
त्वा विश्व कर्मण एष ते यो निरिन्द्राय त्वा विश्व कर्मणे ॥४५॥

अथद्वितीयः। विश्वकर्मदेवतात्रिष्टुप्॥ ऐसे इन्द्र को महाव्रती  
य लक्षणान्नविषय में आजके दिन हम आह्वान करते हैं। किस  
लिये कि अपनी रक्षा के अर्थ। कैसे को कि समस्त जगदुत्पत्त्यादिक  
र्म करने वाले को तथा वाचा के पालन करने वाले तथामन के से  
वेग वाले को। सो ऐसा इन्द्र हमारे समस्त आह्वानों को अन्न समृद्धि  
वारक्षा के अर्थ साधु-साधु इति सेवन करें। कैसे है वोह कि सम  
स्त सुख करने वाला शोभनकर्मकर्ता॥ उप० सा-उ०। सर्वकर्म इन्द्र  
के अर्थ०॥ एष० सा-गा० सादयति। समानम्॥४४॥

अ०२० विश्वकर्मन्हुविषा॥ विश्वकर्मन्हुविषावर्धनेन त्राता र  
मिन्द्रमहाणोरवध्यम्॥ तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयसु  
ग्रो विहव्यो यथासत्॥ उपयामगृहीतोसीन्द्रायत्वा विश्वक  
र्मणः एषते योनिरिन्द्रायत्वा विश्वकर्मणे॥४६॥+

तृतीयो मन्त्रविकल्पः॥ इन्द्र विश्वकर्मदेवतात्रिष्टुप्॥ हे विश्वकर्मन्  
वर्धय व वावर्धमान हवि करि कै तू इन्द्र को जगतकारक्षक अप्रतिभटकर  
ताहुआ। तैसे इन्द्र के अर्थ पहिले वशिष्ठादिक मनुष्य जिस कारण  
यह इन्द्र उद्गृह्ण वज्र और विविधि कार्यो विषे आह्वान करिये है ते  
सा होताहुआ तैसी प्रजा अर्थात् निसी कारणसे। हे विश्वकर्मन् तैरे ह  
विकी सामर्थ्यसे इन्द्र का यह प्रभाव है इति भावः॥ उप० एष० व्याख्याते॥४६॥

अ०२१ उपयामगृहीतोसि॥ उपयामगृहीतोस्यग्नयेत्वा गायत्र्येन्द्र  
सङ्गृह्णामीन्द्रायत्वा त्रिष्टुप्छन्दसङ्गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा  
देवेभ्योजगच्छन्दसङ्गृह्णाम्यनुष्टुप्त्रैभिर्गारः॥४७॥+

का० १२. ५. १३-१५. जिस औदुम्बर पात्र में अंशु ग्रहण किया ति  
सीमें होतृचमसस्या निग्राभ्या संज्ञा जल लेकर तिसमें तीनि सो  
मलता डाल अग्न येत्वे त्यादि तीनि मंत्रो से क्रम पूर्वक अदा  
भ्यग्रह को ग्रहण करे अथवा उपयाम गृहीतोसीति तीनों मन्त्रों  
की आदिमें योजे ॥ अदाभ्य देवत्यानि देवदृष्टानि १. प्रा-वृ० २.  
३. यजुषी। तत्र प्रथमो मंत्रः ॥ हे सोम तू उपयाम पात्र करि गृहीत हे  
हे ग्रह गायत्री छन्द जिसका ग्रह वोह गायत्री छन्द सं अग्निकी  
प्रीति के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूं ॥ द्वितीयो मन्त्रः ॥ पूर्ववत् त्रिष्टुप्  
छन्द सं इन्द्रदेवता की प्रीति ॥ तृतीयो मन्त्रः ॥ समानम् जगती छन्द  
सं समस्त देवताओं की ॥ का० १२. ५. १७. अनुष्टुप्तेति देवदृष्टम  
दाभ्य देवत्यं दे-ज०। इस मन्त्र को पढ़ें एवं स्वच्छन्द सं सोमं गृहीत्वा  
यतमाह ॥ हे सोम अनुष्टुप् छन्द तेरा अभिगरः अर्थात् अभिष्टवः  
गृस्तुतौ यद्वा ऊर्ध्वं ठं सवनेभ्यस्तदानुष्टुभमिति प्रात० ११. ५. ८९. ७॥ ४७॥

मेधुन्तिवापाठः

व्रेशीनान्त्वा ॥ व्रेशीनान्त्वा पत्मन्नाधूनोमिकुक्कूनाना  
न्त्वा पत्मन्नाधूनोमिभन्दनानात्वा पत्मन्नाधूनोमिम  
दिन्तमानान्त्वा पत्मन्नाधूनोमिमेधुन्तमानान्त्वा पत्मन्ना  
धूनोमिशुक्रन्त्वा शुक्रः आधूनोम्यन्हो रूपे सूर्ये स्वर  
श्मिषु ॥ ४८ ॥

का० १२. ५. १७. आहवनीय के समीप जाते अदाभ्यग्रहस्थ जलों को  
चलावें। एतदादीनि विश्वेषां देवानामित्यन्तानि ५० सोमदेवत्या  
नि देवदृष्टानि। यजुः ॥ हे सोम मेघोदरस्या जल तिन्हों के पतननि

मिन्न दृष्टिनिष्पत्यर्थं तुमैकं पाताहं । कुक्कूननानाम् । कुङ्कुशब्दे  
अत्यर्थं कुवन्त्यः शब्द करने वाले नमन्ति प्रह्वी होने वाले मेघस्या  
जल तिन्हों के पतन के अर्थ तुमैकं पाताहं ॥ कल्याण कारिणी वा  
सुखयित्री मेध्याः । अन्यत्पूर्ववत् ॥ मदिन्यः अत्यर्थं मदिन्तमाः  
अत्यन्त तर्पयन्त्यः । समानं ॥ अत्यन्त मधु स्वादोपेतः पूर्ववत्  
किञ्च शुक्रं शुद्ध अक्षिष्ट करने वाले तुमै अक्षिष्ट कर्म विषे निग्रा  
भ्या लक्षणा जल में कं पाताहं ॥ किञ्च दिवस के रूप विषे सूर्य की रश्मि  
विषे हे सोम त्वामाधू नोमि ॥ ४८ ॥

कुक्कुभर्त्तृ रूपम् ॥ वृषभस्य रोचते वृद्ध छुक्कः शुक्रस्य पुरोगाः  
सोमः सोमस्य पुरोगाः ॥ यते सोमादां म्व्यन्वामजा गृवित  
स्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥ +

यजुः ॥ हे सोम तुरु वृषभ (श्रेष्ठ) का आदित्य लक्षण रूप प्रकाश क  
रता है शुद्ध आदित्य तुरु शुद्ध सोम का पुरोगामी । सोम एव सोम का  
पुरोगामी होना चाहिये । हे सोम तेरा अदाम्य (अनुपहिंसित) जागर  
ण शील जो नाम है तिस नाम से तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ का० १२. ५.  
१७. तस्मै तद् इति या-यं० अदाम्य को होमै ॥ हे सोम तैसे तेरे अर्थ स्वा  
हा सुहुत मस्तु ॥ तसो म मेवै तसो माय जुहोतीति शत० ११. ५. २६. ११ ॥ ४९ ॥

उशित्कम् ॥ उशित्कन्देव सोमाग्नेः प्रियम्या योपी हि द्व  
शीत्वन्देव सोमेन्द्रस्य प्रियम्या योपी ह्यस्त्वरवात्वन्देव सो  
म विश्वेषां देवानां प्रियम्या योपी हि ॥ ५० ॥

का० १२. ५. १८. तीनि मन्त्रां सै उलूखलस्य अंशु श्रौं को सोम में डा

लै॥ तत्राद्यः आसुरीउ०। हे दीप्यमान हे सोम कामयमान तू अग्नि के प्रिय अन्न को प्राप्त हो॥ द्वितीयः आसुरी गा०। हे देव सोम कान्त तू इन्द्र के प्रिय अन्न को प्रा०॥ तृतीयः आर्षीउ०। हे देव सोम हमारा मित्र भूत तू समस्त देवताओं के अभिरुचित अन्न को प्राप्त हो॥ अग्निर्वै प्रातः सवन मिन्द्रो माध्यन्दिनं सवनं विश्वे देवास्तृतीयं सवनं मिति श्रुतेः सवनं देवेभ्योर्पणम्॥ ५०॥

अथ सत्रोत्थानं देवानामार्षम्

अ० २२ इहरतिः॥ इहरतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वा हो॥ उपसृजन्धरुणं ममात्रे धरुणो मातरन्धयन्॥ रायस्योषं मस्मासु दीधरत्स्वाहा॥ ५१॥ +

का० १२.४.१०. समस्त दीक्षितों को अध्वर्यु करि स्पर्श करते इस मन्त्र से गार्हपत्य में धृत हो में। पशु देवत्या प्रा-वृ०॥ हे गौः औ तुम्हारा रमण इन यजमानों के हो यहां तुम रमों तुमसे इन यजमानों के संतोष हो और स्वकीयों का भी यहां संतोष हो स्वाहा सुद्धतमस्तु का० १२.४.११. शालाद्वारीय में ऐसे ही दूसरी आहुति हो में। उष्णिगाग्नेयी॥ धारण करने वाला अग्नि हमारे रायस्योषं धनपशु पुत्र सुवर्णों दिकों की पुष्टि को धारण करे। कैसा है कि पृथिवी का धारयितार अग्नि समीप को प्राप्त तथा पृथिवी धयन् तिस में उत्पन्न हो हविका भक्षण करता। स्वाहेति होमार्थः॥ ५१॥

सत्रस्य ऽ ऋद्धिः॥ सत्रस्य ऽ ऋद्धिरस्य गन्मज्ज्योतिरमृतं ऽ अभूम॥ दिवस्यृथिव्या ऽ अध्यारुहामाबिदामदे



वाँन्स्वज्ज्योतिः॥५२॥

का० १२४०१२० सवदीक्षित उत्तरहविर्धान के अपरकूवरी को आलंबन करि सत्रर्धि संज्ञक साम गान करें। वृहती यजमाना नामात्सत्य स्तुतिः॥ हे सोम सत्र की समृद्धि तूहै इस हेतु हम यजमान ज्योतिः आदित्य लक्षण को प्राप्त हुए फिर अमरणधर्मा हुए पृथिवी के सकाशसे द्युलोक को आरूढ हुए फिर देवता इन्द्रादिकों को देखते हुए ज्योतिरूप और स्वर्ग को देखते हुए॥५२॥

युवन्तम्॥ युवन्तमिन्द्रा पर्वता पुरो युधा योनः पृतन्या दपतन्तमिद्ध तम्ब जै एतन्त मिद्ध तम्॥ दूरं च तायच्छन्तस्मद्गहनं यदि न क्षत॥ अस्मा कर्हं शत्रून्परि शूरविश्वतो दुर्म्मा दधी षु विश्वतः॥ भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्पाम सुवीरा विरैः सुपोषाः पोषैः॥५३॥†

का० १२४०१४० सव यजमान दक्षिणहविर्धान का अक्षमीचे मार्ग करिके प्राङ्मुख निकालें। इन्द्रदेवत्यात्यष्टिस्वसानत्रयोपेताषट्षष्ट्यक्षरत्वात् द्यूना आयोधर्च इन्द्र पर्वत देवत्यः॥ हे शत्रुओं के सामने युद्ध के करने वाले हे इन्द्रा पर्वता तुम तिस शत्रु को मारो ऐसे ही तिन-तिन अर्थात् सब शत्रुओं को मारो तत्रापि विशेष्यते वज्रनामा आयुधसे तिन-तिन को विनाश करो। जो-जो शत्रु हम से युद्ध करे॥ इदानीमिन्द्रः प्रत्यक्षो वज्रस्य कर्तृत्वं चोच्यते हे शूर इन्द्र तेरा वज्र जब अत्यन्त गम्भीर बन बाजल में अति दूरि गये शत्रु को प्राप्त होने की चाह करता है तव तिस दूरि गये



या एता आहुती जुहोति स यद्यज्ञस्यार्द्धेद्यां तत्प्रति देवतां मन्येत  
तामनु समीक्ष्य जुहुयाद्यदि दीक्षोपसत्स्वाहवनीये यदि प्रसुतः प्रा  
ग्नीध्रे विवाः एतद्यज्ञस्य पर्वसर्गसंतेय इत्यलति सायैव तर्हि तत्र देव  
ता भवति तथैवैतद्देवतया यज्ञं भिषज्यति तथा देवतया यज्ञं प्रतिसं  
दधातीति ॥ अथ मंत्रार्थः ॥ आध्या द्वसिष्ट ऋषिः लिङ्गोक्तदेवता  
परमेष्ठीति १५६ दे- ज० २० या- पं० ३० ४० दे- पं० १० जब कि सोम य  
जमान करि अभिधीत (संकल्पित) हो तब मनसा करि अभिधीत प  
रमेष्ठी होता है। अथ मर्थः मनसा करि ध्यान किया सोमन उपनमेतोप  
रमेष्टिने स्वाहा इस मन्त्रसे होम करे ॥ वचनसे उच्चार कर ते सोम  
प्रजापति नामा होता है तिसके प्रायश्चित्त विषे प्रजापत ये स्वाहा इ  
ससे होमें ॥ २॥ जो सोम अभिमुख्य करि प्राप्त हुआ तो अन्धनामा हो  
ता है। अन्धसे स्वाहा इति जुहुयात् ॥ ३॥ सोमके संभक्त होते सवितृ ना  
मा होता है तिसके प्रायश्चित्त में सवित्रे स्वाहेति जु० ॥ ४॥ दीक्षा विषे सो  
म विश्वकर्मा होता है तहां विश्वकर्माणे स्वाहेति जु० ॥ ५॥ सोम क्रयक  
रते हैं जिस गौसे उस सोम क्रयणी करिलाया सोम पूषा होता है तदा  
निमित्ते पूषणे स्वाहेति जु० ॥ ६॥ ५४॥

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायो पोत्थितो सुरः पूण्यमानो मित्रः की  
तो विष्णुः शिपिविष्टः कुरावा सन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ॥ ५५॥  
७० आसुरी- अ० ८ दे- ज० २० दे- वृ० १० या- त्रि० ११ या- पं० ॥ इव्य  
दान करि उपस्थापित सोम इन्द्र और मरुत नामा होता है तब इंद्र  
य मरुद्व्यश्च स्वाहेति जु० ॥ ७॥ क्रीयमाणः सोम असुर होता है

असुराय स्वाहा ॥८॥ यजमान करि क्रीत सोम मित्र होता है- मि  
त्राय स्वाहा ॥९॥ यजमान की गोदी पर स्थित सोम शिपिविष्टो वि  
ष्णुः अर्थात् प्राणियों वा यज्ञों में अविष्ट विष्णु होता है- विष्णावे  
शिपिविष्टाय स्वा० ॥१०॥ शकट करि ऊह्यमान सोम विष्णु नर  
न्धिषः अर्थात् नरोधीयन्ते आरोप्यन्ते यस्मिन्स नरन्धि संसारः  
तस्यति नाशयति नरन्धिषः- जगत्संहर्तृ विशिष्टो विष्णुः- अ  
थवा रथ हिंसायाम् रन्धिषो हन्ता नरन्धिषः जगत्पालको विष्णुः-  
जगत का संहार वा पालन करने वाला विष्णु होता है- विष्णावे  
नरन्धिषाय स्वा० ॥११॥ ५५॥

प्रोह्यमाणः सोमः ॥ प्रोह्यमाणः सोमः आगतो वरुणः  
आसन्त्या मासन्नो गिराग्नीध्रः इन्द्रो हविर्धाने यर्धो  
पावह्रियमाणो विश्वे देवाः ॥५६॥ +

१२-१४-दे० पं० १३-१६-या-वृ० १५-दे-त्रि० ॥ शकट से आया अवस्तु सो  
म नाम होता है- सोमाय स्वा० ॥१२॥ मञ्चिका पर उपविष्ट वरुण  
हो- वरुणाय स्वा० ॥१३॥ आग्नीध्र में वर्तमान अग्नि हो- अग्न  
ये स्वा० ॥१४॥ हविर्धान में वर्तमान इन्द्र- इन्द्राय स्वा० ॥१४॥ हृदे  
त्वा मनस्वेति मन्त्रेण ३०-१६- कण्डन के अर्थ आनीयमान  
अथ- अथर्वणे स्वा० ॥१६॥ ५६॥

विश्वे देवाः अर्धं शुषून्तु प्रो विष्णुं राप्रीतपाः आप्याय्य  
मानो यमः सूपमानो विष्णुः संभ्रियमाणो वासुः पूय  
मानः शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीर श्रीर्मन्थी संतु श्री विश्वे दे

वाः ॥ ५७ ॥ †

२०. या-वृ० १८. आसुरीपं० १६-२१. दै-वि० २०. दै-ज० २२. दै-  
वृ० २३. २४. दै-पं० ॥ सोम खण्डों में कण्डन करि आरोपण किया  
वि० विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वा० ॥ १७ ॥ अर्धं शुरर्धं शुष्ट इत्यादि मंत्रेण  
५. ७. वर्धमान सोम आग्नीतपाविष्णु, सब ओड़ी से प्यारों का  
बड़ा प्यारा भक्तों का रक्षा करने वाला विष्णु हो० विष्णवः आ  
ग्नीतपाय स्वा० ॥ १८ ॥ अभिषूयमानय० यमाय स्वा० ॥ १९ ॥ पुष्य  
मानवि० विष्णवे स्वा० ॥ २० ॥ दशापवित्रा करि पवित्र करते वा०  
वायवं स्वा० ॥ २१ ॥ पवित्र कियाहु आशु० शुक्राय स्वा० ॥ २२ ॥ दुग्ध  
से मिश्रित करते भी शु० शुक्राय स्वा० ॥ २३ ॥ सक्तुओं करि मिश्रि  
त मं० मन्यिने स्वा० ॥ २४ ॥ ५७ ॥

विश्वे देवाश्च ससेषून्नीतो सुर्हो मा योद्यतो रुद्रो हूय मा नो  
वातो म्यावृत्तो नृचक्षाः प्रतिष्ठातो भक्षो भक्ष्यमाणः पि  
तरो नाराशर्द्धमाः ॥ ५८ ॥ †

२५. या-पं० २६. या-उ० २७. या-गा० २८. दै-पं० २९. दै-ज० ३०. दै-  
त्रि० ३१. या-वृ० ॥ चमसों (ग्रहपात्रों) में ग्रहण किया वि० विश्वेभ्यो दे  
वेभ्यः स्वा० ॥ २५ ॥ होम के लिये उद्यत अ० असवे स्वा० ॥ २६ ॥ होम  
किया हु आरु० रुद्राय स्वा० ॥ २७ ॥ होम का शेष भूत सद प्रतिभक्ष  
ण के अर्थ लाया हु आवा० वाताय स्वा० ॥ २८ ॥ ब्रह्म नृप हूयस्व  
इत्यादि करि भक्षण के अर्थ पूछा नृचक्षा (मनुष्यों के शुभाशुभ  
करने को देखने वाला) हो० नृचक्षसे स्वा० ॥ २९ ॥ पीयाहु आभ

+ वि-प्रः ॥ अ-वि-नः ॥ दू-य-नः ॥ उ-वि-णः ॥ ऋ-वा-नः ॥ ल-शु-तः ॥ आ-शु-श्रीः ॥ ई-म-  
+ वि-तः ॥ अ-प्र-तः ॥ दू-रु-नः ॥ उ-व-तः ॥ ऋ-नृ-तः ॥ ल-भ-णः ॥ आ-पि-नः ॥ ई-॥ ५८ ॥

५७ ॥

क्ष०० भक्षाय स्वा०॥३०॥ भक्षण किये पीछे अपने स्वर पर सादन कि  
या नारांशं साः पितरः अर्थात् नरजहां वैठे स्तुति करते हैं ऐसा यज्ञ  
तिसके हित वायोभ्य नारांशं सति सगुण विशिष्ट पितर तिसनिमि  
न विषेः पितृभ्यो नारांशं सेभ्यः स्वा०॥३१॥ १८॥

सन्तः सिन्धुः॥ सन्तः सिन्धु रवभृथा योद्यतः समुद्रोभ्य  
वह्नि यमाणः सलिलः प्रप्लुतो ज्यो रोजसा स्कभितार  
जा २ दिवो ये भिषि रतं मा ए विष्ठा॥ यो पत्ये तेः अपती  
तामही भिषिषाः ॥ येन नृदेव पुत्रे हते ॥ १९॥ +

३२.३३ या-वृ० ३४.या-या०॥ जल संध के अर्थ उद्यत सोम मि०  
सिन्धवे स्वा०॥३२॥ जल का अभिसृजनीय मान सोम स० समु  
द्राय स्वा०॥३३॥ जल में निमग्न सोम सलिल होता है तिसके प्राय  
श्चित्त विषे सलिलाय स्वाहेति जुहुयात्॥३४॥ इन यज्ञा हुनियों से  
यज्ञ चिकित्सित और प्रतिमं हित होता है। तथा च श्रुतिः २२.६.१.२०  
तावाः एताश्च तुस्त्रिंशत्तमाज्या हुती जुहोति त्रयस्त्रिंशद्देवाः  
प्रजापतिश्च तुस्त्रिंश एतदु सर्वे देवैर्यज्ञं भिषज्यानि सर्वे देवैर्यज्ञं  
प्रति संदधातीति॥ ॥ का० २५.२.०० कालाहुति होम और वाचन  
को करिके रसरूप सोम को जल से सींचे॥ अभिमर्शनेन विकल्प  
ययो रोजसेति विष्णु वरुण देवत्या त्रिष्टुप्॥ दोनो कर्मभूत विष्णु व  
रुण सोम रूप यज्ञ साधन को आए। कव कि पहिले आह्वान वि  
षे यावत् प्रधान को बुलाते हैं तावत् ही विष्णु और वरुण ह  
वि प्रति आए। अथवा पहिले बुलाये हुए विष्णु वरुण प्रतिहविषा



हुआ। वे कौन कि जिन विष्णु वरुण के बल करि लोक यं भेहे। किंचते विष्णु वरुण पत्येते। जगत के ईश्वर हैं अथवा परसैन्यपैशयेन की प्र कार दूजे हैं के से है कि अत्यन्त वीर हैं। तथा अत्यन्त बलवान। तथा बल करि अप्रतीता। नही कोई भी उन्हीं के समुख जाने को समर्थ होता अर्थात् अनन्य योध्यो। ऐसे विष्णु वरुण रसरूप हवि प्रति प्रा प्त ह्य ॥ ५५ ॥

देवान्दिवम्॥ देवान्दिव मगन्य जस्ततो माद्रविण मष्टुम्  
नुष्या नन्तरि क्षमगन्य जस्ततो माद्रविण मष्टुपितृ  
नृथिवी मगन्य जस्ततो माद्रविण मष्टु यङ्गं च लोकमग  
न्य जस्ततो मे भद्रमभूत् ॥ ६० ॥

का० २५२०८ रसरूप सोम का देवान्दिवं इससे स्पर्श करे यजुर्लि  
ङ्गोक्त देवत माशीः महीधर मते यज्ञ देवत्या यजमाना शीः अत्य  
ष्टिः ॥ यह यज्ञ वाय्वादि देवताओं को प्राप्त हो द्युलोक को पहुंचे फि  
रि द्युलोकस्य यज्ञसे विशिष्ट भोग साधन रूप यज्ञफलभूत ध  
न को मुझे प्राप्त करे। अनेन सुकृति नामा रोह क्रम मभिधाये दा  
नीमवरोह क्रममाह फिरि द्युलोकसे अवरोहण समय विषे य  
ज्ञ मनुष्य लोक को आकर अन्रिक्ष लोक को जाकर तिसलोक  
में स्थित यज्ञसे यज्ञफल रूप धन को मुझे प्रा०। दक्षिणा यनं गम  
ना गमनमाह। यह यज्ञ धूमादि मार्ग से पितरों को प्राप्त हो भूलोक में  
जा तहां के स्थित यज्ञसे यज्ञफल०। किं बहुना जिन किन्हां लोकों को  
यज्ञ जावै तहां के यज्ञसे मेरे कल्याण हो इति यजमानाणास्यते ॥ ६० ॥

१- अथ यदि पश्यमानः तदा विप्रश्नः ०१३

गे को फेला । ब्रह्मादिस्तम्भ पर्यन्त भूतग्रामोकायज्ञपरिणामहे इतिभावः ६२

आपवस्व ॥ आपवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोमवीरवत् ॥ वा  
जङ्गो मन्तमा भर स्वाहा ॥ ६३ ॥

इति संहितायां त्रयोविंशोऽंशोऽनुवाकः ॥ २३ ॥

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनी शाखायां वाज

सनेय संहितायां दीर्घ पाठे अष्ट मोध्यायः ८

का. २३. ६. अ. पञ्च और सोमविषे यूप के काकारोहण में उद्गात्रा  
होते हैं । सोम देवता गायत्री तैत्तिरीय कश्यप दृष्टा ॥ हे सोम तू आके  
ले जाकर यूप के काकारोहण में उद्गात्रा जैसे तैसे पालन करि अर्था  
यूप के काकारोहण में उद्गात्रा जैसे तैसे पालन करि अर्था  
तजमुप ॥ २३ ॥

इति नैमिषिकाणि मया प्लानि

इति माध्यन्दिनीयाविंशोऽंशोऽनुवाकः

श्रीवेदार्थप्रदीपेन जर्मोहार्दे निवारयन्

पुमार्थाश्चतुरो देपाद्यज्ञपुरुषः सनातनः १

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखायै तृत्याध्यायापादान्  
पविश्वामित्रपुराधियति श्रीमज्जय किशोरदेववर्मजरोकिमणे  
यनृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये ग्रहग्र  
हान्निमित्तान्तो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

पञ्चात्मकद्वैतरूपपुनि साधन करि बहुरूप

आनन्ददायक कृष्णकोवरन्यांबलस्वरूप १

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वह्निरूपकम्

स्नानं दद्यात्कं कृष्णं ब्रह्मरूपपरं स्तुमः १

अथ वाजपेयो बृहस्पतेरर्षमिन्द्रस्य च

अ०१ देवसवितः ॥ देवसवितः प्रसुवयश्चाम्प्रसुवयश्चपति  
म्भगाय ॥ दिव्यो गन्धर्वः केतुपूः केतन्नः पुनातु वाच  
सतिर्वाजन्नः स्वदतु स्वाहा ॥ १ ॥

ओं नमो यज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवैद्यार्थप्रदीपके

वाजपेयो राजसूयारम्भान्तो नवमोच्यते

चतुर्थीध्याय से आरंभ करि अष्टमान्त पांच अध्यायों में अग्निष्टो  
के मंत्र और तिसके प्रासंगिक मंत्र कहे नवमें अध्याय में चतुस्त्रिं  
शत् कण्डिका पर्यन्त वाजपेयके मन्त्र हैं तिन्हों के बृहस्पति और  
इन्द्र ऋषि। तत्र का ०१४.१.११० वाजपेयाङ्गभूत दीक्षणीय प्राय  
णीयादिकों में एक वारलिये आज्य को होमें। सवितृ देवत्या त्रिष्टु  
पू ॥ हे सवितः सबके प्रेरक अन्तर्यामिन् हे दीप्यमान् वाजपेय  
लक्षण याग को प्रवर्तकरि। यज्ञपति यजमान को भजनीय अनुष्ठा  
नरूप परमेश्वर्य के अर्थ प्रेरित एवं मण्डलाधिष्ठातार पुरुषको क  
हिकर मण्डल प्रति कहिता है। तेरे प्रसाद से दिवि में हुआ दिव्य  
गन्धर्व अर्थात् गवि रश्मियों का धारण करने वाला अन्नका

पवित्र करने वाला सूर्य मण्डलरूप देवता हमारे अर्थ अन्न को पवित्र करे। किंच तेरे प्रसाद से प्रजापति हमारे अन्न को आस्वादन करे स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ १॥

ध्रुव सदन्त्वा ॥ नृषदम्पनः सदमुपयामगृहीतोसीन्द्रायत्वा जुष्टं द्रुह्नाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा जुष्टं तमम् ॥  
अप्सु षदन्त्वा घृतसदं व्योमसदं मुपयामगृहीतोसीन्द्रायत्वा जुष्टं द्रुह्नाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा जुष्टं तमम् ॥  
पृथिविसदन्त्वान्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदन्त्वा कसदं मुपयामगृहीतोसीन्द्रायत्वा जुष्टं द्रुह्नाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा जुष्टं तमम् ॥ २॥ +

का० १४०२२६ २०१ प्रातःसवनं विषे आग्रयण के अनन्तर तीनि अति ग्राह्यो कों और षोडशिन को ले इन्द्र देवता क पांच ग्रहों का ग्रहण करे। ऐन्द्राणि त्रीणि। अथ प्रथमम्। ध्रु-मूया-जम्बु-मि १२३ सा-अ० हे सोम तू उपयाम ग्रह करि गृहीत है। इन्द्र के अर्थ प्रिय तुम्हें ग्रहण करता हूं कैसे तुम्हें कि बहुत करिके स्थिर इस लोक में रहत ता है-मनुष्यों में रहता है मन में रहता है + ॥ ए-मू १२३ आसुरी अ० सादयति। हे ग्र यह खर प्रदेश तेरा स्थान इन्द्र के अर्थ प्रिय तुम्हें सादन करता हूं इति शेषः ॥ अथ द्वितीयम् ॥ अ-मू आसुरी अ०। उदक में रहने वाला घृत विषे अन्तरिक्ष में। शेषो व्याख्यातः ॥ तृतीयम्। पृ-मू यजुः। पृथिवी में अन्तरिक्ष में स्वर्ग में देवताओं में नाके नहीं हैं दुःख जिसमें ऐसे सुखान्वित स्वर्ग विशेष में रहता है शेषं समानम् ॥ २॥

सोमः अथ सः ३०१ लोकः स्वावर्तमानः सोमः अथ सः ३०१ लोकः स्वावर्तमानः

मि। ३०१ ए-मू ३०१

अपाथं रसम् ॥ अपाथं रसमुद्वयसर्गसूर्ये सन्तर्गसमा  
हितम् ॥ अपाथं रसस्य योरसस्तम्बो गृह्णाम्युत्तममुपया  
मगृहीतो सीन्द्रायत्वा जुष्टं द्रुह्णाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा  
जुष्टतमम् ॥ ३ ॥ +

चतुर्थम् । रसदेवत्यानुष्टुप् ॥ सूर्यविषे भले प्रकारस्थापन किये हुए  
जलों के रस सार वायु को मैं ग्रहण करता हूँ + । कैसे रस को कि उत्प  
न्न होते हैं प्रश्न जिस से । किंच वायु का जो सार प्रजापति हिरण्यगर्भ  
सहियज्ञ लोक कालाग्नि वायु सूर्य यजुः सामादि वपुः हे देवता ओ  
वः ( तुम्हारे अर्थ तिस प्रजापति को मैं ग्रहण करता हूँ कैसे वोह  
कि बड़ा उत्कृष्ट । वः शब्दोऽनर्थकः । अथवा सोम रूप करि वायु  
और तिस के अभिमानी सोम को ग्रहण करता हूँ । उपयामेति व्य  
ख्यातम् । एषतः इति सादनम् ॥ ३ ॥

ग्रहाः उज्ज्वलतयः ॥ ग्रहाः उज्ज्वलतयो व्यन्तो वि प्रायमति  
म् ॥ तेषाम्विशिष्टा प्रियाणाम्वोहमिषमुज्ज्वलं समग्रभमुप  
यामगृहीतो सीन्द्रायत्वा जुष्टं द्रुह्णाम्येषते योनिरिन्द्राय  
त्वा जुष्टतमम् ॥ सम्पृचोस्यः समाभद्रेण पुङ्कम्विष्ट  
चोस्यो विमापाप्मनापुङ्कम् ॥ ४ ॥ +

पंचमम् ॥ ग्रहदेवत्यानुष्टुप् । हे ग्रह ओ तिन तुम्हारे संबंधि अन्न  
और रस को मैं भले प्रकार ग्रहण करता हूँ कैसे कौं कि विशिष्ट प्रिया  
हनु वा नासिका नहीं चलाने पड़ते हैं जिन ग्रहों में तिनों को सम्प  
गमिषुत्त और संपूत हैं जिन्हों में सुपेय होने से हनु का व्यापार नहीं

+ अ-म। अ०। उ-मि। अ०। ए-म। उ०। ३॥

+ ग्र-म। अ०। उ-मि। इ०। ए-मि। उ०। स-म। अ०। वि-म। ल०। ४ ॥



तिन किन्हीं को किजे तुमको अन्न रस लाते हैं। तथा मेधावी इन्द्र के अर्थ विशिष्ट बुद्धि को जानते वा लाते हैं। उप० एष० व्याख्याते॥ का० १४०२०० अध्वर्यु सोम ग्रह को अक्ष के ऊपर धारण करै नेष्टा सुरा ग्रह को अक्ष के नीचे रखे साथ ही रखना और मंत्र पठना है॥ ग्रह देवते यजुषी। हे सोम सुरा ग्रह औ जो तुम संयोजन किये हो सो तुम मुझे कल्याण से संयोजन करै। का० १४०२०० अध्वर्यु नेष्टा अपने अपने ग्रह को अपने समीप में लावे॥ हे ग्रह औ जैसे तुम वियुक्त हो तैसे मुझे पाप से न्यारा करै॥ ४॥

अ० २ इन्द्रस्य वज्रः॥ इन्द्रस्य वज्रो सिवाज सास्त्वया यम्वाज ठसेत॥ वाजस्य नु प्रसवे मातारम् मही मदिति न्नाम ब्रह्म साकरा महे॥ यस्यामिदं म्बिम्बुवनं मा विवेश तस्मान्नो देवः सविता धर्मसा विषत्॥ ५॥†

का० १४०३०१ महा मरुत्वती यके अन्त में माहेन्द्र से पूरे अध्वर्यु रथ बाहन शकट से रथ अवतारण करै। इ-त आसु-गा० रथ दे०॥ हे रथ तू इन्द्र का वज्र है†। कैसा है तू कि अन्न का दाता किंच य हयजमान तुरुब ज्र भूत की सहाय से अन्न को भजै वा बहुत अन्नवान् होवै॥ का० १४०३०२ अवतारित रथ की धुरि पकड़ि कर चात्वा ल से दक्षिण हो लाय करि वेदी विषे स्थापन करै। वा-त पृथिवी देवत्या कि जगती अन्त्यः पादः सवितु देवत्यः॥ अन्न की अनुज्ञा विषे जैसे हम वर्तमान जिस भूमि को प्रसिद्ध जैसे तैसे वेद वाक्य करि अनुकूल करते (हुए) हैं। कैसी भूमि को कि जगत की निर्माण करने वाली बड़ी

गहनीय अखंडित। किंच यह विश्व सर्वभूतजात जिस भूमि में आ  
सविता ऐसेही तिस भूमिविषे हमें धर्म धारण अवस्थान  
प्रेरणा करे ॥५॥

अप्स्वन्तः॥ अप्स्वन्तरमृतमप्सुमैषजमुपासुतप्रश  
स्तिष्वश्वामवतवाजिनः॥ देवीरापोयोवऽउर्मिःप्रतू  
र्तिः ककुन्मान्वाजसास्तेना यम्वार्जटंसेतू॥६॥

३.३.५. स्नानके अर्थ जलके निकट लाये वा स्नान कि  
अश्वों को अप्स्वन्तः। इस मन्त्र-वा देवी रापः। इस-वा दो  
से प्रोक्षण करे। अश्व देवत्या वसान रहिता पुर उष्णिक् ॥  
जलके भीतर में अमृत अवस्थित और जल में भेषज आरोग्य  
प्रति करने वाली ओषधी अवस्थित हैं हे घोड़ेओ तुम तहां अ  
मृत भेषज युक्त जल विषे अन्नवान् होओ और प्रशस्त भागों वि  
होओ ॥ द्वितीयः प्रोक्षणमन्त्रः अद्देवत्यं यजुः। हे देवी जल तु  
म्हारा जो कल्लोल तिस करिके सींचा यह अश्व अन्न को दे। के  
है कल्लोल कि प्रकृष्ट वेगशील। तथा ककुन्मान् ककुत्तश  
करि वृषभ के स्कन्धविषे उन्नत प्रदेश है तिस समान उदकनि  
य संयुक्त अर्थात् बड़लोदक संघातवान्। तथा अन्न का दाता ॥६॥

वातोवा ॥ वातोवा मनो वागन्धुर्वाः सप्तविंशतिः ॥

तेऽअग्रेष्व मयुञ्जं स्तेऽअस्मिज्जवमादधुः॥७॥

का. १४.३.६. दक्षिण अश्व को रथ में जोड़े। वातोवा + वातरुहा  
जवोयः तिस्रोश्च स्तुतयः क्रमेण उष्णिक्निष्ठुज्जगत्यः ॥ वाशब्दो

समुच्चयार्थो। वायु मन इन्द्रिय सप्तविंशति नक्षत्र भूमिके धारण करने वाले ते वातादिक पहिले अश्व को रथमें जोड़ते हुए और ते वातादिक अश्व में वेग को स्थापन करते हुए ॥ ७ ॥

वातरुहाभव ॥ वाजिन्युज्यमान इन्द्रस्येव दक्षिणः  
श्रियैधि ॥ युजन्तुत्वा मरुतो विश्ववेदस आते त्वष्टा प  
त्सुजवन्दधातु ॥ ८ ॥

का० १४. ३. ७. वाएँ अश्व को जोड़ें ॥ हे वेगवान् अश्व जोड़ते ही वा तवत् वेगयुक्त हो। किंच दक्षिण भाग में स्थित तू इन्द्र का अश्व जै से शोभायुक्त हो किंच सर्वज्ञ वा सर्वधन मरुत हे अश्व तू रथ में जोड़ें। किंच त्वष्टा देवता हे अश्व पैरों में वेग को स्थापन करै ॥ ८ ॥

जवोयः ॥ जवोयस्ते वाजिनिहितो गुहायः श्येने पेरी  
तोः अचरच्च वाते ॥ तेन नो वाजिन्बलवान्बलेन वा  
जिच्च भव समनेच पारयिषा ॥ वाजिनो वाज  
जितो वाजिर्ह सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमव जिघ्रत ॥ ९ ॥

का० १४. ३. ८. दक्षिण धुरि में तीसरे अश्व को जोड़ें ॥ हे अश्व जो तेरा वेग हृदय प्रदेश में स्थापित है। श्येन नामा पक्षी तेरे वेग देने से वर्तता है और तेरे ही वेग देने से वायु चलता है। हे वाजिन् तू सत्रिविधि (विविधि) वेग लक्षण बल करिके बलवान् वेगवान् होकर हमारे अन्न का जेता हो। और संग्राम विषे पारयिता और पार का प्राप्त करने वाला हो ॥ का० १४. ३. १०. बार्हस्पत्य च रुको घोड़ों को सुंघावै। वाजिनः साम्नीजः अश्वदेः ॥ अन्न के

जेतार अन्न के प्रति चलते हुए हे घोड़े ओतुम बृहस्पति चरुको  
सूँधो ॥ ४५ ॥

अ० ३ देवस्याहम् ॥ देवस्याहर्हं सवितुः सवेसत्य सवसो बृह  
स्पते रुत्तमान्ना कर्हं रुहेयम् ॥ देवस्याहर्हं सवितुः सवेस  
त्य सवसः इन्द्रस्योत्तमन्ना कर्हं रुहेयम् ॥ देवस्याहर्हं स  
वितुः सवेसत्य प्रससो बृहस्पते रुत्तमन्ना क मरुहम् ॥ दे  
वस्याहर्हं सवितुः सवेसत्य प्रसवसः इन्द्रस्योत्तमन्ना क  
मरुहम् ॥ १० ॥ +

का० १४०३१२ उत्कर प्रदेश विषे गाडे हुए नाभि मात्र काष्ठ के अग्र  
में स्थित रथचक्र को ब्रह्मा आरोहण करे ॥ १००११०१२ वाजं जेषम् १३  
लिङ्गोक्तानि यजुः ब्राह्मण कर्तुं के वाजपेये ॥ सत्याभ्यनुज्ञ सविता  
देवता की अनुज्ञा विषे वर्तमान में बृहस्पति संबंधि उत्कृष्ट नाक  
(स्वर्ग) को आरोहण करता हूँ । क्षत्रिय वाजपेये चक्रा रोहण मन्त्रः  
सा-ज० । तत्र इन्द्र के नाक को इति विशेषः ॥ का० १४०४०८ यज  
मानादिकों के सप्तदश रथ सप्तदश शर प्रक्षेप विषे गडी हुई ओ  
दुम्बरी शारवा को प्रदक्षिणी करि देव यजन देश को आने पर ब्रह्मा  
रथचक्र से उतरे विप्र यज्ञ में पूर्व मन्त्र करि क्षत्रिय यज्ञ में उत्तर से  
आर्षी वृ० यजुः सत्य और प्रकृष्ट है सब जिसका वोह सत्य प्रस  
वाः यहाँ प्रशब्द प्रकर्ष द्योतक है । अरुहमिति भूतकालः में ना  
क को आरूढ वानहूँ शेष पूर्ववत् ॥ १० ॥

बृहस्पते वाजम् ॥ बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाच

म्वदत बृहस्पतिम्वाजं आपयत ॥ इन्द्रवाजं जयेन्नायवा  
चम्वदतेन्द्रम्वाजं आपयत ॥ ११ ॥ †

का० १४.३.१५. अनुवेद्युच्छ्रितस्या एवा रोपित सप्तदश दुन्दुभियों  
के मध्यमें एकको मन्त्र करि वजावै षोडशों को चुपके सैं। प्रा-त्रि० विप्रय  
ज्ञे मन्त्रः ॥ हे दुन्दुभी ओ तुम बृहस्पति के अर्थ यह वाचा कहौ वोह  
कोन कि हे बृहस्पते तू अन्न को जीति ॥ किंच हे दुन्दुभी ओ तुम ही  
बृहस्पति करि अन्न की जय करा ओ ॥ प्रा-वृ० क्षत्रयज्ञे दुन्दुभिवादन  
मन्त्रः ॥ हे दुन्दुभी ओ तुम इन्द्र के अर्थ अन्यत्समानम् ॥ ११ ॥

एषावः ॥ एषावः सा सत्या सम्वा ग भूद्यया बृहस्पतिम्वाजं  
मजी जपता जी जपत बृहस्पतिम्वाजं म्वनस्यतयो विमु  
च्यध्वम् ॥ एषावः सा सत्या सम्वा ग भूद्ययेन्द्रम्वाजं म-  
जी जपता जी जपतेन्द्रम्वाजं म्वनस्यतयो विमुच्यध्वम् ॥ १२ ॥ †

का० १४.४.६. १०. सप्तदश दुन्दुभी ओं के मध्य मन्त्र सैं वजा एको म  
न्त्र करि स्याणु सैं अवतारण करै षोडशों को चुपके सैं। पूर्वोक्त मन्त्रो वि  
प्रयज्ञे उत्तरः क्षात्रे। ब्रा- उ० ब्रा-गा० ॥ हे दुन्दुभी ओ तुम्हारी यह वा  
क् सत्य हुई कि जिस वाचा करि बृहस्पति को अत्यन्त अन्न की ज  
य कराई तुमने जिस वाचा सैं सो सत्य हुई। हे वनस्पतयो अर्थात् व  
नस्पति के विकार दुन्दुभी ओ तुम कृत कृत्य हुए छूटौ ॥ उत्तर मन्त्र  
में इन्द्र का उच्चारण करना समानम् ॥ १२ ॥

देवस्याहम् ॥ देवस्याहं स वि तुः सवे सत्य प्रसव सो बृह  
स्पतेर्वाजं जितो वाजं जेषम् ॥ वाजिनो वाजं जितो ध्वन

स्वप्नुवन्तो योजनानामिमानाः काष्ठाङ्गुलतः ॥ १३ ॥ +

का० १४.३.१८. मन्त्रयुक्तरथको यजमान आरोहण करे। आर्षीवृ० ॥  
सत्याम्यनुज्ञ सविता देवता की अनुज्ञाविषे कर्तमान में अन्न के जी-  
तने वाले बृहस्पति के संबंधि अन्न को जीतू ॥ का० १४.३.२२. ब्रह्मचा-  
री वा अन्नेवासी यजमान को पढ़े। सा-ज० अश्वदे० ॥ हे घोड़े ओ तु-  
म आज्यन्त (उत्कर्ष) को प्राप्त हो ओ। कैसे हो तुम कि अन्न के जीतने  
वाले। तथा मार्गों को क्षोभ करने वाले †। तथा योजनों की अतिशी-  
घ्रता करि परि छेदन करने वाले ॥ १३ ॥

एषस्य ॥ एषस्य बाजीक्षिपणिन्तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो  
ऽपिकक्षऽआसनि ॥ क्रतुर्दधिकाऽअनुसृष्टसनिष्य  
दत्तथा मङ्गाश्च स्यन्त्वा पनी फणात्वाहा ॥ १४ ॥

का० १४.४.३.४. दोऊ च ओं से आज्य को होमें वा अश्वों को अभिमं-  
त्रित करे। हे अश्वदेवत्ये जगत्यो दधिका वा वाम देव्य दृष्टे ॥ वोहय  
ह घोड़ा कशा घात के अध्वान को व्याप्त होता है अथवा कशा की  
बूर्णता से शीघ्र चलता है। कैसा है अश्व कि ग्रीवा विषे उरोवध्रक  
रिबंधा है। कक्षी ओं के समीप विषे अपिकक्ष (पयाण देश) तहां संना-  
हरज्जु करिबंधा है। मुख पर कविक करिबंधा है। तथा दधिकाः अश्व  
वार को धारण कराय चलता अथवा मार्ग के अवरोध करने वाले अ-  
द्विपाषाण गर्त कण्टकादिकों का अति क्रम करने वाला दधिकाः त-  
था क्रतुं सादिन (अभि प्राय) को भले प्रकार धारण करने वाला सादि  
संकल्पानुसार करि चलता। तथा मार्गों के ऊंचे नीचों में अति शीघ्र

+ आज्यन्तोऽपि काष्ठोच्यते कान्ता स्थितो भवतीति निरु० २.१८. पाक्षीकेः काष्ठोत्कर्ष स्थिते  
दिशीत्यभिधानात् अमर० ३.३.४६.



प्राप्त होता (अर्थात् समत्वको अर्थात् पादान करता है। एवंविधोऽश्वस्तुर  
ण्यतीति सम्बन्धः। स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ १४ ॥

उतस्म ॥ उतस्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पूर्णन्वेरन्तु वाति  
अगर्धिनः ॥ श्येनस्ये बुध्रजतोऽअङ्कः सम्परिदधिका  
वाः सुहोर्जातरि त्रतः स्वाहा ॥ १५ ॥

और इस घोड़े का शृङ्गारचिह्न वस्त्र चामरादिक समस्त देह पर व  
र्त्तमान होने से चलते अश्वको उत्क्षिप्तत्वकरि दिखलाई पड़ते हैं।  
कैसे कि जैसे शीघ्रतासे चलते पक्षी के पक्ष उत्क्षिप्त चलते दीखते  
हैं। कैसे अश्वके किंचलते तथा शीघ्र के अवधि प्राप्ति कांक्षाकर  
ने वाले के। पक्षि मात्रस्य पूर्णमङ्कः सदृष्टान्तत्वे नाभिहितम् शीघ्र  
धावने श्येन दृष्टान्त उच्यते जैसे श्येन वेगसे चलता है दधिकावा  
धारक पर्वतादिकों का अतिक्रमकरोबल सहित भृश मार्ग को तरता  
है स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ १५ ॥

शानः ॥ शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवतातामिन द्रवः  
स्वर्काः ॥ जम्भयन्तो हिम्बुर्क रक्षां सिसने म्यस्मद्युय  
वन्नमीवाः ॥ १६ ॥

का० १४०४५ शानः दूनतीन ऋचाओं करि आज्य होम वा अश्व  
भि मन्त्रण करै। अश्वदेवत्या चतुष्यदाविराड्वसिष्टदृष्टा ॥ देवताओं  
के कर्म यज्ञविषे आह्वानों में घोड़े हमारे सुख करने वाले हजियों।  
कैसे हैं कि परिमित चलते। तथा सर्प ल्यारी रक्षसों का नाश कर  
ते हैं। किंच वे घोड़े हमारे सकाश से क्षिप्रही व्याधियों को पृथक्

कीजियों ॥१६॥

तेनोऽअर्बेनो हवनश्रुतो हवम्बिश्चैश्वर्यवन्तु वाजिनोमि  
तद्वः ॥ सहस्रसामेधसातासनिष्यवो महो येधनं स  
मियेषु जिम्बिरे ॥ १० ॥

अश्वदे० जगतीनाभाने दिष्टदृष्टा ॥ वे सब घोड़े हमारे आह्वान की  
सुनियों। कैसे हैं कि कुटिल चलते हैं। आह्वान की सुनते हैं। यजमा  
न के चित्त के अनुकूल करि परिमित गामी। अनेक जनों की तृप्ति के  
योग्य अन्न राशि के दाता। यज्ञशाला के पूरक। वे कौन कि जे घो  
ड़े सङ्ग्रामों विषे पूजा बाधन की प्राप्त करते हैं ॥ १० ॥

वार्जे बानेवत ॥ वाजिनो नो धनेषु विप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः ॥  
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वन्तृभ्राजा तपथिभिर्हैव यानैः ॥ १० ॥

अश्वदे० त्रिष्टुब्जशिष्टा ॥ हे घोड़े औ समस्त अन्नों में उपस्थित होते  
और यनों में उपस्थित होते हमें पालन करें। कैसे हों तुम कि मेधावी  
(परिदृष्टकारी) अमरणधर्मा सत्यज्ञ वा यज्ञज्ञ। किंच दूस मधु को  
धावन से पहिले और पीछे अब घ्रायमाण नेवार चरुलक्षण मधुर  
हवि को पीओ और पीकें तृप्त होओ फिर तृप्त होके देवाधिष्ठित मा  
र्ग करि चलो ॥ १० ॥

आमा ॥ आमा वाजस्य प्रसवो जगम्या देमेद्यावापृथि  
वीविश्वरूपे ॥ आमा गन्ताम्यितरा मातरा चामा सोमेऽअ  
मृतत्वेन गम्यात् ॥ वाजिनो वाजजितो वाजं षं सस्रवा ॐ  
सो हृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १० ॥

का० १४०४१ यजमानरथसेउतस्वात्वालउत्करकेअन्तरमें स्थित नैवा  
रचरुका स्पर्श करे प्रजापति दे० विष्टु द्वसिष्टु दृष्टा ॥ अन्न की उ  
त्पत्ति मेरे आओ। सर्व रूपात्मिकायेद्यावा पृथिवी मुरुप्रति आओ  
मेरे पिता और माता हमारे प्रति आओ। और सोम अमृतत्व करि-  
मेरे आओ ॥ का० १४०४१२ वाजिनः इस मन्त्र करि युक्त घोडाओं  
को नैवारचरु सुंघावै। प्रा-त्रि० अश्वदे० ॥ हे घोडे औतुम बृहस्प  
ति के संबंधि चरुको आघ्राण करे। कैसे ओं कि अन्न के जीतने  
वाले। अन्न के जीतने को प्राप्त हुए हो। शोधन करते हो चरुवा  
इस यजमान को पवित्र करते हो ॥ १४० ॥

अ० ४ आपये स्वाहा ॥ आपये स्वाहा स्वापये स्वाहा पिजापस्वाहा  
कतवे स्वाहा वसवे स्वाहा हर्यतेये स्वाहा नैसुग्धाय स्वा  
हा मुग्धाय वै नरं शिनाय स्वाहा चिनर्दं शिनः आन्त्या  
य नाय स्वाहा न्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहा  
धि पतये स्वाहा ॥ २० ॥

का० १४०५१ आपये स्वाहा इति प्रतिमन्त्र से द्वादश आहुतिहोमें  
वापठे। प्राजापत्यानि द्वादश १२४५ दे० यं० ३ या-गा० ६०  
या-उ० ८ या-पं० १० आसु-पं० १०११ या-बृ० १२ दे० ज० ॥ संवत्स  
रभि मानी प्रजापतिः स्तूयते तस्यैवैतानि नामानि। आप्ति करता  
है तिसके अर्थ स्वाहा। शोभन आप्ति करता है तिस०। फिरि-फिरि  
उत्पन्न होता है तिस०। संकल्प भोगादि विषय वा यज्ञ तिस०। निवा  
स का हेतु०। दिवसों का पति। अतश्चत्वारि नामान्युभयविशेषण

† आ-हा। अ० सा-हा। इ० अ-हा। उ० क-हा। ऋ० व-हा। लृ० अ-हा। आ० द० मु-  
हा। ऊ० वि-हा। ऋ० अ-हा। लृ० भु-हा। क० अ-हा। च० २० ॥

विशिष्टानि मोहकरताहै तिसदिवसके अर्थ०। विनाश शीलभवति-  
समोह करनेवालेके०। भवका अन्यस्थान तिस विनाश शीलके०।  
भव अन्य तिस उभयविशिष्टके०। जगतके पालन करनेवालेके०  
सब लोकों के स्वामीके अर्थ स्वाहा सुहृतमस्तु॥२०॥

आयु र्यज्ञेन कल्पताम्प्राणो यज्ञेन कल्पता चक्षु र्यज्ञे  
न कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां  
यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्॥ प्रजापतेः प्रजाऽप्यभूमस्वर्देवा  
ऽअगन्मामृताऽअभूम॥२१॥†

का० १४.५.२० और आयु र्यज्ञेनेत्यादि षट् मंत्रों से होम करे वाइ  
है पढ़े। प्रजापत्यानि षट् १-६ प्रा-गा०॥ मेरी आयु वाजपेया  
ख्य यज्ञ करि कृत्त हजियो। मुखनासिका से हुआ प्राण वायु भी वा  
ज० चक्षु इन्द्री० श्रोत्र इन्द्री० पृष्ठ रथन्तरादि कवा शरीर की पीछि  
यज्ञ, यज्ञका अधिष्ठाता विष्णु मेरे वाजपेयाख्य यज्ञ से कृत्त हजियो॥॥  
का० १४.५.६-८ प्रजापतेः इस मन्त्र से पत्नी यजमान निश्रिणी से पू  
पको आगे हण करें। यजमान देवत्यानि त्रीणि १० या-बृ०॥ हम  
प्रजापति संबंधि प्रजाहुए॥ का० १४.५.९ गोधूम पिष्ट निर्मित  
चषाल को यजमान स्पर्श करे। २३ दे-त्रि०॥ हे देवताओं हम  
स्वर्ग को गए॥ का० १४.५.१० यूप से ऊंचे को शिर करे॥ हम मर  
णधर्म रहित हुए॥२१॥

अस्मेवः॥ अस्मेवोऽअस्त्विन्द्रियमस्मेनृणामुतक  
तुरस्मेवर्चां सिसन्तवः॥ नमो मात्रे पृथिव्यै नमो

मात्रे पृथिव्याऽद्वयन्ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवो सिधरुणः ॥

कृष्येत्वा क्षेमा यत्वारय्येत्वा पोषायत्वा ॥ २२ ॥ †

का० १४. ५. ११. यूपारूढ एव यजमान दिशा देखे। दिग्देव गायत्री हलायुधमते ॥ हे दिशा औ तुम्हारा संबंधि वीर्य हम विषे है। तुम संबंधि धन हम विषे है। और तुम संबंधि कर्म हमारे में है। तुम्हारे तेज हमारे में है। हमारी संबंधि तुम्हारी सामर्थ्य है। इति भावः ॥ का० १४. ५. १४. भूमि को देखे। सा. उ० पृथिवी दे० ॥ मातृरूपा पृथिवी के अर्थ नमस्कार है †। का० १४. ५. १७. उत्तर वेदी के ऊपर औ दुम्बरी आसन्दी पर वस्तु चर्म को बिछावे। दे० व० आसन्दी दे० ॥ हे आसन्दी तेरा यह राज्य तू अभिषिक्त है इति भावः ॥ का० १४. ५. १७. आसन्दी पर यजमान को उपवेश करावे। यजमान देवत्यं यजुः ॥ हे यजमान तू सब का नियन्ता है। आप संयमन कर्ता है। तेरा यमन अनवच्छिन्न है। इति भावः। तथा स्थिर है धारक है। कृषि की सिद्धि के अर्थ तुम्हें उपवेश कराता हूँ। लब्ध के परिपालनार्थ तुम्हें उष० धन के अर्थ तु० पशु पुत्रादिकों की पुष्टि के अर्थ तु० ॥ २२ ॥

अ० ५. बाजस्येमम् ॥ बाजस्येमम्यसवः सुषुवे ग्रे सोमर्द्धं राजानमो षधीष्वप्सु ॥ ताः अस्मभ्यमधुमतीर्भवन्तु च पठं गृष्टे जाग्यामपुणेहिता स्वाहा ॥ २३ ॥

का० १४. ५. २३. औ दुम्बर पात्र विषे एकी किये दुग्ध व्रीह्यादि धान्य से स्तुवा करि आहवनीय में सप्त मन्त्रों से होमें। प्रजापति देवतं तृचं त्रिष्टुभं ॥ अन्न का उत्पादक प्रजापति सृष्टिकी आदि में औष

इति लि०  
मन्त्रतः इति लि०  
२०. ४२ इति लि०

धी और जल में वर्तमान इस बल्ली रूप सोम दीप्तिमान पदार्थ को  
उत्पादन करता हुआ वे सोम की जननी ओषधी हैं और जल ह  
मारे अर्थ मधुमती (रसवती, माधुर्योपेता) अर्थात् भोग योग्या हैं और  
रहमति नहीं करि अभिषिक्त स्वकीय देश विषे अन्न मत्त हों। पुरोहि  
ताः यागानुष्ठान की आदि में प्रथम हों स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ २३ ॥

वाजस्ये माम् ॥ वाजस्ये माम्सवः सिञ्चिये दिवं मिमाच-  
विश्वा भुवनानि सम्म्राट् ॥ अदित्सन्तन्दापयति प्रजान  
न्स नो रयिर्दं सर्वं वीरुनियच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥

अन्न का उत्पादक ईश्वर इस पृथिवी और द्युलोक और इन सम  
स्त भूतजातों को आश्रितवान् और सो सम्म्राट् समस्त भूतजातों का  
राजा होकर हवि देने को अनिच्छन् मेरी बुद्धि प्रेरणे से हवि दे ततः  
हमारे अर्थ सब पुत्र भृत्यादि युक्त धन को नियम करिके देवें स्वा  
हा सुहुत मस्तु ॥ २४ ॥

वाजस्यन्तु ॥ असवः आब भूवे माच विश्वा भुवनानि स  
र्वतः ॥ सनेमिरजा परियाति बिद्वान्प्रजा स्पृष्टिम्बर्द्धय  
मानोऽस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥

बुद्धि विस्मये अन्न का उत्पादक इन समस्त भूतों सर्वतोऽवस्थित  
हिरण्य गर्भादि स्तम्भ पर्यन्त उत्पादितवान् चिरन्तन राजा हो स  
र्वतः स्वेच्छा करि चलता है। कैसा है कि अपने अधिकार को जान  
ता तथा हम विषे पुत्रादि सन्तति और धन की पुष्टि को बढाता  
स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ २५ ॥



सोमर्हं राजानम् ॥ सोमर्हं राजानमवसेग्निसन्वारभाभ  
हे ॥ आदित्यान्विष्णुर्हं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिं  
स्वाहा ॥ २६ ॥

तिस्रोऽनुष्टुभस्तापसदृष्टाः अनिरुक्ता अनुष्टुप् प्रथमा सोमाग्न्या  
दित्यविष्णु सूर्य बृहस्पति देवत्या । रक्षा वा वृत्ति के अर्थ सोम-  
राजा अग्नि वैश्वानर द्वादशादित्य विष्णु सूर्य ब्रह्मा और  
बृहस्पति को आह्वान करते हैं स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ २६ ॥

अर्थ मणमृहस्पतिम् ॥ अर्थ मणमृहस्पतिमिन्द्र  
ना यचोदय ॥ वाचम्विष्णुर्हं सरस्वतीं सवितारं च  
वाजिनं स्वाहा ॥ २७ ॥

अर्थ मृहस्पतीन्द्र वाग्विष्णु सरस्वती सवितृ देवत्या । हे ईश्वर तू  
अर्थमादिक देवताओं को धन प्रदानार्थको प्रेरि बृहस्पति देवता  
ओं के ईश इन्द्र वाचा वागधिष्ठात्री सरस्वती विष्णु सब के उ-  
त्पादक सूर्य । वाजिनं अन्न वन्त यह सबों का विशेषण वादेवाश्च  
का स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ २७ ॥

अग्नेऽपछ ॥ अग्नेऽपछा वदेहनः प्रतिनः सुमना  
भव ॥ प्रनोय छ सहस्रजित्वर्हं हि धनं दाऽअसि स्वाहा ॥ २८ ॥

अग्नि देवत्या । हे अग्ने इस कर्म विषे अभिमुख्य करि कै हित  
को कहि इति शेषः । किंच हमारे प्रति आर्द्र चित्त हो बहुत वसु  
वा सहस्रों योधाओं के जीतने वाले जैसे तू स्वभाव से ही धन का  
दाता है अतः तू हमारे अर्थ धन के दे स्वाहा ॥ २८ ॥

प्रनः॥ प्रनो यच्छ त्वर्यमा प्रपूषा प्रहृहस्पतिः॥ प्रवाग्देवी  
ददातु नः स्वाहा॥ २६॥

गायत्री अर्यम पूष हृहस्पति वाग्देवत्या । अर्यमा सूर्य विशेष हमा  
रे अर्य अभीष्ट को देवै पूषा हमा-देवै हृहस्पति हमा दीप्यमाना  
वाक् हमा स्वाहा॥ २६॥

देवस्यत्वा ॥ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्यु  
ष्णो हस्ताभ्याम् ॥ सरस्वत्यै द्वाचो यन्तुर्यन्त्रियै दधामि ह  
हस्पतेष्वासा मा ज्येनाभिषिञ्चम्यसौ ॥ ३०॥ †

का० १४. ५. २४. होमके शेष द्रव्य करि यजमान के शिरकोसींचे ।  
देवस्यत्वा प्रा- हृ० सरस्वत्यै प्रा- त्रि० यजमान देवत्यम् ॥ सविता दे  
वताके प्रसव विषे वर्तमान में अश्विनी कुमारों के बाहुओं पूषा  
के हाथों से तुम्हें वाणी नियमन करी सरस्वती के ऐश्वर्य विषे स्था  
पन कर्ता हूं । किंच हृहस्पति के सम्राट् भाव करिके तुम्हें अभिशेष  
कर्ता हूं, असौ यजमान कानामत्तेना ॥ ३०॥

अ० ६ अग्निरेकाक्षरेण ॥ प्राणमुदजयत्त मुज्जैष मश्विनोद्युक्ष  
रेण द्विपदो मनुष्यानुदजयत्तान्ता नुज्जैष न्द्विषु स्युक्षरे  
ण त्रीन्ध्रो कानुदजयत्तानुज्जैषु सोमश्चतुरक्षरेण चतु  
ष्पदः पृथ्वीनुदजयत्तानुज्जैष मूषापञ्चाक्षरेण ॥ ३१॥ †

का० १४. ५. २८. अग्निरेकाक्षरेण इसचतुः कण्डिकात्मक अनु  
वाक को जैसे का० १४. ५. १० आपये स्वाहा इन द्वादशमन्त्रों को ज  
पे वा इन्हों से होम करे तेसेही इन सप्तदशमन्त्रों को जपे वा इन्हों



न्दकरिके गायत्री छन्दोभिमानि देवताकोजी ॥ ८ ॥ ३३ ॥

मित्रो नवाक्षरेण ॥ त्रिवृत्तं स्तोममुदजयन्तमुज्जैषम्बरु  
णो दशाक्षरेण विराजमुदजयन्तामुज्जैषमिन्द्रः एकाद  
शाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयन्तामुज्जैषम्बिष्वे देवाद्वादशा  
क्षरेण जगती मुदजयन्तामुज्जैषम्बसंवस्त्रयो दशाक्ष  
रेण ॥ ३३ ॥ †

मित्र देवता नवाक्षरात्मक छन्द करिके त्रिवृत्त स्तोमकोजी ० ४ ॥  
वरुण देवता दशाक्षरात्मक छन्द करिके विराजाभिमानि देवताको  
जी ० ॥ १० ॥ इन्द्र देवता एकादशाक्षरात्मक छन्द करिके त्रिष्टुभ छन्दाभि  
मानिनी देवताकोजी ० ॥ ११ ॥ बिष्वे देवाद्वादशाक्षरात्मक छन्द करि  
के जगती छन्दाभिमानिनी देवताकोजी ० ॥ १२ ॥ ३३ ॥

वसंवस्त्रयो दशाक्षरेण त्रयोदशं स्तोममुदजयन्तमुज्जै  
षम्बरुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशं स्तोममुदजयन्तमु  
ज्जैषमादित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशं स्तोममुदज  
यन्तमुज्जैषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशं स्तोममुद  
जयन्तमुज्जैषमृजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशं स्तोम  
मुदजयन्तमुज्जैषम् ॥ ३४ ॥ †

वसुदेवते त्रयोदशाक्षरात्मक छन्द करिके त्रयोदश स्तोमकोजी ०  
१३ ॥ रुद्रदेवते चतुर्दशाक्षरात्मक छन्द करिके चतुर्दश स्तोमको  
जी ० ॥ १४ ॥ आदित्य देवते पञ्चदशाक्षरात्मक छन्द करिके पञ्च  
दश स्तोमकोजी ० ॥ १५ ॥ अदिति देवमाता षोडशाक्षरात्मक छन्द

करिके षोडश स्तोमकोजी०॥१६॥ प्रजापति सप्तदशाक्षरात्मक छन्द  
करिके सप्तदशाक्षर स्तोम कोजी०॥१७॥ ३४॥ इतिगिरिधरभाष्ये ष  
ष्टीनुवाकः॥ ॥ इतिवाजपेयमंत्रः समाप्तः ॥

अथराजसूयोवरुणस्याध्वं

अ० ७ एषते॥ एषते निर्ऋते भागस्त जुषस्व स्वाहाग्निनेत्रेभ्यो  
देवेभ्यः पुरः सद्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिण  
सद्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात् सद्यः स्वा  
हा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वामरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्यः उ  
त्तरा सद्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्यः उपरि सद्यो दुर्व  
स्वद्यः स्वाहा॥ ३५॥ +

का० १५०१०४०१०० फाल्गुणाद्य दशमीविषे अनुमती के अर्थ अ  
ष्टाकपाल पुरोडाश होता है तिसके अर्थ ग्रहण किये हविके पेष  
ण समय दृष्ट के नीचे निहित शम्याके पीछिले भागविषे गिरा  
जो तण्डुल पिष्ट रूप हवितिसे सुवा में रखि दक्षिणाग्नि से उल्मुक  
ले दक्षिण दिशा में आय जा स्फुटित भूभाग वा ऊपर में उल्मुका  
ग्नि का स्थापन करि तिस हवि को होमें। एषते-सा-उ० पृथिवीदे०॥  
हे निर्ऋते पृथिवी यह पिष्ट रूप तेरा भाग है तिस भागको तू सेवन  
करि स्वाहा सुद्धत मस्तु॥ का० १५०१०२०० एवं वर्ष की दृष्टी करिके प  
ञ्चवातीयाख्य कर्मको कहिते हैं तत्र आहवनीय को प्रागादिदिशों  
और मध्यमें स्थापन करि सुवासै पांचों अग्निविषे यथा लिङ्ग हो  
में। अध्याय समाप्तिपर्यन्त देवा ऋषयः। दशयजूर्ध्वि देव देवत्या

+ ए-हा॥ अ० अ-हा॥ इ० य-हा॥ उ० वि-हा॥ ऋ० मि-हल॥ सो-हाक॥ ३५॥

नि १. सा-उ० २. ६. आसु-गा० ३. ७. सा-अ० ४. ५. ८. यजुः ९.  
 सा-ज० १०. सा-पं० ॥ पुरस्तात् जुहोति ॥ अग्नि है नेता जिन्हों का ति  
 न्हों के अर्थ। पूर्व में रहते हैं तिन देवताओं के अर्थ स्वाहा सुहुतम  
 स्तु ॥ १॥ दक्षिणोजु० ॥ यम है ने०। दक्षिण में रह० ॥ २॥ पश्चात् ॥ विश्वे  
 देवा है ने०। पीछे में रह० ॥ ३॥ उत्तरार्धे० ॥ मित्रावरुण अथवा मरु  
 त है ने०। उत्तर में रहते हैं उत्तर भाग के अर्थ ० तिन दे० ॥ ४॥ मध्येजु० ॥  
 सोम है नेता०। ऊपर रहते हैं। परिचर्यावान् अथवा दुवः शब्देन ह  
 व्यं हव्यवान् तिन देवताओं के अर्थ स्वाहा सुहुतमस्तु ॥ ३५॥

ये देवाः ॥ ये देवाः अग्नि नेत्राः पुरः सदस्तेभ्यः स्वाहा ये  
 देवा यमनेत्रा दक्षिणा सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेव  
 नेत्राः पश्चात् सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुण नेत्रा  
 वामरुनेत्रा वोत्तरा सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राः  
 उपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३६॥

का० १५. १. २१. पञ्चधा विभक्त आहवनीय को एक करिये देवाइन  
 पांच मन्त्रों से प्रत्येक को हो में ॥ जिन देवताओं का अग्नि है नेता पूर्व में  
 स्थान तिन देवताओं के अर्थ स्वाहा ॥ ६॥ ७. ८. मित्रावरुण नेत्राः  
 मरुनेत्राः इति मंत्रयोर्विकल्पः ९. १०. चतुर्णां पूर्ववद्वाख्या ॥ ३७॥

अग्ने सहस्व ॥ अग्ने सहस्वपुतनाः अभिमातीरयास्य ॥

दुष्टरुस्तरन्नरातीर्षिर्चीर्धायुस्तवाहसि ॥ ३८॥

का० १५. २. ५. अपा मार्ग के तण्डुलों के होमार्थ दक्षिणाग्नि में उल्टा  
 क का आदान करे ॥ अग्नि देवत्यानुष्टुप् भारवौ देवश्वा देववात



दृष्टा ॥ हे अग्ने तू शत्रु सेनाका सहस्र अभिभव। तथा शत्रुओं को निवर्त कर। किंच यज्ञनिर्वहक यजमानके अन्न स्थापन कर। कैसा है तू कि कोई भी तरने की समर्थ नहीं होता अर्थात् अशक्य प्रतिक्रियाः दुर्निवारः। शत्रुओं को तरता अर्थात् विनाश करता ॥ ३७ ॥

देवस्यत्वा ॥ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेष्ट्विनोर्बाहुभ्याम्पू  
ष्णो हस्ताभ्याम् ॥ उपार्धं शोर्बाह्वोर्येण जुहोमि हतर्क्षः  
स्वाहा रक्षसान्त्वावधायावधिष्मरक्षोवधिष्मा मुमसौ  
हतः ॥ ३८ ॥

का० १५. २. ६. प्राक् वा उदक्चलिग्रहण किये उल्मुक को स्थापन कर सुवा से अपा मार्ग तण्डुलों को होमें। देवस्यत्वा प्रा-ह व्याख्या ता १. १०. ॥ उपार्धं शोः १. आसु-गा० २. या-उ० ३. सा-उ० वीणारक्षोघ्न देवत्यानि ॥ उपार्धं शुनाम प्रथम ग्रह तिसकी सामर्थ्य से हो म करता हूं अत एव राक्षस जाति हतम् स्वाहा सुहृतं हविरस्तु ॥ १॥ का० १५. २. ७. जिस दिशा में होम करै तिसदिशा प्रति सुवा की डा लै ॥ राक्षसों के वध के अर्थ तुम्हें डालता हूं इति शेषः ॥ २॥ का० १५. २. ८. अध्वर्यादिक पीछे को न देखते देव यजन प्रति आवें ॥ राक्षस जाति को हमने मारा अमुमिति शत्रु नाम ग्रहणम् आसाविति च दुर्योधन हमने मारा दुर्योधन हम करिके मारा गया ॥ ३३ ॥

अ० ८ सवितात्वा सुवानां सुवता मग्निर्गृहपती नार्थं सोमो व  
नस्पतिनाम् ॥ बृहस्पतिर्वीचः इन्द्रो ज्येष्ठा यरुदः पृथु  
भ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मो पतीनाम् ॥ ३४ ॥

का. १५. ४. १३-१५. आर देवताओं के हवि तहां अन्न के वरुणाय धर्मपतये इस वारुण चरुसै चरिकै यजमान के पास जा मुचिको सब्य हाथ में करितिसकी दक्षिण बाहु को ग्रहण करि सविता त्वेति कंडिका इयरूप मंत्र को कहै. मंत्र विषै यथा स्थान यजमान औरतिसके माता पिता जिस जान पदकी जातिका तिन सबों के नाम ग्रहण करै ॥ अति जगती यजमान देवत्या ॥ सविता आज्ञाओं के आधिपत्य विषै हेयजमान तुम्है प्रेरणा करै अर्थात् सबों के आज्ञादान विषै अधिकारी हो। अग्नि गृहस्थानों के आधि०। सोम वृक्षों के आधि०। अर्थात् सब वृक्ष तेरे उपकारक हों। बृहस्पति वाचा पाण्डित्य के आधिपत्य०। इन्द्र देवता ज्येष्ठ भाव के अर्थ तुम्है०। रुद्र पशुओं के अर्थ वापशुओं के आधिपत्य०। मित्र देवता सत्य वाक्य के अर्थ सत्य बोलने को तुम्है०। वरुण धर्मेश्वरों (धर्मशीलों) के आधि०। सवित्रादि अष्टदेव हवियों के दाता तुम्है अनेक आधिपत्य दें इति वाक्यार्थ ॥ ३६ ॥

इमं देवाः ॥ इमं देवाः असपत्नर्हं सुवध्वम् महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जान राज्या येन्द्रस्येन्द्रियाय ॥ इमं मुष्य पुत्रं मुष्यै पुत्रं मुष्यै विशः एष वो मी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ॥ ४० ॥ इति सर्गहितायामष्टमोऽनुवाकः

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीशाखीयायां वाजसनेय्य सर्गहितायां दीर्घ पाठे नक्ष मोध्यायः ॥ ६ ॥

अत्यष्टि र्यजमान देवत्या। हे सवित्रादि देवताओं इस अमुक युधिष्ठिर संज्ञक यजमान को शत्रु रहित करिकै प्रेरणा करै कि मर्ये कि

बड़ी क्षत्रपदवीके अर्थ वडे ज्येष्ठभावके अर्थ। इन्द्री (वीर्य, आत्म  
ज्ञान सामर्थ्य)के अर्थ इस यजमान को प्रेरी। कैसा है यह पण्डुका पु  
त्र कुन्ती देवी का पुत्र। इस कौरवी प्रजाका अधिपति इति शेषः। स  
त्रिय कुरुजातिका हे कुरुजाङ्गलि औ तुम्हारा यह युधिष्ठिर देव व  
र्मा राजा है। हम ब्राह्मणों का सोम (चन्द्र वा बल्लीरूप सोम) राजा प्रभु  
है ॥४०॥ इति गिरिधर भाष्येष्टमोऽनुवाकः ८

श्रीवेदार्थ प्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
पुमार्थोऽथ तुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः  
श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनी शाखाध्येतव्या घृणादान्वय  
विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मा जगैर्विभक्त  
नृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये वा  
जपेयो राजसूयान्तवर्णनो नाम नवमोऽध्यायः ॥४॥

हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपपरं स्तुमः १

अ० १ अ० देवाः ॥ अ० देवा मधुमती रगृम्भान्नूर्ज स्वती राज  
स्वस्थिताः ॥ याभिर्मित्रावरुणावुम्व्यभिश्चुन्याभिरिन्द्र  
मनयन्नत्यरांतीः ॥ १ ॥ ओं नमो याज्ञवल्क्याय ॥

गिरि प्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थ प्रदीपके

चरकसौमण्यन्तो दशमोऽध्याय इत्यने

नवमे अध्यायमें वाजपेय और राजसूय संबंधी कुछ एक कर्मक  
हा दशमेंमें अभिषेकार्थजलादानादि राजसूयका शेष और चरकसौ  
त्रामणी कहिते हैं॥ तत्रका ० १५.४.२१-२४ इडाग्रहणकार्यशेषोपलक्ष  
णहै देवताओं के हविका भाग परिहरणान्त किये पीछे वक्ष्यमाण प्र  
कारसे वक्ष्यमाण जल औ दुम्बर वृक्षयात्रविषे ग्रहण करै तत्रविशे  
षः यथानैमित्तक (अन्तरिक्षसे आतप वर्षा) शुष्का गोरुत्व्या इ  
त्यादि ते राजसूयसे पहिले सम्पादन करि तिन्हों को यूपके उत्तर  
करि ग्रहण करै तिन आतपवर्षणादिकोंके निमित्तके अभाव  
में इतर अनैमित्तिकी जल प्रति जाकर तिसै ग्रहण करै तत्रमंत्रा  
नाह का ० १५.४.४३ अपो देवाः इससे सरस्वती नदी संबंधिनी ज  
ल को ग्रहण करै। अब्देवत्या त्रिष्टुप् ॥ इन्द्रादिक देवता जिस जल  
को ग्रहण करते हुए। कैसी है जल कि मधुस्वादोपेत। तथा विशि  
ष्टान्नरसवती। नृपों की उत्पादन करने वाली। चेतयमाना सदै  
वत होने से परिदृष्टकारिणी। पुनः ता एव विशिनष्टि जिस जलसे  
देवता मित्रावरुण का अभिषेक करते हुए। जिस जल करि देवता  
इन्द्रके शत्रुओंको अत्याक्रमण करते हुए। तिस जल को ग्रहण क  
रताहं इति शेषः ॥ १॥

वृषाः ऊर्मिः ॥ वृषाः ऊर्मिरसिराष्ट्रदाराष्ट्रम्मे देहि स्वा  
हा वृषाः ऊर्मिरसिराष्ट्रदाराष्ट्रममुष्मे देहि ॥ वृषसे  
नोसिराष्ट्रदाराष्ट्रम्मे देहि स्वाहा वृषसे नोसिराष्ट्रदारा  
ष्ट्रममुष्मे देह्यर्थे तस्य ॥ २॥ †

का० १५०४४४०१५०४२६ सारस्वती जलके लिये पीछे उत्तर षोडश जलों विषे वृषाः ऊर्मिः इत्यादि स्वाहान्त पूर्व-पूर्वमन्त्रों करि ग्रहण किये चतुर्गृहीत आज्य से होमें उत्तर स्वाहा हीन मन्त्रों से क्रम पूर्वक ग्रहण करै उत्तर मन्त्रों में अमुष्मे इति पद के स्थान चतुर्थ्यन्त यजमान का नाम लेना वृषाः ऊर्मि से ले विश्वभूतस्थ पर्यन्त मन्त्र संहिता में दोवार पढ़े गये तिन्हों में पूर्व-पूर्व स्वाहान्त तिन्हों से आज्य होम है उत्तर-उत्तर स्वाहा हीन तिन्हों से जलों का आदान तहां जाकर पशु वानर से जो पूर्व अपर कल्लोल तिसे होमिके ग्रहण करै इति सूत्रार्थः ॥ वृषा ऊर्मिरसीत्यादीनि आपः स्वरा जस्य इत्यादीनि लिङ्गाक्त देवतानि । अ० इ० गा-अ० हे कल्लोल तू सी चने वाने पशु वानर का संबंधी कल्लोल है । स्वभाव से ही देश प्रद है अतः राष्ट्र मेरे अर्थ दे स्वाहा हविर्दत्तमस्तु । एवं इत्यादि गृह्णाति । वृषा ऊर्मिरसि राष्ट्रदा अतः यजमान (युधिष्ठिर) के अर्थ जनपद दे । अमुष्मे इति चतुर्थ्यन्त यजमान नाम ग्राह्यम् ॥ १॥ एवमुपरितना आपमन्त्राव्याख्याः ॥ अपरोर्मि गृह्णाति । उ० ऋ० आसु-गा० वृषसे नोसि वृषा-से च न समर्था सेना जल राशिरूपा जिसकी वोह वृष से न सिद्ध व्याख्यातम् ॥ २॥ २॥

अर्थे तस्य राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहार्थे तस्य राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मे दत्तो ज स्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहो ज स्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मे दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मे दत्ता पाम्यति

सिराष्ट्रदा राष्ट्रमे देहि स्वाहा पा म्यतिर सिराष्ट्रदा राष्ट्रमु  
 ध्वे देह्य पाङ्गर्भे सिराष्ट्रदा राष्ट्रमे देहि स्वाहा पाङ्गर्भे सिरा  
 ष्ट्रदा राष्ट्रमु ध्वे देहि सूर्य्यत्वचसस्य ॥३॥†

का० १५.४.२० नद्यादि प्रवाहस्था जलग्रहण करै ॥ अ० दू० सा-उ०  
 प्रयोजन को उद्देश करि नद्यादि के सकाश से यज्ञ देश को जाती-  
 तैसी तुम देश की देने वाली हो मुझे राष्ट्र दे बहुवचनम् व्याख्यात  
 मन्यत् ॥३॥ का० १५.४.२० वहती हुई तिस प्रतिचले तिन्हे के होमा  
 दानमें ॥ उ० ऋ० आसु-गा० हे जल तुम बल युक्त हो ॥४॥ का० १५.४.  
 २४ वहती हुई जल मध्याद्यामार्गान्तर से चल करि फिरितहां मिल  
 तीहें तिसके होम आदान विषे ॥ लृ० आ० सा-दृ० हे जल तुम सर्व  
 तो वहन शीला हो ॥५॥ का० १५.४.३० समुद्र के जल के होम आदा  
 नमें ॥ ई० ऊ० सा-अ० जलों का स्वामी है ॥६॥ का० १५.४.३३ नद्या  
 दिक में जहां जल का भ्रम तिस के होम ॥ ऋ० लृ० आसु-गा०  
 हे जल के भ्रम तू जल का मध्यवर्ती है ॥७॥ ३॥

सूर्य्यत्वचसस्य राष्ट्रदा राष्ट्रमे दत्त स्वाहा सूर्य्यत्वचस-  
 स्य राष्ट्रदा राष्ट्रमु ध्वे दत्त सूर्य्यवर्चसस्य राष्ट्रदा राष्ट्रमे  
 दत्त स्वाहा सूर्य्यवर्चसस्य राष्ट्रदा राष्ट्रमु ध्वे दत्त मान्दास्य  
 राष्ट्रदा राष्ट्रमे दत्त स्वाहा मान्दास्य राष्ट्रदा राष्ट्रमु ध्वे द  
 त्त व्रजक्षितस्य राष्ट्रदा राष्ट्रमे दत्त स्वाहा व्रजक्षितस्य रा  
 ष्ट्रदा राष्ट्रमु ध्वे दत्त वाशास्य राष्ट्रदा राष्ट्रमे दत्त स्वाहा वा  
 शास्य राष्ट्रदा राष्ट्रमु ध्वे दत्त शर्विष्ठास्य राष्ट्रदा राष्ट्रमे



दत्तस्वाहा शर्विष्ठास्य राष्ट्रदाराष्ट्र ममुष्मै दत्तशक्करीस्य रा  
ष्ट्रदाराष्ट्रमै दत्तस्वाहा शक्करीस्य राष्ट्रदाराष्ट्र ममुष्मै दत्त  
जनभृतस्य राष्ट्रदाराष्ट्रमै दत्तस्वाहा जनभृतस्य राष्ट्रदा  
राष्ट्र ममुष्मै दत्तविश्वभृतस्य राष्ट्रदाराष्ट्रमै दत्तस्वाहावि  
श्वभृतस्य राष्ट्रदाराष्ट्र ममुष्मै दत्तापः स्वराजस्य राष्ट्रदा  
राष्ट्र ममुष्मै दत्त ॥ मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तामहि  
क्षत्रं क्षत्रिया यवन्वानाः अनाधृष्टाः सीदतसूहो जसो  
महि क्षत्रं क्षत्रिया यदधतीः ॥४॥†

का० १५०४३४० वहती जलमें जो स्थिरा सदा घर्ममें वर्तमान तिन्हों के  
हो०॥ अ० ५० उ० ऋ० सा-अ०॥ हे जल तुम सूर्य की त्वचाही कारण  
यह कि सदा ताप में वर्तमान हैं ॥ ७॥ का० १५०४३५० आतप घाम  
में वरसती पहिले सम्पादन की हुई जल को यूपके उत्तर से तिन्हों  
के हो०॥ सूर्यके तेजयुक्त हो०॥ का० १५०४३६० तडाग के जल के हो०॥ लृ० आ०  
आसु-अ०॥ हे जल तुम मोद कराने वाली हो (प्राणी मोदित होते हैं-  
बहुत जल होने से ॥ १०॥ का० १५०४३७० कूपके जल०॥ इ० ऊ० आसु-  
गा०॥ हे जल तुम ब्रजक्षित हो ब्रज इति मेघनामसु निघं० १०१००  
पठितम् अत्र तु बहुत जलधारण की सामर्थ्य से कूप कहते हैं कूपमें  
निवास करती हो ॥ ११॥ का० १५०४३८० तृणके अग्रमें स्थित जल  
वस्त्र करि गृहण किये (दार) को यूपके उत्तर करि हो० ऋ० लृ० आसु-  
अ०॥ अन्न का हेतु होने से नर कामना करते हैं (वश कान्तो) तुम वाश  
हो ॥ १२॥ १५०४३९० मधुके हो०॥ क० च०॥ हे मधु रूपा जल तू बल दे

† सू० अ० ५० सू० ऊ० ऋ० मा० लृ० आ० वृ० इ० ऊ० वा० ऋ० लृ० आ० क० च० श० ट०  
त० ज० प० ख० वि० छ० ठ० आ० ता० य० म० ना० फ० अ० ती० ग० ४॥

नेवाली हौ विदोष बल शमनत्वाद्वलकरं मधु ॥१३॥ का० १५.४.४०.  
 प्रसूयमान धेनु के गर्भ बेष्टन सैं उठे जल को कि जो पूर्व गृहीत है पूष  
 के उत्तर करि होम ॥१४॥ का० १५.४.४१. दु  
 ग्ध के हो ॥ प० ख० छ० ठ० आसु. गा० हे जल तुम वाल भाव में ज  
 न जन्तुओं को पोयते हो ॥१५॥ का० १५.४.४२. घृत के होम आदान  
 बिषें ॥ हे घृत रूपा जल तुम समस्त जगत देवादिकों को धारण क  
 रते हो शिष्टं समानम् ॥१६॥ का० १५.४.४५. आपः स्वराज. इस सैं  
 मरीचि, रविकरतप्ता जल को अञ्जलि सैं ले पूर्व ग्रहण किये  
 हुए जलों में डालै प्रति ग्रहण में मन्त्रः संसर्ग चुपके सैं ॥ नय हां  
 पर होम षोडश आहुति होमें सारस्वती और मरीचि दोनों को न  
 होमें. शत० ५.३.४.२३. योडा हुती रित्यादि ॥ मन्त्रार्थः ॥ प्रा-अ०  
 हे जल मरीचि रूपा तुम आप ही सैं राज मान अनन्याश्रित हो  
 राष्ट्ररा अतः युधिष्ठिर राजा के अर्थ राष्ट्र देओ ॥ का० १५.४.४६.  
 मधुमती. इस सैं सरस्वत्या द्या जलों को उदुम्बर काष्ठ के पात्र में प  
 क करै ॥ अन्वेवत्यं यजुः. मधुमती. सरस्वती यह जल मधुर स्वादो  
 येत जलों के साथ एक हो. कैसी है यह महत्क्षत्र बल को राजा यज  
 मान के अर्थ देती है ॥ का० १५.४.४७. अनाधृष्टाः सैं ओदुम्बर पा  
 त्र में एकी किये ते जल मैत्रावरुण धिषाय के अग्र सदन में स्थापन क  
 रै. सा-वि० अन्वेवत्यम् ॥ हे जल तुम तिष्ठो. कैसे हो तुम कि रक्ष  
 सों सैं अपरा भूत हो. बल युक्त हो. तथा महत् क्षत्र बल को क्षत्री

राजा के अर्थ स्थापन कर्ता हों ॥४॥

अ० २ सोमस्य त्वषि ॥ सोमस्य त्वषि रसितवे वमे त्विषि भूयात् ॥  
अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा  
पूषणे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा श्लोकाय स्वाहा  
शूराय स्वाहा भर्गवाय स्वाहा र्यम्ये स्वाहा ॥५॥

का० १५.५.१० मैत्रावरुण धिष्ण्यके आगे आसादित पालाशादिचा  
रों पात्रों के पूर्व सोमस्य त्विषि से व्याघ्रचर्म विछावें। आसु-गा० चर्म  
देवत्यम् ॥ हे चर्मन् सोम की दीप्ति है इस हेतु तुरज्जैसी मेरी काम्नि  
होय त्रवे सोमः इत्यादि शत ० ५.३.५.३ ॥ का० १५.५.३.३४ पार्ष  
संज्ञिक द्वादश मन्त्रों के बीच अग्नयः इत्यादि षट् मन्त्रों से अभिषे  
क की आदि में होम करे इन्द्रायेत्यादि षट् से अभिषेक के अन्त में  
सकृद्गृहीत आज्य से होमें। लिङ्गोक्तानि द्वादश १.२.३.७.८.९.१०  
११.१२. दै० पं० ४. दै० त्रि० ५. दै० बृ० ६. दै० ज० ॥ गतिवान् अग्निः ॥  
१॥ सुनोति सोमः ॥ २॥ सुवे वा प्रेरै सविता ॥ ३॥ प्रवाहवती सरस्व  
ती ॥ ४॥ पुष्टि करने वाला ॥ ५॥ बृहत् सोमो कापति ॥ ६॥ इन्दति ईष्टे  
॥ ७॥ शब्द करोति ॥ ८॥ जनों से कीर्तन किया गया ॥ ९॥ पुण्यपापके  
विषे फलदान से विभाग करने वाला ॥ १०॥ सेव्येते सभगः ॥ ११॥ व्याप्रे  
ति विश्वम् ॥ १२॥ ऐतेभ्यः सुद्धतमस्तु ॥ ५॥

पवित्रे स्थः ॥ पवित्रे स्थो वैष्णव्यो सवितुर्वः प्रसवः उत्पुना  
म्य छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ अनिभृष्टम  
सिवाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहारज्जुः ॥ ६॥

+ सो-तू.अ०.अ-हा। दू०.सो-हा। उ०.स-हा। ऋ०.ल०.पू-हा। आ०.हृ-हा। ऊ०.घो-हा।  
ऋ०.श्लो-हा। लृ०.अ-हा। क०.भ-हा। च०.अ-हा। ट०.॥५॥  
+ प-व्यो। अ०.स-भिः। दू०.अ-स्वः। उ०.॥ ६॥

का० १५. ५. ४. प्रकृतिवत् पवित्रे स्थ इत्सु सै पवित्री करिति न्हों में स्वर्ण  
बांधै ॥ व्याख्याता दै- ज० १. १२. ॥ का० १५. ५. ५. हिरण्य सहित द  
र्म पवित्रियों सै मैत्रावरुण धिष्य के आगे आसादिता ओदुम्बर  
र पात्रस्था जलका सवितुरित्यादि राजस्वः इत्यन्त मन्त्र सै उत्प  
वन करै ॥ प्रा-यं० अनिभृष्टम् यजुः अन्वेदवत्यम् ॥ सर्वों के प्रेरक  
परमेश्वर की अनुज्ञा विषे स्थित जोमें सो छिद्र रहित पवित्री और सूर्य  
की किरणों सै हे जल तुम्हें उत्पवन करता हूं ॥ अनिभृष्टमसि। आ  
पोऽत्राभिधेयाः अतोऽत्रैकवचनान्ताः मन्त्रावयवाः श्रुत्या बहु व  
चनान्ताः अतः श्रुत्या नुसारेण व्याख्याते। हे जल तुम राक्षसों को  
अपराभूत हो। बाणी के बन्धु भूत हो। तथा अग्नि सै उत्पन्न हुए हो  
तप शब्द सै यहां अग्नि लेना अग्नेर्वै धूमो जायत इति शत०  
५. ३. ५. १०. वायो रगिरग्ने राप इति तैत्तिरीयारण्यक ८. १. सोम  
की दान करने वाली हो। यदा वाऽ एनमिति श० ५. ३. ५. १८. स्वाहा  
कार सै पवित्र हुई राज जनिका हो ॥ ६ ॥

सुधमादौद्युम्निनी ॥ सुधमादौद्युम्निनी रापः एताः अना  
धृष्टाः अप्सोवसानाः ॥ पस्त्या सुचक्रेवरुणः सुधस्थ  
मुपाथं शिशुर्मातृतमासुतः ॥ ७ ॥

का० १५. ५. ६. उत्पूता अभिषेक के अर्थ जल अभिषेकार्थ पाला  
श ओदुम्बर वाट आश्वत्थ पूर्वासादित चारों पात्रों विषे चारि विभा  
ग करि ओजै। वरुण देवत्या त्रिष्टुप्। जे एताः जल बर्ते हैं कैसी कि  
सुधमादः एक पात्र विषे दृष्यमान वा प्रीयमान। वीर्ययुक्ता ॥ रा

+ यावद्देवाणेष्विति शत० ५. ३. ५. १६. आपो मयी वानिति सामश्रुते श्रु ॥

क्षसोंसे अनभिभूता। कर्मविषे साध्वीरैं। जे एवं विधाज  
के भीतर में वरुण देब स्थान करताहुआ। कैसा है वरुण कि जल  
बालक-अपांवा शिशुरिति शत० ५०३५१४० वरुणो गजसूय  
जित्वा दपां शिशुः। कैसा जल में कि पस्त्या सु। गृहरूपा में सर्वों के  
धार होने से गृहरूपा तथा अति शयेन जगत के निर्माण करने बली में

क्षत्रस्योत्वंम् ॥ क्षत्रस्योत्वंमसिक्षत्रस्यजराय्वसिक्षत्र  
स्ययोनिरसिक्षत्रस्यनाभिरसीन्द्रस्यवाक्घ्नमसिमित्र  
स्यासिबहुणस्यासित्वयायमृत्रम्वधेत् ॥ ह्वासिरुजा  
सिक्षुमासि ॥ पातैनम्प्राञ्चम्यातैनप्रत्यञ्चम्यातैनन्ति  
यञ्चन्दिग्भ्यपोत ॥ ७॥ १

का० १५५०१५० क्षत्रस्येति प्रति मन्त्रसे तार्यपाण्डुः अधीवासः  
उष्णीषः कोक्रमपूर्वकधारणकरै ॥ १५०५०७० तार्यक्षौमकै  
वल्कलवाद्यताक्तवस्त्र कोधारणकरै ॥ १०५-गाभतार्यदेवतम  
हे तार्यतूयजमान का गर्भधारभूत उदकहै। यजमान गर्भ-  
स्थानीयहै ॥ १॥ का० १५५०१२० रक्तकम्बलकोधा० ॥ २३४०५-  
उ० २ पाण्डुदे० गर्भस्थानीय यजमान का गर्भवेष्टनचर्म हेपांडु  
तूहै ॥ २॥ का० १५५०१३० अधीवास कञ्चुक को गलमें बांधे ॥ अ  
धीवासदेव० अधीवास तू यजमान का गर्भ संभवस्थान यो  
निहै ॥ ३॥ का० १५५०१३०१४० उष्णीषः शिरके वेष्टनको शिरपै बां  
धि तिसके छोड़ों को नीवी में खुरसे बा नाभि पर बांधे ॥ उष्णीष  
दे० अधीवास तू यजमान का नाभि (गर्भबंधनस्थान) है ॥ ४॥

+ क्ष-सि। अ० इ० उ० ऋ० इ-सि। लृ० मि-सि। आ० त्व-तू। ई० ह-सि। ऊ० र-सि।  
 ऋ० क्ष-सि। लृ० पा-मा० क० च० पा-तू। ट० ण॥

निघं ३

नभ्यासंनद्धागर्भं जायन्तः द्रव्याहुः निरु० ४०३१

का० १५० ५० १०० इन्द्रस्य इससै अध्वर्यु धनुषको चिल्ला चटावै ॥  
 प्रा-गा० धनुर्देवतम् । हे धनु तू इन्द्र का संबंधि वृत्र नाशक धनु  
 षहे- निसे चटाता हूं इति शेषः ॥ का० १५० ५० १०० मित्रस्य वरु  
 णस्य इन दोनों मंत्रों से धनुष के बाहू प्रान्तों को हाथ से मांजैया-  
 वृ० बाहु देवते । हे दक्षिण कोठे तू मित्र संबंधी है- हे वाम कोठे  
 तू वरुण संबंधी है ॥ का० १५० ५० १०० यजमान के अर्थ धनुष  
 देवै ॥ दे-ज० धनुर्देवतम् ॥ हे धनुः यह यजमान तुरू करि केश  
 त्रु को मारे ॥ का० १५० ५० २०० हवासीत्यादि तीन मंत्रों से तीन बा  
 ण ले कर पातैनमित्यादि तीन मंत्रों से यजमान के अर्थ देवै ॥  
 षड्यजूर्हंषि इषु देवत्यानि १० २० ३० दे-अ० ४० दे-पं० ५० या-गा०  
 ह० या-पं० । हे इषो तू शत्रुओं को विदीर्ण करता है । हे इषो तू श०  
 मङ्ग कर ० । हे । इ० कपाता है । हे इषुओं पूर्व दिशा में अवस्थित  
 इस यजमान को पालन करे । पश्चिम दिशा में अब ० इधर  
 उधर में अब ० और-और दिशाओं के विषे इसै रक्षा करे ॥ ८ ॥  
 आविर्मर्ष्याः ॥ आविर्मर्ष्याः आवित्तोः अग्निर्गृह  
 पति एवित्तः इन्द्रो वृद्धश्च वाः आवित्तो मित्रावरुणो धृ  
 तव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदाः आवित्ते द्यावा पृथिवी  
 विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्मा ॥ ९ ॥ +  
 का० १५० ५० २१० इषु समर्पण के अनन्तर में आविर्मर्ष्या इत्यादि  
 आवित् संज्ञक सात मंत्रों को यजमान प्रति पढ़े ॥ दे-वृ० प्रजा  
 पति देव ० मर्षा इति मनुष्य नाम सु निघं ० २० ३० पठितम् है म

+ आ-यो ॥ अ० आ-ति ॥ इ० आ-षा ॥ उ० आ-तौ ॥ ऋ० आ-दा ॥ लृ० आ-वौ ॥ आ०  
 आ-मौ ॥ इ ॥ ९ ॥



नुष्यः (ऋत्विजः) तुम प्रकट होओ अथीन् भले प्रकार कर्म में उद्दिष्ट होओ अथवा हे ऋत्विजः यह यजमान प्रकट तुम्हारे समक्ष कहिता है इति शेषः ॥१॥ २.३.५.७. या-दृ०४. या-ज०६. आसु-अ० लिङ्गोक्त देवतानि। आवितोऽग्निर्गृहपतिः। श्रुत्युक्तैर्विभक्तिव्यत्यये व्याख्यायते शत० ५.३.५.३१-३७ गृहपालकः अग्निके अर्थ यह यजमान आवितः आवेदितः स्थापितः ॥२॥ ब्रह्म है धनवा कीर्ति जिसकी तिस इन्द्र के अर्थ यह यजमान आवि० ॥३॥ धारण करते हैं व्रत (कर्म) तिनधारित कर्म मित्रावरुणों के अर्थ ॥४॥ सर्वज्ञ पूषा के अ० ॥५॥ सबों का सुख होता है तिनहीं से तिन द्यावा पृथिवी के अ० ॥६॥ बड़ा है शर्म शरण वा सुख जिसका तिस अदितिके अर्थ यह यज० ॥७॥ यद्वा यथा श्रुतमेव व्याख्या गृह प्रति रग्नि रावित आवेदितो यं यजमानमिति शेषः एवमग्रेपि ॥८॥

अ० ३ अवेष्टादन्द्शूकाः प्राचीमारोह गायत्रीत्वावतुरथन्तरं सामन्निबृत्तोमो वसन्तः ऋतुर्वत्सुद्रविणन्दक्षिणामारोह ॥१०॥ †

का० १५.५.२२. सदके समीप उपविष्ट दीर्घकेश नरके मुखविषे अवेष्टा से ताम्र डाले ॥ मृत्युनाशनं यजुः। अत्यन्त दृष्टानशीला० मृत्यु के हेतु सर्प सदृश यज्ञ के विघ्नकारी राक्षसादिक नाशित हूजियों इति शेषः शत० ५.४.१.१. तद्यो मृत्युर्यो वधस्तमे चैतदतिनयतीति ॥ का० १५.५.२३. यजमान के प्रति प्राची मा

॥ वासुदेवादीनां धनसाधनत्वाद्भनत्वे मुच्यते ॥

दक्षिण मारोह विष्ट्वा वतु वृहत्साम पञ्चदशस्तोमो  
 प्रीषाऽऽतुः क्षत्रविण्मतीची मारोह ॥११॥

अथद्वितीयो मंत्रः। हे यजमान तू दक्षिणदिशि माक्रमः। त्रिष्टुपं  
 न्दः। त्वामिद्धि हवामहः इत्यस्यामृष्युत्यन्नं वहत्सामं छं० संहि०  
 १०३१५२-२२१०१२१० पञ्चदशस्तोमः। ग्रीष्म ऋतुः। द्विविण  
 रूपं क्षत्रियजातिः। एते तु मे रक्षा करें यद्वा क्षत्री तेरे धनको रक्षा क  
 रें। पञ्चदशस्तोमस्त्वेव माम्नातः पञ्चविं० २४ पञ्चभ्यो हिंङ्गुरे  
 ति सति सृभिः स एकया स एकया पञ्चभ्यो हिं करोति स एकया सति  
 सृभिः स एकया पञ्चभ्यो हिं करोति स एकया स एकया सति सृभिः  
 पञ्च पञ्चिनी पञ्चदशस्य विष्टुतिरिति। पूर्वोक्त त्रिष्टुतो म एकही  
 तीनि सूक्तों से निष्पाद्य हे परन्तु और स्तोम एकही तृचात्मक सूक्तों से  
 निष्पाद्य हैं। तत्रायं क्रमः। प्रथम पर्याय में पांच आवृत्ति से तहां प्रथ  
 मा को तीनि बार गान करें दूसरी तीसरी को एक-एक बार। द्वितीय प  
 र्याय में पहिली एक बार दूसरी तीनि बार तीसरी एक बार। तृतीय प  
 पहिली दूसरी एक-एक बार तीसरी तीनि बार यह पञ्चदश स्तोम संव  
 धिनी विष्टुति अर्थात् पञ्च पञ्चनि है ॥११॥

प्रतीची मारोह जगती त्वावतु वै रूपं सामं सप्तदशस्तोमो व  
 षाः ऋतुर्विद्वर्विणमुदीची मारोह ॥१२॥

तृतीयो मंत्रः। हे यजमान त्वं प्रतीची दिश मारोह। जगती छन्दतु  
 मे रक्षा करें। यद्वा यव इन्द्रते शतम् इन ऋचा ओं से उत्पन्न वै रूप  
 सामं छं० संहि० १०३२४६-२२२११० सप्तदशस्तोमः। वर्षा ऋ  
 तुः। वैश्यजाति लक्षण धन एते तु मे रक्षा० अथवा वैश्यजाति  
 तेरे धन को रक्षा० सप्तदश स्तोमस्त्वेव माम्नातः पञ्चविं० २७०

पञ्चम्यो हिं करोति स तिसृभिः स एकया स एकया पञ्चम्यो हिं करो  
ति स एकया स तिसृभिः स एकया सप्तम्यो हिं करोति स एकया सति  
सृभिः स तिसृभिर्दशसप्ता सप्तदशस्य विष्टुतिरिति। प्रथमपर्याये  
प्रथमा ३ मध्यमा १ उत्तमा १ द्वितीयपं० प्रथमा १ मध्यमा ३ उत्तमा १  
तृतीयपं० प्रथमा १ मध्यमा ३ उत्तमा ३ वारगावै यह सप्त दशस्तोम  
की विविधास्तुति अर्थात् दशसप्ता है ॥१२॥

उदीची मारोहा नुष्टुवा वतु वैराजर्हं सामैकविंशस्तोमः

शरद्वतुः फलन्द्रविणमूर्द्धामारोह ॥१३॥

चतुर्थोमंत्र ॥ हे यजमान त्वमुदीची दिश मारोह । अनुष्टुप् छन्दः ॥  
पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा इन ऋचाः ओं से उत्पन्न वैराज सामं ॥  
संहि ० १०५ ० १०१० ० । एकविंशस्तोमः । शरद्वतुः । यज्ञफललक्षण  
धन एते तुम्हें रक्षा करें । एकविंशस्तोमस्त्वेव माम्नातः पञ्चविं०  
२२४ ० सप्तम्यो हिं करोति स तिसृभिः स तिसृभिः स एकया सप्तम्यो  
हिं करोति स एकया स तिसृभिः स तिसृभिः सप्तम्यो हिं करोति स  
तिसृभिः स एकया स तिसृभिः सप्त सप्तिन्येक विंशस्य विष्टुतिरिति ।  
प्रथमपर्याये प्रथमा ३ मध्यमा ३ उत्तमा १ द्वितीयपं० प्रथमा १ म  
ध्यमा ३ उत्तमा ३ तृतीयपं० प्रथमा ३ मध्यमा १ उत्तमा ३ यह एकविंशस्तो  
मकी विष्टुति सप्त सप्तिनी कहिये है ॥१३॥

उर्द्धामारोह पंक्तिस्त्वावतु शाकरैर्वते सामैनी त्रिणवत्र  
यस्त्रिंशोस्तोमो हेमन्तशिशिरावृतूच्चर्चो द्रविणम्य  
त्यस्तन्नमुचेः शिरः ॥१४॥ †

पञ्चमोमंत्रः। हेयजमाङ्गर्ध्वादिशमारोह। पंक्तिः छन्दः। प्रोष्वस्मै पुरो  
 रथ इन ऋचाओं से उत्पन्न शाक्कर साम छं० संहि० २१००११४०१ रे  
 वतीर्नः सधमाद इन ऋचाओं से उत्पन्न रैवत साम छं० संहि० १२२  
 १०८-२४०११४०१। त्रिणवत्रयस्त्रिंश स्तोमो। हेमन्तः शिशिरे ऋ  
 तू। वर्चः तेजबाव्रस तेज धनरूप एते तुम्हें रक्षा करें अथवा वर्चः ते  
 जो भिमानी देवता तेरे धन को रक्षा करें ॥ त्रिणव स्तोम एवमास्मात्तः पञ्च  
 विं० ३१ नवभ्यो हिं करोति स तिसृभिः स पञ्चभिः स एकया नवभ्यो  
 हिं करोति स एकया स तिसृभिः स पञ्चभिर्नवभ्यो हिं करोति स पञ्च  
 भिः स एकया स तिसृभिर्वज्रो वै त्रिणव इति। प्रथम प० प्रथ० ३ मध्य०  
 ५ उत्त० १ द्वितीय प० प्रथमा० १ मध्य० ३ उत्तम० ५ तृतीय प० प्र० ५ म० १  
 उ० ३ सोयह त्रिणवत्त नव संख्योपेत त्रिणव नामक वज्र समान स्तोम  
 है ॥ त्रयस्त्रिंश स्तोम एवमास्मात्तः पञ्चविं० ब्रा० ३३ एकादशभ्यो हिं करोति  
 स तिसृभिः स सप्तभिः स एकयैकादशभ्यो हिं करोति स एकया स तिसृ  
 भिः स सप्तभिरेकादशभ्यो हिं करोति स सप्तभिः स एकया स तिसृभिर्  
 न्तो वै त्रयस्त्रिंश इति। प्रथम प० प्र० ३ म० ७ उ० १ द्वितीय प० प्र० १ म० ३  
 उ० ७ तृतीय प० प्र० ७ म० १ उ० ३ गान करें सोयह त्रयस्त्रिंश स्तोम स  
 व स्तोमों का अन्त है ॥ ॥ का० ११० ५ २४ जो व्याघ्र चर्म के पश्चाद्भाग  
 में सीसा रखाया तिसका आक्रमण करि पैर से पटकें। प्रत्यस्तमिति  
 प्रा-गा० असुर देवतम् ॥ नमुचि असुर का सीसारूप मस्तक पक  
 ड कर फेंका ॥ १४ ॥

सोमं स्पृत्विषिः ॥ सोमं स्पृत्विषि रसि तवे वमेत्विषिर्भूयात् ॥

मृत्योः पात्यो जौ सिसहो स्पमृतमसि ॥१५॥†

का० १५० ५० २५० अभिषेक के अर्थ राजा को व्याघ्रचर्म पर स्थापन करें ॥ चर्म देवत्यम् आसु-गा० व्याख्यातम् कण्डि० ५॥ का० १५० ५० २६० पादतल में हिरण्य को करें। दे० व० रुक्मदेव०। हे सुवर्ण मृत्यु के सकाश से मुझे पालन करि ॥ का० १५० ५० २७० नवछिद्र वा शत छिद्र सौवर्ण मण्डल को यजमान के शिरपर करें। या-प० रुक्मदे० ॥ हे हिरण्य तू ओज अर्थात् अमुक को जीतू यह मन की वृत्ति है। सह (शारीरबल) है अमृत (विनाशरहित) है ॥१५॥

हिरण्यरूपाः उषसः ॥ हिरण्यरूपाः उषसो विरोकः उभा विन्ताः उदित्यः सूर्यश्च ॥ आरोहतम्बरुण मित्र गर्तन्त नश्च क्षाया मदिति न्दिति च मित्रो सि वरुणो सि ॥१६॥†

का० १५० ५० २८० यजमान बाहुओं को जंची करें। मित्रा वरुणदेवत्या त्रिष्टुप् यजु रन्ता मित्रो सीति यजुः ॥ हे वरुण शत्रु निवारक दक्षिण बाहो हे मित्र सखिवत्यालक वाम बाहो तुम गर्त (पुरुष) को आरोहण करें। बाहू वै मित्रा वरुणो पुरुषो गर्त इति ५० ४० १० १५० अति रध्यात्म विषयं व्याचष्टे। पुरुषा रोहण के अनन्तर अखण्डिता अपनी सेना खण्डिता परसेना को क्रम पूर्वक अनुग्रह निग्रह दृष्टि से भले प्रकार देखें वे कौन कि देहों नो एत्रि की समाप्ति में उदय करते सूर्योदय के अनन्तर अपने-अपने व्यापार में प्रवर्तित होते हैं अर्थात् सूर्य और उदयह दोनों का कार्य सम्पादन के अर्थ है। कैसे हो दोनों कि हिरण्यरूपी सुवर्ण खचित कटकादि अ



लंकार करि भासमान। तथा इन्द्रो सामर्थ्यो पेत॥ एवमध्यात्ममर्थः  
अधिदेवं त्वय मर्थः॥ हेवरुण हेमित्र देवविशेष तुम गर्त(रथके उप-  
रिभाग गर्तसदृश) को आरोहण करौ पराये वाणों से रक्षा करने को  
चर्म कीलकादिकों से आच्छादित रथ का उपरिभाग गर्त सदृश हो  
ता है रथको भी गर्त कहिते हैं गृणान्ते स्तुतिकर्मण इति निरु० ३५ या  
को कर्तृगर्तोरथः। जो कि दोनों उषः कालान्तर उदय होते हो सूर्य होनि  
कलते हो। कैसे हो कि हिरण्यरूप अति तेजस्वि। इन्द्र परमेश्वर। त-  
नः रथा रोहण के अनन्तर अदिति अदीन विहित अनुष्ठातार औ-  
र दिति दीन नास्ति कवच को देखो अर्थात् यह पापी यह पुण्यवान्  
है॥ अमु मर्थ श्रुतिराह ५४० ११५ ततः यस्य तर्ह स्वचारणं चेत्येवैत-  
दाहेति॥ का० १५५ ३४० अथवा मित्रो सीति मंत्र में बाहू ऊँची करे॥  
हे वामबाहो तू मित्र है हे दक्षिणतू वरुण है॥ १६॥

अ० ४ सोमस्यत्वा॥ द्युम्ने नाभिषि चाम्य गेभ्वीजसा सूर्यस्यवच्च  
सेन्द्रस्येन्द्रियेण॥ क्षत्राणां दुःप्रपतिरेव तिदिद्यून्याहि॥ १७॥  
इमन्देवाः॥ इमन्देवाः असपुत्रर्ह सुवद्वम्महते क्षत्राय-  
महते ज्यैष्ठ्याय महते जाने राज्या येन्द्रस्येन्द्रियाय॥ इमम-  
मुष्यपुत्रममुष्ये पुत्रमस्यै विशः एष वो मी राजा सोमो  
स्माकं म्नाह्मणानां राजा॥ १८॥

का० १५५ ३०-३३ रुक्म सहित व्याघ्र चर्म पर पाङ्गुख अवस्थित-  
राजा को पुरोहितादिक साम्ने से खड़े हो अभिषेक करें। पालाश औ-  
दुम्बर न्यग्रोध आश्वत्थ चतुर्विध अभिषेक जल पात्रों स्थापन कि

येह ओंसे। नत्रपालाशपात्रसे पुरोहित अध्वर्यु अन्यतरः प्रथम अभिषेक करें इतर स्वादिक पीछे स्वा राजाका आता दूसरे ओं दुस्वर पात्र से मित्रभूत कोई क्षत्रिय तीसरे से वैश्य चौथे से। चारों अभिषेक करने वालों के क्रमसे सोमस्य १ अग्नेः २ सूर्यस्य ३ इन्द्रस्य ४ चारों मंत्र हैं। अभिषिञ्चामि यह पद तीनों अगिले मंत्रों में जोड़े। इमममुष्य यह मंत्र प्रथम पुरोहित वा अध्वर्यु जैसे देवताओं के हवि में नाम ग्रहण युक्त पढ़ें। प्रथम के ग्रहण से औरों को इमममुष्य मंत्र शेष नहीं होता क्यों कि ब्राह्मणनार्थ राजा इस चिह्न के कारण ॥ यजुः चतुर्णामंत्राणां यजमानों देवता + ॥ हे यजमान चन्द्रमा के यशसे तुम्हें अभिषेक करता हूँ तिससे अभिषिक्त हो सब क्षत्रियों के मध्य क्षत्रियेश्वर हो- शत्रु प्रयुक्ता बाणदिकों का अपसरण करिके इस यजमान को हे सोम तू पालन करि ॥ १॥ इमं देवाः व्याख्यातापि ४०० व्याख्यायते। हे सोमादिक देवता ओं पण्डु के पुत्र कुन्ती के पुत्र कौरवी प्रजा के अर्थ तिष्ठ होते इस युधिष्ठिर को शत्रु रहित करिके बड़े क्षत्र के अर्थ बड़े ज्येष्ठ भाव के अर्थ बड़े जानपद के राज्य के अर्थ इन्द्र के ऐश्वर्य के अर्थ तुम प्रेरण करो हे कुरु जांगली ओं यह युधिष्ठिर तुम्हारा राजा हम ब्राह्मणों का सोम राजा एतावन्त मंत्र पठित्वा पुरोहितोऽध्वर्युर्वाभियञ्चेत् ॥ १॥ राजभ्रातुर्मत्रमाह। हे यजमान अग्नि (वैश्वानर) के तेज से तुम्हें अभिषेक करता हूँ अन्यत्पूर्ववत् ॥ २॥ राजमित्रमंत्रमाह। सूर्य के तेज से सर्व पूर्ववत् ॥ ३॥ वैश्यमंत्रमाह। हे यजमान इन्द्र के वीर्य से शिष्टं पूर्ववत् ॥ ४॥ श्रुत्यानुद्युम्नादि शब्दैर्वीर्याण्येव व्याख्यातानि ॥ १७॥ १८॥

१३ अक्षर ए सोमस्य त्रायुर्जनमिषिञ्चामि। सोमा एतं क्षत्रपतिरेष्यति दिव्यं ग्राहि  
॥ १॥ अग्नेऽजसोभिषिञ्चामि। अजसो अक्ष-पाहि ॥ २॥ सूर्यस्य वनसोभिः  
त्रा-पाहि ॥ ३॥ इन्द्रस्य विजयेणभिः क्ष-पाहि ॥ ४॥

प्रपर्वतस्य ॥ वृषभस्य पृष्ठान्नाव श्रुतिस्वसिचः इत्या  
नाः ॥ ताः आव वृत्रन्धरागुदक्ताः अप हि बुध्मनु  
रीयमाणः ॥ विष्णोर्वि क्र मणमसि विष्णोर्वि क्रान्त  
मसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥ १४ ॥

का० १५. ६. ८. यजमान कृषाविषाणसै किये अभिषेककेशरीर  
संलग्नोदककरि अपने अंगको लीपै ॥ अब्दे वत्या त्रिष्टुप् नृपन्ते  
स्तुति करतेहैं स्तोत्र शस्त्र मंत्रोंसे यद्वा नुदन्ति प्रेरणा करतीहैं  
फल प्राप्ति के अर्थ वोह नाव अर्थात् आहुति परिणामभूता जल आ  
दित्य मण्डल प्रति जातीहैं। क्याकरिके कि वृषभस्य वर्षनेवाले अ  
ग्नि के पृष्ठ प्रदेशसे उठिके इतिशेषः। कैसे वृषभके कि पर्वतस्य प  
र्वणि पौर्णमास्य मावास्याचातुर्मास्या दीनि विद्यमान हैं जिसेंति  
सके। कैसेही नाव कि अपनेसे सींचतीहैं सबको। तथा इयाना गम  
नशीला वोह ही आदित्य मण्डल को प्राप्तहो मध्यस्थान को आ  
तीहैं मध्यस्थानसे पृथिवी को + वोह आदित्य मण्डलको प्राप्तहो  
धराक् आववृत्रन् नीचेको लौटतीहैं। कैसेही वोह कि ऊंची गईहुई  
मेघको अनुसरण करातीहैं। कैसे मेघको कि अन्तरिक्षमें वर्तमान  
हैं ॥ ॥ यद्वायमर्थः ॥ पर्वत आदित्य को कहितेहैं वर्षनेवाले आ  
दित्य के पृष्ठसे निकलती स्तुतिरूपा जल सर्वतः जातीहैं कैसेही कि  
स्वसिच आपसेक्ता + वोह उदक्ता (व्यक्ता) अन्तरिक्षस्थ मेघको प्र  
वेश करि प्रावृत् काल बिषे भूमि के प्रति आतीहैं ॥ ॥ यद्वायमर्थ  
ऋचोऽस्याः। वर्षनेवाले पर्वत (हिमवान् विंध्यादिकों) के पृष्ठसे व

+ प्र-ए-॥ आव-वि-सि-इ-उ-॥ ॥ १४ ॥

॥ आदित्यः परिष्ठादपोनाव्या उच्यन्ते तथा च शत० १०५. ६. १४. नाव्या आप इत्यादि ॥

मयगादित्यमुपतिष्ठते आदित्यः प्राप्तिः मयगादित्यमुपतिष्ठते आदित्यः प्राप्तिः मयगादित्यमुपतिष्ठते आदित्यः प्राप्तिः

हती नाव (नौतया गंगादि महा नदीएं) प्रचरती हैं स्वसिच अपने  
यजमान क्षेत्र को सींचती हैं वोह ही नाव अधस्तात् आवृत्त न  
राजसूय याजिके अर्थ आती हैं। कैसी हैं कि अभिषेक पात्र के विषे  
प्रक्षिप्ताः। तथा बुध्य (मूल प्रधान) अहि हन्ता (शत्रुओं के हन्ता य  
जमान प्रति सिच्य मान हैं ॥ का. १५. ६. ४. अध्वर्यु यजमान से आ  
घ्रचर्म परतीनि मन्त्रों करितीनि वार पाद प्रक्षेप करावै। त्रीणि यज  
मान देवत्यानि १. प्रा-गा. २. या-उ. ३. या-गा. ॥ हे मदीय प्रथ  
म प्रक्रम तू विष्णु (व्यापन शील यज्ञ पुरुष जगदीश्वर त्रिविक्र  
मावतार) का विक्रमण (प्रथम पाद प्रक्षेप से जीता भूलोक) है ॥ १॥ हे द्विती  
य प्रक्रम तू विष्णु का विक्रान्त (द्वितीय पाद प्रक्षेप से जीता अन्तरिक्ष)  
है ॥ २॥ हे तृतीय प्रक्रम तू विष्णु का क्रान्त (तृतीय पाद प्रक्षेप से जी  
ता त्रिविष्टप) है ॥ ३॥ इदं मन्त्रं त्रयं लोक त्रयं जये हेतु भूतं तित्तिरि एह  
विष्णु क्रमान् क्रमते विष्णुरेव भूत्वे मां लोकान भिजयतीति ॥ तथा च  
शात. ४. ४. २. ६. इमे वै लोका विष्णोरित्यादि ॥ १६ ॥

प्रजापतेन ॥ त्वदेता न्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता बभूव ॥  
यत्का मास्ते जुहुमस्तन्नोऽ अस्त्वय ममुष्य पिता सा वस्य  
पिता वयधं स्याम पतयोरयीणाधं स्वाहा ॥ रुद्र यत्ते किं वि  
परन्ना मतस्मिन्नु तमस्य मेष्ट मसि स्वाहा ॥ २० ॥ +

का. १५. ६. ११. ततः सद से शाला में आकर पुत्र का स्पर्श करि शाला  
हारीय अग्नि विषे होमें। प्रजापति देवत्या त्रिष्टु व्यजुर्मध्या तृती  
य चतुर्थ पाद मध्येऽ यममुष्य यजुर्मुक्ता ॥ हे प्रजापते तुरुसे अ

न्य देवता विशेष इन सब नाना जनीय रूप वर्तमान भूत भविष्यत  
काल विषयों का परिभव करने को समर्थ नहीं हुआ अर्थात् तुम्हें  
अन्य देवता इन भूतों के सृजन और संहारने को अशक्त है अतः ह  
म जिस काम से तुम्हें होमते हैं सो काम रूप फल हमारे हैं ॥ यजुर्वेद  
यते अयममुष्य पितेति पुत्र को पित्री करिके तिनहों का नाम ग्रहण क  
रे- यह अभिमन्यु अर्जुन का पिता। असावस्य पितेति यथा यथ मेव  
नाम ग्रहः यथा- यह अर्जुन अभिमन्यु का पिता ॥ सर्वथा पुत्रों सहि  
त हम धनों के स्वामी होवें ॥ का० १५. ६. १२. पालाश के अभिषेक पात्र क  
रि अभिषेकोदक शेषों का आग्नीध्रीय अग्निके उत्तरभाग विषे होम  
करे। सा- विरुद्र देवत्वं हेरुद्र जो तेरा क्विवि (कर्तृ वा हिंसित) उक्तृष्ट ना  
म है। एवं रुद्रं संनोध्य होमद्रव्य मोह हेहवि तिस रुद्र नाम में तू हुत है औ  
र मेरे घर विषे दृष्ट दत्त है स्वाहा सुहृत मस्तु ॥ २० ॥

अ० ५ इन्द्रस्य वज्रः ॥ इन्द्रस्य वज्रोसि मित्रा वरुण योस्त्वा अशा  
स्त्रोः प्रशिषा युनज्मि ॥ अव्यया येत्वा स्वधा ये त्वारिष्टोः  
अर्जुनो मरुता म्यसवे न जया पा समन सा समिन्द्रियेण ॥ २१ ॥

का० १५. ६. १५. वाजपेय में जैसे रथ वाहण से रथ को इन्द्रस्य वज्रो  
सि इस मंत्र करि भूमि विषे अवतारि मित्रा वरुण योरिति मन्त्रेण वा  
रं अश्वों से वाजपेयवत् जोड़े प्रत्यश्व मन्त्रः इन्द्रस्य वज्रोसि यह मंत्र न  
हीं है वाजपेय संबंधी पूरा तावन्मात्र ही पाठ से- धूके ग्रहण किये को वे  
दी के दक्षिणोदिदेश विषे लाकर जोड़े पहिले दक्षिण को फिर उत्तर  
को ततः दक्षिण प्रष्टिततः सव्या प्रष्टिको अनिदेश से तीनों के जाड़ने

+ अर्जुनो ह वै नामेन्द्र इति शत० ५४३२

की शक्तिमें चारों से जोड़ना यह उक्त है इति सूत्रार्थः ॥ दे-त्रि. रथ देवत्यं ॥  
 हे रथ तू इन्द्र का वज्र है ॥ जोड़े। प्रजापत्यानुष्टुभ रथ देवत्यं मित्रावरुण देवताओं के प्रशासन से हे रथ तुम्हें जोड़ता हूँ ॥ का० १५०६०१७  
 अव्यथायैत्वा इस से यजमान चात्वाल देशस्थ रथ को आरोहण करे।  
 सा-उ. रथ देवत्यं ॥ अनुपहिंसित अर्जुन तुल्य इन्द्र+ ऐसा में हे रथ  
 तुम्हें अभय वा अन चलने और अन्न रस के अर्थ तुम्हें अधितिष्ठूँ ॥  
 का० १५०६०१८० यजमान के साथ आरूढ यन्तादक्षिणाश्व को कशाकरि  
 चलावै। या-वृश्चुर्य देवतम् ॥ हे धुर्य मरुत देवताओं की आज्ञा से तू शत्रुओं को जीति इति शेषः ॥ का० १५०६०१८० पूर्वमेव आहवनीय के  
 अन्तर से स्थापित गौओं के मध्य तिस रथ को स्थापन करे। दे-त्रि०  
 यजमान देवत्यम् ॥ हम मनसा सह प्राप्त हुए (जो उपक्रान्त सोकिया ॥  
 का० १५०६०२० धनुष की कोटी से गो को यजमान स्पर्श करे। दे-प०  
 यजमान देव ॥ हम इन्द्रियों (वीर्य) से संगत हैं ॥ २१ ॥

माते ॥ माते इन्द्र ते ब्रूयन्तु राषाडयुक्ता सोऽश्वस्य तावि  
 दक्षाम ॥ तिष्ठारथमधियम्वज्रहस्तारश्मीन्देवयमसेस्व  
 श्वान् ॥ २२ ॥

का० १५०६०२२ स्थापित गौओं के पति (अपने भ्रातृ) के अर्थ तावत्  
 शत वा अधिक और देवों के यूप से पूर्व दिशा में फेरिकर अन्नः पात्य  
 देश विषे रथ को स्थापन करे। इन्द्र देवत्यानुष्टुप् संवरणः प्राजाप  
 त्यदृष्टा ॥ हे वज्र हस्त हे दीप्यमान तू जिस रथ में बैठता है और जि  
 सकी रश्मियों का ग्रहण करि चलता है कैसी हैं रश्मी कि शोभन



हैं अश्वजिन्हों में। हेतुराषाट् (शत्रुओं के अभिभव करनेवाले)।  
हे इन्द्र (ऐश्वर्य युक्त) तेरे हम तेरे तिस रथमें अयुक्ताः (तिससैभिन्न,  
विविध उपक्षीण) नहोंवें तत्र दृष्टान्तः अब्रह्मता लुप्तोपमानम् अ-  
ब्रह्मतेव ब्रह्म विज्ञानानन्दस्वभाव अनश्वर का भाव ब्रह्मता न-  
हीं है ब्रह्मता वोह अब्रह्मता यथा ब्रह्मभाव से अन्य वस्तु विविध उप-  
क्षीण एवं हम नहोंवें ॥ २२ ॥

अग्नये गृहपतये ॥ अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय व-  
नस्पतये स्वाहा मरुता मोजसे स्वाहेन्द्र स्येन्द्रियाय स्वाहा ॥  
पृथिवि मातर्म्मा माहिर्ह सीमो अहन्त्वाम् ॥ २३ ॥ †

का० १५. ६. २३. अग्नये गृहपतये. इन चारि रथ विमोचनीयनामा  
आहुतियों की होमें। १२. या-पं० ३. ४. या-अ० लिङ्गोक्त देवत्यानि ॥  
गृहा अमपालक अग्नि के अर्थ स्वाहा सुहृत मस्तु ॥ वनस्पतिरूपी सो-  
म के अर्थ हविर्दत्त मस्तु ॥ इन्द्र संबधि वीर्य के अर्थ स्वाहा ॥ मरुतो सं-  
बंधि बल के अर्थ हविर्दत्त ॥ का० १५. ६. २४. रथस्य एव यजमान भू-  
मि को देखे। आसु-अ० भूमि देवत्यम् ॥ हे जगत की निर्माण करनेवा-  
ली हे पृथिवी (भूमे) तू मुझे हिंसा मत कर मैं भी तुरू पृथिवी की नहीं हिं-  
सा करता ॥ २३ ॥

हृष्टसः शुचिषदसु रन्तरिक्ष सद्गोता वेदिषद तिथिर्दुरोण  
सत् ॥ नृषद्वर सदृशसद्यो मसदत्रा गोजाः ऋतजाः अ-  
द्विजाः ऋतमृहत् ॥ २४ ॥

का० १५. ६. २५. यजमान रथ से अवरोहण करे। सप्रपञ्च परब्रह्मा

भिधायिनी सूर्य देवत्यातिजगती वामदेवदृष्टा ॥ हंसः अहंकारको ना  
 शकरता भगवान् आदित्य तिस प्रति अवतारताहं इति वाक्य शेषः  
 कैसा है हंस कि शुचिषत् आदित्य रूप करि दीप्ति में स्थित तथा वसुः  
 वासयिता नरों का प्रवर्तक अन्तरिक्ष सत् वायु रूप करि अन्तरिक्ष  
 में रहता होता देवताओं का आह्वान करने वाला वेदिषत् अग्नि  
 रूप करि वेदी में रहता अतिथिः सवों का पूज्य दुरोण सत् आहव  
 नीयादि रूप करि यज्ञगृह में स्थित नृषत् मनुष्यों में प्राणभाव करि र  
 हता वरसत् उत्कृष्ट स्थानों में रहता ऋतसत् यज्ञ में र० व्योमसत्  
 आकाश में मंडल रूप करि र० एवं सर्वत्र स्थितत्वेन स्तुत्वा सर्वत्रोत्पत्ति  
 द्वारेण स्तोति यः जो अज्जा जल में मत्स्यादि रूप करि उत्पन्न होता  
 है गोजा पृथिवी में चतुर्बिध भूत ग्राम रूप करि उत्पन्न होता ऋ  
 तजा सत्य में उत्पन्न होता अद्रिजा पाषाण में अग्नि रूप करि  
 वा मेघ में जल रूप करि उत्पन्न होता है ऋतम् सर्वत्र गत बृह  
 त् महत्यरि बृह अपर्यन्त परब्रह्म रूप जो हंस तिस प्रति रथ से उत  
 रताहं ॥ यद्वा हंस शब्देन रथ उच्यते हंस पृथिवी को हन्ता रथ  
 बृहत् महत्सौढ ऋतं यज्ञ को सम्पादन करे इति शेषः कैसा है हं  
 स कि शुचिषत् देवयजन वा रथवाहिन में स्थित वसुः अपने ऊ  
 पर यजमान को वास करता अन्तरिक्ष सत् वृक्षगुल्मादि क  
 रि अनवरुद्ध अन्तरिक्ष में स्थित होता होत समान कैसे कि वेदि  
 षत् वेदी विषे स्थित अतिथिः अतिथिवत् पूज्य दुरोण सत् य  
 ज्ञगृह में स्थित नृषत् नरों में बाहकत्व करि स्थित वरसत् वर श्रेष्ठ

राजगृह में स्थित। ऋतसत्, वाजपेयादि यज्ञों में स्थित। व्योमसत्, सूर्य चलाने को आकाश में स्थित। अज्जाः- अप्सु योनिर्वा- अश्व इस श्रुति से जल करि उत्पन्न अश्वों करि उपेत। गोजाः- वज्र से उत्पन्न इन्द्रो वज्राय वज्रं ग्राहरत्स त्रेधा व्यभक्तस्य स्फ्यस्तृतीयं रथस्तृतीयं यूपस्तृतीयमिति तैत्तिरीयश्रुतेः। ऋतजाः- यज्ञ को उद्देश करि उत्पन्न हुआ। अद्रिजाः- पाषाण सदृश काष्ठों से उत्पन्न॥ २४॥

इयदसि॥ इयदस्यायु रस्यायु र्मेयि धेहि युङ्ग सि बर्चो सि व  
र्चो मयि धेत्यु र्गं सृज्म मयि धेहि॥ इन्द्रस्य वाम्नीर्य्यं कृतो  
बाहुः अम्यु पावहरामि॥ २५॥†

का० १५. ६. ३२. शालाके दक्षिण भाग विषे स्थापित रथ वाहन के दक्षिण चक्र में बंधे शतमान शतरक्तिका निर्मित सुवर्णमणि का यजमान स्पर्श करे। द्वे द्वादशाक्षरे यं जुषी शतमान देवते मिलित्वा त्नाम्नीज०॥ हे रुक्म तू इयदसि एतावत्यरिमाणः शतरक्तिका परिमित है जीवन है तिस हेतु शत वर्ष परिमित आयु मेरे स्थापन करि-योहियदात्मकः सतद्वातु मुत्सहते यतस्त्वं शतमान मसि ततः शताब्द परिमित मायु र्मेयि रोपय। युङ्ग सि- यज्ञ को संभार निचय वा दक्षिणादान करि युङ्ग वर्च- तेजस्वी है अतः मेरे तेज स्थापन करि॥ का० १५. ६. ३३. तिस शतमान को ब्रह्मा के अर्थ दे के पूर्वोक्त रथ वाहन में उपगृहिता ओं दुम्बरी शारवा को स्पर्श करे। प्रा-गा० शारवा देवत्यम्॥ हे ओं दुम्बरि शारवे तू अन्नरूपा है ततः अन्न मेरे स्थापन करि॥ का० १५. ६. ३४. अश्वर्यु यजमान की बाहुओं को व्याघ्रचर्म

३७६ स्योनासि ॥ सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि ॥ स्योनामासीदसु  
षदा मासीदक्षत्रस्य योनिमासीद ॥ २६ ॥ †

का० १५०६३६: ७०१ पयस्या के स्विष्ट कृत होम से पहिले रज्जुओं  
करि बुनी खादिरी आसन्दी (मच्चिका) को व्याघ्रचर्म देश विषे में चा  
वरुण धिषाय के साम्ने रखे ॥ आसन्दी देवत्यम् । हे आसन्दी तू सु  
ख रूपा है । सुख से बैठने योग्य है ॥ का० १५०७०२ आसन्दी पर वस्त्र  
बिछावै । अधीवास देवतम् । हे अधीवास तू क्षत्रिय का मातृवद्वा  
रक होने से योनि स्थान है ॥ का० १५०७०३ आसन्दी पर यजमान  
को बिठावै ॥ यजमान देवत्यं यजुः । हे यजमान सुखकारी आस  
न्दी को आरोहण करि सुख पूर्वक बैठने योग्य को आरोहण करि  
क्षत्रिय के स्थान आसन्दी को आरोहण करि ॥ ३६ ॥

निर्घसाद ॥ धृतं वृत्तो बरुणः पस्त्या स्वा ॥ साम्प्रान्याय सुक  
नुः ॥ २१ ॥

का० १५०७४० अथर्वयु यजमान के हृदय को स्पर्श करे ॥ वरुणदेव  
त्या गायत्री शूनः शेष दृष्ट्वा । यह यजमान प्रजापर आधिपत्यक  
रि निषगादः उपवेश करता हुआ अर्थात् जो आसन्दी पर स्थापित  
हुआ वोह प्रजापर ही स्थापित हुआ । कैसा है यजमान कि धृत व्रतः  
धारण किया है व्रत यज्ञ लक्षण कर्म जिसने । अनिष्ट का दूरिक

रनेवाला। तथा शोभन संकल्प वा शोभन प्रज्ञ। किसलिये निषसाद  
कि सम्पाड भाव के अर्थ ॥२७॥

अभिभूरसि॥ अभिभूरस्येतास्तेष्वक्षदिशः कल्पन्ताम्ब्र  
ह्मस्त्वम्ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोसि सत्यो जा  
रुद्रोसि विश्वो जा रुद्रोसि सुशेवः॥ बृहकार श्रेयस्करभूय  
स्करेन्द्रस्य वज्रोसि तेन मेरध्य ॥२८॥†

का० १५०५० यजमान के हाथ में धृतसाधनभूत सौवर्ण कपड़ेक  
पांच अक्ष देवै॥ सा-उ० अक्षायजमानो वा देवता। चारि अक्षों की क  
त संज्ञा पांच में की कलि है जबकि पांचोंही अक्ष ऊँचे वा नीचे एक रू  
प हो गिरते हैं तब डालनेवाले की जीत होती है तहां कलि सब अक्षों  
को अभिभव कर्ता है तिस प्रति वा तिस संबंध करि यजमान प्रति कहि  
ते हैं। हे अक्ष अथवा हे यजमान तू अभि भविष्य है। ये कपर्दि को प  
लक्षित पूर्वादि चार और ऊर्ध्व पांचो दिशा ने प्रयोजन समर्थ हैं। क  
लिके सर्वाक्ष अभिभावक होने और यजमान के जया पेक्षी होने से पंचा  
क्ष व्यापकत्व है इति भावः॥ का० १५०७०-२५० यजमान राज्य में स्वि  
त्यादि द्रव्यों को प्रथना करि पांचवार ब्रह्मन् इस मंत्र से ब्रह्मा को आ  
मंत्रण करे एवं आमंत्रित ब्रह्मात्वं ब्रह्मासीत्यादि सवितासि १ वरु  
णोसि २ इंद्रोसि ३ रुद्रोसि ४ इन्द्रमंत्रों से व्यत्यासं यजमान प्रति कहै  
तिस करि चारों मंत्रों की आदि में त्वं ब्रह्मासि यह प्रयोग है। व्यत्यासं  
यह आदि विषे यजमान ब्रह्मन् इससे आमंत्रण करे त्वं ब्रह्मासि  
सवितासि सत्य प्रसव इति प्रत्याह ब्रह्मा। पुनर्यजमानो ब्रह्मन् इ

† अ-भि। अ० ब्र-वः। इ० व-जाः। उ० इ-जाः। ऋ० रु-वः। लृ० व-रा। आ० इ-ध्य। ई०॥

ति ब्रह्माण मा मंत्रयते ब्रह्मात्वं ब्रह्मासि वरुणोसि सत्यो जा इति प्रत्या  
ह । पुनः ० इन्द्रोसि विशो जा । पुनः ० रुद्रोसि सुशेवः ॥ और अंतमें पांच  
में प्रतिवचन को पहिले त्वं ब्रह्मासीति इतनेही मन्त्र सैंकरे इति सूत्रा  
र्थः ॥ त्वं ब्रह्मासि १० आसु-गा० २० या-उ० ३० ४० या-गा० १-५ पञ्चय  
जमान देवत्यानि । आमन्त्रित ब्रह्मा यजमान प्रति कहें । हे यजमान  
तू ब्रह्मा (महान्) है और प्रेरक है सत्य है अनुज्ञा जिसकी वोह ॥ १ ॥  
द्वितीयं प्रत्याह । तू ब्रह्मा है वरुण (अनिष्टनिवारक) है अमोघ वी  
र्य है ॥ २ ॥ तृतीयं । तू ब्रह्मा है ऐश्वर्यवान् है प्रजाविषं तेज है जिसका  
वोह है ॥ ३ ॥ चतुर्थं । तू ब्रह्मा है रुद्र है हे राजन् तू शत्रुओं के रुलाने औ  
र डवाने सैं रुद्र रूप है । शोभन सुख कारी है ॥ ४ ॥ त्वं ब्रह्मासि इस इत  
नेही मन्त्र सैं पांचमां प्रति वचन करे ॥ ५ ॥ का० १५० ७० १०० यजमान को  
बहुकारे त्यादि सुमंगल नामा उपाधि दे बोलें ॥ या-ज० लिङ्गोक्तं देव  
तम् । हे बहुकार बहुत कार्य करने वाले श्रेय करने वाले भूयस्करः बहुत क  
रने वाले तिन्हों के संवीधन हैं हे बहुकारे त्यादि कल्याण नाम नूत्वा  
माह्वये तुम्हें आह्वान करते हैं इति शेषः ॥ का० १५० ७० ११० पुरोहि  
त वा अध्वर्यु यजमान के अर्थ द्यूत भूमि करने को स्फ देवें ॥ या-त्रि०  
स्फ देवतम् । हे स्फ तू इन्द्र का वज्र है इन्द्र ने जहाँ वृत्र के लिये वज्र  
को मारा (इन्द्राह यत्रेत्यादि शत० १०२४० १००) तिस का एक अंश स्फ  
है । तिस हेतु मेरे यजमान को वश बर्तित करि कारण यह कि जो रा  
जा ब्राह्मण सैं अबल वोह बैरियों सैं बली होता है + यद्वा जैसे तू व  
ज्र रूप है तिस कारण मेरी द्यूत भूमि विषं परिलेखन रूप कार्य साधि ॥ २८ ॥



अग्निः पृथुः॥ अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणोऽग्निः  
पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतुस्वाहा स्वाहा कृताः सूर्यस्य  
रुश्मिर्मिर्यतद्धर्तं सजातानां मध्यमेष्वाय ॥२६॥†

का० १५.७.१५. एवं की हुई द्यूत भूमिविषे सुवर्णरखितिसपरचतु  
र्गृहीत आज्य को होमें॥ सा-त्रि० अग्निदेवत्यम्। अग्नि आज्य को  
पि ओ स्वाहा सुहुत मस्तु। कैसा है अग्नि कि देवताओं में विशाल। त  
या जगत के धारण बाधर्म का स्वामी। प्रीतिमान बाह्य मान हविको  
सेव मान। अग्निः पृथुः धर्मणस्पतिरिति पुनः पाठः आदरार्थः॥ का०  
१५.७.१६. पूर्वोक्त पांचों अक्षों को भूमि में डाले ॥ सा-त्रि० अक्षदे  
वत्यम्। हे अक्ष ओ तुम स्वाहा पूर्वक आहुति करि तर्पण किये हुए स  
र्य की किरणों से स्पर्धो करो और सजातानां समान जन्मा भाई  
क्षत्रियों के मध्यम प्रदेश विषे यजमान के स्थान के अर्थ यत्न  
करो अर्थात् यजमान को सर्व क्षत्रिय श्रेष्ठ करो ॥२६॥

अ० ७ सवित्रा प्रसवित्रा ॥ सरस्वत्या वाचा त्वष्टा रूपा पूषा पशु  
भिरिन्द्रेण स्मेरुहस्पतिना ब्रह्मेण वरुणे नो जसाग्निना  
नेजसा सोमैर्न रक्षा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसू  
तः प्रसर्प्यामि ॥३०॥

का० १५.८.१६. १७. ऋत्विज और अन्य विप्र मिलकर शत संख्या  
कहो दशपेय याग के सौत्य दिवस विषे प्रतिसवन सर्पण से पहि  
ले अपने-अपने सोम याजि दश पित्रादिकों के गण गिनिकर अ  
मुक प्रथमः सोमपः असौ दूसरा असौ तीसरा इत्यादि दशपर्य



या-वृ०। हे सुरे तू अश्विनी कुमार के अर्थ पच्यस्व पाक कर पाकना  
म विपरिणाम श्रेष्ठता। सरस्वती देवी के अर्थ पाक कर। शोभन त्रा  
ण कर्ता वा सुत्रातव्य इंद्र के अर्थ पाक कर यतः सोत्राम एयं द्रुका भै  
षज्य कर्तव्य है ॥ का० १५.१०.११. वपा मार्जन के अन्त में कुशाओं  
करि परिस्रुत कों पवित्र करै वायुः पूतः० इसमंत्र से। पशुओं के वपा  
मार्जनान्तकर्म किये पीछे सुरा को किसी पात्र में दर्भाओं से पवित्र क  
रै ॥ सोम देवत्या गायत्री। सोम वायु करि शोधित कुशमय पवित्र करि  
शोधित हो अधोमुख होकर अतिक्रमण करिके गंधा ॥ कैसा है सोम  
कि इंद्रका योगार्ह सरवा। सोमः पूर्वे पूति गंधोऽभूत्ततो देवैर्वायुरुक्त  
त्वं सोमर्हं सुगन्धं कुर्वति ततो वायुना सोमो दुर्गन्धमपहत्य सुगन्धः  
कृत इति शत० १२.७.३. सुत्योक्तम् तदयं मन्त्रो वदतीत्यर्थः  
सोम प्रथम पूतिगन्धिया पीछे देवताओं ने वायु से कहा कि तू सो  
म को सुगन्ध करि ततः वायु ने सोम को दुर्गन्ध छुडाय सुगन्ध किया  
सो यह मन्त्र कहिता है ॥ ३१॥

कुविदुङ्ग ॥ यवमन्तो यवश्चिद्यथा दान्यं नु पूर्वस्त्रियूग ॥  
इहे है षाङ्कुणुहि भोजनानि ये बहिषोनमः उक्तिं यजन्ति ॥  
उपया मगृही तो स्पश्चिन्ध्यान्त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वासु  
त्रामो ॥ ३२॥ कु-न्ति। अ०। उ-म्यो। इ० ॥ ३२॥

का० १५.१०.१३. पवित्र हुई सुरा में बदरी फल चूर्ण डालि कर कुवि  
दुङ्गेति एक ग्रह को वैकङ्कत पात्र से ग्रहण करै अथवा कुविदुङ्गेति  
तीनि ऋचाओं से तीनि ग्रहों को प्रतिदेवत ग्रहण करै। यथा कुवि

दङ्ग० उपयाम गृहीतोस्यश्विभ्यान्त्वेति प्रथमम् कुविदङ्ग० उपया  
म गृहीतोसि सरस्वत्यैत्वेति द्वितीयम् कुविदङ्ग० उपयाम गृहीतोसी  
न्नायत्वा सुत्राणां इति तृतीयम् ॥ ३२० ३३० ३४० तृचं काक्षीवतसुकी  
र्ति दृष्टम् । आद्या सोम देवत्या त्रिष्टुप् ॥ हे सोम जैसे यवमन्तः ब  
हुयवसम्पन्नाः कृषीवलाः सब यवमय सस्य को अनुपूर्व सै विचा  
रि पृथक् करके लुनते हैं । तैसे इन यजमानों की संबंधी भोज्यवस्तु  
एँ इन यजमानों के बिषे करि । इन किन्हीं कें कि जे यजमान वहि  
ओं के ऊपर स्थित हविर्लक्षण अन्नकोलेयाज्यासम्पादन करि याग  
करते हैं ॥ उपयामेति सा-त्रि० । हे सोम तू उपयाम करि गृहीत है अ  
श्विनी कुमारों के अर्थ तुम्हें गृहण करता हूँ । सरस्वती के अर्थ तु-हूँ  
शोभनत्राण करने वाले इन्द्र के अ-हूँ ॥ ३२ ॥

पुर्वं सुरामम् ॥ पुर्वं सुराममश्विना नमुचावा सुरेसवा ॥

विपिपानाशु भस्यती इन्द्रोऽर्म्मस्वावतम् ॥ ३३ ॥

का० १५० ६० २० पुर्वं सुरामम् पुत्रमिव ये दोऽक्त्वाँ सुराग्रहों की या  
ज्या अनुवाक्या प्रथमानुवाक्या पुत्रमिवेतियाज्या ॥ अनुष्टुप् अश्विसरस्व  
तीन्द्र देवत्या । हे अश्विनौ तुम कर्म निमित्त विषे इन्द्र को पालन  
अर्थात् स्वकर्मक्षम करते हुए । कैसे हो तुम कि नमुचि संज्ञिक अ  
सुर (दैत्य) विषे स्थित सुराम (शोभन रमणीय) सोम को एकी हे वि  
विध पीते हुए । तदर्थे श्रुताविति हासः शत० १२० ३० ४० १० नमुचि-  
र्नामासुर इन्द्रस्य सखासीत सविश्वस्तस्येन्द्रस्य वीर्यं सुरया सो  
मेन सह पीते ततः इन्द्रोऽश्विनौ सरस्वतीं चोवाचाह नमुचिना

पीत वीर्योऽस्मि ततोऽश्विनौ सरस्वती चापांफेनेन रूपं वज्रमिन्द्राय  
ददुः तेनेन्द्रो नमुचेः शिरश्चिच्छेद ततो लोहित मिश्रः ससुरः सो  
म स्रदुदरा दश्विभ्यां पीत्वा शुद्ध इन्द्रायार्पित इति नमुचि नामा  
असुर इन्द्रका सखाया उसने विश्वस्त इन्द्रके वीर्य को सुर सोम  
सहित पीया ततः इन्द्रने अश्विनी कुमारों और सरस्वती से कहा  
कि में नमुचि करि पीत वीर्य हूं ततः अश्विनी कुमारों और सर  
स्वती ने अपांफेनेन १४०७१ रूप वज्र इन्द्रके अर्प्य दिया तिससे  
इन्द्रने नमुचि का शिर छेदा ततः लोहित मिश्र सुरसहित सोमति  
सके उदर से अश्विनी कुमारों ने पीकर शुद्ध इन्द्र के अर्प्य अर्पण  
किया इति अर्थात् तिस अर्पण से इन्द्र को रक्षा करते हुए । पुनः  
कैसेही कि शोभन कर्म के पालक ॥ ३३ ॥

पुत्रमिव पितरौ ॥ पुत्रमिव पितरावश्विनो भेन्द्रावयुः का  
व्ये हृष्टं सनाभिः ॥ यत्सुरामं व्यपिवः शचीभिः सर  
स्वती त्वामघवन्नभिषाक ॥ ३४ ॥

इति सर्गहितायां मष्टमोनुवाकः ८

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिन शारदीयायां  
वाजसनेय सर्गहितायां दीर्घपाठे दशमोऽध्यायः

त्रिष्टुप् अश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्या । हे इन्द्र दोनों अश्विनी कुमारों  
ने तू पालन किया किन्हों से कि काव्यैः मन्त्रहृष्टाओं के संबंधि  
मन्त्रों से । तथा दंसनाभिः † कर्म करिके । दृष्टान्तमाह जैसे मा  
ता पिता पुत्र को पालते हैं तैसे अश्विनी कुमारों ने तू रक्षा किया

अश्विनी कुमारेणै इन्द्रको रक्षाकिया यह कैसे समझा गया तहां  
कहते हैं कि जिस कारण से हे इन्द्र तूने नमुचिवद्यादि कर्म किये  
शोभन रमणीय सोम को विशेष करि पीआ और हेमधवन् इन्द्र  
जिस हेतु सरस्वती देवी ने तेरे किये सोमपान से और सरस्वती कृत तेरे  
सेवन से अश्विनी कुमारेणै तुम्हें रक्षा किया यह जान पड़ता है ॥३४॥

इति गिरिधरभाष्ये षष्ठोऽनुवाकः

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्याश्चतुरेदेयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वयविश्व  
मित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरोक्मिणोयनृपतिगिरि  
प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये राजसूयचरकसौत्र  
मणीवर्णेनो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते

वेदार्थप्रदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

संहिता सारबहुला पदसंज्ञाभिराकुला

क्रमसंधिसमाकीर्णा दुस्तरामन्त्रसागरः

संहितानयने सूर्यपदानिशशिनं पदम् ।

क्रमोपिनयने सूक्ष्मं यत्तत्पदमनामयम् २

आदितः अनुवाकसंख्या ११४

पञ्चात्मकः स भगवान् द्विषडात्मको भूत्

पञ्चदशोऽशतसहस्रपरामितश्च ।



एकः समोप्य रिवल दोष समुज्जितोपि  
सर्वत्र पूर्ण गुण कोपि बहूप मोभूत् ॥१॥  
सर्वत्र पूर्ण गुणविग्रह आत्मतन्त्रो  
निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्च हीनः ।  
आनन्दमात्रकरपाद मुखो दुरादि  
सर्वत्र च त्रिविधभेदविवर्जितात्मा ॥२॥

इति श्री वेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये दशाध्यायी  
समाप्ति मगमत् ॥

आवणस्यासिते पक्षे सप्तम्यारविबासरे  
बसुनेत्राङ्गभूवर्षे दशाध्यायास्तदागमन्

अतः परमष्टभिरध्यायैरग्निमंत्रा उच्यन्ते

वेशमेति प्रसिद्धं गतेति प्राचीने विश्वामित्रपुरीय  
नवल दुर्गस्थ व्याघ्रपाद  
प्रकाशकाशमयत्रालये  
मुद्रितम्

ॐ शान्तिः

ॐ शान्तिः

ॐ शान्तिः

विक्रमब्दाः १५२८ शकाब्दाः १७४३ भाद्रकृष्ण ८ भौमवार शुभभवतु

## अथ संक्षेपतः सूचीपत्रम्

हरिः जेम् सूचीपत्रम्					
पृष्ठांक	पंक्त्यांक	विषय	पृष्ठांक	पंक्त्यांक	विषय
५१	३	अथ दर्शपूर्णमासमन्त्राः	२२६	२१	अथ षोडशधिषण्यमन्त्राः
१०४	७	ब्रह्मत्वम्	२५५	११	अथ सोमाभिषवयुक्तानां व
११६	१३	अथ याजमानम्			सतीवरीसंज्ञानामपांग्रहणं विधी
१२२	५	इति दर्शपूर्णमासेष्टिम	२६६	५	अथ प्रातःग्रहग्रहणमन्त्राः
		न्त्राः समाप्ताः	२८३	११	अथ माध्यन्दिनसवनग्रहाउच्य
	६	अतः परंपिण्डपितृयज्ञमन्त्राः	३०३	१७	अथ तृतीयसवनग्रहाउच्यते
१२६	६	अथाधानमन्त्राः	३१३	१	अथ समिष्टयजुर्मन्त्राः
१३१	१२	अथाग्निहोत्रमन्त्राः	३१८	७	इतः परमनूबन्ध्यायां गभि
१३३	१६	यजमानाग्निउपस्थानं वृ			ण्यां प्रापश्चितं कथ्यते
		हदुपस्थानम्	३२१	१२	अथ षोडशीमन्त्राः उच्यंते
१४८	८	अथ क्षुजकोपस्थानम्	३२४	८	अथ द्वादशाहमन्त्राः
१४८	१२	प्रवस्यत् (आगत) उपस्थानं	३३२	७	अथ सत्रोत्थानं
१५२	८	अथ चानुर्मास्यमन्त्राः	३३४	८	अथ नैमित्तिकानि
१६५	२०	अथाग्निष्टोममन्त्राः	३४२	५	अथ वाजपेयः
१७५	१८	अतः परं षडौहमणमन्त्राः	३६१	४	अथ राजसूयः
१८८	१८	अथाग्निनयनमन्त्राः	३६४	१३	अथ चरकसौत्रमणीमन्त्राः
२१८	१	अथ उपरवमन्त्राः	३८८	१२	इति राजसूयः समाप्तः
२२३	३	अथोदुन्तरीमन्त्राः			इति सूचीपत्रम्

हरिःॐ

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

अथाग्निचयनमन्त्रास्तेषां प्रजापतिर्ऋषिः साध्या ऋषयो वा

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वहु रूपकम्  
स्वानन्दं दायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुम १

प्रथमचितिमन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिः

अ० १ युञ्जानः प्रथमम् ॥ युञ्जानः प्रथममनस्तत्वाय सविता धि  
यैः ॥ अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या ॥ अध्या भरत ॥ १ ॥  
श्रीवल्लभं विहृतं च नत्वा तत्कृपया धुना ॥  
प्रदीपेष्ट भिरध्यायै रग्निः प्रायेण वर्ण्यते १

एकादशमे अध्यायसे आरम्भ करि अष्टादशमे पर्यन्त अग्निचयन  
के मन्त्र तिन्हों का प्रजापति वा साध्य ऋषि ॥ सो अग्नि पञ्चचिति युक्त  
हि । प्रथमचिति मंत्रों का प्रजापति ऋषि है १ दूसरी के देवता २ तीस  
री के इन्द्र अग्नि विश्वकर्मा ३ चौथी के ऋषि ही ऋषि हैं ४ पांच  
मी का परमेशी ऋषि है ५ तथाच श्रुतिः प्रजापतिः प्रथमा  
चिति मपश्य दित्यादि शत० ६० २० ३० १००

ओंनमोयाज्ञवल्क्याय

सामादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

समिदाध्यन्तोभूमीन्द्रध्यायइत्येते

एकादशतमोऽध्यायः त्रयोदशमें अध्याय पर्यन्त प्रथमचितिके मन्त्र  
तिन्हों का अर्थ है ऋषिः ॥ चयन करने की है इच्छा वोह यजमा  
न फाल्गुण कृष्ण प्रतिपदा विषे पौर्णमासेष्टी को करिके पुरुष  
अश्व. गो. अवि. अज. का आलम्भन करि अजसे याग करिके  
पांचो के घृत. कशिर प्रथमचिति विषे उपधानार्थ कहीं स्थापन क  
रि तिन्हों के कवन्धों और अज के शेष को मृद्युक्त तडागादि जल  
में डाले उखा और इष्टका के अर्थ मृदा और जल तहां से लावे  
ततः फाल्गुण कृष्णष्टमी में उखा संभरण करते हैं तिसके अर्थ  
आहवनीय दक्षिणाग्नी का उद्धार करि आहवनीय से पूर्वमें कि  
ये चतुष्कोण गर्त विषे ततः तडाम से मृत्पिण्ड लाकर भूमिके स  
म स्थापन करै. पिण्ड आहवनीय के बीच सच्छिद्रा वल्मीक मृ  
दा को रखै. आहवनीय से दक्षिणदेशमें अश्व. गर्दम. अज.  
आड्मुरवाः पूर्वापर रीति करि मुञ्जरशना से बंधे स्थापन करिके.  
आहवनीय के उत्तर में वैशाखी दुधारा वा कल्माषी हिरण्मयी अ  
भिस्थापन करै. ततः कर्माह का १६. २. ७. गार्हपत्य में घृत को  
संस्कार करि जुहू और सुवा को धोकर सुचि करि आठ बार लिये  
आज्य को आहवनीय में परिस्तरण समिदाधान पूर्वक संतत अ  
वच्छिन्न धारा से सुचि को ऊंची करि युज्जान इत्याद्य अष्टकण्ड

काओं से सांतत्य और आठ ऋचाओं के अन्तर्गत् स्थावाकार पचन्ता अ  
ध्वर्यु होमें ॥ अथ प्रति कर्म दर्शिन इति युञ्जानः अष्टानां सवितापि  
ऋषिः देवोपि सविता आद्यानुष्टुप् । अथ मंत्रार्थः सविता सवके  
प्रेरक प्रजापति† ने चीयमान वह्निका संबंधि तेज पशुओं में प्रविष्ट  
निश्चय करि यद्वा सफल कर्मों का साधनभूत निश्चय करिके पशुशरी  
एन्विता पृथिवी के सकाश से अध्याहरण किया अर्थात् इष्टका करि  
अग्निको इकट्ठा किया । किम्भूतः कि प्रथम अग्न्या रम्भ में मनस्था  
पन किया किं कृत्वा कि बुद्धि इष्टकाविषय ज्ञानों का विस्तार करिके  
अर्थात् मनसा से पर्यालोचन करि बुद्धि विषे अवधारण करिके ॥ १॥

† सवितृ शब्देन  
श्रुतो प्रजापति  
रुक्ताः प्रजापति  
वै युञ्जानः इ  
ति शत० ६३ १ १०

युक्तेन मनसा ॥ वयन्देवस्य सवितुः सवे ॥ स्वर्ग्याय शक्त्या ॥ २॥  
गायत्री गायत्री शङ्कुमती † । प्रजापति की आज्ञा में वर्तमान हम यज  
मान इन्द्रियों से नियमित एकाग्र मनसा से स्वर्ग सायक कर्म के अर्थ  
अपनी सामर्थ्य पूर्वक प्रयत्न करते हैं इति शेषः ॥ २॥

† महीधरमते

युक्ताय सविता ॥ देवान्स्वर्ग्यं तोधिया दिवम् ॥ बृहज्योतिः  
करिष्यतः सविता प्रसुवातितान् ॥ ३॥

अनुष्टुप् । सविता तिन प्रसिद्ध देवताओं को अग्नि कर्म विषे संयोज  
न करि प्रेरता है । कैसे देवताओं को कि धिया बुद्धिवा अन्य कर्म  
करि प्रकाश करते हैं । पुनः कैसे सांको कि बृहज्ज्योतिः करिष्यतः  
बड़े आदित्य लक्षणा को आत्मत्व से संस्कार करते हैं । कैसे सविता  
कि प्रेरिता अन्य कर्म से स्वर्ग को गये देवताओं को अग्नि कर्म वि  
षे सविता प्रेरणा करनेवाला प्रजापति तिन इन्द्रिय विशेष देवता-

ओं को विषयों से रोकि कर प्रकर्षण अग्नि कर्म विषे प्रेरण करता है  
कैसें को कि स्वर्ग प्राप्ति के अर्थ उद्यत हैं तथा बृहत् चीयमान अग्नि  
के तेज के तत्तत् इष्ट कादि विषय प्रज्ञा करि द्योतमान करने को उद्यत ३

युजते मनः॥ युजते मनः॥ उत युजते धियो विप्र विप्रस्य  
बृहतो विपश्चितः॥ विहोवा दधे वयुना विदेकः॥ इन्मही दे  
वस्य सवितुः परिष्टुनिः॥ ४॥

जगती व्याख्यातापि ११४ विशेषतो व्याख्यायते। विप्रः (विशेषेण दक्षिणा अन्न दान करि पुण्य करने वाले, ब्राह्मण, यजमान) के संबंधि विप्राः (ऋत्विजाः) प्रथम स्वकीय मन को विषयों से निवर्त करि समाहित करते हैं। और धियः (इष्ट कादि विषय ज्ञानों) का सम्यादन करते हैं। कैसे विप्र के कि अग्नि चयन के उद्योग करि अभिबृद्ध तथा अभिज्ञ। कैसे हैं विप्र कि होम शील अर्थात् कर्म विषे आलस्य रहित हैं। ननु ये ऋत्विग्यजमान कहां से आए तत्राह कि एक एव सविता इन सबों को निर्माण करता हुआ कैसे कि विपश्चित् ऋत्विग्यजमानों के अभिप्राय का जानने वाला। कैसे एक ही इन सबों को करता हुआ सो कहते हैं कियतः सविता देवता की सब वेदों में श्रूयमाणा महती स्तुति अर्थात् सविता की अचिन्त्य महिमा है ॥ ४॥

युजे वाम्॥ युजे वाम्ब्रह्म पूर्यन्नमोभिर्विश्लोकः॥ एतु पथ्ये  
वसूरे॥ श्रुएवन्तु विधेः॥ अमृतस्य पुत्राः॥ आपे धामानि दि  
व्यानि तस्थुः॥ ५॥

त्रिष्टुप्। पत्नी यजमानों वामिति पदे नोच्येते। हे पत्नी यजमानौ तुम्हा



रे अर्थ अन्न करि इसहुत घृत सहित पुरातन महर्षियों करि अनु  
ष्ठित ब्रह्म (परिवृद्ध अग्निचयनारव्यकर्म) को मैं सम्पादन करता हूँ  
यद्वा तुम्हारे अर्थ पुरातन ब्राह्मण जाति को अन्न करि तर्पण कर  
ता हूँ। किमर्थमिति चेत् कि पण्डित यजमान की कीर्ति दोनों लोकों  
में व्याप्त हो तत्र दृष्टान्तः पृथ्याः इव यज्ञ मार्ग प्रवृत्ता आहुति जे से  
दोनों लोकों को व्याप्त होती है ऐसे यजमान की कीर्ति उभयलोक सं  
चारी हो इति भावः। किंच मरण धर्म रहित प्रजापति के पुत्र सब देव  
ता यजमान की कीर्ति को सुनों। कौन कि जे दिविके स्थानों में बैठे  
हैं अर्थात् ते सब इस की कीर्ति को सुनों ॥५॥

यस्य प्रयाणम् ॥ यस्य प्रयाणमन्वन्व्यः इद्युर्ह्येवा देवस्य  
महिमानमोजसा ॥ यः पार्थिवानि विमुमेसः एते शूरजो ध्य  
सि देवः सविता महित्वना ॥६॥

जगती। अन्य देवता जिस सविता की प्रवृत्ति को अनुवर्तते हुए और  
अन्य देवता जिस देव के महत्त्व को बल करिके अनुवर्तते हुए और जि  
स सविता ने रजसि + पृथिवी प्रभृति लोकों को जाना सो देव अपने म  
हा भाग्य से एतशः एतत् जगत् त्रय स्थावर जंगम को प्राण भाव करि  
व्याप्त होता है। यद्वा एतश इत्यश्वनाम निघं० १० १४० अश्व रूप से सब  
जगत को बना करि स्थित है उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिर इति श  
क्त० १०६० ४० १० सूर्य दश्व वसवो निरतष्टेति वक्ष्यमाणत्वाच्च २५० १३० ॥

देवसवितः ॥ देवसवितुः प्रसुव यज्ञम् प्रसुव यज्ञपतिम्  
य ॥ दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वीच

इति निरुद्धः इति निरुद्धः इति निरुद्धः

नः स्वदतु ॥७॥

त्रिष्टुप् व्याख्यातापि ४.१ कथ्यन्ते। हे देव सवितः यज्ञ को प्रकर्ष करि  
प्रेरि और यज्ञ पति यज्ञ मान को सोभाग्य के अर्थ प्रेरि। किंच स्वर्गस्थ  
केतपूः (केत परिचिति विषे वर्तमान ज्ञान को शोधन करने वाला)  
ऐसा गंधर्वः (लाचा को धारण करने वाला) सविता हमारे केत (चिति-  
वर्तिज्ञान) को ब्रह्म विवर्तन से शोधे। वाणी का पति सविता हमारी वा  
णी को स्वदतु स्वादन करे अर्थात् हमारी कही वाणी तिसै रुचे ॥७॥

इमन्नः ॥ इमन्नो देव सवितर्यज्ञम्यणय देवा व्युर्धं सखिविदं  
र्धं सत्राजितं न्यनजितं ध्वं स्वर्जितम् ॥ ऋचास्तोमं ऋचं  
र्धं यगायत्रेण रथन्तरमृहद्वायत्रवर्तनस्वाहा ॥८॥ +

अवसानपर्यन्तं यजुः महीधर मते तस्य प्राजापत्या जगती छन्दः। हे  
सवितर्देव हमारे इस यज्ञ को प्राप्त हो। कैसा है यज्ञ कि देवताओं का  
तर्पण करते हैं जिसमें। तथा सखिविदं सखायं अपने निष्पादक  
यज्ञ मान को जानता वा ऋत्विजों को प्राप्त होता। सत्राजित द्वादशा  
हादि सत्रों को बशी करता है + यद्वा सत्राशब्दः सत्यवाची सत्य  
(ब्रह्म) को संपादन करता है। गवादि फल स्वधन को सम्पादन कर  
ता है। स्वर्ग को फलत्व करि सम्पादन करता है ॥ किञ्च ऋचास्तोम  
म् गायत्री अवसान रहिता यजुरन्ता स्वाहेति यजुः। हे सवितः ऋ  
चा स्तोत्र हेतु सामाधारभूतया ऋचा सहित स्त्रिष्टुपादिक स्तोम को  
समृद्ध करि गायत्र साम सहित रथन्तर साम और वृहत्साम को बड़ा  
कैसा है वृहत् कि गायत्र साम ही है मार्ग जिस का अर्थात् वृहत् साम

+ गानि हि नीयमानमग्निमप्यश्नते

का गायत्र साम मार्गभूत है ॥८॥

देवस्यत्वा ॥ सवितुः प्रसवेऽश्विनो बौह्रम्या मूषणो हस्ता-  
म्याम् ॥ आदे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्युथिव्याः स  
धस्था दग्निं पुरीष्यु मङ्गिरस्वदाभरत्रैष्टुभेन छन्दसा  
ङ्गिरस्वत् ॥९॥†

का० १६०२० देवस्यत्वेति कण्डिका इयात्मक मन्त्रकरि वैणवी  
अभि कोले हस्त आधायेति ऋचा क० ११० से अभि को अभिम  
न्त्रण करे ॥ दे-मूषा-वृ-सविता दे-आ-त्यजुः † अभिर्देव हे-अ  
भे सविता देवता का त्रेण अश्विनी कुमारों के संबंधी मणिबन्धपर्य  
न्ता बाहुओं पूषण संबंधी अंगुलियों सहित साधनभूत हाथों सहा  
यभूत गायत्री छन्द से युक्त हो तुम्हें ग्रहण करता हूँ तत्र दृष्टान्तः जैसे  
अङ्गिरा के वंश के ऋषि तुम्हें पहिले ग्रहण करते हुए हे अभितूग्र  
हण की हुई पृथिवी के उत्सङ्ग से अग्नि को ला । त्रिष्टुप् छन्द से अंगि  
रस जैसे अग्नि को आहरण करता हुआ पुनः अङ्गिरस्वत् इति दृ  
ष्टान्तोऽर्थात् शायार्थः । कैसे अग्नि को पुरीष्यम् † यशुओं के अ  
र्थहित यशव्य यद्वा पुरीष शब्देन पांशुरूपा शुक्लामृदुच्यते त  
दर्हतीति पुरीष्य अग्नि है क्योंकि मृदा को ले उरवा बनाय तिस  
में अग्नि को स्थापन करते हैं इस हेतु मृदा और अग्नि के अभि  
दोषचारण से मृदा हरण एव अन्या हरण है इस अभिप्राय से  
पुरीष्य अग्नि को आहरण करे यह कहा गया और यही उपचार  
अग्निचयन प्रकरण में सर्वत्र वर्तित है ॥९॥

† महीधर मते आ  
रदे अश्विरसि  
१० मिलित्वा तत्र  
निधु निच्छन्दः

† पुरीषो वै पुरी  
षमिति शत० ६  
३०१३०

† दे-मू-अ-आ-तु-इ-॥९॥

अम्बिरसि ॥ अम्बिरसि नार्यसित्वयावयमग्निर्दशके  
 मखुत्ति तुर्धसुस्थः ॥ जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ १० ॥  
 यजुः । तू अम्बि उखा को निर्माण करने वाली मृत्खनन हेतु भूतका  
 ष्टविशेष है और नारी । स्त्रीरूपा है यद्वा नहीं अरि बैरी जिसका  
 बोह है अर्थात् खनन काल में अस्मादि कों करि तेरा कुण्ठीभाव  
 नहीं होता किंच तुरुसे युक्त हम पृथिवी के उत्सङ्ग में वर्तमान अ  
 ग्नि को जगत छंदसे खनने को समर्थ होंवें अङ्गिरस्वत् इति ह  
 ष्टान्तः पूर्ववत् ॥ १० ॥

हस्तः आधाय ॥ सविता विम्बु दम्बिर्दं हिरण्ययीम् ॥ अ  
 ग्नेर्ज्योतिर्निचाप्य पृथिव्याः अध्या भरदानु भेन छन्द  
 साङ्गिरस्वत् ॥ ११ ॥ +

अनुष्टुब्यजुरन्ता आनुष्टुभेन त्यादि यजुः तस्य महीधरमते यजुष  
 स्त्रिष्टुप् छन्दः । अम्बिदेवत्या । सविता प्रेरक प्रजापति हस्त विषेस्व  
 णेमयी अम्बि कों लेकर तिसके धारण करते ही अग्नि संबंधी ज्यो  
 तिका निश्चय करि देखि भूमिके सकाश से अनुष्टुप् छन्द करि आ  
 हरण करता हुआ अङ्गिरस्वदिति पूर्ववत् ॥ ११ ॥

अ० २ प्रतूर्तम्वजिन् ॥ प्रतूर्तम्वजिन्नाद्रववरिष्ठा मनुस्वतम् ॥  
 दिवितेजन्मपरुममन्तरिक्षेतवनाभिः पृथिव्या मधि  
 योनिरित् ॥ १२ ॥

का० १६२४ प्रतूर्त युज्जायां योगे-योग इति तीन ऋचाओं से  
 अश्व गर्दभ अजः को अम्बिहाथ में लिये प्रति मन्त्र करि अम्बि

मन्त्राणकरै॥ अश्वदेवत्या आस्तारपंक्तिः नाभानेदिष्टदृष्टा। हेवाजिन् हे  
 प्रगामिन् अश्ववरिष्ठा। उत्कृष्टा सम्बत भूमिको लक्ष करिणीश्रुता।  
 अनेसै तुरु अश्वका द्युलोक विषे परम उत्कृष्ट जन्म आदित्य रूप  
 करि होगा यद्वा तेरा जन्मदिविमें रोहितादि देवाश्व रूप करि प्रसिद्ध।  
 अन्तरिक्षमें तेरा नाभि (उदर) यद्वा नियुन्नामक वायुके अश्व अन्त  
 रिक्षमें चलते हैं तिसरूपसे इसका अन्तरिक्षवर्तित्व नाभि शब्द  
 करि प्रकृष्ट शरीर उपलक्षित है। पृथिवीके ऊपर तेरा स्थान  
 न इत एव (पादों एव) भूमि विषे तेरा निवास स्थान प्रत्यक्ष  
 दीखता है। विराडू पेणाश्वः स्तूयते एवं महिमा तूणी प्र  
 इत्यर्थः ॥१२॥

मृतवनन  
 योग्याभूमिः  
 सम्बत सो व  
 शाशाणोद-  
 भावेनातिप्र  
 रास ताति  
 इत्युच्यते

युञ्जाथाथं रासंभमयुवमस्मिन्यामेवृषएवसू  
 म्भरन्तमस्मयुम् ॥१३॥

गर्दभ देवत्या गायत्री कुश्रि (कुस्रि) दृष्टा। गर्दभं मन्त्रयते। अश्वदेव  
 जमाना बुच्येते। सीचने वाला गर्दभ वृषण्वसू (वसुधना वर्षने वाला)  
 यद्वा यागनिष्पादन द्वारा वृष फलोंसे वर्षने वसुधन के दिव्यता का  
 संबोधन। हे वृषण्वसू (अध्वर्यु यजमान औवा यजमान दम्पती) त  
 म गर्दभ को बांधो। कहां कि अस्मिन्या मे इस अग्नि कर्म में  
 वा यामो मृद्वहन रूप नियम विशेष तिस निमित्त भूत में केता  
 गर्दभ कि अग्नि भरने (ले चलने) को समर्थ हमारा हित न करने ॥१३॥  
 योगे योगे तव स्तरम् ॥ वाजे वाजे हवा महे ॥ मवा  
 मृतये ॥१४॥

† युज्यतेऽनुशीयतऽइति योगकर्म  
† तव इति वलनाम निघ० २० ६०

अज देवत्या गायत्री सुनः शेषदृष्टा। अजं मन्त्रयते। परस्परं सख्यको प्रा  
प्तं हम् ऋत्विग्यजमान इन्द्रियवन्तः (वीर्यवन्तः) वा इन्द्रियं प्रदं अज  
को रक्षा के अर्थ बुलाते हैं। कसति कि वाजे-वाजे तिन-तिन अन्नो अ  
र्थात् मनुष्य और देवताओं के देने में वा तिन-तिन अन्न प्राप्तिनिमि  
त्त को। कैसा है अज कि योगे-योगे † तव स्तरं † तिन-तिन कर्मों में  
उत्साहवन्तः ॥ १४ ॥

प्रतूर्वन्नेहि ॥ प्रतूर्वन्नेह्यवक्त्रा मुन्नशस्ती रुद्रस्य गणं य-  
त्यम्मयो भूरेहि ॥ उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्ति गव्यतिरभया  
निकृण्वन्पूषासयुजासुह ॥ १५ ॥ †

का० १६० २० १०० प्रतूर्वन् उरु स्वस्ति प्रतिमंत्र से स्पर्श करता अश्वदि  
कों की भय को देख प्राच चलै ॥ विराड् रूपा त्रिष्टुप् यजुर्मध्या उर्वन्त  
रिक्षं वीहीत्येतावद्युजुः। अस्याः पूर्वार्धस्याश्वो देवता। हे अश्वतू  
षात्रुओं को मारता ॥ शत्रुओं से की हुई अपकीर्ति का निवारण  
करता। अपने में कौन गुण यह कि हमारे सुख विचारने से रुद्र (कूडर  
देवता) के गणपतित्व को सब ओड़ी से प्राप्त हो अत्रा गमने गणप  
तित्व को लाभ करेगा इति भावः ॥ उर्वन्तरिक्षम् यजुः सहितेतरा  
र्धस्य असभोत्क्रमणे विनियोगः। हे गर्दभ ऋत्विगू यजमानों की  
व्याघ्रादिकों से भय को परिहार करता समान योगिनी पूषा † (पृ  
थिवी) के साथ विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को विशेष करि प्राप्त हो। कैसा  
है तू कि विनाश रहित मार्ग है जिसका अर्थात् भयवर्जित प्रभूतयव  
सोदक मार्ग होकर आया। नहीं एक मार्ग को प्राप्त होता इस न्याय से पू



षा के साथ यह युक्त है ॥१५॥

पृथिव्याऽस्य स्यात् ॥ पृथिव्याः सधस्यादग्निं स्युरीष्यमङ्गि  
रुस्वदाभं रग्निं पुरीष्यमङ्गि रुस्वदक्षे रग्निं स्युरीष्यमङ्गि  
रुस्वद्विरिष्यामः ॥१६॥ + वे-रा.अ.०.अ-मः ॥ इ.उ.० ॥१६॥

अजोत्क्रमणे विनियोगः । आर्षी गा० आग्नेयी । हे अभ्रे पृथिवी के  
सहस्थान से पुरीष्य (पशव्य) अग्नि को अङ्गिरस इव आहरण क  
रता हुआ ॥ का० १६.३.१२. तीनों अग्नि-ओं के दीप्यमान होते ब्रह्मा  
यजमान अध्वर्यु चतुष्कोण गर्त विषे स्थित । सृजिका पिण्ड अति ग  
मन करें अश्व गर्दभ अज भी गमन करें ॥ या-ज० । पशव्य अग्नि  
को अङ्गिरस जैसे हम अभिमुख चलते हैं ॥ का० १६.२.३. देवपितृ  
मनुष्यों का निष्प्रयोजन अनद्धा पुरुषति से देखें ॥ आग्नेयी आसु  
अ० । पशव्य अग्नि को जैसे अङ्गिरस हम सम्पादन करते हैं ॥१६॥

अन्वग्निः ॥ अन्वग्नि रुष सामग्रं मरुष्यदन्वहानि प्रथमो  
जातवेदाः ॥ अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मी ननु द्यावा पृथि  
वीऽऽततन्य ॥ १७ ॥

का० १६.२.१४. बल्मीक वपा, बल्मीक के ऊँचावदा हुआ अवयव जैकि  
पिण्ड आहवनीय के बीच में स्थापन किया है तिसे ले तिसी स्थान स्थि  
त हो तिस छिद्र से पिण्ड को देखें ॥ अग्नि देवत्या त्रिष्टुप् पुरोधसदृशा  
अग्निः उषः कालों के अग्र को अन्वख्यत् अनुक्रमेण प्रकाश क  
रता हुआ । जात जात को जानता वाजनाता यह अग्नि मुख्य हो अ  
न्वख्यत् किंच सूर्य की रश्मि-ओं को बहुधा अन्वख्यत् । किंच द्यावा पृथि

रसा-गा-मदीयः

वी दैनो को भी अनुक्रमेण सर्वतो व्याप्तहुआ। सर्वप्रकाशकलोक-  
स्रष्टा जो अग्नि तिसें देखें इति शेषः॥ १७॥

आगत्य वाजी॥ आगत्य वाज्यध्वान् सर्वं मृधो विधू-  
नुते॥ अग्निर्धं सधस्ये महति चक्षुषानि चि कीषते॥ १८॥  
का० १६. २. १६. मृत्पिण्ड के पास में खड़े अश्व को अभिमन्त्रण करे।  
अश्वदेवत्यानुष्टुभ्यो भूदृष्टा। वेगवान यह अश्व मार्ग को प्राप्त हो  
सब संग्रामों (पापीश्रमों) को विविध कपाता (अपनय करता) है ततः  
विगत श्रम हो उत्कृष्ट सहस्थान पृथिवी में वर्तमान अग्नि का हेतु  
भूत मृदा को नेत्रों करि देखता है॥ १८॥

आकम्प्य वाजिन्॥ आकम्प्य वाजिन् पृथिवी मुग्निमिच्छरु-  
चात्वम्॥ भूम्या दृत्वाय नो ब्रूहियत्। खने मतम्वय-  
म्॥ १९॥

का० १६. १. १७. मृत्पिण्ड के ऊपर अश्व के सब्य पद को स्थापन करे॥  
अश्वदेवत्यानुष्टुप्। हे वाजिन् अश्व भूमि को पाद स्पर्श से परीक्षा  
करि दीप्ति करि कै तू अग्नि हेतु मृदा को निश्चय करि। किंच भूमि  
प्रदेश को स्पर्श करि कै हमें तू कहि कि यह प्रदेश अग्नि हेतु मृद्यो-  
ग्य है कि जिस प्रदेश से हम तिस अग्नि को खनन द्वारा सम्पादन करें  
यद्वा जिस प्रदेश से तैसी मृदा प्राप्त हो तिस प्रदेश को खो दें॥ १९॥

द्यौस्तै॥ पृष्ठमृथिवी सधस्ये मात्मान्तरिक्षं समुद्रो योनिः॥  
विख्याप्य चक्षुषा त्वमभितिष्ठ पृतन्यतः॥ २०॥

का० १६. २. १८. पिण्डों पर पदधारण करते अश्व को स्पर्श करता

अध्वर्यु दक्षिण कर को अश्व की पीठ पर रख मन्त्र पढ़े ॥ वहती अश्व दे० ॥ हे अश्व द्यौ लोक तेरा पीठ भूलोक तेरे पद अन्तरिक्ष लोक तेरा आत्मा (शरीरान्तर्बर्ती जीवात्मा) समुद्र (उदक तेरा उत्पत्ति स्थान) अप्सु योनिर्वा ॥ अश्व इति श्रुतेः ॥ एवं स्तूयमान तूनेत्रों से उखा योग्य मृदा को देखि सङ्ग्राम करने को इच्छा करते मृदा में गूढ स्थित राक्षसादिकों का पाद से विनाश करि ॥ २० ॥

उत्क्राम ॥ महते सौभगा यास्मा दास्याना द्विविणो दावाजि न् ॥ वयं च स्याम सुमती पृथिव्याः अग्निं ह्वनेन उपस्थे ॥ अस्याः ॥ २१ ॥

का० १६० २०१८० मृत्पिण्ड से अश्व को उतारें ॥ विराडश्व देवत्या, पंक्तिर्विराड्बुष्पदा ॥ हे वाजिन् महाभाग्याभि वृद्धि के अर्थ इस खनन प्रदेश से जहां तू खड़ा है तहां से उतारते हैं ॥ कैसे है तू किधन का देने वाला तेरे उत्क्रान्त से हम पृथिवी विषे सानुग्रह चित्त हों वें ॥ कैसे हैं हम कि इस पृथिवी के उपरि भाग में अग्नि के अर्थ मृत्पिण्ड खनने का उद्योग करते हैं ॥ २१ ॥

उदक्रमीत् ॥ उदक्रमी द्विविणो दावाज्यर्वाकः सुलोकं सुकृतमृथिव्याम् ॥ ततः खनेम सुप्रतीकमग्निं च स्वरुहाणाः अधिनाकं मुत्तमम् ॥ २२ ॥

का० १६० २०१८० पिण्ड से उतारें अश्व को अभिमंत्रण करें ॥ आपाश्वी विष्टुप् ॥ अर्वाः (अरणशील-चञ्चल) धन का दाता अश्व जिस प्रदेश से उतर पृथिवी में तिसे शोभन लोक (प्रदेश) पुण्यवान करता हुआ ॥

ततः प्रदेशं सै ह्यग्निहेतु मृदा को स्वनन करते हैं कैसे अग्नि को कि शोभन है मुख जिस का कैसे हैं हम कि स्वर्ग की अधिरोहण का मनारखनेवाले एतत्कर्म कुर्म इति भावः † कैसे है स्वर्ग कि नहीं है दुःख जहां तथा उक्तं ॥ २२ ॥

आत्वा ॥ आत्वा जिघर्षि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं मुव नानि विष्वा ॥ पृथुन्तिरश्वा वयसा वृहन्तं व्यचिष्टमन्नैर भसन्दृशानम् ॥ २३ ॥

+ अथोत्पत्तिरिति भावे तेभ्योर्वा

का० १६० २० २१० आज्य को संस्कार करि पिएड के समीप में वैदिमुत्पि एडो परिस्थित अश्वपद मुद्रा में आत्वा २३ आविश्चतः २४ इन व्य तिषक्त करत्वा ओं से सुवा करि द्वे आहुति होमें व्यतिषङ्गश्चैवम् आत्वा जिघर्षि इस पहिली के पूर्वार्ध मर्य श्री इस उत्तरा के उत्तरार्ध को पदि पहिली आहुति और आविश्चतः इस उत्तरा के पूर्वार्ध पृथुंतिरश्वा पहिली के उत्तरार्ध को पदि कर दूसरी आहुति ॥ एतस्म दृष्टे आग्नेय्यो द्वे त्रिष्टुभौ हे अग्ने अद्वायुक्त चित्त से घृत करि तुम्हें सब ओड़ी से सींचता वादीपन करता हूं कैसे तुम्हें कि सब भूतों प्रति एक निवास करने वाले तिरश्वा पृथुतिरश्वा रेंचने ज्योति करि विस्तीर्ण वयसा वृहन्तं धूम करि महान्त † यद्वातिर्यक् प्रमाण करिके विसृत इति बहु देश व्याप्तिः वय उपलक्षित काल करि वृ हन्त इति बहु काल व्याप्तिः अर्थात् देश कालानवच्छिन्न के तथा व्य चिष्टं अति शयेन अवकाशवान को अन्नैरभसं घृतादि अन्नों से उत्साह सहित को अनेक अन्नों के हुतने से इसकी शक्तिय

† इतीवाऽऽपमूर्ध्वरेतः सिञ्चति धूमर्दं समुत्रावृष्टिर्भवतीति श्रुतेः

नहीं होती इति भावः । तथा दर्शनीय वा दृश्यमान, अन्यदेवता नहीं दीरवते यह दीरवता है इति भावः ॥ २३ ॥

आविश्वतः ॥ प्रत्यञ्च जिघर्म्य रक्षसा मनसा तज्जुवेत ॥

मर्यश्री स्पृहयद्दणोऽग्निर्नाभिमृशेत्तन्वाजर्भुराणः ॥ २४ ॥

हम अग्नि को सब ओड़ी से सींचते और दीपन करते हैं कैसे को कि सर्वतः आत्मतया प्रतीयमान । वोह अग्नि कौर्यरहित अक्रुध्यमान वित्त से तिस घृत को सेवन करे । कैसे है अग्नि मनुष्यों से सेवित मनुष्यों करि आश्रयणीय । यजमानों करि स्पृहणीय रूप जिस्का दाहक होने से अभिमर्शन न करने योग्य । ईदृशी तन्वा ज्वाला लक्षण शरीर करि जृम्भत । ईदृश अग्नि को सब ओड़ी से सींचते हैं इतियोज्यम् ॥ २४ ॥

परिवाजपतिः ॥ कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ॥ दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २५ ॥

का. ० १६. २. २२. अभ्रि से तीनि वार मृत्पिण्ड को परिलेखन करै प रया बहिः - बहिः यथा तथा । परिवाजपति इस से प्रथम लिखे पशि त्वेति तिस से बाहर दूसरे त्वमग्नः इति तिस से बाहर तीसरे ॥ आग्ने यी गायत्री सोमक दृष्टा । यह अग्नि अनेक देवताओं के हवियों का भक्षण करता हुआ । कीदृशोऽग्निः कि अन्न का पति पासन करने वाला कान्त दर्शी हवि देने वाले यजमान के अर्थ रमणीय धनों का दान करके हवियों का भक्षण करता हुआ ॥ २५ ॥

पस्त्वाभनिपुरम्बुयम्बिर्धिसहस्यधीमहि ॥ धृषद्वर्णमि

वे-दिवेहन्तारम्भङ्गुरावताम् ॥ २६ ॥

आग्नेय्यनुष्टुप् पायुदृष्टा। हे सहस्रवलेन मथ्यमान। हे अग्ने हम तु  
मै सर्वतः ध्यान करते प्रसारते। हैं। कैसे तुम्हें कि पुरी रूप से स्थित।  
यद्वा पालन करने वाला। तथा मेधावी वा ब्राह्मण जाति। प्रगल्भ वर्ण  
असह्य रूप। दिवे-दिवे- प्रतिदिन भङ्गुरावताम् हन्तार भङ्गुरं-भ  
ञ्जनीय पापवन्त विघातक राक्षसादि कों यद्वा अनवस्थित चित्त व  
त्ति जिन्हों की तिन्हों के विनाश करने वाले को ॥ २६ ॥

त्वमग्ने। त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वम  
श्मनस्परि ॥ त्वमग्ने भ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वनृणां नृप  
ते जायसे शुचिः ॥ २७ ॥

आग्नेयी जगती- गृत्समदृष्टा। हे नृपते (नरों- मनुष्यों के पालक) हे  
अग्ने तू द्युभिर्जायसे निमित्तभूत दिनो से मथ्यमान उत्पन्न होता अ  
र्थात् प्रतिदिन मंथा जाता है यद्वा स्वर्ग की निमित्तभूत तिन-तिन  
याग शालाओं में जायसे। तू आर्द्रभूमि को शीघ्र ही सुखाने वाला  
यद्वा क्षिप्र दीप्ति करि कै तम का नाश करता वासनोति सम्भजते आ  
शुशुक्षणिः। तू वर्षधाराओं से विद्युदात्मनी जायते तू पाषाण के ऊ  
पर दूसरे पाषाण के संघट्टन से जायसे तू अरणि काष्ठों से जायसे  
तू देवशों के घर्षण से नृणां (मनुष्यों- अग्नि होत्रियों के घरों में उ  
त्पन्न होता- पुत्रोद्घोष सन्तस पुनः पिता भवतीति श्रुतेः। कैसा है तू  
कि शुचिः शुद्धि का हेतु- पुनः वाकेन मृन्मयमिति मनु० अध्या०  
५० श्लो० ११२० ॥ २७ ॥

+ आग्नेय्यः समुत्पन्नः एषां नृपते सविभुक्तम्  
# आग्नेय्यः दिव्यगणैरक्षकत्वात्



अ०३ देवस्यत्वा॥ सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् ॥ पृथिव्याः सुधस्यादग्निस्पृगीष्यमद्भिरस्वत्वनामि॥ ज्योतिष्मन्तन्वाग्ने सुप्रतीकमजस्त्रेणभानुनादीद्यतम् ॥ शिवम्पुजाभ्योहिं सन्तस्पृथिव्याः सुधस्यादग्निस्पृगीष्यमद्भिरस्वत्वनामः॥२८॥†

का०१६०२२२० अभि करिके कण्डिका से पिण्ड को खनें॥ देवस्यत्वा प्रा०ब० व्याख्याता ११० पृथिव्याः आग्नेयं यजुः महीधरमते अत्यष्टि॥ में पृथिवी के उपरि प्रदेश से पुरीष्य पशव्य अग्नि को अद्भिरसद्भव खनन करता हूं कैसे अग्नि कि ज्वाला युक्त को। हे अग्ने ऐसे तुम्हें पृथिवी के सह स्थान से अद्भिरसद्भव हम खनन करते हैं। कैसे को कि सुमुख को। अजस्त्रेण अनुपक्षीण निरन्तर वर्तमान रश्मि करि दीप्यमान को। अजोपकारार्थ शान्त अत एव हिंसा न करने वाले को पुनरुक्तिरादरार्थ॥२८॥

अपामृष्टम् ॥ अपामृष्टमसियो निरुग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ॥ वर्द्धमानो महा रं॥५ आचपुष्करे दिवो मात्रयावरिणा प्रयस्व ॥२९॥

का०१६०२२४० मृत्पिण्डके उत्तरभागविषे कृष्णा जिनको प्राणग्रीव उत्तर लोम विछाकर तहां अपां पृष्टमिति पादत्रयात्मक मंत्र से कमलिनी पात्र को विछावें॥ पुष्करपर्णदेवत्या स्वरादपङ्क्तिः॥ हे पुष्करपर्ण जलों के ऊपर अवस्थान से पृष्ट है अग्न्यर्थ पिण्डका योनिः कारण है समुद्रमभितः उदक का परितः प्रीति करने वाला यद्वा सींचनेवा

+ लिङ्गव्यत्ययः

ले समुद्र की बद्ध मान होते महत्प्रभूत हो इति शेषः। और जल में स  
व ओड़ी से बहरि यद्वा पुष्करविषे समन्ताम् महत्प्रभूत होते तू वृ  
द्धियुक्त है ॥ का० १६०२०२४० दिवोमात्रया इस पाद से पुष्करपर्ण को वि  
पुल करै ॥ हे पुष्करपर्ण दु लोक के परिमाण उरुत्व से तू विस्तृत हो ॥ ३० ॥

शर्मच ॥ शर्मचस्थो वर्मचस्थो छिद्रे बहुलेऽउभे ॥ व्यचस्व  
ती सम्बसाथाम्भृतमग्निम्युरीष्यम् ॥ ३० ॥

का० १६०२०२५० दो ऋचाओं से कृष्णाजिन पुष्करपर्ण का साथ ही स्पर्श  
करै ॥ कृष्णाजिन पुष्करपर्ण देवत्ये द्वे अनुष्टुभौ। हे कृष्णाजिन पुष्क  
रपर्णे उभे दोनों तुम अग्निके सुख कारिणी अपि हौ कवचवद्रशि  
के अपि हौ चो समुच्चये। कैसे हौ तुम कि छिद्र रहिते सकले विस्ती  
र्ण अवकाश वती। तथाविधे तुम पुरीष्य (पशव्य अग्नि) को आछा  
दन करै और आछादन करिके अग्नि को धारण करै ॥ ३० ॥

सम्बसाथाम् ॥ सम्बसाथाथं स्वर्विदा समीचीऽउरसात्म  
ना ॥ अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥ ३१ ॥

हे कृष्णाजिन पुष्करपर्णे निरन्तर मेव अग्निको भीतर में धारण  
करने वाले तुम उरु रूप अपने शरीर से अग्निको भले प्रकार आ  
छादन करै कैसे हौ तुम कि स्वर्वित् ज्ञाते स्वर्विदो यज्ञ सूर्य देवाह वा  
ची स्वः शब्दः स्वर्गलाभ साधने इत्यर्थः समीची एकचित् ॥ ३१ ॥

पुरीष्योसि ॥ विश्वभेराऽअथर्वीत्वा प्रथमो निरमन्यदग्ने ॥  
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वी निरमन्यत ॥ मूर्ध्नी विश्वस्य वा  
घतः ॥ ३२ ॥ पु-ग्ने। अणत्वा-तः। इ० ॥ ३२ ॥

का० १६.२.२६. पिण्ड को स्पर्शकरै ॥ आर्षीउ० + अग्निदेवत्या । हे अग्ने तू पशव्य है सब जगत को धारण करता वा पुष्ट करता है अग्ने हम लोगों से पूर्वभावी अथर्वारव्य ऋषिः वा प्राण तुमै निःशेषेण मथता हुआ ॥ का० १६.२.२७.३.१. दक्षिण से अभि को रवि के दोनों हाथों से सब पिण्ड को त्वामग्न इति षट् ऋचा ओं करि एक बार लेके पुष्करपर्ण विषे स्थापन करै ॥ अग्निदेवत्या स्ति स्रोगाय त्र्यो भरद्वाज दृष्टा । हे अग्ने अथर्वो (प्राण) पुष्करात् उदक के सकाश से तुमै निःशेषेण मथता हुआ । वाधतः इति ऋत्विङ्नाम सुनिघ० ३.१०. पठितम् सब जगत का संबंधि ऋत्विज तुमै अरणी के शिर से निःशेष करि मथते हुए यिद्वा विश्वस्येति षष्ठ्येकवचनं प्रथम बहुवचनार्थे सब ऋत्विज ॥ यद्वा ऋचोऽयमर्थः । हे अग्ने अथर्वारव्य ऋषिपञ्चपत्र के ऊपर तुमै निःशेषेण मथता हुआ कैसे पुष्कर से कि मूर्धः उत्तमाङ्गवत् प्रशस्त से सब जग के वाहक से पुष्करपर्ण अग्नि निर्मन्थन यज्ञनिष्पादन द्वारेण सब जगत को निर्वह करता है ॥ ३२ ॥

तमुत्वा ॥ दध्यङ्गुषिः पुत्र ईधे अथर्वणः ॥ वृत्रहण म्पुरन्दरम् ॥ ३३ ॥

हे अग्ने अथर्वण ऋषिका पुत्र दध्यङ्गनामक तै से तुमै प्रज्वलित करता हुआ कैसे तुमै कि वृत्र (पापी) को मारने वाले पुरन्दर, रुद्र रूपेण असुर संबंधि तीनों पुरों के विदारण करने वाले को ॥ ३३ ॥

तमुत्वा ॥ पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्त मम् ॥ धन जय ठर गौरणे ॥ ३४ ॥

+ महीध. मंत  
अतिहास्यरी

ए  
अथर्वण  
पुष्कर  
प्राण  
३२

+ व्यत्ययः

+ तिङ्प्रत्ययः

ले समुद्र को वर्द्धमान होते महत्प्रभूत हो इति शेषः । और जल में सब ओड़ी से ढहरि यद्वा पुष्करविषे समन्ताम् महत्प्रभूत होते तू वृद्धियुक्त है ॥ का० १६२२४ दिवोमात्रया इस पाद से पुष्करपर्ण को विपुल करै ॥ हे पुष्करपर्ण दुलोक के परिमाण उरुत्व से तू विस्तृत हो ॥ ३० ॥

शर्मच ॥ शर्मचस्थो वर्मचस्थो छिद्रे बहुले उभे ॥ व्यचस्वती सम्बसाथाम्भृतमग्निम्युरीष्यम् ॥ ३० ॥

का० १६२२५ दो ऋचाओं से कृष्णाजिन पुष्करपर्ण का साथ ही स्पर्श करै ॥ कृष्णाजिन पुष्करपर्ण देवत्ये द्वे अनुष्टुभौ । हे कृष्णाजिन पुष्करपर्ण उभे दोनों तुम अग्निके सुख कारिणी अपि हौ कवचवद्रक्षि के अपि हौ चो समुच्चये । कैसे हौ तुम कि छिद्र रहिते सकले विस्तीर्ण अवकाशवती । तथाविधे तुम पुरीष्य (पशव्य-अग्नि) को आच्छादन करै और आच्छादन करिके अग्नि को धारण करै ॥ ३० ॥

सम्बसाथाम् ॥ सम्बसाथाथं स्वर्विदा समीची उरसात्मना ॥ अग्निमन्तर्भेरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्तमित् ॥ ३१ ॥

हे कृष्णाजिन पुष्करपर्णे निरन्तरमेव अग्नि को भीतर में धारण करने वाले तुम उरु रूप अपने शरीर से अग्नि को भले प्रकार आच्छादन करै कैसे हौ तुम कि स्वर्वित् ज्ञाते स्वर्विदो यज्ञ सूर्य देवाह वाची स्वः शब्दः स्वर्गलाभ साधने इत्यर्थः समीची एकचित्त ॥ ३१ ॥

पुरीष्योसि ॥ विश्वमेराऽपथर्वीत्वा प्रथमो निरमन्यदग्ने ॥ त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वी निरमन्यत ॥ मूर्ध्नी विश्वस्य वा घतः ॥ ३२ ॥ पु-ग्ने । अ० त्वा-तः । इ० ॥ ३२ ॥



पाध्यः सन्मार्गं वर्तते यद्वा अन्तरिक्षहृदयाकाशमंडलं च । सींचनेवा  
लामन हे अग्ने तुमै संदीपन करता है + कैसे तुमै कि अतिशयेन  
शत्रुओं के हन्ता रणे रणेति न-तिन संग्रामों में धन के जीतने वाले को ॥ ३४ ॥  
सीदं होतः ॥ सीदं होतः स्वः जलो के चिकित्वा न्त्सा दया यज्ञ  
ई सुकृतस्य यो नो ॥ देवा वीर्ह्वान् हविषा यजा स्यग्ने बृहदा  
जमाने वयोधाः ॥ ३५ ॥

→ अग्नेयी त्रिष्टुप् देव अत्र वो देव वाताभ्यां दृष्ट्वा । हे देवताओं के आह्वाता  
हे अग्ने स्वो कीय एवरथान हृणाजिन विषे नू वैठि कैसा है तू कि अप  
पने अधिकार को जानता किंच सुकृत (कर्म) को यज्ञ के स्थान हृ  
णाजिन विषे यज्ञ को स्थापन करि ॥ हे अग्ने यतः देवताओं के प्री  
ति करने वाले तू हवि करि पूजता है अतः यजमान विषे बृहत् आ  
यु वा अन्न स्थापन करि ॥ ३५ ॥

निहोत॥ होतृषदने विदानस्त्वेषोदी दिवा ३॥ ॥ असदत्सुद  
क्षः ॥ ॥ अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो  
॥ अग्निः ॥ ३६ ॥

अग्नेयी त्रिष्टुप् गृत्समददृष्टा। अग्नि होमनिष्ठादक योग्यस्थान-  
उत्तर वेदिरूपविषे मले प्रकार वैठताहुआ। कैसा है अग्नि कि देव  
ताओं का बुलाने वाला। अपने अधिकार की जानता। दीप्तिवान्। हो  
तृधिष्ण्यादिक में गमनवान्। साधु कुशल क्षिप्रकारी। अनुपहत  
व्रत (कर्म) जिस्का प्रकृष्टा बुद्धि जिस्की वोह। वस्तुतमः अपने स्थान  
में अत्यन्त वास करने वाला। सब जनों को पुष्ट करता। शुचि जिह्वः-

† यज्ञक्रियमाणोऽदधातयेषाणसोमनिधानादीनि कृष्णानि न श्वभवन्तीति कृष्णजिनं  
सुकृतस्य योनिः कृष्णजिनमुक्तस्य योनिरिति श्रुतेः शात० ६०४२६.



शुद्ध होम योग्या जिह्वा (ज्वाला) जिस्की वोह नाना देवताओं की हवि-  
यों का अभ्यवहार करते भी उच्छिष्ट नहीं करता इति भावः ॥३६॥

सठिं सी दस्व महा रे ॥ १ ॥ ॐ सि शोच स्वदेव वीतमः ॥ विधु म  
मग्नेः अरुष म्मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शितम् ॥३७॥

आग्नेयी ब्रह्मती प्रस्काव हृष्टा । हे मियेध्य (मेध्य-यज्ञार्ह) हे प्रशस्त-  
॥ उत्कृष्ट ॥ हे अग्ने तू पुष्करणी विषे भले प्रकार बैठि । जो कि तू अने  
क क्रतुओं का हेतु होने से महान् है सो तू दीप्त हो । कैसा है तू कि अति  
शयेन देवताओं का तर्पण करने वाला । किंच दर्शनीय अरोचन धूमको  
छोडि । इतीवा अय मूर्ध्वर्ध + रेतः सि च्छति धूमर्धं सामुत्र दृष्टिर्भ-  
वतीति श्रुतिः ॥३७॥

अपो देवीः ॥ अपो देवी रूपं सृज मधुमती रयस्माय प्रजा  
भ्यः ॥ तासां मास्थाना दुज्जिहता मोषधयः सुपिप्यलाः ॥३८॥

का० १६.३.२ मुत्पिण्ड गर्त विषे जल को सींचे ॥ अन्देवत्यान्यदुःसारि  
णी जरे ब्रह्मती स्कन्धोग्रीवीवा ब्रह्मती सिंधु द्वीप दृष्टा ॥ पूर्वोर्चोऽग्ने इति  
संबोधन मध्याह्नियते यै र्ध्वर्युर्वा संस्वोध्यते हे अग्ने यद्वा हे द्यौः  
वा हे अध्वर्यो देवनशीला जल इस खनन प्रदेश में सव ओड़ी से सींचे  
। कैसी है जल कि मधुमती (रसवती-आरोग्यदात्री) किस लिये कि प्र  
जा की आरोग्यता के अर्थ । तिससींची हुई जल के स्थान सुक्षेत्र रूप  
हमारे खनन प्रदेश से ओषधीएँ समन्तात् ऊर्गे कैसी हैं ओषधीएँ  
कि सुपिप्यलाः शोभन हैं पिप्यल-फल जिन्हों के ॥३८॥

सन्ने ॥ वायु र्मातरि दधात्तानाया हृदयं यद्विकलं

यो देवानां चरसि प्राणयेन कस्मै देववषट्सुतुभ्यम् ॥३६॥

का० १६०३३ पिण्डगर्त में वायु को अरे ॥ त्रिष्टुप् अर्धं पृथिवी देवत्य  
मर्धं वायु देवत्यम् । हे पृथिवी ऊर्ध्वाभि सुख करि अवस्थित तेरा हृ  
दय सहश रवनन स्थान पिण्डाव रूप से विकसित है । तिस स्थानकों  
पूर्वोक्त जल प्रक्षेप और तृणादि पूरण से जैसे पहिले वायु तेसे स  
म्यक् करे । कैसा है वायु कि मातरिश्वा सब प्राणियों की अवछेदक  
रने वाली अन्तरिक्ष विषे चलनेवाला । एवं पृथिवी को कहि वायुसे  
कहता है हे देव द्योतनादि गुणयुक्त वायो जोतू अग्न्यादिक  
देवताओं के विषे प्राणभाव करि चलता है कस्मै प्रजापतिरूप तेरे  
अर्थ यह पृथिवी बषट् कृता हो ॥३६॥

सुजातो ज्योतिषा ॥ सह शर्म वरूय मासदत्स्व ॥ वासोऽग्ने  
विश्व रूपं संव्ययस्व विभावसो ॥४०॥

का० १६०३५ विछाए हुए कृष्णाजिन पुष्करपर्ण के प्रान्तों को ऊंचे  
करे ॥ अग्नि देवत्या तुष्टुप् । भले प्रकार उत्पन्न यह अग्नि अपने  
तेज के साथ सुख जैसे हो तेसे स्वर्ग सहश वरणीय कृष्णाजिननि  
र्मित घर को प्राप्त हो ॥ का० १६०३६ वासोऽग्ने इत्स उत्तरार्धसे ऊं  
चे किये कृष्णाजिन पुष्करपर्ण के सिरेओं को मुञ्ज योत्र करि बांधे ॥  
हे विभावसो दीप्ति धनवाले हे अग्ने बहु प्रकार रूप विचित्र वस्त्र  
कृष्णाजिन रूप को भले प्रकार धारण करि ॥४०॥

उदुतिष्ठ ॥ स्वध्वरावानो देव्याधिया ॥ दृशे च भासा बृहता  
सुशुक्निराग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥४१॥

का० १६.३.७. तिसपिण्ड को लेकर उठे ॥ अग्नि देवत्या पथ्या वृहती विश्वमनो दृष्टा । हे शोभन यागनिर्वाहक हे अग्ने उठि और उठिकर देवनस्वभावक्रीडा परायण बुद्धिसे हमें पालन करि । किंच हे अग्ने शोभन कीर्ति सहित यद्वा साधु अश्व करि आ । क्या करने को कि ओठ तेज से सब प्राणियों के देखने को कैसा है तू कि रश्मिओं का प्रसारक । आ अग्ने याहीति पद छेदः ॥४१॥

ऊर्ध्वः ऊषुणः ॥ ऊर्ध्वः ऊषुणः ऊतयेतिष्ठा देवो न स वि  
ता ॥ ऊर्ध्वो वाजस्यसनि ता यदज्जिभिर्वाघद्विर्विह्वया-  
महे ॥४२॥

का० १६.३.८. ऊंचीवाहुओं प्राञ्चपिण्ड को लेवै ॥ अग्नि देवत्योपरिष्ठा वृहती कण्वदृष्टा । हे अग्ने हमारी रक्षा के अर्थ ऊर्ध्व एव (सुतर) अवस्थित हो । कैसे कि जैसे सविता देवता ऊर्ध्व हो हमें रक्षा करता है तद्वत् तू ऊंचा होकर अन्न का दाता हो इति शेषः दानविषेजिस कारण सैप्रज्जिभिर्वाघद्विः, हव्यवाहक ऋत्विजों सहित तुम्हें विविधि आह्वान करते हैं तिस कारण ऊर्ध्व एव तिष्ठ, यद्वा अज्जिभिः हव्यों की व्यञ्जक रश्मियों सहित तुम्हें बुलाते हैं कैसी अज्जियों करि कि हवि वोढार ॥४२॥

सजातः ॥ सजातो गर्भोऽसिरो दस्यो रग्ने चारुर्विभृतः  
शोषधीषु ॥ चित्रः शिशुः परितमोऽस्य कून्म मातृम्यो  
ऽपधिकनि क्रदज्ञाः ॥४३॥

का० १६.३.९. पिण्ड को नीचे उतारि नाभिके ऊपर हाथों से ररिव

अश्व. गर्दभ. अज. को सजातः ४२. ४३. ४४. इन तीनों मंत्रों से क्रम पूर्वक एक-एक को देखि एक-एक मंत्र को जपे ॥ अश्व देवत्या त्रिष्टु पृथित दृष्टा । अश्व मग्नीकृत्य सौति, हे अग्ने सोतू द्यावा पृथिवीके गर्भ में हो यहां उत्पन्न हुआ है। कैसा है तू शोभन पूज्य देने योग्या पुरोडाशादि लक्षणा ओषधी ओं में विहत। नाना वर्णा ज्वाला ओं में विचित्र रूप। ऐसे उत्पन्न होने के कारण शिशुवा शंसनीय। रात्र्यु पलक्षित तमों को नाश करता माता ओं (ओषधि बनस्पति ओं) के सकाश से अत्यन्त शब्द करता प्रकर्षे से ॥ ४३ ॥

स्थिरो भव ॥ वीडुः ॥ अश्विर्भव वाज्युर्वन् ॥ पृथुर्भव सुखदस्त्व मग्नेः पुरीष वाहेणः ॥ ४४ ॥

रासभ देवत्या त्रिष्टु बुष्णिग्वा। हे अर्बन् गमन कुशल चलन रहित होते तू घट काय हो। वेगवान् होकर अन्न का हेतु हो। विस्तीर्ण हो ते अग्निका सुखासन (स्वास्थेय) हो। कैसा है तू कि पुरीष वाहेण मृदा का वहाने वाला वा पशव्य यवस का वहाने वाला ॥ ४४ ॥

शिवो भव ॥ प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः ॥ माद्यावा पृथिवीः अभिशोची म्मीन्तरिक्षमावनस्पतिम् ॥ ४५ ॥ +

अज देवत्या पथ्या बृहती। अङ्गिरा ऋषियों से पूर्व सम्पादित होने वा अङ्गसौष्टवात् अङ्गिरा अग्नि तिस का संबोधन हे अङ्गिराः अग्नि रूप अज + मनु की संबंधी प्रजा के अर्थ तू शान्त हो। किंच द्यावा पृथिवी को मत संताप करित तथा अन्तरिक्ष को मत संताप तथा बनस्पतियों को मत संताप ॥ ४५ ॥

प्रेतु ॥ वाजीकनि ऋदन्तान दद्रासभः पत्वा ॥ भरन्निष्पु  
रीष्य म्मा पाद्यायुषः पुरा ॥ वृषाग्निमृषणम्भरन्पाद्  
र्भेऽसमुद्रियम् ॥ अग्नः आयाहि वीतये ॥ ४६ ॥ †

का० १६.३.१०. अश्वदिकों के ऊपर मृत्पिण्ड को रखेति-हों  
को अस्पर्श करते प्रेतु वाजी इस से अश्व के ऊपर वृषाग्नि इस  
से खर के ऊपर इति सूत्रार्थः ॥ महा पङ्क्तिः स्रवसाना आद्या-  
वर्ध चोवश्व देवत्यौ तृतीयो ऽर्धर्चो रासभ देवत्यः ॥ अश्वः प्र  
कर्षेण चलैक्य करिकै कि अत्यन्त ही सन करि और रासभ भी यवसवा  
हन के अर्थ प्रकर्ष करि चलैक्य करिकै कि नान दत् सोपहास मुच्यते  
गर्दभ रदितेन सब दिशों को नादित करि कैसा है रासभ कि पतनशील †  
किंच यह अश्व पशव्य अग्नि को धारण करता कर्म के पूर्व मतनाश को  
प्राप्त हो अर्थात् कर्म समाप्ति पर्यन्त जी औ † ॥ अथ रासभ मन्त्रः ॥ सी  
चने वाला रासभ अग्नि को धारण करते प्रकर्षेण गच्छतु इति शेषः  
कैसे अग्नि को कि सींचने वाले फलाभि वर्षण समर्थ को आहुति प  
रिणामेनेति भावः ॥ अणं गर्भम् जल मध्येव स्थित वा मेघ स्थ ज  
लों के मध्य में विद्युद्रूप को ॥ समुद्रियम् समुद्र विषे वडवाग्नि रूप से  
उत्पन्न यद्वा समुद्रे अग्नि चयन में उत्पन्न तिसको ॥ त्रयोहवै समुद्रा  
अग्निर्यजुषां महाव्रतर्हं साम्नां मह दुक्थ मृचामिति ॥ का० १६.३.११  
अग्ने इस मन्त्र करि रासभ से पिण्ड को लेकर ऋतर्हं सत्यं इस मन्त्र  
करि अज के ऊपर पिण्ड को रखे परि वृते निधान पर्यन्त मिति सूत्रा  
र्थः ॥ एक पदा गायत्री अग्नि देवत्या ॥ हे अग्ने हविभक्षण के अर्थ-

प्रेतु वाजीकनि ऋदन्तान दद्रासभः पत्वा ॥ भरन्निष्पु  
रीष्य म्मा पाद्यायुषः पुरा ॥ वृषाग्निमृषणम्भरन्पाद्  
र्भेऽसमुद्रियम् ॥ अग्नः आयाहि वीतये ॥ ४६ ॥ †

† आहुः शब्देन  
श्रुत्युक्तं मातृस  
यत्तमम्बुन्ध-  
नैवाश्वादीनां  
श्रुतिः क्रियते

आगमनकरि ॥४६॥

ऋत॑र्हस॒त्यम् ॥ ऋत॑र्हस॒त्यम् त॑र्हस॒त्यम् म॒ग्नि॒स्यु॒री॒ष्य॒म॒ङ्गि॒  
र॒स्व॒ङ्ग॒रामः ॥ ऊ॒ष॒ध॒यः प्र॒ति॒मो॒द॒ध्व॒म॒ग्नि॒मे॒त॑र्ह॒शिव॒मा॒  
य॒न्त॑ म॒भ्य॒त्र॒यु॒ष्माः ॥ व्य॒स्य॒न्वि॒श्वः॑ अ॒ग्नि॒राः॑ अ॒मी॒वा॒नि  
वी॒दे॒न्त्रोऽ॒प्य॒दु॒र्म॒तिं॑ ज॒हि ॥४७॥ †

अग्निदेवत्या प्रा-गा ऋत सत्य शब्दों से आदित्य अग्नि विवक्षित है  
ऋत-आदित्य-सत्य-अग्नि-तादृश उभयरूप अग्निको आहरण  
करता हूँ इति शेषः । ऋतर्हसत्यमिति द्विवचनमादरार्थम् ॥ का० १६  
३० १३० देवपितृकार्यविमुख अनद्धा पुरुषतिसे अर्ध्वर्धुदेवे पूर्ववत् ज  
लती हूँ आहवनीय अग्नि के पास में स्थित ॥ आग्नेयी सा-गा प  
शव्य अग्नि को अङ्गिरस-इव हरण करते हैं । का० १६ ३० १४० उ  
रवा सम्भरणार्थ उद्धृत आहवनीय के उत्तर में पूर्वमेव किये परिवृत्त  
आच्छादित प्रदेश विषे ओषधयः इन मन्त्रों से पिण्ड को स्थापन क  
रौ कैसे परिवृत्त में कि उद्धृत कृतो ल्लेखन अवीक्षित पूर्व द्वार सि  
कता करि व्याप्त में इति ॥ त्रिष्टुब नुष्टुभावोषधिदेवत्ये व्यस्यन्ति त्यर्ध्वो  
अग्निदेवतः ॥ हे ओषधयः तुम इस अग्नि को अभ्युत्थानादि  
से प्रति हर्षित करौ । कैसे अग्नि को कि शान्त । इस प्रदेश में स्थिता  
तुम को अभिसुखी करि आते हुए को । एव मर्धर्ध्वो नोषधीरुत्का  
थाग्निमाह । हे अग्ने तू यहां निविशिमान हूँ आसवहमारी दुर्म  
ति दुर्वृद्धि नास्ति दत्तं नास्ति हतं को दूर करि अति वृष्ट्यादिकों ओ  
र व्याधियों को निकाल करि ॥४७॥



ओषधयः प्रति ॥ गृम्हाणीतपुष्पवतीः सुपिप्यलाः ॥ अय

म्वो गर्भः ऋत्विजः प्रत्नर्हं सधस्यमासदत् ॥ ४८ ॥

हे ओषधी ओ इस अग्नि को स्वीकार करे । तुमकैसीहोकि पुष्प  
वती प्रशस्त पुष्पमेताः शोभन फल वाली । किंच प्राप्त काल तुम्हारा  
गर्भ होके यह अग्नि पुरातन गर्भ योग्य स्थान को प्राप्त हुआ है ॥ ४८ ॥

विपाजसापृथुनाशोशुभ्रानो वाधस्वद्विषोरक्षसोऽपमीवा ॥

सुशर्म्मणो बृहत् शर्म्मणि स्यामग्नेरुहं सुहवस्य प्रणीतो ॥ ४९ ॥

का० १६. ३. १५. विपाजसा इस मन्त्रसे कृष्णाजिन वद्ध पिण्ड को रवे  
लि कर छाग के रोमले अश्वदिक पशुओं को ईशान दिशा प्रति छोड़े ॥  
अग्नि देवत्या त्रिष्टुबुत्कीलः कात्य दृष्टा । हे अग्ने शत्रुओं रक्षसों  
ओर व्याधिओं को नू विशेष करि निवर्तकरि कैसा है तू कि विस्तीर्ण  
बल करि अत्यन्त दीप्यमान । एव प्रत्यक्षमुक्ता परोक्षमाह अग्नि  
की अभ्यनुज्ञा (परिचर्या) में वर्तमान हम शरण वा सुख को प्राप्त हों ।  
कैसी अग्नि के कि शाधु शरण वा शोभन सुख वाले । ओह । सुखेन  
आह्वान करने समर्थ के ॥ ४९ ॥

अ० ५ आपोहि ॥ शर्मयो भुवस्तानः ऊर्जं दधातन ॥ महेरणा  
यचक्षसे ॥ ५० ॥

का० १६. ३. ३६. पलाशत्वक् कथित जल को पिण्ड पे तीन ऋचा-  
ओं से डाले ॥ अन्देव तास्ति स्रो गायत्र्यः सिन्धु द्वीप दृष्टा ॥ हिशब्द  
एवार्थः प्रसिद्धर्थो यस्मादर्थो वा । हे जल तुमही सुख की भावयित्री  
प्राप्त करने वाली हो । जिस कारण से सुख की भावयित्री हो वास्त्रा

अपानादि का हेतु होनेसे जलका सुखोत्पादकत्व प्रसिद्ध है। तैसी तुम हमें भव दीय रसानु भावार्थ स्थापन करो जैसे हम सब भोग्यर सों के भोक्ता होंगे तैसे हमें करो इति भावः। किंच बडे रमणीय दर्शन के अर्थ स्थापन करो महद् रमणीय दर्शन ब्रह्म साक्षात्कार लक्षण वोह हमारा करो हमें ब्रह्म साक्षात्कार योग्य करो इति भावः। यस्मिन् ज्ञाते सर्वं विज्ञातं स्यादिति छान्दोग्यश्रुते ॥ ५० ॥

योवः ॥ शिव तमो रसस्तस्य भाजयते हनः ॥ उ० शतीरिव मातरः ॥ ५१ ॥

हे जल तुम्हारा जो शान्त तम सुख का हेतु रस है इस कर्म वा इस लो क में स्थित हमें तिस रस के भागी करो तिस रस को प्राप्त करो इति भा वः। तत्र दृष्टान्तः प्रीति युक्ता माता जैसे अपने स्तन का रस बालक को पि लाती है तद्वत् ॥ ५१ ॥

तस्मात्परम् ॥ गमा मवो यस्य क्षया यजिन्वथ ॥ आपो जनयथाचनः ॥ ५२ ॥

हे जल तुम संबंधि पर्याप्ति रस विशयक वैतृप्ति वा सदातृप्ति तैसे हम चलते हैं। निवास, जगत के आधार भूत जिस आहुति परिणा म भूत रस के एक देश करि तुम ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त जगत्को जि न्वथ तर्पण करते हो जिन्वतिः प्रीति कर्मा पचाहुति क्रमेणेति भा वः। किंच हे जल हमें तत्र भोक्तृत्व करि सम्पादन करो तिस रस के भोक्ता हमें करो इत्याजान देव माशास्यते इति भावः। यद्वा स्यात्क्र चोऽयमर्थः। जिस के निवास करि तुम प्रसन्न होते हो तिस रस की

प्राप्तिके अर्थ तुम्हें अतिशय हम प्राप्त होते हैं किंच हे जल तुम हमें प्रजोत्पादन समर्थ करो ॥५२॥

मित्रः स्रष्टुं सृज्य ॥ पृथिवीम्भूमिञ्च ज्योतिषा सह ॥ सुजात  
ज्ञातवेदसमयश्मायत्वा स्रष्टुं सृजामि प्रजाम्यः ॥५३॥

का० १६०३१०० अजस्र आदित्य पहिलें ग्रहण किये लोम तिन्हों करि  
पिण्ड को मिश्रित करै ॥ मित्र देवत्यो परिष्ठाद्ब्रह्मती । मित्रः आदित्य  
देवता द्युलोक और इस मृत्पिण्ड रूपा भूमि को अज के लोमों से  
एकी करि मूर्ध्नाध्वर्यु के अर्थ देवे इति शेषः ॥ अंगरमें शोभनेत्य  
न्न तुरुजात वेद जातप्रज्ञान अजलोमाख्य अग्नि को मृत्पि  
ण्ड से एक कर्त्ता हूं किमर्थ कि प्रजा के रोग के अभाव के अर्थ ॥५३॥

रुद्राः स्रष्टुं सृज्य ॥ पृथिवीम्भूमिञ्च ज्योतिः समीधिरे ॥ तेषां  
मानुरजस्र इक्षु को देवेषु रोचते ॥५४॥

का० १६०३१०५ सूक्ष्मसिकता लोह किट्ट पाषाण चूर्ण से पिण्ड-  
को मिश्रित करै ॥ रुद्र देवत्या नुष्टुपू । जेरुद्र पार्थिव पिण्ड को सूक्ष्म  
सिकता लोह किट्ट पाषाण चूर्ण से एकी करि कै प्रोद अग्नि (उषा-  
स्थ अग्नि) को भले प्रकार दीपन (पालन) करते हूँ । तेषां फल मा  
ह तिन रुद्रों की शुद्ध दे दीप्यमान अनुपक्षीण एव देवताओं के  
मध्य में दीप्ति प्रकाश करती है ॥५४॥

स्रष्टुं सृष्ट्वा मनुष्यं भीरुर्देही रैः कर्मण्यमृदम् ॥ हस्तो म्याम्मु  
द्विड्वा सिनी वाली कृणोतुताम् ॥५५॥

का० १६०३२०० तीनि ऋचाओं से मृत् पिण्ड को भले प्रकार दुला

वै॥ हे सिनी वाली देवत्ये तृतीयादिति देवत्या तिस्रो नुष्टुभः॥ सिनी वाली चन्द्र कला युक्ता मावास्याभि मानिनी देवता मृदाको हाथों से कोमल करि कै फिरि तिस मृदा को उखा कर्म योग्या करै कैसी मृदा को कि बुद्धि मानव सु और रुद्रों से सेवित वा सूक्ष्म सिकतादि करि संयोजित ॥५५॥

सिनी वाली सुकपर्दी ॥ सुकुरीरा स्त्रोपशा ॥ सानुभ्यमदिते मद्योषान्दधातुहस्तयोः ॥५६॥

हे अपदिते (अदीना देवमातः) हे महति पूर्व मन्त्रोक्ता सिनी वाली तू हाथों में उखा को स्थापन कीजियो। कैसी है सिनी वाली कि सुकपर्दी शोभन स्त्रियों के उचित केशबन्ध वाली। सुकुरीरा स्त्रियों से शृङ्गारार्थ शिर में धार्य मान शोभन कनकाभरण युक्ता सु मुकुटा। स्त्रोपशा शोभन शयन विदग्ध विलास चतुर औपशा अवयव समूह जिस के बोह ॥५६॥

उषाङ्कुणी तु ॥ उषाङ्कुणी तु शक्त्या वाहुभ्यामदिति धिया ॥ माता पुत्रं प्रयोपस्थे साग्निम्विभर्तुर्गर्भः ॥ मखस्य शिरोसि ॥ ५७ ॥ उ-२.पा। २.०। म-सि। ६० ॥ ५७ ॥

अदिति सामर्थ्य और बुद्धि हाथों से उखा को करो सो कीहुई उखा मध्य भाग में समन्तात् अग्नि को धारण करै तत्र दृष्टान्तः जैसे जननी उत्सङ्ग विषे पुत्र को धारण करती है तद्वत् ॥ का० १६.३.३३. यजमान पत्नी के तिस पिण्ड से मृदा को ले द्वादश गुलि त्रिस्थान लिखित आषाढ संज्ञक दृष्ट का करते यजमान पिण्ड से

मृदाले आपही उरवाकरै एक पशु पक्षे प्रादेशायामविस्तारोर्ध्वाच्च  
तुरस्त्रा पञ्च पशु पक्षे भिभागोन त्रयोविंशति अङ्गुल आयाम  
विस्तार ऊर्ध्वा प्रादेशेनैव इति ॥ मृत्पिण्ड देवत्यं या- गा ० हेमृ  
त्पिण्ड तूयज्ञ काशिरहे + ॥ ५७ ॥

+ अहवनीयस्य शिरसि  
द्विरङ्गोऽपि लक्षण  
पाशिरः प्राञ्चः

वसवस्त्वा ॥ कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्भुवासि  
पृथिव्यु सिधारयामयि प्रजाथं रायस्योषद्धोपत्यर्हं सुवी  
र्यर्हं सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्द  
साङ्गिरस्वद्भु वास्पन्तरिक्षमसिधारयामयि प्रजाथं रा  
यस्योषद्धोपत्यर्हं सुवीर्यर्हं सजातान्यजमानायादित्या  
स्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्भुवासिद्यौरसिधा  
रयामयि प्रजाथं रायस्योषद्धोपत्यर्हं सुवीर्यर्हं सजाता  
न्यजमानाय विश्वेत्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभे  
न छन्दसाङ्गिरस्वद्भुवासिदिशो सिधारयामयि प्रजाथं  
रायस्योषद्धोपत्यर्हं सुवीर्यर्हं सजातान्यजमानाय ॥ ५८ +

का० १६३ २६ यजमान मृदा को उरवा तल के लिये प्रादेश मात्रावै-  
डावै ॥ उखा देवत्यानि अ० ३० ऋ० यजूर्हं षि उ० ब्रा-अ० १ हे उरवे व  
सवः देव विशेषाः गायत्री छन्द करिके तुमै जैसै अङ्गिरस मुनियों ने  
किया तैसै करें यतः तू की हुई स्थिरा है और पृथिवी है अतः तुमै वा  
चि बनाता हूँ हे उरवे मुरु यजमान विषे पुत्रादि प्रजा को स्थापन  
करि और धन की पुष्टि को स्थापन करि गोपतित्व धन स्वामित्व  
को मुरु- करि शोभन वीर्य (वीर कर्म) को मुरु- करि समानोदरोत्यन्न

त्र भाइयों को मुरु-करि॥ का० १६.३.२७. चौड़े करने के अनन्तर चौड़े तल के सब प्रान्तों को ऊंचे लेकरि प्रथम पिण्डिका के अन्त से जोड़ें॥ हे उरवा रुद्राः त्रिष्टुप् छन्द करि कै तुमै करें तू अन्तरिक्ष रूपा है इति विशेषः पूर्ववत्॥ का० १६.३.२८. तिस उरवा को पतली मृदा से लीपि कर जल से चिकनाय द्वितीय पिण्डिका को पूर्व पिण्डिका के ऊपर जोड़ें॥ आदित्याः देवा जगती छन्द करि तुमै करें तू द्यौ रूपा है विशेषः शेष व्याख्या प्राची॥ का० १६.३.२९. पूर्वोक्त माना पहिले न पाने की उरवा करै॥ वैश्वानराः सवनर लाते हैं वा सवनरों को लाने वाले वा सवनरों के संबंधी वा सवनरों से हित ऐसे सब देवता हे उरवे तुमै अनुष्टुप् छन्द से करें और कीहुई तू दिगूपा है शेष तुल्यम्॥ ५८. अदित्यै रास्त्रा॥ स्पदिति ष्टे विलङ्गभ्वा तु॥ कृत्वा य सामही मुरवाम्मृन्मयी योनिं मन्मये॥ पुत्रेभ्यः प्रायं छददितिः प्रपयानिति॥ ५९॥ अ.सि.अ.०.अ.तु.इ.०.कृ.ति.उ.०॥ ५९॥

का० १६.३.३०. उरवा के ऊर्ध्व मान को तीन विभाग करि ऊपर के तीसरे भाग में सर्वत्र मृन्मयी मेखला करै और तल से मेखलान्त प्रतिदिश चतुर्वृत्ती आगे मेस्तन युक्ता करै॥ रास्त्रा देवत्यम् या-गा० हेरे खेतू अदितिरूपा उरवा की काञ्ची गुण स्थानीया (करधनी) है। का० १६.४.३. उरवा के मुख को स्पर्श करै॥ उरवा देवत्यम् या-वृ० हे उरवे अदिति देवमाता तेरे बिल (मध्य) को ग्रहण करै॥ का० १६.४.४. एवं उरवा को निष्पादन करि भूमिविषे स्थापन करै॥ अदिति देवत्या उष्णिक् सा पूर्वोक्ता अदिति उरवा को निष्पादन करि पुत्रों (देवताओं) से यह क



हि कर देती हुई यह क्या कि हे पुत्र औ इस उरवा को तुम तथा औ कैसी उरवा को कि बड़ी मृत्कार्य भूत । अग्नि की के अर्थ स्थान भूता ॥ ५६ ॥

वसवस्त्वा ॥ धूपयन्तु गायत्री छन्द साङ्गिरस्व द्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्द साङ्गिरस्व दादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागते न छन्द साङ्गिरस्व द्विष्वेत्वा देवा वैश्वा नरा धूपयन्तु त्रैष्टुभे न छन्द साङ्गिरस्व दिन्द्रस्त्वा धूपयन्तु वरुणस्त्वा धूपयन्तु विष्णुस्त्वा धूपयन्तु ॥ ६० ॥ +

का० १६.४.० दक्षिणाग्नि विषे प्रदीप्त सप्त अश्व लेण्डों से उरवा को प्रति मंत्र करि अश्वर्यु धूपन करें धूमाय मान एक-एक अश्व लेण्डों को लेकर एक-एक मंत्र से उरवा के भीतर और बाहिर में भ्रमावे ॥ सप्त यजूर्ध्व्युरवा देवत्यानि १३० आषी गा० २४० यजुषी ५०० या-उ० ६ प्रा-गा० ॥ हे उरवे आठों वसु गायत्री छन्द करि अङ्गिरस-इव तुम धूपयन्तु अश्वशक्रज्जन्य धूप से संस्कार करें । एकादश रुद्र त्रिष्टुप् छन्द करि तुम - करें । आदित्या जगती छन्द करि ० । सवनरों के हित सव देवता अनुष्टुप् ० इन्द्र तुम संस्कार करें वरुण और विष्णु शेष पूर्ववत् सुगमम् ॥ ६० ॥

अ० ६ अदितिष्ठा ॥ देवी विश्व देव्या वती पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिरस्व त्वेन त्व वट देवानां त्वा पत्नी हवीर्विश्व देव्या वतीः पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिरस्व दधतू खेधिषणा त्वा देवी विश्व देव्या वतीः पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिरस्व दभीन्धता मुखे वस्त्रीष्ठा देवी विश्व देव्या वतीः पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिर

स्वच्छपयन्तूरे ग्नास्त्वा देवी विश्वदेव्या वतीः पृथिव्याः सध  
स्थेऽअद्भिरस्वत्यचन्तूरे जनयस्त्वा छिन्नपत्रा देवी विश्व  
देव्या वतीः पृथिव्याः सधस्थेऽअद्भिरस्वत्यचन्तूरे ॥६१॥

का० १६.४.४. अषाढ. उखा. विश्वज्योतिःओं के पाकार्य अभ्रिसे  
चतुरस्त्र गर्त रवोदे ॥ आर्षी वृ० अवटदेव० हे गर्त अदिति देवी पृथि  
वी के ऊपर भाग में तुम्हें रखने जैसे अद्भिर्ने तू रवोदा तद्वत् कैसी  
है अदिति कि सब देवताओं का समूह विद्यमान है जिस में वा श्रेष्ठ  
समस्त देवता इसमें हैं ॥ का० १६.४.११. अधो मुख उखा को आषा  
ढ के उत्तरतः गर्त में स्थापन करें ॥ पञ्चयजूर्दंष्ट्रुखा देवत्यानि १.२.  
प्रा-त्रि० ३. आर्षी वृ० ४. आर्षी अ० ५. आर्षी प० ॥ समस्त देवताओं सहि  
त देवताओं की पत्नी दीप्यमाना ओषधी हैं + पृथिवी के ऊपर आ  
द्भिरसः इव हे उखे तुम्हें स्थापन करें १॥ का० १६.४.१२. उखा स्थाप  
न के अनन्तर विश्वज्योति को चुप के गर्त में रख अपण से सबों  
कोटक दक्षिणाग्नि से लाई बन्धि करि उखा को दीपन करें ॥ विश्व  
देव युक्ता वागभिमानिनी देवी हैं पृथिवी के ऊपर हे उखे अद्भिरस  
इव तुम्हें समतात् दीपन करें ॥ २॥ का० १६.४.१४. सामर्थ्य से उखा  
के ऊपर स्थित अयण में छिद्र करि कैतिस से उखा को देखता तीन  
यजुषीओं को जपें ॥ विश्वदेव युक्ता वस्तुत्री + अहोरात्राभिमानि  
नी देव हैं पृथिव्या ऊपरि अद्भिरस-इव हे उखे तुम्हें अपें, पच्यमा  
नता को सम्पादन करें ॥ ३॥ विश्वदेव युक्ता ग्ना ५ देवी हैं छन्दोभिमा  
नी देवता पृथिवी के ऊपर-पचें ॥ ४॥ जनय ६ नक्षत्राभिमानिनी देवी

देवपत्नीशब्दे  
नोषधयः तथा  
चश्रुतिः ओषध  
यो देवानां प  
र्यादिति शत०  
६.५.४.४.

\* श्रुतेर्वस्त्रि  
शब्देनाहोरा  
त्राणि शत० ६  
५.४.६. अहो  
रात्राणि वैवस्त्र  
वयोऽहोरात्रे ही  
रुदसर्ववज्रमि  
ति -

+ अ-टा. अ० दे-खे। दु० धि-खे। उ० व-खे। वृ० ग्ना-खे। ल० ज-खे। आ० ॥ ६१॥

५ छन्दार्हं सिंह वै ग्ना छन्दोभिर्हि स्वर्गलोकं गच्छन्तीति शत० ६.५.४.५. श्रुतेर्नाशब्देन छन्दांसि  
६ नक्षत्राणि वै जनय इति शत० ६.५.४.६.

हैं हे उखे तुम्हें पचें कैसी हैं जनयः कि अछिन्न है पतन जिन्हों का असि  
ष्टं स्पष्टम् ॥५॥६१॥

मित्रस्य चर्षणी धृतः ॥ मित्रस्य चर्षणी धृतो वो देवस्य सानसि ॥

द्युम्नश्चित्रश्रवस्तमम् ॥६२॥

का० १६०४०१५० अरण को पाकान्त डालें ॥ मित्र देवत्या गायत्री विश्वा  
मित्रदृष्टा ॥ मित्रस्य ० आदित्य के अवः रक्षण द्युम्नं यशवा अन्न को  
हम स्तुति वायाचना करते हैं इतिशेषः ॥ कैसे मित्र के कि मनुष्यों के  
धारण करनेवाले दीप्यमान ॥ कैसे अवः को कि सनातन वा फलदा-  
नशील ॥ कैसे द्युम्न को कि चित्रश्रवस्तमं अति शयेन अने कों से सु-  
नते हैं अत्यन्त श्रवणीय प्रार्थनी करते हैं इतिभावः ॥६२॥

देवत्वा सवितो द्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहु रूतशक्त्या ॥

अव्ययमाना पृथिव्या माशादिशुः आपृणं ॥६३॥

का० १६०४०१००१५० भस्मीभूत अरण को उखा से परें सरकावें ॥ सवि-  
तृ देवत्या वृहती ॥ हे उखे सविता देवता अपनी सामर्थ्य और बुद्धि से  
तुम्हें अरण से प्रकाशी करें ॥ केसा है सविता कि शोभन हैं हाथ जिसके  
शोभन हैं करस्था अंगुली जिसकी ॥ शोभन हैं भुजजिसके ॥ का० १६०  
४०१५०२०० अव्ययमना इति अरण को सरकाय अषाढा को बाहिर  
निकाल उखा को ऊर्ध्वमुखी करें ॥ हे उखे सविता से निकाली हुई द्यु-  
या को अपना प्रवन्ती पृथिवी में स्थित हुई तू प्राच्यादि दिशा और आ-  
ग्नेयादि विदिशाओं को समन्तात् पूर्ण करि आहुति रस करिके इ-  
ति शेषः ॥६३॥

उत्थाय बृहती ॥ भवो दुतिष्ठ ध्रुवात्त्वम् ॥ मित्रैतां तः उषा  
म्परिददाम्य भित्याः एषा मा भेदि ॥ ६४ ॥

का० १६. ४. २१. २२. हाथों से उरवा को ले पाक से ऊपर निकालें ॥ बृहती पूर्वोर्ध्वर्च उरवा देवत्यः उत्तरार्धो मित्र देवत्यः ॥ हे उरवे तू उठि इस अवस्था से बाहिर आ कर बड़ी हो ततः उतिष्ठ अपने कर्म में प्रवर्त हो पतः तू स्वभावतः स्थिर है ॥ उकारः पाद पूरणः ॥ का० १६. ४. २२. हाथ में ग्रहण की उरवा को उत्तरतः पूर्व स्थापित किसी पात्र में स्थापन करें ॥ ततः विश्वज्योतिका चुपके से उद्धपन है ॥ हे मित्र सर्व प्राणियों के हितकारि देव इस उरवा को तुम्हें परित्राण के अर्थ देता हूँ कि मर्थ कितिस के अभेद नार्थ ॥ और यह उरवा तुरु करि ग्रहण की हुई विदीर्ण मत हूजिये ॥ ६४ ॥

वसं वस्त्रा ॥ वसं वस्त्वा छन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्व दुद्रा  
स्त्वा छन्दन्तु वैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्व दादित्या स्त्वा छन्दन्तु जा  
गतेन छन्दसाङ्गिरस्व द्विष्वेत्वा देवा वैश्वानराः आ छन्दन्त्वा  
नुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वतु ॥ ६५ ॥ †

का० १६. ४. २३. चारि मन्त्रों से चारि वार अजा दुग्ध को उरवा में अंजें ॥  
† अजा० मदीधरः  
उरवा देवत्वानि चत्वारि १. सा-अ० १. २. ३. ४. यजूंषि हे उरवे इत्यादि चारों मन्त्रों का अर्थ काण्डी ६० वत् परन्तु वो हां धूपयन्तु यहां आ छन्दन्तु असव ओड़ी से सींचें ॥ ६५ ॥

आ कूति मग्निम् ॥ प्रयुजं स्वाहा मनो मेधा मग्निं प्रयुजं  
स्वाहा चित्तं चिज्ञात मग्निं प्रयुजं स्वाहा वाचो विधृति  
मग्निं प्रयुजं स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहा गनये वैश्वानरा

युस्वाहा ॥६६॥ आ-हा। अ० म-हा। इ० वि-हा। उ० वा-हा। अ० म-हा। ल०  
 का० १६.४.३० एवं उखा सम्भरण को समाप्त करि और अन्य दृष्टका  
 करिके फाल्गुण अमावास्या में दीक्षा करि उद्गमण होम काल में प्राकृत  
 सोम याग में किये आकृत्यै प्रयुजे ग्नये स्वाहेत्यादि ४.७. पांच उद्ग  
 मणों को होमिके अग्निचयन सम्बन्धी सात उद्गमण मंत्रों को प्रति  
 मन्त्र होमें ॥ सप्तौद्गमण संज्ञानि लिङ्गोक्त देवत्यानि १.५.६. या-पं० २  
 या-त्रि० ३.४. या-ज०। अस्मदीयः संकल्प अग्निचयना नुष्ठान विष-  
 य तिस संकल्प प्रेरक अग्नि को उद्देश करि स्वाहा सुहुतमस्तु ॥१॥ मनः  
 २ वाचः ३ चित्तं ४ स्पष्टानि ॥ मन्वन्तरकारी प्रजापति के अर्थ स्वाहा ॥ ५  
 समस्त नरों के अनुग्राहक विश्वानर पुत्र वा अग्नि के अर्थ स्वाहा सु  
 हुतमस्तु ॥६॥ ६६॥

विश्वो देवस्य ॥ नेतुर्मर्तो वुरीत सव्यम् ॥ विश्वो रायः इषु ध्यति  
 द्युम्नम्बुणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ६७॥  
 चतुर्थे ध्या० व्याख्याता ॥ ७॥ इति सप्तौद्गमणानि समाप्तानि ॥ ६७॥  
 मासु भित्था मासुरिषोम्बधृष्णवीरयं स्वसु ॥ अग्निश्चेदङ्क-  
 रिष्यथः ॥ ६८॥

का० १६.४.३१ औद्गमण होम के अनन्तर दीक्षणीय के शेष को समाप्त  
 करि कृष्णा जिन दीक्षादि दण्डोच्छ्रयणान्त प्राकृत कर्म को करिके अ-  
 ध्वर्यु वा यजमान ईशानाभि मुख वा पूर्व मुख खड़े हो दो ऋचाओं से  
 समिद्ध मान आहवनीय में मुञ्जतृण निर्मित पक्षनीड शण निर्मित  
 पक्षनीड तिन्हों से मध्य में छादित उखा को आरोपण करै ॥ उखा देव-

त्ये द्वे गायत्री त्रिष्टुभौ प्रथमाया स्तृतीयपादोऽग्निदेवतः। हेमातः हेउ  
 रे मू सुतरा विदीर्णमतहो इससे अभिन्नत्वभले प्रकार कहा तथासु  
 तरा हिंसिता मतहो इससे न फूटना भले प्रकार कहा अर्थात् सर्वात्म-  
 ना करि द्वैधी भाव भेद लेशका प्रथग्भाव फूटना सो दोनों तेरे नहीं।  
 किंच हे उखे प्रगल्भ जैसे भले प्रकार अग्निधारण लक्षण वीर कर्म  
 करि। किंच अग्नि और तू इस हमारे कर्म को समाप्ति पर्यन्त करे ॥६६॥  
 हृदं ह्रस्व देवि ॥ पृथिविस्वस्तयः आसुरी माया स्वधया कृतासि ॥  
 जुष्टं देवभ्यः इदमस्तु हव्य मरिष्टा त्वमुदि हियुजेः अ-  
 स्मिन् ॥६७॥

+ पृथिवी पृथिवी पृथिवी  
 # मन्त्रोक्तिः पृथिवी पृथिवी

हे पृथिवी देवि हे उखे यजमान की क्षेम के अर्थ हटा हो। कैसे तू य  
 ह कहते हैं अन्न के निमित्त करि तू आसुरी माया प्राणसंबंधिनी प्र-  
 ज्ञा की हुई वा असुर संबंधिनी अचिन्त्य रचना रूप चित्रवस्तु हो के  
 जैसे प्रकाशो सो है अर्थात् स्तन रचना युक्ता निष्पन्ना है। किंच हे उखे  
 यह हवि उख्याग्नि में होष्यमाण देवताओं के अर्थ प्रिय हो अर्थात् ते  
 रे प्रसाद से देवताओं के अर्थ रुचौ। तू भी अनवर खण्डिता हुई इस व-  
 र्तमान यज्ञ में प्रकट हो ॥६८॥

इन्नः सूर्योऽसुतिः ॥ प्रत्नो होता वरेण्यः ॥ सहस्रपुत्रोऽअद्भु-  
 तः ॥७०॥

का० १६०४३३३५ उखा विषे अभितापित होते अग्नि में प्रादेश मि-  
 ता त्रयोदश संख्या क समियों का होम करे तिनमें क्रमसे कहते हैं आ-  
 दिमें घृताक्त क्कमुक (धमन) समिधा होमें ॥ अग्नि देवत्या गायत्री सोमा



हृति दृष्टा । ऐसा अग्नि कार्मुकी समिधको भक्षण करे इति शेषः ।  
कैसा कि वृक्षहें मदनीय अन्नजिस के वोह । घृतहैं आसवस्थानीय  
मादक जिसका वाघृत आहारत्व करि डालते हैं जिसमें । पुरातन  
देवताओं का आह्वान करने वाला । वरणीय । बलका पुत्र + आश्च  
र्यरूप अर्थात् अनन्य सदृश ॥ ७० ॥

परस्याऽऽधि ॥ सस्वतो वरा रं ॥ ७१ ॥ अस्म्यांतर ॥ यत्राह  
मस्मिता रं ॥ ७२ ॥ अथ ॥ ७३ ॥

का० १६.४.३६ विकटतारुकी समिधको होमें ॥ आग्नेयी गाय  
त्री आङ्गिरसो विरूप दृष्टा । इत अध्यायान्तमाग्नेय्यः । संवतः +  
भले प्रकार जाते हैं योधा जहां वोह संग्राम शत्रु संबंधिनी सेनाके  
संग्रामसे हमारे मनुष्योंको अभिमुख हो अर्थात् दुःखसे तारै किं  
च जिसजनपद में हम हैं तिसमें पाले वातृत्त करे ॥ ७१ ॥

परमस्याः परावतः ॥ परमस्याः परावतो रोहिदश्च दुहा  
गहि ॥ पुरीष्युः पुरुषियो ग्नेत्वन्तं रा मृधः ॥ ७२ ॥

का० १६.४.३७ तीसरी उदुम्बर तरुकी समिधको होमें ॥ अनुष्टुप्  
आरुणि दृष्टा । हे अग्ने अत्यन्त दूर देशसे इस कर्म में तू आ । ओ  
र आके संग्रामोंको तरि अर्थात् शत्रुओंको विनाशि । केसाहै तू  
कि रोहित अश्वोंवाला + । पशव्य बहुतों का प्यारा ॥ ७२ ॥

यदग्ने ॥ यदग्ने कानि कानि चिदाते दारूणि दुध्मसि ॥ स  
र्वन्त दस्तु ते घृतन्तज्जुष स्वयविष्णु ॥ ७३ ॥

का० १६.४.३८ विना कुठार के छिदी वातादिकसे दूरी यज्ञिय तरुकी

समस्तानि  
स्यमानि

सङ्गमना  
मसुनिधं  
२.१०.

१ रोहितो निरिति निधं १.१५.

चौथी समिध धारण करै ॥ द्वे अनुष्टुभौ जमदग्निदृष्टे । हे यविष्ठ्य है  
अग्ने जे कोई काष्ठ तुम्में जो हम आरोपण करते हैं सो सब काष्ठ जा  
त तेरे अर्थ घृतवत् प्रिय हो तिस दारुजात को तू सेवन करि ॥७३॥

यदति ॥ यदन्युपूजिहि कायद्वम्त्रोऽति सर्पति ॥ स  
र्वन्तदस्तु ते घृतन्तज्जुषस्वयविष्ठ्य ॥७४॥

का० १६०४३६० पृथिवी से लगी हुई पांचमी समिध डालै ॥ नीचे पड़े  
रहने के कारण जो दारु पिपीलिका सहस्र क्षुद्र जीव का भक्षण करती  
है और जो बल्मीक दारु अति सर्पण करती है । हे यविष्ठ्यादि पू  
र्ववत् ॥७४॥

अहरहर प्रयावम् ॥ अहरहर प्रयावम्भरन्तोऽवायेवति  
ष्ठते घासमस्मै ॥ रायस्योषेण समिधामदन्तोऽग्ने माते प्रति  
वेशारिषाम ॥७५॥

का० १६०४४०० आठ ऋचा ओं से प्रति ऋचा करि आठ पलाशी समि  
ध धारण करै ॥ द्वे त्रिष्टुभौ नाभा नेदिष्टुदृष्टे । हे अग्ने तेरे आश्रय  
हो कै हम विनाश को न प्राप्त हों वै । क्यों कि प्रति दिन अप्रमत्त जै से  
तैसे अग्नि के अर्थ समिद्रूप भक्ष्य सम्पादन करते हैं । तत्र दृष्टान्तः  
वाजिशाला में अवस्थित अश्व के अर्थ जै से प्रति दिन प्रमाद छोड़ि  
घास देते हैं तद्वत् । तथा दक्षिण लक्षण धन की पुष्टि और अन्न  
से तुम्हें प्रसन्न करते ॥७५॥

नाभापृथिव्याः ॥ समिधानेऽग्नौ रायस्योषाय बृहते  
हवामहे ॥ दुरम्भदम्बुहदुव्यं यजत्रं जेता रमग्निमृतना

सुसासहिम् ॥७६॥

नाभा + पृथिवी रूपा उरवाके मध्य दीप्य मानः आहवनीयनामामेऽग्निः तिस्रः अभिमानीदेवः को बडेधनके पोषण के अर्थ हम आह्वान करते हैं। कैसे अग्नि को कि अन्नकरितृप्त होता। बडे हैं उक्थ (शस्त्र) जिस के। यजनीय। संग्राम में जय शील। हमारे शत्रुओं का अभिभवितार अग्ना वित्या हवनीय विषयोऽग्नि शब्दः जेतारमग्निमित्यधिष्ठात्रग्निविषयः ॥७६॥

एषाहनाभिः  
पृथिव्ययै  
षा एतत्समि  
ध्यतः इति  
शत० ६६३५

पाः सेनाः ॥ याः सेनाः अभि त्वरी राव्याधिनी रुगणाः उ  
त ॥ ये स्तेना ये च तस्करा स्तां स्तेः अग्ने पि दधा म्यास्ये ॥७७॥

षडनुष्टुभः। जो कोई पराई सेना हमारे आभि मुख्य करि आगमन शीला आवै तिस्र आनेवाली और जो सेना सर्वतः हमको ताडै तिस्र उगणाः उद्यत्ता युध गणो येता बहु स्तोमा। और जे स्तेनाः गुप्त चरनेवाले और जे तस्कराः प्रकट चोर हैं अग्नेतिन पूर्वोक्त सेनादिकों को तेरे मुख में भक्षणार्थ डालता हूं अर्थात् सब दुष्टों को भक्षण करि ॥७७॥

तस्कराः तस्कराः  
तस्कराः तस्कराः  
तस्कराः तस्कराः

दध्वा म्याम्लि म्लून् ॥ दध्वा म्याम्लि म्लून् अजम्भ्ये  
स्तस्करा रं ॥ उत ॥ हनु म्याम्लि स्तेना न्भगवस्तां स्त्वरवा द  
सुखादितान् ॥७८॥

गुप्त और प्रकट दो प्रकार के चोर तिन्हों में प्रकट दो प्रकार के प्रकट आरण्य और मार्ग में छीन-छीन के भागनेवाले तिन्हों से भी अति प्रकटा निर्भया ग्राम में आके बन्दीकार डाका देनेवाले तिन्हें यहाँ मलिम्लुच कहि तेहें मल-पापाधिक्य इन्हों का मलिन ते सैं हो-

म्लोचन्ति-अदृश्य होते हैं जन वावन में ॥ दन्त पङ्क्ति में जिन्ह तीक्ष्ण दां-  
तों से क्रमुकादिक भक्षण करते हैं तिन दंष्ट्राओं की राक्षसी संज्ञा ॥ त-  
तः पुरोवर्ती बाहिर दृश्यमान दांत जम्भ्या-जम्भा वर्ति को अश्रित  
और दांतों से लीन हनू। अर्थः ॥ दंष्ट्राओं से मलिम्लुचों और जम्भों  
से तस्करों हनूओं से स्तेनों को पीडि कै हे महदैश्वर्य युक्त पूजनी  
य तिन सब पूर्वोक्त भले प्रकार भक्षण योग्यों को पुनर्जीवन रहि-  
ताजैसेहो भक्षण करि। वा सुखादित को समीप करिके भक्षण क-  
रि ॥ ७८ ॥

ये जनेषु ॥ मलि म्ल वस्ते नासुस्तस्करावने ॥ ये कक्षेष्वा-  
घायवुस्तौ स्ते दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

ग्राम वर्ति ओं में जे मलिम्लुचः पूर्वोक्त वन्दी कार और जे वन में  
स्तेनाः गुप्त चोर तस्कर प्रकट चोर और जे नदी पर्वत गहन में  
पराये पापाभिलाषी हे अग्ने तिन चतुर्विधों को तेरी जम्भाओं  
दंष्ट्राओं के भक्षण के अर्थ स्थापन करताहूँ ॥ ७९ ॥

योः अस्मभ्यम् ॥ योः अस्मभ्यमराती याद्यश्च नो द्वेष-  
ते जनः ॥ निन्दाद्योः अस्मान्धिप्सा च सर्वे न्तम्मस्मसा-  
कुरु ॥ ८० ॥ † भस्मसा इति वा पाठः

पहिले चोरों का भेद दिखलाया अवशत्रुओं का भेद कहिते हैं-  
शत्रुचारि प्रकार के अराती द्वेषी निन्दक जिघांसु तत्र दात व्य-  
त्त करि प्राप्त धन को जो नहीं देता वोह अराती १ जो कार्य का विघा-  
त करे वोह द्वेषी २ वाग्देर्जन्य मात्र जो करे वोह निन्दक ३ हन्तुका

मा-जिघांसु ४ तिन्हों को अग्निके अर्थ समर्पण करै ॥ अर्थः ॥ जो मनुष्य हमारे अर्थ अरातित्व की इच्छा करै। और जो जन हमारे कार्य नाश से प्रीति उत्पादन करै। जो हम को निन्दे वाचादुःख देवे ॥ और जो हम को दम्भन की इच्छा करै जिघांसै। हे अग्नेति न सवों (चतुर्विधों) को चूर्णी करि अर्थात् चवाके भक्षण करि ॥ ७॥

सर्दं शितम्मे ॥ सर्दं शितम्मे ब्रह्म सर्दं शितम्बी र्युम्बलम् ॥ सर्दं शितं क्षत्र क्षिणु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८॥

का० १६.४.४१.४२ द्वादशी सर्दं शितम् को क्षत्रिय यजमान की इच्छा से धारण करै। अन्तर्मी उद्देशाम् को पुरोहित यजमान की इच्छा से धारण करै। एकादश नित्या और सव ऋचा ओं के अन्तर्में स्वाहा कार है ॥ मेंने अपने ब्राह्मण्य को सम्यक् तीक्ष्णी (शास्त्रमार्गवर्ति) किया। इन्द्रिय शक्ति तिन दोनों को स्वकार्य क्षम किया। तथा जिस क्षत्रिकामें पुरोहित हूँ तिस अपने क्षत्री को जयनशील जै से होते से तीव्र किया ॥ ८॥

उद्देशां ॥ उद्देशाम्बाहूः अतिरमुद्वर्चोऽथोबलम् ॥ ९॥

लोमि ब्रह्मणमित्रानुन्नयामिस्वामि ॥ १०॥ अहम् ॥ ८॥

इन्ह स्वकीय राज ब्राह्मणादिकों के मध्यमें एक-एक की भुजाएँ उदतिरम्, उत्कर्ष करि मेंने बढाईं। कान्ति उदतिरम् और शरीर शक्ति उदतिरम्। मन्त्र की सामर्थ्य से शत्रुओं को क्षीण करता हूँ। स्वकार्य पुरुष पुत्रादिकों को में उत्कर्ष को प्राप्त करता हूँ। एवं त्रयोदश समिन्मन्त्रा उक्ताः ॥ ८॥

७॥ अग्नेति न सवों (चतुर्विधों) को चूर्णी करि अर्थात् चवाके भक्षण करि ॥ ७॥

अन्नं पुतेन्नस्य ॥ नो देह्यनमी वस्य शुष्मिणः ॥ प्र प्रदातारं  
नारिषु ऊर्जन्तो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ८३ ॥

इति सर्गहितायां सप्तमोऽनुवाकः ७

इति श्री सुक्ल यजुषि माध्यन्दिनी शाखीयायां वाजसनेय  
सर्गहितायां दीर्घपाठे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

का० १६.६.८. अध्वर्यु करि व्रत पय में देते तत्र दीक्षित समिधाडालि  
अग्निमें आधान करे प्रति व्रत समिदाधान है ॥ आग्नेयी उपरिष्ठा-  
बृहती। हे अन्न के पालक अग्ने हमारे अर्थ अन्न को दे यद्वा अन्न  
के अंश को दे। कैसे अन्न के कि नहीं है व्याधि जिससे बल बंदे जि  
ससे अर्थात् रोग नाशक बल का हेतु अन्न दे। किंच अन्न के दाता  
र को प्रकर्षण वढाय। किंच हमारे पुत्रादिकों और गवादिकों में अ  
न्न को स्थापन करि अथवा मनुष्यों पशुओं के अर्थ अन्न को दे अ  
र्थात् सवनर पशुओं के अर्थ अन्न को दे ॥ ८३ ॥

इति गिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ७

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरे देयादग्निदेवः सनातनः

इति श्री मच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्येतृ व्याघ्रपादा  
न्वय विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेव बर्माज रौकिन  
रोय नृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये  
उरवादि समिदाध्यन्त वर्णनो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीवेदार्थप्रदीपकारि खोड्डहृदयज्ञान ॥ चास्योऽर्थं नुदेतु है यत्तपुरुष भगवान्



हरिःश्रीम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णब्रह्मरूपपरं स्तुमः १

अ० १ हृशानोरुक्मः ॥ हृशाने रुक्मः उर्व्या व्यद्यौ हुर्मर्षमायुः-  
श्रियेरुचानः ॥ अग्निरमृतोऽभवद्वयोभिर्ज्जदेनन्यौ  
रजनसुरेताः ॥ १ ॥

ओंनमोयाज्ञबल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ॥

रुक्मादिवाचनान्तोयं द्वादशोऽध्याय ईर्यते

एकादशमे अध्यायविषे उरवा सम्भरणादि मन्त्र कहें द्वादशमे में-  
उरवाधारणादि मन्त्र कहिते हैं तत्र का० १६. ५. १० समिदाधानके अंत  
में ईशानदिशामें खड़ा होकर यजमान ग्रीवाविषे स्वर्णनिर्मित फ  
लकाकार आभरण विशेष बांधै की दृशं वर्तुल एकविंशति पिण्ड हैं  
जिसमें। शणपत्र तुल्य स्वरूपसे बाहिर ऊंचे विन्दु पिण्ड कहलाते  
हैं। कृष्णाजिनखण्डविषे श्वेतकृष्ण रोमस्थानमें त्रिगुण शणसूत्र  
में पिरोहि नाभिके ऊपर वर्तमान पिण्ड हैं ते बाहर होवें तैसे धारण  
करै ॥ रुक्मदेवत्या त्रिष्टुप् वत्स ग्रीहृष्टा आदित्याध्यासेन रुक्मः स्तूय  
ते। रुक्म आभरणविशेषः उर्व्या बड़ी रीप्पिकरि के व्यद्यौत् प्रका  
शित होता है। कैसां हे रुक्म कि दृशानः प्रत्यक्ष प्राप्त है। जनों को श्री  
देने योग्य। अनव खण्डित किसीसे नतिरस्कार किया जावे वा जीव

न की रुचता है। सो यह अग्नि। पशु पुरोडाशादि करि अमरण धर्मा होता हुआ जिस कारण छु लोकवासी देवगण इस अग्नि को जन्मा ते हुए केसी है द्यौं कि शोभन है वीर्य अग्निरूप जिसका तिससे न मृतत्व योग्य है ॥१॥

नक्तोषा सास मेनसा विरूपैषा पये ते शिशु मे कर्ठ समीची ॥  
द्यावा क्षामा रुक्मोऽ अन्तर्विभाति देवाऽ अग्निर्यारब-  
न्द्रविणोदाः ॥२॥

का० १६० ५०३ बर्तुलाकार उखाधारण साधन रूप दोड़ण्डू करि उखा को ग्रहण करें ॥ अग्निदेवत्या विष्टुप् कुत्सदृष्टा अर्धसुराग्रहणे विनियुक्तम्। नक्त रात्रि उखा अह नक्तोषसौ रात्रिदिविसौ एक अग्नि को खापयेते सायं प्रातः अग्निहोत्रादि कर्म करि नर्पण करते हैं। तत्र लुप्तोपमानं शिशु-बालक को जैसे मातापिता केसी हैं नक्तोष सौ कि समान है मन जिनों के पर मैक्यं मत्युक्त विलक्षण हैं रूप जिनों के कृष्ण रात्रिः शुक्ल महः। भली भांति समन्वित जे ऐसे रात्रिदिन तिन ईं डूरूपी-ओं सैं उखा को ग्रहण करता हूं इति शेषः ॥ का० १६० ५०४। आहवनीय के ऊपर स्थित उखा को ईं डू-ओं सैं लेके द्यावा क्षामा इस पाद करि आसन्दी प्रतिलावे ॥ द्यावा क्षामा (पृथिवी) के मध्य और अंतरिक्ष के विषे जो रुक्म (रोचमान) अग्नि प्रकाश है तिसै लाता हूं इति शेषः ॥ का० १६० ५०५ आहवनीय सैं पूर्वदिशामें भूमि पर स्थापन की हुई आसन्दी विषे उखा को देवा इस पाद करि स्थापन करें। उक्तात्रासन्दीवत् प्रादेश मात्र पादयुक्त उदुंबरकाष्ठरचित अरत्नि

मात्र मूज की रेञ्जु करिबुनी तथा चतुः कोण हैं संग पाद जिस के और  
शिक्य सहित वर्तमान तिस में ॥ दीव्यन्ती व्यवहरंतीति देवता प्राण य-  
जमान की अग्नि को धारण करते हुए। कैसे हैं देवता कि द्रविणोदाः  
याग द्वार करि धन रूप फल को देते हैं। तिसै में धारण करता हूं इति श्रे-  
षः ॥ अग्निं धारयन् द्रविणोदा इत्याह प्राण वै देवा द्रविणोदा इति ते-  
त्तिरीय श्रुतेर्देव शब्देन प्राणा उच्यन्ते ॥ ३॥

विश्वारूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासां बीजं द्रन्दि पदे चतु-  
ष्यदे ॥ बिना के मख्यत्सविता वरेण्यो नु प्रयाण मुख सो विरा-  
जति ॥ ३॥

का० १६.५.६ ऊंचे को नियमन करते हैं जिन्हों से ते उद्यामरञ्जु रें छै  
उद्यामरञ्जु हैं ऊर्ध्वकर्षण हेतु जिस के ऐसे आसन्दी पर स्थित शि-  
क्य पाश को यजमान कण्ठ में बाँधे ॥ सवितृदेवत्या जगती श्यावाश्च  
दृष्टा। कवि-विद्वान् क्रान्तदर्शन श्रेष्ठ सविता। रत्रितमका निधारण  
करि सब रूपों का प्रकाश करता है। और जो मनुष्य पश्यादिकों के अर्थ  
कल्याण अपने अपने व्यवहार प्रकाशान रूप श्रेय की प्रेरणा करता है।  
जो नाक (स्वर्ग) को व्यख्यत प्रकाश करता है। और जो उषः काल  
के व्यतीत होने पर विशेष करि प्रकाशता है। उषा सविता की पुरोगामि-  
नी यह सविता की स्तुति है। ईदृशः सविता शिक्य को प्रति मुञ्चन क-  
रे इति शेषः ॥ ३॥

सुप० लो० सि० गुरुत्मां स्त्रित्वेने शिरो गायत्र च सुहृद द्रष्टव्यं  
रेपक्षी ॥ स्तोमः आत्मा छन्दां स्पृङ्गो नियजूं च सिन्धुम ॥

सामते तनूवीं मदेव्यं यज्ञाय जियम्पुच्छं धिषण्याः शफाः ॥

सुपर्णे सिगरुत्मान् दिवङ्मुखः पत ॥४॥

का० १६. ५. ७. शिष्य सहित उरव्याग्नि को पूर्व में पिएडवत् ऊंची बाहुओं से ऊँची धारण करे. कुछ एक आचार्यों ने इस मंत्र करि उरव्याग्नि को अभि मंत्रण भी कहा है ॥ गरुत्म द्वेवत्या विषहन्त्री चतुरवसाना कृतिः ॥ हे अग्ने तू सुपर्ण शोभन पर्ण पतन जिसका वोह पक्षिरूप है पक्ष्याकार करि चित्तव से। तत्र दृष्टांतः गरुत्माना रुड जैसे पक्षिराज है तद्वत्। तिसके अवयव कहिते हैं। त्रिष्टुतो म तेरा शिरः स्थानीय है। गायत्राख्य साम तेरा नेत्र स्थानीय है। बृहद्रथन्त राख्य सामनी तेरे पक्ष स्थानीय हैं। पंचदश स्तोम तेरा आत्मा अन्नः करण स्थानीय है। गायत्र्यादिक एकविंशति छंद तेरे हृदयाद्यंग स्थानीय हैं। इषेत्वा इत्यादि यजूंषि नाम स्थानीय हैं। वामदेव्य साम तेरा तनूः शरीर स्थानीय है। यज्ञाय जिय याख्य साम तेरा पुच्छ स्थानीय है। होत्रादि धिषण्य स्थिता अग्नितेरे खुर स्थानीय हैं। हे अग्ने। एवं भूतनू यतः गरुड इव पक्षिरूप है अतः आकाश प्रति गमन करि और तहां से स्वर्ग लोक को प्राप्त हो ॥४॥

विष्णोः क्रमो सि सपत्नहा गायत्र च्छन्दः आरोह पृथिवी मनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमो स्यभि माति हात्रैष्टु भ्छन्दः आरोहान्तरिक्ष मनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमो स्य रातीयतो हन्ता जागत च्छन्दः आरोह दिव मनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमो सि शत्रू यतो हन्तानुष्टु भ्छन्दः आरोह दिशो नु विक्रमस्व ॥५॥ + वि-स्वा ॥ ३०। ३०। ३०॥ ५॥

का० १६.५.११ विष्णुक्रमसंज्ञकपादन्यासों को करे-तिस-तिसक्रमण में उखा की अग्नि के ऊर्ध्व को ग्रहण करना ॥ चत्वारि यजूर्ध्विलिङ्गो-  
क्तः उखाग्निदेवत्यानि। विष्णुशब्देनाग्निरुच्यते-सयः सविष्णुर्यज्ञः  
सयसयज्ञोऽयमेव स योऽयमग्निरुखायामिति श्रुतेः शत ६.७.२.११॥  
हे प्रथम पाद विन्यास तू विष्णु (यज्ञ-अग्नि) का क्रम है और सपत्नी  
का घातक अतः अनुग्राहकत्वेन गायत्री छन्द स्वीकार करितः  
भूदेवता रूप इस प्रदेश को विशेषेण प्राप्त हो एव मुत्तरेष्वपि मन्त्रेषु  
योज्यम्। हे द्वितीय पाद न्यास तू हे घातकों बापापियों का घातक त्रि  
ष्टुप् छन्द को स्वीकार करि अन्तरिक्ष प्रदेश को व्याप्त हो। हे तृतीय पा  
द० दानाभाव की इच्छा करने वालों का घातक जगती छन्द को अद्युलो  
क को व्या० हे चतुर्थ पा० हन्तृत्व की इच्छा करने वालों का नाशक अ  
नुष्टुप् छन्द को० यहां चारों पाद न्यासों में यजमान आत्मा को विष्णु  
त्व करि भावना करे-चारों प्रक्रमाओं के प्रदेशों को पृथिव्यादिलोक  
रूपत्वेन भावना करे ॥ का० १६.५.३ दिशोऽनुविक्रमस्वेति सवदिशों  
को देखे। हे अग्ने तू प्राच्यादि दिश व्याप्त हो ॥ ५॥

अक्रन्दग्निस्तनयन्निवद्योः क्षामारे रिह द्वी रुधः समृज्ज  
न् ॥ सद्यो यज्ञानो विही मिद्धोः अख्य दा रोदसी भानुना  
भात्यन्तः ॥ ६॥

का० १६.५.१४ ऊँची बाहुओं से प्राक् ऊँचे अग्नि को ग्रहण करे ॥  
अग्निदेवत्या त्रिष्टुप् वत्स ग्रीहृष्टा जैसैद्यौ (मेघ) गर्जता है तैसे अ  
ग्नि घोरता है। मेघसाधर्म्य माह जैसै मेघजलभाव को प्राप्त होता अ

त्यन्त भूमि को आस्वादित करता है। स्व कीयज्वाला समूह से ओषधी  
ओं को व्याप्त होता। अन्यदप्युच्यते उत्पन्न होते ही सद्यदीप्त हो इस  
सब को विविध प्रकाश करता है। अन्यच्च जो अग्निद्यावा पृथिवी के  
बीच में रश्मियों करि अपने को समन्तात् प्रकाशता है जैसे पर्जन्य  
विद्युद्रूप करि द्यावा पृथिवी के बीच प्रकाशता है एवं अग्निः पर्जन्य  
वत्स्तूयते ॥ ६ ॥

अग्नेभ्यावर्तिन्नभिमानि वर्त्तस्वायुषावर्च्चसा प्रजया  
धनेन ॥ सून्या मे धया रय्या पोषेण ॥ ७ ॥

का. ०१६. ५. १५. ऋक् चतुष्टय करि चारि वार उरव्याग्नि को अपने समीप  
में लावे ॥ अग्नि देवत्यो ध्वं बृहती है अस्मदभि मुख गमन शील है  
अग्ने आयु प्रभृति से मेरे प्रति शीघ्र आगमन करि आयु जीवन  
करि ब्रह्म तेज पुत्रादिक प्रजा धन इष्ट लाभ धारणा वती बुद्धि  
सुवर्ण लङ्कार आयु प्रभृतियों के पोष करि ॥ ७ ॥

अग्नेः अङ्गिरः शतान्ते सन्त्वारुतः सहस्रान्तः उपावृतः ॥  
अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्ट मा ह्यधि पुनर्नो रयिमा  
ह्यधि ॥ ८ ॥

हे अङ्गिरः अङ्गियों के रसभूत अङ्ग सौष्टव युक्त हे अग्ने तेरी शत  
संख्या का आवृत्ति शक्ति हैं। तथा तेरी सहस्र संख्या का उपावृत्ति  
शक्ति हैं अपने ही आवर्त्तन को आवृत्त अर्थात् तुरू समीप व  
र्त्ती पुरुषों और द्रव्य विशेषों का वर्त्तन उपावृत्ति हमलोकों विषे अ  
ति शय स्नेह करि के तू भी फिर-फिर आवर्त्त करि त्वदीयाः पुरुषाः



और तेरे द्रव्य पुनः-पुनः आवर्तन करें। और शत सहस्र संख्याक आवृत्ति शक्तिओं का जो पोष समृद्धि तिस पोष का अन्य पोष अ युत लक्षादि संख्या का भिवृद्धि तिस पोष करि हमारे नष्ट धन को फिर करिके प्राप्त करि फिरि भी हमारे पूर्व असम्पादित धन को सर्वतः सम्पादित करि ॥ ८ ॥

पुनरुज्जानिवर्तनस्वपुनरग्नः दूषायुषा ॥ पुनर्नः पात्य  
ठिहंसः ॥ ९ ॥

आग्नेयो द्वे गायत्र्यो हे अग्ने तू क्षीरादिरस सहित पुनः यहां आ। अ न्न और जीवन सहित पुनः आ आकर तू ह में पाप से रक्षा कर ॥ ९ ॥

सहरय्यानि वर्तन्स्वाग्नेपि न्वग्धारेया ॥ विश्वप्स्यादि  
श्वतस्परि ॥ १० ॥

हे अग्ने धन सहित पुनः प्राप्त हो किंच वृष्टिरूप जलधार करि सब तरुणधान्य लतापादपाओं के ऊपर सींचि। कैसी धारा कि सबों करि पान करि यै हें वासव जनोपभोग्या धनधार करि सर्वतोऽधिगत अर्थों से पूर्यमाण करिके सींचि अर्थात् अनव छिन्न धन दाने न पुनः-पुनः पूरि ॥ १० ॥

आत्वा हार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ॥ विशस्ता-  
सर्वावाञ्छन्तु मात्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत ॥ ११ ॥

का० १६० ५० १६० नाभि के ऊपर उरव्याग्नि को धारण करते तिसे अ भिमन्त्रित करें ॥ आग्नेय्यनुष्टुब्धुवदृष्टा हे अग्ने में तुम्हें आह रण करता हूं और तू उरवा के मध्य में अवस्थित है। अत्यन्त च

त्यन्त भूमि को आस्वादित करता है। स्व कीयज्वाला समूह से ओषधी  
ओं को व्याप्त होता। अन्यद्रव्युच्यते उत्पन्न होते ही सद्यदीप्त हो इस  
सब को विविध प्रकाश करता है। अन्यच्च जो अग्निद्यावा पृथिवी के  
बीच में रश्मियों करि अपने को समन्तात् प्रकाशता है जैसे पर्जन्य  
विद्युद्रूप करि द्यावा पृथिवी के बीच प्रकाशता है एवं अग्निः पर्जन्य  
वत्स्तूयते ॥६॥

अग्नेभ्यावर्तिन्नभिमानिर्वर्तस्वायुषावर्चसाप्रजया  
धनेन ॥ सुन्यामेधया रय्या पोषेण ॥७॥

का.०१६.५.१५. ऋक् चतुष्टय करि चारि वार उरव्याग्नि को अपने समीप  
में लावे ॥ अग्नि देवत्यो ध्वं ब्रह्मती है अस्मदभि मुख गमन शील है  
अग्ने आयु प्रभृति से मेरे प्रति शीघ्र आगमन करि आयु जीवन  
करि ब्रह्म तेज पुत्रादिक प्रजाधन इष्ट लाभ धारणा वती बुद्धि  
सुवर्ण लङ्कार आयु प्रभृतियों के पोष करि ॥७॥

अग्नेः अङ्गिरः शतान्ते सन्त्वारुतः सहस्रान्तः उपावृत्तः ॥  
अधापोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्ट माह्वि पुनर्नोरपि मा  
ह्वि ॥८॥

हे अङ्गिरः अङ्गियों के रसभूत अङ्ग सौष्टव युक्त हे अग्ने तेरी शत  
संख्या का आवृत्ति शक्ति है। तथा तेरी सहस्र संख्या का उपावृत्ति  
शक्ति है। अपने ही आवर्तन को आवृत्त अर्थात् तुरू समीपव  
र्ती पुरुषों और द्रव्य विशेषों का वर्तन उपावृत्ति हमलों विषे अ  
ति शय स्नेह करि कै तूमी फिर-फिर आवर्त करि त्वदीयाः पुरुषाः

और तेरे द्रव्य पुनः-पुनः आवर्तन करें। और शत सहस्र संख्याक आवृत्ति शक्तिओं का जो पोष समृद्धि तिस पोष का अन्य पोष अ युत लक्षादि संख्या का भिवृद्धि तिस पोष करि हमारे नष्ट धन को फिर करिके प्राप्त करि फिरि भी हमारे पूर्व असम्पादित धन को सर्वतोऽसम्पादित करि ॥ ८॥

पुनरुज्जानिर्वर्तस्व पुनरग्नः दूषायुषा ॥ पुनर्नः पाह्य  
हंसः ॥ ९ ॥

आग्नेयो द्वे गायत्र्यो हे अग्ने तू क्षीरदि रस सहित पुनः यहां आ। अ न्न और जीवन सहित पुनः आ आकर तू ह में पाप से रक्षा कर ॥ ९ ॥

सहरय्यानि वर्त्तस्वाग्नेपि न्वस्वधारया ॥ विश्वस्यापि  
श्वतस्परि ॥ १० ॥

हे अग्ने धन सहित पुनः प्राप्त हो किंच वृष्टिरूप जलधारा करि सब तरा धान्य लता पाद पाओं के ऊपर सींचि। कैसी धारा कि सबों करि पान करिये हे वासव जनोपभोग्या धन धारा करि सर्वतोऽधिगत अर्थों से पूर्णमाण करिके सींचि अर्थात् अनव छिन्न धन दाने न पुनः-पुनः पूरि ॥ १० ॥

आत्वा हार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठविचाचलिः ॥ विशस्ता  
सर्वावाञ्छन्तु मात्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत ॥ ११ ॥

का० १६० ५० १६० नाभि के ऊपर उरव्याग्नि को धारण करते तिसे अभिमन्त्रित करें ॥ आग्नेय्यनुष्टुब्धुवदृष्टा हे अग्ने में तुम्हें आह्वरण करता हूं और तू उरवा के मध्य में अवस्थित है। अत्यन्त च

† अन्नं वै विप्रः इति श्रुते

लने सै रहित स्थिर होकै तिष्ठ ॥ किंच संपूर्ण प्रजा तुमै वाञ्छा करै वा  
सर्व अन्न तेरें स्थित रहें † तेरे सकाश सै यह राष्ट्र (जनपद) शून्य मत  
हो अर्थात् इस राज्य में स्थित होकै संपूर्ण प्रजाओं का पालन करि  
वा श्री शून्य नुस्से नहो ॥ ११ ॥ † श्री वैष्णवात्त्वत्तीरधिपश्रदिति श्रुते :

उदुत्तमं वरुणपाशं स दवाधमं विमंध्य मथं श्रयाय ॥

अथावयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १२ ॥

का० १६. ५. १७. रुक्मपाश शिख्यपाश दोनों को गले सै ऊर्ध्व मार्ग-  
करि कै निकालै ॥ वरुण देवत्या त्रिष्टुप् श्रुतः शेषदृष्टा । हे वरुण उ-  
त्तमाङ्ग शिरमें स्थित अपनी पाश को मेरे सकाश सै विनाशि अध-  
माङ्ग पाद प्रदेश में स्थापित अपनी अधम पाश को निकाल करि  
हमसे विनाश करि मध्यम प्रदेश में स्थित पाश को विच्छेद करिंओ  
र पाश त्रय विनाश के अनन्तर हे आदित्य अदिति के पुत्र वरुण  
तेरे व्रत कर्म में निष्ठाप वर्तमान हुए हम अखण्डितत्व के अर्थ  
योग्य होंवें ॥ १२ ॥

अग्ने हृन्नुषसां मूर्ध्वोऽस्थानिर्ज्जगन्वान्तमसोज्यो

तिषागात् ॥ अग्निर्मानुनारुशतास्वङ्गः आज्ञातां वि

श्वासन्नान्य प्राः ॥ १३ ॥

का० १६. ५. १७. पूर्व मन्त्र सै पाशों को मोचन करि ऊर्ध्व बाहु आ-  
ग्नेयी दिशा प्रति उरव्याग्नि को धारण करै ॥ अग्नि देवत्या वित-  
दृष्टा । आदित्यात्म नाग्नेः स्तुतिः क्रियते । बडे प्रभाव सै यह हृ-  
हृदग्निः प्रातः कालों के मुख में ऊपर स्थित हुआ वा अग्नि होत्र

की आदि में बोध्य मान उठता है। और जो एत्रि लक्षण तम से निर्गत हो दिवस लक्षण ज्योति सहित यहां प्राप्त हुआ वोह अग्नि उत्पन्न मात्र ही सब स्थानों (लोकों) को अपने तेज करि सर्वत्र पूर्ण करता हुआ। कैसा है रुश ता कि तम का नाश करता रश्मिओं से शोभन शरीर ॥१३॥

हृं सः शुचिषदसु रन्तरिक्षसद्भोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ॥

नृषद रसद तसद्भ्यो मसदज्ञा गोजाः ऋतजाः अद्रिजाः

ऋतं बृहत् ॥१४॥ † ह-मू. अ. बृ-त्। इ० ॥१४॥

का० १६.५.१८. उरव्याग्नि को अवतारों अग्नि प्रोक्षण में यह जगती यजुरन्ता कही गई। राजसूय प्रकरण में यह अतिजगती कही गई परन्तु यहां जगती अन्त में बृहत् यह यजुः तिसका विनियोग कहते हैं- का० १६.५.१८. बृहदिति यजु करि उरव्याग्नि को आसन्दी में स्थापन करें ॥ हंस इति मन्त्रस्तु व्याख्यतः ॥१०.२४.॥१४॥

सीदत्व म्मातुरस्याः उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् ॥

मैना न्तपसा मार्चिषाभि शौचीरन्तरस्या थं शुक्रज्योतिर्वि भाहि ॥१५॥

का० १६.५.२०. आसन्दी निधानानन्तर उरव्याग्नि को तीन ऋचाओं से उपस्थित करें। अग्नि देवत्या विष्टुप्। हे अग्ने तू माता की समान उरवा के उत्सङ्ग में बैठि कैसा है तू कि सर्व पदार्थ तत्व वेदी। किंच इस उरवा को सन्ताप से मत सन्ताप करि और ज्वाला से मत दीपन करि अर्चि कारण है कार्य से बहुत ताप होता है कारण करि कैयो डा ताप होता है- तिन दोनों को मत करि इस उरवा के मध्य में निर्मल प्रकाश होके





जातवेदः प्रसिद्ध वह्निरूप करिके द्वितीय जन्म को प्राप्त हुआ। अ  
प्सु, समुद्र में बड़वानल रूप से तृतीय वार उत्पन्न हुआ। ओर ती  
नों जन्मों में यजमानों विषे अनुग्रह बुद्धि युक्त है इस अग्नि को  
पुरोडाशादि करि प्रकाश करता। स्वायत्तचित्त यजमान जरा पर्य  
न्त सेवा करता है ॥१८॥

विद्यातेऽअग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्याते धाम विभृता पुरुत्रा ॥  
विद्याते नाम परमं दुःहाय द्विमात मुत्सं यतः आजगन्थ ॥१९॥  
हे अग्ने जे पूर्व मन्त्र में दिवस्परीत्यादि करिके आदित्य, अग्नि  
बड़वानल तीन प्रकार से स्वरूप कहे गए तिन तीन संख्याक तेरे सं  
बंधी रूपों को हम जानते हैं। बातीन प्रकार करि विभक्त अग्नि वा  
यु सूर्याख्य तेरे रूपों को हम जानते हैं। किंच तेरे संबंधी पुरुत्रा, बहुत  
प्रदेशों में गार्हपत्य आवहनीय अन्वाहार्य यचनाग्नीध्रीय रूपों  
विषे विहृत स्थान भी हम जानते हैं। किंच तेरा परम उत्कृष्ट गुहामें  
जो अवस्थित गोप्य यविष्ठ इत्यादि मन्त्र प्रसिद्ध नाम है तिसै भी  
जानते हैं। किंच जल रूप स्थान से वैद्युत रूप करि आया है तिस उ  
त्पन्न जल रूप स्थान को हम जानते हैं ॥१९॥

समुद्रे त्वानृमणाऽअप्स्वन्तर्चक्षाऽईधे दिवोऽअग्नः ऊ  
र्ध्वम् ॥ तृतीयै त्वा रजसि तस्थिवाऽसंमया मुपस्थे महिषा  
ऽअवर्धन् ॥२०॥

हे अग्ने नृमणा प्रजापति समुद्र में बड़वानल रूप करिके वर्तमा  
न तुम्हें प्रकाश करता हुआ। तृचक्षाः मनुष्यों में मन्त्रों को विस्पष्ट

कहिने वाला प्रजापति जलों वृष्टिरूपों के मध्यमें विजली रूप करिके स्थित तुम्हें प्रकाश करता हुआ। तथा द्युलोक के ऊर्ध्व स्थानीय समुद्र रूप वृष्टि की अपेक्षा करिके तृतीय स्थान तेजमण्डलमें आदित्यात्मा से वर्तमान तुम्हें नृचक्षाही प्रकाश करता हुआ। किंच महिषा महान्त प्राण जल के उत्सङ्ग वा जलों के मध्यमें स्थित तुम्हें बडा करता हुआ ॥ २० ॥

अक्रन्दग्निस्तनयन्निवृद्धोः क्षामारेरिह द्वीरुधः समञ्जनः ॥  
सद्योयज्ञानो विहीमिदोऽखरव्यदारो दसीभानुनाभात्यन्तः ॥ २१ ॥

व्याख्याता ॥ २१ ॥

श्रीणमुदारोधूरुणोरयीणां मनीषाणां प्रार्थणः सोमगोपाः ॥ व  
सुः सूनुः सहसोऽप्सुराजा विभात्यग्रऽउषसामिधानः ॥ २२ ॥

एवं प्रकार अग्निः विशेषेण प्रकाश है कैसा है अग्नि कि गवाश्वादि संपदा को अत्यन्त देने वाला धनों का धारण करने वाला। अभिलाषियों का प्रकर्षेण अर्पण करने वाला। यजमान कर्त्तक सोम याग का रक्षक सबका निवास हेतु वाधन रूप जैसे अन्य शयनासन रथा दिधनों को समीपमें करते हैं तैसे यह भी ताप पाक प्रकाश से जनों का उपकृती है अतः वसुः। सहस्र सूनुः वलस्य मन्थन वेगरूप का पुत्र है यतः मथ्यमान उत्पन्न होता है अतः एवं उच्यते। जल विषे अवस्थित वरुणात्मा से राजमान यद्वा वृष्टिरूपा जलों में विद्युद्रूप करि दीप्यमान। प्रातः काल में आदित्यात्मा से प्रकाशमान उषः काल में अग्नि होत्र के होमार्थ अग्नियों को प्रकट करते हैं तिस

अभि प्रायसै दीप्यमानः॥२२॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भः आरोदसीः अपृणज्जायमानः॥

वीरुश्चिदद्रिमभिनत्यरायज्जनायदग्निमयजन्तपञ्च॥२३॥

बोह अग्नि उत्पद्यमान सूर्यात्मा सै प्रकटी हो के द्यावा पृथिवीओं को सर्वतः तेज करिके पूर्ण करता है। केसाकि विश्वस्य केतुः अग्न्यात्मा सै विशेष करिके ज्ञान भूत है। भुवनस्य गर्भ भूत जात के गर्भवत् मध्य में अवस्थित वाय्वात्मा करि बोह ही प्राण भाव से भूतों के मध्य में गमन करता है। किंच जो द्रुत्तु रूप से परापरतः गमन करि के हृद भी अद्रि न विदीर्ण होने योग्य मेघ को विदारण करता है। जिस अग्नि को पाँच मनुष्य यजन करते हैं विप्र सै आदिले चारि और पाँचवाँ निषाद वा चारि वडे ऋत्विज और यजमान॥२३॥

उशिक्यावकोऽपरतिः सुमेधामर्तेष्वग्निरमृतो निधापि ॥

इयर्त्तिधूममरुषम्भरिभ्रदुच्छुक्तेण शोचिषाद्यामिनेक्षन् ॥२४॥

जो अग्नि मनुष्यों में देवताओं करिके प्राप्त हुआ इति शेषः। बोह अग्निः अरुषं चक्षुरादि उपद्रव रहित तम वाधूमको निकालता है केसा है अग्निकि उशिक प्यारा। पवित्र करने वाला पूर्ण मति वा दुष्टों में प्रीति करिके रहित सुन्दर बुद्धि वा सुयज्ञ अमृत अमरणर्म्मा जंगत को धारण करता निर्मल प्रभाव से आकाश को व्याप्त करता वानक्षत्र ग्रह ताराओं के संबंधी तेज करिके व्याप्त करता इतः प्रदानादि देवा उपजीवन्तीति श्रुतेः॥२४॥

दृशानोरुक्मः उर्याव्यद्योदुर्मर्षमायुः श्रियेरुचानः॥अ

† इतो वाऽअयम्  
धूमः तेतः सिञ्च  
तिधूमर्त्तामु-  
घावृष्टिर्भवती  
तिश्रुतेः।

ग्निरमृतोऽभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः॥२५॥

व्याख्याता १.॥२५॥

यस्तेऽद्य ह्यणवद्वद्र शोचे पूषन् देवघृतवन्तमग्ने॥ प्रतन्ने-

यप्रतरं वस्योऽच्छाभिसुम्नं देवभक्तं यविष्ठ॥२६॥

हे भद्र शोचे कल्याणकारिणी दीप्ति युक्त हे देव अग्ने प्रति पदामें जो पुरुष तेरे घृत युक्त उपस्तरणभियारणो पेत्त पुरोडाश को करता है स आज्यस्योपस्तीर्य द्विर्हविषोऽवदायाय प्राप्त ०१७०२१ ऊपर से आज्यका अभियारण करता इति श्रुत्यभिप्रायम्। हे यविष्ठ युवतमवामिं अपित तमतिस यजमान को प्रकृष्टतरस्थान उत्तमलोक को प्राप्त करि। आभिमुख्यसें सर्वतः देवयोग्य सुख को प्राप्त करि सलोक मागच्छत्यशोकमहिमं तस्मिन्वसति शाश्वतीः समा इति बृहदारण्य ० मा ०४.१५.॥२६॥

आतं भजसौ अवसेष्वम उक्थ उक्थ आभज शस्यमाने॥

प्रियः सूर्ये प्रियोऽग्ना भवात्युज्जातेन भिनद्दुज्जनि त्वैः॥२७॥

सौ अवसेषु कीर्तिहेतुभूत यज्ञ कर्मों में हे अग्ने तू तिस यजमान को निरन्तर कर्मानुष्ठायिकरि। उक्थे-उक्थे निष्केवल्य प्रगाथादि रूपतिस तिस शस्त्र कर्म विषे प्रेरि एवं तुरू करिके सेवित यह यजमान सूर्य का प्यारो हो तथा अग्नि का प्यारो हो तथा उत्पन्न पुत्र करिके उदय (वृद्धि) को प्राप्त हो तथा पौत्रादि कों से वृद्धि को प्राप्त हो॥२७॥

त्वामग्ने यजमानाऽऽनुद्युन्विश्यावसुं दधिरे वार्याणि॥

त्वया सह द्रविणमिच्छिमाना व्रजद्गोमन्तमुशिजो विववुः॥२८॥

हे अग्ने तुमै यजमान सेवन करते सर्व कालों में प्रार्थ्य संपूर्ण यथेष्ट धन को प्राप्त होते हैं। किंचित्तेरे साथ स्थित हुए तुमै सेवन करने वाले यजमान यज्ञफल को इच्छा करने वाले ज्ञान कर्म के दूकट्टे करने वाले हो रवि मण्डल विषे मार्ग को करते हैं। तदुक्तं ते यश्रवमे तद्विदुरित्युप क्रम्य देवलोकादादि यमिति ॥२८॥

अस्ताव्यग्निर्नृगं सुशेवो वैश्वानरं ऋषिभिः सोमगोपा ॥

अद्वेषेद्यावापृथिवी हुवे मदेवा यत्त रयि मस्मे सुवीरम् ॥२९॥

यजमान ऋत्विजों से अग्नि स्तुति किया। कैसा है अग्नि कि नरों के शो भन सुख को करने वाला जठराग्नि रूप से सब नरों के हित सोम का रक्षा करने वाला। अद्वेषे पादौ लिङ्गोक्तदेवौ। यतः अग्नि स्तुतः अतः द्वेषरहित द्यावापृथिवी को हम आह्वान करते हैं तिन्हें के आश्रित कर्म की वृद्धि के अर्थ। हे देवा अग्न्यादयः हमारे सुन्दर पुत्र युक्त धन को तुम स्थापन करो ॥२९॥

अ० ३ समिधाग्निं दुवस्य तघृते वै धयतातिथिम् ॥ आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥३०॥

अथ वनी वाहनम् ॥ का० १६६ १५० उरव्याग्नि के उत्तर दिशामें प्राणी षंशकृ को स्थापन करि यजमान उरव्याग्नि वनी वाहन में समि दाधान करे ॥ आङ्गिरस विरूपाक्ष दृष्टाग्नेयी गायत्री व्याख्याता पृच्छते ३१०। हे ऋत्विज यजमानो समिधा करिके अग्नि को परिचरण करि इस अतिथि अग्नि की चेता ओ। इस अग्नि में साकल्य से हवन करो ॥३०॥

उदुत्वा विश्वे देवाः अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ॥ स नो भव शिव  
स्त्वर्धं सुप्रीती को विभावसुः ॥ ३१ ॥

का० १६० ६० १६० समिदाधान के अन्तर उदुत्वेति मन्त्र करिके आसनी  
सहित उरव्याग्नि को ऊंचे करि दक्षिण में स्थित यजमान शकट में  
तिस अग्नि को स्थापन करे ॥ तः पस दृष्ट्याग्ने प्यनुष्टुप् ॥ हे अग्ने प्राण  
रूप सब देवता चित्तिभिः बुद्धिवृत्तियों करि तुम्हें ऊंचे को धारण करें हे  
अग्ने सो उद्धार्य माण तू मेरे कल्याण कारी हो ॥ कैसा है कि शोभन मुख  
दीप्ति ही है वसुधन जिसका वोह ॥ ३१ ॥

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान्याहि शिवे भिरुर्विभिष्टुम् ॥ बृहद्विभो  
नुभिर्भो सन्माहिर्हं सीस्तन्वा प्रजाः ॥ ३२ ॥

का० १६० ६० १८० शकट में चुपके से दृष्टों को जोड़िके प्रेदिति मन्त्र से  
पूर्व को यथार्थ प्रयोजन वन्त देश को गमन करे ॥ अग्निदेवत्यानुष्टु  
प् ॥ हे अग्ने शान्त ज्वालाओं करिके प्रकाश युक्त तू गमन करि ॥ किंच  
घोट रश्मियों से जगत् को प्रकाश करता अपने दाहक शरीर से पुत्रा  
दिक प्रजा का तमनाश कारि ॥ ३२ ॥

अकन्ददग्निस्तनयन्निवद्योः क्षामारे रिहृद्दी रुधः समञ्ज  
नू ॥ सद्यो यज्ञानो विहीमिद्धोऽपरव्य दारो र्दसी भानुना  
भात्यन्तः ॥ ३३ ॥

का० १६० ६० २० अक्षमें खिरि-खिरि शब्द होते जपे व्याख्याता ६ ॥ ३३ ॥

प्र-प्राय मग्निर्मरुतस्य शृण्वे वियत्सूर्यो न रोचते बृहद्वाः ॥  
अभियः पुरुषृतना सुतस्यो दीदायदैव्योऽप्रतिथिः शिवो नः ॥ ३४ ॥



का० १६० ६० २१० क्रियमाण उत्तरदिशा उद्धत वा उक्षित प्रदेशमें अग्नि को उतारै ततः अग्नि में प्र-प्रायमिति मन्त्रसे समिदाधान ॥ वसिष्ठदृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप् । यह अग्नि हवियों को धारण करता है भरतयजमान के आह्वान को श्रवण करता है इति शेषः वायजमान करिकिये आह्वान को श्रवण करता है । जो अग्नि सूर्य्य इव प्रकाशमान होता अत्यन्त प्रकाशता है । जो अग्नि संग्रामों में राक्षसके सम्मुख ठहरता है । देव संबन्धी अतिथि हमारा मङ्गल रूप वोही अग्नि प्रकाशता है ॥ ३५ ॥

आपो देवीः प्रतिगृह्णीत भस्मे तस्यो नेह एध्वर्षे सुरभा-  
उल्लोके ॥ तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नी म्मीते व पुत्रम्भि-  
भृताप्स्वेनत् ॥ ३५ ॥

का० १६० ६० २६० वनी वाहन के अनन्तर तडागादिजलस्थान को गमन करिके वटादि पत्र पुट करिके सायं प्रात उरवा के सकाशसे उठाया जो भस्म है तिसे एक ऋचा करि जल में डाले अन्वेवत्या त्रिष्टुप् । हे जल दीप्यमान ओ भस्म को तुम स्वागतादि करि ग्रहण करे किंच पुष्यधूपादिकोंसे शोभन गन्ध युत लोक (स्थान) में इस भस्म को करे किंच सुपत्यः शोभन है वरुण पति जिन्हों का तेजल वृक्षोत्पत्यादि द्वारेण अग्नि को उत्पादन करती है तुम तिस भस्म रूप अग्नि के लिये ग्रहाहो ओ किंच हे आप इस भस्म को आत्मा में तुम धारण करे यथा माता पुत्र को स्वात्मा में धारण करती है तद्वत्प्रात्यत ॥ ३५ ॥

अप्स्वग्ने सधिष्टव सोषधीरनु रुध्यसे ॥ गर्भे स जायसे पुनः ॥ ३६ ॥

अपस्वग्ने सधिष्टव सोषधीरनु रुध्यसे ॥ गर्भे स जायसे पुनः ॥ ३६ ॥

का० १६. ६. २७. तिसके अनन्तर पठित दोनों अश्वग्ने. गर्भोऽअ-  
सि. ऋचाओं से पत्रपुट करि द्वितीयवार उख्याग्नि भस्म को जल  
में प्राप्त करे ॥ विरूप दृष्टाग्नेयी गायत्री पूर्वमन्त्र करि मस्मातिथित्वसे  
स्तुति करि के दोओं से अग्नि के सर्व व्यापकत्व को कहते भस्माभ्य  
वहरण को अपनृत करते हैं। हे अग्ने जलों में तेरे स्थान सौतू यवादिक  
ओषधि परिणाम को विपरिणाम करता वा जठराग्निरूप करि ओ  
षधियों को स्वीकार करता है। किंच अरणियों के मध्य में स्थित हो-  
वारवार उत्पन्न होता है ॥ ३६ ॥

गर्भोऽअसोषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ॥ गर्भो विश्व  
स्य भूतस्याग्ने गर्भोऽअपामसि ॥ ३७ ॥

तिस्रोऽनुष्टुभोऽग्निदेवत्याः ॥ हे अग्ने तू ओषधिओं का गर्भ है भे  
षजरूप ओषधि विशेष करि के उत्पाद्य मानत्व से। हे अग्ने तू वन  
स्पति (तरु) ओं का गर्भ है अरणियों करि जाय मानत्व से। सर्व प्राणि जा  
त का गर्भ है जठराग्निरूप करि विद्य मानत्व से और जलों का गर्भ  
है वाडव वैद्युतादिरूपत्व से ॥ ३७ ॥

प्रसद्य मसना योनिं मपश्च पृथिवी मग्ने ॥ सृष्टं सज्य मा  
तृभिश्च ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥ ३८ ॥

का० १६. ६. २८. जल में फेंके हुए भस्म के सकाश से अनामिका क  
रि प्रसद्येति चारि ऋचाओं से भस्म को ग्रहण करे ॥ हे अग्ने तू भस्म  
करि के योनि कारण मूला पृथिवी को और योनि भूत जलों को प्रा  
प्त होकर मातृ जलों से एक होकर तेजस्वी संपन्न हो फिर स्वस्थान उ

रवा में बैठि ॥३८॥

पुनरासद्यसदनमपश्चपृथिवीमग्ने ॥ शोर्वेमातुर्यथोपस्थे  
न्तरस्याथंशिदतमः ॥३९॥

हे अग्ने जलभूमिरूपस्थान को प्राप्त होकैफिरभी इस उखा के मध्य  
में तू शयन करि माता के उत्सङ्ग में जैसे बालक सोता है कैसा है तू कि  
कल्याणतम ॥३९॥

पुनरुज्जीनिवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा ॥ पुनर्नः पाह्य  
र्हि हसः ॥४०॥

स हरज्जानिवर्त्तस्वाग्नेयिन्वस्वधारया ॥ विश्वफ्यावि  
श्वतस्यरि ॥४१॥

हेव्याख्याते ४०॥४०॥ १००॥४१॥

बोधामेऽअस्यवचसोयबिष्टमर्हि हिष्ठस्यप्रभृतस्यस्वधा  
वः ॥ पीयति त्वोऽअनुत्वं गृणाति वन्दारुष्टे तन्तु वन्दे  
ऽअग्ने ॥४२॥

का० १६.६.३ तडाग से आकर अनामिका करि ग्रहण किये हुए  
भस्म को चुपकैसे उखा में प्राप्त करि बोधामे इन दो ऋचाओं करि  
कै उखाग्नि को उपस्थित करै ॥ दीर्घतमो दृष्टाग्नेयी विष्टुप् । हे अन्न  
वनू हे युवत्तम अग्ने मेरे वचन के अभिप्राय को जान इति शेषः वा  
मेरे वचन को जान । कैसे वचन के किमहिष्ठ अतिशय करि कै वहु  
त तथा प्रभृत श्रोत्रयथ को प्रापित अर्थात् आदरोक्त के । किंच हे अग्ने  
एक पुरुष निंदा करता है एक तुम्हें स्तुति करता है कश्चिन् स्तोति कश्चि-

चिंदति इतिलोकस्वभावः एवं सति हे अग्ने में तेरे शरीर को स्तुति नम  
स्कार करता हूँ कैसा हूँ मैं कि वन्दनशील ॥४२॥

सवो॑धि॒सूरि॒र्मघ॒वाव॒सुप॑ते॒वसु॑दावन् ॥ यु॒यो॒ध्यु॒स्मद्वे॒षांश्च॑  
सि॒वि॒श्व के॒र्मणे॒स्वाहा॑ ॥४३॥ + स-सि।अ०वि-हा।इ०॥४३॥

सोमाहुति दृष्टाग्नेयी यजुरन्ता गायत्री। विश्व कर्मणे स्वाहेतियजुः  
हेवसु धनपत हे धन के दाता सो तू मेरे अभिप्राय को जान। कैसा  
है तू कि यण्डित धनवान्। संतुष्ट हो दो भाग्यों को हमसे पृथक् करि  
। का०१६०७०१० स्तुवस्थानीय समिधा से घृत को ग्रहण करि कै उरव्या  
ग्नि में हवन करें। तिस कर्म की प्रायश्चिति संज्ञा ॥ यजुः। जगत्सृष्टि  
स्थित्यादि कर्म कर्त्रे तेरे अर्थ सुहुत हो ॥४३॥

पुन॑स्त्वादि॒त्या रु॒द्राव॑सवः॒ समि॑न्धता॒ पुन॑र्ब्र॒ह्मणो॑वसु  
नीथ॑य॒ज्ञैः ॥ घृ॒तेन॑ त्वन्त॒न्त्वं व॑र्धयस्व स॒त्याः स॑न्तु॒य  
ज॑मानस्य॒ कामाः॑ ॥४४॥

का०१६०७०२० घृत होम के अनन्तर उठा करि तिसही समिध को उ  
रव्याग्नि में आधान करें ॥ आग्नेयी त्रिष्टुप्। हे अग्ने आदित्याः  
रुद्राः और वसवः तुम्हें फिर उपशान्त प्रकाश करें। हेवसु नीथ ध  
न के निमित्त स्तुति जिस की बाधनों का लाने वाला तिसका संबोध  
न हे धननेतः ब्राह्मण ऋत्विग्यजमान यज्ञों करि तुम्हें पुनः प्रका  
श करें और तू अपने शरीर को हमारे दिये हुए घृत से बढ़ा तेरी वृ  
द्धि में यजमान के काम सत्य हो ॥४४॥

अपे॑त॒वीत॒विच॑स॒र्ष्यता॒तोये॒त्रस्य॑ पु॒राणा॑ ये च॒नूत॑नाः ॥

अदा द्यमो वसानमृथिव्याऽअक्रन्निमम्पित रौलोक  
मस्मै ॥४५॥

अथ गार्हपत्यचयनमुच्यते ॥ का० १७.१३ पलाश शारवासै गार्हप  
त्यचितिके स्थान को व्यूहै अर्थात् तहां पड़े हुए तृण दिकों को स्थान  
सै बाहर निकाले अपेत वीति ऋचा के पछ पादों करिके प्रतिदिश को  
आदिमें प्राच्या मपेत वीतयेऽवस्थेति दक्षिणमें अदादिति पश्चात्  
क्रन्ति उत्तरमें ॥ लिङ्गोक्त बहु देवत्या त्रिष्टुप् अधर्चन तत्स्थान सर्पि  
ण उच्यंते पादेन यमः प्रादेन पितरः । यमस्य सर्वभूम्यधिपतित्वात्तद्भु-  
त्याः सर्वत्र चरन्ति तान्प्रत्युच्यते । हे यमभृत्य औजेचिरं तन औरजे नूत  
न तुम इस स्थान में होते सब तुम इस स्थान सै अति दूर गमन करे  
और इस स्थान सै संघात को त्याग करि विविध गमन करे । कस्माद्वय  
मपसर्पयामेत्यत आह पृथिवी के इस स्थान को यमदेव इस यजमान  
के अर्थ देता हुआ । और पितर इस लोक को इस यजमान के लिये क  
रते हुए । यम और पितरों करि इस चयन स्थान के यजमानार्थ देने सै  
तुम अपसर्पण हो औ ॥४५॥

संज्ञानमसिकामधरणम्मयिते कामधरणम्भूयात् ॥ अ

ग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीमसिचित्तस्य परिचितऽऊर्ध्वचितः

अग्रहम् ॥४६॥ संसिः अ० का-मू० इ० म-तू० उ० अ-सि० अ० चि-मू० ल० ॥४६॥

का० १७.१४ जिस सै व्यु दहन किया तिस शारवा को उत्तर को फेंक करि  
गार्हपत्यचिति स्थान में क्षार मृदा को निर्वपन करे ॥ ऊष देवत्या नित्री  
णि १२ दे-पं० ३ या-पं० । हे ऊष स्वरूप तृप शुओं के सम्यक् ज्ञान का-

अत्र भाविन्या  
वृत्त्या शालाहा  
यो गार्हपत्यश  
रुनोच्यते तद्-  
थाचिति स्थिते  
स्थानमपि गार्ह  
पत्य एव ।

साधनहै पशुहें ते ऊष देश की घ्राण करि स्वादन करतेहैं। तथा मनों  
 रथों को सम्पादन करताहै यज्ञद्वारा काम सम्पादकत्वसे। अतः तेरी-  
 काम सम्पादन सामर्थ्य मेरें हो वा श्रुतिके अनुसार कर व्याख्यान तेरेका  
 मधरण पशु मेरें होवें यतः तू कामधरण पशुरूप सम्यक् ज्ञापकहै उल्ब  
 सम्भवात्॥ का० १७०१६० ऊषवत् सिकता निर्वपन करै॥ सिकता देवत्या  
 आसु-पं०। हे सिकता स्वरूप तू अग्निका भस्म (भासक) है सिकता स्थ अ  
 ग्नि अत्युग्र होता है। और अग्निका पूरण है॥ का० १७०१७० एकविंश  
 निपरिश्रितों करि गार्हपत्यस्थान को बेष्टन करै पूर्ववत् प्रदक्षिण ऊंचे  
 तेरवनियेहें॥ परिश्रिदेवत्यं आसु उ०। हे परिश्रित शर्कराओं तुम स  
 र्वत स्थापिता हो ऊर्ध्वस्थापित हुई तुम इस गार्हपत्यायतन को सेवन  
 करै॥ ४६॥

अयर्हसोऽग्निर्यस्मिन्सोममिन्द्रः सुतद्धेजुर्देवाव  
 शानः॥ सहस्रियन्वाजमत्यन्नसप्तिर्हंसस्वान्सन्तसूयसे  
 जातवेदः॥ ४७॥

का० १७०१८० ततः अध्वर्यु मण्डल से दक्षिण में पूर्व मुख बैठ कर मध्य  
 में चारि अर्ध बहती संज्ञक दृष्टका प्राग्लक्षणा दक्षिणोत्तर पङ्क्ति-  
 करि उत्तर को आरम्भ करिके समीप में धारण करै। अभ्यात्म्य च  
 यन मित्युक्तेः॥ ऋक तुष्क से एक-एक को। हस्त दीर्घ तिससे अर्ध आ  
 याम पद्या लोक द्वय व्यापिनी दृष्टका अर्ध बहती कहियें हैं। पंच-  
 ऋचो विश्वामित्र दृष्टा आग्नेय्यस्त्रिष्टुभश्चतुर्थ्यनुष्टुप्। दृष्टकाओं  
 के उपधान को कर्त्ता अभिनयेन दिखलाता है यह गार्हपत्य सो अ

+ पशु के काः ऊष पशवः काम धरणं पशुरूपं मयि नैष शोभेति श्रुतेः शत० ७०१२०८०

+ न वाऽग्निस्वभस्मातिदहति। अग्निरेतद्देवानरस्यरेतीयसिकता इव शत० ७०१२०८०१००



ग्नि इष्टकाओं करि चयन करिये है इति शेषः। जिस अग्नि में चित होने से इन्द्र सोम को अपने उदर में धारण करता है। कैसा इन्द्र किका मयमान। कैसा है सोम कि सहस्रार्ह। वाज (अन्न) बहुतों का तृप्तिकरने वाला। भक्षण करते ही मद करने वाला। तृप्तिकरने वाला। अग्नि में चित्त हुए पर केवल इन्द्र हीनें सोम को जठर में रखा किंतु हे जात वेद हे अग्ने तू भी हवियों के सम्भजन कर ऋत्विग्य जमानों से स्तुत किया गया। उत्तरार्ध स्यायं वार्थः। हे जात वेद गमन कुशल अश्व-इव सहस्र संख्या कथन करि सम्मित अन्न देने से यजमानों करितु स्तुत है ॥४७॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्या यदोधधीष्वा यजत्र॥ ये नान्तरिक्षमुर्वीततन्यत्वेष्टः सभानुरेणो नृचक्षाः ॥४८॥  
हे आय जत्र मर्याद या यजनीय हे अग्ने तेरी जो द्युलोक में दीप्ति अर्करूप वर्त्ते है और जो पृथिवी में अग्निरूप और जो ओषधी ओं में स्थित और जो जलों में स्थित और जिस दीप्ति करि अन्तरिक्ष को विस्तार करता है वोह भानु (दीप्ति) सकल विश्व को प्रकाश करती है अर्णवः अर्थात् उदक हैं जिसमें वा अरणवान् गमनवान् प्रसरणशील। नरों के शुभा शुभ कर्म का दृष्टा। ईदृश जो तेरी भानुति सी इष्टकारूप को उपधान करता हूं। अनेन त्रिस्थानोऽग्निः स्तुतः ॥४८॥

अग्ने दिवोऽर्णो मच्छा जिगास्यच्छा देवा रं ॥ ऊँ चिषेधि ष्याये ॥ यारोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्तः आपः ॥४९॥

हे अग्ने शु लोक के संबंधि उदक को तू आभिमुख्येन प्राप्त हो । किंच जे देवता धिषण्या कहिये हैं तिन्ह प्राणरूप देवताओं को तू सन्मुख प्राप्त होता है किंच दीप्त रूप मण्डल में वर्तमान सूर्य के ऊपर नीचे जो जल उपतिष्ठे हैं तिस जल के तू आभिमुख्येन जाता है त्वमेवै तै रूपैः परिणमसीति भावः ॥४४॥

पुरीष्या सोऽग्नयः प्रावृणोभिः सजोषसः ॥ जुषन्तो यज्ञमद्बुहो नमीवा इषो मही ॥ ५० ॥

अनुष्टुप् । अग्निये एते इष्टका रूपा हमारे इस याग को सेवन करें और नहीं हैं व्याधि (क्षुधा तृष्णानिबर्तिका बहुला और अन्नभक्त) अग्निये सेवन करें । कैसे हैं अग्नि कि पुरीष्यः पशुओं से हित । तथा प्रकर्षेण मनसा प्रीति युक्ता । अहिंसता परस्पर प्रीति युता ॥५०॥

इडामग्ने पुरुर्दसं सनिङ्गोः शश्वत्तमर्हं हवमानाय साध ॥

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजा वाग्ने साते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५१ ॥

का. १७. १. ११. इडामग्न इति दोऽत्र चाओं करि प्रतिमन्त्र पश्चिम में दोषाद् मात्री पाद्यातिरश्ची उदग्लक्षणा उपधान करै उत्तर से अवस्थित दक्षिण मुख इडामिति दक्षिणा अयंत इति उत्तरं ॥ द्वे आग्नेय्यी त्रिष्टुबनुष्टुभौ । हे अग्ने हवमान (यजमान) के अर्थ अन्न को संपादन करि । कैसे अन्न को कि बहुत हैं कर्म जिससे अर्थात् बहु कर्म साधन भूत अन्न को दे । तथा अत्यन्त अविच्छेदन वर्तमान अनपायिन धेनु संबंधि दान पयोदधि घृतादिक को सर्वदा दे । किंच हमारे यजमानों के सूनुः (पुत्र) हो । कैसा सूनुः कितनयः और सः सूनु शब्देन

† आहूयति देवान्नु हीति वा यजमानः पशवा वा इडेति शत ०७. १०. १२. तद्वलीवर्द्धे रन्न स्रोत्य यमानत्वात्

उक्तत्वाद् न पुत्रादिव्यावृत्त्यैः अथवा तनयः अग्नि होत्रादि कर्मोका  
विस्तार करनेवाला तथा प्रजावान् हे अग्ने तेरी वह अन्न गौ पुत्रदान  
विषया शोभना बुद्धि अनुग्रहेण हम विषे हो यजमाने म्यस्त्वयान्नादि  
देयमिति भावः ॥५१॥

अयन्ते यो निःकृत्वियो यतो जातोऽऽरोच्यथाः ॥ तं जान  
न्नग्नः आरोहाथा नो वर्द्धयारुयिम् ॥५२॥

व्याख्याता ३.१४ ॥५२॥

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वध्रुवासीदपरिचिदसि तया  
देवतयाङ्गिरस्वध्रुवासीद ॥५३॥ चि-दा.अ.१.प-दा.२.॥५३॥

का. १७.१.१२. तिसके उत्तर अपर मार्गेण दक्षिण को चलकर चिदसी  
ति प्रति मन्त्र पूर्व में तिरश्ची उद ग्लक्षणा दक्षिण में स्थित उदङ्मुख उ  
पधान करे चिदसीति उत्तरां परिचिदसीति दक्षिणां ॥ इष्टका देवत्येदे  
सामानुष्टुबृहती हे इष्टकेतू स्थापित है वा भोग संपादिका है। तिस  
सिद्धि देवता वाग् रूपा करि सावधान किई हुई जैसे प्राण सब अङ्ग में स्थि  
त तैसे स्थिरा हुई निवेश करि। द्वितीयासु उदधाति परितः सर्वतः चीयते  
वापरितो भोगांश्चिनोति तू परिचित है ॥ अन्यद्व्याख्यातम् ॥५३॥

लोकमृणस्त्रिद्विमृणयोसीदध्रुवात्वम् ॥ इन्द्राग्नीत्वा  
बृहस्पतिरस्मिन्योनावसीषदन् ॥५४॥

का. १७.१.१७. प्रथम चुपके से उपहिता तीन लोकमृण इष्टका  
ओं में लोकमृण इति अभिमन्त्रण फिरि दशों विषे मन्त्र है वा प्रथम  
दो लोकमृण ओं में मन्त्र फिरि दशों में पुनः एक में ऐसे एक विंश

ति इष्ट का गार्हपत्यमें हैं ॥ लोकम्पुण देवत्यानुष्टुप् । हे लोकम्पु  
णोष्ट के तू लोक (गार्हपत्यचयन देशमें पूर्वोष्ट का ओंसे अनाजान्त  
स्थान को पूरि। तथा छिद्र को भरि कोई भी छिद्र जैसे नदी रैवै तैसे संश्लि  
ष्टा हो ॥ और स्थिरा हो के तू बैठि। किंच इन्द्राग्नी और वृहस्पति एते दे  
वता इस स्थानमें तुम्हें सादन करते हुए नही मनुष्य अध्वर्युतिन्हें सा  
दन करने को समर्थ है इति भावः ॥ ५४ ॥

ताऽअस्य सूर्दोहसः सोमं च श्रीणन्ति पृश्नयः ॥ जन्मन्दे  
वानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥ ५५ ॥

का० १६०७१४० तथा देवतयेति सादनं, ताऽअस्येति सूर्दोहसाधिव  
दनं एते नित्ये सर्वत्रेति सूत्रार्थः ॥ इन्द्रपुत्रप्रिय मेघदृष्टा देवत्यानु  
ष्टुप् । देवः (द्युलोक संवंधी वा दिवश्च्युता सूर्दोहसः) जलकरि स  
हित और अन्नयुक्त वोह जल प्रसिद्ध इस यज्ञ संवंधी सोम को भले  
प्रकार मिश्रित (पक्क) करते हैं कैसे हैं सूर्दोहसः कि पृश्नयः नानाविधा  
वा अन्नरूपाः ॥ अर्थात् यहां आके व्रीह्यादि धान्य निष्पादकाः ॥  
कव मिश्रित करते हैं कि देवानां जन्मन् संवत्सर ५ विषे सम्वत्सरे  
सम्वत्सरे सोम पागस्त दभिषा यमेतत् । तीनों सबनो में ॥ यज्ञप  
रिणामभूता अन्नोत्पादि का जल दिविके सकाश से इस लोक में गि  
रिके ओषधी वनस्पति अन्न हो सोम का उपकर्त्ते हैं इति भावः ॥ ५५ ॥

इन्द्रं विश्वाऽअवी वृधन्तस्मुद्रव्यचसङ्गिरः ॥ रथीतम  
हं रथीनां वा जानां च सत्यंति यतिम् ॥ ५६ ॥

का० १७०१०१८ चात्वाल स्थान से मुद्राले करि गार्हपत्य चितिके

१ अतः ०८०७३२१ अन्नं वै पृश्नीति श्रुतेः ।  
२ अतः ०८०७३२१ संवत्सरो वै देवानां जन्मति श्रुतेः ।  
३ अतः ०८०७३२१ सबनानि व्रीणि वेरोचनानीति श्रुतेः ।

१ अतः ०८०७३२१ अन्नं वै पृश्नीति श्रुतेः ।  
२ अतः ०८०७३२१ संवत्सरो वै देवानां जन्मति श्रुतेः ।  
३ अतः ०८०७३२१ सबनानि व्रीणि वेरोचनानीति श्रुतेः ।

ऊपर डालें॥ इन्द्र देवत्या मधु छन्द सुतजेतृ दृष्टानुष्टुप्॥ ऋग्यजुःसा  
मरूपा स्तुतिये इन्द्र को बटाती हैं। कैसे इन्द्र को कि समुद्र व द्यापक अ  
र्थात् विविधा च्चन नाना गति वा अक्षोभ्य गति। सवरथी ओं के बी  
च अत्यन्तरथ युक्त महारथी अर्थात् रथ युद्ध में अतिशय लब्ध  
तथा अन्नों के पति और सद्धर्म वर्ति ओं के प्रतिपालक॥५६॥

समितर्हं सङ्कल्पेथां सन्निधौ रोचिष्णुसुमनस्यमानो॥

इष मूर्जं मभिसम्बसानो॥५७॥

का० १७०११६० गार्हपत्य चितिको मृत्यूरण से परिश्रित (सम) करि  
के तिस के बीच में नीचे उष्याग्नि को चारि मंत्रों से स्थापन करे॥ द्य  
ग्नि देवत्या १० उष्याकू २० उपरि दृष्टाहृती ३० उष्याकू ४० पङ्क्तियोः॥  
हे चित्योष्याग्नी तुम संगत होओ और संकल्प होओ वा संकल्पन (य  
ज्ञनिष्पादन करो) कैसे हो तुम कि परस्पर प्रीति युक्त दीप्यमान। पर  
स्पर शोभन चित्तवन्त अन्न और घृतादि उप सेचन को अभ्यवहार क  
र्ने वा भले प्रकार सम्पादन कर्ते॥५७॥

सं वा मनांश्चिसं व्रतासमुचितान्याकरम्॥ अग्नेषु

रीष्याधिषामेव त्वन्न इष मूर्जं यजमानाय धेहि॥५८॥

हे पूर्वोक्त अग्नियों तुम्हारे मनो (मन बुद्धि अहंकार को) समाकर  
म्। सर्वतः संगत कर्ता हूं। तथा व्रतों (कर्मों) को समाकरम्। तथा चि  
त्तों (मनो गति संस्कारों) को समाकरम् उकारः समुच्चयार्थः। एवं म  
नः कर्म संस्कार से एकी किये एकी भूत अग्नि को प्रार्थना करिये हे  
हे पुरीष्य (पशव्य) हे अग्ने तू हमारा पालक हो अन्न और तिसका

उप सेवन दध्यादि यजमान के अर्थ दे ॥ ५८ ॥

अग्नेत्वं पुरीष्यो रयिमान्युष्टिमा २ ॥ असि ॥ शिवाः कृ  
त्वादिशः सर्वाः स्वयोनिमिहासदः ॥ ५९ ॥

हे अग्ने तू पशव्य है और धनवान पोष युक्त है अतः सब दिशाएँ शां  
त करिके इस चयन विषे स्वकीय स्थान को प्राप्त हो ॥ ५९ ॥

मवेतन्नः समनसो सचेत सावरेयसौ ॥ मायज्ञं हि हिंसि  
ष्टं मायज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमुद्यनः ॥ ६० ॥

व्याख्याता ५३ ॥ ६० ॥

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्युमग्निं स्वयोनावभारुखा ॥ तां  
विश्वे देवैः ऋतुभिः सम्विद्वानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा-  
विमुञ्चतु ॥ ६१ ॥

का० १७० १० २१ शून्या उखा को सिकता से पूरण करि मातेवेति मंत्रे  
ण शिक्वा से प्रथक करिके अश्विवत् स्थापित अग्नि के उत्तर में अरति  
मात्र गार्हपत्य चितिके ऊपर ही उखा को रखिके तिसके बीच दुग्ध को  
चुप के से सींचे ॥ उखास्तुतिस्त्रिष्टुप् । मृन्मयी जो उखा पशव्य अग्नि  
को स्वकीय गर्भस्थान में रखती हुई । जैसे माता पुत्र को उत्संग में र  
खती है । प्रजापति तिसकृत कृत्या उखा को शिक्वा पाश से मुक्त करे के  
सा है प्रजापति कि विश्वे देवा और ऋतुओं से संवित् अत्यन्त एक  
होके अहो बड़ा कर्म उखा का किया यह संवाद कर्ता । विश्व कर्मा-  
सृष्टि रूप कर्म जिसका ॥ ६१ ॥

अ० ५ असुन्वन्तमयजमानमिह स्तेनस्येत्यामन्विहितं स्कर



स्य॥ अन्य मस्मदिच्छसात इत्यानमो देवि निर्ऋते तुभ्यं  
मस्तु॥ ६२॥

का० १७.१.२३.२.१. ततः अव्ययं राजसूय में हविष्य शन होमवि  
षं जैसा देश तैसा आप प्रदीर्ण वा इरण में असुन्वन्तमिति प्रत्यं  
च तीन्यो नैर्ऋती संज्ञा दृष्टका दक्षिणोत्तरा करिके फिर तिन्होंका  
अस्पर्श कर्ता उपधान करे। कैसी दृष्टका किपाक करि कृष्णवर्णा  
तुषही से पक्क लक्षण हीन पद्या पराची अनात्म मुग्धी। अवदक्षि  
णामुख हो पूर्व में उत्तरा को रखिके फिर दक्षिण में दोरखै॥ तिस्रो  
निर्ऋति देवत्या स्त्रिष्टुभः॥ हे निर्ऋते असुन्वन्त सोम यागनकर  
नेवाले और अयजमान हवियजों से यजनन करनेवाले को तू पक  
डि। किंच गुप्तचोर प्रकटचोर तिन्हो को पीछे से जाय करि पकडि।  
सर्वथा सोम याग करनेवाले और हवियजों से पूजनेवाले हमलो  
गों को मति पकडि। सा दुष्ट शिक्षा तेरी गति श्रव्या हे देवि निर्ऋते  
एवं भूता तेरे अर्थ नमस्कार हो॥ ६२॥

नमः सुते निर्ऋते तिग्म तेजो यस्मिन् विचृता बन्ध मेत  
म्॥ यमे नत्वं यम्या संमिदानीं तमे नाके अधि रोहये  
नम्॥ ६३॥

हे तिग्म तेजः दुःसह तेज हे निर्ऋते तेरे अर्थ सुतरा नमस्कार  
हो। सोतू लोह पाशवत् दृढ इस बंध (जीवत्व करि जन्म मृति रूप-  
अज्ञान को विशेषण कारि। किंच अग्नि और पृथिवी से संवाद क  
रती उत्कृष्ट नाक सर्व सुखोपेत दुःखमातृ हीन स्वर्गी विषे इस यज

भूमिर्वनिर्ऋतिर्देवि भिमा निमी देवता वा



मोक के अनन्तर निर्वृत्तिसे आज्ञा पाकर अग्निरूप को आश्रय हो  
हेयजमान इस अन्न को भक्षण करि ॥ का० १७०२४ शिखादिनिरस  
न के अनन्तर अपने और नैर्वृत्ति इष्टकाओं के बीचमें जलपूर्ण  
चमस को चुपकेसे ओंधाय ब्रह्मा यजमान अध्वर्यु नमः इस मंत्रक  
रि निर्वृत्ति समीपसे उठें ॥ भूतदेवतै कपदाविराट् ॥ जिस देवीने  
यह अग्नि लक्षण कर्म किया तिस भूतै श्रीरूपिणी देवी के अर्थ-  
नमस्कारोऽस्तु ॥ ६५ ॥

निवेशनः सङ्गमनोवसूनां विश्वारूपाभिचष्टेः शचीभिः ॥

देवः देवसविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थो समरेपथीनाम् ॥ ६६ ॥

का० १७०२६ ब्रह्मा यजमान अध्वर्यु नैर्वृत्युपधान देशसे पीछेन  
देखते शाला को जावेँ अध्वर्यु चलिकर शालाद्वारी गार्हपत्यचि-  
तिरूप अग्नि को उपस्थान करे ॥ विश्वावसुर्देव गन्धर्व दृष्टेन्द्र अ-  
ग्निदेवत्या त्रिष्टुप् । यह अग्नि सब आहवनीया दतिप्रणीताग्नी-  
ध्र धिष्ण्यादिक सब रूप सर्वतः देखता है केसे रूप कि अपने-अपने कर्मों  
से युक्त इति शेषः ॥ कैसे हैं अग्नि कि यजमान को अपने घरमें स्थापि-  
त कस्ता ॥ तथा प्रजा पशु रूपधन का प्रापक । सत्यधर्म (सत्य अवश्य  
भावी फलोपतधर्म) अग्नि होत्रादिलक्षण जिसके वोह । कैसे कि-  
जैसे सूर्यदेव सब रूप देखता । और जो अग्नि परिपंथियोंसे संग्रा-  
ममें इन्द्र जैसे स्थित होता तद्वत् स्थित हुआ तिसे हम स्तुति करते हैं  
इति शेषः ॥ ६६ ॥

सीरायुञ्जन्ति कवयो युगावितन्वने पृथक् ॥ धीरा देवे

षु सुम्नया ॥ ६७ ॥

का० १७०२११ चितिके दक्षिण ओणिसै खडा अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता के उत्तरांशपूर्वमें षट् वा द्वादश वा चौबीस वैलोंसै जुड़े हुए ओं दुं बर हलको दो मंत्रोंसै अभिमंत्रित करे ॥ सीर देवत्ये सोम पुत्र बुधा दृष्टे द्वे गायत्री दृष्ट भौ। बुद्धिमान अग्नि होत्र के जानने वाले खेत कर्म के जानने वाले हल (बैल) जोड़ते नाना प्रकार विस्तार करने हैं। क्या करने को कि देवताओं के सुख करने को इति शेषः ॥ ६७ ॥

युनक्त सीरा वियुगातनुध्वं कृते योनौ वपते हवीजम् ॥  
गिरा च शुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सु एयुः पक्वमे  
यात् ॥ ६८ ॥

हे हल हारे ओं हल जोड़ो सौल पचारी जोताओंसै विस्तार करो। फिर जोतनेसै संस्कार किये इस स्थान में बीज ब्रीह्यादि क तुमवो ओं किससै कि गिरा या ओषधी रित्यादिक या क० ७५ वेद मंत्र वाचा और चमससै किंच वाग्वेगीरं नठं सुष्टिरिति शत० ७२२ ५ श्रुतेः अन्न जाति ब्रीह्यादि का फल पुष्ट्या सह वर्तमाना पुष्टा हो जैसै थोड़े ही काल करि पका अनाज हमारे घरमें आवै ॥ ६८ ॥

शुनर्त्तु सुफला विष्टं नु भूमिर्त्तु शुनं कीनाशाः अभि  
येन्नुवाहेः ॥ शुना सी राह विषा तोशमाना सुपिप्पला  
ओषधीः कर्तनास्मे ॥ ६९ ॥

का० १७०२१२ परिश्रित समीप चिति स्थानमें चारि ऋचाओंसै दक्षिण पश्चिम उत्तर पूर्व चारि सीता जोतै ॥ कुमार हारित दृष्टाः

सीतादेवत्याश्चतस्रः द्वे त्रिष्टुभौ तृतीया पङ्क्तिश्चतुर्थ्यनुष्टुप्। शोभ  
ना फाला (सीरा के अर्गस्थ लोह वि शेष कुसि) सुख जे से ते से भू  
मि को कृषे (कूड करे) हल हारे सुख पूर्वक वैलों के साथ चलें। हे शु  
नासीरी + वाय्वादित्यो तुम हमारी ओषधीयें। (व्रीह्यादिकों को) शोभ  
न फाला करो कैसे हो शुनासीरा कि हवि (जल) से भूमि को सींचते  
ओषधियें सफल करो इति भावः ॥ ६४ ॥

घृते न सीता मधुना समज्यतां वि श्वे ह वै रनुमता मरुद्भिः ॥  
ऊर्जस्वती पयसा पितृवमाना स्मान् सीते पयसा म्याव वृ  
त्स्व ॥ ७० ॥

सीता (लाङ्गल पद्धति, हलैया) जल करि कै सिञ्चित हों। कैसी सीता  
कि विश्व देवा और मरुतों से अनुज्ञाता वा अङ्गीकृता एवं परोक्ष  
मुक्ताप्रत्यक्ष माह हे सीते अन्नवती सोतू पयदधिघृतादिक से दि  
शा पूर्ण कर्ती दुग्धादिके साथ हमारे अनुकूल हो ॥ ७० ॥

लाङ्गलं पवीरवत्सु शेवर्धं सोमपित्सरु ॥ तदुदपतिगा  
मविं प्रफर्ष्य च पीवरीं प्रस्थावद्वयवाहनम् ॥ ७१ ॥

तिस पूर्वोक्त हल को गो (वैल) अवि (मेंढा) और रथ वाहक अश्वदि  
क प्राप्त कर्ता है। कृषि समृद्धि में ही गवादि यजमान के सुलभ इति  
भावः अतएव लाङ्गल गवादि प्रापक है। कैसे हल को कि फाल (कु  
सि संयुक्त) तथा शोभन सुख करने वाला। तथा सोमपित्सरु - सोम पी  
ने वाले यजमान के निमित्त भूमि को खनता वा यजमान विषे पा  
पको नाश कर्ता है वा सोम पीते हैं जिससे अर्थात् चमस तिसकानि

४  
+ भुने वायुपत्यादि

ष्यादक नहीं लाङ्गल कर्म विना सोम चमस होता । अर्थात् ऐसे हल को गवादि चलाती हैं कैसी हैं गो और भेड़ कि प्रकर्षे न चलती अतिवेगवति । तथा पुष्टाङ्गी । कैसे रथवाहन को कि उत्कृष्ट गोपेत ॥१॥

कामं कामदुग्धे धुस्व मित्राय वरुणाय च ॥ इन्द्रायाश्चि

भ्या पूषो प्रजाभ्यः ओषधीभ्यः ॥७२॥

हे कामदुग्धे (मनोरथों को पूर्ण करने वाली लाङ्गल पद्धते, हलैया) मित्र वरुण इन्द्र अश्विनी कुमार पूषा के अर्थ और प्रजा के अर्थ ओषधि निष्पत्यर्थ अपेक्षित भोग को निष्पादन करि ॥७२॥

विमुच्यध्वमघ्या देवयानाः अगन्मतमससारमस्य ॥

ज्योतिरापाम ॥७३॥

का० १७०२०२१ वृषों को हलसे निकाल कर पशुवत् ईशानदिशा प्रति अध्वर्यु छोड़ें और यजमान सुत्या विषे सीर सहित तिन्हों को अध्वर्यु के अर्थ देवें ॥ विमोचने मन्त्रः वृषदेवत्या विराट् शङ्खमती गायत्री । हे देवयानाः देवतार्थ कर्म करने वाले और देवताओं के अर्थ यान कृषादि उद्यम तिन्हों का वादेवयान मार्ग भूत और कर्म द्वारा तिसके प्राप्त करने वाले और हे अध्या बलीवर्द और तुम छूटो अर्थात् जगत्पितृ हेतु ऋषिको निष्पादन करि कृत कृत्य हुए जुड़ने से प्रथक् हो और इस तम क्षुत्पिपासाद्युद्धूत दुःख के पार समाप्ति को हम पहुंचें । दुःख के पार को स्पष्ट करता है हम ज्योति परमात्मलक्षण वायन्न रूप तेज को प्राप्त हुए ॥७३॥

सजूरब्धोऽयवोभिः सजूरुषाः अरुणीभिः ॥ सजोष



सावश्चिनादहं सोमिः सज्जुः सूर्य एत शोन सज्जुर्वै श्वानर इ  
डया घृतेन स्वाहा ॥७४॥

का० १७.३.२. तहां संस्कृत जुह्वाकरि पञ्च गृहीत आज्यसे कृष्टात्ममध्य  
स्थापित कुशस्तम्ब विषे सुच को ऊंची करते होमें ॥ लिङ्गोक्त देवतं यजु  
ब्राह्म्यनुष्टुप्छन्दस्कम् । अब्दः (जलों का देने वाला संवत्सर) उषा (प्रातः  
की अधिष्ठात्री देवता) अश्विनो (देवताओं के वैद्य) सूरः (सूर्य) और वै  
श्वानर (अग्नि) इन अब्दादिकों के अर्थ यह घृत सुहृत हो । तेषां प्रत्येक  
विशेषणानि । कैसा है अब्द कि अयवोभिः सज्जुः, अयवों अर्धमासों और  
अयवों मासों से प्रीति युक्त । कैसी उषा कि अरुणवर्ण किरणों से सज्जुः  
कैसे अश्विनो किचिकित्सादि कर्मों से सज्जुः । कैसा सूर्य कि अश्व से स  
ज्जुः । कैसा अग्नि कि पृथिवी से सज्जुः । ॥७४॥

अ. ६ याऽश्रोषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ॥ मनेनुबभू  
णामहर्हं शतं धामानि सप्त च ॥७५॥

का० १७.३.७. याऽश्रोषधी इन पांच तृचों से चमस करि सर्वोषधिवपै उ  
दपात्रवत् चारों-चारों सीताओं में यथाकृष्ट ॥ अथर्वपुत्रभिषगृष्टाऽश्रो  
षधि देवत्यायोऽस्मान्मिदासतीत्यन्ता १०१ सप्तविंशति रनुष्टुभः  
मुञ्चन्तु मेत्याद्या ४० द्वादशबन्धुदृष्टाः कुत्रापि कर्मण्यनियुक्तः । युगश  
ब्दः कालवाची तीनों युगों का समाहार त्रियुग त्रिकाल वसंत प्रावृत्त और  
र शरद में । पुरा सृष्टिकी आदि में जो अश्रोषधी हैं भाविनी अश्रोषधीओं से  
पहिले उत्पन्न हुई किमर्थम् कि देवता (ऋतु हैं) अश्रोषधि युक्त की जा  
वें एतदर्थम् । बभूणं जगत्जन (जनन) भरण समर्थ बापाक करि

१ पञ्चदशभिषगृष्टाद्वादशबन्धुदृष्टा चैव सप्तविंशति ।

तदधिष्ठितत्वात् आग्निमीहि पृथिवी इडाशब्देन गौर्वीर्यात् नोच्यते

१ अत वा विदेवः इति शत ७.२.४.२६. ७५

पिङ्गलवर्णं तिन ओषधीः ओं के सो १०० और सात ७ धामों को में ने जा  
जाना। संवत्सरोपलक्षित एक-एक स्थान शतायुर्वै पुरुष इति श्रुतेः  
शतं वर्षात्मकधामों और शिरःस्थ मुख १ नेत्र २ नासा छिद्र २ कर्ण २  
सप्त ७ स्थानों यथावेमे सप्तशीर्षन् प्राणास्ताने तदा हेति शत ०७२  
४०२६ शतवर्ष पर्यन्त इन्द्रियों की ओषधी करि नर्प्य मानत्व से त  
त्स्थानत्व अथवा असंख्यात् स्थान भेदों जाति भेदों से और सप्त  
भेदग्राम्य आरण्यादि और ब्रीह्यादि और नीवारादि को में ने जाना ७५  
शतं वोऽम्बुधामानि सहस्रमुत वोरुहः ॥ अधो शतक  
त्वो यूयमिमं मेऽगदं कृत ॥ ७६ ॥

हे अम्बु मातृ स्थाना ओषधी ओ तुम्हारे धाम जाति भेद वा क्षेत्र  
वा जन्म से कड़ो हैं और तुम्हारे सहस्रों अङ्कुर हैं ॥ एवं सति हे शत  
कत्वो से कड़ों कर्म जिन्हों से तुम मेरे इस यजमान को अगद क्षुत्पि  
पासादिषडूर्मिरागेरहित करौ ॥ ७६ ॥

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्यवतीः प्रसूवरीः ॥ अश्वः इव स  
जित्व गीर्वीरुधः पारयिषावः ॥ ७७ ॥

हे ओषधी ओ तुम प्रसन्न होओ। कैसी हो तुम कि पुष्योपेताः फलों की  
उत्पन्न करने वाली। जैसे अश्व सग्राम में जय शील हैं तद्वत् फलपर्यन्त  
त्वसे जय शीलाः वीरुधः ७ व्याधिकी विविध निवारण करने वाली  
बहुत अङ्कुराः पारयिषावः ७ फलपाकान्तत्व को परित्याग करि ब  
हुकाल कर्म परायण शीलाः ॥ ७७ ॥

ओषधी रिति मातरस्तद्वो देवी रूपं ब्रुवे ॥ सनेयमश्वङ्गा

स्वासः आत्मानं तव पूरुष ॥ ७८ ॥

हे ओषधी ओ हे जगन्निर्मात्री ओ (भोजन दान व्याध्यपगमादिकों से उपकत्री ओ) हे देवी ओ तुम प्रति इस वक्ष्यमाण विधिकर प्रसिद्ध अभीष्ट को प्रार्थना करता हूँ। यह क्या कि हे यज्ञपुरुष तेरे प्रसाद से अश्व गौ वस्त्र शरीर को मैं सम्भजन करूँ यज्ञपुरुष प्रति जो मुझकरि अश्व आदिक प्रार्थना किये ते ओषधी ओ से अनुमन्तव्य यह ओषधि प्रार्थना है इति भावः ॥ ७८ ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पण्ये वो वसतिः कृता ॥ गोभाज इत्कि-  
लासयत्स नवयत् पूरुषम् ॥ ७९ ॥

हे ओषधी ओ तुम्हारा अश्वत्थ आश्वत्थी उपभूत सुक विषे स्थान है - ह विषां तत्र स्थापनात् किंच तुम्हारी पलाश मयी जुह्वा विषे स्थित की गयी - अध्वर्युना होमार्थ जुह्वा स्थापनात् हे हविर्भूता ओषधियो तुम अग्नि में होमी हुई आदित्य को भजती हो ॥ यद्वा अश्वत्थे वो निषदनं अश्वत्थ के फलते सब ओषधि ओ के फलवत्त्व से पण्ये वो वसतिः कृता और पलाश के फलते व्रीह्यादिकों के फलवत्त्व से अतएव तुम उपहृष्ट गोभाज भूमिभाज हो किमर्थमिदमित्यत आह कि जिस्कारण यजमान को तुम अन्नदान से पोषण करती हो तिस हेतु अश्वत्थादि स्थान हैं और देवताओं के अधिष्ठान से लोक विषे अश्वत्थ नति प्रदक्षिणा करि पूज्य है और पलाश इध्मादि रूप करि एवं अश्वत्थादि रूपेण तुम भूभाज हो शेषं पूर्ववत् ॥ ७९ ॥

यत्रोषधीः समग्मतराजानः समिताविव ॥ विप्रः सः उच्यते  
तेभिषग्य क्षोहामीव चातनः ॥ ८० ॥

हे ओषधि ओ जिस विष (भैषज्य करने वाले ब्राह्मण) विषें तुम रोग जीतने को प्राप्त होती ओ कैसे कि जैसे राजा युद्ध विषें शत्रु जीतने को आते हैं। सो तुम्हारा आश्रित विष, भिषक् (वैद्य) कहलाता है। कैसे विष कि पुरोडाश करिके राक्षसों के किये उपद्रव का नाशक तथा ओषधि दान करिके रोग का नाश करने वाला ॥८०॥

अश्ववतीं सोमावतीं मूर्जयन्तीं मदोजसम् ॥ आवि  
त्सि सर्वाः ओषधीरस्माऽपरिष्ठाताये ॥८१॥

इस यजमान के अपरिष्ठाताये मंगल करने वा शुभ करने के अर्थ सव ओषधियें में भले प्रकार जानता हूँ वा यजमान के अर्थ को जानता हूँ। तद्विषेण शुभ करता वा विस्तारता है तिसके। सव को न सो कहता है कि अश्ववती (कोइक अश्व संपादिनी, ओषधि समृद्धि विषें धन दारेण अश्व लाभसे) और सोमवती, सोम संपादिनी ऊर्जयन्ती, बल संपादिनी वा जीवयन्ती उदोजसं, तेजः संपादिनी। एवं नाना कार्य कारिणी सव ओषधियें जानता हूँ इत्यर्थः यद्वा अश्ववती मित्यादीने बहुवचनान्तानि कार्याणि ओषधीरित्यस्य विशेषणत्वात् ॥८१॥

उच्छुष्माऽओषधीनां गवो गोष्ठादिवेरते ॥ धनं हंसनिष्य  
न्तीनामात्मानं तव पुरुष ॥८२॥

हे यज्ञ पुरुष त्वदीय शरीर प्रति हवि रूप धन देने को इच्छा करने वाली ओषधि ओंकी सामर्थ्य प्रकाशी होती हैं जैसे गौत से गौएं अरण्य देश प्रति उछल के जाती हैं ॥८२॥

इष्टं तिर्त्ना मे वो माता यो यूयं स्थ निष्कृतीः ॥ सीराः पे

॥ त्रिणीस्यनयदांमयतिनिष्कृत्य ॥ ८३ ॥

हे ओषधी ओ तुम्हारी निष्कृति (व्याधिनाशिनी) नामा माता (जननी) और तुम्हीं निष्कृति हो अर्थात् जैसी माँ तैसी बेटी। किंच सीरः, अन्नकरिवर्तमान बाधादिकों की अपसरयित्री बाहल करिनिष्पादन की हुई। और पतत्रिणी, प्रसरणशीला हो। यत्, जिस कारण आमयति नरविषे स्थित रोग को नाश करे यद्वा क्षुधादिकरणवत् बाधा देते हैं तिन्हें तुम नाश करे ॥ ८३ ॥

अतिविश्वाः परिष्ठास्तेन इव ब्रजं मक्रमुः ॥ ओषधी प्राचुच्युर्येत्किंच तन्चौरपैः ॥ ८४ ॥

रोगनाश करने वाली सब ओषधीएँ जब भक्षण किई हुई देह को ग्रहणी हैं। तत्र दृष्टान्तः, जैसे रात्रि विषे चार गोशाला में गोचुराने को सर्वत्र फिरता है तद्वत् जब ओषधीएँ रोगापहरण करने देह को आक्रमण करती हैं तब शरीर का जो कोई पाप शिरव्यथा गुल्मपित्तागरुदिरूप पाप का फल जो कुछ है तिस सब को नाश करती हैं ॥ ८४ ॥

यदिमा वाजयेन्नुह ओषधी हस्ते आदधे ॥ आत्मायस्म

स्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥ ८५ ॥ गयो इति वापदः

जब यह ओषधी पूजा किई हुई में अपने हरतविषे स्थापन करता हूँ तब ही व्याधि का स्वरूप भक्षण से प्रथम ही नाश को प्राप्त होता है कि पुनर्भक्षण इति भावः। तत्र दृष्टान्तः जैसे जीते जीव जो हिंसार्य पकड़िकर आघात स्थान को लाते हैं सो जीवगृप् तिसका जीवगृभः, बधसे पूर्व अति विषाद करि में मरा यह मन्यमान मनु

ष्य का आत्मा जैसे नष्ट प्राय होता है तैसे ओषधी हस्त विषे रखने में  
व्याधि का आत्मा नाश को प्राप्त होता है इत्यर्थः ॥ ८५ ॥

यस्योषधीः प्रसर्प्यथाङ्गमङ्गं परुष्यरुः ॥ ततो यक्ष्मं विबा-  
धध्वः उग्रो मध्यम शीरिव ॥ ८६ ॥

हे ओषधी ओ जिस रोगी के प्रत्यङ्ग सर्व अंग प्रति परु सब ग्रन्थि  
यों को तुम व्याप्त होती हो ततः अङ्ग पर्य समुदाय से रोग को तु-  
म निवर्त करती हो। तत्र दृष्टान्तः- उग्रो मध्यम शीरिव मर्म घा-  
तक उत्कृष्ट वद्ध गोधाङ्गुलित्राण उद्गूणं शस्त्र क्षत्री जैसे शत्रु  
को बाधा देता है वारुद्र विशल मध्य भाग से जैसे युगान्त में जग-  
त को बाधा देता है तद्वत् तुम भी रोगी की देह विषे प्रविष्टा व्याधि  
को विशेषेण बाधा देती हो ॥ ८६ ॥

साकं यक्ष्म प्रपेत चापेण किकिदीविना ॥ साकं वा तस्य  
ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ ८७ ॥

हे यक्ष्म रोग हूँ चाप (पपीहा) पक्षीवत् प्रकर्ष पूर्व कजा के से चाप  
करि किकि दीविना ॥ की की बोलता हुआ पवन की सी गति से भा-  
गजा ॥ किंच निहाकया निहन्ति कायमिति निर्वृतिः- कृच्छ्राप-  
तिः तिसके साथ नष्ट हो यद्वा शब्दानु करणं- इदं हाकष्टं कया  
ओषध्या निहितोऽहम् हाय-हाय बड़ा कष्ट किस ओषधी से मैं  
मारा यह शब्द करता है यक्ष्म तू नष्ट हो ॥ अर्थान्तरं वा किकिश-  
ब्द कफावरुद्ध कण्ठोत्पन्न के अनुकरण में कण्ठ ध्वनि करिकी  
उँ किकिदीवी ओष्मरोगा वषवधे चषति व्याकुल करिके मारे

किकि शब्द का अर्थ किकि दीविना की की बोलता हुआ पवन की सी गति से भागजा ॥ किंच निहाकया निहन्ति कायमिति निर्वृतिः- कृच्छ्राप-  
तिः तिसके साथ नष्ट हो यद्वा शब्दानु करणं- इदं हाकष्टं कया ओषध्या निहितोऽहम् हाय-हाय बड़ा कष्ट किस ओषधी से मैं मारा यह शब्द करता है यक्ष्म तू नष्ट हो ॥ अर्थान्तरं वा किकिश-  
ब्द कफावरुद्ध कण्ठोत्पन्न के अनुकरण में कण्ठ ध्वनि करिकी उँ किकिदीवी ओष्मरोगा वषवधे चषति व्याकुल करिके मारे



चाप-पि रोग। वातस्य ध्राजिः वात रोग। हेयश्म (रोगराज) तू कफपित्त  
वात रोगों से साथ भागजा। जिस पीड़ों से कि किरुज करि निहत हूं हाक  
ष्ट यह शब्द करता वोह निहा का (सर्वाङ्ग वेदना) तिसै साथ ले हेयश्म तू  
नाश हो ॥ ८७ ॥

अन्या बोः अन्या म वत्वन्यान्यस्या अपावत ॥ ताः सर्वाः

सम्बिदाना इदं मे प्रावता वचः ॥ ८८ ॥

हे ओषधी ओ तुम्हारे मध्य कोईक ओषधि व्यक्ति कोईक ओषधिव्य  
क्ति को रक्षा करौ तैसै रक्षा किई हुई और भी और के समीप आके पालन  
करौ वा पुरुष वचन व्यत्ययः अन्य-अन्य के प्रभाव को अवतु। तथा वि  
धा ओषधी ओ तुम परस्पर एकी हुई मेरे इस प्रार्थना रूप वचन को प्र  
कर्षेण रक्षा करौ ॥ ८८ ॥

याः फलिनीर्योः अफलाः अपुष्पायाश्च पुष्पिणीः ॥ बृह

स्पति प्रसूतास्तानो मुञ्चन्वर्हसः ॥ ८९ ॥

जे ओषधी ऐं फलयुक्ता और जे फलरहिता और जे पुष्परहिता और  
जे पुष्पयुक्ता ते सब ओषधी ऐं बृहस्पति की बेरी हुई हमें पाप (राग) से  
पृथक् करें ॥ ८९ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्या दथो वरुण्या दुत ॥ अथो यम पुपङ्गी

शगत्सर्वस्माद्देव किल्बिषात् ॥ ९० ॥

एव मोषधि वा पार्थानि पञ्च तृचानि समाप्तानि। अथान्ना रभ्यार्थ  
ताः ॥ शपथ निमित्त किल्बिषा पाप) से ओषधी ऐं मुझे पृथक् करें  
और वरुणा पर धनिमित्त पाप से मुझे पृथक् करें और यम बन्धन नि

मिन पाप से मुझे पृथक् करें और सब देवा पराध निमित्त पाप से मुझे पृथक् करें ॥ ४० ॥

अवपतन्ती रवदन् दिवः ओषधयस्परि ॥ यं जीवमुन्नवाम  
हैन सरिष्याति पूरुषः ॥ ४१ ॥

द्युलोक के सकाश से भूमिविषे प्राप्त होती ओषधीएँ आपुसमें कहती हुईं। क्या कि जिस जीव (अनुक्रान्त प्राण पुरुष) को हम व्याप्त होंगे सो पुरुष नहीं नाश होता है ॥ ४१ ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्वह्नीः शतविचक्षणाः ॥ तासां मसि  
त्त्वमुत्तमार्कामायुशरहृदे ॥ ४२ ॥

सोमराज्ञः सोम है राजा तिन्हें का देव वहीः (अनन्ता) शतविचक्षणाः असंख्य चतुराः बावहु वीर्यावा शतस्तुति करनेवाले जिन्हो के एवम्भूता जे ओषधियें हैं तिन ओषधियों के मध्य हे ओषधे तू यतः उत्कृष्ट है अतः इप्सित के अर्थ पर्याप्त हो हृदय के अर्थ सुखकारिणी हो ४२

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्टिताः पृथिवीमनु ॥ ब्रह्मस्यति  
प्रसूताः अस्यां संदत्तवीर्यम् ॥ ४३ ॥

सोमराज्ञ्यः जे ओषधियें पृथिवीति में विविध स्थिति ब्रह्मस्यति करि प्रेरी हैं ते ओषधियें इस मेरी गहीत ओषधी के अर्थ वीर्य सामर्थ्य देवें यह बहु वीर्या होवें इति भावः ॥ ४३ ॥

याश्च दमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं प रंगताः ॥ सर्वाः संगत्य  
वीरुधोऽस्ये संदत्तवीर्यम् ॥ ४४ ॥

जे ओषधियें इस मेरे प्रार्थनारूप वचन को समीपस्था सुनती ओर दूर

न्यदूर में : यवस्थित हुई थोड़ा सुनती हैं हे वीरुधः (विविधरोहणा) शो  
पधियो ते सब समीप दूर स्या संगत होके इस ओषधी के अर्थ वीर्य देओ ॥४॥

माधोरिषत्वनितायस्मै चाहं खनामिवः ॥ द्विपाच्चतुष्पाद

॥ माक<sup>६</sup> सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ५३ ॥

हे शोषधियो चिकित्सा के अर्थ तुम्हारे मूल को ग्रहण करि खननक  
नो मत नाश को प्राप्त हो और जिस रोगी की चिकित्सा के अर्थ तुम्हें मेख  
नताहूं सो भी नाश को न प्राप्त होवै । किं बहुता हमारे संबंधि स्त्री पुरुष-  
गो आदि प्राणिजात सब रोग रहित हो ॥ २५ ॥

श्रेष्ठधन्यः समवदन्तसोमेन सह राज्ञा ॥ यस्मै कृणोति ब्राह्म  
णस्तर्हं राजन्यारयामसि ॥ २६ ॥

रक्षा, अपने स्वामी सोम के साथ औषधियों देवता संवाद करती हुई।  
 क्या संवाद कि ब्राह्मण जिस रोगी के अर्थ हमारी मूलादि से चिकित्सा क  
 रता है, हे राजन् (स्वामिन् सोम) तिस रोगी नरकों हम प्रार करती हैं, सोम  
 संवादो व्याधि नाश दार्ढ्यार्थः ॥ ४६ ॥

ना शयित्री वलासस्याशे सञ्च पचितामसि ॥ अथो शतस्य  
यक्ष्माणं याकारे रसिना शनी ॥ ४७ ॥

हे ओषधे तू बलास (श) क्षय रोग की नाश करने वाली है। और अश  
 गुद व्याधि को नाश पित्री है। और उपदिताम् शरीर को बढ़ाने वाले  
 श्वययु गडु स्त्री पदों की नाशिका है। और बहुत व्याधियों के नाश  
 रोगः मुखपाक क्षतादिकों की नाश करती है वा पाकारुः अन्नपाक ति  
 सकी व्यथा मन्दाग्नि तिसकी तू नाशिनी है ॥ २७ ॥

[illegible]

त्वागन्धर्वाः अखनस्त्वामिन्द्रस्त्वा बृहस्पतिः ॥ त्वामौषधे सो  
मो राजा विद्वान्यक्ष्मादमुच्यत ॥ ४८ ॥

हे ओषधियो गन्धर्व (देवविशेष) तुममें स्वेष्ट कार्यसिद्ध्यर्थ खनन कर  
रते हुए और इन्द्र तुममें खनता हुआ और बृहस्पति तुममें खनता हुआ  
॥ और हे ओषधे सोम राजा तेरी सामर्थ्य को जानिके तुममें उपयोगन कर  
रि यक्ष्म (महा व्याधि) से मुक्त हुआ ॥ ४८ ॥

सहस्वमे अरतीः सहस्वपृतनायतः सहस्व सर्वपाप्मान  
हं सहमानास्योषधे ॥ ४९ ॥

हे ओषधे यतः तू शत्रुओं को अभिभवन्ती है अतः मेरे अदानशी  
ला शत्रु सेना का अभिभव करि और संग्राम चाहने वालों को अभि  
भव किंचित् सव अशुभ को अभिभव ॥ ४९ ॥

दीर्घायुस्तः ओषधे खनितायस्मै च त्वा खनाम्यहम् ॥ अ

थोत्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्गुणा विरोहताम् ॥ १०० ॥

हे ओषधे तेरा खनन करने वाला दीर्घायु होवै इति शेषः और जि  
स आतुर मनुष्य के अर्थ तुममें खनूं सो भी दीर्घायु हो और तू भी दी  
र्घायु होके बहुत अङ्कुरों से बहुङ्कुर हो ॥ १०० ॥

त्वभुत्तमास्योषधेतव वृक्षाः उपस्तयः ॥ उपस्तिरस्तु सोऽस्मा  
कं योऽपुस्मै ॥ १०१ ॥ अभिदासति ॥ १०१ ॥

हे ओषधे तू उत्तमा है वृक्षा शाल ताल तमालादिक तेरे उपकार  
और उपद्रव निग करण के अर्थ समीप में संवृत तिष्ठें हैं अर्थात् वृ  
क्ष तुममें सेवन करें किंचित् जो मनुष्य हमें हिंसा करता है सो मनुष्य

हमारा समीपस्थ उपासक हो ॥१०१॥ अनाभ्याधीताः समाप्ताः ॥

अ.७ मामाहिँसीज्जनितायः पृथिव्यायोवादिर्वर्तसत्यधर्मो-  
व्यानद ॥ यश्चापश्चन्द्राः प्रथमोज्जान कस्मै देवाय ह  
विषाविधेम ॥१०२॥

का० १७.३.११ ततो अध्वर्युस्फ्य करि वेदिके वहिः प्रदेशसैलोगेष्ट  
का चारि मृत्वण्ड पद्याप्रमाण लेके अपने दक्षिणोत्तरपूर्वोपर म  
ध्यम सूत्र प्रान्तों में पूर्वादितिष्ठन् मन्त्र चतुष्टय करि उपधान करे ॥ हि  
रण्यगर्भहृष्टाकदेवत्या त्रिष्टुप् जो प्रजापति भूमिका उत्पादक और  
जो दिविको सृजता हुआ ॥ और जो चन्द्राः (आल्हादिका) जगत्कारण  
भूता जल प्रथम (आदिभूतः सन्) उत्पन्न करता हुआ अर्थात् तिसरा  
र मनुष्यों को उत्पन्न करता हुआ ॥ कैसे प्रथमः शरीरी कि सत्यधर्म  
सत्यका धारण करनेवाला सो प्रजापति मुँगे गतमारे यतः कस्मै प्रजा  
पतिके अर्थ हमने हवि दिया ॥ हविर्दानान्माहन्तु ॥१०२॥

अभ्यावर्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह ॥ वपांतेऽग्निरि-  
यितोऽग्रे हन्तु ॥१०३॥

अग्निदेवत्या उषाक ॥ हे पृथिवी मुझ करि चिकीर्षित यज्ञ और तत्प  
लभूत दुग्धादिकरि सहित आभिमुख्येन प्राप्त हो ॥ कैसे प्राप्त हो कि प्र  
जापति प्रेषित अग्नि तेरी वपा (त्वचा पृष्ठ) वपा सहश इस प्रदेश को आ  
रोहण करे ॥ अनयर्चा दक्षिणे लोकेष्टकोपधानम् ॥१०३॥

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च पशियम् ॥ तद्देवेभ्यो  
भरामसि ॥१०४॥

अनाभ्याधीताः समाप्ताः ॥  
मामाहिँसीज्जनितायः पृथिव्यायोवादिर्वर्तसत्यधर्मो-  
व्यानद ॥ यश्चापश्चन्द्राः प्रथमोज्जान कस्मै देवाय ह  
विषाविधेम ॥१०२॥

यतः अग्नेः प  
अन्ध्राग्निमन्त्रा  
व्याख्याताः यत्  
व्यापदक्षिणोत्तर  
पुनर्निर्दिष्टलोक  
मित्युक्तं न सा  
गः मनुष्यानाञ्च  
पश्चन्द्रादिति या  
२३-२४-२५-२६  
कारणं कार्यवाह

अग्नि देवत्या गायत्री पश्चात्लोगेष्टको पधाने विनियुक्ता । हे अग्ने जो ते  
रा अङ्ग शुक्र (शुक्ल-शुद्ध-दीप्तिमान्) और जो अन्य अंग चन्द्र (आल्लास  
करने वाला) और जो अन्य पवित्र और जो अन्य दंग यज्ञार्ह तिस सब श्राद्ध  
रूप को देवताओं के अर्थ सम्पादन करता हूँ ॥ १०४ ॥

इष मूर्ज्ज महमितः आद मृतस्य योनिमहिषस्य धाराम् ॥ आ

मागोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनि राममी वाम् ॥ १०५ ॥

आशीर्देवी त्रिष्टुप पाद त्रयस्योत्तरतो लोगेष्टको पधाने विनियोगः । अ  
न्न तिसका उप सेवन दधि पयश्च तादि अमृतस्य सत्यस्य योनिम्  
तीनों विद्या का स्थान महिषस्य इच्छावान् अग्निकी धारां धारणा वा  
आहुति को इस प्रदेश (उदीचीदिशा) के सकाश से मैं भक्षण (स्वीका  
र) करता हूँ । किंच वोह सब इडादिक मुझे आके प्रवेश करे और मेरे  
पुत्रादि शरीरों धेन्वादि पशुओं में प्रवेश करे ॥ का० १००३१३ जहा  
मिसेदिमनि राममी वामिति चतुर्थपाद करि उत्तर लोकेष्टका तः सिक्  
ता पातन करे ॥ अन्न रहित व्याधियुक्त अवसाद कामें त्याग करता हूँ  
अर्थात् अन्नाभाव रोग दुःख मेरे न हों ॥ १०५ ॥

अग्ने तव श्रवो वयो महिम्ना जन्तेऽर्चयौ विभावसो ॥ बृह

द्धानो शवसा वाजमुक्थ्यन्दधासि दाशुषे कवे ॥ १०६ ॥

का० १००३१५ अग्ने तवेति षट् ऋचाओं करि उत्तर वेदी में सिक्ता  
डालि कर तिस से पुच्छ पक्ष विना आत्मा को छान करे ॥ पाव काग्नि  
दृष्टं षडृचमग्नि देवत्यम् । आद्ये द्वे १२ विष्टारपङ्क्तिस्त्रिः ३४५  
सतो ब्रह्मती षष्ठी ह उपरिष्टा ज्योतिस्त्रिष्टुप । हे अग्ने हे विभावसो



कान्तिधन) तेरावयः (धूम) और दीप्तियें प्रकाश करते हैं। कैसा है वयः कि अवः मुनाता है धुलोक विषे किये कर्म का कारण यह कि धूम दर्शन से देवताओं को कर्मज्ञान होता है। तथामहत् नभोगामित्वसे किंच हे हहद्गानो (वडी रश्मियें जिसकी) हे कवे (क्रान्त दर्शिनू विद्वान् यजमानाभिप्रयत्न) हविदेनेवाले यजमान के अर्थ बलेन सह अन्न को तू देता है। कैसे अन्न को कि उक्थ्यं शस्त्राद्युपेत यज्ञ तिस योग अर्थात् यज्ञपर्याप्त अन्न को देता है ॥१०६॥

पावकवर्चाः सुक्रवर्चाः अनूनवर्चाः उदियर्षिभानुना ॥

पुत्रो मातरा विचरन्तु पावसि पृणक्षिरोदसीः उमे ॥१०७॥

हे अग्ने तू दीप्ति से उत्कर्ष को प्राप्त होता है कैसा है तू कि पावकवर्चाः शोधक है दीप्ति जिसकी वोह। सुक्रवर्चाः निर्मल है दीप्ति जिसकी। अनूनवर्चाः नहीं है दीप्ति जिसकी। पूर्णशक्तिः। किंच हे अग्ने तू सर्वतः प्रचरने से प्राप्त हो पालन करता है देवमनुष्य सहित जगत का रक्षा करता है। तत्र दृष्टान्तः जैसे पुत्र बुढ़ापे में माता पिता का पालन करता है तद्वत् किंच दोंना धावा पृथिवी पूरण करता है अर्थात् दिविकोह विसे पृथिवी को दृष्टि से पूरता है। तिस तुम्हें सुनि करता हूं इति वाक्य शेषः ॥१०७॥

ऊर्जो न पाज्जात वेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्वधीतिभिर्हितः ॥

त्वेऽदृषः सन्दधुर्भूरिवर्षसश्चित्रो तयो वामजाता ॥१०८॥

हे ऊर्जो नपात् जल के पौत्र जल से ओषधि बनस्पतियें होती हैं तिन्हों से अग्नि इस हेतु जन्म कानांती। वा ऊर्ज अन्न का नपात् नवि

धूमोवा अस्य  
अवोवयस्यो न  
ममुष्मिल्लोके  
आवयतीति श  
त००३१२४  
श्रुतेः

इमे वेद्यावा पृथिवी देवमिति एष उभयपृणक्षिप्रमेनात्  
दृष्टेमासि शत०३१३० श्रुतेः

नाश करने वाला है अन्न के अविनाशक। हे जातवेद (जातप्रज्ञान) धीतिभिः निमित्तभूत कर्मों से स्थापित हुआ शोभन स्तुतिओं से तू मन्दस्व, हृष्ट हो। क्यों यह हर्ष किया तहां कहता है कि यजमानों ने तुम्हें हविर्लक्षण अन्न हो मे अर्थात् हवि प्राप्ति से हर्ष किया। कैसे हैं यजमान कि भूरिवर्षसः† नानारूप। चित्रोत्तयः नाना विधार क्षा. अवन. अन्न. वातर्पण तूने किये जिन्हों के अर्थात् तुम्हें करित पित। वामजाताः (सम्मजनीय जन्म जिन्हों का) अर्थात् विशिष्ट देशजाति कुलोत्पन्नाः॥१०८॥

† वर्षे इति रूपनामनिषेधः ०३.०७.

इत्यज्यन्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मेरयोः अमर्त्य॥ सदंशत  
स्य वपुषो विराजसि पृणक्षिप्तान् संक्रतुम्॥४॥

हे अमरणधर्मन् हे अग्ने हम विषे धन विस्तारि। कैसे है तू कि प्राणियों (हविः प्रदत्त अध्वर्युओं) से दीप्यमान किंच जो तू ऐसे साधन का विस्तारने वाला। सो तू दर्शनीय वपु (चित्याग्नि रूप शरीर) के मध्य में विशेषण दीप्त है वा विभक्ति व्यत्ययः दर्शनेन वपुषा (ज्वाला लक्षण शरीर का) विराजता है। सानसि (चिरन्तन) क्रतु (सङ्कल्प) को पूरण करता अर्थात् सब दृष्टों को देता है॥१०९॥

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तर्धसो महः॥ राति वा  
मस्य सुभगा महीमिषं दधासि सानसिर्धरुयिम्॥११०॥

हे अग्ने यज्ञ के निष्कर्तार (निश्चयेन कर्तार, यज्ञ निष्पादक) प्रचेतस (प्रकृष्टचित्तयुक्त) विशिष्ट स्थान विषे निवसन् ऐसे यजमान प्रति वननीय महद्घन के दान को तू देता है। किंच सुभगा मही (पृथिवी)

और अन्न को देता है। और सानसि (पुराण) रयि (घन अस्मर्ये विषय निधान लक्षण को देता अर्थात् निधि को दिखलाता है ॥११०॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निर्दं सुम्नायदधिरेपुरो  
जनाः ॥ शुक्लर्णं सप्रथस्तमं त्वागिरादैव्यं मानुषायुगा ॥१११॥

मानुषा जनाः - मनुष्य जातियुक्त जन्तुएँ ( ऋत्विग्यजमान) युगाः  
पौर्णमासी अमावास्यादिकाल करिगिरा (वेदवाचा) करिके यज्ञ के  
अर्थ तुरू अग्नि को पूर्व भागमें आहवनीय रूपसे स्थापन करते हुए।  
कैसे तुम्हें कि ऋतवान् सत्यवन्त। महान्त विश्वदर्शत (सब का दर्शनी  
य) शुक्लर्ण (श्रुतिमें कर्ण जिस के उसै अर्थात् जो विज्ञापन करै तिसै  
सत्य मेव कर्णों से सुनिके सम्यादन करता है। सप्रथस्तमं - अतिकी  
र्तिमन्त को। दैव्य प्रकाशमान वा देवताओं के अर्थहितको ॥१११॥

आप्यायस्व समेतुते विश्वतः सोमवृषायम् ॥ भावावाज  
स्य सङ्गुथे ॥११२॥

का० १७.३.१६ आत्मा में विस्तार की हुई सिकता का विस्तार करे दो  
ऋचाओं से ॥ गोतमदृष्टाः सोमदेवत्यास्तिस्त्रे गायत्री विष्टुबुषिण्क्छ  
न्दस्काः। आप्यायस्व भदिन्त मेति ११४ तृतीयस्याविनिर्वाणः सू  
त्रेनास्ति। हे सोम सब ओड़ी से वृषाय (सर्वभूतोत्पत्तिकृद्बीज तुरू  
विषे भले प्रकार प्राप्त हो और तिस वीर्य करितु सर्वतः वृद्ध हो। किंच  
अन्न का संगमन निमित्त हो अर्थात् अन्न को हमारे विषे प्राप्त क  
रि ॥११२॥

सं ते पयो यंसि समुयन्तु बाजाः सं वृषयान्यभिमाति

षाहः॥ आप्यायमानोऽमृतायसो मदिविश्रवाधं  
स्युजमानिधिष्व॥११३॥

हे सोम पयांसि पातव्याऽरसाः तेरे संयन्तु भले प्रकार प्राप्त हों और  
अन्न संयन्तु तेरे वृष्यानिरेतांसि संयन्तु। कैसे तेरे कि अभिमातिषा  
हं:- पाप्मा को अभिभव करने वाले। हे सोम पय अन्न वृषिसे व  
र्धमानहुआ अमरणधर्मिणी प्रजाति (पुत्रादि वृद्धि के अर्थ) यजमा  
न का हो इतिशेषः +। किंच द्युलोकमें उत्कृष्ट अन्न आहुति परिणाम-

भूत सम्पादन करि अर्थात् लोकद्वय संभोग सम्पादन करि॥११३॥

आप्यायस्व मदितमसो मविश्वेभिर्दंशुभिः॥ भवानः  
सुप्रथस्तमः सखावृधे॥११४॥

हे मदिन्तममद (तर्पण) करने वाले मदी वा मदस्तु त्विरस्यास्तीति म  
दी अति शयेन मदी। ऐसे है सोम सब अशुं ओं सूक्ष्मांशुओं से प्रवृद्ध  
हो वृद्ध हुआ हमारे बढ़ाने के अर्थ सखा (सहाय) हो कैसा है तू कि  
अत्यन्त सकीर्तिः॥११४॥

आते वत्सो मनो यमत्यरमाच्चित्सुधस्थात्॥ अग्नेत्वाकं  
मयागिरा॥११५॥

का० १७०३२०२१ श्वेतवर्णं अश्व वा अन्यवर्णं तिसके अभावमें वैल  
परबैराहुआ अग्निभ्यः प्रह्रियमाणेभ्योऽनुजीहि इससे प्रेषित होता आ  
ते वत्स इस लचको कहें॥ अग्निदेवत्यास्तिस्त्रो गायत्र्यः आद्यावत्सा  
रदृष्टा द्वितीया विरूपदृष्टा तृतीया प्रजापतिदृष्टैव। हे अग्ने तेरा व  
त्स (पयो व्रतत्व से वत्स सम तेरा प्यारा यजमान) उत्कृष्टा दपि सह

+ अमृतशब्देन अन्त्या प्रजातिव्याप्यतां यथा च शत० ३०१४६ प्रजात्यानि वत्समन्तराणि  
न स्यान्प्रजातिरभूति॥

स्थान द्युलोकाः। सैमन आहृत्येति शेषः। मनकानि ग्रह करता है कि सगिरासै कि बेदवाचा सैमन आहृत्येत्यर्थ के सीगिरासै कि तुम्हें का मयते स्तुति करने को इच्छा करती है ॥१५॥

तुभ्यं ताः अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ॥ अग्नेका माय येमिरे ॥१६॥

हे अङ्गिरस्तम (अन्नको अतिशयेन गिरै) हे अग्ने नाना भूत ते सब प्र सिद्ध स्तुतियें अभिलाष पूरण के अर्थ तुम्हें नियम की जाती हैं यजमानों सै इति शेषः। के सी हैं कि सुक्षितयः (स्वर्गादि शोभन स्थान की देने वाली) यजमान यहां के काम पूर्ति और द्युलोक प्राप्ति के अर्थ तुम्हें स्तुति करते हैं इति भावः ॥१६॥

अग्निः प्रियेषु धाम सुकामो भूतस्य भव्यस्य ॥ सम्राडे को विराजति ॥१७॥

इति सर्गहितायां सप्तमोऽनुवाकः ॥७॥

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसर्ग हितायां दीर्घपाठे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अग्निप्रिय (अभिरुचित) स्थानों (धिषायो) में असहाय भूत हो वि शेषेण दीप्ये है। के सा है अग्नि कि भूत (उत्पन्न) का और भव्य (भविष्यत्) मनुष्य का काम पूरण करने वाला। सम्राट् सम्यक् राजमा न शोभमान वा भूत भव्य का सम्राट् ईश्वर। काम्यते सर्वैर्यष्टु मिष्यतः इति काम इति वा ॥१७॥

इति श्रीगिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः

वेदो महाविष्  
तियास्मन्नाग्निः  
॥ तत्सधस्यं तु  
लोकः

श्री वेदार्थ प्रदीपेन तमोहार्द निवारयन्  
 पुमार्थांश्चतुरो देयादग्निदेवः सनातनः  
 श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येतृ व्याघ्रपादान्वय  
 विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोर देववर्मात्मज रौक्मिण्य-  
 नृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये रुक्मादि  
 वाचनपर्यन्त वर्णनो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

हरिः श्रीम्

ॐ नमो याज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वहु रूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्म रूपं परं स्तुमः १

अ० १ मयि गृह्णाम्यग्नेऽग्निर्हं रायस्योषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य-  
 य ॥ मामुदेवताः सचन्ताम् ॥१॥

ॐ नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थ प्रदीपके

पुष्कराद्यादिचित्यन्तो रामे द्वध्याय ईर्यते

वारहके अध्यायमें उखाधारण गार्हपत्यचयन क्षेत्रकर्षण औष-  
 धि वपनादि मन्त्र कहे ते रहे में पुष्कपर्णद्युपधानके मन्त्र कहि ते हैं ॥  
 का० १७३२७ उत्तरवेदी से पीछे खडा हो यजमान हो में ॥ अग्निदेवत्या  
 ककुप् । में यजमान धन की पुष्ट्यार्थ शोभन पुत्रादि निष्पत्यर्थ शोभ-  
 न सामर्थ्य के अर्थ प्रथम आत्मा में अग्नि को धारण कारता हूँ ततः  
 अग्नि की चिन्ता हूँ इति शेषः । किंच देवता भी मुझे सचन्ताम् ०



संगत हों वा देवता मामेव सचन्ताम् ॥१॥

अपामृष्टमसि यो निरग्नेः समुद्रमभितः पितृमानम् ॥ व  
र्धमानो महा रं ॥५॥ आचपुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथ  
स्व ॥२॥

का. १७. ४. १. ततः अध्वर्यु कुशस्तम्ब के ऊपर उखा सम्भरणवत्  
कमलिनी पत्र को रखें तेन अपां पृष्ठमिति मंत्र करि पुष्कर इत्यन्ते  
न उपधान दिवो मात्रयेति तिसका मार्जन इति सूत्रार्थः व्याख्यातः  
११. २५. ॥२॥

ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विशीमतः सुरुचौ वेनः  
आवः ॥ स बुध्याऽऽपमाऽऽस्य विष्ठाः सतश्च योनिम  
सतश्च विवः ॥३॥

का. १७. ३. २५. तिस पुष्करपर्णविषे कण्ठमें पहिने रुक्म अधः पिण्ड  
को स्थापन करें ॥ आदित्य देवत्या विष्टुप् । ब्रह्म ब्रह्मत् रुक्म रूपयह  
आदित्य सीमतः भूगोल मध्यभाग को आरंभ करि सुरोच्चन इन लोकों  
को प्रकाशसे निवृत्त करता हुआ । कैसा है ब्रह्म कि आदिमें पूर्व  
दिशाविषे मनुष्योंसे दृश्यमान किंच वेनः कामनीय वा मेधावी वोह  
आदित्य बुध्याओं दिशा कावर्ण करता है । विद्यमान घट पटादि स्थान  
और अविद्यमान वाय्वादि स्थान प्रकाशित करता है । कैसी हैं बुध्याः  
कि सावकाशा । अतएव इस जगत के विविध स्थान भूतों अर्थात् लोकों  
दिशाओं और भूतों को आदित्य एव प्रकाशित करता है ॥३॥

हिरण्यगर्भः समं वर्त्तताग्नेभूतस्य जातः पतिरेकः आसीत्

सद्विधारपृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।  
 का० १७०४३० तिस रुक्म में उत्तान पुरुषा कारहिण्य को दो ऋचाओं  
 से स्थापन करें ॥ हिरण्यगर्भहृष्टा प्रजापति देवत्या त्रिष्टुप् हिरण्यपु  
 रुष रूप ब्रह्माण्ड विषे गर्भरूप करि अवस्थित प्रजापति हिरण्यगर्भ  
 प्राणि जात की उत्पत्ति से पहिले आपही शरीरधारी होता हुआ।  
 और वोह उत्पन्न मात्र एकही उत्पन्न हुए सब जगत का ईश्वर था  
 वोहही अन्तरिक्ष द्युलोक और इस पृथिवी लोक तीनों को धारण  
 करता है। प्रजापति देवता के अर्थ हम हवि देते हैं ॥ ४ ॥

इप्सश्चस्कन्दपृथिवीमनुद्यामिमंच योनिमनुयश्चपूर्व  
 समानं योनिमनुसंचरन्तं द्रुप्सं जुहोम्य नुसप्तहोत्रा ॥ ५ ॥  
 देव अबोहृष्टादित्य देवत्या त्रिष्टुप् जो मुख्य आदित्य मनुष्यादि  
 धारण के अर्थ पृथिवी अंतरिक्ष को सींचता है। और आहुति परि  
 णम भूतरस करि देवादि धारण के अर्थ द्युलोक को सींचता है। जो  
 इस स्थान भूलोक को आहुति ग्रहण के अर्थ आता है। एवं सबों  
 के तुल्य स्थान तीनों लोक को संचरते आदित्य को सातों दिशा  
 ओं में स्थापन करता हूँ अर्थात् हिरण्यपुरुष रूप करि सब दिशा  
 ओं में सूर्य को ही स्थापन करता हूँ। असौ वा आदित्यो द्रुप्सोदि  
 शः सप्तहोत्रा अमुमादित्यं दिक्षु प्रतिष्ठापयतीति शत० ७०४१०  
 २० श्रुतेः पूर्वादि चतस्रोदिशः अध एका उपर्येकामध्ये चै  
 केति सप्तदिशो ज्ञेयाः ॥ ५ ॥

नमोस्तु सर्पेभ्यो ये केच पृथिवीमनु॥ येऽन्तरिक्षे ये-

दिवितेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

का.०.१.०.४.६. यजमान हिरण्यपुरुष को देवता तीन ऋचाओं को पढ़े ॥ सर्व देवत्या स्निस्त्रोनुष्टुभः ॥ जे कोई सर्पण शीला (लोकः) पृथिवी में हंति न सर्पों के अर्थ नमस्कार हो ॥ और जे अन्तरिक्ष लोक में वर्तमान सर्प हंतिन्हें के अर्थ नमोस्तु ॥ और जे द्युलोक में वर्तमानाः सर्पों से भ्यो नमोस्तु इमे वै लोकाः सर्पा इति शत ०.०.४.१.२५. श्रुतेः सर्पशब्देन लोकाः उच्यन्ते ॥ ६ ॥

या इषवो या तु धानानां ये वा वनस्पती रं ॥ रनु ॥ ये वा वटेषु शे रते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

या तु धाना राक्षस प्रभृतयः तिन्हों के जो सर्प जाति बाण रूप बाजे अन्य वनस्पतिओं को वेष्टन करि स्थित हैं और जे अन्य विले (भिद्रे) ओं में सोते हैं तेभ्यो सर्पेभ्यो नमोस्तु ॥ ७ ॥

ये वा मीरो च ने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ॥ येषामप्सु स दे रूतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

द्युलोक के दीप्त स्थान विषें जे वामी (सर्पाः) हम से अदृश्यमान हैं ॥ तथा सूर्य की किरणों में जे सर्प वास करते हैं ॥ जिन सर्पों का जल में स्थान किया तेभ्यो सर्पे-स्तु ॥ ८ ॥

पञ्चप्रतिसगराक्षोघ्राः

कृणुष्व पाजुः प्रसितिं न पृथ्वी या हि राजे वाम वा २ ॥ इमे न ॥ तृष्णी मनु प्रसितिं द्रूणो नो स्तो सि विध्य रक्ष सुस्त पिबे ॥ ९ ॥

या नु यात न दुःख दधति ते या तु धाना

१३ अ० १३ अ० १३

का ० १७ ० ४ ० ७ ० आज्य को संस्कार करि पञ्चगृहीत को ले आत्मा को-  
आ रोहण करि पुरुष के पास बैठि प्रति दिशा को परि सर्पण करि पु-  
रुष के ऊपर पांच ऋचाओं से होमें ॥ देव दृष्टा वा वाम देव दृष्टा राक्षो-  
घ्राः प्रतिसराः अग्नि देवत्याः पञ्चविष्टुभः ॥ हे अग्ने पाजः ॥ बल  
को करि ॥ तत्र दृष्टान्तः पक्षि ग्रहण के अर्थ पृथ्वी (बडी) प्रसिति-  
(जाल) को ऐसे शत्रु ग्रहण के अर्थ बल को फैलाय ॥ ततः राजा जै-  
से सेवकों वाला हाथी करि चलता है शत्रुओं प्रति चलि ॥ हे अग्ने  
शत्रुओं का क्षेप है अतः राक्षसों को तापक तम आयुधों से ताडि  
कैसा है तू कि क्षिप्र प्रसित (जाल) से शत्रुओं को मारता ॥ १० ॥

तव भ्रमासः आश्रुयापतन्त्यनु स्पृशधृषताशो शुचानः ॥

तपूथं ष्यग्ने जुह्वापतद्गानसंदितो विसृजविष्वगुल्काः ॥ ११ ॥

हे अग्ने तेरी जै भ्रमासः (वातोद्भूत ज्वाला समूह) इधर ऊधर च-  
लती हैं कैसी कि शीघ्र गमना ॥ तिन तपाने वाली ज्वालाओं से रा-  
क्षस (पतंगो पिशाचों) को स्पर्श करि अर्थात् ज्वालाओं से तिन्हें ज-  
लाय ॥ कैसा है तू कि प्रगल्भ (धृष्ट) ज्वालौघ करि दे दीप्यमान तथा  
जुह्वा (सुचा) करि हूयमान इति शेषः ॥ अरवण्डित ॥ ऐसा हो सर्व-  
त्र तिरछी ऊपर और नीचे ज्वाला छोडि अर्थात् राक्षसों के घा-  
त के अर्थ छोडि ॥ १० ॥

प्रतिस्यशो विसृजतूर्णितमो भवा पायुर्विशोः अस्या  
अदध्यः ॥ योनौ दूरेः अघशर्ठं सोयोः अन्त्यग्ने मा  
किंष्ट्रव्यथिरादधर्षीत ॥ ११ ॥

हमारे दूरमें जो अघशंस पाप को इच्छा करनेवाला हमारा द्रोही बस  
ता है और जो समीपमें अघशंस है हे अग्नेति से बांधिके प्रणिधी को  
प्रेरि। इस हमारी प्रजा का पालक होकैसा है तू कि बड़ा वेगवान् अनु  
पहिंसित। हे अग्ने एवं अनुग्रह प्रवृत्त तुम्हें कोई मतव्यथा करौ शत्रु  
मत धार्यता को करौ। अर्थात् दूर समीपस्थ हमारे शत्रुओं प्रति शीघ्र-  
बन्धकों को प्रेरि किसी से भी अहिंसित हमारी प्रजा का पालक हो और रा-  
क्षस तुम्हें प्रति दृष्टान्त हों ॥११॥

उदग्नेतिष्ठ प्रत्यातनुष्वन्यमित्रा रौ॥५ ओषताति गृहेते ॥  
यो नोऽ अराति र्ठं समिधान चक्रे नीचातं धक्ष्य त सं न-  
शुष्कम् ॥१२॥

हे अग्ने तू उठ ततः ज्वाला विस्तारि हेतिग्म हेते उत्साह वदा युधः श-  
त्रुओं को दाह करि। हे समिधान (दीप्यमान) हमारे दान को जो प्रतिषे-  
ध करै तिसै नीचा करिके भस्म करि। तत्र दृष्टान्तः शुष्क वृक्ष रोसे  
अदातार को भस्म करि ॥१२॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदा विष्कण्ड्वदैव्या न्यग्ने ॥  
अवस्थिरा न नुहिषातु जूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि  
शत्रून् ॥ अग्ने द्यौ तेजसा सादयामि ॥१३॥ +

हे अग्ने ऊंचा (उद्युक्त) हो हमारे ऊपर वर्तमान शत्रुओं को प्रति  
ताडि। देव संबंधी कर्म प्रकट करि किंच या तुधानों के स्थिर ध-  
नुषों को अवतारि। किंच जाम्यजामिं पुनरुक्तं अपुनरुक्त करि  
कैः पुनः पुनः ताडित वा अताडित शत्रुओं को मरि ॥ का १०

४०१२० कर्षेयमयी पादमात्र दीर्घा वडङ्गुलविपुला दृत पूर्णा  
प्रागग्रा सुच को अग्निष्टेति यजु और अग्नि मूर्धेति ऋचासंस्थाप  
न करै ॥ आग्नेय यजु ॥ हे सुक् अग्नि के संबंधी तेज से तुम्हें स्थापन  
करता हूँ ॥ १३ ॥

अग्निर्मूर्धादिवः ककुत्पतिः पृथिव्याः अयम् ॥ अथाथरेता  
अंसिजिन्वति ॥ इन्द्रस्य त्वेजसा सादयामि ॥ १४ ॥

अग्निर्मूर्धेति व्याख्याता ३०१२० ॥ का० १७०४३ ऐसे ही औदुम्बरी दधि  
पूर्ण सुक् को उत्तर में रखें इन्द्रस्य त्वेति यजुः और भुवो यज्ञस्येति ऋ  
चासं ॥ या-यं० इन्द्र देवत्यम् ॥ हे सुक् इन्द्र के तेज से तुम्हें स्थापन करता  
हूँ ॥ १४ ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्चनेता यत्रानियुद्धिः सच सेशिवामिः  
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षा जिह्वा मग्ने चक्रे हव्यवाहम् ॥ १५ ॥  
त्रिशिरो दृष्टाग्नि देवत्या त्रिष्टुप् ॥ हे अग्ने जवकि तू हवि की वहाने वा  
ली ज्वाला करता है तव यज्ञ (इव्य देवता त्यागात्म का कानेता होता है  
और जगद्रक्षार्थ रजयज्ञपरिणामभूतो दक) कानेता होता है कहां  
नेता होता है सो कहते हैं कि जहां जिस स्थान में मङ्गल रूप नियुत अ  
ग्निों से तू संबंध को प्राप्त होता है ॥ नियुत नामा वायु के अश्वतिन्हां से  
वायु लक्षित है और वायु से अन्तरिक्ष लक्षित है ॥ और जहां दिवि में आ  
दित्य को धारण करता है ॥ कैसे आदित्य को कि स्वर्ग का देनेवाला प  
द्म स्वर्ग में रहने वाला ॥ अर्थात् यज्ञ और रज कानेता है ॥ जो कि तेरा ए  
तत्कर्म तिस तुम्हें सुगुण करि सादन करता हूँ इति शेषः ॥ १५ ॥



आ.२ ध्रुवासिधरुणास्तृताविश्वकर्मणा ॥ मात्वा समुद्र उद्ध  
धीन्मा सुपर्णे व्यथमानापृथिवीं हृष्टं ह ॥ १६ ॥

का. १०.४.१५ पुरुष के ऊपर ध्रुवेत्यादिकण्ड का चतुष्टय करि स्वयमा  
तृणां को उपधान करै कैसी कि पाषाण मयी स्वाभाविक छिद्र युता सखि  
द्रा समगयीष्ट का ही स्वयमा तृणां है ॥ चतुर्णां स्वयमा तृणां देवता १ ऊर्ध्व  
वृहती २ अनुष्टुप् ३ प्रस्तारपङ्क्तिः ४ यजुः ॥ हे स्वयमा तृणां स्थिरा है कै  
सी है तू कि भूमि रूप करि सब की धारण करने वाले प्रजापति से उपहिता ।  
समुद्र (रुक्म) तुम्हें मत हनियो ॥ और सुपर्ण (पुरुष) मत बध करो ॥ और  
भय रहिता पृथिवी को हट करि ॥ १६ ॥

प्रजापतिष्ठा सादयत्पुपां पृष्ठे समुद्रस्य मेनू ॥ व्यचस्वतीं प्रथ  
स्वतीं प्रथस्व पृथिव्युसि ॥ १७ ॥

हे स्वयमा तृणां जलों के पृष्ठ के ऊपर प्रजापति तुम्हें स्थापन करै । जल सं  
घात के अवस्थान में स्थापन करै । कैसी तुम्हें कि अभिव्यक्तियुता विस्त  
र युक्ता । और तू भी प्रजापति की स्थापन की हुई इस चितिका प्रथन करि  
यतः तू पृथिवी सी उत्पन्न हुई पृथिवी है ॥ १७ ॥

भूरसि भूमिरस्य दितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनधुव्री ॥  
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं हृष्टं ह पृथिवी माहिं सी ॥ १८ ॥

हे स्वयमा तृणां सुरवों की भावयित्री है । पृथिवी (पृथिव्यभिमानि दे  
वता) है । अदिति (देवमाता) है । विश्व को पोषने वाली वा विश्व निहि  
त है जिसे वोह है । सर्वभूतग्राम की धारयित्री तादृशी तू पृथिवी  
को नियता करि पृथिवी को हटी करि पृथिवी की हिंसा मत करि ॥ १८ ॥

१०.४.१५ पुरुषः सुपर्ण इति शत ०.१.४.२.५

विश्वस्मै प्राणायोपानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठाये चरि  
त्राय ॥ अग्निष्ठाभिपातु मृत्यास्वस्त्या छर्दिषा शान्तमे  
नतया देवतयाद्भिरस्वध्रुवासीद ॥ १८ ॥

हे स्वयमातृत्वे सब के अर्थ प्राण अपान व्यान उदान नामाख्य वायु  
वृत्ति के लाभार्थ कीर्तिके अर्थ और शास्त्रीय चरण के अर्थ प्राण  
यों के इन सबोंकी सिद्धिके अर्थ तुम्हें सादन करता हूँ इति शेष ॥ किं  
च योगक्षेमसम्पत्त्य और अत्यन्त सुखकारी गृह करिके अग्नि  
तुम्हें सर्वतः रक्षा करे ॥ तिस देवता से अनुगृहीता तू स्थिरा होके वै  
ठि अद्भिराओं के चयनानुष्ठान में जैसे तू स्थिर बैठी तद्वत् यहाँ  
वैठि ॥ १८ ॥

काण्डात्काण्डात्परोहन्ती परुषपरुषस्यरि ॥ एवानोदू  
र्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ २० ॥

का० १७४१८ : स्वयमातृत्वेमेकाण्डादिति दो ऋचाओं करि भूमिमें  
गये अग्र मूलाग्रयुता दूर्गाको उपधान करें ॥ अग्नि दृष्टे दूर्वेष्टका  
देवत्ये द्वे अनुष्टभौ । मूल से भूमि सम्बद्ध पर्व काण्ड भूमिसे असंब  
द्ध परुः । हे दूर्वे दूर्वेष्ट के प्रति काण्ड प्रति परु भूमि सम्बद्ध असम्बद्ध  
सब पर्वों के सकाश से जैसे तू समन्तात्परोहन्ती (अद्भुत खती) है । हे दू  
र्वे ऐसे स्वाङ्गुर विस्तरवत् सहस्र और शत असंख्य पुत्रपौत्रनप्रा  
दिकों से हमें विस्तारि ॥ २० ॥

याशतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि ॥ तस्यास्ते देवीष्टके  
विधे महविषाचयम् ॥ २१ ॥

हे देवि दीप्यमाने हे इष्टं जो तू शत काण्डों का विस्तार करती है और  
र सहस्र अक्षुओं की प्रसूता होती है हम हवि के साथ तेरे स्थान को-  
परिचरे ॥ २१ ॥

यास्तेऽग्ने सूर्यरुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ॥ ताभिर्नो

ऽप्यसर्वाभीरुचो जनोयं न स्तुधि ॥ २२ ॥

का० १७०४२० दूर्वेष्ट कांके आगे यास्ते इन ऋचाओं में द्वियजुः सं-  
ज्ञा पद्येष्ट का को स्थापन करे ॥ इन्द्राग्निहृष्टे अग्नि देवत्ये हे अनुष्टु-  
भो हे अग्ने जो तेरी दीप्ति है सूर्यमण्डल में वर्तमान हुई स्वरूप भूत कि-  
रिणों से ध्रुलोक का प्रकाशती है। तिन सब रश्मिओं में हमें प्रकाशा-  
(शोभा)र्थ यहां करि। और जनाय पुत्र पौत्रादिकों के अर्थ करि। धौलो-  
क प्रकाशिका सब कांति ये और पुत्र पौत्र हमारे अर्थ दे इत्यर्थः  
यद्वा हमारे पुत्र पौत्रादिकों को शोभा के अर्थ करि अर्थात् जग-  
त्प्रसिद्ध पुत्र दे ॥ २२ ॥

यावो देवाः सूर्यरुचो गोष्वश्वेषु जारुचः ॥ इन्द्राग्नीताभिः

सर्वाः भीरुचो नो धत्त वृहस्पते ॥ २३ ॥

हे देवाः हे इन्द्राग्नी हे वृहस्पते तुम्हारी सम्बन्धिनी जो दीप्ति है सूर्य-  
मण्डल में है और जो तुम्हारी दीप्ति है गोओं अश्वों में है तिन सबों से  
रेच मान करि के हमारे अर्थ रुच देओ अर्थात् तिस समान प्रभ-  
हमें करे ॥ २३ ॥

विण्डुज्योतिरधारयत्सुराड्ज्योतिरधारयत् ॥ प्रजापतिष्ठा

सादयतु पृष्टे पृथिव्याज्योतिष्मतीम् ॥ विश्वं मे प्राणायोपा

नायं व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ॥ अग्निष्टेधिपतिस्तया देव  
तयाङ्गिरस्वद्वुवासीत् ॥ २४ ॥

का० १७०४२२ द्वियजु के पूर्वमें अव्यवहितरेतःसिचो देपद्येष्टका  
प्राग्लक्षणा अनूकमें सर्वतः विराट् स्वरट् प्रतिमन्त्र करि उपधान  
करै विराट् इससे उत्तरा स्वरट् से दक्षिण को ॥ द्वे प्रा-गा० क्रमात् लो  
का लोक देवत्ये विशेष करि राजमान-विराट् इस लोक ज्योतिः अ  
ग्नि को धारण करता है ॥ १ ॥ आपही से राजमान-स्वरट् उस लोक  
ज्योतिः आदित्य को धारण करता है ॥ २ ॥ का० १७०४२३ रेतःसिचो  
के सामने यजमान कृता प्रथमा विश्वज्योतिः संज्ञा इष्टका प्राग्लक्षणा  
को उदङ्मुख अनूकमें उपधान करै ॥ विश्वज्योतिर्देवतं यजुः पृथि  
वी के पृष्ठोपरि ज्योतिषोपेत नुम् इष्टका को सब प्राण अपान व्याना  
दिकी सम्पत्त्य के अर्थ प्रजापति सादन करै किंचहे इष्टके तू सर्व नियहण  
कारि वादे और अग्नि तेरा स्वामी तिस अग्नि लक्षण देवता करि स्थिरा  
होके वैठि जैसे अङ्गिराओं के चयन में वैठी तैसे यहाँ भी ॥ २४ ॥

मधुश्च माधवश्च वासन्तिका वृत् ॥ अग्नेरन्तः श्लेषोसिकल्पे  
तां द्यावा पृथिवी कल्पन्ता मापुः श्लेषयः कल्पन्ता मग्नयः  
पृथङ्मज्ज्यैष्ठ्याय सवताः ॥ येऽअग्नयः समनसोन्तरा  
द्यावा पृथिवी इमे ॥ वासन्तिका वृत् अभिकल्पमाना  
इन्द्रमिव देवा अभि संवि शन्तु तया देवतयाङ्गिरस्व  
द्वुवेसीदतम् ॥ २५ ॥

का० १७०४२४ विश्वज्योति के सामने प्राग्लक्षणा द्वेपद्ये ऋतव्येष्ट

के अनूकमें अभितः उदङ्मुख स्थापन करै ॥ ऋतुदेवतं यजुः। मधु  
चैत्रमास माधव, वैशाखमास तेदोनों वसंत संबंधी ऋतु के अवय  
व यद्वा मधुमाधवौ वसंत एव वासंतिकऋतुः। हेता दृश वसन्ताख्य  
ऋतो तूचीयमान अग्नि के मध्य में व्यवस्थित होनेसे श्लेष कहै जै  
से कुडी के भीतर हृता के अर्थ काष्ठ पाषादिक श्लिष्ट हैं तद्वत्। मुम्  
अग्नि को चयन करते यजमान के उत्कर्षार्थ ये द्यावा पृथिवी कल्पता  
म् स्वेचित उपकार को सम्पादन करे यद्वा ममेति तव स्थाने व्यत्य  
यः- द्यावा पृथिवी तेरे उत्कर्ष के अर्थ कल्पताम् और जल औषधि  
यें तेरे उत्क-कल्पताम् समान व्रत कर्म जिन्हों का ते चयनारव्य कर्म  
में अवस्थित नानाभूताः अग्नियें स्वयमातृणाद्या इष्टका तेरे उ-  
ताम् किंच इन द्यावा पृथिवीओं के मध्यमें एक मनस्का जे और भी चि  
तिहें ते भी वसंत ऋतु को सम्पादन करते इस कर्म के आश्रय हों।  
तत्र दृष्टान्तः जैसै देवता इन्द्र को परिचरणार्थ आश्रय हैं एवं अन्ये  
ष्टका वसन्त को परिचरणार्थ आश्रय हों ॥ सादयति। तिस देवता  
करि सादित हे ऋतव्येष्ट के औ तुम अंगिराओं के कर्ममें जैसै सौख्य  
रथी वै हो ॥ २५ ॥

अषाढासि सहमाना सहस्वरातीः सहस्वपृतनायतः ॥ स  
हस्रवीर्यासि सामाजिन्व ॥ २६ ॥

का० १७.४.२५. अषाढा संज्ञक दृष्टका को पत्नी कृता पश्चा प्राग्ल  
क्षणा ऋतव्या सै पूर्व संलग्ना अनूक में उपधान करै ॥ सवित्वा  
देवदृष्टेष्टका देवत्या। हे दृष्टके तू अषाढा शत्रुओं को न सहती है ॥ कैसी

† तथा च त्रुतिः ते देवा एतामिष्टकामपश्यन्नाषाढामिमामेवतामुपादधततामुपाधाया मुगन्तपलान्म  
हव्यानस्मात्सर्वस्मादसहन्ततस्मादषादेति शत ७.४.२.२३.

है तू कि स्वभाव से अभिभव शीला अतः अदान शीला प्रजा का अभिभव करि। संग्राम की इच्छा करते शत्रुओं को अभिभव करि। किंच ज्ञातू सहस्र वीर्या (बहु सामर्थ्य) है सो मुझे प्रीति हो ॥ २६ ॥

अ०३ मधुवाताऽऽकृतायुते मधुक्षरन्ति सिन्धवः ॥ माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ २७ ॥

का० १७० ४० २७ दधि मधु घृत मिश्रित से कछप को भि गोवै ॥ गोतम दृष्टा विश्वदेव देवत्या स्तिस्रो गायत्र्यः। ऋतः यज्ञ की इच्छा करने वाले यजमान के अर्थ मधु (रस) वन्त वायु बहें इति शेषः सिन्धवः स्पन्द माना गङ्गादि सप्त नदीएँ + वा चारों दिशा के लोहितादि चारि समुद्र + रसवत् उदक सबें। ओषधीएँ हमारे को मधुर रसोपेता हैं ॥ २७ ॥

मधुनक्तु मुतोष सो मधुमत्यार्थिर्वर्धरजः ॥ मधुघोरस्तुनः पिता ॥ २८ ॥

रात्रि हमारे को मधुर रसोपेता (आनन्द करने वीली) हो। और दिवस मधु मन्त हैं। मातृभूता पृथिवी लोक मधुर रसोपेता वैरी कांटों में रहित हो। दृष्टि प्रदान करि पालन करने वाला पितृभूत द्यौलोक माधुर्यफल अन्न और तिसके भक्षण से पुत्र का देने वाला हो ॥ २८ ॥

मधुमात्रो वनस्पतिर्मधुमा रं ॥ अस्तु सूर्यः ॥ माध्वीर्गोवो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

वनस्पतिः अश्वत्थादि वा यूपाभिमानि देवता हमारे अर्थ रसवान् सन्ताप रहित्य माधुर्य रसोपेत हो। गावः अग्नि होत्र की गो



हैं दुग्धवती वा यज्ञ साधनभूता रश्मिरहैं हमको मधुमती + रसवतीहों।  
वातादिक रसवन्ति हमको भोग्यहों इति सर्वार्थः ॥२४॥

अपांग मन्त्सीदमात्वा सूर्यो भिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः ॥

अच्छिन्नपत्राः प्रजाः अनु वीक्षस्वानुत्वा दिव्या दृष्टिः स-  
चताम् ॥३०॥

का. १७. ४. २८. ५. १. अषाढा के दक्षिणविषे हस्तमात्र पद्याद्वय-  
अनाराल कहीं गई तीसरे पद्यालोक पूर्व में व स्यापिता शेवाल पु-  
रुष संमुख तीनि ऋचाओं से कूर्मको उपधान करे ॥ पङ्क्तिः + कूर्मदे-  
वत्या + हे कूर्म जलों के गम्भीर स्थान (रविमण्डल ५) विषे तू बैठा तहां  
तुरूं बैठे हुए को सूर्य सन्तापन देवें। और वैश्वानर सवनरों से हित-  
अग्नि नत पावें। और तू बहां स्थित हुआ प्रजा (इष्ट) का रूपा निरन्तर दे-  
रि। कैसी प्रजा कि अच्छिन्नपत्रा, अनवरखण्डित हैं अवयव जिस के  
अर्थात् अखण्डिता इष्ट का करि। किंच दिव्या (दिवि में हुई) दृष्टि तु  
में सेवन करे अर्थात् जल से नित्य सिक्त हो ॥३०॥

त्रीन्समुद्रान्समं सृपस्वर्गान् पाम्यति वृषभः दृष्टकानाम् ॥

पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परताः ॥३१॥

का. १७. ५. २. तीनों ऋचाओं के बीच की त्रीन्समुद्रान् दस ऋचासैह  
स्तस्य कूर्म को कंपावें ॥ कूर्मदेवत्या त्रिष्टुप्। हे कूर्म जो तू तीनि समुद्रों-  
(लोकों) को भले प्रकार प्राप्त हुआ। कैसे लोकों कि स्वर्गान् भोगसाध-  
नभूतों। कैसा है तू कि जलों का स्वामी इष्ट काओं का वर्षने वाला कि  
चजिस स्थान विषे पूर्वे (पुरातन कूर्म) अन्य अग्निविषे उपहित प

र सो वै मधि  
ति शत ००. ५.  
१. ४.

र सो वै मधि  
ति शत ००. ५.  
१. ४.

महीधरेपि  
कूर्मः प्रजाप-  
तिरादित्योवा-  
नतीयाद्यावा-  
पृथिवीयाः

ए गत हैं शोभन कृत अग्नि के तिस लोक (स्थान) विषे तू पहुंच कर  
करने कि पुरीष वसानः कृतपशुओं के आछादन को ॥३१॥

महीद्यौः पृथिवीचनः इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ॥ पिशुतानो  
भरीमभिः ॥३२॥

व्याख्याता ८.३२.॥३२॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो वृत्तानि पश्यते ॥ इन्द्रस्य  
युज्यः सर्वा ॥३३॥

का० १७.५.३. चतुष्कोणं मध्य संकुचितरवात हीन उदम्बर तरु  
जात ऊंचे उलूखल (ओखली) गोल भूसल तिन दोनों को स्वयं  
मातृणा के उत्तर देश में तिन्हों के मध्य से हस्त मात्र तीसरी पद्यालो  
क विष्णोः इस मन्त्र करि सहित उपधान करै ॥ व्याख्याता ६.४.॥३३॥

ध्रुवासि धरुणो तो जज्ञे प्रथम मेभ्यो योनिभ्योऽपधिजा  
त वेदाः ॥ सगो यज्या त्रिष्टुभा नुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं  
बह तु प्रजानन् ॥३४॥

का० १७.५.४. प्रथम उलूखल के ऊपर उरवा को चुपके से करि फिर  
उपशया मृदा को पीसि के उरवा के सामने भूमि में डालि के तहां उरवा  
को दो मन्त्र करि के उपधान करै ॥ उरवा देवत्या द्वे त्रिष्टुबृहत्यो । हे  
उरवे जगत की धारण करने वाली तू स्थिरा है । अथाग्नि जन कत्वे  
नोरवा स्तूपते । जो अग्नि इस उरवा के सकाश से आदि में जात वे  
दाः जात प्रज्ञान उत्पन्न हुआ ततः इन योनियों अपने कारणों  
अरणी आदिकों से उत्पन्न होता है । सो अग्नि अपने अधिकार

को जान कर गायत्री त्रिष्टुप् अनुष्टुप् इनतीनों छन्दों करि देवता  
ओं के अर्थ हमारा हविवहौ ॥ ३४ ॥

इषे राये रमस्व सह से द्युम्नः ऊर्जेः शयन्याय ॥ सुम्ना उ  
सि स्वराडसि सा रस्व तौ त्वोत्सो शवताम् ॥ ३५ ॥

हे उरवे तू यहाँ कीड़ा करि किमर्थ कि इये, अन्नार्थ सहसे, वला  
र्थ दुम्ने, यश वा अन्न के अर्थ ऊर्जे, पयो दधि घृतादिक उपसे  
चन के अर्थ अपत्याय, पुत्र पौत्रादिकों के अर्थ कीड़ा करि यह  
सर्वत्र सम्बन्ध है। किंच सम्राट् है स्वराट् है। एवम्भूता तुमै सारस्  
वती, सरस्वती के सम्बन्धी उत्सौ (उत्स्पन्दन - कूप वा प्रवाह) तुमै  
प्रकर्षण पालन करें। और वे उत्सौ, मनवाचा। शास्त्र ज्ञान के अर्थ  
कूप - इव उत्स्पन्दन हुआ मन कूप है वाति सै प्रति पादन करती वा  
चा भी कूप है। यद्वा सारस्वती उत्सौ - ऋग्वेद सामवेद तुमै रक्षा  
करें, तथाच नितिरि श्रुतिः - ऋक्सामवे सारस्वता बुत्सा वि  
ति ॥ ३५ ॥

अग्ने युश्वाहियेतवाश्वा सो देवसाधवः ॥ अरुं वहन्ति  
मन्यवे ॥ ३६ ॥

का० १००५५५ दो ऋचाओं से उरवा के मध्य में दो आहुति होमें ॥ अग्नि देवत्ये द्वे गायत्र्यौ प्रथमा भरद्वाज दृष्टा द्वितीया विरूप दृष्टा ॥ हे देव दीप्यमान अग्ने ये साधु (दान्त) तेरे घोड़े अत्यन्त मन्यवे-  
यज्ञ के अर्थ प्राप्त करते हैं देवताओं को इति शेषः तिन अश्वों को जोड़ि हि पाद पूरणः ॥ ३६ ॥

न शत ७५१३१ मनो नैसखान्वाकसरस्वत्येतौ सारस्वताष्टत्माविनिश्चुतिः

युष्वाहि देव हूतमा २॥ अश्वौ ॥ अग्ने रथीरिवानि  
होता पूर्वाः सदः ॥ ३७ ॥

हे अग्ने तू अश्वों को जोड़िहि- असिद्धों। कैसों को कि देवताओं  
को आह्वान करनेवाले। दृष्टान्तमाह रथी जैसे जोड़ता है तैसे। किं  
च तू पूर्वाः होता (पुराना होता) मनुष्य होता से आगे इस यागहोत  
षदन विषे बैठता हुआ ॥ ३७ ॥

अ० ४ सम्यक्त्ववन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदामनसा पूयमा  
नाः ॥ घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो  
मध्ये अग्नेः ॥ ३८ ॥

का० १७०५०७ सम्यगिति मन्त्रेण पञ्चपशुओं के मुखमें एक-एक  
हिरण्य शकल की डालें ॥ लिङ्गोक्त देवता त्रिष्टुप्। हिरण्यपुरुषो  
द्देशेनायं मन्त्रः। अग्नि (चिति) के मध्यमें हिरण्ययो वेतसः पुरुष जो  
निहित है तिस प्रति धेना (अन्न) भले प्रकार क्षरते हैं अर्थात् हू  
यमान हवितिस प्रति जाते हैं। कैसे हैं अन्न कि मनसा अन्तर्हृदा  
हृदयान्तर वर्तमान हृत्प्रतिष्ठित विषय व्यावृत्तेन अव्या  
कुल अर्थात् अज्ञा युक्त मन करि दिये। तत्र दृष्टान्तः स  
रितो न न द्वार्यः जैसे नदियें समुद्र प्रति जाती हैं तद्वत्। न  
केवल धेना ही चलते हैं किन्तु घृत की धारा भी स्वर्ग हैं। ते धे  
नाः और घृत की धारा हिरण्यपुरुष प्रति स्वर्ग हैं यज्ञमें दे  
खता हूँ ॥ ३८ ॥

मृचेत्वा रुचेत्वा भासेत्वा ज्योतिषेत्वा ॥ अभूद्वि

\* अन्नर्वं हृदयेन मनसा सतान्नपूतं यक्ष्नु रिति शत० ५२११ श्रुतेः।



अग्निजैसै ज्योतिष्मान् हो और हिरण्यवर्च करिवर्चस्वान् हो रुक्म-इव-  
सुवर्णपुरुष-इव उभयत्रेवाध्या हारेण लिङ्ग न्यत्ययेन च योजनेत्य-  
र्थः ॥ का० १७.५.१४. सहस्रदासै पुरुषकाशिरलेकर उरत्नाके मध्यमं  
उपधानकरै ॥ हे पुरुष तू सहस्रदा सहस्रसंख्यका दाता है अतः स  
हस्रधन लाभ के अर्थ तुम्हें उद्ग्रहण करता हूँ इति शेषः ॥ आदौ पुरुष  
शिरसि सकल प्रासन्नं ततोऽश्वगोऽव्यजानां क्रमेण एक यशुपक्षे  
मुखादिषु प्रत्येकं सप्त-सप्त पञ्चकत्व एकैक मित्यन्ये का० १७.५.  
११. शत० ७.५.२. १०० ॥ ४० ॥

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्घिसहस्रस्य प्रतिमां विश्वरू-  
पम् ॥ परिबृङ्घिहरं सामाभिमंस्थाः शतायुषं कणुहि  
वीर्यमानः ॥ ४१ ॥

का० १७.५.१०. आदित्यं गर्भमिति ४१-४५. पांच ऋचाओं से पुरु-  
षादिकों के शिरक्रम पूर्वक एक-एक उपधान करै ॥ पञ्च ऋचोऽ-  
ग्नि देवत्यास्त्रिष्टुभः ॥ आदौ पुरुषशिर उपदधाति मध्ये ॥ हे पुरुष  
शिर तू आदित्य (चित्पाग्नि) को पय विषे स्थापन करि ॥ केसा है  
आदित्य कि गर्भ (गृहण करने वाला पशुओं को) ॥ बहुत धन का प्र-  
तिमा भूत अर्थात् बहुत धन का देने वाला ॥ सर्वरूप आदित्यत्व  
सै सर्वरूप प्रकाशक अर्थात् सर्वरूप हैं जिससे ॥ किंच हरसा सर्व  
वीर्यापहारक अग्निकी ज्योति हर तिस अग्नि तेजसे यजमा-  
न को परि वर्जन करि ॥ मा अभिमंस्थाः यजमान को मत हिंसि ॥  
किंच वीर्यमानः उपधीयमानः सन् यजमान को शताब्द

आदित्य पशुना दित्यय दीपं वाम धेनु पशु  
तया दित्य विजयो गतिः ॥



जीवी करि ॥ ४१ ॥

वातस्य जूतिं बरुणस्य नाभिं मय्यं वृक्षान् देसरि रस्य म-  
ध्ये ॥ शिशुं नदीनां च हरि मद्रि बुध्न मग्ने माहि ठंसीः  
परमे व्योम नू ॥ ४२ ॥

अश्वशिर इशाने उपदधाति । हे अग्ने (चित्पाग्ने) तू इस अश्व  
को ज्वाला से न जलाउ । कैसे को कि वातस्य जूतिं वायु वत् शीघ्र  
गामी वा वायु के प्रेमपात्र । बरुणस्य नाभिं जलेश के नाभि जैसे  
अनन्तर यथानर से अपनी नाभि बस्त्रावरणदि करि पालन क-  
रि धै है तद्वत् बरुण करि अतिप्रिय होने से पाल्य । यतः सरिरस्य  
मध्ये जल (समुद्र) के मध्य में जायमान † अत एव नदी-ओं के  
शिशु, बालक † । हरिं हरितवर्ण वा आरूढं नरं हरतीति हरि-  
ति से । अद्रि बुध्न पर्वत मूल (कारण) जिन्हों का ते अद्रि बुध्नाः  
जल तिन्हों से उत्पन्न वा पर्वतों से ज्ञात पथितिस के स्वरों से क्षुणा  
नू पाषाणों को देखि करनरों से ज्ञात जो कियहां अश्व गया इति  
अर्थात् उत्कृष्ट । परमे व्योम नू इन लोकों विषे निसीदन्नमिति  
शेषः ५ । यद्वा विविधं ओम् अवरक्षण परम (उत्कृष्ट) यद्वा  
म नाना उपद्रवों से पालन तहां स्थापित को इति शेषः ॥ ४२ ॥  
अजस्रमिन्दु मरुधं सुरण्यु मग्नि मीडे पूर्वचित्ति न-  
मोभिः ॥ मपर्वभिः कर्तुशः कल्पमानो गां माहि ठंसी-  
रादिति वि राजम् ॥ ४३ ॥

गोशिर आग्नेय्यामुपदधाति । मैं अग्नि को स्तुति करता हूं कैसे

† नदीपतिः स  
मुद्रः पिनातए-  
व नदीनां मातृत्वा-  
त्तन्नि शुम् ।

५ इमे वै लोकाः  
परमे व्योमेति  
शत ७७.५.२९  
१८. श्रुतेः ।

को कि अनुपक्षीण इन्दु (ऐश्वर्योपेत वाक्लेदन करने वाला जनो के मनोकातिसे) शेषरहित वा मर्म स्थानीय रहस्य (आराध्य) पूर्वमहर्षि यों से चेतव्य। अन्नों से सदा के पोष्टार। हे अग्ने एवं सूर्यमाना गोकोम तमारि। कैसी को कि अखण्डता वा अदीना विविध राजमाना +।

कैसा है तू कि पर्वभिः पशु द्रष्टकाओं वा अमा मावास्यादि पर्वों से ऋतुशः ऋतु- ऋतु में कल्पमानः कर्म सम्पादन करता ॥४३॥

वरूची त्वष्टुर्वरुणस्य नाभि मविजज्ञानां रजसः परस्मात् ॥ महीं साहस्री मसुरस्य माया मग्ने माहिं सीः परमे व्योमन् ॥४४॥

वायव्ये विशिर उपदधाति। हे अग्ने परमे व्योमन् उत्कृष्ट रक्षा ए स्थान विषे स्थापित अविको मतमारि। कैसी को कि त्वष्टुः रूपों के निर्माण करने वाले देवता के अनुग्रह से वरूची कम्बलादि करि छादन करने वाली लोकों को तिसै। वरुणस्य नाभि नाभिवद्र क्षणीय वारुणी और त्वष्ट्री अवि। परस्माद्रजसः दिगूय लोक से जायमाना वा प्रजापति के रजोगुण से जायमाना। वडी। साहस्त्री सहस्र मूल्यार्हा वा सहस्रोप का रक्षमा असुरस्य माया प्राणि यों की प्रज्ञा देने वाली को ॥४४॥

योः अग्निरग्ने रथ्यता यत शोकात्प्रयिव्याऽउत वा दिवस्यरि ॥ येन प्रजा विश्वकर्मा जजान त मग्ने हेड परिते वृणक्तु ॥४५॥

मे ऋते जमुपदधाति। जो अग्नि (अग्निरूप अज) अग्नि (प्रजा

अथ शान्तिः ॥ ३. ३. २. १. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

॥ अथ शान्तिः ॥ ३. ३. २. १. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

प्रति के शोक। सन्नाप) सै उत्पन्न हुआ +। और दिवि के शोक तथा पृथिवी के शोक सै जो अज उत्पन्न +। विश्वकर्मा एव प्रजापति जि- स अज (वायूप) करि प्रजा उत्पन्न करता हुआ ॥ हे अग्ने (चित्य) तेरा क्रोध तिस अज को परित्याग करै अर्थात् अज विषे तुम्हें करि कोप न करेयै है ॥ माधवस्तु पृथिवी ऊपर स्थित अथवा द्युलोक के ऊपर स्थित दीप्ति युक्त अग्नि (प्रजापति) के सकाश सै जो अग्नि रूप अज उत्पन्न हुआ विश्वकर्माने जिस अज करि प्रजा पशुओं को उत्पन्न किया। अजस्य पशु साधनत्व तैतिरीय श्रुत्योक्तम् ततोऽजस्त परः सभभवन्तं स्वायै देवतायाः आलभत ततो वै प्रजाः पशून् सृजतेति। शेषं पूर्ववत् ॥ ४५ ॥

चित्रं देवानां मुदेगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ॥  
आ प्राद्यावा पृथिवीः अन्तरिक्षं सूर्यः आत्मा जगतस्तस्युषश्च ॥ ४६ ॥

का० १०५१०० चित्रं देवानाम् इन दोनों अर्घारियों करि पुरुषशिर की दो आहुति होमें ॥ व्याख्याता ७४२ ॥ ४६ ॥

अ० ५ इमं माहिर्हं सीर्द्धिपादं पशुर्हं सहस्राक्षमेधापचीयमानः ॥ मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व ते न चिन्वानस्तन्वीनिषीद ॥ मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं तेषु गृच्छतु ॥ ४७ ॥

का० १०५१६० अग्नि सै उत्तरि के वेदी के बाहिर दक्षिण में उड़खु ख खड़ा हो इमं मे इन उत्सर्ग संज्ञक पांच मंत्रों करि पुरुषादिशिरों का अध्वर्यु उपस्थान करै एक पशु पक्षेतिन्ही पांचों से इत्यर्थः

+ अवाग्निः प्रजापतिः  
+ अग्नि पृथिवीदिवाशकादजोत्पत्तिः श्रुत्योक्ता य वै प्रजापतेः शोकादजापततद्विवश्वपृथिव्ये च शोकादजापतेति शत० ७५२ २१०

४ अजस्य पशु साधनत्व तैतिरीय श्रुत्योक्ता नागाः अजोवाचने प ज विश्वकर्माजजनेति शत० ७५२ २१० ॥ ४७ ॥

अग्निदेवत्याः पञ्चविष्टुभः आद्ययोरन्ते एकैकं यजुः तिस्रेणामन्ते  
 द्वे-द्वे यजुषी। हे अग्ने हिरण्यशकलरूपसहस्रनेत्रमेध यज्ञा के  
 अर्थचयनकरिसंस्क्रियमाणः मनुतुदस द्विपाद पशु पुरुषरूपकोमतद  
 है + और जो भक्षण की ही इच्छा तौ शुद्ध मयु + तुरङ्ग वदन कि-  
 म्पुरुष पशु वा कृष्ण मृग ॥ को भक्षण करि। तिस मयु भक्षणसे ज्वा  
 लारूप शरीर को पोषन करिके वैहि ॥ इतो यजुः तेरा संताप मयुको  
 प्राप्त हो। किंच जिस पुरुष प्रति हम द्वेष करते हैं तिसै तेरा संता  
 प प्राप्त हो ॥ ४७ ॥

इमं माहिर्धं सीरे कशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वा  
 जिनेषु ॥ गौरमारण्यमनुते दिशामिते न चिन्वान  
 स्तन्वो निषीद ॥ गौरं तेषु गृच्छतु यद्विष्मस्तं तेषु गृ  
 छतु ॥ ४८ ॥ + इ-दा अ० गौ-तु। इ० ॥ ४८ ॥

अथाश्वस्य। हे अग्ने इस एक शफ (खुर) पशु (अश्व) को माहि  
 सीः। कैसे को कि कनिक्रदं (अत्यन्त ही सते हुए) वेग वन्त को ते  
 तेरे अर्थ वनस्थ गौरवर्ण मृग को देता हूँ। तेन चिन्वान इत्यादि  
 पूर्ववत्। स्पष्टं यजुः ॥ ४८ ॥

इमं सहस्रं शतधा रुमुत्सं व्यच्यमानं सरिरस्य म  
 ध्ये ॥ घृतं दुहाना मदिति जनायाग्ने माहिर्धं सीः परमेव्यो  
 मन् ॥ गवयमारण्यमनुते दिशामिते न चिन्वान स्त  
 न्वो निषीद ॥ गवयं तेषु गृच्छतु यद्विष्मस्तं तेषु  
 गृच्छतु ॥ ४९ ॥ + इ-दा अ० ग-दा इ० ग-तु। उ० ॥ ४९ ॥

+ किं पुरुषो वै मयुरिति शत० १०५२३२ अन्ते ॥ ॥ मयुर्गोऽश्ववदन इति कोषोक्तेः ॥

हिरण्यशकलरूपसहस्रनेत्रमेध यज्ञा के अर्थचयनकरिसंस्क्रियमाणः मनुतुदस द्विपाद पशु पुरुषरूपकोमतद है + और जो भक्षण की ही इच्छा तौ शुद्ध मयु + तुरङ्ग वदन किम्पुरुष पशु वा कृष्ण मृग ॥ को भक्षण करि। तिस मयु भक्षणसे ज्वा लारूप शरीर को पोषन करिके वैहि ॥ इतो यजुः तेरा संताप मयुको प्राप्त हो। किंच जिस पुरुष प्रति हम द्वेष करते हैं तिसै तेरा संताप प्राप्त हो ॥ ४७ ॥

अथ गोः॥ अत्र विशेषण द्वयं स्त्रीलिङ्गं शेषाणि पुल्लिङ्गानि व्य-  
त्ययेन उभाभ्यां गौरेव स्तूयते। हे अग्ने उत्कृष्ट स्थानविषे स्थि-  
त इमं गोरूपं पशुको माहिंसीः। कैसेको साहसं सहस्रमूल्या  
हे वा सहस्रोपकारक्षम। शतसंख्याकक्षीरधारायुतं अत ए-  
व उत्कृष्टं (कूपसदृशं अर्थात् बहुस्रोतसं) सरिरस्य + मध्ये-  
इन लोकों के विषे व्यच्यमानं मनुष्यों से उपजीव्यमान। ज-  
नाय + सब लोकके अर्थ घृतके कारण क्षीरको क्षरती। अखंडि-  
ता को। तेरे अर्थ आरण्य गवय (गोसदृशं पशुविशेष) को दे-  
ता हूं। शिशुमुक्तम् ॥४५॥

इममूर्णयुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां च  
तुष्यदाम् ॥ त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मादिर्ह  
सीः परमेव्योमन् ॥ उष्ट्रं मारुण्यमनुते दिशामिते न  
चिन्वानस्तन्वो निषीद ॥ उष्ट्रं तेषु गृच्छतु यं द्विष्मस्तं  
तेषु गृच्छतु ॥ ५० ॥

अथावेः। हे अग्ने उत्कृष्ट-स्थित इस अवि को माहिंसीः। कै मे का  
कि ऊर्णयुक्त। वरुण के नाभि स्थानीय-प्यारे। मनुष्यों और गवा  
दि पशुओं के त्वच त्वच जैसे- कम्बल करि छादकत्व से त्वग्रक्षक  
तथा त्वष्टः- प्रजापति की प्रजाविषे प्रथमोत्पन्न ॥ को। तेरे अर्थ  
ष्टु ऊंट देनाहूँ। स्पष्टमन्यत ॥ ५॥

ॐ जो ह्यग्ने रजनिष्टु शोकात्सोऽप्यप्यज्जनितारम  
ग्रे ॥ तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमा पशुपमे

† यद्द्वैतज्ञापनेः श्लोकादज्ञापनतदन्तेः श्लोकादज्ञापनेति प्रसक्तं ७७. ५. २. ३६. श्रुतेः ॥ पारमर्तो वाधामु  
द्वैतदत्ता मर्तोऽप्युक्ता न तः ॥ जस्य परः समभवदिति तैत्तिरीयेषु।

का०१७०६१ वेदी से बाहिर आके अग्नि के समीप में अर्धचित्ति  
को उपस्थान करें ॥ उशनो काव्य दृष्टानिरुक्ताग्निर्वा गायत्री ॥  
हे यविष्ठ, युवतम वा मिश्रयितुतम हमारी स्तुति वाचा सुनि,  
वाचा सुनि कर हवि देने वाले यजमान, मनुष्यों वा यजमान के  
मनुष्यों की रक्षा कर। किंच यजमान की सन्तान को रक्षा कर  
वा सन्तान और यजमान को रक्षा कर ॥ ५२ ॥

७.५०६ ७.५०६ त्वे मन्त्सा दयाम्य पां त्वो मन्त्सा दयाम्य पां त्वा  
मस्मन्त्सा दयाम्य पां त्वा ज्योतिषि सा दयाम्य पां त्वा-  
यने सा दयाम्य णे वे त्वा स दने सा दयामि स मु द्रे त्वा स द-  
ने सा दयामि स रि रे त्वा स दने सा दयाम्य पां त्वा क्ष यै सा द-



॥ अत्रापामे मन्त्रित्वा दीनां श्रुत्य नोऽप्यो ग्राह्यः वायुर्वाऽऽपामे मन्वा यो  
स्वाहं सादयामीत्यादि शत ७५२५६-६० पञ्चदशश्रुतिभ्यः ।

१ अ-मि।अ०इ०उ०ऋ०लृ०आ०ई०ऊ०ऋ०ल्००क०च०ट०त०प०गा-  
मि।ख०वै०मि।लृ०जा०मि।ह०आ०मि।थ।पा०मि।ति॥३३॥

तीछन्द०॥१८॥अनुष्टुप्०॥१६॥पंक्ति०॥२०॥ ५३॥

अ० ७ अयं पुरोभुवस्तस्य प्राणोभौ वायुनोवसन्तः प्राणायनो  
गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपांशु रूपा  
धंशोस्त्रिवृत्तोरथन्तरवसिष्ठः ऋषिः प्रजापतिगृही  
तया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाम्यः॥५४॥†

का० १७० द० ३ प्राणभृत्संज्ञका इष्टका व्याधारणवत् दक्षिणं अंस-  
उत्तरश्रोणि० दक्षिणश्रोणि० उत्तरअंसविषे० कर्णसहिता अक्षणा  
के संलग्न स्वयमातृणां पर्यन्तदश-दश उपधानकरैः॥पञ्चाशद्य  
जूर्ध्वे प्राणभृदिष्टका देवत्यानि १० दै-त्रि० २० या-अ० ३० च० या-उ०  
४० ५० द० या-गा० ५० दै-पं० १० अर्षी-गा० प्रति कण्डिकं दश-द  
५॥ प्रथमं दशकं दक्षिणे अंसे। किसी समय प्रजापति के आगेसे  
प्राणों ने देवता होके उत्क्रमण किया तब तिन्हों से प्रजापतिने कहा  
कि क्यों उत्क्रमण करते हो मुझे प्राप्त होओ फिर प्राण तिससे बोले कि  
हम अन्न बिना स्थित होने को समर्थ नहीं हो सके तिस अन्न को तु  
म्हें सृजना चाहिये कि खड़े हो फिर प्रजापतिने कहा कि हम तुम  
मिलकर अन्न सृजे वृद्धत अच्छा यह कहि कर प्राण और प्रजा-  
पति ने तिस अन्न को सृजा तिससे प्राणों को पोषण किया इति  
इष्टकानां प्राणभृत्संज्ञेत्युक्तं श्रुत्या प्रजापते विश्वस्तात्प्राणा उद-  
क्रामन्तित्यादिकया ८० १० १३-२० ६० अथ मंत्र व्याख्या। जो यह  
अग्नि पुर और भुव वर्तते हैं हे इष्ट के तू तिस रूपा है प्राण एव अ-  
ग्नि होके पुरः साम्ने तिष्ठे है अतः तुरू अग्नि रूपा को उपधान

† अ० व० अ० त० न० इ० व० न० उ० गा० न्नी० ऋ० गा० म० लृ० गा० श्रु० आ० उ०  
य० ऋ० वि० म० ऊ० वे० वि० ऋ० प्र० अ० लृ० ॥५४॥

करताहं इति शेषः एवमप्येपि। पुरस्तादुपधीयते प्रागुद्धियेत प्रा-  
 दुपचयेत इति पुरोऽग्निः भवति सर्वरूपेणेति भवत्यस्मात्स-  
 र्वमिति वा भुवोऽग्निः तद्रूपेष्टकाध्येयेति भावः ॥१॥ प्राणति-  
 स अग्निका अपत्य इति शेषः अतएव भौवायनः। हे इष्टकेतुम्  
 प्राणरूपा को सादन करताहं ॥२॥ प्राण का अपत्य प्राणायन-  
 जो दसन्त ऋतुतिसरूपा को साद ॥३॥ वसन्त का अपत्य वासंती  
 जोगायत्री छन्दतिसरूपा ॥४॥ गायत्री के सकाशसे उत्पन्न गायत्र सामतिस-  
 ५॥ गायत्र सामसे जो उपार्ध सुग्रह निर्मिततिस ॥६॥ उपार्ध शु-  
 ग्रहसे जो निर्मित त्रिवृत्स्तोमतिस ॥७॥ त्रिवृत्स्तोमसे निर्मित  
 जो रथन्तरष्टुतिस ॥८॥ अधितिष्ठे हे सर्वजन्तुओं को अति-  
 शयेन वस्ता वसिष्ठ सर्वाधार ऋषि ज्ञाता तिस ॥९॥ प्रजाप-  
 ति गृहीतया गृह्णातिः सृष्टिके अर्थ प्रजापति करि सृजी हुई तु  
 म्स्थापित इष्टकासे सर्व प्रजा के अर्थ प्राण को ग्रहण करताहं  
 अर्थात् प्रजाओं की प्राणसिद्धिके अर्थ तुम्हें उपधान करताहं ॥१०॥  
 अयं पुर इत्यादि दशमन्त्रों से एकही प्राण को ग्रहण करताहं ॥११॥

अयं दक्षिणा विश्व कर्मा तस्य मनो वैश्व कर्मणं ग्रीष्मो  
 मान सस्त्रिष्टुष्टौष्मी त्रिष्टुर्भः स्वारथं स्वारादन्तर्यामो  
 न्तर्यामात्यञ्च दृष्टः पञ्चदशा हृहङ्ग रक्षाजः ऋषिः  
 प्रजापति गृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥१२॥

११०१२० या-वृ० १३० १५० दे-पं० १४० दे-वृ० १६० १८० १९० या-गा० १७०  
 या-अ० २०० अर्षी-गा०। एभिर्मन्त्रै स्तृतीयं दशकं दक्षिणश्रो

+ अ-मो० अ० त-मू० इ० ग्री-सः। उ० त्रि-ष्मी। ऋ० त्रि-मू० ल० स्ता-मः। आ-  
 अ-प्र०। दे० प-त०। ऊ० भ-विः ऋ० प्र-भ्यः। लृ० ॥५॥

लो रारभ्योपधेयम्। विश्वं करोति (सर्वको सृजै) विश्वकर्मा (वायु) इ  
 स दक्षिण दिशा विषे आर्या वर्तते भूयिष्ठ वहता है तद्रूपां त्वा-  
 मा दयामि। तुरतिस रूपाको सादन करता हूं ॥११॥ तिसका अप  
 त्य मन अत एव वैश्व कर्मणं मनरूपां सा ॥१२॥ मनका अपत्य  
 ग्रीष्म ऋतुः तद्रू ॥१३॥ ग्रीष्मसे उत्पन्न त्रिष्टुप् छन्द तद्रू ॥१४॥  
 त्रिष्टुप् से उत्पन्न जो स्वारहं साम तद्रू ॥१५॥ स्वारहं सामसे उत्प  
 न्न जो अन्तर्यामि ग्रह तद्रू ॥१६॥ अन्तर्यामिसे उत्पन्न जो पञ्चद  
 शस्तोमत ॥१७॥ पंचदशस्तोमसे जो उत्पन्न बृहत्पृष्ठत ॥१८॥  
 वाज (अन्न) को भरत (धारण कर्ता) मन स्वस्थ मनविषे अन्नम  
 क्षणे छा की उत्पत्तिसे ऋषिः सचेतन मनरूप तद्रू ॥१९॥ धा  
 तृ करि सृजी तुरु इष्टका करि प्रजा के अर्थ मन गृहण करता हूं  
 २०॥ इन दश मंत्रों से मन एव गृह्णामीत्यर्थः ॥५५॥

अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षु  
 ष्योजगती वार्षी जगत्या ऋक्से ममृक्से माछुक्कः शुक्रा  
 त्सप्तदशः सप्तदशाहं रूपं जमग्निः ऋषिः प्रजापति  
 गृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५६॥

२१-या-अ० २२-या-छ० २३-२४-२६-दे-पं० २५-२६-२७-या-गा०  
 २८-या-उ० २९-आर्या गा० अयं पश्चादित्यादि मन्त्रैर्द्वितीयं द  
 शक मुत्तरश्रोणे रारभ्योपध्याति प्रतीची गमन शील विश्ववि  
 चिति (उदित हो प्रकाश करता) विश्वव्यचा (आदित्य) यह प्रसि  
 द्ध तद्रू ॥२१॥ तिस आदित्यका संबंधि चक्षु अत एव वैश्वव्य

व्य-चाः ॥ अ० त-मृ० इ० व-व्यः ॥ उ० ज-षी० ऋ० ज-मृ० ल० ऋ०-क्र० ॥ आ०  
 शु-श० ॥ ई० स-मृ० ज-षिः ॥ ऋ० प्र-भ्यः ॥ लृ० ॥ ५६॥

चा विषे उत्पन्न तद् ॥२३॥ चक्षुसे उत्पन्न वर्षा ऋतु तद् ॥२३॥  
वर्षा से उ० जगती छन्द त० ॥२४॥ जगती से उ० ऋक्सम संज्ञा  
साम त० ॥२५॥ ऋक्सम से० जो शुक्रग्रह त० ॥२६॥ शुक्र से० जो रुद्र  
दशस्तोम त० ॥२७॥ सप्तदशस्तोम से० जो वै रूपपृष्ठ त० ॥२८॥ जस  
तु (जगत को देखता) अग्नि (सर्वत्र चलता) ऋषति (जानता ऋषि)  
ऐसा जो चक्षु त० ॥२९॥ प्रजापति करि सृजी तुरु दृष्टका करि  
जा के अर्थ चक्षु ग्रहण करता हूं ॥३०॥ दशमन्त्र से अक्षु रेत  
गृह्णामि ॥३१॥

इदमुत्तरात्स्वस्तस्य श्रोत्रं शरच्छ्रोत्रं अनुष्टुप् शारदं अनुष्टु  
भेः ऐडं मैडान्मन्थी मन्थिनेः एकविंशं शस्तोमं एकविंशं  
राजं विश्वामित्रं ऋषिः प्रजापति गृहीतया त्वया श्रोत्रं  
गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५०॥

३१.३२.३४.३५.३६. या-गा. ३३. ३६. दे-हृ. ३७. ३८. या-उ. ४०. आ  
धीगा. दशमन्त्रे अतुर्थे दशकमुत्तरांसादारभ्योपदधाति ॥ सवसे उत्त  
रभाग दिशा जो यह स्वः (स्वर्गलोक) तिस तुरु स्वर्गरूपादिक् कोसा  
३१ ॥ तिस स्वर्ग का संबंधी श्रोत्र-सौव श्रोत्र रूपं त्वां सा. ३२ ॥ श्रोत्र  
से उ० जो शरत् ऋतुः त० ॥३३॥ शरत् से० जो अनुष्टुप् छन्द त० ॥  
३४ ॥ अनुष्टुप् से० जो ऐडं साम त० ॥३५॥ ऐडं साम से० जो मन्थी  
ग्रह त० ॥३६॥ मन्थी ग्रह से० जो एकविंशं शस्तोम ॥३७॥ एकविं  
शस्तोम से० जो वै राजपृष्ठ त० ॥३८॥ विश्वामित्र ऋषिः सर्वमित्र  
जिस करि तैसा ऋषि (श्रोत्र-अक्षयान्य वाक्य अदा से सर्वमित्र

होता है विश्वामित्र ऋषिरूप जो श्रोत्र तद्रूपा सा ॥३४॥ प्रजापति क  
रि सृजी तुम्हें इष्ट का करि प्रजा के अर्थ श्रोत्र गृहण करता हूँ ॥४०॥  
दशमन्त्रैः श्रोत्रमेव सादयति ॥५७॥

इयमुपरि मतिस्तस्यैवाङ्गात्या है मन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैम  
न्ती पङ्क्तौ निधनवन्निधनवत् आग्रयणः आग्रयणा  
त्रिणवत्रयस्त्रिंशो त्रिणवत्रयस्त्रिंशो भाभ्यां त्रिंशो  
रैव ते विश्व कर्म ऋषिः प्रजापति गृहीतया त्वया वाचं  
गृह्णामि प्रजाभ्यो लोकं ताः इन्द्रम् ॥५८॥

इति श्री संहितायाम् सप्तमोऽनुवाकः ७

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहि  
तायां दीर्घ पाठे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

४१० या-उ० ४२० ४३० ४४० दे० पं० ४५० ४६० या-गा० ४६० या-हृ० ४७०  
या-त्रि० ४८० सा-उ० ५०० आषी गा० दशमन्त्रैः पञ्चमं दशकं रेत्  
सिग्भ्यामुत्तरं प्रथमं कृत्वा प्रादक्षिण्येनोपधेयम् ॥ उपरिज  
र्ध्वं देशस्थ चन्द्र इति मात (वाकमन्यते ज्ञायते यया सा मतिः  
वागेव चन्द्रमा हां के ऊपर जो तिष्ठे है तद्रूपा सा ॥४१॥ तिसचन्द्र  
रूपा मति से उत्पन्न अतएव मात्या जो वाक तद्रूपा ॥४२॥ वाचा से  
उत्पन्न जो हेमन्त ऋतु त ॥४३॥ हेमन्त से जो पङ्क्तिश्छन्दत ॥  
४४॥ पङ्क्ति से निधनवत्संज्ञक सामत ॥४४॥ निधनवत्साम से  
जो आग्रयण ग्रह त ॥४६॥ आग्रयण से जो त्रिणवत्रयस्त्रिंशो  
शदो स्तोमत ॥४७॥ त्रिणवत्रयस्त्रिंशो स्तोमों से दोषाकर रैव

१३६-तिः ॥ अ० गते-त्या ॥ इ० गते-च्यः ॥ उ० गते-ती ॥ ऋ० गते-प ॥ तृ० गते-नि ॥ ए० गते-आ ॥  
श्री० इ० गते-तै ॥ ऊ० गते-वि ॥ ऋ० गते-म्य ॥ तृ० गते-लो ॥ के० गते-व ॥ च० गते-इ ॥  
१३७॥ लोकं ता इन्द्रम् इति प्रतीकः ॥



त पृष्टत्वा तद्रू०॥४८॥विश्व कर्मा (सब करता है) ऋषिः (वागेव-  
वाचाही सब करती है) वाग्रूपात्वांसा०॥४९॥ प्रजापतिकरिसृ-  
जी तुर इष्टका करिके प्रजाके अर्थ वाचा को ग्रहण कर-  
ताहं ॥५०॥ एभिर्दशमंत्रैर्वाचमेव गृह्णाति ॥ ॥ अथ पञ्च क-  
ण्डिकासु प्राण मनश्चक्षुः श्रोत्र वाचां प्रजाभ्यो ग्रहणमित्यस्या-  
र्थ द्वयम्। प्रजाभ्य इति चतुर्थी पक्षे प्रजाके अर्थ प्राणादिकोंका  
ग्रहण पञ्चाशदिष्टकास्थापने प्रजा, यजमाना पत्यपश्वादिकों  
के प्राणादिक पृष्टहो इत्यर्थः। प्रजाभ्य इति पञ्चमी पक्षे प्रजा-  
नानालोकों के सकाशसे प्राणादिकोंका ग्रहण (अपने वशगा) क-  
रताहं अर्थात् प्राणभृत्तों के उपधानसे समस्त प्रजा मद्धाग्राहो-  
वे ॥ ॥ का० १७०६५ आत्मा के दक्षिण कोणसे ले मध्यात् अ-  
धि स्वय मातृणा पर्यन्त लोकस्पृणा उपधान करै तिन्होंकालो-  
कपुणेत्यभि मंत्रेण ता असेति मंत्रेण अधिवदन स्पर्शकरि-  
के पठनहै ॥ का० १७०६४ स्वय मातृणा के ऊपर इन्द्रविश्वेति  
मंत्रेण मृतक्षेपः मृदा डालै ॥ तिस्रः ऋचः प्रती कोक्ताः पूर्व  
मुक्तत्वात् १२०५४-५६ ॥ ५८ ॥ इति प्रथमचितिमंत्राः समाप्ताः

इति श्रीगिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः०

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थोऽतुरेदेयादग्निदेवः सनातनः

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशाखाध्येतव्याघ्रपादा-  
न्वयविश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मरौकि

णोयन्पतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये-  
प्रथमचित्युपधानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

हरिः शोम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरुपं च साधनैर्बहु रूपकम्

स्वानन्दरायकं कृष्णं ब्रह्म रूपं परं स्तुमः १

द्वितीयचिति मन्त्राणां देवाः ऋषयः

अ० १

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासिध्रुवं योनिमासीदसाध्रुया ॥

उरव्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणां श्विनाध्वर्यू सोदयतामि

हत्वा ॥१॥ + ध्रु-णा। अ० १। अ-त्वा। ३०॥१॥

ओं नमो याज्ञबल्क्याय

गिरिप्रसादेन संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

ईर्यते मनुरध्यायोभाष्ये द्वित्रिचतुश्चितिः

त्रयोदशोऽध्यायं प्रथमाचितिकही गई सा भूलोक रूपा + च  
तुर्दशे विषे द्वितियाद्वितीनि चिति कहिते हें भूमिसे ऊंचा-  
अन्तरिक्ष से उरला भाग दूसरी चिति है + देवताओं ने अश्वि-  
नी कुमारों से प्रार्थना की जो तुम बैद्य हो तो दूसरी चिति को उप-  
पादक रीति से कहो चित्युपधान में हमें क्या फल यह अश्विनी  
कुमारों ने कहा देवता बोले कि तुम चित्युपधान विषे देवताओं के अ-  
नुरूप हो वोगे फिर तिन्होंने दूसरी चिति उपहित की ॥ तत्रादौ प

† एतौ द्वितीयमित्यादि शत० ८० २० १० २०

† तेऽश्विनावबुद्धित्यादकयोक्तमिति शत० ८० २० १० ३० श्रुत्यो

अश्विन्य इष्टकाः॥ का० १०. ८. १५. पांच कण्डिकाओं से अश्विनी  
संज्ञा इष्टका रेतः सिग्वेला विषे उपधान करे प्रतीष्टकं नित्ये इति  
सूत्रार्थः॥ अश्विनी देवत्याः प्रथमा विराट् चतस्रस्त्रिष्टुभोय  
नुरन्ताः। अश्विनाध्वर्यु इत्यादि यजुः। हे इष्टके यतः तू स्थिर  
है अतः स्थिर योनिरेतः सिग्वेला लक्षणस्थान) में अधिष्ठित  
हो। कैसी योनि कि साधु श्रेष्ठ। कैसी है तू कि स्थिर है निवास-  
जिगका। अपचल है योनि (कारण) जिसका। प्रथम केतु (स्था-  
न) प्रथम चितिरूप को सेवमाना। इतः परं यजुः किंच दे-  
वताओं के अध्वर्यु अश्विनी कुमार इह रेतः सिग्वेला विषे-  
हे इष्टके तुम्हें उपधान करें॥१॥

कुलायिनी घृतवती पुरंधिः सोने सीद स देने पृ-  
थिव्याः अभित्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्मपी-  
पिहि सौ भगाया अश्विनाध्वर्यु सादयतामि हत्वा  
॥२॥ + कु-या। अ० अ-त्वा। इ०॥ २॥

हे इष्टके पृथिवी के सदन प्रथम चितिरूपस्थान सुखरूप विषंतू  
बैठि। कैसी है तू कुलायिनी- गुहाकारा। तथा घृतवती (होष्यमा-  
णा ज्ययुता- वसोर्धारा ह्यत्र होष्यन्ते। पुरंधिः बहु इष्टका जात  
को स्थापन करती वा बहुधा स्थापन करते हैं। किंच रुद्रों और वसुओं  
लक्षण सब देवता तुम्हें स्तुति करें। किंच सौभग (ऐश्वर्य) के अर्थ इन  
ब्रह्म (मन्त्रों) को प्राप्त हो। अश्विने त्यादि पूर्ववत्॥२॥

स्वैर्हृक्षैर्हृक्षैः पिते हसीददेवानां सुम्ने हतेरणाय॥

+ पृथिवी  
से प्रथमा  
अतः ०८. २।  
१०५. अतः

पिते वै धि सूनवः आसु शोवां स्वा वेशा तन्वा संविशस्वा  
श्विना ध्वर्यु सा दयता मिहत्वा ॥३॥ + से-स्वा अ-अ-त्वा ॥ ३॥

हे इष्ट के तू इस दूसरी चिति विषे से देखे :- अपने वीर्य + सहित  
वेठि। कैसी कि दक्षपिता, वीर्य की पालायत्री। कि मथे स्यातव्यं त  
ब्राह्म देवताओं के रमणीय बडे सुख के अर्थ देवता सुखी हों इ  
ति तिष्ठेत्यर्थः। किंच समन्ताद्वावेन शोभन सुख जिस से तादृशी  
सुखपित्री हो। तत्र दृष्टान्तः जैसे पिता पुत्र के अर्थ सुख यिता होता  
है तद्वत्। किंच सुख अवेशवती शरीर करि अवस्थान करि। अ  
श्विनेत्युक्तम् ॥३॥

पृथिव्याः पुरीषमस्य सो नामतां त्वाविश्वे अभिगृणा  
न्तु देवाः ॥ स्तोमं पृष्टा घृतवती हसीद प्रजावदस्मे द्रवि  
णाय जस्वा श्विना ध्वर्यु सा दयता मिहत्वा ॥४॥ +

हे इष्ट के तू पृथिवी (प्रथमचिति) की पूरक वस्तु + ओर जलों का  
कारणी भूत रस तू है। कैसी तुम्हें प्रथमचिति पूरिका ओर जलदर  
सभूता को सब देवता स्तुतिकरे। किंच स्तोम पृष्टा, विवृदादिकलो  
मरयन्तरादिक पृष्ट जिसे तादृशी स्तोम पृष्टवती। घृतवती - हा  
व्यं नाणाज्य युता सती इस दूसरी चिति विषे वेठि। ततः प्रजावत्  
पुत्रपौत्रादि प्रजासुता धन हमारे अर्थ समन्तात् दे। अन्यद्वा  
ख्यातम् ॥४॥

अदित्यास्त्वापृष्टे सा दयाम्यन्तरिक्षस्य धृत्रीं वृष्टम्भनीं  
दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् ॥ ऊर्मिर्द्रुप्सोऽयाम्

सि वि श्व क र्मा तः ऋषि रश्चि ना ध्व र्यू सा दय ता मि हत्वा ॥ १॥

हे इष्ट के अदित्याः प्रथमचितिरूपा पृथिवी के पृष्ठ के ऊपर तु  
मे स्थापन करता हूँ। कैसी तू मे कि अन्तरिक्ष (भुवर्लोक) की धारण  
करने वाली। पूर्वादि दिशाओं की सम्भन करने वाली भूतजातों  
की स्वामिनी। किंच तू जलों के रस की कल्लोल है। विश्व कर्मा प्रजा  
पति) तेरा दृष्टा। तू मे तेरी को अश्विनी कुमार सादन करें ॥ १॥

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रेष्मावृतुः अग्नेरेन्तः श्लेषोसिकल्पे  
तां द्यावा पृथिवी कल्पन्ता मापः ओषधयः कल्पन्ता म  
ग्नयः पृथग्मन् ज्येष्ठाया सव्रताः ॥ येऽअग्नयः समन  
सोन्तरा द्यावा पृथिवी इमे ॥ ग्रेष्मावृतुः अभि कल्पमा  
ना इन्द्र मि व देवा अभि सं विशन्तु तथा देवतया द्गिर  
स्वध्रुवे सीदतम् ॥ ६ ॥

का. १७. ८. १६. प्रथमचिति विषे उपहित दोनों ऋतव्यों के ऊपर  
रक्षोऋतव्ये पद्ये प्राग्लक्षणे अन्क में अभितः उदङ्मुख उप  
पधान करें। शुक्रश्च शुचिश्चेति प्रत्येक को उपधान करिके। ग्रे  
ष्मावृतु इति मन्त्र शेषः दोनों का आलम्भन करि पढ़े ॥ ऋतु  
देवतं यजुः। श्रुको ज्येष्ठ मासः शुचिः अषाढः ते ग्रीष्म संबंध  
धि ऋतु के अवयव। अन्यद्वारव्यातम् १३. २५ ॥ ६ ॥

अ. २ सजुर्ऋतुभिः सजुर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधै  
रग्नयै त्वा वैश्वानरा याश्चि ना ध्व र्यू सा दय ता मि हत्वा सजु  
र्ऋतुभिः सजुर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधै

रग्नयेत्वा वैश्वानरायाश्चिनाध्वर्युसादयतामिहत्वा स  
 जूऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरुद्वैः सजूर्देवैर्वयोनाधैर  
 ग्नयेत्वा वैश्वानरायाश्चिनाध्वर्युसादयतामिहत्वा सजूऋ  
 तुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैर  
 ग्नयेत्वा वैश्वानरायाश्चिनाध्वर्युसादयतामिहत्वा सजू  
 ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वेर्देवैः सजूर्देवैर्वयो  
 नाधैरग्नयेत्वा वैश्वानरायाश्चिनाध्वर्युसादयतामिह  
 त्वा ॥७॥ + स-त्वा। अ०। १४। उ०। ऋ०। लृ०॥ ७॥

का० १७०८०१८० पांच मंत्रों से पांच वैश्वदेवी संज्ञा दृष्टका पूर्वादि  
 कों में उपधान करें ॥ विश्व देव दृष्टानि विश्व देव देवत्यानि पञ्च  
 १४०५ यजूर्द्वि २३ ब्रा-उ० हे दृष्ट के देवताओं के अध्वर्युऋ  
 नि कुमार तिस तुम्हें इस स्थान दूसरी चिति विषे सादन करें ॥ कि  
 मर्थ कि सवनरों के अर्थ हित अग्निकी तृप्ति के लिये तिस कि  
 से कि जो तू ऋतुओं में सजूः अर्थात् वसन्तादिकों से प्रीति मती  
 तथा विधाभिः जगत के सृजने वाले जलों से सजूः + तथा इ  
 न्द्रादिक देवताओं से सजूः ॥ तथा वयोनाधैः, बाल्यादि बाधते हैं  
 प्राणादिक और तिन्ही देवैः, दीप्यमानों से सजूः + अथवा वयो  
 नाधैर्देवैः - छन्दों से सजूः + एवमुत्तर मन्त्रेष्वपि यद्वा ऋतु देव  
 प्राणों की सृजि के तिन्हीं से सजूः सयुक् हो के प्रजापति ने जैसे तू  
 उपधान की थी एवं मैं भी अग्निके अर्थ तुम्हें उपधान करता हूँ  
 इति शेषः + ॥ उत्तर चतुर्मन्त्रेषु वसुभिः रुद्रैः आदित्यैः विश्वेर्दे-

+ अग्नेर्विश्वं धा० ऋत० ८०५२०५१ अ० १४  
 ससर्जद्वि विति मनु० अ० १४ अ० २२



वसज्जरेति विशेषः शेषं पूर्ववत् ॥ ७ ॥

प्राणं मे पात्य पानं मे पाहिव्यानं मे पाहिवक्ष्ममेऽनु  
व्याविभाहि श्रोत्रं मे श्लाकय ॥ अपः पिबोषधीर्जिह्व  
द्विपादवचतुत्पात्याहिदिवो वृष्टिमेरेय ॥ ८ ॥

का. १७. ८. २०. पांच यन्त्रों से प्राणभृत्संज्ञका दृष्टकापूर्वादि  
कों में उपधानकरै ॥ पञ्च वायु देवत्यानि ॥ १३. दै. पं. २. ५. दै. त्रि  
५. प्रा-गा. ग. हे दृष्टके तू मेरे प्राण (प्राणरूप वायु) को पालन करि ॥  
२॥ एवं अपानं ॥ २॥ व्यानं ॥ ३॥ विस्तीर्ण दृष्टि करिके मेरे नेत्रों को  
विशेषेण प्रकाशय अर्थात् दर्शन समर्थ करि ॥ ४॥ मेरी कर्णेन्द्रिय  
को संघातविषे शक्त अर्थात् बहुशब्द श्रवण समर्थ करि ॥ ५॥ का.  
१७. ८. २१. पांच मंत्रों से अपस्या संज्ञा दृष्टका उपधानकरै ॥ अपदेव  
त्यानि पञ्च १३. दै. व. २. ४. दै. पं. ५. दै. ज. ग. हे दृष्टके तू जल सीं  
चि ॥ १॥ ओषधीं से पीति हो ॥ २॥ मनुष्य शरीर को रक्षा करि ॥ ३॥ पशु  
शरीर को पालन करि ॥ ४॥ द्युलोक से वृष्टि को समन्तात् प्रव  
र्त करि ॥ ५॥ ८ ॥

०३ प्राणवे  
वायुरिति  
प्रा. ०. ८.  
२. ३. २१.

अ० ३ मूर्धावयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो वि  
ष्टम्भो वयो धियतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो  
वस्तो वयो विवल्नं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दो  
पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयो नाधश्छन्दः सिंह  
होवश्छन्दः पशुवा द्रुयो ब्रह्मती छन्दः उक्षा वयः  
ककश्छन्दः ऋषभो वयः सतो रती छन्दो नृपु न्वयः ॥ ६ ॥

+ प्रा. हि. अ. अ. हि. इ. व्या. हि. उ. चि. हि. क. अ. हि. ल. अ. अ. त्व. आ. ओ  
न्व. ई. अ. हि. उ. अ. च. हि. कृ. अ. दि. य. ल. ॥ ८ ॥  
+ मृ. न. ग. अ. अ. - र. इ. अ. वि. र. उ. अ. क. अ. च. नृ. अ. ल. अ. न. अ. अ. पु. नृ. अ. र. अ.  
अ. नृ. अ. अ. - र. इ. अ. वि. र. उ. अ. क. अ. च. नृ. अ. ल. अ. न. अ. अ. पु. नृ. अ. र. अ.

प्रजापते विस्वामित्रा वज्रं दत्त्वा प्रनित्यादि शत० ८० २० ३० ५० ४० १५०  
भुविषु १ को न विदं शतिर्मन्त्राणामर्थो दोषनीयः ।

ह्लात् ॥ इति ॥ विवलं (वरः उक्तष्टः एकपदारव्य) छन्द होकर उत्क्रान्तवत्त (अज) को वय करिके ग्रहण करता हुआ ॥ तत्तद्वयोऽवस्थया जग्राह एव मुत्तरमन्त्रेष्वपि विभक्तिपरिणामं कृत्वा तत्तद्वन्दो रूपमास्थाय प्रजापतिस्तत्तद्वयसा तं-तंपशुं गृहीतवानिति योज्यम् विशेषस्तु व्याख्यायते ॥ ५ ॥ विशालं द्विपदा गायत्री रूप छन्द हो के वृषिण (सेचन समर्थः मेष) को वय करिके ग्रहण करता हुआ ॥ ६ ॥ तद्वं पङ्क्ति छन्द हो के भागते हुए पुरुष पशु को वय ॥ ७ ॥ अनाधृष्टं विराट् छन्द हो के भागते व्याघ्र पशु को वय ॥ ८ ॥ हृदयतीति छन्दः अति छन्द हो ॥ सिंह पशु ॥ ९ ॥ अथातो निरुक्तानि छन्दाश्चस्युप-  
दधातीति ८. २. ४. ५ श्रुतेः सप्तानि छन्दांसि दर्शोच्यन्ते ॥ पृष्ठे (पृष्ठ भाग विशेषं वहताः पृष्ठवाट) पांच वर्ष के पशु को ब्रह्मती छन्द हो ॥ १० ॥ ककुब्ध छन्द हो ॥ उक्षा (सेचन समर्थ) पशु को ॥ ११ ॥ सतो ब्रह्मती छन्द ॥ ऋषभ (सेचन समर्थः वृष पशु) को ॥ १२ ॥ ४ ॥

अनङ्गान्वयः पङ्क्ति छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्रिवि-  
यस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्य वाङ्मयो विराट् छन्दः पञ्चा विर्वयो गा-  
यत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयः उषिण् छन्दस्तुर्य वाङ्मयानुष्टुप्  
छन्दो लोकांता इन्द्रम् ॥ १० ॥ +

पङ्क्ति छन्द हो ॥ अनङ्गा ह (अनः शकट को वहने वाले पशु ॥ १३ ॥  
जगती छन्द हो ॥ धेनु (नवप्रसूता सवत्सगोको ॥ १४ ॥ त्रिष्टुप् छन्द हो ॥  
अवय (एमासात्मक अपवि- तीनि अवयवार्थे अष्टादश  
महीने के पशु को ॥ १५ ॥ विराट् छन्द हो ॥ दित्य वाङ्मयि निः स्वराट्

न को चाहते दित्यं धान्य को वहते यद्वा दो वर्ष के पशु ॥ १६ ॥  
 पाँची छन्द हो पंचादय (सार्ध द्विवर्ष के) पशु ॥ १७ ॥ उष्णिक्  
 छन्द हो त्रिवत्स (तीन वर्ष के) पशु ॥ १८ ॥ अनुष्टुप् छन्द हो चतुर्वत्स  
 वाद (चार वर्ष के) पशु ॥ १९ ॥ एवं श्रुत्यन्तः सारेण व्याख्या  
 ताः ॥ का. १७. ८. २४. दक्षिण श्रोणि से ले लो कम्पूणा उपधान करे  
 पुरीष निर्वाप और सप्तर्चोपस्थान पूर्ववत् ॥ १२. ५४-५६ व्याख्या  
 ताः ॥ १० ॥ ॥ इति द्वितीयचिन्तितमन्त्राः समाप्ताः ॥ २ ॥

तृतीयचिन्तितमन्त्राणामिन्द्राग्नीविश्वकर्माचक्षुषिः  
 अ. ४ इन्द्राग्नीः अव्ययमाना मिष्टकां दृढं हंतं युवम् ॥ पृथ्वेन  
 द्यावा पृथिवीः अन्तरिक्षं च विवाधसे ॥ ११ ॥  
 का. १७. ८. २५. तीसरी चिन्तित विषे आत्मा के मध्य में स्वयमात्मना  
 को उपधान करे ॥ अनुष्टुप् पूर्वोऽर्धर्च इन्द्राग्नि देवतः उत्तरः  
 स्वयमात्मना देवतः ॥ हे इन्द्राग्नी तुम अव्ययमाना (अचलन्ती,  
 भङ्ग रहिता) दृष्टका (स्वयमात्मना) को दृढी करे ॥ एवं मिन्द्राग्नी  
 प्रत्युक्ता दृष्टका माह ॥ हे स्वयमात्मने अपने उपरि भाग क  
 रिके द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्ष को अभिभव करि (लोकत्र  
 यमत्येषि ॥ १२ ॥

विश्वकर्मात्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वती प्रय  
 स्वती अन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृढं हान्तरिक्षं माहिर्द  
 सीः ॥ विश्वस्मै प्राणायोपानाय व्यानायो हानाय प्र  
 तिष्ठायै च रित्राय ॥ वायुश्चाभिपातुमह्यस्वस्त्या च

हिंसा शंतमेनतया देवतयाङ्गिरस्वधुवासीद ॥१२॥

वायु देव यं यज्ञः स्वयमातृलोपधाने एव विनियुक्तम् । हे स्वयमा  
तृलो विश्वकर्मा (प्रजापति) अन्तरिक्षके पृष्ठ (ऊपर) में तुम्हें स्था  
पन करे । कैसी तुम्हें कि अभिव्यक्त युता (विस्तार युक्ता) हे इष्टकेतु  
अन्तरिक्षं यच्छ गन्धर्वाप्सरोगणादिधारकतत्ता नियम करि ।  
अन्तरिक्षं हं हयरोपद्रवभावेन दृढीकारि । तिस अन्तरिक्षको हिं  
सान करि । किमर्थं कि इन सबों की प्राणायानं व्यानोदानाख्य-  
वायु वृत्ति लाभ के अर्थ प्रतिष्ठा (स्वगृहस्थिति) के अर्थ चरित्र  
(शास्त्रीयाचरण) के अर्थ । प्राणियों का यह सब लोक की दृढता हीमें  
होता है इस हेतु से नभोनियमनादि प्रार्थना किये इति भावः ॥ किं  
च बड़ी योगक्षेमसम्पत्त्यतिशुभकारिणी और छर्दि (विशेषते  
ज) करिके तुम्हें वायु सर्वतः रक्षा करे । तेरी अधिष्ठात्री जो देवता  
तिस देवता से अनुग्रहीता स्थिर होके बैठि किजैसे तू अपङ्गिराओं  
के चयनानुष्ठान विषे स्थिति हुई तद्वत् ॥१२॥

राज्ञसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणादिक्त्वाऽसि प्र  
तीची दिक्त्वाऽसि दीची । दग्धिपत्यसि बृहतीदि

क्त्वा ॥१३॥ + रा-का-अवि-का-इ-स-का-उ-स्व-का-म-अ-कान्त ॥१२॥

का० १७०८२६ वैश्वदेवी वत् इति प्रतिदिशरेतः सिग्वेत्ता में अनू  
कों के विषे पांच दिश्या संज्ञका इष्टका उपधान करे पांचमीद  
क्षिणा को उत्तर करिके इति सूत्रार्थः ॥ दिक्शब्दो पेतत्वाङ्गना  
णां दिश्या इष्टकाः ॥ दिग्देवत्यानि पंच १ या-गा० २३ या-अ०

४० पा-उ० ५० पा-वृ०। हे इष्ट के रज्जी० रजमाना सती-  
पूर्वादिशा गायत्रीरूपा है॥१॥ विराट्-विविधरजमाना दक्षि-  
णादिक् त्रिष्टुप् रूपा है॥२॥ सम्राट्-सम्यग् राजमाना प्रतीचीदिक्  
जगती है॥३॥ स्वराट्-परनिरपेक्षं स्वयमेव राजमाना सती उदी-  
चीदिक् अनुष्टुप् है॥४॥ अधिकं पातीति अधिपत्नी बृहती  
(प्रोता) उर्ध्वादिक् पङ्क्ति है॥५॥ दिकूलन्दो रूपा तिस्रुं मे साद-  
न करता हं इति सर्वत्र शेषः †॥१३॥

† अन्तरिक्षात् पृथिवीं प्राणानां पानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छेत्॥

विश्व कर्मात्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्॥  
विश्वस्मै प्राणाय पानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छेत्॥  
वायुश्चेधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद्भुवसीद॥१४॥  
का० १००८३ प्रथमोपहिता विश्वज्योति के ऊपर विश्वज्योतिर-  
ष्ट का को उपधान करै॥ वायु देवत्यं यजुः॥ हे इष्ट के तुरुज्यो-  
तिष्मती (वायुरूपा) को अन्तरिक्ष के पृष्ठ में विश्वकर्मा सादन क-  
रै॥ किंच सर्वप्राणादिलाभायतू सर्वज्योति दे। वायुतेरा अधिप-  
तिशिष्टं १२ कण्डिकावत्॥१४॥

नमश्च नभस्य च वार्षिकारुतूः अग्नेरन्तः श्लेषोसिक-  
ल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्ता मापः ओषधयः कल्प-  
न्ता मग्नयः पृथक् समुज्ये स्याय सर्वताः॥ येऽज्ञान-  
यः समनसोन्तरा द्यावापृथिवीः दूमे॥ वार्षिकारु-  
तूः अभि कल्पमाना इन्द्रमिव देवाः अभिसम्वि-  
शन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद्भुवसीदतम्॥१५॥

† अन्तरिक्षात् पृथिवीं प्राणानां पानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छेत्॥



का० १०. ४. ४. पूर्व ऋतव्याओं के ऊपर दो ऋतव्याएँ उपधान करें ॥  
 ऋतुदेवतं यजुः। नभः। श्रावणं माम्। नभस्य। भाद्रपादं शेषं  
 व्याख्यातं १३. २५. ॥ १५ ॥

दुषश्चोर्जश्च शारदावृत्ः अग्नेरन्तः श्लेषोसि कल्पेतां  
 द्यावापृथिवी कल्पन्ता माय ओषधयः कल्पन्ता मुग्ध  
 यः पृथक् अमज्यैष्वाय सव्रताः ॥ येऽ अग्नयः समन  
 सोन्तरा द्यावापृथिवीऽ इमे ॥ शारदावृत्ः अभि कल्पमा  
 नाऽ इन्द्रमिव देवाऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाद्गिर  
 स्वर्गु वैसीदतम् ॥ १६ ॥

का० १०. ४. २५. अपरे ऋतव्याएँ पूर्वाओं के ऊपर रखें ॥ ऋतव्यं  
 यजुः। इषः। आश्विनः। ऊर्जः। कार्तिकः। शिष्टमुक्तम् १३. २५. ॥ १६ ॥

अ० ५. आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्य पानं मे पाह्य व्यानं मे पाहि  
 चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिच मनो मे जिन्वा  
 त्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे पछ ॥ १७ ॥ +

का० १०. ४. ६. आत्मा के पूर्वभाग में प्राणभृत्संज्ञा दश इष्टका  
 उपधान करें ॥ लिङ्गोक्त देवतानि दश १. २. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०.  
 दे-पं० ३. ४. दे-त्रि० हे इष्टके मेरी आयु का तू पालन कर १  
 एवं प्राण २ अपान ३ व्यान ४ चक्षु ५ श्रोत्र का ६ वाचा को काम  
 नाओं से पूरि ७ मन की तृप्ति करि ८ आत्मा (जीव) को पालि  
 ९ मेरे अर्थ तेज दे १० ॥ १७ ॥

माछन्दः प्रमाछन्दः प्रतिमाछन्दोऽ अस्वी वयं

+ आ-हि। अ० प्रा-हि। इ० अ-हि। उ० व्या-हि। ऋ० च-हि। ल० श्रो-हि। वा० वा-हि। म-त्वा। ऊ० आ-हि। ऋ० ज्यो-छ। नृ० ॥ १७ ॥



एत्यादि श्रुतेः॥

०४. सप्तवाभ इ

सप्तवा.

॥ ३३ ॥

म. यान्त्रिज्ञान.

प + न

हरि

५५

५





धपद्या उदङ्मुख उपधानकरैः प्रवृत्तिरित्यादिचौदह मन्त्रोंसै ॥ अ  
 तः परं संबत्सर रूपाण्युपदधाति । प्रकृष्टा तूर्तिः (त्वर) जिसकी वो  
 ह अष्टादिशस्तोम यद्वा संबत्सर प्रवृत्तिरष्टा दशा वयवः द्वादश  
 मास पञ्च ऋतुर्ग्रे और संबत्सर तद्रूपा ॥ १॥ तपोरूपनवदशस्तो  
 मः यद्वा संबत्सरस्तपः शीतोष्ण वर्षा करि तपाताहै वोहनवदशः  
 द्वादशमहीने छै ऋतुर्ग्रे संबत्सरतद्रू ॥ ६ ॥ अभिवर्त्यते आवर्त्यत इत्य  
 भीवर्तः समावृत्तिरूप सो विंशस्तोमः यद्वा अभिवर्तयत्यावर्त  
 यति सब भूतों को इति संबत्सरः वारह महीने सात ऋतुर्ग्रे संव  
 त्सर रूप विंशति संख्या सहित स्तद्रू ॥ ७ ॥ वर्चः विशेषवलकादे  
 नेवाला द्वाविंशस्तोमः यद्वा संबत्सर वर्चस्वितमः द्वादशमहीने  
 सप्त ऋतुर्ग्रे दो अहोरात्र और संबत्सरस्तद्रू ॥ ८ ॥ सम्विभर्तिसम्भ  
 कपोष करनेवाला त्रयोविंशस्तोमः यद्वा संभरति (उत्पन्नकर  
 ता) वासंहरति (विनाशकरता) सम्भरणः संबत्सरः त्रयोदश  
 महीने सप्त ऋतुर्ग्रे द्वे अहोरात्रे और संबत्सरस्तद्रू ॥ ९ ॥ योनिः प्र  
 जोत्यादक चतुर्विंशस्तोमहै यद्वा योनिः सर्वस्थानभूत संबत्सरः  
 चतुर्विंशपक्षात्मकस्तद्रू ॥ १० ॥ गर्भः सामगर्भः पञ्चविंश  
 स्तोमोऽसि यद्वा गर्भः संबत्सरः भूतौत्यादकत्वात् चतुर्विंशतिः  
 पक्षाः एकः संबत्सर इति अथवा अधिक मासहोके ऋतुर्ग्रे  
 भे गर्भ होताहै तद्रू ॥ ११ ॥ ओजः ओजस्वी तेजस्वी वा ब  
 ज्रः तद्रूपः त्रिणवः स्तोमहै यद्वा ओजः संबत्सरः चतुर्वि  
 शतिपक्षाः अहोरात्र संबत्सरात्मकत्वात् त्रिणवः तीनिगु



लो० २० तद्रूपं ॥१२॥ ऋतुः (यज्ञोपयोगी एकविंशस्तोमोऽसि यद्वा  
संवत्सर एव करोतीति क्रतुः पक्ष २४ ऋतुर्दसंवत्सरात्मकत्वात् १  
एकविंशस्तद्रूपं ॥१३॥ प्रतिष्ठा (स्थितिहेतुः) त्रयस्त्रिंशः स्तोमोऽसि यद्वा  
द्वसंवत्सरः प्रतिष्ठा संवत्सरविषे सवके प्रतिष्ठतत्वं सैपक्ष २४  
ऋतुर्द अहोरात्र २ संवत्सर १ तद्रूपं ॥१४॥ ब्रध्नः (सूर्य) विष्टपं (नि  
वासस्थान) ब्रध्नस्य विष्टपं स्वाराज्य स्वतन्त्रत्वं तद्रूप तत्त्वदजो  
चतुस्त्रिंशस्तोम तद्रूपासि यद्वा संवत्सर ब्रध्नस्य विष्टपं रविकरि  
के कालनिर्माणत्वं सै २४ पक्ष ७ ऋतु २ अहोरात्र १ संवत्सर तद्रूपं  
॥१५॥ नाकः (स्वर्गकादेनेवात्मा) षड्विंशः स्तोमोऽसि संवत्सरोवा ना  
कः काम्यता इति कं (सुखं न (नहीं है) कं (सुखं अर्थात् दुःख  
जहां वोह नाकः षड्विंश २४ पक्ष १२ महीने तद्रूपं ॥१६॥ विवर्त्य  
न्ते आवर्त्यन्ते सामानि जहां इति विवर्तः अष्टाचत्वारिंशस्तो  
मः तद्रूपासि यद्वा विविधं वर्तन्ते भूतानि जहां इति संवत्सरः  
अधिकमासत्वेन पक्ष २६ ऋतु ७ मास १३ अहोरात्र २ तद्रूपं ॥१७॥  
ध्वं (धारक) चतुरुत्तरस्तोमः चतुष्टोम विवर्त पञ्चदश सप्त  
दश एकविंश स्तोमों का समूह तद्रूपासि। अथवा जगत्धार  
त्व चारों दिशाओं करि स्तूपमानत्वं सै वायु चतुष्टोम है ॥१८॥  
दावन्ते च वायुपधानेन वायुना सर्वभूतानि वशी करोतीति  
भावः ॥ एतै रष्टा दश मन्त्रैः स्तोम वादिभिः स्तोमरूपत्वं नीता  
अष्टा दशोक्तका उपधेया इत्यर्थः ॥२३॥  
अ० ७ अग्नेर्भागोऽसि दीक्षायाः आधिपत्यं ब्रह्मस्य तं त्रि व

स्तोमं इन्द्रस्य भागो सि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रं स्युतं पञ्च  
 दशस्तोमो नृचक्षसां भागो सिधातुराधिपत्यं जनित्रं  
 थं स्युतं सप्तदशस्तोमो मित्रस्य भागो सि बरुणस्या  
 धिपत्यं दिवो वृष्टिर्वीतस्युतं शंकविर्धं शस्तोमो वसु  
 नां भागः ॥२४॥†

का० १०. १०. ११. पूर्वोक्तान्त विषे विहिता जंघा मात्रीओं के  
 मध्यमें दक्षिण को उदङ्मुख उपधान करै उत्तरा पूर्वमुपहिता  
 दशयजूं विचतुर्भिर्मृत्युगोहिन्मुपधानं षड्भिः पद पद्मोपधानं  
 १. सा-पं० २. सा-त्रि० ३. ५. ६. सा-ज० ४. आषीष्ट० ७. आषीउ० ८  
 आषीपं० ९. १०. यजुषि० दशैष्टकाः स्युत्संज्ञाश्च तत्रार्थवादः  
 श्रुत्युक्तः। उत्पन्न करिके सृष्टिकी आदिमें प्रजापति ने सब भू  
 त सृजने को गर्भमें किये तिन गर्भस्थित भूतों का पाप्मा मृत्यु  
 ग्रहण करता हुआ ततः प्रजापति ने देवताओं से कहा कि तुम क  
 रिके सहित में इन भूतों का पाप रूपी मृत्यु से मोचन करा सक्ता  
 हूँ इति देवता बोले कि तहां हम लोकों का क्या लाभ है प्रजापति  
 ने कहा कि मं गों तिन्हों में से किसी ने कहा कि हमारा भाग हो-  
 और किसी ने कहा कि हमारा आधिपत्य हो इति ऐसा ही होय  
 ह कहि कर किसी के अर्थ भाग किसी के अर्थ आधिपत्य दे  
 कर तिन्हों के साथ भूत लोक मृत्यु से छुड़ाए तिस हेतु स्युत द  
 ष्ट का है इति ॥ अथ मंत्रार्थः ॥ हे इष्ट के जो तू अग्नि का भाग  
 विभाग है और जिस तुरू विषे दीक्षा (वाचा) का आधिपत्य

† तत्राच श्रुतिः  
 यजुषि १०. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

† अ-मः। अ० इ-न-मः। उ० मि-मः। ऋ० ॥२४॥

(स्व मित्व) और जिस (तुम्हारे) विवृत्तोम करिके ब्रह्म (ब्राह्मण) को  
 स्पृतं पापी मृत्यु से छुड़ाया रक्षा किया वा तुम्हारे विषे विवृत्तोम  
 है जिस तुम्हारे उपधान करता हूँ ॥२॥ का० १७०१०१४० उदक  
 नूकान्त विहिता दक्षिणोत्तरा पद्याओं के मध्य में उत्तरा को आ  
 धान करे दक्षिणा तू पहिता इति ॥ हे इष्ट के तू इन्द्र का भाग है  
 तुम्हारे विषे विष्णु का आधिपत्य पंच दश स्तोम करिके क्षत्रजाति  
 छुड़ाई ॥२॥ का० १७०१०१३० दक्षिणा नूकान्त विहिता दक्षिणा  
 उत्तरा पद्याओं के मध्य में उत्तरा को उपधान करे दक्षिणो पहि  
 ता ॥ हे इष्ट के तू शुभा शुभ करने वाले मनुष्यों को जानते देव  
 ता तिनहों का भाग है तुम्हारे विषे धातु का आधिपत्य तुम्हारे सप्त दश  
 स्तोम करिके ज नित्र (वैश्यजाति) स्पृतम् ॥३॥ का० १७०१०१२०  
 अपरा नूकान्त विहिता दक्षिणोत्तरा जंघा मात्रीओं के मध्य में  
 उत्तरा जंघा मात्री को दक्षिणा मुख उपधान करे दक्षिणा तू प  
 हितेति ॥ हे इष्ट के तू मित्र (प्राण) का भाग है तुम्हारे विषे वरुण (अ  
 पान) का आधिपत्य तुम्हारे एक विंश स्तोम करिके दिवः संबंधि  
 नी वृष्टि और वात स्पृतम् ॥२४॥

वसूनां भागो सिरुद्राणां माधिपत्यं चतुष्पात्स्पृतं च  
 तुर्विंशस्तोमः आदित्यानां भागो सिमरुतामाधि  
 पत्यं गर्भी स्पृताः पञ्चविंशस्तोमो दित्ये भागो सिपू  
 षाः आधिपत्यं मीजं स्पृतं त्रिणवस्तोमो देवस्य सविनु  
 र्भागो सिवृहस्य ते राधिपत्यं समीची हिंशं स्पृताश्चतु

पि  
 वा  
 शत  
 ०८  
 ४  
 ३  
 १२  
 सुनिष्ठ

ष्टो मस्तो मोयवाना भागः॥२५॥+

का० १००१०१५ चतुर्दशओं से अपरा षट् मन्त्रों से षट् पद्या उपधा  
नकरै ॥ हे इष्ट के तूवसूओं का भाग है तुरमें रुद्रों का आधिपत्य तु  
र चतुर्विंशस्तोम करिके प्रजा के चतुष्पात् (गवाश्वादिक) पशु  
सृतम् ॥५॥ हे इ० तू आदित्यों का० तुरविषे मरुतों का० तुरपञ्च  
विंशस्तोम० प्रजा के गर्भमृत्यु से रक्षा किये ॥६॥ हे इ० तू अदिति पृ  
थिवी का० तुरविषे पूषा का० तुरत्रिणवस्तोम० प्रजा का ओज  
(बल वा आरवांभातु) सृतम् ॥७॥ हे इ० तू सविता देवता का० तु  
रविषे बृहस्पति का० तुरचतुष्टोम० समीची भले प्रकार अश्वन  
करते हैं जनजिन्हों में दिशाएँ सृतम् ॥८॥ २५॥

यवानां भा गोस्य यवाना माधिपत्यं प्रजासृताश्च तुश्च  
त्वारिंशस्तोमः ऋभूणां भा गोसि विश्वेषां देवना मा  
धिपत्यं भूतं स्पृतं त्रयस्त्रिंशस्तोमः सहश्च ॥२६॥  
हे इ० तू यवों (पूर्वपक्षों) का० अयवों (अपरपक्षों) का० तुर० तुर  
चतुश्चत्वारिंश स्तोम० प्रजा सृताः ॥८॥ ऋतुओं देव विशेषों  
का तू भाग है तुरविषे विश्वेसव देवताओं का आधिपत्य तुर  
त्रयस्त्रिंश स्तोम करिके प्राणिमात्र पाप्मा मृत्यु से रक्षा किये  
तथा यजमानोऽपि सर्वभूत मृत्यु से छुड़ाता रक्षा करता है ॥१६॥

सहश्च सहस्यश्च है मन्त्रिका वृत्त अग्नेरन्तः श्लेषेसि कल्पे-  
तां द्यावा पृथिवी कल्पन्ता मापः ओषधयः कल्पन्ता  
मग्नयः पृथङ्ममज्यैस्त्राय सव्रताः ॥ येऽग्नयः स

+ व-मः॥ अ० आ-मः॥ द० अ-मः॥ उ० दे-मः॥ ऋ० ॥२५॥

† व-मः॥ अ० ऋ-मः॥ दे० ॥२६॥



तिहुआ ॥१॥ एवंषोडशमंत्राव्याख्येयाः ॥ तिसृभिः प्राण उदान व्यान  
सै स्तुति की ब्राह्मणजाति सृजी ब्राह्मणस्पति ब्राह्मणजातिका अधि  
पतिहुआ ॥२॥ पञ्चभिः पञ्च प्राणैः स्तुति की पंचभूत सृजेभूतोंका  
पति देवतातिन्हों का स्वामीहुआ ॥३॥ सप्तभिः ओत्र २ चक्षु २ नासा २  
वायूप १ सप्तशीर्षेण्य प्राणैः स्तुतिकिया ततः सप्त ऋषि सृजेधाता ज  
गत्सृष्टाद्यौ देवः स्वामीहुआ ॥४॥ २८॥

नवभि रस्तुवत पितरौ सृज्यन्तादिति रधिपत्यासी देका द्वा  
शभि रस्तुवतः ऋतवो सृज्यन्तार्त्तवाः अधिपतयः आसै  
त्रयोदशभि रस्तुवत मासाः असृज्यन्त संवत्सरोधिपति  
रासीत्य च दशभि रस्तुवत क्षत्रमसृज्यन्तेन्द्रोधिपतिरासी  
त्सप्तदशभि रस्तुवत ग्राम्याः पशवो सृज्यन्त बृहस्पतिर  
धिपतिरासीन्नवदशभि रस्तुवत ॥ २९॥ +

नवभिः सप्तशिरके प्राणदोनीचेके (तिङ्गु गुदाब्जिद्र) इन ८ प्राणैः  
प्रजापति ने स्तुतिकी ततः अग्नि स्वात्तादि पितर सृजे अदिति (अखं  
छिता प्रजापतिशक्तिपितरोंकी पालन करने वालीहुई ॥५॥ एकादश  
भिः दशप्राणैः एकादश मे आत्मा सै स्तुतिकी वसन्तादिषट् ऋतु  
सृजी आर्तवाः ऋतुओं के पालक देवविशेष स्वामीहुए ॥६॥ त्रयो  
दशभिः दशप्राण दोषाद एक आत्मा सै स्तुतिकी ततः चैत्रादिमा  
स सृजे मासाभिमानी अयनद्वयात्मक संवत्सर तिन्हों का अधिप  
तिहुआ ॥७॥ पञ्चदशभिः दशहस्ताङ्गुलयः होकर दो बाहूनाभि  
सै ऊपर का भाग तिन्हों सै स्तुतिकी ततः क्षत्रियजाति सृजी इन्द्र रे-



नवदशभि रस्तु वत शूद्रा र्या वसृज्येता म हो रात्रेऽधिपती  
 आस्ता मेकं विठं शत्यास्तु वतैक शफाः पशवो सृज्यन्त  
 वरुणोधिपति रासी त्रयो विठं शत्यास्तु वत क्षुद्राः पशवो  
 सृज्यन्त पूषाधिपति रासी त्व च विठं शत्यास्तु वतारुण्याः  
 पशवो सृज्यन्त वायुरधिपति रासी त्सप्त विठं शत्यास्तु वत  
 द्यावा पृथिवी न्येतां वसवो रुद्राः आदित्याः अनु व्यायं  
 स्तः एवाधिपतयः आसन्नव विठं शत्यास्तु वत ॥३०॥+

नवदशभिः दशहस्ताङ्गुलीर्ध्वं अधः छिद्ररूपा नवप्राणाः ति  
न्हों से स्तुतिकीनी फिरि शूद्र आर्य (वैश्य) सृजे अहो रात्र तिन्हों के स्वा  
मी हु ए ॥ १० ॥ एकविंशत्याः विंशति करपादाङ्गुलीर्ध्वं और आत्मा  
इक्की सवें से स्तुति की ततः एकशफा (खुरके) पशु सृजे वरुण तिन्हों  
का अधिपति हुआ ॥ ११ ॥ त्रयोविंशत्याः विंशति करपादाङ्गुल्यः  
दो पाद और आत्मा तिन्हों से स्तुतिकी शूद्र अजादिक पशु सृजे ति  
न्हों का पूषा स्वामी हुआ ॥ १२ ॥ पंचविंशत्याः बीस करपाद की अ  
गुलिर्ध्वं दोकर दो पाद पच्चीसवां आत्मा तिन्हों से स्तुतिकी तब आर  
ण्य पशु कृष्ण मृगादिक सृसे वायु तिन्हों का स्वामी हुआ ॥ १३ ॥ स  
प्तविंशत्याः विंश करपादाङ्गुल्यः दो पाद दो भुजा दो ऊरू और आत्मा  
तिन्हों से स्तुतिकी ततः द्युलोक भूलोक व्येतां अर्थात् विशेषेण

गच्छताम् अष्टवसु एकादशरुद्र द्वादशादित्य तिन्हों में अनुगतस्व  
मीहुए ॥१४॥ ३०॥

नवविंशत्यास्तु वत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमो धिपतिरा  
सीदेकविंशतास्तु वत प्रजाऽऽसृज्यन्त यवाश्चायवाश्च  
धिपतयऽऽसं स्वयस्त्रिंशतास्तु वत भूतान्यशाम्यन्  
जायतिः परमेष्ठा धिपतिरासील्लोकान्ता इन्द्रम् ॥३१॥

इति श्री संहितायामष्टमोऽनुवाकः ८

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहि  
तायां दीर्घपाठे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

नवविंशत्याः करपादाङ्गुलयः नवस्त्रिंशद्रूपाः प्राणाः तिन्हों से स्तुति  
की ततः वनस्पतीणं अश्वत्थवदादिक सृजंति तिन्हों का सोमस्वामी  
हुआ ॥१५॥ एकविंशताः करपादाङ्गुलयः दशेन्द्रियाणि इकवी  
सवां आत्मा तिन्हों से स्तुति की ततः प्रजासृजीयवाः (पूर्वपक्षाः) अ  
यवाः (अपरपक्षाः) तिन्हों के स्वामी हुए ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशताः अङ्गु  
लियें बीस इन्द्रियें दशपाद दो आत्मा तेती सवां तिन्हों से प्रजापति  
ने देवताओं सहित स्तुतिकी ततः सब प्राणी सुखी हुए। परमेष्ठी स  
त्यलोक में रहने वाला प्रजापति प्रजाका पालक सब भूतों का  
अधिपति स्वामी हुआ ॥१७॥ यहां जो-जो दृष्टका जिस-जिसमें  
व करि उपधान करिये है सो-सो तिस-तिस मन्त्रोक्त देवतारूप  
करि ध्यातव्य है इत्यर्थः ॥ का० १७० १७० १८० उत्तरांस सैले प्रथम  
तिवत् लोकम्पूणा उपधानकरै इति सूत्रार्थः ॥ ततः पुरीष

नवविंशत्याः सृज्यन्त वत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमो धिपतिरासील्लोकान्ता इन्द्रम् ॥३१॥ लोकं  
ता इन्द्रम् इति प्रतीकः ४

निर्वपन और सप्तचोपस्थान जानना जिन मंत्रों की प्रती के लोक पुरा. ता. अ.  
स्य. इन्द्रविष्वा. इति ते तीनों व्याख्या की गई अध्याय १२ का एडी ५४  
५६ ॥ ३१ ॥ इति चतुर्थी चिति पूर्णः

इति श्री गिरिधरभाष्ये षष्ठोऽनुवाकः ८

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्येतव्या घृषादान्वयविष्वा  
मित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मोत्तमजरोक्मिण्यनृपतिगिरि  
प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये द्वितीयतृतीयचतुर्थ  
चितिमन्त्रनिरूपणचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वह रूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णव्रत्य रूपपरं स्तुमः १

अथ पञ्चमी चितिस्तन्मन्त्राणां परमेष्ठी ऋषिः

अ० १ अग्ने जातान् प्रणुदा नः स पत्नान् प्रत्यजातान् नुद जातवेदः ॥ अ  
धि नो ब्रूहि सुमना ॥ अहे दुँस्तवे स्याम शर्मस्त्रिवरस्य उदो ॥ १ ॥

ओं नमो याज्ञवल्काय ।

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ।

अस्मिन् पञ्चदशाध्याये वर्ण्येते पञ्चमी चितिः

चतुर्दशे अध्याय विषे दूसरी तीसरी चौथी चिति के मन्त्र कहिकर  
पञ्चदशे में पञ्चमी चिति में आश्विनीवन् अस पत्ना संज्ञादृष्ट  
का अन्तों में उपधान करे अग्ने जातान् सहसा जातान् षोड

शी स्तोमः चतुश्चत्वारिंशस्तोमः अग्नेः पुरीषम् इनपांच मन्त्रोंसे प्रत्येक को इति सूत्रार्थः ॥ हे अग्नि देवत्ये त्रिष्टुभौ । हे अग्ने पूर्वउत्पन्न हमारे शत्रुओं को तू प्रकर्षेण नाश करि । किंच हे जात प्रज्ञान अजात-शत्रुओं को निबर्त (उत्पत्तिप्रतिबन्ध) करि । किंच शोभन मनहोके हमें अधिवद (उपदेश करि) यज्ञसंवंधिनी कर्तव्यता को इति शेषः । किंच हे अग्ने तुर संवंधि त्रिवरूथ (वरूथ-गृह तीन बरूथों का समाहार अर्थात् यज्ञके सद-हविर्धान-आग्नीध्ररूप) विषें हम सदायज्ञों को करें । कैसे त्रिवरूथमें कि सुखका अत्रय । तथा उल्लेख द्विपद चतुष्पद धनधान्यादिकोंसे समृध्यत ॥ अनेन मन्त्रेण पुरस्तादिष्टका मुपदधाति ॥१॥

सहसा जातान्प्रणुदा नः सपत्नान्प्रत्यजाता ज्ञातवेदो नुदस्व ॥  
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयं त्वं स्याम प्रणुदा नः सपत्नान् ॥२॥

अथ पश्चादुपदधाति ॥ बल करिके उत्पन्न हुए हमारे शत्रुओं को नाश करि । हे जातवेद उत्पत्त्यमानों को भी नाश करि । किंच हमारे विषें शुभ चित्त होके हम को शत्रुओं के अर्थ अधिक कहि । हम भी तरे प्रसादसे अधिक होंवें । हमारे शत्रुओं को नाश करि पुनरुक्तिरादर्था ॥२॥

षोडशी स्तोमः ऋजो द्विविणं चतुश्चत्वारिंश स्तोमो वर्धो द्विविणम् ॥ अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽभिगृणन्तु देवाः ॥ स्तोमं पृष्ट्वा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्विविणयजस्व ॥३॥<sup>+</sup>

अथ दक्षिणतः । आसु-पं० इष्टका देवत्यम् । पञ्चदशकलपक्षका

भर्ता जो आदित्यरूप सोम वा षोडशावृत्युपेतः जो सोम और जो ओ  
ज (बल) रूप द्रविण (धन) हे इष्ट के तू तिस उभय रूप है तिस तुम्हें उ  
पधान करता हूँ ॥ अथोत्तरतः । आसु-अ० इष्टका देवत्यम् । चतुश्च  
त्वारिंशत् आवृत्या सम्पन्न जो सोम वा त्रिष्टुप् रूप और जिसका  
बल रूप धन तदुभयरूपां त्वामुपदधामि ॥ अथ मध्ये पञ्चमी । त्रिष्टुप् ।  
प्साभक्षणे नप्साति भक्षयति विनाशयती त्यप्सः रक्षकनामा  
जो अग्नि तिस चन्द्र रूप पञ्चदशकल की पूरयित्री है हे इष्ट के  
जो तू तिस तुम्हें विश्वे देवा मनुतिकरें सोम और पृष्ठों से युता औ  
र होय्य माणा घृत युता सती सो तू इस चतुर्थी चिति विषे उपवेश  
करि हमारे विषे पुत्र युक्त धन को दे ॥ ३ ॥

एवञ्छन्दो वरिचञ्छन्दः शाम्भूञ्छन्दः परिभूञ्छन्दः आच्छ  
ञ्छन्दो मनञ्छन्दो व्यचञ्छन्दः सिंधुञ्छन्दः समुद्रञ्छन्दः  
सरिरञ्छन्दः ककुब्जञ्छन्दः काव्यञ्छन्दोः अङ्गुपञ्छन्दोक्ष  
रपङ्क्तिञ्छन्दः पदपङ्क्तिञ्छन्दो विष्टारपङ्क्तिञ्छन्दः क्षुरो  
भृजञ्छन्दः आच्छञ्छन्दः ॥ ४ ॥ +

का० १७०११५० प्रति दिशा दश-दश विराट् संज्ञा इष्टका उपधान  
करें ते चत्वारिंशत् पद्या एवेति सूत्रार्थः ॥ चत्वारिंशद्यजूंषिलिङ्गो  
क्तानि इष्टका देवत्यानि छन्दासि तु चतुरक्षरं दे-बृ० २० पञ्चाक्षरं  
दे-पं० १४ षडक्षरं दे-त्रि० ४ सप्ताक्षरं दे-ज० २ एति गच्छति चल  
ताहें सर्व जन्तु समूह इसमें इति एवः पृथिवी लोकः रा एव छन्द  
रूप करि स्थितत्व वा छादकत्व से छन्द है हे इष्ट के तिस तुम्हें उ

धान करता हूँ। एवं उत्तर मन्त्रों में व्याख्या श्रुत्युक्ता जाननी चाहि-  
 ये ॥१॥ वरिवः प्रभामण्डल करि आव्रियते, अन्तरिक्षलोक  
 तदेव छन्दः ॥२॥ शम्भुः शं सुखं भवत्यस्मात्, द्युलोकः ॥३॥ परि-  
 तो भवति, व्याप्य वर्ते है परिभू दिशा ॥४॥ आच्छत् आच्छादन क-  
 रता है अपने रस करिके सब शरीर को अन्न तद्रूपा ॥५॥ मनः प्रथ-  
 म सृष्ट प्रजापत्यात्मक जो मन तदेव छन्दः तद्रूपासि ॥६॥ व्यन्तः व्याप्त  
 है सब जगत को आदित्य तद्रूपा ॥७॥ सिन्धुः नाडियों करि शरीर को व्या-  
 प्त है प्राण वायुः तद्रूपा ॥८॥ समुद्रः समुद्रवन्त्यस्माद्वि कल्प समूहाः प्र-  
 तिसमुद्रं मनः तद्रूपा ॥९॥ सरिरः सरति वदन गह्वर से निकलती वाक्  
 तद्रूपा ॥१०॥ ककुप् कं सुख को शरीर विषंधारण करता वाकोप करता प्र-  
 काश करता प्राण तद्रूपा ॥११॥ त्रिकुप् त्रैधापान किये उदक् को संभ-  
 न करता उदान तद्रूपा ॥१२॥ काव्यं कवि परमात्मा, कायह काव्य वेद  
 वपी रूप शब्द तद्रूपा ॥१३॥ अङ्गुष्म कुटिल गति करिके प्राप्नोता ज-  
 ल तद्रूपा ॥१४॥ अक्षरपङ्क्तिः नक्षरतीत्यक्षरा नाशरहित पङ्क्तिः (अव-  
 लि) जिसकी वोह द्यौः तद्रूपा ॥१५॥ पदपङ्क्तिः चरणन्यासे की पङ्क्ति  
 जिसमें वोह भूलोकः तद्रूपा ॥१६॥ विशारपङ्क्तिः विस्तारित, प्रसारित  
 हैं वस्तुओं की पङ्क्ति जिसमें वोह दिशा तद्रूपा ॥१७॥ क्षुरः विलेखन खनन  
 योः क्षुरति विलिखति व्याप्त है सब को क्षुरः तीव्र अजते दीप्त है क्षु-  
 रोभ्रजः आदित्य तद्रूपा ॥१८॥ ४॥

आच्छन्दः प्रच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो वृहच्छन्दो  
 रथन्तरं छन्दो निकायच्छन्दो विवधच्छन्दो गिरच्छन्दो



भुजच्छन्दः सत्त्वं सुच्छन्दो नुष्टुच्छन्दः एवच्छन्दो वरिव  
च्छन्दो वयच्छन्दो वयस्कच्छन्दो विष्यर्धाच्छन्दो विशालं  
छन्दश्छुदिच्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रच्छन्दो अङ्क  
द्वंछन्दः ॥५॥

आच्छत् (आच्छादन करता है) शरीरको) प्रच्छत् (प्रच्छादन करता है) अ  
न्नम् ॥१६॥ २०॥ संयत् (व्यापार से निवर्त करती है) जन्तुओं को)  
शत्रि ॥२१॥ वियत् (विशेषण जाते हैं इधर उधर जन जहां) दिन ॥२२॥  
वृहत् (विस्तीर्ण) स्वर्लोक ॥२३॥ रथन्तरम् रथ करि गमन करने हैं  
जहां) भूमण्डल ॥२४॥ निकायः (नितर शब्द करता है वृक्षों को अ  
खेडता है) वायु ॥२५॥ विवधः (नाश करते हैं पाप के फल भोग  
ते हैं भूतप्रेतादि स्पर्श करि प्राणी जहां) अन्तरिक्ष ॥२६॥ गिरः (भक्षण  
करते हैं) अन्न ॥२६॥ भजः (दीपता है) अग्नि ॥२७॥ संन्तुष्टा भले  
प्रकार स्तुभ्यते ध्यते अर्थात् वशी करते हैं) अन्तुष्टय (निरन्तर स्तुभ्य  
ते नया वाचा ॥२८॥ ३०॥ एवः वरिवः (इति पदद्वयं व्याख्यातम्  
॥३१॥ ३२॥ वयः (वाल्यादि वय का हेतु भूत) अन्न ॥३३॥ ज्यस्कत्  
(वाल्यादि वय करता है) जहराग्नि ॥३४॥ विष्यर्धा (विविध स्पर्श कर  
ते हैं ऐश्वर्योधिक्य करि जन जहां) स्वर्ग ॥३५॥ विशालम् (विविध  
शोभते हैं जन जहां) भूतल ॥३६॥ छुदिः (छादन करिये हैं) अर्क  
रश्मिओं से) अन्तरिक्ष ॥३७॥ दूरोहणम् (दुःखेन आरोहण करने  
को शक्य निष्काम ज्योतिष्ठोमादि यज्ञ प्रयास जात ज्ञान साध्यत्व से)  
रविः ॥३८॥ तन्द्रम् (तन्द्रि सादे मोहे सीदै है स्थान पंकोच सौ श्रे

ली० ॥३५॥ अङ्गुलमुग्धपाषादिचिह्नजहां जल० ॥४०॥ अत्रे  
ष्टकानां भूलोकादि स्तूपेण स्तुतिरिति भावः ॥५॥

२५०२ रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्मेणा धर्मं जिन्वा  
 न्वित्या दिवा दिवं जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व  
 प्रतिदिना पृथिव्या पृथिवी जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं  
 जिन्व प्रवयान्नाहं जिन्वानुया रात्र्या रात्रीं जिन्वोशिजा-  
 वसुभ्यो वसूं जिन्व प्रकेतेना दित्येभ्यः आदित्या जिन्वा  
 न्व तन्तुना रायः ॥६॥†

का० १७०११०५१०० अषाढा वेला में सर्व दिशा विषे स्तोम भागा संज्ञा  
बृष्टका उपधान करै रश्मि नेत्यादि एकोन त्रिंशत् मन्त्रों से तिन्हों  
के मध्य पञ्चदश प्रागनूकं दक्षिणेन अर्थात् चतुर्दश प्रागनूकं  
उत्तरेण उपधेया इति सूत्रार्थः ॥ एकोन त्रिंशद्यजुषि बृष्टका देव  
त्यानि १२६०५१०० या-पं० ३०१८०२६०२४० या-हृ० ४०५१००  
या-ज० ७०२०० या-उ० ११० सा-गा० १२०१३०१४०१५०१६० या-त्रि० १४०  
२१०२२०२३०२४०२५०२६०२७० या-अ० १ इमे मन्त्राः श्रुत्या त्रिधा व्याख्या  
ताः कण्डिका द्वय पर्यन्त में मुनोपहिता सत्यदोजिन्वेति प्रथमः १६  
अदोऽस्य मुखे त्वा मुपदधामीति द्वितीयः १२ अधिपतिनोर्जोर्जं जि  
न्वेति तृतीयः प्रकारः ११ ॥ अथ वाक्यार्थः ॥ हे बृष्टके तू रश्मि (अन्न)  
करि सत्य के अर्थ उपहिता सती सत्य वचन जिन्व (तर्पण करि) ॥ १॥  
प्रेति (प्रकर्षेण देह विषे) गति जिसकी (अन्न) तिस करि धर्म के अर्थ उ  
पहिता सती धर्म की प्रीति हो ॥ २॥ सर्व मन्त्रेषु द्वितीय पदं चतुर्थ्यन्तं

१० अथ पुनादं जिन्नेत्यादि  
 दानं ०८०५३३ अतिः ।

+ त्वा० म० इ० उ० ऋ० लृ० ऋ० ई० ऊ० ऋ० लृ० ऋ० ऌ० ड० णि० ॥ ६ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥





रस करिके ऊर्ज (अन्तरस) को जिन्व (तर्पय) ॥३॥ एवं मन्त्रेष्व  
भिधेया नुसारेण व्युत्पत्तिः कार्या ॥४॥

अ०३ एतस्य प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्होती  
नां प्रतिधृती विवृत्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयत्वाज्यमु-  
क्थमव्यथाये स्तम्नातु रथन्तरं सोमप्रतिष्ठित्या  
ऽअन्तरिक्षः ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रा  
या वरिमाण प्रथन्तु विधृती चायमधिपतिश्च ते त्वा-  
सर्वे सं विदमना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च स  
दयन्तु ॥१०॥

का० १०१२१ पूर्वानूक के स्थानाभावात् पूर्वानूक वर्जित तीनों  
दिशाओं की अनूकों में ऋतव्या वेला विषे अनूक के ऊपर रा-  
शीत्यादि पञ्चकण्डिकाओंमें आश्विनीवत् नाकसत्संज्ञेष्टका  
उपधान करें ॥ पञ्च यजूषि लिङ्गोक्त देवतानि। पुरस्तादुपस्था-  
ति। हे इष्टके तूरास्ती (राजमाना) प्राची (पूर्व) दिशा हैं। आठों वसुदे-  
वता तेरे अधिक पालन करने वाले। अग्नि उपद्रव करने वाले  
पराये आयुधों का निराकर्ता। किंच विवृत्तोम तुम्हें पृथिवी वि-  
षे उठावे। आज्यनामक उक्थशस्त्र प्रबो देवायाग्नये इत्यादिक  
ऐतरेय ब्राह्मण २४०० अचलभावके अर्थ तुम्हें हटी करें। रथन्त-  
रसाम अन्तरिक्ष लोक विषे प्रतिष्ठान के अर्थ तुम्हें हटी करें।  
प्रथमोत्पन्न ऋषि (प्राणा) द्युलोक के विषे आकाश के परिमल  
उत्पन्न करिके तुम्हें विस्तारें अर्थात् आकाशका यादृश विस्तार

त्व ता हविशा ला तु मे करे । और विधर्ता इष्ट का ओं का निष्पाद्य यि  
ता युनः यह अधिपति इष्ट का पालक तु मे विशाला करे यद्वा विध  
र्ता विशेषेण धारयिता वागभिमानि देवः और यह अधिपति  
प्रधान भूतो देवः मनोऽभिमानि ते देवों तु मे विस्तारें । किंच ते  
सर्वे यथोक्ता वस्वादयः एक मत्पेन अवस्थित होकर नाक नहीं  
हैं दुख अर्थात् सुख के पृष्ठ स्वरूप सुखरूप स्वर्ग विषे यजमान  
को और हे इष्ट के तुम्हें को स्थापन करें ॥ स्तोमः सामानि च राजसूय  
प्रकरणे दशमेऽध्याये प्राची मार्गे हेत्यादि कण्डिकासु १०. १०-१४.  
व्याख्यातानि ॥ १० ॥

विराडसि दक्षिणा दिगुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां  
प्रतिधर्ता यच्च दशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याध्वंश्च यतु प्रउगमुक्थ  
मव्यथाये स्तभ्रातु वृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋष  
यस्त्वा प्रयमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु वि  
धर्ता चायमाधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे  
स्वर्गे लोकं यजमानं च सादयन्तु ॥ ११ ॥

अथ दक्षिणतः । चार्गे कण्डिका ओं में देवाः हेतीनां प्रतिधर्तारः  
स्तोमाः उक्थानि और सामानि अन्य हैं परन्तु और सब समान  
हैं ॥ विविधं राजते विराट् । वायुरग्रे गा इति अध्या. १०. ३१.  
प्रउगं शस्त्रम् ॥ ११ ॥

सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा अधिपतयो व  
रुणे हेतीनां प्रतिधर्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याध्वंश्च



यतु मरुत्वतीयं मुक्यमव्यथायै सभ्रातुवैरूपं सामं  
प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु  
दिवो मात्रया वरिमाणा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च  
ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं  
च सादयन्तु ॥१२॥

अथ पश्चात्। सम्यग्राजते सम्राट्। आत्वारथं यथोत्तये इति ऋ  
क्सं० म० ८० ७० ४० १० मरुत्वतीयं शास्त्रम् ॥१२॥

स्वराड् स्युर्दीची दिङ्मरुतसे देवा अधिपतयः सोमो हेती  
नां प्रतिधर्ते कर्विषास्त्वा सोमः पृथिव्यां च श्रयतु निष्के  
वत्यमुक्यमव्यथायै सभ्रातुवैराजं सामं प्रतिष्ठि-  
त्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मा  
त्रया वरिमाणा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा  
सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सा  
दयन्तु ॥१३॥

अथोत्तरतः। स्वेनैव राजते स्वराट्। अभित्वाः शू नो नुम इत्यादि  
कं ऋक्सं० म० ७० २० १५० २२० निष्केवत्यं शास्त्रम् ॥१३॥

अधिपत्यसि बृहती दिग्विधे ते देवा अधिपतयो बृह-  
स्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिणवत्रयस्त्रिंशो त्वा स्तोमो-  
पृथिव्यां च श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुतेऽउक्ये अव्यथा  
यै सभ्रीतां शाकरोरेवते सामनी प्रतिष्ठित्याऽअन्तरि-  
क्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिमाणा प्र

यन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविद्वानाना  
कस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १४ ॥

अथ मध्ये । हे इष्ट के अधिक पालन करने वाली बृहती प्रौढा ऊ-  
र्ध्वा दिशा है । त्रिणव । त्रयस्त्रिंश । दोनो स्तोम । वैश्वदेव । अग्निमा-  
रुत । शास्त्र । शाक्वरैवत । साम । करे । द्विवचने विशेष । तत्सवितु-  
र्वृणीमहे इत्यादि ऋक्सं० म० ५. ६. १०. १. वैश्वदेव शास्त्रम् । वैश्वा-  
नराय पृथु पाजसे इत्यादि ऋक्सं० म० ३. १. १३. १. अग्निमारु-  
तं शास्त्रम् ॥ उक्तमन्यत् ॥ १४ ॥

अ० ४ अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथोजाश्च सेनानी  
ग्रामण्यौ ॥ पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दृङ्-  
क्षणावः पशवौ हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेति स्तेभ्यो नमो  
अस्तु ते नो वन्तु ते नो मृत्युयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो  
द्वेष्टि तमेषां नम्ये दध्मः ॥ १५ ॥

का० १०. १२. २. २. नाकसद्विषे चुपके से चात्वाल मृदा को डालि  
के नाकसद के ऊपर सब दिशाओं में यथालिङ्ग जिस चिह्न का म-  
न्त्र तिस दिशा में पञ्च चूडा संज्ञकाः पञ्चेष्टका उपधान करे । पंच  
यजूंषिलिङ्गोक्तदेवत्यानि । पुरस्तादुपदधाति । जो यह पुरः (अ-  
ग्नि) । इष्टकारूप के साहे कि हरिकेशः । हरितवर्णः कनिकवर्ण  
केश सम ज्वाला जिसकी । सूर्यकीसी किरिणें । तिस अग्नि के रथ  
गृत्स और रथोजा सेनानी और ग्रामाय रथविषे कुशल रथगृ-  
त्स सेना नयति सेनानी रथविषे नंज जिसका रथोजा अर्थात्

\* पुरस्तादुपधीयमानत्वात्पुनः अग्निर्वै पुरस्ताद्यभगाहेत्यादि शत० च० ६. १. १६-  
१७. अतिलु पञ्चमन्त्राणां मर्थः ।

रथ युद्धकुशलः सग्रामं नयति ग्राते मणीः एतन्नाम को सेनानी ग्रा  
 मायो परिचारको तौ च वासन्ति देहावतू इत्यर्थः। पुञ्जिकस्थला  
 रूपलावण्य सौभाग्यादिगुणसमूह की आधारभूता। क्रतुस्थला  
 संवत्स्यो रूपादिज्ञानों की स्थानभूता। अथवा पुञ्जिक और क्र  
 तुओंका स्थल जिसमें वहुव्रीहत्वं। पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला  
 दिशा और उपदिशा अप्सराएँ। दक्षिणवः (दशनशीलाः) पश  
 वः व्याघ्रादिक हेति आयुध वज्र। पौरुषेयः पुरुषसंवंधी वधः  
 हनन प्रहेति प्रकृष्ट आयुध जिस अस्त्र। त्रैषेण छोड़ने जैसे रावण से  
 ना परस्पर रिपुहानन करती हैं वोह पौरुषेय वध है। जिस अग्नि-  
 की ये सामग्री अर्थात् हे इष्टके तू तिस अग्नि स्वरूपा है। जो यह  
 अग्नि और तिसके जे सेनानी ग्रामण्य औद्रेज अप्सराएँ और जे  
 हेति प्रहेति तिन सबों के अर्थ सर्वदा नमस्कार हो ते सब हमें सुरवी  
 करें ते हमें रक्षा करें जिस नरका हम अनिष्ट चिन्तन करें और जो  
 नर हम विषे अप्रीति करता है तिस नर को इन पूर्वोक्तों के जम्भ  
 (दंष्ट्रा कराल मुख) विषे हम डालते हैं ॥१३॥

अथ दक्षिण विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथे चित्रश्च  
 सेनानी ग्रामण्यौ ॥ मेनका च सत्तु जन्त्या चाप्सरसौ या  
 तु धाना हेती रक्षां च प्रहेति तस्तेभ्यो नमोऽस्तु ते  
 नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यो द्विष्यो यश्च नो द्वेष्टि त  
 मेषां जम्भे दध्मः ॥१६॥

अथ दक्षिणातः। दक्षिण में यह विश्वकर्मा (सर्व कर्म जिसका बा

सब करता है। वायु तिसके रथमें स्वनः रथमें स्थित शूरशब्द करता है  
सेनानी। और रथचित्रः रथदिशि स्थित आश्चर्यकारी ग्रामणी।  
तो ग्रीष्मावतू। मेनका मानते हैं। इसे और सहजन्या सब जनों-  
सहित स्थिता अप्सराएँ। यातुधाना राक्षसों की जातिका अवा-  
न्तरभेद हैती। रक्षांसि क्रूर यातुधाना प्रहेती हैं। हे इष्टके जिस  
वायु के ये सब तू तद्रूपा है। अन्य ध्याख्यातम् ॥१६॥

अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेना-  
नी ग्रामण्यौ। प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्या-  
घ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेति स्तेभ्यो नमोऽस्तु ते नोऽवन्तु ते  
नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेवां जम्भे-  
दध्मः ॥१७॥

अथ पश्चात्। पश्चिम दिशि यमं यह विश्वव्यचा आदित्यः सबको उदय  
करिके प्रकाश करता। व्याघ्र अथवा पश्चिम में स्पष्ट दीखता है। त-  
सके रथप्रोत रथमें स्थित प्रोत जैसे सेनानी। और असमरथ असा-  
मः अन्यके रथसे अतुल्य रथ जिसका नाम ग्रामणी। और तो वा-  
र्षिकावतू। प्रम्लोचन्ती प्रम्लोचन करती। नरप्रति आत्मा को दिख-  
लाती और अनुम्लोचन्ती बार-बार म्लोचन करती अप्सराएँ व्या-  
घ्राः (बाघ) जिसके हेतिः सर्पाः (साँप) प्रहेति जिसके तद्रूपा है। उक्त  
मन्यत ॥१७॥

अयमुत्तरात्संयतं सुस्तस्य ताक्ष्यश्चारिष्टुनेमिश्च सेनानी  
ग्रामण्यौ ॥ विश्वादेवी च धृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः

प्रहेतिस्तेभ्यो नमोः अस्तु ते नोः वन्तु ते नो मृडयन्तु  
 ते यं द्विष्मोयश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१८॥  
 अथोत्तरतः । यह उत्तरमें संयद्धसुः (यज्ञ-भले प्रकार गमन कर  
 ते धन के अर्थ जिस प्रति मनुष्य-यज्ञ प्रति चलते हुआओं के अर्थ  
 दान आवश्यक है यज्ञ के उत्तरोपचारत्व से तिसके ताक्ष्य (ती  
 क्ष्ण अन्तरिक्ष-विषे क्षेपन करता है पक्ष) सेनानी और अरिष्ट  
 नेमि (अनुपहिंसिता नेमि-आयुध जिसके) ग्रामणी तो शारदा  
 वृत् । विश्वाची सर्वसाधारणत्व से सबको अञ्चन करती और घृ  
 ताची घृत को अञ्जति-भोजन करती । असराएँ । आपः जलो  
 का समूह हेति वातः वायु प्रहेतिः । तेभ्यः इत्याद्युक्तम् ॥१८॥  
 अथ मुपयवागवसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेना  
 नीग्रामण्यौ ॥ उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसावव  
 स्फूर्जन्हेति विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमोः अस्तु ते नोः व  
 न्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मोयश्च नो द्वेष्टि तमेषां  
 जम्भे दध्मः ॥१९॥

अथ मध्ये । उपरि-उर्ध्व देशविषे यह अर्वागवसु पर्जन्य-अ  
 धोमुख जलरूपधन जिससे वोह अर्वागवसु अर्थात् नीचे ज  
 ल को प्रजा के अर्थ देता है तिस पर्जन्य के सेनजित् सेना को-  
 जीतनेवाले सेनानी और सुषेण शोभन है सेना जिसकी ग्रा  
 मणी तो हेमन्तिकी । उर्वशी उरुपृथु है काम-वश जिसका और  
 पूर्वचित्ति अतिशय रूप से पूर्व में व पुरुषों के चित्त को हरले

आत्मा मी लु  
 सके संकेद  
 तस्य  
 प्रत्यक्ष  
 वचनात् ।

सी राते दिगुपदिगूपे अप्सरसौ। अवस्फूर्जो वज्रनिर्घोषमें भय  
हेतु शब्द को करता हेति और विद्युत् विजली प्रहेति। शिष्ट-  
व्याख्यातम् ॥१८॥

अ० ५ अग्नि मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपा  
ध्वं रेताध्वं सि जिन्वति ॥२०॥

का० १७०१२०५ वक्ष्यमाण गायत्र्याद्या छन्दस्या दृष्टकां एक  
एक के स्थान में तीनि उपधान करें तिन्हों में मध्यमा पद्यानूक  
विषे तिसे अमितः द्वेअर्धपद्ये अत्र पूर्वदिशा के अनूकान्त में  
तीनि गायत्री अग्निमूर्धेति प्रत्युचम् एवं वक्ष्यमाण अपीति  
सूत्रार्थः ॥ आग्नेयोऽनुवाकः तन्मध्ये दश संख्याकस्तच्चाः। ति  
स्र ऋचो गायत्र्यः। आद्या व्याख्याता ३०१२०॥२०॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य श्रुतिनस्पतिः। मूर्धा  
कवी रयीणाम् ॥२१॥

विरूप दृष्टा। यह अग्नि ऐसा तिसे स्तुति करते हैं इति शेषः। कै  
सा कि सहस्र संख्या इसकी है तिस साहस्री की। शतसंख्या वा  
नू अन्न का पति स्वामी अर्थात् अनेक अन्नों को देने वाला  
तथा धनों का शिखत् उत्तम (अग्निहि सर्वधनानां प्रधानध  
नं दृष्टा दृष्ट साधनत्वात्) कविः क्रान्त दर्शनः ॥२१॥

त्वामग्ने पुष्करा दध्यथर्वी निरमन्यत। मूर्ध्नि विश्व  
स्य वायते ॥२२॥

व्याख्याता ११०३२० ॥२२॥ इति प्रथमस्तचः ॥१॥



मुवो यज्ञस्य रजसश्च नेतायत्रानियुद्धिः सचसे शिवा  
भिः । दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षा जिह्वामग्ने चक्षुषे ह  
व्यवाहम् ॥२३॥

का० १७.१२.७ पूर्वदिशा में रेतः सिंगेला विषे त्रिष्टुप्संज्ञादृष्टका  
उपधान करे तृचेन तीनि त्रिष्टुप्छन्दस्का ऋचाओं से एवमग्ने  
पि ॥ तिस्रस्त्रिष्टुभः ॥ प्रथमा व्याख्याता १३.१५.॥ २३॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषा-  
सम् । यद्वा इव प्रवया मुज्जिह्वानां प्रभानवः सिस्र  
ते नाकमच्छ ॥२४॥

द्वे बुध गविष्टौ दृष्टे । जनानां ज्ञानश्रद्धाद्विज तर्पण सत्यादिस  
म्यन्न अग्नि होत्रियों के समिन्धन करि अग्नि प्रति बुध्यते अ  
र्थात् कर्मविषे अपने अधिकार को जानता है । तत्र दृष्टान्तः आ  
ती हुइ धेनु को जैसे वत्स प्रति बुध्यते और जैसे उषा को आते प्र  
ति मनुष्याः प्रति बुध्यते ॥ तिस दीप्त अग्नि की रश्मियें स्वर्ग को  
सब ओड़ी से प्रसरती हैं । दृष्टान्त माह यद्वा (बड़े) पक्षों वाले पक्षी  
दृक्ष शाखा को प्रक्षेपेन उड़ मन करि नाक (आकाश) प्रति प्रसा  
रते हैं तद्वत् ॥ ऋचोऽर्थान्तरं वा । जनानां ऋत्विजों की संवधिनी  
समिधा अग्नि प्रति जलती हैं जैसे प्रातः काल प्रति गोरें उठती हैं ।  
तिस दीप्त प्रसरती हैं । दृष्टान्तः पक्षियों के मध्य बड़े वक्षी जैसे उ  
ड़के प्रसरते हैं ॥२४॥

अबो चाम कवये मेधाय वचो वन्दारु वृषभाय वृषो

गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नेो दिवीव रुक्ममु रुच्यञ्च  
मश्रेत् ॥२५॥

उद्गातारो वहन्ति- उद्गातार कहिते हैं। किहम क्रान्त दर्शिनू-अग्नि के अर्थ स्तुति रूपवाक्य कहिते हैं। कैसे के अर्थ कियज्ञ के योग्य वृषभ श्रेष्ठ- कामो के वरसने वाले। वृषा सींचने वाले यूने परिणाम रहित के अर्थ। कैसा है वाक्य कि वन्दन शील-स्तुति तत्पर। ये गविष्ठिरः गवि-वाचिस्थिरो-प्रच्याव्यः- होता अन्न करिके युक्त स्तुति को अग्नि आहवनीय विषे अश्रेत् अर्थात् होता-अग्नि विषे स्तोम को अर्पण करते याज्या-नुवाक्या ओंसे अन्न को अग्नि संवद्ध करता है। तत्र दृष्टान्तः जैसे द्युलोक विषे रोचमान आदित्य को सन्ध्या वन्दन सूर्योपस्थानादिकों में विप्रयुक्ता बहुत सी व्यञ्चाः स्तुति हैं वो गति हैं जिसकी वोह उत्प्रेक्षा स्तोम सूर्य करि उपमीयते ॥२५॥ त्वचः ॥२॥

अयं मिह प्रथमो धायि धातुभिर्होता यजिष्ठो-अध्वरैषीज्यः। यमप्रवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभुं विशे-दिशे ॥२६॥

का. ०१७. १२. ८. तीनि ऋचा ओंसेपश्चात् रेतः सिग्वेला विषे तीनि जगती संज्ञेष्ट का दक्षिणा मुख उपधान करै ॥ तिस्र जगत्यः आद्या व्याख्याता ३. १५ ॥ २६ ॥

जनस्य गोषा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविनाय नव्यसे। घृतं गती को दृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि

भाति भरतेभ्यः शुचिः॥२७॥

सुतं भरहृष्टा । जो अग्नि भरतेभ्यः ऋत्विजों के सकाश से उत्पन्न हुआ । किस लिये उत्पन्न हुआ कि नव्य से सुविताय नवतरयज्ञ के अर्थ । सो अग्नि द्युलोक स्पर्शनी ज्वाला समूह करि कान्तिमान् जैसे तैसे विविध दीप्ये है । कैसा है अग्नि कि जन यजमानका रक्षा करने वाला । जागरण शील कर्म विषे सावधान । सुदक्ष शोभन है उत्साह जिस का वा अति कुशल । घृत प्रतीक घृत मुख में जिस के । शुचिः शुद्ध बहुत सी हवियों के भक्षण से भी उच्छिष्ट नहीं होता वा शोधकः॥२७॥

भरता इति  
कालि इति  
ममुनिर्घो  
३.१८.

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दन्धि श्रिया एव न  
वने । स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहस  
स्पुत्रमङ्गिरः॥२८॥

हे अग्ने अङ्गिर के वंश में हुए ऋषि तुम्हें प्राप्त होते हुए । कैसे तुम्हें कि निगूढ प्रदेश जल विषे स्थित । हे अग्ने पुनः नष्ट हुए तुम्हें ना ना वनस्पतियों विषे श्रित को अङ्गिरा होते हुए । जो कि तुम्हें अङ्गिरा हुए सो तू अब भी अरणियों से उत्पन्न हुआ । कैसा कि बल करि मथ्यमान । हे अङ्गिरः (अग्ने) अत एव तुम्हें बल का पुत्र मुनी श्वर लोग कहिते हैं॥२८॥ तृचः ३॥

सखायः सं वः सम्यच्चमिषश्स्तोमं चाग्नये । वर्धिषा  
य क्षितीना मूर्जो नष्टे सहस्वते॥२९॥

का० १७.१२.६. जगती ओं से अपरा तीन अनुष्टुप् संक्षेप वा

प्राङ्मुख उपधान करै सरवायः सम् इन तीनि ऋचाओंसै ॥ त्वोनु  
 ष्टुम् ॥ प्रथमा इषोदृष्टा ॥ ऋत्विजं प्रति यजमानो ब्रूते-हे सरवायः  
 (ऋत्विजः) समीचीन इष (हविलक्षण अन्न) और समीचीन स्तो  
 म को तुम सम्पादन करौ अर्थात् अग्नि के अर्थ हविकरौ और  
 त्रिवृत्य च दृष्टादि स्तोमको कहौ। कैसे अग्नि के अर्थ कि मनुष्यों  
 के बर्षिष्ठ श्रेष्ठ वृद्ध तम अर्थात् सर्व पूज्य। तथा जल के नष्ट पोत्र  
 नाती ॥ तथा बलवान् ॥ २४ ॥

+ अष्टो वनसतयोजायते तैस्योऽग्निरित्यप्योऽग्निः ।

सर्ग-समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्युर्य आ। इडस्पदे  
 समिध्यसे स नो वसून्वाभर ॥ ३० ॥

संवन्नदृष्टा। हे वृषन् (सींचनेवाले) हे अग्ने अर्यः (स्वामी) तू स  
 व फल समन्तात् यजमान करि प्राप्त होता है। गो वा पृथिवी  
 के स्थान उत्तरवेदी विषे कर्म के अर्थ दीप्त होता है सो ऐसा तू  
 हमारे अर्थ धन दे ॥ ३० ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विश्व जन्तवः। शीचि प्ये  
 शं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवै ॥ ३१ ॥

प्रस्कएवदृष्टा। नानविध श्रव (धन वा कीर्ति) जिस का (की)  
 वोह चित्रश्रवाः अतिशयेन चित्रश्रवाः चित्रश्रवस्तमः ति  
 स का संवोधन। हे पुरुप्रिय बहुत यजमानों के प्यारे वा व  
 द्रुत हविहें प्यारे जिसके हे अग्ने प्रजा विषे ऋत्विग्यजमा  
 न तुम्हें आह्वान करते हैं। क्या करने कि हवि प्राप्त की ॥ ३१ ॥  
 त्वचः ॥ ४ ॥

पञ्चमस्तुचोप्रगाथः

एना वोऽग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे । प्रियं चे-  
तिष्ठमरतिथं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥३२॥  
विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् । स योजते  
ऽअरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ॥३३॥  
स दुद्रवत्स्वाहुतः स दुद्रवत्स्वाहुतः । सुव्रत्या यज्ञः  
सुशमी वसूनां देवर्षेण राधो जनानाम् ॥३४॥

का० १७.१२.१०० अषाढा व्रता के पुरस्तात् तीन बृहतीष्ट का एना  
वः इन तीनों से उपधान करें ॥ तिस्रो बृहती प्रगाथः दो ऋचाओं  
के ग्रन्थन से तीन ऋचाओं का सम्पादन प्रगाथ है तहां बृहती  
सतो बृहती से तीन बृहती की गईं जिस का तीसरा चरण द्वाद-  
षाक्षर और तीनों १२.४. अष्टाक्षर वोह बृहती एना वो अ-  
ग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे । प्रियं चेतिष्ठमरतिथं स्वध्वरं विश्व-  
स्य दूतममृतम् ॥ इति ॥ जिसके प्रथम त्रितय द्वादषाणी द्वितीय  
चतुर्थे अष्टाणी वोह सतो बृहती स योजते अरुषा विश्व भोज-  
सा स दुद्रवत्स्वाहुतः । सुव्रत्या यज्ञः सुशमी वसूनां देवर्षेण राधो जना-  
नाम् ॥ इति ॥ तहां बृहती का चौथा पाद दोबार लौटिकर सतो बृ-  
हती के पूर्वार्ध करि सहित दूसरी बृहती की गईं सतो बृहती के दू-  
सरे पाद को दोबार फेरिके तिसी के उत्तरार्ध करि सहित तीसरी  
बृहती कीनी एवं तीनों बृहती संहिता में पढी गईं तहां आव-  
र्तित पादों के अर्थान्तर के अभावसे दो ऋचाओं की व्याख्या-

† सर्वस्य हि गृहे  
दाहयाको हि  
कार्यकरत्वम्

† वशिष्ठोऽपि  
रथपदं चाथाहतेत्यं

† शमीति कर्मनाममुनिषं ० २२

करतेहें ॥ एनावो वशिष्ठ दृष्ट्वा हे ऋत्विग्यजमान औ तुम संबंधि  
इस नमसा, हविर्लक्षण अन्न करि अग्नि को आह्वान करताहूँ-  
वा तुम इस अग्नि को आह्वान करौ। कैसे अग्नि को कि जल  
के पौत्र यजमानों के प्रीति हेतु अतिशयेन चेतयितार प्रर  
ति (पयाप्तमति वा उपरमरहित अर्थात्सदोद्यम युक्त वा  
ले † मरण रहित को ॥ अथ सतो बृहती व्याख्यायते। सयो  
सते। जिस अग्नि को आह्वान करताहूँ वोह दोनों शेष रहित  
सब के भोक्तार अश्वरथमें जोड़ताहैं †। वोह ही अग्नि रथा रूढः  
सन् शोभन प्रकारेण हुतः सन् जाताहै। कहा जाता है सो कहिते-  
हैं कि सुब्रह्मावसूनां वसुशब्दे रुद्रादित्ययोरुपलक्षकः वसु-  
ओं रुद्रों आदित्यों सबन त्रय देवताओं का जहां यज्ञ और जहां  
यजमानों का दीप्यमान धन हविर्लक्षण है अर्थात् तहां अग्नि  
जाताहै। सुब्रह्मा ब्रह्मपदं सर्वः श्रुतिगोपलक्षणं शोभन ब्रह्मा ऋ-  
त्विक् जहां शुभः श्रुतिगुक्तः। सुशमी शोभन कर्म जहां ५ शोभन  
कर्मवान्। बुलायाहुआ अग्नि रथमें अश्वोंको जोड़िके यज्ञविषे  
हवि भोजन को आताहै इति सर्वार्थः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तृचः ॥ ५ ॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यही। अस्मे धे-  
हि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३५ ॥

का. १७. १२. १३. गायत्री ओं से अपरा तीनि उष्णिक्संज्ञा दृष्टका  
उपधान करै ॥ तिस्र उष्णिगो तम दृष्टा। हे अग्ने हे सहसो यही (बल  
के पुत्र †) हे जातवेदः (उत्पन्नज्ञान) हमारे विषे महि श्रवः महत्पुत्र

† सह इति वलनाम. निषं ० २४. यह इति पुत्रनाम. निषं ० २२.



न हे। कैसा है तू कि गोमतः, धेनुयुक्त अन्नका ईश्वर अत एव  
धन और गो दे ॥ ३५ ॥

स इधानो वसुष्क विरुग्निरीडे न्योगिरा। रेवदस्मभ्यं पुर्व  
णीक दीदिहि ॥ ३६ ॥

हे पुर्वणीक (बहुत मुखवाले, सर्वदा हकत्वात् यतो ह्येव कुतश्चा-  
ग्ना वभ्या दधाति तत एव प्रदहतीति श्रुतेः) हे अग्ने हमारे अर्थ ध-  
न वद्यथा तथा सो तू दीप्त हो अर्थात् तुरुकरि तैसै हवि ग्राह्य है जै-  
सै हमें धनाप्ति हो। सो पूर्वोक्त कैसा है तू कि दीप्यमान। धनका नि-  
वास हेतु। क्रान्तदर्शी। अग्निः (अग्ने नयतीत्यग्रणीः) प्रथमय-  
ज्ञ प्रवर्तक। गिरा त्रयीलक्ष एण बेहवाचा करि स्तुतियोग्य ॥ ३६ ॥

क्षपो रजन्नुत त्वनाग्ने वस्तो रूतोयमः। सति गमजम्भ  
रक्ष सो दह प्रति ॥ ३७ ॥

हे रजन् (दीप्यमान) हे तिग्मजम्भ (तीक्ष्णदंष्ट्र वा वज्रदंष्ट्र +) हे  
अग्ने वस्तोः दिनसंबन्धि और उषः काल संबन्धि रक्षसों को सो  
तू प्रत्येक को भस्मी करि। कैसा है तू कि स्वभाव सै ही रक्षसों का  
क्षययिता ॥ ३७ ॥ त्वचः ॥ ३८ ॥

पुनः सप्तमस्तुचः प्रगाथः

भद्रो नोः अग्नि राहु तो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अ  
ध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥

भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः ह्यणुष्व रत्न तूर्ये। येना  
समन्तु सा सहः ॥ ३९ ॥

रजन्नामसिधे ३३९

येना समत्सु सासहोऽवस्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम् ।  
वने मातेऽभिष्टिभिः ॥४०॥

का० १७.१२.११. बृहती ओं से पुरस्तात् तीन ककुप् संज्ञा इष्टका उप-  
धान करे ॥ प्रगाथः ककुप् सतो बृहती से तीन ककुप् पादा वृत्त्य से  
की गई आवृत्त्य का अर्थान्तर नहीं है । भद्रो नोऽअग्निरा०- प्र-  
शस्तयः ॥ इति ककुप् मध्यमपादः द्वादशकः आद्य तृतीयाव-  
ष्टको इति तल्लक्षणं ॥ भद्रं मनः कृणुष्व वृत्र तूर्ययेना समत्सु सा-  
सहोऽवस्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वने मातेऽभिष्टिभिः ॥ इति स-  
तो बृहती तल्लक्षणं व्याख्यातम् ३३.३४ ॥ तत्र ककुब्ब्याख्यायते ।  
सौमरि दृष्टा । यजमानश्चित्यमग्निं संबोध्य प्रार्थयते । हे सुभगः शो-  
भनममषड्विधैश्चर्ययुक्त । ऋत्विजों करि आह्वान किये अग्नि हमारे  
अर्थ भद्र भन्दनीय कल्याण हो इति शेषः । किंच तेरा दीया दान क-  
ल्याणकारी हो । अध्वर (यज्ञ) भद्र (श्रेयकारी) हो । और भी प्रशस्त  
यः (कीर्ति हैं) भद्रा (सुखदायिनी) होंवें ॥ अथ द्वितीया ॥ हे अग्ने-  
जिस मनसा करिके सङ्ग्रामों विषे तू शत्रु ओं को अभिभवता है  
वोह मन वृत्र तूर्ये । पापनाशके अर्थ भद्र कल्याण करि ।  
किंच भूरि (बहुत) शर्धताम् (बल करने वालों के सम्बन्धि स्थिर  
धनुषों को ज्या रहित करि । किंच तेरे अभिष्ट मार्गों से हम भो-  
ग्य वसु सेवन करें ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ४० ॥ तृचः ॥ ७ ॥

† यत्र यस्य समयस्य धर्मस्य + तस्य निवेद्यकर्माद्यं पापम् पाप्मा  
यस्यः क्रियः सो न वेदायये  
अवधारण भगवतीरेतेतुल्ये  
वेदत्रय इति श्रुतिः ।

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्वन्त  
आशवोऽस्तं नित्यासौ वाजिन इषं स्तोतुम्य आभर ॥४१॥

का० १७.१२.१४. दक्षिण अनूकान्त विषे तीनि पङ्क्तिः संज्ञा इष्टका  
अग्निं तमिति तीनों से उपधान करें ॥ तिस्रः पङ्क्तयः ॥ जो वसु (ता  
प पाक प्रकाश से उप करिके धन रूप वा वासयिता) तिस अग्नि को  
जानता हूँ । गौएँ जिस अग्नि को उद्धृत जानिकर अस्ता (घर) को  
जाती हैं यह कि दोह काल हमें होमार्थ प्राप्त हुआ । आशवः (शीघ्र  
गामी) अश्वजिसे देखिके यजमान के घर को प्राप्त होते हैं । नित्यासः  
सर्व काल भावी बलवन्त अश्व सैन्धवाभिप्रायेण पुनर्वचनमूजि  
से उपासे से गवाश्चादिक मिलते हैं तादृश हे अग्ने स्तुति कारीयज  
मानों के अर्थ अन्न दे ॥ ४१ ॥

सोऽअग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनुवः । समर्वन्तो  
रघुद्रुवः सर्षे सुजातासः सूरय इषथस्तोतभ्य आ-  
भर ॥ ४२ ॥

जो अग्नि वासयिता तिस अग्नि को स्तुति करता हूँ अथवा वो  
ह अग्नि स्तुति किया गया हमलोगों से । गौएँ जिस अग्नि को भ-  
ले प्रकार प्राप्त होती हैं । अश्व जिसे भ०-हैं कैसे हैं कि रघुद्रुवः  
शीघ्र जाते हैं । सूरयः योग्य ऋत्विज लोक जिन्हें समायन्ति अ-  
र्थात् जिसके उपासक को सब भजते हैं । कैसे हैं कि सूरयः शोभन  
हैं जन्म जिन्हों का तादृश हे अग्ने तू स्तोत्रियों के अर्थ अन्न दे ॥ ४२ ॥

उभे सुश्वन्द्र सर्षिषो रवी श्रीणीषः आसनि । उतो न  
उत्पुपूया उक्थेषु शवसस्पतः इषथस्तोतभ्य आभ-  
र ॥ ४३ ॥

† वन्द्यमिति हिरण्यनामनिर्घ. १. ३.

हे सुचन्द्र (शोभनचन्द्र + हिरण्य जिससे वा शोभन आल्हादक  
रनेवाले) हे सुचन्द्र मुख विषे घृत पान के अर्थ इति शेषः। दोनों  
व्यां कार हाथों को सेवन (आश्रय) करि। और हे वलके अधिपते  
उक्त्येषु शस्त्रवत् यज्ञोंमें हमें उत्कर्षेण पूरि धन करिके इति  
शेषः। स्तोत्रियों के अर्थ अन्न दे ॥४३॥ तच्चः ॥ ८॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदि स्पृशम् ।  
ऋध्या मातुः ओहैः ॥ ४४ ॥

का. १७. १२. १५. उत्तर अनुकान्त विषे तीन पद झूठीष्टका अग्ने त  
मिति तीनोंसे उपधान करै ॥ तिस्रः पद यज्ञायः ॥ हे अग्ने तेरा वोह  
क्रतु (तावक प्रसिद्ध यज्ञ) इस विषे हम समृद्ध करै किन स्तुति  
यों कि साम समूहोंसे। कैसे स्तोमों कि ओहैः फल के प्राप्त करने  
वाले वा तेरे कर्म रूप नामोंसे। तत्रै को दृष्टान्तः जैसे अश्व मेध  
को विप्र समृद्ध करते हैं। द्वितीयो दृष्टान्तः हृदय में स्पर्श करने  
वाले अतिप्रिय चिरमन विषे स्थित कल्याण क्रतु (संकल्प) जैसे  
समृद्ध करते हैं ॥ क्रतुर्यज्ञः संकल्पश्चेति दृष्टान्त दार्ष्टान्तकयोः स्य  
सम्बन्धः। चिराभि लषितं यथा सन्तः सम्पादयन्तीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

अथा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथी ऋत  
स्य बृहतो बभूव ॥ ४५ ॥

हे अग्ने अथ अथ समनन्तरमेव हमारे यज्ञ का सारथी जैसे  
सै हो अर्थात् सारथी जैसे रथ निर्वाह करता है तैसे यज्ञ निर्वाह  
की हो। कैसे यज्ञ कि कल्याण रूप का। दक्ष समृद्ध वा स्वफलदा

न समर्थः) का। अतिशय साधुका। अमोघफलका। प्रौढका॥४५॥

एभिर्नोऽर्कैर्भवा जोऽर्वाङ् स्वर्णं ज्योतिः। अग्ने  
विश्वेभिः सुमना अनीकैः॥४६॥

हे अग्ने सब मुखों करिके हमारे प्रति अर्वाङ् अभिमुख हो।  
अवर समीप देशको अञ्चन करे इत्यर्वाङ्। अनुगृहाणेत्य  
र्थः। कैसे हैं ये कि हमारे पटे हुए अर्चनीय मन्त्रों करि शोभन मनस्क अ  
र्थात् प्रसन्न होकर हमारे संमुख हो। तत्र दृष्टान्तः स्वर्णज्योतिः-  
(स्वः न ज्योतिः- जैसे स्वः आदित्यरूप ज्योतिः) अर्कैः स्तुत मुद-  
या दारभ्य सर्व प्राणि संमुखं भवति॥४६॥ तृचः॥४७॥

अग्निर्होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुर्हं सूनुर्हं सहसो  
जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्॥ य ऊर्ध्वया स्वध  
रो देवो देवाच्या कृपा॥ घृतस्य विश्राष्टिम नुवष्टि  
शोचिषा जुह्वानस्य सर्पिषः॥४७॥

का० १७.१२.१६ अग्ने पुरीष मसीति पुरीषशब्दवता मन्त्रेणोप  
हितापञ्चम्य सपत्ना पुरीषवती अध्या० १५.३ तिसके पूर्व  
में अतिछन्दस इष्टकाको उपधान करे भद्रा रातिः चतुर्थे  
अवस्थिरेति ककुभा १५.३८-४० चतुश्चतुरक्षरसहित अग्निर्हो  
तारं मित्युक्ता। पुरीषवत्यतिछन्द इष्टके प्राग्लक्षणे पुरीषयु  
क्ते च भवतः अनयोरन्तः पुरीषावापः कार्य इति॥ अतिछन्दाः  
अवसानत्रिकोपेता। छन्दांसि गायत्र्यादीनि सप्तातिक्रान्ताति  
छन्दाः। चतुष्षक्षरत्वादष्टिः ककुभामक्षरैः सहा तिष्ठति॥

जो देव दानादि गुण युक्त अग्नि उन्नतया देवताओं प्रतिजाता है देवताओं प्रतिचलनेवाली समर्थ ज्वाला से घृत के पात को अन्विच्छता है। कैसे घृत कि आजु ह्वान (समन्ताद्भूयमान) सर्पि (अग्निके अंगों में प्रसरणशील) के। जो एतादृशः (ऐसा) स्वध्वरः तिस अग्नि की जानता हूँ। कैसे को कि देवताओं के होतार (आह्वतार) दातार वासयितार बलके पुत्र + जातवेद (उत्पन्न प्रज) न इवार्थे सर्वशास्त्रज्ञानब्राह्मण जैसे स्थित को ॥४७॥

अग्ने त्वं नोऽअन्तम उत ज्ञाता शिवो भवा वरूध्यः ॥

वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमन्तमर्षं रयिं दाः ॥

तं त्वा शीचिष्ठ दीदिवः सुम्नार्य नूनमीमहे सखि

भ्यः ॥४८॥ + अ-ध्यः। अ० व-दाः। इ० त-भ्यः। उ० ॥४८॥

का० १७०१२०१७० अग्नेत्वम् वसुरग्निः तं त्वा इन तीनों से अपर अनूकान्त विषे द्विपदेष्ट का उपधान करे ॥ तिस्रो द्विपदा आग्नेय्यः ॥ व्याख्याता ३२५२६ ॥४८॥ तृचः ॥१०॥

अ० ६ येन ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धोना अग्निं त्वं स्वरा भरन्तः। तस्मिन् नहं निर्दधे नाकैः अग्निं यमाहुर्मनवस्तीर्णं बर्हिषम् ॥४९॥

का० १७०१२०१५० मध्योपहित अष्ट दृष्टका गार्हपत्य के ऊपर गार्हपत्यवतही पुनश्चिति को उपधान करे अर्थात् येन इत्यष्ट चर्चन ॥ आग्नेयोष्टे षट् त्रिष्टुभः द्वे अनुष्टुभौ। ऋषि (मुनि) लोग जिस तप (एकाग्र चित्) करिके यज्ञ करने को उद्यत

+ मनसश्चन्द्रियाणांच ऐकार्मपरमंतप इत्युक्तेः ॥



हुए। कैसे कि अग्नि को प्रकाश करते हुए। तथा स्वर्ग लोक को स्वी करते हुए। तिस तपमें हुआ स्वर्ग लोक निमित्त अग्नि को में स्थापन करता हूँ। मनवः- मनन प्रधाना विद्वान् लोग जि स अग्नि को स्तीर्ण बर्हिषम्, आछादन करते हैं बर्हिजहां बो ह कहिते हैं ॥४६॥

तपन्तीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः।  
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि  
रोचने दिवः ॥५०॥

हे देवाः (दीप्यमान, ऋत्विजः) स्त्रीओं करि सहित और पुत्रों सहित और भाई-भ्रातृ सहित सुवर्णदि द्रव्यों सहित हम अग्नि को अनुसरण (सेवन) करते हैं। कैसे अपनों कि तृतीये भूमिको आरम्भ करि त्रिसंख्या पूरक दिविके पृष्ठ रवि मण्डल विषे नाक दुःखहीन अधिक सुख स्थान को स्वी करें। कैसे दिविके पृष्ठ में कि शुभ कर्मों के फल भूत दीप्यमान विषे ॥५०॥

आ वाचो मध्यमरुहद्वुरण्युरयमग्निः सत्यनिश्चेकि  
तानः। पृष्ठे पृथिव्या निहितो दर्विद्युतदधस्पदं कणु  
ता ये पृतन्यवः ॥५१॥

यह अग्नि वाचो मध्य चयन स्थान † को आरोहण करता हुआ † सो यह अग्नि पृतन्यवः युद्ध की दृष्टा करने वाले पापियों तिन्यों को पैरों के नीचे करे। कैसा है अग्नि कि भुरण्युः (जगद्धर्ता भले का पालक। चेतयमान। भूमि के ऊपर स्थापित। अत्यन्त द्योतमान ॥५१॥

† एतद् तृतीये पृष्ठमित्यादि शत ०८६३१५ अर्चुते;

† एतद् वाचो मध्यात्मत्यादि शत ०८६३२० अर्चुते;

अथ मग्निर्वीरत्नमो वयोधाः सहस्त्रियो द्योततामप्रयु  
छन्। विभ्राजमानः सरिरस्य मध्यऽउप प्रयाहि दिव्या  
निधाम् ॥५२॥

यह अग्नि प्रकाश करने दिव्य स्थानों प्रति जावे और स्वर्गलोक  
को जावे। कैसा है अग्नि कि अतिशयेन वीर (शूर) हवि लक्षण  
अन्न का देनेवाला। सहस्त्रियः सहस्रों दृष्टकाओं करि संमित।  
कर्मविषे प्रमाद रहित। सरिरस्य मध्ये तीनों लोंकों के विषे ही  
प्यमान ॥५२॥

सम्प्रच्यवधुमुप सम्प्रयाताग्ने पथो देवयानान्कणुध्व  
म्। पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताथ सीत्वयितन्तु  
मेतम् ॥५३॥

मन्त्र दृष्टीनाह। हे ऋषिओ तुम अग्नि प्रति आओ और आकर  
भले प्रकार प्राप्त होओ। एव मृषीनुक्ताग्नि माह हे अग्ने देवयानान्  
देव लोक प्रति हेतुमार्गों को करि। हे अग्ने यतः ऋषिलोग इसय  
ज्ञकोतुमविषे अनुक्रमेण विस्तार करते हुए कैसे हैं ऋषिलोग कि  
फिरि के पितरा वाचा और मन + करि तरुण, आयातयामो अन्यो  
न्य संगत करते हैं + अर्थात् जितेन्द्रिय हैं ॥५३॥

उद्बुध्य स्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सठं सजेथा मयं  
च। अस्मिन्सधस्येऽध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमा  
नश्च सीदत ॥५४॥

हे अग्ने तू सावधान हो। प्रतिदिन यजमान को सावधान करि। ततः

† संयताभ्यां वाङ्मनसाभ्यामेव यज्ञसाधनात्।

पितरा पुत्रानि वा  
कर्मिणस्तारुणानि  
३.२३. अग्नेः।

दृष्टा पूर्ते (ओ तस्मार्त कर्मो विषे) यजमान सहित संसृष्ट हो पुरुषव्य-  
त्ययः। किंच हे विश्वे देवा ओ तुमकृत दृष्ट पूर्त ओर निष्पाप यजमान  
देवताओं के साथ स्थितियोग्य इस उतरं सधस्थ (सर्वोत्कृष्टरविलोक-  
द्योर्लोक\*) विषे चिरवैठे। विश्वे देवैः सालोक्यं यजमानस्य प्रार्थ्यत  
इति भावः ॥५४॥

\*योर्वीर्यत  
रुहसधस्थ  
मिति प्रातः  
८-६-३-२३  
श्रुतेः॥

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो  
नय स्वर्देवेषुगन्तवे ॥५५॥

हे अग्ने जिस सामर्थ्य करके सहस्र दक्षिणा क यज्ञ को तू प्राप्त होता  
है और जिस करके सर्ववेदधन दक्षिणा जहां तिस सर्व स्वदक्षिणा  
क यज्ञ को प्राप्त होता है तिस सामर्थ्य करके हमारे इस यज्ञ को देव-  
ताओं प्रति जानि स्वर्ग को प्राप्त करि। यज्ञ के स्वर्ग को जाने में हमारा  
भी तहां जाना होगा। सोऽस्यैष यज्ञो देवलोकमें वाभि प्रैति तदनु-  
ची दक्षिणायां ददाति प्रैति दक्षिणामन्वारम्य यजमान इति श्रु-  
तेः। अतो यज्ञस्य स्वर्गमनं प्रार्थ्यते ॥५५॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचयाः । तं ज्ञान-  
न्वेग्नः आरोहाय नो वर्धया रयिम् ॥५६॥

इयं व्याख्याता ३-१४ ॥५६॥

अ०७ तपश्च तपस्यश्च शो शिरावृतः अग्ने रन्तः श्लेपोऽसि क-  
ल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाय ओषधयः कल्पन्ताम-  
ग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ॥ ये अग्नयः समन-  
सोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे। शीशिरावृतः अभि कल्प-

माना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गि  
रुस्वद्धुवे सीदतम् ॥ ५७ ॥

एवं पुनश्चित्युपधान मुक्तापञ्चमचिति शेष भूतेषु कोपधाने मन्त्रा  
उच्यन्ते का० १७. १२. २२. ऋतव्ये द्वे पद्येष्टके उपधान करै ॥ ऋतु

देवत्यं यजुः + तपो (माघः) तपस्यः (फाल्गुनः) शिशिर ऋतु के अ  
वयवः शिष्टं व्याख्यातम् १३. २५. ॥ ५७ ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्टे ज्योतिष्मतीम् ॥ विश्वस्मे  
प्राणायानाय व्यानार्योदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ॥  
सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरुस्वद्धुवा सीद ॥ ५८ ॥

का० १७. १२. २३. यजमान की पद्या विश्व ज्योति को तृतीयोपहिता-

विश्वज्योति के ऊपर उपधान करै ॥ सूर्य देवत्यं यजुः + परमेष्ठी तु  
मे दिव के पृष्ठ ऊपर में सादन करै ॥ सूर्य तेरा पालक इति विशेषः अ  
न्यथा स्यातम् १४. १४. ॥ ५८ ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणार्थो सीद ध्रुवा त्वम् ॥ इन्द्राग्नी त्वाह  
हस्पतिरुस्मिन्योनावसीषदन् ॥ ५९ ॥

ता अस्य सूदोहसः सोमं श्रीणन्ति पृथ्मयः ॥ जन्मन्दे  
वानां विशस्त्रिधा रोचने दिवः ॥ ६० ॥

इन्द्रं विश्वा अवीरुधन्तसमुद्रव्यचसंगिरः ॥ रथीतमर्धं  
रथीनां बाजानां सत्यतिं पतिम् ॥ ६१ ॥

का० १७. १२. २४. आत्मा के दक्षिण आग्नेय कोण से अपर दिशा  
में रत्निमात्र अधिपद्या द्वय लोक से छोड़कर तृतीय लोक पृथक्

+ महीधर मते उक्त निबन्धः

+ शंकराचार्यः

उपधानकोरे ॥ तिस्रोऽपि द्वादशो व्याख्याताः ॥ ६१ ॥

प्रोथदश्चो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्वा स्यात्॥

आदस्य दातोऽनुवाति शोचिरथ स्मते व्रजनं कृणाम  
स्ति॥६२॥

का० १७०१२०२५ पञ्चमी चिति को पुरीष करि पूर्ववत् प्रच्छादन-  
करिके शर्करामय्यो परस्परसंलग्ने सच्छिद्रे विकर्णी स्वयमात्-  
त्मा संज्ञा द्वे दृष्टके उपधान करते हैं। तिनहों के मध्य उत्तर दिशामें  
अनूक रेखा के मध्य प्रोथदश्च इति विकर्णीष्टका को उपदधाति।  
वशिष्टदृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप्। मध्यमानोऽग्निः कथ्यते। यदा जिसका  
लविषें बडे संवरणात् संव्रियतेऽस्मिन्वाग्निरिति संवरणं अरणि  
काष्ट। तिसव्यस्थात् वितिष्ठते प्रकाश होता है तब प्रोथ (शब्द) कर  
ता है। तत्र दृष्टान्तः अश्वो न अश्व जेसैं घास को खाते बोलता है। इ  
स बन्धिज्वलन के अनन्तर वायु अग्नि को अनुलक्षण करि प्रसर  
ता है वाय्वग्न्योः सख्यादिति भावः। कैसा है वायु कि ज्वलते हुए अ  
ग्नि का संदीपन यद्वा इसकी ज्वाला को देखि कर पवन बहता है। अ  
थ (अथ) वात करि अग्नि के ज्वलते सति ते + इस अग्नि के चलने  
का स्थान स्याम होता है ॥६२॥

आयोष्या सदनै सादया म्यवत श्वायायाधंसमुद्रस्य हदसः

रश्मीवतीं भास्वतीं मा याद्यां मास्या पृथिवी मांर्वन्तरिक्षम् ॥३॥

का० १७. १२. २५. आयोरिति दो कण्डिका करिके विकर्णी दक्षिणां स्व  
यमातृणां को उपधानकरै ॥ आयोः परमं मृष्टीति द्वे यजुषी स्व यगा

† एतिनिर  
नारंगच्छ  
नीत्यापुरा  
दित्यः

† समुत्पत्तिरसमुद्रस्य आदित्यो वक्ष्यतामसमुद्रस्य उत्पत्तिः ॥

तृणादेवत्ये । हे स्वयमातृणा आयोः- आदित्य† के स्थानमें तुम्हें स्था-  
पन करता हूँ । कैसे आदित्य के कि अवतः- जगत का पालनेवाला वा-  
दीप्यमान । तथा समुद्र (आदित्य ५) कैसे स्थान कि छाया (आश्रयभू-  
त- हृदय प्रधानभूत) में । कैसे तुम्हें कि किरणयुता अतएव शोभमान ।  
तिस किसे कि जो तू द्युलोक को प्रकाश करती है पृथिवी को और विस्ती-  
र्ण अन्तरिक्ष को प्रकाश करती है ॥ ६३ ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्टे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं-  
दिवं यच्छ दिवं हठं हृदिवं माहिष्ठं सीः ॥ विश्वस्मे प्राणायो-  
पानाय व्यानायो दानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ॥ सूर्यस्वामि-  
पातु मद्या स्वस्त्या छर्दिषा शान्तेन तया देवतयाद्भिरस्व-  
दधुवेसी दतम् ॥ ६४ ॥

व्याख्यातं १४-१२० ॥ ६४ ॥

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि । सहस्रस्योन्मासि-  
साहस्रोऽसि सहस्रायत्वा ॥ ६५ ॥ †

इति संहितायां सप्तमोऽनुवाकः ७

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनशारवीयार्यावाजस-  
नेयसंहितायां दीर्घपाठे पञ्चदशोऽध्यायः १५

का० १००-१२०-२७० दृष्टका चितपक्ष पृच्छ सहित अग्निको पीछे उत्तर  
पूर्व दक्षिण पश्चिम विषे एक सहस्र हिरण्य शकल करिके दो-दो  
सो उदक सहित खड़े हो प्रकिरें ॥ पञ्चाग्नेयानि यजूर्ध्वि १० दे-जा०  
२० या-अ० ३ दे-त्रि० ४ दे-वृ० ५ दे-यं० हे अग्ने सहस्र दृष्टका ॥



प्रमाण तू है । सहस्र की प्रतिमा (प्रतिनिधी) है सहस्र का उनमा  
न (तुला) है सहस्रार्ह है सहस्रायः अनन्त फल की प्राप्ति के अ  
र्थ तुम्हें प्रोक्षण करता हूँ ॥६५॥

इति श्रीगिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दनिवारयन् ॥  
पुमार्याश्चतुरो देयादग्निदेवः सनातनः १५

श्रीमच्छुक्लयजुर्बेदान्तर्गतमाध्यन्दिनी प्रारवाध्ये तद्व्याघ्रपादान्वा  
य विश्वामित्रपुराधिपति श्रीजयकिशोरदेववर्ममात्मजरोकिमणे  
य नृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये पञ्च  
मीचिति वर्णनो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

गिरिप्रसादसंज्ञेन कथिता पञ्चमीचिति  
वेदार्थ दीपके भाष्ये बालकृष्णप्रसादतः

ओम् तत्सत् श्रीबालकृष्णार्पणं मस्तु ॥

ओम् शान्तिः

शान्तिः

शान्तिः

ओम् तत्सत्

हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहु रूपकम् ॥

स्वानन्ददायकं क्लृप्तं ब्रह्म रूपं परं स्तुमः ॥१॥

शेदोऽध्यायः परमेश्विनः आर्षदेवानां वा प्राजापते वा

अ० १ नमस्ते रुद्र मन्यवः ॥ उतो त इषवे नमः ॥ बाहुभ्यामु  
त ते नमः ॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

शतरुद्रियहोमोग्येषोऽष्टोऽध्याय इत्येते ॥२॥

पञ्चदशोऽध्याये च यनमन्त्रान्समाप्य षोडशेशतरुद्रियारव्यहोममंत्राञ्च्यने  
का० १८० १० १-५ हिरण्यशकलस्यै अग्निप्रोक्षणके अनन्तरमें  
शतरुद्रियसंज्ञक होम है। तिसकी आहवनीय में प्राप्तिविषे अप  
वाद कहते हैं। उत्तरपक्ष पश्चिम कोण विषे जो पगिश्रित जंघामात्रा  
दयः पूर्व निरवाता हैं तिन्हों में होम है। तत्र विधिः। आरण्यतिलों से  
मिश्रित गवेधुकों (सकुओं) को अर्कपत्र करि होम। क्या करिके कि  
अर्क काष्ठ करि सन्तत को आरिके परिश्रित में पातन करि अर्क  
पत्र को दक्षिण हस्त से लेकर अर्क काष्ठ को बाए में ले तिसकरि  
पातन करना चाहिये। कोई ऋषिसक्त के स्थान में अजादुग्धको क  
हते हैं। उदङ्मुख हो नमस्ते नमः अध्याय करिके। तहां तीति अनु  
वाकों के अन्त में अर्भकेभ्यश्च नमः इत्यत्र क० २६ जानुमात्र

परिश्रितमें स्वाहाकार करना और पञ्च अनुवाकों के अन्तमें सुध  
 न्वनेत्यत्र क० ३६ नाभिमात्र परिश्रितमें स्वाहाकार है। नमोऽस्तुरु  
 द्वेभ्य इति क० ६४ प्रत्यवरोह मंत्र हैं तिनहींसे पहिले मुखमात्रपरि  
 श्रितमें स्वाहाकार है। नमोऽस्तुद्गन्तीनि कण्डिकाओंकरि प्रति  
 लोम होम है येदिवि क० ६४ मुखमात्रमें येऽन्तरिक्षमितिक० ६५  
 नाभिमात्रमें ये पृथिव्या क० ६६ जानुमात्रमें इति सूत्रार्थः॥ नमस्ते  
 षोडशऽर्चोऽनुवाकः एकरुद्रदेवत्यः आद्या गायत्री तिस्रोऽनुष्टुभः  
 तिस्रः पङ्क्तयः सप्तानुष्टुभः द्वे जगत्यो। अध्यायस्य परमेष्ठि देव प्र  
 जापतय ऋषयः मान इति द्वयोः क० १५-१६ कुत्सोऽपि ऋषिः॥  
 हे रुद्र-रुत् (दुःख) को दवाने वाले यद्वा रुत् (ज्ञान) को देने वाले अ-  
 थवा पापी मनुष्यों को दुःखभोग से रुलाता है। हे रुद्र तेरे क्रोधके  
 अर्थ नमस्कार हो और तेरे वाणके अर्थ नमस्कार और तेरी वाहु  
 ओंके अर्थ नमस्कार अर्थात् तेरा क्रोध वाण हाथ हमारे वैरि  
 यों प्रति प्रसरेन हम विषे ॥ १॥

या ते रुद्रशिवा तनू रघोरा पापकाशिनी। तया नस्तन्वा  
 शान्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ २॥

हे रुद्र जो तेरी ऐसी देही हे गिरिशन्त तिस देही से हमें देखि। कैसी देही  
 कि मंगलरूपा। यतः अघोरा अविषमा-सौम्या अत एव अपा  
 प काशिनी अर्थात् पुन्य फलको देने वाली। गिरि (कैलाश) विषे  
 स्थित प्राणियों के सुख को विस्तार करने वाली अथवा गिरि वा  
 चा विषे स्थित सुखकों विस्तार करने वाली वामेध विषे स्थित वृ

ष्टद्वारेण सु०-ली अथवा सर्वज्ञ कैसी देही कि शान्तमया- सुखत  
मया ॥२॥

यामिषु गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कु  
रु माहि ठंसीः पुरुषं जगत् ॥३॥

हे गिरिशन्त तू जिस बाण को हाथमें धारण करता है क्या करने  
कि शत्रुओं प्रति डालने को हे गिरित्र कैलाशविषे स्थित भूतों के बा  
ण करने वाले तिस बाण को कल्याण कारनी करि किंवा पुत्र पौत्रादि  
क और गो अश्वों आदिकों को मति मार ॥३॥

शिवेन वचसा त्वा गिरिशास्त्रा वदामसि। यथानः स  
र्वमिज्जगद्यक्ष्मणं सुमना असत् ॥४॥

हे गिरिश (कैलास पे सोने वाले) स्तुति रूप वचन करितुमै प्राप्त हो  
ने को हम प्रार्थना करते हैं। क्या प्रार्थना कि हमारे सब मनुष्य पशु  
आदि जिस प्रकार करि रोग रहित और शोभन मनस्क हों तैसा  
करि इति शेषः ॥४॥

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो देव्यो मिषक्। अहींश्च स  
र्वीज्जम्भयन्त सर्वोश्च यातुधान्यो धराचीः परा सुव ॥५॥

रुद्र मुमै सबसै अधिक कहै तिसके कहते मेरा सर्वाधिक है कैसा  
है अधिक वदनशील किसवों का मुख्य पूज्यत्वात्। देवताओं के  
अर्थहित। रोग का नाश करने वाला, स्मरण करते ही रोगनाश  
से। एवं पराक्ष मुक्ता प्रत्यक्षमाह है रुद्र सब राक्षसी ऐंतू हमसे दू  
रि करि। क्या करिके कि सब सर्प व्याज आदिकों को विनाश करिके।

कैसीहैं राक्षसिएं कि अधोगमन शीला। अर्थात् सर्पनाश राक्षसी-  
क्षेप साथ ही करि ॥५॥

असौ यस्ताम्रोऽपरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः। येचैनं  
रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषां हेडं ई-  
महे ॥६॥

आदित्यरूपेणात्र रुद्रः स्तूयते। जो यह प्रत्यक्ष रुद्र रविस्वरूप और जे  
रुद्रा इसको सब ओड़ीसे पूर्वादिदिशाओं में किरण रूप करि-  
सहस्रशः (असंख्यात) श्रित हैं इन्हीं के अस्मदपराधज क्रोधकी ह  
मभक्ति करि निवारण करते हैं। कैसा है यह कि उदय समय अत्यन्त  
लाल अस्त काल में लाल। और अन्यदा पिशांग वर्ण। सुमङ्गलः-  
मङ्गलरूप रव्युदये सर्वमङ्गल प्रवर्तनात् ॥६॥

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उन्नेन गोपा  
अहश्च नृदंश्च दहार्युः सदृष्टो मृडयाति नः ॥७॥

जो यह आदित्य रूप अवसर्पण उदय अस्त करते निरंतर चलता  
है। और इसे गोपाला- बेदोक्त संस्कारहीना भी देखते हैं जल को  
हरण करनेवाली स्त्रियें भी इसे देखती हैं। कैसा है कि नील ग्रीवः वि-  
षधारण करने से नील है कंठ जिसका अस्त होते समय नील कंठ-  
जैसा दीखता है। विशेष करिके लाल से रुद्र हमें सुख देवे अर्थात्  
यह मंडलवर्ती रुद्र ही तपता है यह जानते सुख करें ॥७॥

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मोदुषे। अथोयेऽस्य  
सत्त्वानोऽहंतेभ्योऽकरं नमः ॥८॥

नील ग्रीव रुद्र के अर्थ नमस्कार हो। कैसे कि सहस्र हैं नेत्र जिस  
के-इन्द्रस्योपि। मीदुषे- सीचने वाले अर्थात् पर्जन्य रूप वातरु  
ए। और इस रुद्र के जे प्राणी भृत्य हैं तिन्हें की नमस्कार करता हूं ॥८॥

प्रभुश्च धन्वन स्त्वमुभयो रात्र्योर्ज्याम्। याश्च ते हस्त इ  
षवः परा ता भगवो वप ॥९॥

हे भगवः षड्विधैश्चर्य युक्त भगवान् हे भगवन् धनुष की दो नों  
कोटियों में स्थिता ज्या-मौर्वी को तू दूर करि और जो तेरे हाथ में वा  
ए हैं तिन्हें परें डारि ॥९॥

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशाल्यो वाणवां ॥१०॥ अने श  
न्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥१०॥

कपर्दि-जटाजूट वाले रुद्र का धनुष मौर्वी रहित हो। और वाणवा  
न् (इषुधिः-भरथरी) विशाल्य विफल-भाल रहित हो। इस रुद्र के  
जे वाण ते नाश हों। इस रुद्र का खड्ग रखने का कोश खड्ग रहित  
हो। अर्थात् रुद्र हमारे प्रति न्यस्त सर्व शस्त्र हो ॥१०॥

याते हेति मीदुष्टम हस्तै बभूव ते धनुः। तया स्मान्वि  
श्वतस्त्वम यक्ष्मया परि भुज ॥११॥

हे मीदुष्टम-हे अति शयेन बर्षने वाले तेरे हाथ विषे जो धनुष-  
आयुध है। एक ते-पदं पाद पूर्णाय। तिस धनुरूप आयुध करिके  
हमें सब ओड़ी से पालन करि। कैसी है धनुष कि रोग रहित नि  
रुपद्रव वा द्रव ॥११॥

परि ते धन्वनो हेति रस्मान्वृणक्तु विश्वतः। अथो य इ

हे भगवन् धनुष की दो नों कोटियों में स्थिता ज्या-मौर्वी को तू दूर करि और जो तेरे हाथ में वा ए हैं तिन्हें परें डारि ॥९॥



धुधिस्तवारेऽस्मिन्निर्धैहितम् ॥१२॥

हे रुद्र तेरा धनुष संवन्धी आयुध सब ओड़ीसैं हमें त्यागे अर्थात् नमारे और जो तेरा द्रुधि (भर्यरी) तिसैं हम सैं दूरस्थापन करि ॥१२॥

अवतत्य धनुष्वृष्टं सहस्राक्ष शतैषु धे निशीर्य शल्या नां मुखा शिवो नः सुमनां भव ॥१३॥

हे सहस्राक्ष सहस्र नेत्र वाले हे शते धुधे सौ भर्यरियों वाले तू हमारे प्रति शान्त शोभन चिन्त हो अर्थात् अनुग्रह करि क्या करि के कि धनुषों को ज्या रहित और बाणों को भाल रहित ॥१३॥

नमस्तऽआयुधा यानां तताय धृषावे ॥ उभाभ्यां मुतते न मो बाहुभ्यां तव धन्वेने ॥१४॥

हे रुद्र तेरे आयुध बाण के अर्थ नमस्कार हो कैसे के कि अनातताय धनुषविषे अनारोपित धृषावे धर्षणशील रिपुमारने को प्रगल्भके और तेरी बाहुओं के अर्थ नमस्कार तेरे धनुष के अर्थ नमस्कार हो तस्यापि विशेषण अनातताय अवतारितमोवीकाय ॥१४॥

मानो महान्तमुत मानोऽअर्भकं मान उक्षन्तमुत मानो उक्षितम् ॥ मानो वधीः पितरं मोत मातरं मानोः प्रियास्तनो रुद्र रीरिषः ॥१५॥

हे रुद्र हमारे महान्त (बृद्ध) गुरुपितृ व्यादिकों को मतिमार और हमारे अर्भक (बालक) को मतिमारि हमारे उक्षन्त (सींचे हुए) तन (गर्भस्थ) को मतिमारि और हमारे सींचे (गर्भस्थ) को मतिमारि हमारे प्रिया तन को मतिमारि हमारी माता को मतिमारि + हमारी प्रिया (बालक)

भा. स्त्री) तन्नूः शरीराणि पुत्रपौत्ररूपाणि मतमारि ॥१५॥

मा नैस्तोके तनये मान आयुषि मा नो गोषु मानोऽश्वेषु रीरिषः ॥ मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्ह विष्यन्तः  
सदमिन्त्वाहवा महे ॥१६॥

हे रुद्र हमारे तोक (पुत्र) तनय (पौत्र) विषे मत हिंसा करि जीवन विषे मत हिंसा करि गोओं वि० तुरगों वि० अथवा विभक्ति व्यत्ययः तोक तनय अश्व गो अश्व को मत मारि और क्रोध युक्त हमारे वीरों (भृत्यों) को मत मारि इसमें तेरा क्या उपकार है वोह यह कि हविर्युक्त हम सदैव तुम्हें याग के अर्थ बुलाते हैं त्वदेक शरणावयमिति भावः ॥१६॥

अ० २ नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिष्णा च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः, पशूनां पतये नमो नमः शब्धिञ्जराय त्विषीं मते मथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोषवीतिने, पुष्टानां पतये नमः ॥१७॥

नमो हिरण्यबाहव इत्युत्तरं द्रापे इति क० ४७ ऋकपर्यन्तं सर्वाणि यजूंषि। तत्र नमो हिरण्यबाहव इत्यादीनां धनुष्कव्यश्च वो नम इत्यन्तानां क० ४६ चत्वारिंशदधिकद्विंशत संख्याकानां यजुषां तावन्तो रुद्रा देवताः नमो वः किरिकेभ्य इत्यादि चतुर्णां क० ४६ अग्निवायुसूर्यादेवताः रुद्राणां प्रधानभूताः ॥ छन्दांसि तु। चतुक्षरं देवी पङ्क्तिः षडक्षरं यजुर्गीयत्री सप्ताक्षरं यजुरुष्णिक् अष्टाक्षरं यजुरनुष्टुप् नवाक्षरं यजुर्बृहती दशाक्षरं यजुः पङ्क्तिः एकादशाक्षरं यजुस्त्रिष्टुप् द्वादशाक्षरं यजुर्जगती चतुर्दशाक्षरं सामोष्णिगेकमेव किरिकेभ्य इति।

एतान्येवान्न छन्दसि॥तद्गुद्रमध्येके चनोभयतो नमस्कारः॥पदद्वयात्पू  
र्वमेव पदोच्चारणस्यश्चाच्च नमःपदं येषां ते उभयतो नमस्कारः हिर  
ण्य बाह्वे इत्यादि श्वपतिभ्यश्च नम इत्यन्ताः क०२०॥ततोऽन्यतर  
तो नमस्कारः अन्यतरत आदावेव यजुर्द्वयस्य नमस्कारे येषां ते  
नमो भवा येत्यादि क०२० प्रविदते चेत्यन्ताः क०४६॥इषुमद्भ्य इ  
त्यादि क०२२ श्वपतिभ्यश्च इत्यन्ताः क०२० प्रत्यक्षाः व इतियुष्म  
छब्दयोगात् । इषुहृद्भ्य इति क०४६ उभयतो नमस्कारः । सभाभ्य  
इति क०२४ जातसंज्ञा रुद्राः । उभयतो नमस्कारः शान्ततमाः अन्य  
तरतो नमस्कारघोरतराः॥तेषां मन्त्राणामर्थ उच्यते एकैकस्यांकण  
कायामष्टावष्टौ रुद्राः॥हिरण्य आभरणरूप बाहुर्गें जिसकी वोह हि  
रण्य बाहु और वोह हीसे नाकी लानेवाला सैनानी तिस रुद्र के अ  
र्थ नमस्कार॥१॥दिशाओं के पालक रुद्र के अर्थ नमस्कार॥२॥हरि  
तवर्ण हैं केश(पत्र)जिन्होंने के तिन वृक्ष रूप रुद्रों॥३॥यशुओं(जीवों)  
के पालक रुद्र॥४॥शष्पिञ्जर(वाल.तृण.तहत पिञ्जर.पीतरक्त  
वर्ण ईदृश दीप्तिमान् रुद्र॥५॥मार्गों के पालक रुद्रकेषां॥नीलव  
र्ण केश(जरारहित)के मङ्गलार्थयज्ञोपवीतधारी रुद्र॥६॥गुणपू  
र्ण मनुष्यों के स्वामी के॥७॥१३॥

नमो बभ्रुशायं व्याधिनेऽन्धानां पतये नमो नमो भवस्य हे  
तये जगतां पतये नमो नमो रुद्राया ततायिने हे त्रातां प  
तये नमो नमः सूताया हन्तये वनानां पतये नमः॥१६॥  
वभ्रुशः कपिलवर्ण वा विभर्ति रुद्रमिति वभ्रु-वृषभ-तिसपर वेदा

नमो रोहिताय, स्थपतये वृक्षाणं पतये नमो, नमो भु  
वन्तये वारिवस्तुतायौषधीनां पतये नमो, नमो मन्त्रि  
णे वारिजाय, कक्षाणं पतये नमो, नमो उच्चैर्घोषाया  
क्रन्दयते, पत्नीनां पतये नमः ॥१४॥

लोहितवर्ण ग्रहादिकर्ता विश्वकर्मरूपी के ॥१७॥ दृक्षों के पालक ॥१८॥ भूमंडल विस्तारक धन का करने वाले स्थानभोग्य करने वाले ॥१९॥ ग्राम्य आरण्य शोषधियों के पालक ॥२०॥ आलोचन कुशल (मन्त्री) वणिज व्यापार करने वाले ॥२१॥ कक्षों (बनगत-गुल्म वीरुधादिकों) के ॥२२॥ युद्धविषे महाशब्द करते रिपुओं के रूलाने वाले के ॥२३॥ पतिओं (सैनाविशेष + वापेदलों) के पालक ॥२४॥ १५॥

नमः कृत्वायतया धावते सत्त्वां पतये नमो नमः स  
हमानाय निव्याधिनेऽव्याधिनीनां पतये नमो नमो  
निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे-  
परिचर्या रणानां पतये नमः ॥२०॥

आकर्णं पूर्णं धनुषं करि युद्धं विषे शीघ्रं चलते वा सर्वलाभं प्राप

कत्वेन चलनेवाले अर्थात् जहां जाता है सर्वेष्ट लाभ को पाता है-  
रुद्र॥२५॥ शरणागत प्राणियों के पालक॥२६॥ वैरियों का अभि-  
भव करता है निरन्तर वैरियों को मारता है तिसके॥२७॥ सब ओ-  
डी से हनन करने वाली शूरसेना तिन्हें के पालक के॥२८॥ खड्ग  
धारण करने वाले बड़े तिसके॥२९॥ गुप्त चोर तिन्हें के पालक  
के॥३०॥ अपहार बुद्धि करिके निरन्तर चरता है आपण वाठिका  
दिकों में हरणेछा करि चरता है तिसके॥३१॥ बनों के पतिके॥३२॥  
रुद्रो लीलया चोरादि रूपं धत्ते यद्वा रुद्रस्य जगदात्म कत्वा चोरा-  
दयो रुद्रा एव ध्येयाः यद्वा स्तेनादि शरीरे जीवेश्वर रूपेण रुद्रो द्विधा  
तिष्ठति तत्र जीव रूपं स्तेनादि शब्दवाच्यं तदीश्वर रुद्र रूपं लक्ष-  
यति यथा शाखाग्रं चन्द्रस्य लक्षकम् किं बहुना लक्ष्यार्थविवक्षया  
मंत्रेषु लौकिकाः शब्दाः प्रयुक्ताः॥२०॥

नमो बभ्रुवते परिवच्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निष-  
ङ्गिणोऽङ्गुलिमते तस्कराणां पतये नमो नमः स्का-  
यिभ्यो जिघात्सस्यो मुष्णातां पतये नमो नमो सिम-  
ध्यो नक्तं चरद्ध्यो विक्लान्तां पतये नमः॥२१॥

प्रतारण करता है सर्वतः प्रता है तिसके॥ स्वामी का आप्त हो के व्यवहा-  
र विषे कही तदीय धन को चलाता है वोह बभ्रुवन् सर्व व्यवहार वि-  
षे धन का चलाना परिवच्चन॥३३॥ गुप्त चोरादिविधा रात्रि में घर वि-  
षे कूमिल दे के द्रव्य के चुराने वाले स्वीया एव अहर्निश अज्ञात ओ-  
र हनार हैं पूर्व स्तेना उत्तरे स्तायव तिन्हें के पतिके॥३४॥ निषङ्गी,

खड्ग वा बाण धारण करनेवाला इश्वरि भयरी धारण करनेवाले  
तदुभयरूप के॥३५॥ प्रकटचोरों के पतिके॥३६॥ वज्रकरि चलने वा  
ले शत्रुओंको मारनेवाले रुद्रके॥३७॥ क्षेत्रादिकों द्विषे धान्यचुरा  
नै बालों के पालक के॥३८॥ खड्गधारण करिके रात्रविषे वीथी निर्ग  
त प्राणियों के घातक रुद्रों के॥३९॥ काट फांसिके चुरानेवालोंके  
पतिके॥४०॥ २१॥

०५०३ नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो न  
म इषुमद्भ्यो धन्वा विभ्यश्च वो नमो नम आतन्वानेभ्यः  
प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छ्वो स्यध्वश्च  
वो नमः ॥२२॥

उष्णीष + सैशिर लपेटिकर ग्राम विषे अपहरने को प्रवृत्तगिरिवि  
षे अध्वन्यों के वस्त्रादि छीनलेनेको पर्वतादि विषमस्थानचारी  
तदुभयरूप रुद्र॥४१॥ क्षेत्रग्रहादिरूप भूमि को हरते वा कुत्सितको  
हरते तिन्हों के पालकके॥४२॥ जनों के भीषण को बाण धारण किये  
तिन्हों के॥४३॥ हे रुद्रओं तुम धनुषधारीओं के चकारे मन्त्र भेद ज्ञाप  
नार्थः एवमग्रेऽपि॥४४॥ आरोपण करते हैं ज्याको धनुष में तद्रूपीओं  
के॥४५॥ भले प्रकार धारण करते हैं बाणको धनुष में तिन तुम्हारे  
॥४६॥ आकर्षण करते हैं धनुषोंको तिन्हों के॥४७॥ क्षेपण करते हैं बा  
णोंको तिन्हों॥४८॥ २२॥

नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जा  
मद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्यः आसीनेभ्यश्च वो



नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वी नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शिति कण्ठाय च ॥२८॥

श्वानः (कुर्कुराः) तिह रूपी ओंकेन ॥२८॥ तुम कुत्ते ओं के पालकों के ॥२९॥ नम इषु मद्भ्यो धन्वायिभ्य इत्यारभ्य क०२२ येवः - शब्दास्तेषु जावाचका वानयुष्मदादेशाः ॥ इत्युभयतो नमस्कारमन्त्राः समाप्ताः ॥ अथ नमस्कारोपक्रमानाम मन्त्रा उच्यन्ते ॥ उत्पन्न होते हैं जन्तु इस से तिसके ॥३१॥ रुत् (दुःख) को दवाता है ति ॥३२॥ पाप को मारता है ति ॥३३॥ यज्ञों की रक्षा करता है ति ॥३४॥ विष भक्षण से नीला है कण्ठ जिसका ति ॥३५॥ श्वेत है कण्ठ नीलातिरिक्त भाग जिसका ति ॥३६॥ ॥२८॥

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चैषु मते च ॥२९॥

कपर्दी (जटाजूटवाले) के ॥३७॥ व्युप्त (भुई) के शनाले के ॥३८॥ सहस्राक्ष (इन्द्ररूपी) के ॥३९॥ शतधन्वा (बहुत धनुषधारी) के ॥४०॥ गिरि (कैलाश) विषे सोनेवाले के ॥४१॥ शिपिविष्ट (विष्णुस्त्य विष्णुः शिपिविष्ट इति श्रुतेः यद्वा शिपि यश्चु ओं में प्रविष्ट पसवो वैशि पिरिति श्रुतेः सर्व प्राणिष्वन्तर्यामितया स्थित इत्यर्थः यद्वा यज्ञो वैशिपिः यज्ञोऽधि देवतात्वेन प्रविष्टः शिपिरादित्यो वा माण्डलाधिष्ठातेत्यर्थः तिसके ॥४२॥ अति शयने मेघ रूपी मीचनेवाले ॥४३॥ वागावा

+ श्वभ्योऽपि प्रणतिर्युक्ता शिवादिष्टानां शङ्कराः श्वानो वेदाः श्वपतयो वेदाणां परिपालकाः ॥ शिवादिभ्यः मल्लाख्यरिपुसंहारं कर्तुं भयं संपृक्तं भयं यथा ज्ञानं त्वागिरवस्तु च मधोहरः ॥ तदा किं गतं ध्येयं देशः (देवाः) सर्वे सायनयुः ॥ तदा वेदाः श्वरूपेण ययुर्देवगणान्विताः ॥ दिशं संपूरयन्त संधानिभिर्मल्लभीयकाः ॥ ततो मलयतः ॥ अहमेवावमप्यधकः तदा प्रभृतिरुद्गम्य मल्लागिरिति (गिरिति) कीर्तितः ॥ इत्युक्ता

श्वपतिभ्यश्च वी नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शिति कण्ठाय च ॥२८॥  
नम इषु मद्भ्यो धन्वायिभ्य इत्यारभ्य क०२२ येवः - शब्दास्तेषु जावाचका वानयुष्मदादेशाः ॥ इत्युभयतो नमस्कारमन्त्राः समाप्ताः ॥ अथ नमस्कारोपक्रमानाम मन्त्रा उच्यन्ते ॥ उत्पन्न होते हैं जन्तु इस से तिसके ॥३१॥ रुत् (दुःख) को दवाता है ति ॥३२॥ पाप को मारता है ति ॥३३॥ यज्ञों की रक्षा करता है ति ॥३४॥ विष भक्षण से नीला है कण्ठ जिसका ति ॥३५॥ श्वेत है कण्ठ नीलातिरिक्त भाग जिसका ति ॥३६॥ ॥२८॥  
नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चैषु मते च ॥२९॥  
कपर्दी (जटाजूटवाले) के ॥३७॥ व्युप्त (भुई) के शनाले के ॥३८॥ सहस्राक्ष (इन्द्ररूपी) के ॥३९॥ शतधन्वा (बहुत धनुषधारी) के ॥४०॥ गिरि (कैलाश) विषे सोनेवाले के ॥४१॥ शिपिविष्ट (विष्णुस्त्य विष्णुः शिपिविष्ट इति श्रुतेः यद्वा शिपि यश्चु ओं में प्रविष्ट पसवो वैशि पिरिति श्रुतेः सर्व प्राणिष्वन्तर्यामितया स्थित इत्यर्थः यद्वा यज्ञो वैशिपिः यज्ञोऽधि देवतात्वेन प्रविष्टः शिपिरादित्यो वा माण्डलाधिष्ठातेत्यर्थः तिसके ॥४२॥ अति शयने मेघ रूपी मीचनेवाले ॥४३॥ वागावा

लेके०॥१०४॥२४॥

नमो ह्रस्वाय च० वामनाय च० नमो बृहते च० वरीय  
से च० नमो वृद्धाय च० सवृधे च० नमोऽग्राय च० अग्र  
माय च० ॥३०॥

रूपतो नमस्काराः॥ अल्पशरीरति०॥१०५॥संकुचितावयवः॥१०६॥  
प्रीटाङ्गहेत०॥१०७॥अतिशयेन वृद्धः तस्मै०॥१०८॥वडी अवस्था का  
त०॥१०९॥सबृद्ध-वडेहे विद्याविनयगुणादिकों से तिन परादुतों के  
अर्च वर्तमान त०॥११०॥जगतके आगे हुआति०॥१११॥प्रथमः सर्वत्र  
मुख्यः त०॥११२॥३०॥

नम आशवे चांजिराय च० नमः शीघ्राय च० शीघ्रा  
य च० नम ऊर्ध्वाय च० वस्वन्याय च० नमो नादेयाय च०  
दीप्याय च० ॥३१॥

जगद्व्याप्तः त०॥११३॥गतिशीलः त०॥११४॥वेगवानूत०॥११५॥शीघ्रः  
आत्मश्लाघी तत्रभवः शीघ्रो जलप्रवाहो वाक्षिप्रौ वा तत्रभवः त०  
॥११६॥कल्लोलों में हुआ त०॥११७॥अवस्वनः स्थिरजल वान्ति  
गतीदिकों में हुआ त०॥११८॥नदी में हुआति०॥११९॥दीप-जल  
न्तरवर्ति निर्जल भूमि में हुआति०॥१२०॥३१॥

अ० ५ नमो ज्येष्ठाय च० कनिष्ठाय च० नमः पूर्वजाय च० पर  
जाय च० नमो मध्यमाय च० अग्रगल्भाय च० नमो जघन्याय  
च० बुध्न्याय च० ॥३२॥

वयोऽवस्था विशेषाभिधायकाः षट् नमस्काराः॥ज्येष्ठ-अत्यन्तप्रश

स्यत ॥ १२१ ॥ अत्यन्त युवा वा अत्यन्त ॥ १२२ ॥ पूर्व जगत की आदि-  
में हिरण्यगर्भ रूपेणोत्पन्नः त ॥ १२३ ॥ प्रलय में कालाग्नि रूपकरि उ-  
त्पन्नति ॥ १२४ ॥ मध्ये सृष्टि संहार के अन्तर देवतिर्यगादि रूपेण हु-  
आति ॥ १२५ ॥ अपगल्भ अगल्भ अव्युत्पन्नेन्द्रियस्तद्रूपी वा एकग-  
भीन्तरित के ॥ १२६ ॥ जघन गवादिकों का पिछला भाग तत्रभवस्त-  
॥ १२७ ॥ वृक्षादिकों की मूल में हुआ त ॥ १२८ ॥ ३२ ॥

नमः सोम्याय च प्रतिसूर्याय च नमो याम्याय च  
क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चान्वसान्याय च नमः  
वैश्याय च खल्याय च ॥ ३३ ॥

सोम गन्धर्वनगर वा दोनों पुण्यपापों से युक्त मनुष्य लोक + तहां हु-  
आत ॥ १२९ ॥ प्रतिसूर विवाहोदित हस्त सूत्र वा अभिचार + तहां हु-  
आत ॥ १३० ॥ याम्यः पापियों को नर कारि दत्तात ॥ १३१ ॥ कुशल में  
हुआत ॥ १३२ ॥ श्लोकाः वैदिक शब्दों वा यश से हुआ त ॥ १३३ ॥ अ-  
वसान समाप्ति वा वेदान्त तां हुआति ॥ १३४ ॥ सर्व सस्याद्याभूमि  
तहां धान्य रूपेण भवः त ॥ १३५ ॥ सत्य धान्य निवेचन देश तत्र भव-  
स्त ॥ १३६ ॥ ३३ ॥

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः अवाय च प्रतिश्र-  
वाय च नमः आशुषेणाय च सुरधाय च नमः शू-  
राय चान्व मेदिने च ॥ ३४ ॥

वन + में वृक्षादि रूप करि हुआ त ॥ १३७ ॥ कक्ष + नृण वा बल्लीत  
हां हुआ त ॥ १३८ ॥ शब्द स्तुती ॥ १३९ ॥ प्रति शब्द स्तुती ॥ १४० ॥ शीघ्र

+ वन वृक्षोद्योजलवा वने प्रजापति विहं प्रदासिम्भमि कानने।  
+ वृक्षो विरुधिदोमूले कक्षं श्रुतवने तुरी ॥

+ पुण्येन पुण्यं लोकं नपति यपि न पापमुमाभ्यामनुष्यलोक  
+ श्लोक्याय चान्वसान्याय च नमः २२

+ आहुर्भूत  
सं हस्तस  
वेमात्यस  
मणने। वृणा  
युद्धे चम्-  
पुष्टिनिया-  
आरक्षकं  
(कर्णे) का  
मन्त्रमेरे  
पीतिविश्वः

सेना वाले॥१४१॥ शीघ्र रथजिसका ति॥१४२॥ युद्धधीरके॥१४३॥  
रिपुओं को नीचे से विदारण करता है ति॥१४४॥ ३४॥

नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वस्  
थिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्या  
य च चाहनन्याय च॥१३५॥

विल्म (शिरस्त्राण जिसका है ति॥१४५॥ पदस्पृत् कर्पास गर्भदेह  
रक्षक कवच तिस कवची के॥१४६॥ लोहमय शरीर रक्षक वर्म ति  
स वर्मी के॥१४७॥ गजोपरिस्थ गजाकार कोष्ठ वस्तु वा रथगु  
प्ति तिस वस्तु की के॥१४८॥ श्रुत प्रसिद्ध के॥१४९॥ प्रसिद्धा सेनाजि  
सकी ति॥१५०॥ दुन्दुभी (भेरी) सैद्धाति॥१५१॥ ताडन करते हैं-  
जिस से बाजेका तिस दण्ड सैद्धाति॥१५२॥ ३५॥

नमो धृषावे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे च युधिर्मते  
च नमः स्तीक्ष्णैर्बवेचायुधि च नमः स्वायुधाय च सु  
धन्वने च॥३६॥

प्रगल्भ के॥१५३॥ विचार करने वाले पण्डित के॥१५४॥ रक्तायुक्त  
के॥१५५॥ तूण (भरतरी) युक्त के॥१५६॥ तीक्ष्ण है वाण जिसके ति॥  
१५७॥ और और आयुध हैं जिसके ति॥१५८॥ शोभन आयुध त्रि  
शूल जिसका ति॥१५९॥ शोभन धनुषजि॥१६०॥ इति द्वितीया  
शीतिः॥३६॥

अ०६ नमः सुत्याय च पथ्याय च नमः कात्याय च नीर्या  
य च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च

वैशन्ताय च ॥१३०॥

सुति, क्षुद्रप्रवाह वा क्षुद्रमार्गं तहांहुआति ॥१६१॥ पन्थ, रथ अश्वदि  
मार्ग योग्य तहांहुआति ॥१६२॥ विषम मार्ग वा कुल्याप्रदेश मेंहुआ  
ति ॥१६३॥ नीचे गिरता है जल जहां गिरिका अधोभाग तहांहुआति ॥  
१६४॥ कृत्रिमा सरिता मेंहुआ वादेह में अन्तर्यामि रूप करिति ॥१६५॥  
सर मेंहुआति ॥१६६॥ नदी मेंहुआति ॥१६७॥ अल्प सर में हुआति  
१६८॥ ३०॥

नमः कृष्याय च, वक्ष्याय च, नमो वीश्याय च, नृप्याय  
च, नमो मेध्याय च, विद्युत्याय च, नमो वर्ष्याय च, व  
र्ष्याय च ॥३१॥

कूप मेंहु ॥१६६॥ गर्त मेंहु ॥१७०॥ निर्मल शरत् के अश्रु में वा विगत  
दीप्ति जिस सै तिस घनागम तहांहु ॥१७१॥ आतप मेंहु ॥१७२॥ मेघ में  
१७३॥ विजली में ॥१७४॥ वृष्टि में ॥१७५॥ वृष्टि प्रति बन्ध में ॥१७६॥ ३८

नमो वात्याय च, रेण्याय च, नमो वास्तव्याय च, वास्तुपा  
य च, नमः सोमाय च, रुद्राय च, नमस्ताम्राय च, रु  
णाय च ॥३५॥

वात में ॥१७७॥ प्रलय में विद्यमान ति ॥१७८॥ गृह भुव मेंहुआ, वा  
स्तव्य ति ॥१७९॥ गृह भुव को रक्षा करता ति ॥१८०॥ उमा सहित सोम  
ति ॥१८१॥ दुःख नाशक के ॥१८२॥ रक्त वर्ण उदय द्रवि रूप करिति  
१८३॥ अरुण ईषद्रक्त, उदयोत्तर कालीन अर्क रूप करिति ॥१८४॥ ३६॥

नमः शंगवे च, पशुपतये च, नमः उग्राय च भीमाय च

नमः अग्नेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च  
नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥४०॥

शं (सुख) को प्राप्त करता है वा सुखरूपा वेदवाचा जिसकी ति ॥१८५॥  
पशु-प्राणियों का पालक ति ॥१८६॥ शत्रुओं के मारने को उग्रायुध  
ति ॥१८७॥ शत्रुओं को भय का उत्पन्न करने वाला ति ॥१८८॥ सामने  
में वर्तमान को मारता है ति ॥१८९॥ दूरमें वर्त ॥१९०॥ मारने वाले  
लोकमें जो मारता है अर्थात् तद्रूपेण रुद्र एव हन्ति ति ॥१९१॥ अ  
तिशयेन प्रलयकालमें सबों को मारता है ति ॥१९२॥ हरितर्हें केश य  
त्र जिन्हें के तिन वृक्षों (कल्पतरु रूपी) के ॥१९३॥ तारता है संसारको  
ति ॥१९४॥ ४०॥

अ०० नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मय  
स्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥४१॥

शं (सुख) होता है वा शं सुखरूप और भव संसाररूप अर्थात् मुक्ति  
रूप और भवरूप ति ॥१९५॥ संसार सुख का देने वाला ति ॥१९६॥  
लौकिक सुख करता है ति ॥१९७॥ मोक्ष सुख करता है ति ॥१९८॥ शि  
व (कल्याणरूप-निष्पाप) ति ॥१९९॥ अत्यन्त शिव (भक्तों को भी नि  
ष्पाप करता है) ति ॥२००॥ अस्यां कण्डिकायां षड्यजूर्षि पूर्वस्यां द  
शोक्तेः ॥४१॥

अ०० नमः पार्याय च वार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरण  
ाय च नमः स्तीर्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च  
फेन्याय च ॥४२॥

१. सङ्कचनादि रूपेण लौकिकसुखकारित्वम् शस्त्रादि रूपेण ज्ञानप्रदत्वाभ्योक्षसुखकारित्वमित्यर्थः ॥ एताभ्यां  
७ वाभ्यां साक्षात्सुखकारित्वम् पूर्वपदाभ्यां तद्द्वाराकारयितृत्वमिति विवेकः ॥



पार संसारब्धि केतीरपरजीवन्मुक्तरूपेण हुञ्जाति॥२०१॥संसारके मध्य  
में संसारित्वेन हुञ्जाति॥२०२॥प्रकर्षेण मन्त्रजपादिकरि पापके तरणे  
का हेतुति॥२०३॥उत्कृष्टेन तत्त्वज्ञान करि संसारे चरण हेतुति॥२०४॥  
प्रयागादि तीर्थों में हुञ्जाति॥२०५॥तटमें हुञ्जाति॥२०६॥शष्प बालतृ  
ण गङ्गातीरेत्यन्त्र कुशाङ्कुरादि में हुञ्जाति॥२०७॥फेन डिण्डिर में  
हुञ्जाति॥२०८॥४२॥

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किर्तिशिलाय च क्षय  
णाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमः इरिण्याय च  
प्रपञ्च्याय च ॥४३॥

सिकतामें हु॥२०९॥प्रवाह (स्रोत) में हु॥२१०॥क्षुद्रशिला शर्करारूप  
पाषाण जिस प्रदेश में तद्रूपी के॥२११॥स्थिर जल प्रदेशाति॥२१२॥क  
पर्दी के॥२१३॥पुरः सामने खड़ा है वा शरीर में है सत्ताजिस्की वोह स  
र्वान्तर्यामी ति॥२१४॥ऊपर तृणरहित देश तहां हुञ्जाति॥२१५॥बहु  
सेवित मार्ग में हु॥२१६॥४३॥

नमो ब्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च  
नमो हृदय्याय च निवेष्याय च नमः काव्याय च गह्वरे  
ष्याय च ॥४४॥

गो समूह में हु॥२१७॥गोष्ठ गौत में हु॥२१८॥शाय्या में हु॥२१९॥गेहघर  
में हुञ्जाति॥२२०॥हृदय में हुञ्जाति॥२२१॥निवेष आवर्त वा नीहार  
जल में हु॥२२२॥काट दुर्गारण्य देश वा कूप में हु॥२२३॥गह्वरगिरि  
होदिकों वा गम्भीर जल में खड़ा ति॥२२४॥४४॥

नमः सुष्काय च हरित्याय च नमः पार्थ सव्याय च रजसा  
य च नमो लोप्याय चोऽल्प्याय च नमः ऊर्वी च सूर्या  
य च ॥४५॥

शुष्क-काष्ठादिकमेंहु॥२२५॥ आर्द्रकाष्ठादिकमेंहु॥२२६॥ पांसु(धू  
लि)मेंहु॥२२७॥ रज(गुण वापराग)मेंहु॥२२८॥ लोप(अगम्यप्रदे  
श वाशंहार)मेंहु॥२२९॥ उल्पा(वल्चजादितृणविशेष)मेंहु॥२३०॥  
उर्वी(भूमि वा बडवानल)मेंहु॥२३१॥ शोभनऊर्व(कल्पानल)मेंहु॥  
२३२॥४५॥

+ स्त्रीरूपगोत्रोः स्त्रीपुंशोर्गुणभेदे च।

नमः पूर्णाय च पणशुदाय च नमः उद्गुरमाणाय चात्रभि  
घृते च नमः आखिदते च प्रखिदते च नमः इषु कृड्यो  
धनुष्कृड्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवनार्थं हृद  
येभ्यो नमो विचिन्तकेभ्यो नमो विक्षिण्णकेभ्यो नमः  
आनिर्हतेभ्यः ॥४६॥

तस्त्वेतन्त्रे के पत्र स्तके ॥२३३॥ शदः शातन वा गिरतं हे पक्षपणस्थित  
देश तद्रूपीके ॥२३४॥ उद्यम करने वाले के ॥२३५॥ शत्रुओं के मारने  
वाले के ॥२३६॥ समन्तात् दैन्य करता है अभक्तों को ति ॥२३७॥ अकर्ष  
ण दैन्य करता है पापिओं को ति ॥२३८॥ बाणों की करने वाले तिन रुद्रों  
के ॥२३९॥ तुम धनुषों के करने वाले रुद्रों के अर्थ नमस्कार हो ॥२४०॥  
तिस्त्रोऽशीतयो रुद्राणां समाप्ताः। एवं चत्वारिंशदधिकशतद्वयमत्रै  
रुद्राय सर्वात्मत्वमुक्तम् ॥ ॥ अथ रुद्रेषु प्रधानभूतानामग्निवायु  
सूर्याणां संवन्धीनि चत्वारि यज्ञेषु च्यन्ते। चतुर्णामादौ नमः शब्द

चत्वार्येव यजूंषि आद्यं चतुर्दशक्षरं त्रीणि सप्ताक्षराणि तानि व्याहृ-  
ति संज्ञानि॥ नमो वदति। देवताओं (रुद्रों) के हृदयवत्प्रधानभूत तुमअ-  
ग्नि वायु सूर्य-ओं के अर्थनमस्कार। देवानां हृदयेभ्य इत्यग्नि वायुरा-  
दित्य-एतानि हतानि देवनार्हं हृदयानीति ५.१.१.२३ श्रुतेः। जैसेअ-  
ङ्गों में हृदय प्रधान है ऐसे ये रुद्रों में प्रधान हैं। कैसे हैं ते कि किरिकेभ्यः-  
वृष्ट्यादि द्वारा जगत करते हैं। एते ही दर्शन सर्व कुर्वन्तीति ५.१.१.२३ श्रुतेः  
॥१॥ पृथक्करते हैं धर्मिष्ठ और पापिष्ठ को तिन अग्न्यादिकों के ॥२॥ विवि-  
ध हिंसा करते हैं पाप को तिन अग्न्यादि ॥३॥ आसमन्तान्निर्गताः सर्गादि-  
में लोकों के अर्थ तिन रुद्रावतारों अग्नि वायु सूर्य-ओं के अर्थनमस्कार। ते-  
भ्य सप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतीर्दृष्यजायन्ताग्निर्यो यं पवते सूर्य इति ॥४॥ ४६॥  
अ.०.६ द्रापेऽअन्धसस्यते दरिद्र नील लोहित। आसां प्रजानामेषां  
पशूनां मा भेर्मा रोद्धो च नः किं च नार्ममत् ॥४७॥  
सप्त ऋच एक रुद्रदेवत्याः। आद्यो परिष्ठाह्वहती। हे द्रापे पापियों को  
कुत्सितगति प्राप्त करता है। हे अन्धसः सोम + के पते। हे दरिद्र निष्परि-  
ग्रह अद्वितीयत्वादिति भावः। हे नील लोहित कण्ठ में नील अन्यत्र लो-  
हित है हे शिव हमारी इन प्रजाओं पुत्रादिकों को गवादि पशुओं को  
तू भय मत कर। प्रजा पशुओं का भङ्ग मत कर। पुनः हमारा किमपि  
द्विषदचतुष्पदादिकों को रोगी मत कर यद्वा रुग्ण मत हो ॥४७॥  
इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयदीराय प्रभरामहे मतीः।  
यथा शमसद्वि पदे चतुष्पदे विश्वे पृष्टं ग्रामेऽअस्मिन्  
नातुरम् ॥४८॥

सप्तमस्य पदे चतुष्पदे विश्वे पृष्टं ग्रामेऽअस्मिन्

कुत्सहृष्टाजगती। हम अपनी बुद्धि शंकर के अर्थ समर्पण करते हैं। के  
से के कि तबसे बड़े वा बलवान + कपर्दी के। शूरयुक्त के वानाश होते हैं  
रिपु जिससे। पुत्रादिकों वा पशुओं के अर्थ अथवा द्विपद चतुष्पदों में  
जिस प्रकार सुखदुःख है इसग्राम वासस्थान विषे सब प्राणिजान म  
मृद्व निरुपद्रव और स्वस्थ जैसे हुए तैसे हर में मति का समर्पण करते  
हैं इत्यर्थः ॥४८॥

याते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी। शिवा रुतस्य भे  
षजी तथा नो मृड जीवसे ॥४९॥

अनुष्टुप्। जो तेरी ऐसी देही तिस देही से हमारे जीवन को सुख करि। कैसी  
कि शिवा-अघोरा। और सब दिनों विषे कल्याण कारिणी औषधिरूपा सं  
सार व्याधिनिवर्तिका। रुत (शरीर व्याधि) की शिवा समीचीन निवर्तिका औषधि है ॥४९॥

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मति रंध्रायोः ॥ अव-  
स्थिरा मघवद्व्यस्तनुष्व मीदुस्तोकाय तनयाय मृड ॥५०॥

त्रिष्टुप्। रुद्र का आयुध हमें न मारो। और रुद्र की द्रोह बुद्धि हमें त्याग  
करो। हे मेदु कामों के वर्षने वाले तू हृदयनुषों को ज्या रहित करि कि  
मर्थ हविर्लक्षण है धन जिन्हों के तिन यजमानों की भय निवृत्ति के अ  
र्थ। किंच पुत्र और पौत्र को सुख करि ॥५०॥

मीदुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव। परमे वृक्ष आयुधं  
निधाय कृत्ति वसान आचर पिनाकं विभ्रता गहि ॥५१॥

इयमे कोना यवमध्यात्रिष्टुप्। हे मीदुष्टमः (अतिशयेन कामसेक्तः) हे शि  
वतमः (अत्यन्त कल्याणकर्त्ता) हमारे प्रतिशान्त और हृष्ट चित्त हो।

किंच दूरस्थ वा बटादि दृक्षमें आयुध (विश्वलादिक) को रखिकर बर्म  
को भी रखिकर आगमन वा तप करि। ज्या शरहीन धनुष मात्र को शोभा  
र्थ धारण करते आगमन करि ॥५१॥

विकिरिद्र विलोहित नमस्तेऽस्तु भगवः। यास्ते सहस्रं हं  
हेतयोऽन्यमस्मन्निव पन्तुताः ॥५२॥

हे अनुष्टुभो। हे विकिरिद्र विविध घातादि उपद्रव कानाशकरता है हे  
विलोहित विगत है पाप जिससे हे शुद्ध स्व रूप भगवन् तेरे अर्थ नम  
स्कार हो। हे रुद्र तेरे जे असंख्य आयुध हैं ते आयुध हमसे व्यतिरि  
क्त हनन करें ॥५२॥

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः ॥ तासां मीशानो  
भगवः पराचीना मुखो ह्यधि ॥५३॥

हे भगवन् तेरे हाथों में जी सहस्रों आयुध हैं तिन आयुधों के मुख शल्य  
हमसे पराङ्मुख तू करि। कैसा है तू कि ईशान (जगन्नाथ) अर्थात् ध  
नुः खड्ग शूल बाण बर्मादिक सहस्र-सहस्र संख्या कहें ॥५३॥

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ॥ तेषां सहस्रयो  
जनेऽव धन्वा नि तन्मसि ॥५४॥

बहुरुद्रदेवत्या दशानुष्टुभोऽवतानसंज्ञाः। भूमिस्थारुद्रा उच्यन्ते।  
असंख्यात जे रुद्र भूमि के ऊपर स्थित हैं। तिन रुद्रों के धनुष सहस्र  
योजन व्यवहित मार्ग विषे हम उतारते अर्थात् अपज्या करिके  
अपने से दूर फेंकते हैं ॥५४॥

अस्मिन्महत्पूणे वेऽन्तरिक्षे भवा अधि ॥ तेषां सहस्रयोजने

ऽवधन्वानि तन्मसि ॥ ५५ ॥

अन्तरिक्षस्था रुद्रा उच्यन्ते। इस अन्तरिक्षविषेऽधिश्रितजे रुद्रहंति  
न्हों के धनुष० पूर्ववत्। कैसे अन्तरिक्ष कि विशाल। जलहं जिसमें  
मेघाधारत्वात् ॥ ५५ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवर्हं रुद्रा उपश्रिताः। तेषां

॥ सहस्रयोजने ऽवधन्वानि तन्मसि ॥ ५६ ॥

द्युस्था रुद्रा उच्यन्ते। रुद्रद्युलोकमें स्थितहैं तिन्हों के। कैसेहें कि श्या  
महें ग्रीवा जिन्हों की। श्वेतहैं कण्ठ तिन्हों का। अर्थात् विषग्राससे कुछ  
एक कण्ठभागस्याम कुछ एक श्वेतहैं ॥ ५६ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः। तेषां

॥ सहस्रयोजने ऽवधन्वानि तन्मसि ॥ ५७ ॥

पातालस्था रुद्रा उच्यन्ते। जे रुद्र पृथ्वी के अयो भाग में चलतेहैं वे  
पातालमें वर्तमानहैं। अन्यत्पूर्ववत् ॥ ५७ ॥

ये वृक्षेषु शृण्विञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः। तेषां

॥ सहस्रयोजने ऽवधन्वानि तन्मसि ॥ ५८ ॥

जे रुद्र वृक्षों (अश्वत्थादिकों) में स्थितहैं। कैसेहें कि शृण्विञ्जराः बालत  
ए तद्वत् हैं पिञ्जर हरितवर्ण। नीलहें ग्रीवा जिन्हों की। तथा कोईक  
लोहितवर्णहें अथवा विगतहैं लोहित (रुधिर) जिन्हों का लोहितपद  
मांसादिकों का उपलक्षणहें विगतहैं लोहितादि धातुएँ अर्थात् ते  
जो मय शरीरहें अन्यदुक्तम् ॥ ५८ ॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः। तेषां



सयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥५५॥

जैसे हैं तिन रुद्रों के पूर्ववत् कैसे हैं कि भूतों देवविशेषों के अधिपतयः अर्थात् शरीर के अन्तर्गत ही के मनुष्यों के उपद्रव करने वाले तिनहों के पालक हैं। तिनहों में कुछ एक मुण्ड मुण्डे हुए कुछ एक जरा धारी ॥५५॥

ये पथा पथिरक्षस ऐलवृदा आयुर्युधः। तेषां सहस्रयो  
जनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥६०॥

आर जे रुद्र ऐसे तिनहों के उक्तम्। कैसे कि पथा, लौकिक वैदिक मार्गों के अधिपति इति पूर्वर्चोऽनुषङ्गः। तथा पथिरक्षसः पथो मार्गाः तां नेव अन्यां का रक्षा करते हैं। ऐलवृदाः अन्तों के समूह वापृथ्वी की धारण करते हैं अर्थात् अन्न में जन्तुओं के पोषक हैं। आयुर्युधः यावज्जीव युद्ध करने वाले वापणी करिके युद्ध करते हैं ॥६०॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति मृकाहस्ता निषङ्गिणः। तेषां सह  
स योजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥६१॥

जे रुद्र तीर्थों प्रयाग काशी आदिकों में चलते हैं। कैसे हैं एक आयुध हैं हाथ में जिन्हों के। खड्ग हैं विद्यमान जिन्हों के। मृकाहस्तत्वेऽपि निषङ्गित्वोक्तिः खड्ग प्राधान्याय। अन्यदुक्तम् ॥६१॥

ये त्रेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबन्तो जनान्। तेषां सहस्रयो  
जनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥६२॥

जे रुद्र भुज्यमान अन्तों में स्थित होके जनों की विशेषेण ताडन करते अर्थात् धातु वेश्म्य करि रोगों को उत्पन्न करते हैं। तथा पात्रों में स्थित क्षीरेदकादि विषे होके क्षीरदिक पीनेवालों को ताडन करते हैं। अन्तो रक्तभोक्ताओं को व्याधिओं से पीडा करने का तिनहें अधिकार है इति भावः।

अन्यत्समानम् ॥ ६३ ॥

यऽएतावन्तश्च भूयाथ्सश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे । तेषां थ्सह  
स्रयो जनेऽवध्वन्वानि तन्मसि ॥ ६३ ॥

जे रुद्र एतत्प्रमाण जिन्हों का ते अति शयेन बहुत हैं और कहेहुओंसेभी  
बहुत हैं जे रुद्र दश दिशाओं में व्याप्त हैं तिन्हों के धनुषों पूर्ववत् ॥ ६३ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः । तेभ्यो दशप्रार्त्ता  
र्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशा दीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमोऽ  
स्तु तेनोऽध्वन्तु तेनो मृडयन्तु तेयं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टितमै  
षां जम्भे दध्मः ॥ ६४ ॥

कण्डिका त्रयात्मिकानि त्रीणि यजूषि प्रत्यवरो ह संज्ञानि बहुरुद्रदेव  
त्यानि । त्रिलोकस्था रुद्रा उच्यन्ते । द्युलोकविषं जेरुद्र वर्तते हैं और जि-  
न रुद्रों की वृष्टि ही वाण आयुध स्थानीया है (अतिवृष्ट्यादि करिषा  
णियों को मारते हैं) तिन रुद्रों के अर्थ नमस्कार हो ॥ तिन रुद्रों के अर्थ प्रा-  
गभिमुखः दश अङ्गुलीएँ करता हूँ इति शेषः प्राङ्मुखः अञ्जलि करने  
में प्राची मुखः दश अङ्गुलीएँ होती हैं । दक्षिणाभिमुखः दशाङ्गुलीः  
करता हूँ । प्रत्यङ्मुखः दशाङ्गुलीएँ करता हूँ । उत्तराभिमुखः दशाङ्गुलीः  
करता हूँ । अर्थात् अञ्जलि बांध के नमस्कार करता हूँ ॥ तिन रुद्रों के अर्थ अ-  
ञ्जलि पूर्व नमस्कार हो । ते रुद्र हमें सुख देवें । किंच ते रुद्र जिस पुरु-  
ष को द्वेष करते हैं इति शेषः और हम जिसे द्वेष करते हैं और जो हमें  
द्वेष करता है जिस पुरुष को पूर्वोक्त रुद्रों के जम्भ (दंष्ट्रा कण्ठ मुख)  
में स्थापन करते हैं अर्थात् हमारे द्विष और द्विष्य नर को पूर्वोक्त रु-  
द्र भक्षण करें और हमें रक्षा करें ॥ ६४ ॥

दशबाणः अञ्जलिपूर्वः प्राचीमुखः  
दक्षिणमुखः प्रत्यङ्मुखः उत्तराभिमुखः ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः॥ तेभ्यो दश  
प्राचीर्दश दक्षिण दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः॥ तेभ्यो  
नमोऽस्तु तेनोऽवन्तु तेनो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वे  
ष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥६५॥

जे अन्तरिक्ष में रुद्र वर्ते हैं तिनहों के अर्थ नमस्कार हो। जिनों के वायु  
आयुध स्थानीय है कुवात से अन्न को विनाश करि वात रोग उत्पादन  
करि के जनों को मारते हैं। तिन अन्तरिक्षस्थ वात रुद्रों के अर्थ नम  
स्कार हो शिष्टं व्याख्यातम्॥६५॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषां मन्त्र मिषवः॥ तेभ्यो दश  
प्राचीर्दश दक्षिण दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः॥ तेभ्यो  
नमोऽस्तु तेनोऽवन्तु तेनो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो  
द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥६६॥

इतिसर्गहितायानवमोऽनुवाकः॥

इति श्रीशुक्लयजुषिमाध्यन्दिनशाखायां वाज

सनेयसर्गहितायां दीर्घपाठे षोडशोऽध्यायः १६

जे रुद्र पृथिवी में वर्ते हैं तिनहों का अन्न (अदनीयवस्तु) आयुध है अ  
थान्न भक्षण कदन्न भक्षण वा चौर्य में अवर्ते हों रोग को उत्पादन  
करि के जनों को मारते हैं तिन पृथिवीस्थ आन्नायुध रुद्रों के अर्थ न  
मस्कार हो। तेहमें रक्षा करें इत्यादि पूर्ववत्॥ गते प्रत्यवरोह मन्त्राः  
अथ प्रत्यवरोहान्जुहोतीति ४.१.१.३२. व्यवहाराय संज्ञाकरणम् ६६

इति गिरिधरभाष्येनवमोऽनुवाकः॥

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशाखायामेतुव्याघ्रपादान्वयाव

षोडशेऽध्याये शतरुद्रियहोमोक्तः सप्तदशे चित्यपारंषकादिमन्त्रा  
उच्यन्ते॥ का० १८०२१ पक्षकी अपर संधि कक्ष तिसका समीप  
निकक्ष दक्षिणपक्षकी अपर संधि समीप आत्मा भागमें अष्टमांशों  
को रवि उदक् कुम्भको ले आदिसे आरम्भ करि सपक्ष पुछ् अग्नि  
को प्रदक्षिण जलधारा करि समन्तात् अर्थात् अग्नि से सींचै॥ य  
जुर्मरुद्देवत्यम्। हे मरुतः तिस प्रसिद्ध अन्न औ र सको हमारे अर्थ तु  
म स्थापन करो, देओ। कैसे हो तुम कि सम्यग्दातारः। कैसा अन्न औ र

रसको कि पाषाणं विन्ध्यहिमवदादिकों में शिश्रियाण। तथा सारभूता  
बल का हेतु। यद्वा अश्विन वति पर्ववति मेघविषे जलको आश्रिता-  
वृष्टि सम्पाद्या। तथा जल यवादिका ओषधि ओं अश्वत्थादिवनस्पति  
ओं के सकाश से अधिक संपादित गो द्वारा करि पय और दुग्धको आ-  
श्रित गौजलपा ओषधि वनस्पति भक्षण करि पय दुहाती हैं। अर्था  
तु द्विरूपा मेघोत्पजलरूपा गोसमुत्पा पयरूपा इष और ऊर्जको दे-  
ओं ॥ का० १८०२२ सेक के अन्त में अश्विन पर कुम्भ की अस्मिं स्तेक्षुदि-  
ति रवि के मयित इति फिर लेकर पुनः दोवारपरिधि अवन करे ॥ दे-  
हृ० अश्विदेवत्या हे अश्विन सर्वभक्षक अग्ने तेरे आहा हो (बहुहवि-  
षा भोज्यत्वात् ॥ कुम्भमादत्ते ॥ दे- हृ० अश्विदेवता हे अश्विन तेरा मा-  
र भाग मेरे विषे हो इति शेषः ॥ का० १८०२४ तिस पाषाण को कुम्भ में  
करि के दक्षिण वेदि ओणियों में पूर्वाभि मुख खडा हो दक्षिण दिश वि-  
षे अश्व सहित घट को निरस करे ॥ या- हृ० शुक् देवत माभि चारकम्  
हे अग्ने तेरा शुक् (शोक) तिस नरको प्राप्त हो तिस किसे कि हम जिस  
नरको द्वेष करते हैं हम द्वेष विषय तेरा शोक जा ओ ॥ १ ॥

इमा मेऽअग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च श-  
तं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च  
नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्युर्वुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्त-  
श्च परार्धश्चैता मेऽअग्न इष्टका धेनवः सन्त्वे मुत्रा मुष्णि-  
ल्लो के ॥ २ ॥

का० १८०२४ कुम्भ निरसन के अनन्तर न देखता लौट कर दक्षिण

मरुती वै वागम्य शतः दूतः ४०१२५ अन्ते ॥

वेदिश्रोणि समीपमें ईशानाभिमुख खड़ा हो आत्मा (अग्नि) के ऊपर दोनों हाथ पसारिके यावत् स्पर्श करने को समर्थ तावत्स्पर्श करि इमाम इति दो कण्डिकाओं को स्वरसे जपे ॥ अग्नि देवत्यं यजुः हे अग्ने जे इष्टका पञ्चचितिओं में उपहिता हैं ये इष्टका मेरे अर्थक्य भिमतफल की दो ग्रीधेनुएँ हों तेरे प्रसादसे इस लोक में इति शेषः तिन्हों की संख्या कहिता है एकेत्यादि यहां एकसे आदिले परार्थपर्यन्त शब्दों से उत्तरोत्तर दशगुणिता संख्या कहिये है। एका एकत्व संख्या विशिष्टा वोह दशगुणिता दशसंख्या को प्राप्त होती है वोह दशगुणिता शत होती पूर्व संख्या सहित उत्तर संख्या का ग्रहण आधिक्य के अर्थ शत दश से गुणित सहस्र सहस्र दश से गुणित अयुत अयुत दश से गुणित नियुत नियुत लक्ष को कहिते हैं नियुत दश से गुणित प्रयुत प्रयुत दशलक्ष को कहिते हैं प्रयुत ग्रहण कोटिका उपलक्षक है प्र० कोटि को अ० अर्बुद अ० न्यर्वुद १ एक दश १० दश १०० शत १००० सहस्र १०००० अयुत १००००० नियुत १०००००० प्रयुत १००००००० कोटि १०००००००० अर्बुद १००००००००० न्यर्वुद १०००००००००० खर्व १००००००००००० निखर्व १०००००००००००० महापद्म १००००००००००००० शङ्कु १०००००००००००००० समुद्र १००००००००००००००० मध्य १००००००००००००००० अन्त १०००००००००००००००० परार्थः। चकारा इतरेतर समुच्चयार्थः। ए० वं एकादि अष्टादश संख्या संज्ञा संमिता इष्टका एता है अग्ने मेरे गों हों



इति पूर्वोक्तस्य निगमनम् । एतद्वेनु भवनं कुत्रार्थ्यते तदाह अन्य-  
जन्म विषं तथा स्वर्गमें हों यद्यपि नियत संख्य इष्ट का गिनतेहें तथा  
पि मन्त्र सामर्थ्यात् वर्धमाना एकादि पराधीन्त संख्या होती हैं इति  
भावः ॥ २ ॥

ऋतवस्य ऋतावृधे ऋतुषास्य ऋतावृधेः । घृतश्रुतो  
मधुश्रुतो विराजो नाम कामदुया अक्षीयमाणः ॥ ३ ॥  
ब्रह्मती यङ्किर्वा अग्निदेवत्या इष्टका देवत्या वा । हे इष्टका जे तुम एवं  
विधा हो ते मेरे धेनुएँ होंवें इति पूर्वण संबंधः । केसी कि ऋतवः वस-  
न्तादि रूपाः । ऋत (सत्य वायज) बढाने वाली । वसन्तादि ऋतुओं-  
में खंडी तिहें । घृत स्रवाने वाली । मधु स्रवाने वाली । नामेति प्रसिद्धौ  
विगजः विशेषेण प्रकाशतीहें ते दशलोकस्पृणांभि प्रायमेतत् ।  
कामों की पूरण करने वाली । क्षय रहिताः ॥ ३ ॥

समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परिव्ययामसि । पावकोऽ अस्म  
भ्यं ठं शिवो भव ॥ ४ ॥

का० १८०२१० मण्डूक शैवल वेतस तरुणारवा वंश में बांधकर ति-  
से हस्तेनादाय अग्निक्षेत्र को प्रति ऋचा करितिसंसे कर्षे ॥ आद्याया  
दक्षिण ओणेरारभ्य दक्षिणां सं यावत्कर्षति ॥ द्वे गायत्र्या वग्निदेवत्ये-  
अन्त्यो दशकः ॥ हे अग्ने समुद्र (जल) के शैवाल करिके तुम्हें परितः वे-  
ष्टन अर्थात् उपरि भाग में सर्वत्र विकर्षण करतेहें । और तू हमारे  
र्थ शोधक और शान्त हो ॥ ४ ॥

हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि । पावकोऽ अस्म

इति पुनर्व  
ऋता वृध इति पुनर्व  
ऋता वृध इति पुनर्व  
ऋता वृध इति पुनर्व  
ऋता वृध इति पुनर्व

भ्यर्हं शिवो भव ॥५॥

दक्षिण ओण्या उत्तर ओण्यन्तं कर्षति ॥ हिमा (शीत) के जल युक्त दुत्प  
ति स्थानीय शैवाल करि हे अग्ने तुमै संवरण करते हैं तू हमारे ॥५॥  
उप जम्बुप वेतसे भूत नदीष्वा । अग्ने पित्त मपा मसि  
मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञ पावक वर्णं हं शिवं कथि  
उत्तर ओणे रुतरां सपर्यन्तं कर्षति ॥ जगती विष्टु च्वा । हे अग्ने पृथि  
वी विषे प्राप्त हो । तथा वज्रुल शारवा में प्राप्त हो नदी के विषे उत्पन्न शै  
वाल में प्राप्त हो । मण्डूक्यवका वेतस शारवाः कर्षणार्थं वेणो वद्धाः  
सन्ति तदयं मन्त्रो वदति । कस्मात्त्वेवमस्माभिः प्रार्थ्यत इत्यत आह  
हे अग्ने तू जलों का पित्त (तेज) है (योयस्या वयवः सतं नहि नस्ति तद्धर्मो  
न भवति) । एवमग्निं संबोध्य मण्डूकी माह हे मण्डूकि मण्डूकी भव  
स्तस्य स्त्री) तिन पूर्वोक्त जलों के साथ आगमन करि कि जिन्हों का अ  
ग्नि पित्त है जहां तू उत्पन्न हुई जो तू अग्नि की शान्ति के अर्थ इतस्त  
तः चलती है सो हम लोगों के किये चयन लक्षण यज्ञ को अग्नि समान  
तेजस और फल प्रदत्वेन शान्त करि ॥६॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् । अन्यां स्तेः अस्म  
त्तपन्तु हेतयः पावकोऽस्मभ्यर्हं शिवो भव ॥७॥

उत्तरां सा दक्षिणं सं कर्षति ॥ आग्नेयी ब्रह्मती । इस चित्याग्नि स्थान  
वा मण्डूक्यवका वेतस लक्षण उदक प्राप्ति साधन समुद्र (जलों) के गृ  
हस्थानीय (तद्रूप) है अग्ने तेरी ज्वाला हमारे सकाश से हमारे विरोधी  
पुरुषों को तपावे (क्लेश देवे) हमारे अर्थ शोधक और शान्त हो ॥७॥

आग्ने पावक रोचिषा मन्द्रपा देवजिह्वया। आ देवान्वक्षि  
यक्षिच ॥८॥

का० १८०२०११ पक्ष पुच्छों को प्रान्तसे आरभ्य-आरभ्य आत्मा को  
आत्म संसुख संधि पर्यन्त प्रति ऋचा करि कर्षे, आग्ने इति दक्षिण-  
पक्ष सन इति पुच्छ पावकया इति उत्तरपक्ष को ॥ आग्नेयी गायत्रीव  
सूयव दृष्टा। हे आग्ने हे पावक हे देव रोचन ज्वाला समूहसे आहवनी  
यात्मा करि स्थित है इति शेषः। मदनीया जिह्वा होतुवागूण्या करि इ  
ति शेषः। देवताओं को बुला और पूजि दावग्रेरधिकारी होव माहवनी  
यस्त्वेण हविर्ग्रहणं चात एव स्तूयते ॥८॥

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ २॥ इहा वह । उप य  
र्त्तु हविश्चनः ॥८॥

गाय आग्नेयी मैधा तिथि दृष्टा। हे पावक हे दीप्तिमन् हे आग्ने देव  
ताओं को इस हमारे यज्ञ में बुला और यज्ञ समीप में हमारा हवि देव  
ताओं को प्राप्त करि ॥८॥

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षाम नुरुचः उषसो नमा  
नुना । तूर्वेन्न यामन्ने तशस्य नूरणः आ यो घृणे न तत्  
षाणोऽअजरः ॥१०॥

जगती भरद्वाज दृष्टा। जो अग्नि पृथिवी विषे शोममान है। किस कृ  
पा सामर्थ्य कि तिस सामर्थ्य वा दीप्ति से। कैसी कृपा कि पावयित्री नि  
तयन्ती चेतयन्ती वा चित करने वाली तिस दृढ चय करने वाली से।  
रोचने दृष्टान्तः जैसे उष्ण कालाः भानु करि स्वप्रकाशेन रोचें हैं तद्वत्

+ दी.प्र.म.न.प.१२५.

किं च जो अग्नि घृणि + दीप्ति करिके समन्तात् निश्चित शोभता है  
इत्यनुषङ्गः नकारश्चार्थः। किं कुर्वन् किं गमन कुशल अश्वकेया  
मन् नियामक युद्ध में जैसे पराये बलों को हिंसा करता वायामन् श  
ब्दः कर्मवाचकः तु अनर्थकम् कर्म विषे त्वरमाण जैसे अश्वके र  
मणीय पद में अध्वर्यु करि आहित है। तथा तदृषाणः पूर्णाहुतिकाप्य  
सा। जरा रहित। अर्थात् जो ऐसा अग्नितिसे कृषते हैं ॥१०॥

अ० २ नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे। अन्यांस्तेऽ  
अस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यर्हेशिवो भव ॥११॥

का० १८.३.५. हिरण्य शकल सहित सुकस्य आज्य दधि मधु घृत कुश  
मुष्टि युता पात्री इन दोनों को लेके अध्वर्यु किन्त्याग्नि को आरोहण  
करे परन्तु ब्रह्मा यजमान अग्नि से दक्षिण बैठें ॥ आग्नेयी वृहती  
लोपा मुद्रा दृष्टा। हे अग्ने तेरे शोचन हेतु तेज के अर्थ नमोऽस्तु। कैसे  
तेज कि हरता है सवरसों को तिस के अर्थ। तेरे पदार्थ प्रकाशक तेज  
के अर्थ नमोऽस्तु। अन्य दुक्तम् ॥११॥

नृषदे वेदेषुषदे वेद्वर्हिषदे वेद्वेन सदेवेदस्वर्विदे वे-

द ॥१२॥ न-द। अ-अ-द। इ-ब-द। उ-व-द। ऋ-स्व-द। लृ-० ॥१२॥ १२।

का० १८.३.६. आरोहण किये पीछे स्वय मातृण विषे पञ्च गृहीत  
को हो में पञ्च मन्त्रों से नाभि वदिति दक्षिणांस ओणि द्वयो तरांस म  
ध्य में हिरण्य को विनदेरेव ॥ पञ्चाग्नेयानि दे-बृ० १५. दे-पं० २.३.४॥  
मनुष्यों में जठराग्निरूप करि तिष्ठे है वोह नृषत् प्राण तिस के अर्थ  
वेद हविर्दत्तम् वेद शब्दः स्वाहाकारार्थः + ॥१॥ जलों विषे और्वरू

+ प्रत्यक्ष वेतद्य स्वाहाकार इत्यादि शत० ४.२.१.७. श्रुतेः

पेण सीदति ॥२॥ बर्हिषि यज्ञोंमें आहवनीयादिरूपेण तिष्ठे है-  
वा ओषधियोंमें ॥३॥ वन वृक्षसमूह तहां दावाग्नि रूपेण तिष्ठति ॥४॥  
स्वः स्वर्ग में आदित्य रूपेण विद्यते अर्थात् सीदति यद्वा स्वः आदि-  
त्यं विन्दते तस्मै बषडस्तु ॥५॥ १२॥

ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियान् संवत्सरीणमुप भाग  
मासते । अहुता दो हविषो यज्ञेऽस्मिन्त्स्यं पिबन्तु  
मधुनो घृतस्य ॥१३॥

का. १८.३.७. पात्र में सिक्त दधि मधु घृत को कुशाओं से परिशि-  
त्सहित सपक्ष पुच्छ अग्नि को भीतर और बाहिर प्रोक्षण करे दो ऋ-  
चाओं करिके ॥ जगत्यो प्राणदेवत्ये । ते प्राणरूपा देवा इस चयन ल-  
क्षण यज्ञ में मधु दधि घृत रूप हवि के भाग को आप ही पीवें अर्थात्  
स्वाहाकार समर्पण विना स्वयमेव स्वीकरें । कैसे हैं ते कि अहुतादः अ-  
हुत को भक्षण करते हैं अन्य देवता अग्नि हुत को भक्षण करते हैं परन्तु  
प्राणाः साक्षात् अन्न को खाते हैं इस हेतु अहुताद हैं । ते कौन कि सं-  
वत्सरीण भाग को उपासते हैं संवत्सरं हि भृत्वाग्निश्चीयते इत्या-  
भिप्रायः ॥ कैसे हैं यज्ञार्ह देवताओं के मध्य यज्ञ योग्य दीप्यमान हैं ॥१३॥

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुराणतारोऽस्म-  
स्य । येभ्यो न ऋते पर्वते धाम किं च न नते दिवो न पृ-  
थिव्या अधि स्नुषु ॥१४॥

जे प्राणादिक देवता इन्द्रादिक देवताओं के विषे देवत्व की प्राप्त हुए इ-  
न्द्रादीनामपि प्राणादेवाः ॥ जे इस इस ब्रह्म (जीव) के आगे में चलते हैं ॥

† प्राण हि प्राणिनां पुरः सराः अपमग्निर्ब्रह्म तस्यैते पुराणतार इति ४.२.१.१५. श्रुतेः ।

स्वः स्वर्ग में आदित्य रूपेण विद्यते अर्थात् सीदति यद्वा स्वः आदि-  
त्यं विन्दते तस्मै बषडस्तु ॥५॥ १२॥  
ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियान् संवत्सरीणमुप भाग  
मासते । अहुता दो हविषो यज्ञेऽस्मिन्त्स्यं पिबन्तु  
मधुनो घृतस्य ॥१३॥  
का. १८.३.७. पात्र में सिक्त दधि मधु घृत को कुशाओं से परिशि-  
त्सहित सपक्ष पुच्छ अग्नि को भीतर और बाहिर प्रोक्षण करे दो ऋ-  
चाओं करिके ॥ जगत्यो प्राणदेवत्ये । ते प्राणरूपा देवा इस चयन ल-  
क्षण यज्ञ में मधु दधि घृत रूप हवि के भाग को आप ही पीवें अर्थात्  
स्वाहाकार समर्पण विना स्वयमेव स्वीकरें । कैसे हैं ते कि अहुतादः अ-  
हुत को भक्षण करते हैं अन्य देवता अग्नि हुत को भक्षण करते हैं परन्तु  
प्राणाः साक्षात् अन्न को खाते हैं इस हेतु अहुताद हैं । ते कौन कि सं-  
वत्सरीण भाग को उपासते हैं संवत्सरं हि भृत्वाग्निश्चीयते इत्या-  
भिप्रायः ॥ कैसे हैं यज्ञार्ह देवताओं के मध्य यज्ञ योग्य दीप्यमान हैं ॥१३॥  
ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुराणतारोऽस्म-  
स्य । येभ्यो न ऋते पर्वते धाम किं च न नते दिवो न पृ-  
थिव्या अधि स्नुषु ॥१४॥  
जे प्राणादिक देवता इन्द्रादिक देवताओं के विषे देवत्व की प्राप्त हुए इ-  
न्द्रादीनामपि प्राणादेवाः ॥ जे इस इस ब्रह्म (जीव) के आगे में चलते हैं ॥

प्राणों विना चीयमात अग्नि वहने को नहीं समर्थ होता। किंचजि  
न प्राणों विना शरीर कोई भी चेष्टा नहीं करता। इत्यम्भूता जे प्राणा  
देवा ते पुनः कहां हैं तत्राह तेषाण रूपा देवा स्वर्गमें नहीं हैं पृथिवी  
में ते नहीं हैं + यद्वा दिवी के प्रदेशों में न पृथिवी के प्रदेशों में ना किंत  
हि कि स्तुषु अधि स्तु प्रक्षरणे-स्रोताओं-चक्षुरादिकों प्राणायतनों  
में ते अधिश्रत्य वर्ते हैं तेषूपलभ्यन्ते तेषां स विशिष्टः प्रदेशः ॥१४॥  
प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः। अन्यै  
स्तैः अस्मत्तेयन्तु हेतयः पावकोऽस्मभ्यं ठं शिवो-  
भव ॥१५॥

का० १८.३.८. शोक्षण के अनन्तर अग्नि से उत्तरे ॥ अग्निदेवत्या  
पङ्क्तिः हृहती वा। हे अग्ने तेरी हेतयः (ज्वाला) हमसे अन्यो को तपें और तू  
हमारे अर्थ पावक और शिव हो। कैसा है तू कि प्राणों को यजमान-  
के अर्थ देता है अपान को दे० व्यान सर्वशरीर संचारी वायु को दे०  
वर्च बल को दे० धन को देता है ॥१५॥

अ० ३ अग्निस्तिग्ने न शोचिषा यासद्विश्वं न्युत्रिणम्। अग्नि  
र्न वनते रयिम् ॥१६॥

का० १८.३.१२. शाला में आकर पञ्चगृहीत आज्य को शालाद्वारा  
य अग्नि में होमें ॥ आग्नेयी गायत्री भरद्वाजहृष्टा। अग्नि सवराक्ष  
स को निरन्तर क्षीण करें। किस करिके कि तीक्ष्ण तेज से। किंच अ  
ग्नि हमारे अर्थ धन को देवे ॥१६॥

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्व हस्विर्होता न्यसी दत्तिता



नः॥ स आसिषा इविणमिच्छमानः प्रथमं हवरां ॥ १० ॥  
 आविवेश ॥ १० ॥

का० १०३०१२ पञ्चगृहीत होम के अनन्तर षोडश गृहीत आज्य  
 को जुह्वामें करिके जिसके अर्ध को अनुवाक शेष यद्रमा विश्वेत्या  
 रभ्य विहव्या यथा सदित्यन्तोऽष्टर्च करि शालाद्वारीमें ही होमें ॥ भु  
 वन पुत्र विश्व कर्म दृष्टा विश्व कर्म देवत्याः षोडश त्रिष्टुभः ॥ प्रजाः  
 संहरन्तं सृजन्तं विश्व कर्मणं पश्यन्त्यभिः कथयति । जो विश्व कर्म दृ  
 न सब भूत जातों के संहार किये सन् स्वयं स्थित होता हुआ । कैसा है कि  
 ऋषिः अतीन्द्रिय दृष्टा सर्वज्ञ होता संहार रूप होम का कर्ता । हम  
 प्राणियों का पिता जनक अर्थात् जो परमेश्वर प्रलय कालमें सब  
 लोकों को संहार करिके स्वयं स्थितवान् । वोह तादृश परमेश्वर आ  
 शिषाभिलाषणवद्भूत होंउं इत्येवं रूपेण पुनः सिसृक्षा रूपेण जग  
 द्रूप धन को अपेक्षमाणः अवगन् अभिव्यक्त उपाधिओं को जीव  
 रूपेण प्रविष्ट हुआ । कैसा कि प्रथम एक अद्वितीय स्वरूप को आच्छाद  
 न करता प्रविष्ट हुआ ।

किंस्विदा सो दधिष्ठान भारम्भेण कतमत्स्वत्कथासीत् ।  
 यतो भूमिं जनयन् विश्व कर्मा विधाभारो न्महिना वि  
 श्व चक्षाः ॥ १० ॥

अथेश्वरो यथा जगत्सृजति तत्सञ्ज्ञोत्तराभ्यामाह । लोकमें जैसे घटा  
 दिब नाने की इच्छा करता कुलाल (कुम्हार) गृहादिक स्थान को अधि  
 ष्ठित हो मृद्रूप आरम्भ कहव्य और चक्रादि उपयोगी वस्तु करि घ

\* सोऽकोमयत बहुभ्यां प्रजापेयसतपोऽतप्यत स तपसा द्वा इदं सर्वमसृजत यदिदं किंच तत्सृष्टा तदेवा  
 नु प्राविशदित्यादि श्रुतेः ॥

न किंच न भिष्यत सदेव  
 एवाग्र आसीन्नो य  
 आत्मा वाऽदृष्टमेक एवाग्र  
 तया चापनिष्ठः आसीदेकमेवाहिती यमित्याद्याः  
 सोम्यदमाग्र आसीदेकमेवाहिती यमित्याद्याः

रादिक निष्पादन करता है ईश्वरस्य तदाक्षिप्यते। स्वदिति वितर्के-  
द्यावा भूमी सृजते हुए विश्व कर्मा का अधिष्ठान क्या होता हुआ क्यों  
कि विना स्थान के कुछ भी नहीं कर सकते। स्वदिति वितर्के आरम्भण  
आरम्भ करते हैं जिस से बौह उपादान कारण जैसे मृदा घटादिकों-  
का और कथा (क्रिया) किस प्रकार थी अर्थात् निमित्त कारण भी क्या  
था दण्ड चक्रसलिल सूत्रादिकों से घटादिक निष्पादन होते हैं तत्स्था-  
नीय क्या था। कि जिस काल में विश्व कर्मा भूमि और स्वर्ग को उत्पन्न  
करते सन् अपनी सामर्थ्य करके द्यावा पृथिवी आछादित करता हुआ  
आ। कैसे है कि विश्व चक्षाः सर्वदृष्टा अतीत आगत वर्तमान का  
लों का युगपद् दृष्टा अर्थात् अनन्यशक्तिः ॥१८॥

विश्वतश्चरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्या-  
त्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावा भूमी जनयन्द-  
व एकः ॥१९॥

उत्तर माह। एकः (असहायः) देवः (विश्व कर्मा) द्यावा भूमी उत्पन्न क-  
रते बाहुस्थानीयों धर्मा धर्मों से संयोग को प्राप्त होता है और पतत्रों  
(पतनशीलों) अनित्यों पञ्चभूतों से संयोग -- ना है अर्थात् धर्मा ध-  
र्मरूप निमित्तों और पञ्चभूतरूप उपादानों से साधना नन्तर वि-  
नैव सब को सृजता है यद्वा धर्मा धर्माभ्यां भूतेश्च संधमति संगम्य  
ति जीवान्। कैसे है कि सर्वतः हैं चक्षुः जिसकी। सर्वतो मुख हैं जि-  
सके। सर्वतो भुजा हैं जि० और सर्वतो चरण जि० परमेश्वरस्य स्त्री  
प्राणत्मकत्वाद्यस्य यस्य प्राणिनो ये चक्षुरादयस्ते तदुपाधिकस्य

परमेश्वरस्यैवेति सर्वत्र चक्षुर्गदयः सम्पद्यन्त इत्यर्थः ॥१४॥

किञ्च सिद्धं कञ्च स वृक्ष आसु यतो द्यावा पृथिवी निष्ठत  
क्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छते दुतद्य दध्यतिष्ठद्भुवेना  
निधारयन् ॥२०॥

पुनरपि प्रश्नः । स्वित्ति बितर्के वोह वन कहांथा और वोह वृक्ष कहां  
हुआथा कि जिस वृक्ष और वन से विश्व कर्म द्यावा पृथिवी गठता-  
छोलता हुआ नहीं तैसा वृक्ष और वन सम्भव है । अर्थात् लोक में गृ-  
हादि निर्माण को इच्छा करता किसी वन में किसी वृक्ष को छेदि कर  
तक्षाणादि से स्तम्भादिकों को करता है यहां वोह नहीं है । किंच हे विद्वां-  
मः मनसा पर्या लोच्य तदपि तुमको पृच्छता है वोह क्या कि भुवनों को  
धारण करते जिस स्थान को स्थित हुआथा तदपि पृच्छत । कुम्भकाण-  
दि गृहादिक को अधिष्ठित होके घटादि करता है तदधिष्ठानमपि पृ-  
च्छत ऊर्णनाभि वदय मात्मारम्भण इति भावः ॥ अस्योत्तरं तेतिरी-  
ये कृष्णाय जु ब्राह्मणे २ काण्डे ७ प्रपाठके ६७ अनुवाकयो सूचित  
म् माध्यन्दिनी यायां नास्ति ॥ ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत् ६ यतो  
द्यावा पृथिवी निष्ठ तक्षुः । मनीषिणो मनसा विब्रवीमिव ॥ ब्रह्माध्य-  
तिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥७॥ २०॥

याते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वक-  
र्मनुतेमा । शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं य-  
जस्व तन्व वृधानः ॥२१॥

हे विश्व कर्मन् हे हविलक्षणान्नवान् तेरेजे उत्कृष्ट स्थान और जे-

छोटे स्थान मध्यमस्थान इन्हें सखिओं (यजमानों) के अर्थ दे। कउ  
पकार इति चेत् यजमान संबंधिनी हविके उपस्थित हुए सति अपने  
शरीर को बढा कर आपही पूजि। हम पूजा करते हैं यह कहिने को  
असमर्थ हैं मनुष्य कहां तुम्हें पूजने को समर्थ है इस हेतु कहिते  
हैं कि आपही पूजि ॥ २१ ॥

विश्वकर्मन् हविषा वा वृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुतथा  
म्। मुह्यन्त्वन्येऽभितः सपत्नी इहास्माकं मधवा सूरि  
रिस्तु ॥ २२ ॥

हैं विश्वकर्मन् मेरे दिये सैं हर्ष हुए सन् पृथिव्याश्रित भूतों (प्राणियों) और  
रथुलोकाश्रित भूतों को मेरे अनुग्रह के अर्थ आप पूजि। किंचितेरे प्रसा  
द सैं अन्य स्थान में स्थित प्राचु मोह को प्राप्त हों वें किंच इस यज्ञ में  
इन्द्र हमारे को सूरिः आत्मज्ञानोपदेष्टा हो ॥ २२ ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माण मृतये मनोजुवं वाजिऽअद्या हु  
वेम। सनो विश्वानि हवैनानि जोषद्विष्व शम्भूरवे  
साधुकर्मा ॥ २३ ॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन चातारमिन्द्रमकृणोरव्य  
म्। तस्मै विष्ठाः समन्मन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो  
यथासत् ॥ २४ ॥

दे ऋचौ व्याख्याते ७४५. ४६. ॥ २३ ॥ २४ ॥

अ० ४ चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेनेऽजन्तमन्मा  
ने। यदेदन्ता अददहन्त पूर्वे आदिह्यावा पृथिवी

अप्रयेताम् ॥ २५ ॥

का० १८.३.१३. अष्टर्चेन षोडश गृहीत के अपरार्धको होमें ॥ यदा इ  
त-यदैव पहिलें वसिष्ठादिक मुनिद्यावा भूमिके अन्तों को हटी करते  
हुए। द्यावा पृथिवी की हटता के अनन्तर मेव द्यावा पृथिवी को पृथु करते  
हुए। तदा द्यावा पृथिवी के प्रथनानन्तर चक्षुरादिक इन्द्रियों का पा  
लक विश्वकर्मा मन से धीर हो निश्चित इन द्यावा पृथिवी ओं प्रति उद्  
क को उत्पन्न करता हटता के अर्थ दृष्टि करता हुआ। क्या कर के कि  
नम्र मान द्यावा पृथिवी को थांभ करि इति शेषः अर्थात् जगत के अ  
नुग्रह के अर्थ द्यावा पृथिवी को थांभ के ॥ २५ ॥

विश्वकर्मा विमना आहिहाया धाता विधाता परमोत संहक्  
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन्पर एकं  
माहुः ॥ २६ ॥

जिस लोक में सप्त ऋषि विश्वकर्मा सहित एकत्व को प्राप्त हैं तिस लोक में  
ते पुरुष इष्टों (अभिलषित वस्तुओं) इष्ट (आहुति रसभूत अन्न) सहित भ  
ले प्रकार पुष्ट होते हैं अर्थात् ते विश्वकर्मा लोक में इष्ट भोगों को प्राप्त  
होते हैं। ते कौन कि जिन्हें का विश्वकर्मा सम्यग्द्रष्टा अर्थात् विश्वकर्  
माद्रष्टा सुखी हों वे। कैसा है विश्वकर्मा कि विमना सर्व कर्मज्ञ। और  
नभोव द्यापकः वा संहर्ता धाता (पोष्टा) स्थितिकर्ता। उत्पादक। स  
वों से उत्कृष्ट। एवं विधो विश्वकर्मा येषां द्रष्टा ते मुच्यन्ते भक्तानेव  
पश्यति तस्माद्भक्तिः कार्येत्यर्थः ॥ २६ ॥

योनः पिता जनिता यो विधाता धमानि वेद भुवनानि वि

आ। यो देवानां नामधा एक एव तर्हं संप्रश्नं भुवना य-  
न्त्यन्या ॥ २७ ॥

जो विश्व कर्मा हमारा पालक उत्पादक और जो विशेषेण धारक :  
सेतु : और जो सब स्थानों और भूतजातों को जानता है । और जो एक (अ-  
द्वितीय एव सन् देवताओं के नाम करता है + तस्मात् अन्य भूतजा-  
त संप्रश्न (भले प्रकार प्रश्न) जिसका क्रियामें जैसे तैसे प्रलय काल  
में तिस विश्व कर्मा के एकत्व को प्राप्त होते हैं यद्वा संप्रश्न भले प्रका-  
र अपने अधिकार को प्रह्विकर भूतजात चलते हैं स एव स्वाधिका-  
रों में नियुक्त करता है इति भावः ॥ २७ ॥

तः आर्यं जन्तुं द्रविणार्हं समस्माः ऋषयः पूर्वं जरितारो  
न भूना । असूर्ते रजसि नियन्ते ये भूतानि समक्रे एव  
न्निमानि ॥ २८ ॥

ते पूर्व विश्व कर्म करि सृजे वसिष्ठादिक ऋषि इस भूतग्राम के अर्थ  
द्रविण जल लक्षण वा भोग जात को आभिमुख्येन देते हैं । कैसे दे-  
ते हैं कि न भूना न बाहुल्य करि किंतु युक्ति अर्थात् काम वर्षित्व से  
कैसे हैं कि जरितारः स्तोतारः । ते कौन कि जे ऋषि इन भूतों को सृ-  
जते हैं । अर्थात् तिन्हें जल देकर जिलाते हैं । कैसे हैं कि असूर्ते, सप्तद-  
शावयबलिङ्ग शरीर करि ईरित । तथा अन्तरिक्ष लोक में स्थित ।  
कैसे अन्तरिक्ष कि सूर्ते, विस्तीर्णे ॥ २८ ॥

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवे भिरसुरैर्य दस्ति ।  
कथं स्विहर्भं प्रथमं दध्रः आपो यत्र देवाः समपश्यन्त





इहानी मुपदिशति। जिसविश्वकमाने ये भूतजात उत्पन्न कियेति से हे जीवों तुमने न जाना। ननु में देवदत्त हूं यज्ञदत्त हूं यह हमने अपने को जाना इति चेत् न नहीं में प्रत्यय गम्य जीव रूप पर मे श्वर तत्त्व हूं किंतु हम तुम प्रत्यय गम्य जीवों के अभ्यन्तर वास्तव रूप अन्य है मुरु प्रत्यय से अतिरिक्त सर्वावदान वेद्य ईश्वर तत्त्व विद्यमान है। जीवरूपवत् वोह कहीं भी न जाना इति चेत् तुम ईदृश प्रवर्त हूँ इस हेतु न जाना। कैसे हो कि नीहार (कुहर) सदृश अज्ञान करिष्वावृत्त से न जाना जैसे नीहार न अत्यन्त असत् दृष्टिके आवरकत्व से और न अत्यन्त सत् काष्ठ पाषाणादिवत् रोध करने समर्थ अयोग्यत्व से एवं अज्ञान भी नात्यन्त मसत् ईश्वर तत्त्वावरकत्वात् नापि सत् बोधमात्र निवर्त्यत्वात् ईदृश अनिवेचनीय अज्ञान करि तुम सब जीव प्रवर्त हूँ। न केवल नीहार और जल्पन अर्थात् में देवता हूं मनुष्य हूं मेरा यह घर क्षेत्र इत्यादि अमृत जल्पन से व्याप्त हूँ। किंच असु तृपः कोई क प्रकार करि प्राणों को भरि पोषि कै तितने ही से तत्र ननु परमेश्वर तत्त्व विचारने को प्रवर्त हैं। नहीं हैं केवल ऐहिक भोग से तृप्त किंतु उक्थ शासः परलोक भोग संपादन को यज्ञों में शस्त्र स्तुति करते हैं अर्थात् तुम ऐहिक भोग प्रवृत्तों अज्ञान मिथ्या ज्ञान पराधीनों का तत्त्व ज्ञान नहीं हैं ॥ ३१ ॥

विश्वकर्मा सृजनिष्ठ देव आदि द्वन्द्ववोऽभवाद् द्वितीयः  
तृतीयः पिता जनितो षष्ठीनामपांगर्भे व्युद्घात्पुरुषा ॥ ३२ ॥

ब्रह्माण्डमध्यगता नामुत्पत्तिरुच्यते। ब्रह्माण्डमध्यमें विश्वकर्मो देवति  
र्यगादि जगद्देवकर्ता सत्यलोकवासी चतुर्मुखदेव। आदित्यान्तरपुरु  
षरूपेण उत्पन्न हुआ। अनन्तर मव तिस अपेक्षा कर दूसरे गन्धर्व  
वाचा वा पृथिवी को धारण करता अग्नि अथवा गानात् गन्धर्व +  
उत्पन्न हुआ। पिता पालयिता ओषधी ओंका उत्पादक पर्जन्य  
पूर्वोक्त दोनों की अपेक्षा से तीसरे हुआ सो पर्जन्य उत्पन्न होकर आहु  
ति परिणाम भूतों के गर्भको व्यदधात् धारण करता वा करता है कैसे ग  
र्भको कि बहूतों के रक्षक वा बहुत प्रकार ॥३३॥ वैश्वकर्मणोमः  
समाप्तः ॥

अयोः एता  
हरिनिवासि  
पृथिव्ये प्रे  
मनेः सत्त्वो  
मन्यमानो  
गायदित्या  
दिश्रुतेः।

अ० ५ आशुः शिशोः नृषभो नभीमो घनाघनः क्षोभाणश्चर्ष  
णीनाम्। मङ्गलन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अज  
यत्साकमिन्द्रः ॥३३॥

का० ११०१०४०१०० अग्नि चयन में इध्मको दीपन करि निति प्र  
ति नीयमान आहवनीय विषे ब्रह्मा प्रतिरथ सूक्तकी द्वादशक  
चाएँ जपता रक्षिणतः चलै ॥ अप्रति रथदृष्टा इन्द्रदेवत्या द्वाद  
विष्टुभः। इन्द्र शतसंख्याकाः शत्रु सेनाः एकप्रयत्न करिके ही जीत  
ता है। कैसे है इन्द्र कि शीघ्रगामी। वज्रको तीक्ष्ण करता है। वृषभ  
इव भयंकरः। घनाघनः (शत्रुओं का अतिशयेन घातक वाहन होने  
तिवक्ता वा वृष्टिकर्तृ मेघरूपामनुष्यों का चलानेवाला। संक्रन्दनः  
परभयहेतु ध्वनि जिसकी वा शत्रुओं का समाह्वान। अनिमिषः न  
हीं है निमेष जिसके वोह यद्वा अत्यन्त सावधान। एकवीरः अन्य

निरपेक्षं शत्रुओं को एक एव जेतं समर्थः ॥ ३३ ॥

संकन्देनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्श्ववनेन धृष्णुना  
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषु हस्तेन वृषा ॥ ३४ ॥

हे योद्धा मनुष्य औ इन्द्र करिके तुम तिस पणयेवल को जीतौ (वशीकरौ)  
और वशी करिके विनाश करौ। कैसे इन्द्र कि शब्दकारी। एक चित्त।  
जयनशील। युद्धकारी। अजयी। भीतिरहित वाणाद्या युधो पेत।  
कामों के वर्षक ॥ ३४ ॥

स इषु हस्तेः स निषङ्गिभिर्वशी सत्स्रष्टा स युध इ  
न्द्रो गणेन। सर्षु स्रष्टु जित्सो मया बाहु शार्धु ग्रधन्वा  
प्रति हिताभिरस्ता ॥ ३५ ॥

बौह इन्द्र हमें रक्षा करे इति शेषः। युद्ध के अर्थ संसर्गकर्ता। वशी-  
रिपुओं को वश करता वाजनप्रिय वा स्वतन्त्र वा निगृहीतारिषड्  
र्गवा ईश्वर। गणेन रिपु समूह के साथ युद्ध करता है। युद्ध के अर्थ  
संगतरिपुओं को जीतता है। यजमानों के यागमें सोमपानकर्ता। बा-  
हुवलोपेत अर्थात् संयोगितनिरपेक्ष। अपने धनुष करि बाणों से क्षे-  
प्ता अर्थात् रिपुनाशयिता ॥ ३५ ॥

बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षो हामित्रा नपबाधमानः। प्र  
भञ्जन्तेनाः प्रमृणो युधा जयन्न्स्माकं मेध्यविता र-  
थानाम् ॥ ३६ ॥

हे वृस्पते + तू रथ करिके सर्वतः चलि और चलकर हमारे रथों को  
रक्षक हो। कैसे है तू कि राक्षसों को मारने वाला शत्रुओं को पीछे

\* बृहस्पतिरिन्द्रः वाग्वै ब्रह्मती तस्या एवमिति। व्याकरण कृते तादिन्द्रस्य वाक्यतित्वमिन्द्रस्य पुरोहि-  
तत्वेन वा बृहस्पतिरेव स्मृतम्।

देता परकीया सेना को भग्न करता । हिंसकों को जीतता ॥ ३६ ॥

बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।  
अभिबीरोऽभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमार्तिष्ठ-  
गोवित् ॥ ३७ ॥

हे इन्द्र तू जयन शील रथ को आरोहण करि । कैसा है तू कि पराये बल  
को विशेषेण जानता है यद्वा बल करि जानिये है । स्थविरः पुरातन  
सर्वानु शासक । शूर । बलवान् । अन्नवान् । शत्रुओं को अभिभवन् ।  
युद्धों में क्रूर । अभितः शूर हैं जिसके । अभितः परिचारिक प्राणी हैं  
जिसके । बल से उत्पन्न । स्तुति गिरा को जानता ॥ ३७ ॥

गोत्रमिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमन्म प्रमृणन्तमोजे  
सा । इमहं सजाता अनु वीर्यध्वमिन्द्रं सरवायोऽअनु  
सर्धं रभध्वम् ॥ ३८ ॥

हे सजाताः अथोत् समान है जन्म जिन्हें का ते समान जन्मानः स  
रवायो (देवताओं) इस इन्द्र को वीरकर्मकुर्वाणं अनुगम्य वीरकर्म  
करि प्रोत्साहयत । वेग कुर्वाणं करो । कैसे इन्द्र को कि गोत्रमिदं  
गोत्र (असुरकुल) को भेदता यद्वा गा जल से त्रायते गोत्र (मेघ) ति  
स के भेत्तार चाचा को जानने वाले । वज्रबाहुओं में जिसके । संग्रामको  
जीतने वाले । बल करि शत्रुओं को हिंसा करते ॥ ३८ ॥

अभि गोत्राणि सहसा गहमानोऽद्यो वीरः शतमन्युरि  
न्द्रः । दुश्श्ववनः पृतना षाड्युध्योऽस्माकं सेना अवतु  
प्र युत्सु ॥ ३९ ॥

न सत्यसुजात इन्द्र बलः स्यात्

इन्द्र युद्ध विषे हमारी सेना प्रकर्षण रक्षा करे। कैसा है इन्द्र कि गोत्रों  
असुर कुलों वा मेघ बृन्दों को अभिगाहमानः। दया रहित। विक्रान्त  
शतमन्युः असंख्य क्रोध जिसका वाशतयज्ञ। अप्रच्यव्यः। संग्राम  
को अभिभव करता। अयुध्यः योद्धुं अप्राक्यः नास्ति युध्यः  
प्रतियोधास्येति वा ॥३६॥

इन्द्र आसा नेता बृहस्पतिर्दक्षिण यज्ञः पुर एतु सो-  
मेः। देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो य-  
न्वग्रम् ॥४०॥

इन्द्र और बृहस्पति इन देवसेनाओं का नेता प्रणेता हो इति शेषः  
यज्ञः (यज्ञपुरुष विष्णु) दक्षिणतः चले सोम आगे चले। मरुतदेव-  
ताओं के गणसेना के अग्रभाग में चले। कैसी देवसेनाओं के किश-  
तुओं को मर्दन करती तथा विजयमाना ॥४०॥

इन्द्रस्य वृष्णे बरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध-  
उग्रम्। महामनसां भुवनच्यवानां धीषो देवानां जय-  
ता मुदस्थात् ॥४१॥

कामवर्षने वाले इन्द्र राजा बरुण द्वापरा आदित्यों और मरुतों इन  
देवताओं का शर्ध बल-गजतुरगरथपत्यात्मक सैन्य का घोष  
जितं जितं यह शब्द उठा अर्थात् जीत जीत यह कहता इन्द्रादिसे-  
न्यसे उठा कैसे देवताओं कि महन्मन जिन्हों का अर्थात् पुद्गमे-  
स्थिरचितों। तथा भुवन (लोक) च्यावन समर्थों। विजयमानों  
का ॥४१॥



उद्धर्षय मघन्नायुधान्युत्सवनां मामकानां मनोऽथ  
सि। उद्धवहन्वाजिनां वाजिनान्युद्धथानां जयतां या  
न्तु घोषाः॥४२॥

हे मघवन् (धनवन्) इन्द्र आयुधों को उद्धतहर्षाणि करि और मेरे प्रा  
णियों के मन हर्षयुक्त करि। हे वृत्रहन् (वैरिघातिन्) अश्वों के शीघ्र  
गमन उत्कृष्ट करि। किंच विजय मान रथों के शब्द प्रसरें॥४२॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता ज  
यन्तु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तस्मां॥३॥ उ देवा अव  
ता हवेषु॥४३॥

शत्रुओं की ध्वजाओं के संयुक्त होने में इन्द्र हमारा रक्षक हो इतना  
षः। जे हमारे वाण प्रयुक्त हैं ते पर सैन्यों को जीतें। हमारे जे शूर हैं ते प  
राये भटों से उत्कृष्ट हों। हे देवताओं हवों वियं हमें रक्षा करो॥४३॥

अमीषां चित्तं प्रति लोभयन्ती गृहाणान्यपि परेहि।  
अभि प्रेहि निर्दह हत्सु शोकै रन्ध्रेना मित्रा स्तमसा स  
चन्ताम्॥४४॥

हे अश्वे अपगमन करने वाली सुख और प्राणों को इन्द्र सेना संबंधि  
नी शत्रुओं के चित्तों को मोह करने वाली शत्रु गात्रों को ग्रहण  
करि फिरि अन्यरिपुओं के ग्रहण को शत्रु संघ प्रति जाके तिन्हें के  
हृदयों को शोक (धन पुत्र नाशानि निमित्त) से जला। किंच शत्रु  
लोग गाढा धकार करि संयुक्त हो॥४४॥ द्वादशैन्द्र्यः समाप्ताः॥

अवसृष्टा परापत शरव्यं ब्रह्मसर्गशिते। गच्छामित्रान्

पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः॥४५॥

इत ऋक् तुष्टयस्य विनियोगः कात्यायनेनोक्तः॥ इयं मिषु देवत्या  
नुष्टुप्। हे शरव्ये (हिंसिका शरमयी हेति) ब्राह्मण (मन्त्र) करिके तीक्ष्ण  
कीर्द्धे हम करि छोड़ी सहसा पराई सैन्य विषे गिरि। और गिरि करि  
शत्रुओं को प्राप्त हो और प्राप्त होके शत्रु शरीरों में प्रवेश करि शत्रुओं  
के मध्य में किसी पुरुष को मत छोड़ि अर्थात् सब को मारि॥४५॥

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु। उग्रा वः सन्तु बा  
हवोऽनाधृष्या यथासंथ॥४६॥

योद्ध देवत्यानुष्टुप् योद्धन्स्तीति। हे नर (हमारे योद्धा) ओ तुम पराई  
सैन्य प्रति प्रकर्षण जाओ तहां विजय पाओ इन्द्र तुम्हारे अर्थ सुख  
देवें। किंच जैसै तुम किसी से तिरस्कार किये न जाओ। तैसै भुज दण्ड  
उग्रा युध हो॥४६॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न औजसा स्पर्ध  
माना। तां गृह्णत तमसापव्रतेन यथामीऽअन्योऽअ  
न्यं न जानन्॥४७॥

मरु देवत्या त्रिष्टुप्। हे मरुत ओजो (प्रसिद्धा) सेना इन शत्रुओं की ह  
मारे को समन्तात् आती है। कैसी कि बल करिके स्पर्धमाना ति  
स सेना को अंधकार करिके तुम संवृत करो। तैसै संवृत करे जैसै  
निक लोग परस्पर न जानें। कैसे तय करिके कि जिस करि व्याप्तों  
का कर्म नाश हो अर्थात् तैसै तमसै संवृत करो॥४७॥

यत्र वाणाः सम्पतन्ति कुमार विप्रिरवा इव। तत्र इ

न्त्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतुर्विधा हाशर्म यच्छतु ॥४८॥

विश्वामित्रो  
वैपः

इन्द्र बृहस्पत्यदिति देवत्या पाङ्कुरष्टाक्षरपञ्चपादा। जिस युद्ध में शत्रु युक्त बाण दूधर उधर हो गिरते हैं। तत्र दृष्टान्तः कुमार विशिखा इव शिखा रहित मुण्डित मुण्ड विकीर्ण कवचवा अपि बालक चपल होकर जैसे दूधर उधर चलते हैं तद्वत्। तिसयुद्ध में इन्द्र हमारे अर्ध विजयोत्थ सुखदेव। के साथ है इन्द्र कि बृहस्पति बड़े मन्त्रों का पालक विजयोचित मन्त्रों का जानने वाला। अदिति नहीं है खण्डन जिसका अखण्डित शक्ति। सब शत्रुओं का हन्ता वो ह शर्म देवें। यद्वा तिसयुद्ध में इन्द्र बृहस्पति देवगुरु और अदिति इन्द्रमाता सब दिनों में सर्वदा सुख देवें ॥४८॥

विश्वामित्रो  
वैपः

मर्माणि ते वर्मणं हृदयामि सोमस्त्वा राजा मृतेनानु  
वस्ताम्। उरोर्वरीयो वरुणस्ते हृणेतु जयेन्तं त्वानु दे  
वा मदन्तु ॥४९॥

का० १३.३.१० महाव्रत याग में अध्वर्यु क्षत्रीके परिधानार्थ कवच देवें ॥ सोम वरुणदेवदेवत्या त्रिष्टुप्। हे यजमान तेरे मर्मों (जीवस्थानों) को कवच करि हृदय कर रहा हूँ। राजा (विप्रादिकों) का अधिपति सोम। मृत मरण निवारक इस कवच करि तुम्हें आह्वान करे। तथा वरुण तेरा वर्म कवच उरुतर पृथीय करे। किंच देवता तुम्हें अनुकूल हो के हर्षित वा उत्साह युक्त करें ॥४९॥

अ० ६ उदै न मुत्तरां नयाग्नेधृतेनाहुत। रायस्योपैण सठ्सृज  
प्रजया च बहुं हृधि ॥५०॥

का १८.३.१४. अशुष्का उदम्बरतरुसै उठाई रत्निमें घृतविषें स्थिताः  
 ताः प्रादेशमात्री तीनि समिधाएँ तीनि ऋचाओं करि शालाद्वारीमें हो  
 में ततोऽग्निप्रणयनमित्यर्थः ॥ तिस्रोऽनुष्टुभः प्रथमाग्निदेवत्यादि  
 तीयेन्द्रदेवत्या तृतीया लिङ्गोक्त देवता । हेष्टेनाहुत आज्यकरिके सर्व  
 तोह्यमा हेअग्ने इस यजमान को अतिशयेन ऊँचा करि । उत्कृष्टत्व-  
 ऐश्वर्य को प्राप्त करि ऐश्वर्यमेवाह धनसमृद्ध करिके जोडि और पुत्रपौ-  
 त्रादि संतति सै बडा अर्थात् बहु कुटुम्बी करि ॥ ५० ॥

इन्द्रे मं प्रतरं नय सजातानामसहृषी । समेनं वचसा सजदे  
 वानां भागदा असत् ॥ ५१ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्य युक्त इस यजमान को प्रकृष्ट ऐश्वर्य प्रति प्राप्त करि ।  
 तदेव दर्शयति कि समान जातियों के नियमन समर्थ हो । किंच इस यज-  
 मान को तेजस्वी करि । यह यजमान देवताओं का यज्ञ विषे भागप्र-  
 दाता हो ॥ ५१ ॥

यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्धया त्वम् । तस्मै देवा अ-  
 धि ब्रवन्त्यं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५२ ॥

हम ऋत्विज जिस यजमान के घरमें पुरोडाश प्रधान कर्म करें हे अ-  
 ग्ने तिस यजयजन को तू बढ़ाय । देवता तिस यजमान के अर्थ अधि-  
 क कहें यह सबसे अधिक है । और यह यजमान वैदिक कर्म का पा-  
 लक हो । यद्वा देवता ब्रह्मणस्पति और अग्नि इससे अधिक कहें ॥ ५२ ॥

उदुत्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भवशि-  
 वस्त्वर्धं सुप्रती को विभावसुः ॥ ५३ ॥

का० १८० ३१८ होता करि प्रथम ऋचाके तीनि बार पढ़ते प्रतिप्रस्था  
ता उदुत्वेति मन्त्र करि प्रदीप्त इध्म को शालाद्वारी से ऊर्ध्व उत्पाटन क  
रे ॥ व्याख्याता १२० ३११ ॥ ५३ ॥

पञ्च दिशो देवार्थं यजमवन्तु देवीरयामतिं दुर्मतिं बाध  
मानाः । रायस्योषे यजयति मा भजन्ती रायस्योषे अग्नि  
यज्ञोऽश्रियात् ॥ ५४ ॥

का० १८० ३१८ ततः ब्रह्मा होता अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता यजमान प  
ञ्च दिश इत्यादि ऋक्पञ्चक करि चित्य प्रति जावे । यज्ञाग्नि सा  
धन वादिन्यः पञ्च ऋचः आये द्वे त्रिष्टुभौ प्रथमा दिग्देवत्या । प  
ञ्च दिशः प्राची दक्षिणा प्रतीची उदीची मध्या रूपा दीप्यमाने ह  
मारे यज्ञ को रक्षा करें । कैसी हैं दिशा कि देवी हैं इन्द्र यम वरुण सो  
म ब्रह्मा संबन्धिनी हैं । तथा हमारी अमति (प्रज्ञामान्द्र) पाप विषया  
दुष्ट मति को नाश करती । तथा धन पुष्टि में यजमान को भागी कर  
ती हैं । किंच हमारा यज्ञ धन की पुष्टि में अधिक समृद्ध हो ॥ ५५ ॥

समिद्धेऽग्नौ वाधिं मामहान उक्थयन् ईक्ष्यो गृभी  
तः । तप्तं घर्मं परिगृह्या यजन्तो जीय यज्ञमयजन्त  
देवाः ॥ ५५ ॥

आग्नेयी । दीव्यन्ति व्यवहरन्ति ब्रह्मत्व होत्र आध्वर्यवादि कर्मों  
करि प्रचरते हैं देवता (ऋत्विज लोग) जब कि तप्त घर्म (प्रज्वलित प्र  
वर्ग्य) को परिशासों से लेकर पूजते हैं । और जब ऊर्ज (हविलक्षण  
अन्न) करिके पूजते । तब अग्नि में दीप्यमान होते उक्थयन् (उक्थ

मवन्तु देवार्थं यजमवन्तु देवीरयामतिं दुर्मतिं बाधमानाः । रायस्योषे यजयति मा भजन्ती रायस्योषे अग्नि यज्ञोऽश्रियात् ॥ ५४ ॥

शस्त्रहं यत्र वाहन जिसके बोह शस्त्रैरेव यज्ञोवाह्यतो कैसा है उक्थप  
त्र कि स्तुतियोग्य। अधिमामहान पूजता है देवताओं को यद्वा अधि  
क मामहान यजमान है जिस यज्ञमें ॥५५॥

देव्याय धर्त्रे जोष्टे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः। परिगृह्य  
देवा यज्ञमायन्देवा देवेभ्योऽध्वर्यन्तोऽस्थुः ॥५६॥  
अग्निदेवत्या ब्रह्मती पङ्क्तिर्वा। एवंविध अग्निके अर्थ यज्ञहै इति-  
शेषः। कैसेके अर्थ कि देवताओं के हित तिसके। धर्ता-यागद्वारा जगत के  
धारण करने वाले के। जोष्टा- हमारे दिये हविके सेवन करने वाले। कै  
सा है यज्ञ कि देवश्रीः देवताओं को हविर्दान करि सेवता। श्रीमनाः  
सेवन करते हैं इन्द्रादिकों को श्री-यजमान तिनविषे अनुग्रहरूपम  
न जिसका यद्वा श्री है मनमें जिसके श्री देने को मन जिसका शतसंख्य  
कहे पयः प्रभृति हवि जिसके बोह देवाः (ऋत्विजलोग) ऐसे यज्ञाग्निको  
गृहण करि यज्ञ प्रति प्राप्त होते हैं। किंच दीप्यमान ऋत्विज देवताओं के  
अर्थ अध्वर करने को इच्छा करते खंडे हैं ॥५६॥

वीतर्हं हविः शमितर्हं शमिता यजध्वे तुरीयो यज्ञो यत्र ह  
व्यमेति। ततो वाका आशिषो नो जुषन्ताम् ॥५७॥

हवि र्यज्ञ देवत्या ब्रह्मती। यज्ञ जिसकाल में होमने योग्य हविको प्राप्त होता  
है ततः यज्ञ से उठे वाक्य (ऋग्यजुः साम लक्षण) और आशिषा (प्रभीष्टा)  
र्थ शंसन हमें सेवन करें अर्थात् यज्ञफल हमें आलिङ्गन करें। कैसा ह  
वि कि देवताओं का दूष्ट। तथा शमिता (संस्कृत) कैसा यज्ञ कि तुरीयः (च  
तुर्थ-आदिमें यजुका जप फिर होता का ऋचापठन ब्रह्माका अप्र



तिरथ काण्डी ३३-४४ जप और ऐसेही चोथें होमहैं + यद्वा आदि में अध्वर्यु करि आश्रावण फिरि आग्नीध्र करि प्रत्याश्रावण ततः अध्वर्यु करि प्रेषः पुनः होता करि वषट्कार इति यज्ञश्चतुर्थो कल्प्यते ॥

+ अध्वर्यु पुरस्तादा  
जुषीध्रजपताया  
दि० शत० ४० २३११  
श्रुतिः  
५१॥

सूर्य रश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयां ॥ ३॥ अज  
स्रम् । तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्सम्यग्यन्विष्वामुव  
नानि गोपाः ॥ ५८॥

अग्नि देवत्या त्रिष्टुप् ज्योतिरूप अग्नि निरन्तर प्रतिदिन पूर्व दिशा में आहवनीय रूप से होमके अर्थ उदय होता है। कैसा है अग्नि कि सूर्य रश्मिः सूर्य की सी हैं किरिणें जिस की वा सूर्य रूप और रश्मि रूप। हरिकेश हरता है दारिद्र्य को सुवर्ण तद्वत् केशस्थानीय हैं ज्वाला जिस की। सविता प्राणियों को तत्तद्वापारों में प्रेरक। तिस ऐसे अग्नि की आज्ञा में पूषा षक-सूर्य उदय अस्त द्वारा करि अठता है कैसा है सूर्य कि विद्वान् अहोय त्रि प्रवर्तनात्मक अपने अधिकार को जानता। सब लोकों को भले प्रकार देरवता। गोपाः धर्म कारक्षक ॥ ५८॥

विमान एष दिवो मध्यः आस्तः आप्रिवात्रोदसी अन्तरिक्षम् । स विश्वाची रभिचष्टे घृताची रन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥ ५९॥

का० १८० ३० १५ अध्वर्यु आग्नीध्र गृह से दक्षिण दिशा में पृष्ठ्या संलग्न पृष्णि तनु वृत्त वाचित्रवर्ण पाषाण को विमान इति दो ऋचाओं से उपधान करें ॥ विश्वा वसु हृष्टा आदित्य देवत्या त्रिष्टुप् आदित्याध्यासे नाशमा स्तूयते। यह अशमा आदित्य रूपेण दिव (अन्तरिक्ष) के मध्य में ति



हवनीय के योनि (कारणभूत आग्नीध्र) को प्रविष्ट होता हुआ। यह अश्विमादिव आग्नीध्र स्थानीय अन्तरिक्ष के मध्य में स्थापित हुआ रज (जगत) के अन्त उत्पत्ति प्रलय रूप दोनों कीटियों को परमेश्वररूपेण विचक्र मे पाति रक्षति च। कैसा है अश्विमाकि उक्षा-यागद्वारेण फलाभि वर्षकः॥ बहु फलत्वात्समुद्रसदृशः॥ अरुणः पूर्वमन्त्रे सूर्य साम्यात्सूर्यसदृशः॥ सुवर्णः स्वर्गं प्रत्युज्जमनहेतुत्वात्पक्षिसदृशः॥ ६०॥

+ यदा हवनीयमुद्रय आग्नीध्राबुद्धरेदित्याहवनीययोनिस्वमाग्नीध्रस्याम्रातमन्यत्र।

इन्द्रं विश्वा अवीरुधन्तसमुद्रव्यचसंगिरः॥ रथीतमर्धं रथीनां वाजानां धंसत्यति पतिम्॥ ६१॥

का० १८०३२१ पृथ्व्य श्वा को कचिद्भुतदेशमें स्थापन करिके इन्द्रं विश्वा इत्यादि चारि ऋचाओं करि सब चयन प्रति जावे॥ व्याख्या ता १२०५६॥ ६१॥

देव हूर्यज्ञ आ च वक्षत्सु हूर्यज्ञ आ च वक्षत्। यक्ष दग्निर्देवो देवां २॥५॥ आ च वक्षत्॥ ६२॥

विधृतिदृष्टा यज्ञ देवत्यानुष्टुप्। देवताओं का आह्वाता यज्ञ देवताओं को बुलावे और पूजे। सुम्न धनपुत्र कलत्रादिसे उन्हें सुख का करने वाला यज्ञ देवता-वै। और अग्निदेवता देवता-पूजे॥ ६२॥

वाजस्य मा प्रसव उद्राभेणोदगृभीत्। अधो सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेण धर्तुः २॥५॥ अकः॥ ६३॥

इन्द्र देवत्यानुष्टुप्। वाज (अन्न) की उत्पत्ति वा अनुज्ञा उद्राभ (उद्र हण - ऊँचे ग्रहण दान) करिके मुझे उद्रहण करे। अथ नीचे हाथ करि भिक्षादि कीया विष्णुता वा अन्नाभाव करि इन्द्र मेरे शत्रु

ओं को भिक्षुक करें ॥ ६३ ॥

उद्गमं च निग्रामं च ब्रह्म देवा अवी वृधन् । अधो सप  
त्नो निन्द्राग्नी मे विषूची नान्व्यस्यताम् ॥ ६४ ॥

इन्द्राग्नि देवत्वा नुष्टुपू । देवता हम विषयक उत्कर्ष शत्रु विषयक अ  
पकर्ष ब्रह्म (त्रयी लक्षणयन्त्र विषयक) को वटावें । अथानन्तरं मेरे शत्रु  
ओं को नानागती करिके इन्द्राग्नी दोनों विनाश करें अर्थात् अ  
पुनरागमन के अर्थ पटकें ॥ ६४ ॥

अ० ७ क्रमध्व मग्निना नाकमुख्यं हस्तेषु विभ्रतः । दिवस्पृष्ट  
ं स्वर्गत्वा मिश्रा देवे भिराध्वम् ॥ ६५ ॥

का० १८०४०१ ते ऋत्विज क्रमध्वमिति पाँच ऋचा ओं से तीर्थ करि  
चित्पाग्नि को आरोहण करें ॥ आग्नेय्य नुष्टुपू । हे ऋत्विग्यजमान  
ओं तुम अग्नि (चित्य) करि स्वर्ग को आक्रमण करो । कैसे हो तुम  
कि उखाविषें संस्कृत उख्याग्नि को हाथों में धारण करते । अद्वा  
उख्याग्नि को हाथों में धारण करते अग्नि (अनेक चित्पाग्नि) स  
हित चित्त के ऊपर पैर (आरोहण) करें । फिर दिवः (अन्तरिक्ष के  
पृष्ठ स्वर्ग को जाकर देवता ओं से संयुक्त हो के बैठें ॥ ६५ ॥

प्राची मनु प्रदिशं अहि विद्वा नग्ने रग्ने पुरोऽग्निर्भवे  
ह । विश्वा आशा दीद्यानो विभाहूर्जो नोधेहि द्विपदे  
चतुष्पदे ॥ ६६ ॥

आग्नेयी त्रिष्टुपू । हे अग्ने इस लाये हुए उख्य अग्नि की प्राची प्रक  
ष्टा दिशा की लक्ष करिके तू प्रकर्षण जा । कैसे है तू कि विद्वान् अप

ने अधिकार को जानता। और जाकर हे अग्ने इस प्रदेश (अग्नि दृष्ट का निष्पादित चितिरूप) का पुरो ग्नि (पुरोगन्ता मुख्य) हो। त तः हमारे द्विपद (पुत्रादिकों) चतुष्पद (गवादिकों) के अर्थ अन्न स म्यादन करि ॥ ६६ ॥

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षादिवमारुह  
मू। दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ग्योतिरगामहम् ॥ ६७ ॥

आग्नेयी पिपीलिक मध्या बृहती। यजमान आह में पृथिवी से ऊँ  
चा चल कर अन्तरिक्ष को आरूढ़ हूँ। तिस अन्तरिक्ष से चल कर  
द्यु लोक को आरूढ़ हूँ। द्युलोक का जो दुःखरहित प्रदेश। तिसके  
उपरि भाग से स्वर्ग्योतिः स्वर्गलोकस्थ आदित्यमण्डल को मैं प्राप्त  
हूँ ॥ ६७ ॥

स्वर्पन्तो नापेक्षन्तः आद्यांशं रोहन्ति रोदसी। यज्ञं ये वि  
श्वतोधारं सुविद्वांसो विते निरे ॥ ६८ ॥

आग्नेयी अनुष्टुप्। जे सुविद्वांसः ज्ञानकर्म समुच्चय करने वाले  
यज्ञ को अनुतिष्ठें हैं। कैसे यज्ञ का कि विश्वतोधार विश्वतोधार  
जिसकी तिसे आहुति दक्षिणान्नानि यज्ञकी धारा एँ वा वैश्वान  
र मारुत पूर्ण हुति वसी धारा वाज प्रसवीयानि यज्ञकी धारा एँ यज्ञ  
जगत के धारण करने वाले को। ते यज्ञ करने वाले स्वर्ग को गये पुत्र  
पश्वादिकों की अपेक्षा नहीं करते कृत कृत्य होने से। और स्वर्ग को  
आरोहण करते हैं कैसे स्वर्ग कि रोदसी रुणद्धि जरा मृत्यु शोकादि  
कों की। यद्वा जे यजमानाः सुविद्वांसः सुष्टु कर्म प्रकार को जानके

जगद्धरणहेतु यज्ञ को विशेषेण करते हैं ते यजमान द्या अन्तरिक्ष को आरोहण करते तथा रोदसी द्यावापृथिवी को आरोहण करते हैं ततः स्वर्गस्य आदित्य मण्डल को प्राप्त हुए अन्यत्किमपि स्थान को नहीं अपेक्षा करते ॥६८॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो दैवयतां चक्षुर्देवानां मुत मर्त्यानाम्।  
इयक्षमाण भृगुभिः सजोषाः स्वर्ग्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ६९ ॥  
आग्नेयी त्रिष्टुप्। हे अग्ने देवताओं को इच्छा करने वाले यजमानों के पुरतः प्रकर्षेण जा। कथं मया ग्रतो गन्तव्यं तत्राह जो कि तू देवताओं और मनुष्यों के चक्षुः स्थानीय लोक में गये पुरुष की दृष्टि के पुरतः जाता है। किंच पूजने को इच्छा करने वाले यजमान स्वस्ति जैसे जैसे अपविनाशेन स्वर्ग को प्राप्त हों वें। कैसे कि भृगु गोत्र विप्रों से है समान प्रीति जिन्हों की ते। भृगु ग्रहणमनूचान ब्राह्मणोपलक्षणम्। उत्तम विप्रैः प्रीतिमन्तः ॥६९॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेंते शिशु मे कर्ठ समीची।  
द्यावाक्षामा रुक्मोऽ अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन्तु विणोदाः ॥ ७० ॥

का. १८. ४. २. अध्वर्युः स्वयमातृणोष्टका के ऊपर समीप में प्रति प्रस्थात्रा के तिस अग्नि को धारण करते कृष्णवर्ण श्वेतवत्सार्गों के जुहू स्थानीय मृन्मय दुग्ध दोहन यात्र करि स्वयमातृण की सी चते इध्मस्थ अग्नि में नक्तोषासेति दो ऋचाओं से हो में व्याख्याता १२. २. ॥ ७० ॥



अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्याना  
 त्वष्टं साहस्रस्य रायः ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय  
 स्वाहा ॥ ७१ ॥

आग्नेयी विराट पंक्तिः दशाक्षरचतुः पादा । हे अग्ने सहस्राक्ष  
हिरण्यशकलही हैं सहस्र नेत्र जिसके १) हे शत सूधन् शतसंख्या-  
क हैं शिर जिसके २) जिसमें शत प्राण सहस्र ४ व्यान हैं । और जो तू  
सहस्र धनका प्रभु है । तुरन्तें से के अर्थ हम हविरूप अन्न देते हैं । स्वा  
हा एतद्धविः सुद्धतमस्तु ॥ ७१ ॥

सुपर्णोऽसि गरुत्मान्पृथु पृथिव्याः सीद । भासान्तरिक्षमा  
पृणं ज्योतिषा दिवमुत्तमानं तेजसादिश उहृ ॥ १२ ॥

का० १८४४ स्वयमातृणां मे सुपर्णेसीति हो ऋचाओं और बषट्कार करिके अग्नि को स्थापन करें ॥ अग्निदेवत्या पङ्क्तिः हे अग्ने तू सुपर्ण (पक्ष्याकार गरुडसमान) है। गरुत्मान् (अशनयावान्) है। अतः पृथिवी के ऊपर बैठ। अपने प्रकाश से अन्नरिक् को सर्वतः पूर। अपनी सामर्थ्य से द्युलोक को ऊंचा संभित कर। तथा स्वतेज करिदि। उत्कर्षेण हठी करि वा प्रकाशि ॥ ७२ ॥

आजु ह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्नेस्व योनिमासीदसाधु  
या । अस्मिन्स्यस्येऽध्युत्तरस्मिन्चिश्च देवा यजमान  
श्च सीदत ॥ ७३ ॥

आग्नेयी त्रिष्टुप्। हे अग्ने तू आहूयमानः सन् सुप्रतीकः (शोभ-  
न मुखः) सन् पूर्वदिशा विधेयं समीचीन अपने स्थान को अधितिष्ठ

हे विश्वे देवाः औ तुम और यजमान इस पुरोवर्तिनि अधिक उत्कृष्ट स्थान अग्नि सहित बैठने योग्य यज्ञारव्य स्वर्गमें बैठो (द्यौर्वाज नरठं सधस्थमिति ५. २. ३. ३५. श्रुते ॥ ७३ ॥

तां सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वज-  
न्याम् । यामस्य कण्वोऽअदुहत्सपीनां सहस्रधारां  
पयसा महीं गाम् ॥ ७४ ॥

का. १८. ४. ६. अग्निनिधान के अनन्तर तिस अग्नि में तीनिसमि  
धाएँ अध्वर्यु धारण करें तां सवितुरिति शमीमयीं विधेमेति वैक  
ङ्कतीं वेदोऽअग्नः इत्योदुम्बरीमित्यर्थः ॥ कण्वदृष्टासावित्री पुरस्ता  
ज्ज्योतिषत्रिष्टुप् । वरणीय सवितुः संबंधिनीति तिस शोभनाबुद्धिको  
में आभिमुख्येन स्वी करताहूँ । कैसी सुमति को कि चित्रा (चायनी  
या. स्वापेक्षित बहुविध फलदान समर्था । विश्वजन्या (सर्वजनों के  
अर्थहित वा जगदुत्पादन समर्था । तिस किसे कि कण्व मुनि इसस  
विता की जिस सुमति में वधेनु अनुग्रहकारिणी बुद्धि को दुहता  
हुआ कैसी को कि प्रकर्षण पय करि पूरित सहस्रधारा युक्त यज्ञा बहु  
त कुदुम्ब की धारयित्री पयसामहीम् बहु दुग्धा सर्व सिद्धि दात्री  
को । रवेर्मतिर्या कण्वेन दुग्धा वा महं वृणे इति सर्वार्थः ॥ ७४ ॥

विधेमेते परमेजन्मन्त्रेण विधेम स्तोमै रवरे सधस्थे ।  
यस्माद्योने रुदारिथा यजे तं प्रत्वेदुवीथंषि जुहुरे स  
मिद्वे ॥ ७५ ॥

गृत्समदृष्टा त्रिस्थानाग्नि देवत्या त्रिष्टुप् । हे अग्ने दिवि में तुरु

आदित्यात्मा करि स्थित के अर्थ हम हविदेते हैं अन्तरिक्षस्थित  
तुरुविजली रूप के अर्थ सोत्रों से हम परिचर्या करते हैं। हे अग्ने  
जिस इष्टकाचित रूप स्थान से तू उद्गत है तिस स्थान को मैं पूजता  
हूँ। ततः तुरु सम्यक् प्रज्वलित दिशे हवियें होमता हूँ ॥ ७५ ॥

ब्रह्मोऽग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्या यविष्ट। त्वां  
शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥ ७६ ॥

वसिष्ठ दृष्टाग्नि देवत्या विराडनुष्टुप्। हे अति युवा हे अग्ने तू हम  
रे पुरोऽग्ने दीप्त हो। कैसे है तू कि अनुपक्षीण सूर्य समित् का  
ष्टाकरि प्रकर्षण दीप्त यद्वा लोह मयी ज्वलन्ती स्थूणा अनुपक्षी  
णा सूर्मि समाना ज्वाला करि दीप्त सूर्मी शब्दो ज्वालोपलक्षकः  
हे अग्ने यतः निरन्तर भाविनो हवियें तुम्हें प्राप्त होते हैं अतः  
दीप्त हो ॥ ७६ ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमेः कतुं न भद्रं हिं हृदि स्पृश  
म्। ऋध्या मा तः श्रोहैः ॥ ७७ ॥

का. १८. ४. ८. समिध आधान करि कै अग्ने तमिति दो ऋचाओं  
से स्तुवा करि दो घृताहुती तिस अग्नि में होमें व्याख्याता १५.  
४४. ११७. १॥

चिन्ति जुहोमि मनसा धृतेन यथा देवा इहा गमेन्वीति  
होत्रा ऋता वृधः। पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्व  
कर्मणे विश्वाहादाभ्यर्ठं हविः ॥ ७८ ॥

विश्व कर्म देवत्यातिजगती। मनसा और धृतेन सह ऋत्विग्यजमा

नों की चित्ति को होमता (अग्निसम्बद्ध करता) हूं अर्थात् अग्नित  
च परिज्ञानार्थं विन्नन (सन्तान) करता हूं + तैसै होमता हूं कि जैसे-  
इस यज्ञ में देवता आवें। कैसे देवता कि वीति होत्राः कामितयज्ञाः  
ऋत (सत्य वा यज्ञ) के बढाने वाले। किंच सब दिनों विषे अनुपहत  
स्वाद हवि विश्वकर्मा (प्रजापति) के अर्थ होमता हूं। कैसे प्रजापति कि  
सब जगत के बडे पति ॥७८॥

सप्त तेऽग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धा  
मे प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वी यजन्ति सप्त योनी  
रा पृणस्व घृतेन स्वाहा ॥७९॥

का० १८४५ और पूर्ण हुति (घृत से पूर्ण सुचा करि आहुति) हो  
में ॥ सप्त र्षि दृष्टा आग्नेयी। हे अग्ने तेरी सप्त समिधाएँ (शीर्षण्याः  
प्राणयतनाः) ओत्र २ नेत्र २ नासा छिद्र २ मुख १ हैं। किंच तेरी सप्त  
जिह्वाएँ (ज्वालारूपा हिरण्याङ्गणया आगमोक्ता यद्वा आथर्वणि  
कोक्ताः मुण्डक० १२ काली १ कराली २ च मनोजवा ३ च विलोहिता ४  
चापि सधूमवर्णा ५ स्फुलिङ्गिनी ६ विश्वरुची ७ च देवी लेलायमाना  
इति सप्त जिह्वा ॥ इति हैं। तथा सप्त ऋषयः (मरीच्यादयः) तेरे द्रष्टार  
हैं। तथा सप्त प्रियाणि धामानि (गायत्र्यादि सप्त छन्दाश्च सिक्क यद्वा  
अहवनीय १ गार्हपत्य २ रक्षिणाग्नि ३ सम्य ४ आवसथ्य ५ प्राजा  
हित ६ अग्नीध्रीय ७ सोमयागमें बहिधारक हैं। किंच हे अग्ने सप्त  
होत्रादयः (होता १ प्रशास्ता २ ब्राह्मण छठ्ठीसी ३ पोता ४ नेष्टा ५ आ  
ग्नीध्र ६ अछावाक ७ ऋत्विज लोग सप्त प्रकारों अग्नि होम १

अत्यग्निष्टोमं २ उक्थ्य ५३ षोडशी ४ अतिरात्र ५ आप्तोर्योम ईवाज  
पेय ७ से तुमै पूजते हैं। हे अग्ने सोतू सप्तयोनीः (चितीः ॥) धृत करिके  
समन्तात् पूरि स्वाहा सुहुतमस्तु यद्वा स्वाहा (यज्ञरूपः ॥) त्वंसप्तयो  
नी धृतेनापृणस्व ॥ ५५ ॥

५ उक्थ्य

॥ सप्तचिति  
को गिरिनि  
८.२.३.४५-  
श्रुतेः।

॥ यज्ञो वेसा  
हाकार इति  
८.२.३.४५-  
श्रुतेः।

अ० ८ शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्म  
श्च। शुक्रश्च नृत्तपाश्चात्य ठंहाः ॥ ८० ॥

का० १८.४.२३.२४ वैश्वानर पुरोडाशसेया ग करिके वैठकर आ  
हवनीय विषे हाथ करि सर्वहुत मारुत पुरोडाशों को होमें, शुक्र  
ज्योतिः इति एक-एक मन्त्र से एक एक को। यद्वा प्रथमकाल में वैश्व  
ानर पुरोडाश को विस्तीर्ण करिके वैश्वानर पुरोडाश के ऊपर हीमा  
रुतों को होमें। अरण्यविषे अनूच्य सातवें पुरोडाश को विमुख संज्ञ  
क उग्रश्च भीमश्चेति अध्याय ३० का एडी ७ वक्ष्यमाण मन्त्र करि हो  
में ॥ षट्मरुदेवत्याः आद्या उष्णिक् एकैकस्या मृचिसप्त-सप्त मरुतः ॥  
शुक्रज्योतिरित्याद्या एकोनपञ्चाशन्मरुतः तुम आज (अब इस  
हमारे यज्ञ में आओ इति यच्च मर्चि ८४ अन्वयः ॥ तन्नामानि व्या  
ख्यायन्ते शुक्र (शुद्ध वा शुक्र की सी ज्योति का सा तेज जिस  
का बोह ॥ १॥ दर्शनीय ज्योति जिस की ॥ २॥ ब्रह्मलक्षण ज्योति ॥ ३॥  
तेज मानू ॥ ४॥ प्रकाशता है ॥ सत्य वा यज्ञ का पालक ॥ ६॥ पाप को  
छोड़िके वर्ते है ॥ ७॥ चकाराः समुच्चयार्थाः ॥ ८० ॥

ईहङ्गा न्याहङ्ग सदङ्ग प्रति सदङ्ग मितश्च संमितश्च  
समराः ॥ ८१ ॥

द्वे गायत्र्यो । इस पुरेडाश को लेकर देखता है ॥७॥ अन्य भी पुरे  
डाश को देखता है ॥८॥ समान को देखता है ॥९॥ तिस-तिस प्रति  
समान को देखता है ॥१०॥ मान को प्राप्त यद्वा उत्तमाधममध्यमसे  
तुल्य ॥११॥ एकी भाव करि मान को प्राप्त ॥१२॥ साथ भरणा करता  
है ॥१३॥ ८१॥

ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च । धर्ता च विधर्ता च  
विधारुणः ॥८२॥

सत्यरूप ॥१४॥ वस्तु में हुआ ॥१५॥ स्थिर ॥१६॥ धारक ॥१७॥ धारण  
करता है ॥१८॥ विशेषेण धारण करता ॥१९॥ विविध धारण ॥  
२०॥ ८२॥

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च । अन्तिमि  
त्रश्च दूरेऽमित्रश्च गणः ॥८३॥

उष्णिक् । यज्ञ को जीतता है ॥२१॥ याता तथ्य को जीत ॥२२॥ शत्रुसे  
न्य को जीत ॥२३॥ शोभना सेना जिसकी ॥२४॥ समीप में मित्र जि  
सके ॥२५॥ दूर में शत्रु जिसके ॥२६॥ गिनता है सबको ॥२७॥ ८३॥

ईदृक्षास एतादृक्षास ऊषुणः सहक्षासः प्रतिसहक्षा  
स एतन्न । मितासश्च संमितासो नोऽग्र्यः सभरसो म  
रुतो यज्ञेऽस्मिन् ॥८४॥

जगती । हे मरुतयो तुम इतने कैसे हो कि इससे देखते हो ॥२८॥  
इतने को देखते हो ॥२९॥ उ-सु-नः- एतत्पदत्रयं पाद पूर्तये ॥ स  
मान दर्शन हो ॥३०॥ प्रत्येक को समान दर्शन हो ॥३१॥ प्रमाण से



हो ॥ ३३ ॥ संगत्य प्रमाणसे हो ॥ ३४ ॥ समान अलङ्कारादिक को धार  
ए करते वा आदर सहित वर्तमान हो ॥ ३५ ॥ बहु वचन मादार्थ  
म् ॥ ८४ ॥

स्वतवांश्च प्रधासी च सांतपुनश्च गृहमेधी च । क्री  
डी च शाकी चोज्जेयी ॥ ८५ ॥

गायत्री उष्णिग्वा । आद्याः पञ्च चातुर्मास्यदेवताः । स्वाधीनबल  
युक्ता ॥ ३६ ॥ पुरोडाश भक्षण शील ॥ ३७ ॥ सूर्यसम्बन्धी ॥ ३८ ॥ गृहध  
मेवान् ॥ ३९ ॥ सदा क्रीडन शील ॥ ४० ॥ शक्त ॥ ४१ ॥ उत्कृष्टजयनशी  
ल ॥ ४२ ॥ एते मरुतो यूपमत्र यज्ञे एतनेति पूर्वणान्वयः ॥ ८५ ॥

अध्या० ३६ ॥ उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासह्यं श्वाभि  
युगवाच विक्षिपः स्वाहा ॥ ७ ॥ विमुख मन्त्रोऽपि प्रसङ्गाद्याख्यायते ॥  
गायत्री । उत्कृष्ट ॥ ४३ ॥ विभेत्यस्मादसौ भीमः ॥ ४४ ॥ शत्रुओं को अ  
न्धा करता है ॥ ४५ ॥ शत्रुओं को कम्पाता ॥ ४६ ॥ शत्रुओं को अभिभ  
वता ॥ ४७ ॥ भक्तों का सुखयोक्ता ॥ ४८ ॥ शत्रुओं को क्षेप्ता ॥ ४९ ॥ स्वा  
हा । इतने मरुतों के अर्थ पुरोडाश सुद्धतहों ॥ ७ ॥ ८५ ॥

इन्द्रं देवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् यथेन्द्रं देवीं-  
र्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् । एवमिमं यजमानं  
देवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥ ८६ ॥

का० १८ ॥ ४ ॥ २५ ॥ कर्मापवर्गान्तं मे यजुः जपे ॥ मरुद्देवत्यं यजुः ।  
यह देव संबन्धिनी प्रजा मरुद्रूपा इन्द्रानुगामिनी हुई इति स्वरू  
पाख्यानम् । देव संबन्धिनी प्रजा मरुद्रूपा जैसे इन्द्र को अनुसरण

शक्रोऽपि मन्त्रोऽपि

करिके वर्तमानाहुई उपमानमेतत् देवसंबंधिनी और मनुष्य  
संबंधिनी प्रजा ऐसे ही इन्द्रवत् इस यजमान को अनुसरण करिके  
वर्तमाना हों इति प्रार्थना ॥ ७६ ॥

अ० ७६ इमं स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य म  
ध्यै । उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्तसमुद्रियर्धं सदनमा  
विशस्व ॥ ७७ ॥

का० १८-४-२६ इमं स्तनमिति मन्त्रगण को अध्याय समाप्ति प  
र्यन्त यजमान से अध्वर्यु पढावे वा आप जपें ॥ त्रयोदशर्च आग्ने  
यस्त्रिष्टुप्छन्दस्कोऽनुवाको यज्ञस्तुतिर्वसोर्धाराभिवादिनी घृतस्तु  
तिर्वा । हे अग्ने सरिर (लोक) के मध्य में वर्तमान तू इस सुगलक्षण  
स्तन वा सुच से गिरती घृतधार को पान कर । कैसे स्तन कि वि  
शिष्ट रसवन्त को । तथा अपां प्रपीनम् + घृत से पूर्ण । हे अर्वन् सर्व  
नः चलते उत्स (उत्स्यन्दन-सुगलक्षणकूप) को सेवन कर कैसे  
उत्स कि मधुमन्त (मधुखादघृत करिके युक्त) को किंच समुद्रियस  
मुद्र सम्बन्धि-चयनयाग सम्बन्धि गृह को आविशस्व-तृप्त हो के  
यज्ञ गृह को सेवन कर ॥ ७७ ॥

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतमस्य धाम ।  
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहा कृतं वृषभ वक्षि ह  
व्यम् ॥ ७८ ॥

गृत्समददृष्टा । मैं घृत को सींचने चाहता हूं + यतः इस अग्नि का  
घृत उत्पत्ति स्थान है \* । जो अग्नि घृत को आश्रित है । इस अग्निका

वसोर्धारायु दा होयते त  
सुगलक्षणकूपकल्पनास्तन  
उच्यते ।

\* अर्चयन्ते तस्मात्  
पाद्यतमं चाने ।

\* त्रयोदशैः समुद्राः अग्निं यजमानाः प्रवृत्ताः  
हैसा मा मह दुक्प म् चामित्यभिप्रायः ।

+ अग्निमुखे मेदुमिच्छति

\* अग्निर्घृते योनेः सुज्यत तस्ये घृतमुत्पन्नमासीदिति श्रुतेः गर्भो धा  
रेदकमुत्पन्नम् ।

घृतही धाम स्थान वा तेजकरनेवाला है। अतः हे अध्वर्यो अनुषध (स्वधा-अन्न) को उपलक्ष्य करि निस अग्निको आवह प्रथम अन्न-अन्नको उपकल्प्य पश्चात् बुला और बुलाके तृप्त करि और तृप्त करिके यह कहि कि हे वृषभकामों के वर्धनेवाले स्वाहाकार करिहु त हव्यको तू देवताओं प्रति प्राप्त करे। यद्वा जिससे प्रति दिन सींचा चाहता हूं जिसका घृतयोनि घृतको आश्रित और जिसका घृत धाम है सो तू अनुषधको उपलक्ष्य देवताओंको बुलाके तृप्त करि और हवि प्राप्त करि इत्यग्निं प्रत्येदोक्तिः यतो वन्देः कर्मद्वयं देवानामावाहनं हविर्वहनं च ॥ ८८ ॥

समुद्रा दूर्मिर्मधुमां ॥ उदार दुपाथं शुना सममृतत्व  
मानर। घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृत  
तस्य नाभिः ॥ ८९ ॥

वामदेवदृष्टा। अत्रान्नाध्यासेन घृतं सूयते प्राणध्यासेन चाग्निः। समुद्र (घृत) से मधुमान् (रसवान्) कल्लोल कंचाचला अक्षीणत्वा हृतस्य समुद्रेणोपमानम् अन्नदेवताभिप्रायं वासात्क्षीणेव। और उनके अणु (प्राण-जगत्प्राणभूत अग्नि) से एकी होकर व्याप्त हुआ अर्थ त अन्न और प्राण एकी होकर अमृतत्व को प्राप्त हुए। तिस घृतका गुह्य (अविद्वानों से अनजाना) नाम श्रुतिमन्त्र पठित जो है वोह कहिये है इति शेषः। किं तदाह कि देवानां जिह्वा (अत्यभिलाषसे देवताओं की जिह्वेत्याननिमित्त) है। और जो सर्व प्रकाशनाम वोह भी कहिये है कि अमृतस्य नाभिः अमरण धर्मका बंधन है

अग्निं जिह्वा से युक्त। पदवा एतद्देवता बुद्धयर्थं यथाग्निं जिह्वा देवता निमित्तं भूतेः।

† न देतय जुहपारि  
श्वनिरुक्तेमिति  
श्रुतेः॥

‡ अथास्य घृत कीर्तिं वे वाग्निर्देवानामुत्तरादुज्ज्वलति १७.४.१.१.३.श्रुतेः॥

(योहि घृतमश्नाति सदीर्घायुर्भवति॥ यद्वा ऋगर्थेन मन्त्रः स्तूयते  
अर्थेन घृतम् । समुद्रात् आग्निकयजुः समुद्रहमारे यज्ञसैजो  
ऊर्मिः (शब्दसंघातः नानाख्यातो यस्य सर्ग निपातरूप उपमोत्प्रेक्षा  
रूपकाद्यलङ्काररूप) मधुमान् (रसवान् वाक्यार्थगुणोंसैयुक्तः  
उदारत्-मुखसैजठास एव उपांशु (क्रियमाणसवनसैः अमृतत्व  
को प्राप्तहुः) † इसहेतु अग्निचयनवालोंसै प्रकाशनीयहै। इत्य  
र्थः। घृतका गृह्यजो नामहै वोही देवताओंकी जिह्वात्थाननिमित्त  
है किं पुनर्होमः ५। अमृतस्य नामभिः नहन अर्थात् घृत यजनसै  
यजमानों का अमृतत्व प्रापकहै। अतो अग्निविद्धिर्हयते स्तूयते  
च घृतमिति भावः॥ ८४॥

वयं नाम प्रब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमो  
भिः॥ उप ब्रूया अणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमी  
होर एतत् ॥ ८५॥

जो कि घृत नामो चारणही देवताओंका प्रियहै इसहेतु हम इस  
यज्ञमें घृत का नाम स्तुति करतेहैं। नमोभिः नमस्कारोंवाह वि  
रूप अन्नोंसै धारण करतेहैं यज्ञको इति शेषः। किंच ब्रह्मा अ  
त्विक्काशस्यमान् (स्तूयमान) एतत् घृतनाम सुनें। यथा गौरः (गो  
रवर्णः शुद्धः यज्ञ) एतत् घृत यज्ञफलरूप को अमीवत् उद्गिर  
ति निर्वहताहै यज्ञपरिणामाभिप्रायम्। कैसाहै गौर कि चतुःशृ  
ङ्गः चारि ऋत्विजशृङ्गभूतहैं जिसके ॥ ८५॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासौ

॥ किं एवम्यहविश्रान्तीवा  
वेयन्मयापमदः शिरभ्रव  
रितिभदः ॥

नैः शिरः खल्वस्य हविश्रानं यीवा  
वेयुः नम्यापं मदः शिरः प्रव  
न्येयति श्रुतेः ।

त्रिधा हितं पण्यभिर्गुह्यमानं गवि देवासौ घृतमन्त्रवि

न्दन्। इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादे कथं स्वधया  
निष्टतक्षुः॥४२॥

नीनि प्रकारों से इन लोकों में स्थापित यज्ञ परिणामभूत घृत को प  
णिभिः असुरों से गुप्यमान होते देवासः देवता धेनुविधेयं आनु पू  
र्व्यात् पाते हुए। तिसके एक भाग को इन्द्र उत्पन्न करता हुआ तेवा  
एते आहुति होते उत्क्रामतस्ते अन्नरिक्षमाविशत इत्यादि श्रुति  
षु इन्द्रस्य जनकत्वं दर्शयति। सूर्य एक भाग को उत्पन्न करता हुआ  
तत उत्क्रामतस्ते दिवमाविशत इत्यादि श्रुतिः सूर्यस्य घृतभाग  
जनकत्वं दर्शयति। वेनात् यज्ञसाधनभूत अग्निसे एक को स्वध  
या वेताहुति लक्षण अन्न करिके द्विजातिलोग निकालते हुए य  
स्ततः पुत्रो जायते स लोक प्रत्पुत्यायीत्येतदुक्तं भवति॥४२॥

एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्रा छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे।  
घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये  
आसात्॥४३॥

एता वाच ऊँची चलती हैं कहां से कि हृदय समुद्र (अद्भुत कल्पित देव  
ताया थात्म्यचिन्तन सन्तानरूप निगम निरुक्त निघण्टु व्याकरण  
शिक्षा छन्द करि पवित्रों से) कैसी वाणी है कि शतव्रजाः बहुत हैं  
गति हैं जिन्हें की अर्थात् बहूप्या। और जे चलती हुई रिपु (कुता  
किक वृन्द शत्रु) करि नहीं खण्डित हो सकतीं ते घृत की धारा ऐसे  
देखता हूँ। और इन वाचाओं के मध्य में जो हिरण्य य दीप्यमान  
वेतस (अग्नि) है तिसै देखता हूँ \*॥ यद्वा घृत धारा एवोच्यन्ते जे ए



ता हृदय समुद्रसंघतधाराचलतीहैं हृदयेन संकल्प्य यजनाद्द्रव्य  
दुग्धनिरित्युच्यते। शतवृक्षा नानागतयः। और जे यज्ञपरिपन्थिदे  
खने नहीं सकते ते घृतधारा देखताहूँ। और जो यह हिरण्ययज्ञा  
हवनीय अग्नि इन धाराओं के मध्यमें स्थितहैं तिसंभी देखताहूँ  
अर्थात् द्रव्य और देवता को याथातथ्येन में देखताहूँ ॥८३॥

सम्यक् सवन्ति सुरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमा  
नाः। एते अर्षन्त्यूर्मे यौ घृतस्य मृगा-द्रव क्षिपुणेरीष  
माणाः ॥८४॥

जे धेनाः-वाणियें नदीहैं जेसैं अनवच्छिन्न प्रवाहाः भले प्रकार प्रसर  
तीहैं। कैसीहैं धेनाः कि शरीरान्तरव्यवस्थित हृदय पावन स्थानीय  
और मन करि पूयमान (शब्ददोषों से विविच्यमान हैं) वे अग्निको ही  
स्तुति करतीहैं इति शेषः। और जे एते घृत की कल्लोंलें सुक्परिभृष्टाः  
चलतीहैं वेभी अग्निको तर्पण करतीहैं इति शेषः। तत्र दृष्टान्तः क्षि  
पुण (व्याध) सें पलायमाना मृग जेसैं अर्थात् जे घृत की कल्लोंलें  
चलतीहैं वे अग्निको तर्पण करतीहैं। श्रुति द्रव्य चाग्न्यर्थ मेवे  
ति भावः ॥८४॥

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति य  
द्वाः। घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन् नूर्मि  
भिः पिन्व मानः ॥८५॥

घृत की धाराएँ सुन्दुरब से गिरतीहैं। कैसी धाराएँ कि यद्वाः (ब  
ड़ी) तत्र दृष्टान्तद्वयम् जेसैं नदीओं के वात प्रमियः (तरङ्ग) विष

म प्रदेश में गिरते हैं तब तू कैसी है तरङ्ग कि श्रूषणासः क्षिप्र है गम  
नजिहोंका । अन्यो दृष्टान्तः जैसे अरुषः जात्यादि से उत्कृष्ट अ  
श्वः पतति टपकता है । तैसे काष्ठाः । आज्यन्तों (संग्रामप्रदेशोंको) विदीर्ण  
करते ऊर्मि (काष्ठाभेद नोत्पन्न मखेदोदक) से भूमि को सींचते वोह  
अश्व जैसे गिरकर अन्तों को खाता है एवं पतन्ती घृतधारा अग्नि  
भक्षण करता है ॥ ६५ ॥

अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासोः  
अग्निम् । घृतस्य धाराः समिधो न सन्त ता जुषाणे हर्य  
ति जात वेदाः ॥ ६६ ॥

घृत की धारा अग्नि प्रति जाती है । तत्र दृष्टान्तः योषा इव जैसे स्त्री  
पति को । कैसी स्त्रियाँ कि समान हैं मन जिन्होंके रूप यौवन सम्यक्-  
थोड़ी हँसती हैं । ने धारा हैं अग्नि को हरती वा व्याप्त होती हैं । कैसी धा  
रा हैं कि समिधः दीप्त करती हैं अग्नि को । किंच जात वेदाः जात प्र  
ज्ञानोऽग्निः प्रीतियुक्तः सन् ते घृत की धारा हैं हर्यति प्राप्त होता वा  
कामना करता है नास्य ग्रहण शक्ति परिहरण मस्तीति भावः ॥ ६६ ॥

कन्या- इव बहू मेत वाऽऽ अक्ष्यज्ञाना अभिचाक-  
शीमि । यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि  
तप्यन्ते ॥ ६७ ॥

घृत की धारा हैं तहां जाती हैं । कहां कि जिस स्थान में सोम (लतावि  
शेषः) अभिषवण करिये हैं और जहां यज्ञ (सौत्रामण्याख्य) क  
रिये हैं तहां घृत की धारा हैं देखता हूं । तत्र गमने दृष्टान्तः जैसे क

न्या अक्षि (भग) को अज्ञानाः (व्यक्त) योग्य करिके प्रति प्रति प्राप्त होती हैं तैसे यज्ञ प्रति घृत धारा जाती है अर्थात् तापज्ञ सहिता घृत धाराएं देखता हूं ॥५७॥

अभ्युर्वत सुष्टुतिं गव्यं माजिमास्मासु भद्रं द्रविणानि  
धत्त । इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्स्य  
वत्से ॥५८॥

हे देवताओं तुम शोभमा स्तुति और आजि (यज्ञ) प्रति सर्वतः आओ। कैसे यज्ञ प्रति कि गव्य (घृत) है विद्यमान जिसे मैं। और आकर हमारे कल्याणों और धनों को स्थापन करे वा देओ। किंच हमारे इस यज्ञ (सौत्रामणी) को देवता देवतासु देवलोक में प्राप्त करे। किंच जे ये घृत की धारा रसवती जैसे तैसे प्रसरती हैं तिन्हें भी देवलोक विषं प्राप्त करे अर्थात् यज्ञ द्रव्य के स्वर्ग प्रति जाते यजमान जाता ही है ॥५८॥

धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तस्य  
पि। अपामनी के समिथे य आभृतस्तमश्याममधुम  
न्तं तः कुर्मिम् ॥५९॥

इति श्री संहितायां नवमोऽनुवाकः ५

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनशास्त्रीयायां वाज

सनेय संहितायां दीर्घपाठे सप्तदशोऽध्यायः १७

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं निखलं जगदाहुति परिणामभूतं मन्यमानो  
मुनिराह। हे अग्ने सब भूत जात तेरी धामन् (विभूति विषे) अधि श्रि

त (आश्रित-स्थित) है अर्थात् त्वन्महिमोत्थ है। और जो समुद्र विषे-  
 तथा हृदय के मध्य तथा आयु (ब्रह्मा के जीवन पर्यन्त) में जो भूत जाते हैं  
 वोह भी तेरी विभूति में स्थित हैं। इस हेतु में प्रार्थना करता हूँ कि रस-  
 वन्त त्वदीय घृत कल्लोल को हम अश्याम (भक्षण करें वा प्राप्त होंवें)  
 तिस किसे कि अपामनीक (मुख विषे जो कल्लोल समिथ (पणिकेसा  
 थ युद्ध) में आहरण किया-विधाहितं पणिभिरिति क ७२ उक्तत्वा  
 त्। हविः परिणामी रस के हण भोक्ता होंवें इति भावः देवत्व को प्राप्त  
 होंवें इति वक्रोक्त्या प्रार्थ्यन्तं ॥ यद्वास्या ऋचोऽर्थान्तरमुच्यते। हे अ-  
 ग्ने यह सब भूत जात तेरे धाम विषे अधिश्रित है वोह तेरा धाम कहां-  
 कहां यह कहिते हैं कि अन्तः समुद्रे-समुद्र विषे वडवाग्नि रूप करि  
 वा समुद्र (अन्तरिक्ष +) में सूर्य रूप करि हृदि अन्तः-हृदय में जाना  
 गिरूप वा जठराग्निरूप करि आयुषि-अन्न विषे सब प्राणियों के  
 आहार रूप करि अपामनी के-उदकों के संघात में वैद्युताग्निरू-  
 पेण-समिथे-संग्राम में शौर्याग्निरूप करि एवं सब स्थानों में स्था-  
 पित जो तेरा धाम रूप कल्लोल घृत रूप वा उदक रूप तिस तेरे माधुयों  
 पेत को हम प्राप्त होंवें भाव यह है कि सर्व रस भोक्ता रहों ॥ ७७ ॥

इति श्री गिरिधरभाष्येन वमोऽनुवाकः ७

श्री वेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरे देया दग्निदेवसनातनः

इति श्री मच्छुक्लपजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्येतव्या ब्राह्मपादा  
 न्वय विश्वामित्रपुराधिय श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरोक्मिणेय

नृपतिगिरिप्रसादेनरचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येसेका  
दिजयपर्यन्तवर्णनोनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं हिरूपं च साधनैर्वद्गुरुपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः १८

वाजश्च मे देवानामार्षम्

१७०९ वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे  
क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्यो  
तिश्च मे स्वश्च मे युक्तेन कल्पन्ताम् ॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन भाष्येऽष्टादश ईर्यते

वसोर्धारादिकोऽध्यायश्चित्युपस्थावसानकः १८

सप्तदशोऽध्याये चित्यारोहणादिमन्त्रा उक्ताः इदानीमष्टादशाऽध्याये  
वसोर्धारादिमन्त्रा उच्यन्ते ॥॥ का० १८०५१० ततः यजमान आज्य  
को संस्कार करि अर्थपरिमाणं वडी औदुम्बरी सुचा (महता सुचा)  
करिके पञ्चवार गृहीत आज्य को आरण्य विषे अ नूच्य पुरो  
डाश के अधिकरण में तिसऊपर संतत अविच्छिन्नधार जैसैतैसै  
वसोर्धारा संज्ञा आहुति को होमें घृतमें अग्नि प्राप्ति होते वाजश्चे-  
त्यादि होम मन्त्रों का आरम्भ करै अष्ट अनुवाकों वाजश्चेत्यादि वे  
ट् स्वाहान्त एकोनत्रिंशत् कण्डिकात्मकों सै ॥ वाजश्च मे चकारः

समुच्चयार्थाः। यज्ञेन इमं मेरे किये यज्ञ करि वाजादयः पशुर्थाः क  
 ल्पन्ताम् कृताः (सम्यन्त्र) होवें अर्थात् वोह यज्ञ वाजादिकों का दा  
 ना हमारे अर्थ होवे अथोः इदं च मे देहीदं च मः इति ४. ३. २. ५. श्रुते।  
 यद्वा वाजादिक पदार्थ मेरे यज्ञ विषे अग्नि को तर्पण वा अभिषि  
 च्चन करे अनेन चत्वा ग्रीणाम्यनेन चत्वाभिषि च्चामीत्यादि ४. ३.  
 २. ५. श्रुतिः। द्वौ-द्वौ कामावनुपक्षयाय संयुज्याच्चकारेण कन्याकु  
 मारविव तथा च श्रुतिः ४. ३. २. ६. द्वौ-द्वौ कामावभिरूपौ संयुनक्त-  
 व्यवच्छेदाय यथा व्योक्तौ संयुज्यादिति। अथ पदार्था व्याख्याय-  
 न्ते। वाजश्चेत्यादियजुषां देवा ऋषयः अग्निर्देवता छन्दांसि पिङ्ग  
 लोक्तान्यक्षरसंख्यया ज्ञेयानि। एतैर्यजुर्भिर्यजमानोऽग्नेः कामा  
 न्याचते वाजो मेऽस्त्वित्यादि॥ तत्रैकाधिकानि चतुःशतं यजूषिका  
 मास्तु पञ्चदशोत्तरं शतमातद्यथा। वाजश्चेत्याद्यासु ज्येष्ठं पंचमे ४. वसुच  
 मे १५ इति कण्डिका द्वयवर्जिता सुएकी नविंशति कण्डिकासु त्रयोदश-त्र  
 योदश यजूषि सन्ति ज्येष्ठं पंचम इत्यस्यां ४. पञ्चदश वसुचम इत्यस्यां-  
 १५. नव। अग्निश्च मे घर्मश्च म इत्यस्यां २२. द्वादश कामास्तु त्रयोदश  
 अङ्गुलयः शक्ररयो दिशश्च म इत्येकं यजुः कामास्त्वत्र त्रयः। व्रतं  
 च म इत्यस्यां २३. षट् कामास्तु दश अहोरात्रेऽर्कवर्षीवे बृहद्रथन्तरे-  
 च म इत्येकं यजुः षट् कामाः। एका च म इत्यस्यां २४. त्रयस्त्रिंशत्  
 चतस्रश्च मे २५. अत्र त्रयोविंशतिः। अविश्च मे २६. त्रैकादश। पृष्टवा  
 द्वा मे २७. इत्यत्र नव। वाजाय स्वाहेति २८. अत्र चतुर्दश। आयुर्यज्ञेने  
 ति २९. अत्रैकविंशतिः कल्पन्ता मन्तानि द्वादश १२ स्तोमश्चेति षट् १८



स्वर्देवाः १६ प्रजापतेः २० वेदस्वाहा २१ एकैकं एवमेकाधिकाच्चतुःश  
ती ॥ अथ यजुषामर्थाः ॥ अन्नं अन्नदानाभ्यनुज्ञा देवो भोजन  
करोण्युद्धि बन्धनं अन्नविषयोत्सुक्यध्यानसंकल्पवायज्ञसाधु  
शब्दपद्यबन्धवास्तुतिबेदमन्त्रावाश्रवणसामर्थ्यब्राह्मणवाश्र  
वणसामर्थ्यप्रकाशस्वर्ग एते मे मम यज्ञेन कल्पन्ताम् कल्पन्ता  
मितिकण्डिकान्तस्य समुदायापेक्षया बहुत्वम् मेपादानामारुति  
प्रत्येकं प्राप्स्यथी एवं सर्वत्र ॥ १॥

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च मेऽप्राणी  
तं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे ब  
लं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २॥

ऊर्ध्वसंचारी शरीरवायु अधोवृत्तिवायु सर्वशरीरचारी प्रवृत्तिमा  
न्वायु मानससंकल्पवाह्यविषयज्ञानवागिन्द्रियमनचक्षु इ  
न्द्रियश्रवणेन्द्रियज्ञानेन्द्रियकौशलकर्मेन्द्रियकौशलाणतानि  
यज्ञेन मे कल्पन्ताम् ॥ २॥

ओजश्च मे सहश्च मेऽआत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे व  
र्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूथंश्च मे शरीराणि  
च मेऽआयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ३॥

बलहेतुः अष्टमोधातुः शरीरबलवासपत्नाभिभवित्वपर  
मात्मा रम्यं वपुः सुखकवचहस्ताद्यवयवाः शरीरगतहृदियं  
अङ्गुल्यादिपर्वाणि पूर्वानुक्ताः शरीरवयवाः जीवनवार्धका  
न्त आयु एते यज्ञेन सम्पद्यन्ताम् ॥ ३॥

ज्येष्ठं च मेऽअधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽम  
श्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्र  
थिमा च मे वर्धिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे  
यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥

प्रशस्तत्व। स्वामित्व। मानसः कोपः। अधिक्षेपादिलिङ्गको वात्य को  
पः। अपरिमेयत्व। अन्यैरियत्तया परिहेतुमशक्यत्वम्। शीतमधुर  
जल। जयसामर्थ्य। सम्पत्त्यादिकरिमहत्त्व। प्रजादिविशालता। गृ  
हक्षेत्रादिविस्तारः। दीर्घजीवित्व। अविच्छिन्नवंशत्व। प्रभूतमन्न  
धनादि। विद्यादिगुणैः सै उत्कर्ष। एते मे कल्पन्ताम् ॥४॥

अ०२ सुतं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे मह  
श्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं  
च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥५॥

यथार्थभावित्व। परलोकविश्वास। जङ्गम-गवादि। कनकादि।  
स्थावर। दीप्ति। अक्षय्यतादि। क्रीडादर्शनसैद्धान्त्यहर्ष। पुत्रोत्प  
न्नमपत्यम्। भविष्यदपत्यम्। ऋक्समूह। ऋक्याऽजान्य शु  
भादृष्ट। एते कल्पन्ताम् ॥५॥

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयुश्च मेऽनामयश्च मे जीवातुश्च  
मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं  
च मे सृष्टाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥६॥

यज्ञादिकर्म। तत्फलभूतं स्वर्गादि। धातुक्षयादिरोगाभावः। सामान्य-  
व्याध्यादिरहित्यम्। अधिनाशकमोषधम्। बहु कालमायुः। श

तु राहित्यम् । भीतिराहित्यम् । आनन्दः । संस्तुता शय्या । स्नानसंध्या  
दियुक्तः प्रातःकालः । यज्ञदानादियुक्तं सर्वेदिनम् एते मे यज्ञेनां स  
ध्यन्तु ॥ ६ ॥

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे मह  
श्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे ल  
यश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

अश्वादिनिर्यन्ता । पोषकः पित्रादिः । विद्यमानधनस्य रक्षणशक्तिः ।  
आपत्स्वपि स्थिरचित्तत्वम् । सर्वानुकूल्यम् । पूजा । वेदशास्त्रादि  
ज्ञानम् । विज्ञानसामर्थ्यम् । पुत्रादि प्रेरण सामर्थ्यम् । पुत्रोत्पत्त्या  
दि सामर्थ्यम् । हलादि कृषि कृतधान्यनिष्पत्तिः । कृषि प्रतिबन्ध  
निवृत्तिः ॥ ७ ॥

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सोम  
नसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वस  
यश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

ऐहिक सुख । आमुष्मिक सुख । प्रीत्युत्पादक वस्तु । अनुकूल य  
त्न साध्य पदार्थे । विषयभोगजनित सुख । मनः स्वास्थ्यकारकवन्धु  
वर्ग । सौभाग्य । धन । ऐहिक कल्याण । पारलौकिक श्रेय । निवास  
योग्य वसुमानादादि । कीर्ति । एते कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

अ०३ ऊर्क् च मे सृष्टा च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च  
मे सग्धिश्च मे सर्पातिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च  
मेऽशोद्धिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

अन्न। प्रियासत्यावाक्। दुग्ध। तत्रत्यः सारः। आज्य। क्षौद्र। बन्धुः श्रेष्ठः  
हितभोजन। बन्धुः-तपान। कृषिकृतधान्यसिद्धिः। धान्यनिष्पादि-  
कानुकूलावृष्टिः। जयसामर्थ्यं। चूतादिदृक्षोंकी उत्पत्ति। एते यज्ञे-  
न कल्पन्ताम् ॥४॥

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभुश्च मे प्रभुश्च मे  
पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुर्यं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽ-  
क्षुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१०॥

सुवर्णं। मुक्तादिमणयः। धनपोषः। शरीरपोषकः। व्याप्तिसामर्थ्यं।  
ऐश्वर्यं। धनपुत्रादिबाहुल्यम्। गजतुरगादिबाहुल्यम्। कुत्सितधा-  
न्यमपि। क्षयहीनं धान्यादि। अन्नमोदनादि। भुक्तान्नपरिपाकः।  
एते कल्पन्ताम् ॥१०॥

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सु-  
पथ्यं च मेऽऋद्धं च मेऽऋद्धिश्च मे कृतिश्च मे मतिश्च मे  
सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥११॥

पूर्वलब्धवित्तम्। लब्धव्यम्। पूर्वसिद्धक्षेत्रादि। सम्पत्स्यमानं क्षेत्रा-  
दि। सुखगम्योद्देशः। शोभनहित। समृद्धयज्ञफल। यज्ञादिसमृद्धिः।  
कार्यक्षेमं दृष्ट्यादि। स्वकार्यसामर्थ्यं। पदार्थमात्रकानिश्चयः। दुर्व-  
टकार्यादिविषे निश्चयः। एते यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥११॥

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे ख-  
ल्वाश्च मे प्रियङ्गवाश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवा-  
राश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१२॥

व्रीहिः। अण्डुलविशेषाः। यवाः। माषाः। तिलाः। मुद्गाः। चणकाः। लङ्गाः।  
कङ्काः। कोगुनी। चैना। श्यामाकाः। तृणधान्यानि ग्राम्याणि  
कोद्वत्वेन प्रसिद्धानि। नीवागः। (तृणधान्यान्यारण्यानि।  
गोधूमाः। मसूराः। एते धान्यविशेषा मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२॥

अ०४ अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिर्यश्च मे पर्वताश्च मे सिकता  
श्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मे ज्यश्च मे श्यामं च मे  
लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३॥

पाषाणः। मृत्तिका। गोवर्धनावुदरेवतिकादयः। क्षद्रपर्वताः। मन्दिर  
हिमाचलादयः। महान्तः पर्वताः। शर्कराः। पुष्पविना फलनेवाले  
पनस उदुम्बरादयः। सुवर्णं वा रजतं। लोहा। ताम्रलोहकांस्य रज  
तं वा कनकं। लोहं + सर्वं तैजसं। सीसा। रंगं। एते कार्ये विशेषेण मे  
कल्पन्ताम् ॥ १३॥

अग्निश्च मः। आपश्च मे वीरुधश्च मः। ओषधयश्च मे  
क्लृपश्च मे। क्लृपश्च मे। ग्राम्याश्च मे पश  
वश्च आरण्याश्च मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भू  
तिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १४॥

पृथिवीस्थो वह्निः। अन्तरिक्षस्थानि जलानि। गुल्माः। फलपाका  
न्ताः। भूमिकर्षणबीजवापादि कर्मो सैनिष्यादनकी जावे। व्रीहि  
यवादयः। स्वयमेवोत्पद्यमानाः। नीवारगवेधुकादयः। गोश्च  
महिषश्च अजाश्च अवि गर्दभ उष्ट्रादयः। ग्राम्यपशवः। हस्ति सिंह शर  
भ मृग गदय मर्कटादयः। आरण्यपशवः। पूर्वतन्व्य। भावित्वाभ।

जातपुत्रादिक। स्वार्जितमैश्वर्यम्। एतानियज्ञेन मम सम्यद्यन्ताम् ॥१४॥  
 वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च मः  
 एमश्च मः इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१५॥  
 धनगवादिक। वासस्थानगृह। अग्निहोत्रादिकर्म। तिन्हों की अनु  
 श्रान सामर्थ्ये। अभिलषितः पदार्थः। प्राप्तव्योऽर्थः। इष्टप्राप्त्युपा  
 यः। इष्टप्राप्तिः। एते कल्पन्ताम् ॥१५॥

अ० ५ अग्निश्च मः इन्द्रश्च मे सोमश्च मः इन्द्रश्च मे सविता  
 च मः इन्द्रश्च मे सरस्वती च मः इन्द्रश्च मे पूषा च मः इ  
 न्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च मः इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१६॥

अर्थार्धेन्द्राणि जुहोति ६.३.२६ अर्धस्येन्द्रदेवत्यत्वादर्थस्य नाना  
 देवत्यत्वात्। अग्नि सोम सवित सरस्वती पूष बृहस्पतयः प्रसिद्धाः ते  
 समानभागत्वादिन्द्र एकैकया सह पठ्यते। यास्कोक्ता इन्द्रशब्दस्य ना  
 नार्थाः कार्याः एवमग्रेऽपि कण्डिकाद्वये। एते कल्पन्ताम् ॥१६॥

मित्रश्च मः इन्द्रश्च मे वरुणश्च मः इन्द्रश्च मे धाता च मः  
 इन्द्रश्च मे त्वष्टा च मः इन्द्रश्च मे मरुतश्च मे विश्वे च मे  
 देवा इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१७॥

मित्रवरुणधातृत्वष्टमरुद्विश्वेदेवाः प्रसिद्धाः। प्रत्येकमिन्द्रः। एते  
 कल्पन्ताम् ॥१७॥

पृथिवी च मः इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च मः इन्द्रश्च मे द्यौ  
 च मः इन्द्रश्च मे समाश्च मः इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च  
 मः इन्द्रश्च मे दिशश्च मः इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्प-





शापन्नो ध्रुवो वैश्वानर शब्दे नोच्यते । मरुत्वतीया इति बहुवच-  
नं त्रित्वात् मरुत्वतीयो महामरुत्वतीयः कुण्ड मरुत्वतीयश्चेति ।  
अभिषेचनीये सारस्वतीनामर्पो ग्रहणमेव सारस्वती ग्रहसारस्व-  
तं ग्रहं गृह्णातीति तत्राश्वानात् ॥ २० ॥

सुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च  
मे ग्रावाणश्च मे अधिषवणे च मे पूतभृच्च मे अग्निश्च  
नीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मे वभृथश्च मे स्वगाका-  
रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

सुचो जुहादयः । चमसानि ग्रहपात्राणि । वायव्यानि पात्रविशे-  
षाः । अधिषवणे काष्ठफलके । पूतभृदाधवनीयो सोमपात्रविशे-  
षो । स्वगाकारः शम्पुवाकः तेन यथास्वं देवतानां हविरङ्गीकारात् ।  
प्रसिद्धमन्यत् । एते मम यज्ञेन निमित्तेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

अग्निश्च मे घर्मश्च मे र्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मे  
अश्वमेधश्च मे पृथिवी च मे गदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च  
मे अङ्गुलयः शक्करायो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

कण्डिकाद्वयेन यज्ञक्रतुहोमः अथैतान्यज्ञक्रतूजुहोत्यग्निश्च  
म इति ६.३.३.१ श्रुतेः । अग्निः चीयमोनो वह्निरग्निष्टोमो  
वा । घर्मः प्रवर्ग्यः । इन्द्रायार्कवते पुरोडाशमिति विहितौ यागो  
र्कः । सौर्यं चरुमिति विहितः सूर्यः । प्राणोगवामयनम् । अश्वमेधः  
प्रसिद्धः । पृथिव्यदितिदितिदिवो देवताविशेषाः । अङ्गुलयः विरा-  
ट्पुरुषावयवाः । शक्करयः शक्तयः । दिशः प्राच्याद्याः । एते य

ज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२२॥

व्रतं च मः ऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मे होरा  
वेऽर्कवर्षीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२३॥

व्रतं नियमः । ऋतवो वसन्तादयः । तपः कच्छं चान्द्रायणादि । सं  
वत्सरः प्रभवादिः । अहश्च रात्रिश्चाहो रात्रे दिननिशौ । ऊरुचाष्टी  
वन्तो जानुनी च ऊर्वशीवे अवयव विशेषौ । बृहद्रथन्तरे ए  
तन्नाम के मामनी । एतानि कल्पन्ताम् ॥२३॥

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे  
सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मः एकादश च मः  
एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चद  
श च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे  
नवदश च मे नवदश च मः एकविंशतिश्च मः ए  
कविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशति  
श्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविं  
शतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नव विंशतिश्च मे नव  
विंशतिश्च मः एकत्रिंशच्च मः एकत्रिंशच्च मे त्र  
यस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२४॥

अप्युग्मस्तोमहोमार्थी मन्त्राः अथायुज स्तोमाज्जुहोतीति ३.३.२  
श्रुतेः । एकमादाय द्वितीयां विहाय तृतीयामादाय चतुर्थीं विहाय  
परित्यक्त समसख्याकेनात्तविषमसख्याकेन मन्त्रेण युग्मान्स्तोमा  
ज्जुह्यादित्यर्थः । आदरातिशयद्योतनार्था सर्वत्र पुनरुक्तिः ।

अयुग्मस्तोम होमैः सर्वकायावाप्तिः तथा श्रुतिः ४.३.३.२ एतद्वै  
 देवाः सर्वान्कामानाप्तायुग्भि स्तोमैः स्वर्गं लोकमायैस्तथैवेतदा-  
 जमानाः सर्वान्कामानाप्तायुग्भि स्तोमैः स्वर्गं लोकमेतीत्यादि ॥२४॥  
 चतस्रश्च मे ऽष्टौ च मे ऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे  
 षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे  
 चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे ऽष्टाविंशतिश्च मे  
 ऽष्टाविंशतिश्च मे द्वाविंशच्च मे द्वाविंशच्च मे षट्त्रिं-  
 षच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिं-  
 शच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे  
 ऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२५॥

एक कण्डिकाया युग्मस्तोमान्जुहोति अथ युग्मतो जुहोति चतस्र-  
 श्च मऽइति ४.३.३.४ इथमं चतस्र इत्येतां संख्यामादाय चतु-  
 रुत्तरत्वेन स्थितान्युग्मानस्तोमानष्टा चत्वारिंशत्पर्यन्ताजुहुया-  
 दित्यर्थः । तत्कलं स्वर्गप्राप्तिः एतद्वै छन्दाश्चस्यब्रुवन्यातयामा-  
 वाऽअयुज स्तोमा युग्मभिर्विंशति स्तोमैः स्वर्गं लोकमायामेति न-  
 थैतद्यजमानो युग्मभि स्तोमैः स्वर्गं लोकमेतीति ४.३.३.५ श्रुतेः ।  
 पूर्व-पूर्वमुत्तरेण सम्यधाति वृक्षारोहणवत् तथा च श्रुतिः । ४.३.  
 ३.६ पूर्व-पूर्वमुत्तरेणोत्तरेण संपुनक्ति यथा वृक्षं रोहन्नुत्तरामु-  
 त्तरार्धं शार्वार्धं समालम्भते रोहेनाहत्तदिति अत्रोक्ता संख्या सं-  
 ख्येषानिष्ठा । एते यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२५॥

अविंश्च मे अवी च मे दित्यवाद् मे दित्योही च मे प

आविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे  
तुर्यवाट् मे तुर्योही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

कण्डिकाद्वयं वयोहो मे विनियुक्तम् । तथा च श्रुतिः । ४३३७ अ  
थ वयाथंसि जुहोति अविश्च मऽदिति पशवो वै वयाठंसि पशुभि  
रंवेन मे तदन्नेन ग्रीणात्यथो पशुभिरेवेन मे तदन्नेनाभिषिञ्चती  
ति ॥ डेटवर्षका वृषभः । तैसी गो । दो वर्षका वृषभः । तैसी गो । ढाई व  
र्षका । तैसी । तीनि वर्ष । तैसी । साटे तीनि वर्ष । तैसी । एते य  
ज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

पष्ठवाट् मे पष्ठोही च मऽउक्षा च मे वशा च मऽऋष  
भश्च मे वेहच्च मे ऽनडाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्प  
न्ताम् ॥ २७ ॥

चारिवर्ष । तैसी । सेचनक्षमो वृषः । वन्ध्या गो । अतियुवाँबेल ।  
गर्भघातिनी गो । शकटवहन समर्थ वृष । नव प्रसूता गो । एते मम  
यज्ञेन निमित्तेन कल्पन्तां स्वस्वव्यापार समर्था भवन्तु यद्वा यज्ञे  
न मम कल्पन्तां मह्यमुपभोगक्षमा भवन्त्वित्यर्थः एवं पूर्वत्र ॥ २७ ॥

अ० ८ वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहा पिजाय स्वाहा कर्तवे स्वाहा व  
सवे स्वाहा हूर्यते ये स्वाहान्ते मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वेन ठंशिना  
य स्वाहा विन ठंशिनः आन्त्याय नाय स्वाहान्त्याय भो  
वनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहा धि पतये स्वाहा प्र  
जापतये स्वाहा । दूर्यते राणिमत्राय यन्तासि यमनऊ  
र्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाधि पत्याय ॥ २८ ॥

अविष्वासात्मकः कालः तयोऽवयो  
पश्य सऽविः ।

अथ नाम ग्राह होमः तथा च श्रुतिः ४३३८ अथ नाम ग्राहं  
 जुहोति वाजाय स्वाहेत्येतद्वै देवाः सर्वान्कामानाप्नाथैतमेव प्र  
 त्यक्षमप्रीणं सत्यैवेतद्यजमानः सर्वान्कामानाप्नाथैतमेव प्रत्य  
 क्षं प्रीणातीति । वाजोऽन्नं तस्मै स्वाहेति होम मन्त्रः वाजादीनि  
 चैत्रादि महीनां के नाम हैं तिन नामों की लेके होमें इत्यर्थः॥ वाजः  
 अन्न की प्रचुरता से चैत्र अन्न रूप है । प्रसवः अनुज्ञा रूप (जल-  
 क्रीडादिक में अनुज्ञादान से) वैशाखः॥ अपिजः जल से उत्पन्न  
 (जल की डारतत्वात् ज्येष्ठः॥ कतुः यागरूपत्वात् तुर्मास्यादियाग प्रा-  
 चुर्यात् अषाढः॥ वसुः वासकरता (चातुर्मास्ये यात्र निषेधात् आवणः॥  
 अहर्षति दिनों का स्वामी सूर्य (तापकरत्वात् भाद्रपदः॥ मुग्धमहः तुषा-  
 रदि करि मोहरूपदिवसः आश्विना मुग्धवै नर्दं शिनः॥ अल्पघटिका  
 वत्वेन विनाशशीलः स्नाननियमादिकरि पापनाशकत्व से अमुग्धः  
 कार्तिकः॥ अविनर्दं शिन (विनाशरहित) आन्त्यायन (सर्वों के नाश में)  
 अविशिष्ट विष्णु रूप मार्गेश्वरः॥ आन्त्य भौवनः लोकस्वरूप (पृथिवी)  
 रत्वात् जाठराग्नि दीप्तिकरत्वेन पौषः॥ भुवनस्य पति भूतजातका  
 पति (स्नानादिना पुण्यजनकत्वात् पालकत्वं माघः॥ अधिपतिः अ-  
 धिक पालक (वर्षान्तत्वात् फाल्गुणः॥ प्रजापतिः एवं द्वादशमासाधि-  
 ष्ठात् प्रजापति नामक देवता के अर्थ) स्वाहेति होमार्थे सर्वत्र॥ हे  
 अग्ने यह ते राज्य (जहां-जहां यज्ञ करिये है वोह तेरा ही राज्य है)  
 किंच हे अग्ने तू मित्र (यजमान) का नियामक है । केंसां हे तू किनिय-  
 न्ता । अग्निष्टोमादिकर्मों में सर्वों को नियमकर्ता । अतः ऊर्जं वि



शिष्ट अन्नरसके अर्थतुम्हें समन्तात् सींचता हूं इति शेषः । तथा दृष्टिके  
अर्थतुम्हें सम० हूं । ततः प्रजाके स्वामित्वात् प्रयुक्तके अर्थतुम्हें वसोर्धा  
राकरि सम० हूं ॥ २८ ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन  
कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो  
यज्ञेन कल्पन्तामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन क  
ल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पन्तां स्वर्ग्यज्ञेन कल्पतां पृथ्व्य  
ज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । सोमश्च यजुश्च  
ऋक् साम च वृहच्चैत्यन्तरं च । स्वर्देवा अगन्तामृ  
ता अभूम प्रजायतेः प्रजा अभूम वेद स्वाहा ॥ २४ ॥

कल्पहोमः कल्पतामिति लिङ्गात् अथ कल्पाज्जुहोतीति ६-३-३२  
श्रुतेः । यज्ञनिमित्तकरि आयुः (जीवनकाल) कल्पतां (साध्यतां) प्राप्तहो-  
वें । प्राणः चक्षुरेः श्रोत्रं वाचा मनः मेरे यज्ञकरि कृतहोवें । आत्मा  
देह ॥ ब्रह्म (वेद) यज्ञेन कल्पताम् । ज्योतिः (स्वयं प्रकाशः परमात्मा) य-  
ज्ञेन साध्यताम् ॥ स्वः स्वर्गः । पृष्ठ (स्तोत्र वा स्वर्गस्थान) कल्पताम् ।  
यज्ञ यज्ञ ही करिके कृतहोवें नहीं हूं मैं यज्ञकृति में समर्थ ॥ किंचित्तो-  
म (त्रिवृत्य च दशादिः यजुः) (अनियतपादो मन्त्रः) ऋक् (नियतपादा)  
साम (गीति प्रधानम्) बृहद्रथन्तराणि (तद्विशेषो) च यज्ञेन कृतानि-  
भवन्ति त्वत्पुण्यः ॥ वसोर्धारयैव मग्निमभिषिच्यात्मानं यजमानः  
प्रशंसति-हम यजमान लोग देवता होकर स्वर्ग को गये । ओर जाकर  
अमरण धर्म हुए ततः प्रजापति हिरण्यगर्भ की प्रजा हुए इति फलव

१ अतो आत्मा इतिः सत्यगादित्यमानुजं नष्टे प्रादित्याज्जीयत वहि वृष्टिं च ततो यत्नामनु ३०३६  
 २ यन्नात्मा शिष्यत्वायात्पुत्रं वाऽकर्मने वहि वृष्टिं नष्टे नमतम्भी गान्ति यद्वा हंयन् गतिः वाययत्नासि यमान ऊर्जं वा वृष्टौ वा  
 ३ यत्नात्मा वाधिपत्यापीतं न राज्यमभिषिक्तोऽसौत्यन् निमज्ज्यत्वं यत्नासीति प्राप्त ००३३३०३३ अतः ॥

५ आत्मेन्द्रियमनोपुहो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः इति स्थिते;

५॥ आत्मेन्द्रियमनोपुत्रो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः इति स्मृतः ॥ १४-१०-२-३४ क  
॥ पुण्यकर्मनुष्ठानपरमात्मज्ञानकारणमब्रह्मण्यविविधपुन्यपुत्रो न तपमानाशकेनेति श्रुतेः ॥ १४-१०-२-३४ क  
॥ सैवैव ससिद्धिवाप्स्यतामनन्तदयः इति स्मृतेश्च भगवन् ॥ १४-१०-२-३४ क  
॥ पत्तेन यत्र मयजन्ते इति ॥ १४-१०-२-३४ क

॥ गुण कमानुष्ठानपरमात्मज्ञानकारणम् ॥ ब्रह्मणावाविर्भूतानि नश्यन्ति वाविर्भूतानि सन्ति वा स्थिताः नश्यन्ति वा स्थिताः नश्यन्ति वा स्थिताः ॥ १.२.॥

॥ पञ्चनयनमयजुर्गोष्ठी इति ३१.१६

चनम्; अनेन वसोर्धारायाः सर्वकाम प्राप्तिहेतुत्वमुक्तम्। वेदस्वा  
हेति वसोर्धारा होमार्था मन्त्रः वेडिति वषट्कारः। वषट्कारे हैष परोऽ  
सं यद्वेङ्कारे वषट्कारेण वावै स्वाहाकारेण वा देवेभ्योऽन्नं प्रदीयत इ  
ति ६.३.३.१४ श्रुतेः ॥ इति वसोर्धारा होम मन्त्राः समाप्ताः ॥ २६ ॥

अ० ४ वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदिति नाम ववसा करामहे  
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता  
धर्मं साविषत् ॥ ३० ॥

का० १८.५.४.५ क्षेत्रवपवत्सर्वोषध को उदुम्बर चमस में भरिके-  
तिस सर्वोषध चमसवत् चतुष्कोणपुष्कर उदुम्बर सुवा से वाजस्येयं  
प्रसव इति ६.२३-२४ वाजपेय सम्बन्धी वाजप्रसवीय सप्तमन्त्रों से हो  
मिके वाजस्य नु प्रसवे इत्यादि आग्नि क वाज प्रसवीय सप्तमन्त्रों से प्र  
तिमन्त्र तिस ही सर्वोषध और सुवा करि होमें ॥ व्याख्याता ६.५.॥ ३० ॥

विश्वेऽद्य मरुतो विश्वं ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समि  
द्धा ॥ विश्वे नो देवा अवसागमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वा  
जोऽग्नये ॥ ३१ ॥

लु शोधाना कहृष्टा वैश्वदेवी त्रिष्टुप्। आज के दिन में सब मरुतः सप्तक गणः  
आवें। और भी सब देवता गण अष्टबसु द्वादशादित्य एकादश रुद्र इस्त  
र्पण निमित्त करि आवें। विश्वे देवा और गण देवता हमारे अन्न (हवि नि  
मित्तम) करि हवि ग्रहण के अर्थ आवें और तिन के आगमन से सब अ  
ग्नि (गार्हपत्यादय) भले प्रकार दीप्त होवें अथवा तिन के अर्थ होमने  
से। तिन देवताओं की तुष्टि से सब धन गो भूहि रागादि और अन्न हमारे

रेंहो॥३१॥

वाजो नः सप्त प्रदिशाश्चतस्रो वा परावतः॥ वाजो नो विश्वेदे

वैर्धनं साता विहावतु॥३२॥

तिस्रोऽन्नदेवत्याः तत्राद्यानुष्टुप् द्वे त्रिष्टुभौ॥ हमारे को अन्न सप्तप्रदिशा  
भूरादि तीनों लोक प्राच्यादि चारोंदिशाएँ और परावतश्चतस्रः महर्जन  
स्तपः सत्याख्याः समन्तात् पूरणकरें इतिशेषः वाशब्दश्चार्थः यद्वा हम  
रे दिये अन्न करि सप्तप्रदिशाः और चतस्रो महाराद्यात् प्रहोवें । किंच य  
न सातौ धन के सम्भजन काल की प्राप्ति में अन्न हमें विश्वेदेवाओं स  
हित पालन करे इह-इस लोक वा यज्ञ में जब हमें धनेछा होवे तब हम  
रें देवतर्पणक्षम बहून्न हो इति वाक्यार्थः॥३२॥

वाजो नोऽद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवां २॥ ऋतुभिः क  
ल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वा  
जपतिर्जपेयम्॥३३॥

आज के दिन में अन्न (अन्नाधिष्ठात्री देवता) हमें प्रेरणा करे अनुज्ञा  
देवे दानार्थ को इतिशेषः अर्थात् अन्न दानेछा हमें होवै । अन्नदेव  
ताओं सहित यथास्थान कल्पना करे अर्थात् जिस काल में जो देवता  
यष्टव्य हैं तिसे तहां पूजै और + अन्न मुझे सर्ववीर पुत्रपौत्रादि पुत्र  
करे । ततः वाजपतिः समृद्धान्न होकर मैं सब दिशाएँ नीतूँ अर्थात्  
सब दिशाएँ अन्न दान से वशी करूँ॥३३॥

वाजः पुरस्तादुत्तमं ध्यतो नो वाजो देवान्हुविषा वर्धया  
ति । वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपति

+ प्रकृष्टेन प्रक्षिप्तप्रकृष्टं लोकां यद्विषाः प्राच्या  
वाः परावक्त्रे दूरार्थः महारादयो हिलोकत्रय  
मतीत्यवर्तते ।

+ हिंसाकारादिः

भवेयम् ॥३४॥

अन्न हमारे साम्ने हो और हमारे घर के मध्यमें हो। अन्न हमारे हविक  
रिके देवताओं की पोषे। और अन्न मुझे पुत्रपौत्रादियुक्त करे। अन्न पा  
लक हो के में सब दिशाएँ हों ऊँ दिगूपता व्यापकता प्रार्थ्यते यद्वा-  
सब दिशाएँ बशी करूँ ॥३४॥

सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरेष  
धीभिः। सोऽहं वाजर्हं सनेयमग्ने ॥३५॥

आग्नेय्यो द्वे विराजौ। हे अग्ने जो में पृथिवी सम्बन्धि पय (रस) करि  
के आत्मा (अपने) को संयुक्त करता हूँ। जल और ओषधि ओं से प्रा-  
हूँ। सो में पय जल ओषधि ओं से संयुक्त शरीर हो के अन्न को सम्म  
जूँ। यद्वा व्यत्ययेन- हे अग्ने जो में पृथिवी के पय जल और ओ  
षधि ओं से तुझे संयुक्त करता हूँ सो में अन्न को सम्मजूँ ॥३५॥

पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो  
धाः। पय स्वतीः अदिशः सन्तु मह्यम् ॥३६॥

हे अग्ने तू पृथिवी विषे रस को स्थापन करि। और ओषधी ओं  
में र-रि। स्वर्ग में ०। और अन्तरिक्ष में र-। किंच मेरे अर्थ विषे  
दिशा और विदिशा रस युता हो में अर्थात् आहुति परिणामेन पृ  
थिव्या दयो ममाभीष्टा हो में ॥३६॥

देवस्य त्वासवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणो हस्ता  
भ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तु र्यज्ञेऽणग्नेः साम्राज्येना  
भिरिञ्चामि ॥३७॥ + दे-मा अ-स-मि इ० ॥३७॥

का० १८.५.६-६. कर्मोपवर्गमें औदुम्बर चतुष्कोणसुवको आहवनी  
यमें डालिकर अग्निपुच्छसे उत्तरदिशामें परिश्रितसंलग्नश गग्नीव उ  
त्तरहीम कृष्णजिनको फैलाकर तहां स्थित ब्रह्मवर्चसकामो यजमा  
न चयनकृत अन्वारम्भ अध्वर्यु करि सर्वोषधसे सींचिये है। क्पाक  
रिके किसर्वोषध शेषमें जल डालिके अभिषेकस्यैव द्रव्यसाध्यत्वात्  
अप्यपूर्वपक्षः सिद्धान्तमाह अथवा क्षीरोदकसे पूर्वपक्षनिरासे शेष  
जलसे कोन क्यों कि तहां क्षीरोदक है वाजपेयिकानीति श्रुतेः ४.३.४.७. य  
हां वाजपेयसम्बन्धी वाजप्रसवीय सुनिये हैं तहां उदकक्षीर हैं तिनहीं  
उदुम्बरे पात्रे अप आसिच्य पयश्चेत्युक्तेः का० १४.५.२०. इस कारण ति  
स में मिश्रित हीसे अभिषेक है नहीं है जलसे क इत्यर्थः ॥ देवस्य त्वा प्रा  
वृ० व्याख्यातम् १०१० सरस्वत्यै लिङ्गोक्त देवतम् प्रा-वृ० सरस्वतीसम्ब  
न्धिनी वाणी और नियन्ता प्रजापति के यन्त्रसे अग्निके साम्राज्य (चक्र  
वर्तित्व) करिके हे यजमान तुम्हें सींचता हूं मेरे किये अभिषेकसे वाक्  
सिद्ध ऐश्वर्य और साम्राज्य तेरे हों इत्यर्थः ॥ ३७॥

अ० १० ऋताषडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्योषधयोऽप्सरसो मुदो  
नाम । सैन इदं ब्रह्म क्षवं पातु तस्मै स्वाहा वाट ता  
भ्यः स्वाहा ॥ ३८॥

का० १८.५.१६. आज्यसे द्वादश गृहीत लेके विभागसे द्वादशांश  
करिके ऋतेत्यादि द्वादश मन्त्रोंसे प्रतिस्वाहाकार राष्ट्रमृत्संज्ञा  
आहुति होमें व्यति यक्त द्वादश मन्त्रों में पूर्वो मन्त्रः स्वाहा वाडि  
त्यन्तः उत्तरस्ताभ्यः स्वाहेत्यन्तः ततः मन्त्र में जे पुल्लिङ्ग हैं-

र्मवेयम् ॥३४॥

अन्न हमारे साम्ने हो और हमारे घर के मध्यमें हो। अन्न हमारे हविक  
रिकें देवताओं को पोषे। और अन्न मुझे पुत्रपौत्रादियुक्त करे। अन्न पा  
लक हो के में सब दिशाएँ हों ऊँ दिगूपता व्याप कता प्रार्थ्य ते यद्वा-  
सब दिशाएँ बशी करूँ ॥३४॥

सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्विरेष  
धीभिः। सोऽहं वाजर्हं सनेयमग्ने ॥३५॥

आग्नेय्यो द्वे विरजौ। हे अग्ने जो में पृथिवी सम्बन्धि पय (रस) करि  
के आत्मा (अपने) को संयुक्त करता हूँ। जल और ओषधिओं से आ-  
हूँ। सो में पय जल ओषधिओं से संयुक्त शरीर हो के अन्न को सम्म  
जुँ। यद्वा व्यत्ययेन- हे अग्ने जो में पृथिवी के पय जल और ओ  
षधिओं से तुझे संयुक्त करता हूँ सो में अन्न को सम्मजुँ ॥३५॥

पयः पृथिव्या पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो  
धाः। पय स्वतीः अदिशः सन्तु मह्यम् ॥३६॥

हे अग्ने तू पृथिवी विषे रस को स्थापन करि। और ओषधिओं  
में र-रि। स्वर्ग में। और अन्तरिक्ष में र-। किंच मेरे अर्थ विषे  
दिशा और विदिशा रस युता हो में अर्थात् आहुति परिणामिन पृ  
थिव्या रसो समाभीष्टा हो में ॥३६॥

देवस्य त्वासवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाह्व्यां पूषणो हस्ता  
भ्याम्। सरस्वत्ये वाचो यन्तु र्यत्रैणाग्नेः साम्राज्येना  
भिषिञ्चामि ॥३७॥ + दे-म। अचस-मि। इ० ॥ ३७॥



का० १८.५.६-६. कर्मापवर्गमें औदुम्बर चतुष्कोणसुवको आहवनी  
यमें डालिकर अग्निपुच्छसे उत्तरदिशामें परिश्रितसंलग्नश गग्नीव उ  
त्तरलोम कृष्णाग्निनको फेलाकर तहां स्थित ब्रह्मवर्चसकामो यजमा  
न चयनकृत अन्वारम्भ अध्वर्यु करि सर्वौषधसे सींचिये है। क्याक  
रिके किसर्वौषध शेषमें जल डालिके अभिषेकस्येव द्रव्यसाध्यत्वात्  
अयं पूर्वपक्षः सिद्धान्तमाह अथवा क्षीरोदकसे पूर्वपक्षनिरासे शेषे  
जलसे कोन क्यों कि तहां क्षीरोदक है वाजपेयिकानीति श्रुतेः ४.३.४.७. य  
हां वाजपेयसम्बन्धी वाजप्रसवीय सुनिये हैं तहां उदकक्षीर हैं तिन्हें ही  
उदुम्बरे पात्रेऽप आसिच्य पयश्चेत्युक्तेः का० १४.५.२०. इस कारण ति  
समें मिश्रित हीसे अभिषेक है नहीं है जलसे क इत्यर्थः ॥ देवस्य त्वा प्रा  
वृ० व्याख्यातम् १.१०। सरस्वत्यै लिङ्गोक्त देवतम् प्रा-वृ०। सरस्वती सम्ब  
न्धिनी वाणी और नियन्ता प्रजापति के यन्त्रसे अग्निके साम्राज्य (चक्र  
वर्तित्व) करिके हे यजमान तुम्हें सींचता हूं मेरे किये अभिषेकसे वाक्  
सिद्ध ऐश्वर्य और साम्राज्य तेरे हों इत्यर्थः ॥ ३७॥

अ० १० ऋताषडृतथामाग्निर्गन्धर्वस्तस्योषधयोऽप्सरसो मुदो  
नाम। सैन इदं ब्रह्म क्षवं पातु तस्मै स्वाहा वाट ता  
भ्यः स्वाहा ॥ ३८॥

का० १८.५.१६. आज्यसे द्वादश गृहीत लेके विभागसे द्वादशांश  
करिके ऋतेत्यादि द्वादश मन्त्रोंसे प्रतिस्वाहाकार राष्ट्रमृत्संज्ञा  
आहुति होमें व्यतिषक्त द्वादश मन्त्रोंमें पूर्वो मन्त्रः स्वाहा वाडि  
त्यन्तः उत्तरस्ताभ्यः स्वाहेत्यन्तः ततः मन्त्र में जेषुल्लिङ्ग हैं-

सन इदं ब्रह्मेत्यादीनि तिन व्यवहित पठितों को भी निकालि पठिक  
 र पूर्वमन्त्रसम्पाद्यहैं। और जे स्त्रीलिङ्ग तस्योषधयोऽप्सरस इत्यादी  
 निहें तिन्हेंको उठायके उत्तरमन्त्रहै॥ द्वादश यजूंषि गन्धर्वाप्सरों  
 देवत्यानि। तत्रायं विभागः। ऋताषाडृतधामाग्निगन्धर्वः सन इदं  
 ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाडिति वाडन्तः पूर्वः पूर्वो मन्त्रः तस्योषध  
 योऽप्सरसो मुद्रो नाम ताभ्यः स्वाहेति स्वाहान्त उत्तर-उत्तरो मन्त्रः पू  
 र्वोगन्धर्वदेवत्यः उत्तरोऽप्सरदेवत्यः एवं पञ्चकण्डिका स्वप्यग्रे मन्त्र  
 विभागो ज्ञेयः। ऋताषाडृत संहितः २ सुषुम्णाः ३ इषिरः ४ भुज्युः ५  
 प्रजापतिः ६ इतिषण्णं पूर्वमन्त्राणामृताषाडित्यादिनामका गन्धर्वा  
 देवताः तस्योषधयः ७ तस्य मरीचयः ८ तस्य नक्षत्राणि ९ तस्यापः  
 १० तस्य दक्षिणाः ११ तस्य ऋक्सामानि १२ इतिषण्णमुत्तरमन्त्राण  
 मोषध्यादिनामका अप्सरसो देवताः। अथ मन्त्रार्थः। जो अग्निगन्ध  
 र्वहैं सो हमारे इस ब्रह्म (ब्राह्मणजाति) और क्षत्र (क्षत्रजाति) को रक्षा करें। कैसा  
 है गन्धर्व कि ऋताषाडृत सत्य को सहता अर्थात् असत्य में कुपित होता। तथा  
 ऋतधामा सत्य अविनश्वर धाम जिसका। जो ऐसा अग्नि तिस अ  
 ग्नि गन्धर्व के अर्थ स्वाहा वाड (वषट्कारेण) सुहुतमस्तु॥ १॥ तिस अग्नि  
 गन्धर्व की जो ओषधीएँ (व्रीधाद्या) नाम करिके अप्सराएँ स्त्रीत्वेन  
 भोग्याहैं। कैसी ओषधीएँ कि मोदित होतेहैं मनुष्य जिन्हें सैतिह ओ  
 षधीओं के अर्थ स्वाहा सुहुतमस्तु॥ २॥ ३॥

न पुरःसे पूर्वसे जुहो नीत्यादि प्रातः ५. ४. १. ६. १२। अग्निगन्धर्वमन्त्रार्थो दीर्घो नीयः।

संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्स  
 रस आयुवो नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै-

स्वाहा वाटताभ्यः स्वाहा ॥३६॥

जो सूर्य गन्धर्व सो हमारे व्र०। कैसा है कि संहितः (भले प्रकार से स्थापन करता है अहीरात्र को। विश्वसामासव साभहें प्रतिपादकत्व करि जिस के वा सर्व साम रूप तिस सूर्य ॥३॥ तिस सूर्य की मरीचिनामा तेजस्व सरेणवः) अप्सराएँ। कैसी किसमन्तातु मिश्री होती हैं ति न मरीचि ओं ॥४॥३७

सुषुम्णाः सूर्य रश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुर्यो नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाटताभ्यः स्वाहा ॥४०॥

जो चन्द्रमा गन्धर्व सो हमारे ०। कैसा कि सुषुम्णाः (शोभन सुखप्रदः याज्ञिकानां चन्द्रलोकाद्गैरुक्तत्वात्। तथा च सूर्य रश्मिः (सूर्य की सी किरणें जिसकी। तिसके ॥ तिसकी नक्षत्र +। नामा अप्सराएँ। कैसी रों कि भेकुर्यः क्रान्ति करती हैं। तिन्हों के ॥ ६॥४०॥

इषिरे विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यायोऽप्सरस ऊर्जो नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाटताभ्यः स्वाहा ॥४१॥

जो वायु गन्धर्व सो ह०। कैसा कि इषिरः (शीघ्रगमनः। विश्वव्यचाः (सर्वतो गमनः। तिसके ॥ तिसकी आपः नामा अप्सराएँ। कैसी हैं कि ऊर्जः (धान्य उत्पादन से जिलाती हैं। तिन्हों के ॥ ८॥४१॥

भुजुः सुपर्णे यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वा

स्वाहा वाटताभ्यः स्वाहा ॥३६॥  
जो सूर्य गन्धर्व सो हमारे व्र०। कैसा है कि संहितः (भले प्रकार से स्थापन करता है अहीरात्र को। विश्वसामासव साभहें प्रतिपादकत्व करि जिस के वा सर्व साम रूप तिस सूर्य ॥३॥ तिस सूर्य की मरीचिनामा तेजस्व सरेणवः) अप्सराएँ। कैसी किसमन्तातु मिश्री होती हैं ति न मरीचि ओं ॥४॥३७  
सुषुम्णाः सूर्य रश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुर्यो नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाटताभ्यः स्वाहा ॥४०॥  
जो चन्द्रमा गन्धर्व सो हमारे ०। कैसा कि सुषुम्णाः (शोभन सुखप्रदः याज्ञिकानां चन्द्रलोकाद्गैरुक्तत्वात्। तथा च सूर्य रश्मिः (सूर्य की सी किरणें जिसकी। तिसके ॥ तिसकी नक्षत्र +। नामा अप्सराएँ। कैसी रों कि भेकुर्यः क्रान्ति करती हैं। तिन्हों के ॥ ६॥४०॥  
इषिरे विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यायोऽप्सरस ऊर्जो नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाटताभ्यः स्वाहा ॥४१॥  
जो वायु गन्धर्व सो ह०। कैसा कि इषिरः (शीघ्रगमनः। विश्वव्यचाः (सर्वतो गमनः। तिसके ॥ तिसकी आपः नामा अप्सराएँ। कैसी हैं कि ऊर्जः (धान्य उत्पादन से जिलाती हैं। तिन्हों के ॥ ८॥४१॥  
भुजुः सुपर्णे यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वा

वृताभ्यः स्वाहा ॥४२॥

जो यज्ञ गन्धर्व सोह ० कैसाकि भुज्युः (पालन करता है भूतोंको।  
सुपर्णः (शोभन है स्वर्ग गमन जिसका उस यज्ञ के स्वर्गमें जातेय  
जमान जाता है। तिसके ॥४॥ तिसकी दक्षिणानाम अप्सराएँ। कै  
सीएँ कि स्तावाः (स्तुतिकरिये है यज्ञ और यजमान जिन्हों करि।  
तिन्हों के ॥१०॥४२॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक् सामान्य  
प्सरस एष्टयो नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा  
वाटताभ्यः स्वाहा ॥४३॥

जो मन रूप गन्धर्व सोहमारे ० कैसाकि प्रजापतिः (प्रजाका पालक।  
विश्व कर्मा (सब करता तिसके ॥११॥ तिसकी ऋक्सामा अप्सराएँ नाम  
प्रसिद्ध हैं। कैसी कि एष्टयः (काङ्क्ष्या करिये है अभीष्ट जिन्हों करि।  
तिन्हों के ॥१२॥४३॥ इति राष्ट्रभृद्धोमः समाप्तः ॥

सनो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य तः उपरि गृहा यस्य वे  
हा अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्मयन् स्वाहा ॥४४॥

को ०१८.५.१० राष्ट्रभृद्धोम के अनन्तर पूर्वसंस्कृत आज्य से पांचवा  
र लेकर आहवनीय के ऊपर प्रतिप्रस्थानादि सैधार्य माणरथ के  
शिरपर तिस आज्यको पञ्चधा घाँटिके पञ्चकत्वः होमें पञ्चवारं मन्त्र इ  
ति ॥ प्रजापति देवत्या प्रस्तार पङ्क्तिः। हे भुवन के पालक हे प्रजापते जि  
सनेरे स्वर्गमें गृह हैं अथवा जिसनेरे इह (भूलोक) में गृह हैं सो तू ह  
मारे इस ब्राह्मण और इस क्षत्रिय के अर्थ महत्सुख दे स्वाहा सु

हुतमस्तु ॥४४॥

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभिमावाहि स्वा  
हो मारुतोऽसि मरुता गणाः शम्भूर्मयोभूरभिमावाहि  
स्वाहा वस्यूरसि दुवस्वा अम्भूर्मयोभूरभिमा वाहि  
स्वाहा ॥४५॥ म-हा। अ०। मा-हा। इ०। अ-हा। उ०॥४५॥

प्रतिमन्त्र  
अथ वैलोक्य मारुतं इति ॥ अथ वैलोक्य मारुतं इति ॥ अथ वैलोक्य मारुतं इति ॥

का० १८०६१ रथ होम के अनन्तर तिस रथ को वेदी से उत्तर प्रा उमु  
ख खडा करितिसके तीनि स्थानों में तीनि वायु होमों को होमें प्रतिमन्त्र  
तीनों मन्त्रों से। रथ युगदक्षिण धुरोऽथः प्रथमम् उत्तर धुरोऽथो द्वितीय  
म् युग मध्याधस्तृतीयम्। क्या करिके कि बाहर वेदी के अञ्जलि करिवाति  
से लाके ॥ वायव्यानित्रीणि १ यजुः २ आर्षी उ० ३ सा-यं ० त्रिलोकस्थो  
वायुः स्तूयते। हे वायो जो तू ऐसा है सो तू मेरे अमिमुख आगमन करि  
स्वाहा-सुहुतं तेस्तु। कैसा किसमुद्रः (मले प्रकार जलों से लिन्न होता) न  
भस्वान् (नक्षत्र विद्यमान हैं जहां) आर्द्राः नुः (वृष्यवश्यायादिक को  
दिलाता) शम्भुः (एहिक सुख को प्राप्त कराता) मयोभूः (पारलौकिक-  
सुख को प्राप्त कराता) स्वर्लोक रूप है ॥१॥ मारुतः (मारुतों का है मरुतां ग  
णाः शुक्रज्योतिः प्रभृति १००-८५३६०७ गणों के निवासत्व से  
अन्तरिक्ष लोक है। शेष पूर्ववत् ॥२॥ अवस्यूः (रक्षा करने को चाहता-  
भूलोक रूप) है दुवस्वान् (हविर्लेक्षण अन्न विद्यमान है जिसका शिष्ट  
समानम् ॥३॥ ॥४५॥

यास्तेऽग्ने सूर्ये रुचो दिवं मातृन्वन्ति रश्मिभिः। ता  
भिर्नोऽग्न्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्तद्धि ॥४६॥

यावो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः । इन्द्राग्नीता  
भिः सर्वाभी रुच नो धत ब्रह्मस्यते ॥४७॥

का० १८.६.६ पूर्वसंस्कृत आज्यस्यै एक-एकवारलेकरनवाहुती  
होमें यास्ते १. यावः २. रुचनः ३. तत्वा ४. स्वर्णेति कण्डिकाकेपांच  
मन्त्रोंसे पांच ५. ६. ७. ८. ९. एवं नव ॥ द्वे व्याख्याते १३. २३. २३ ॥  
४६ ॥ ४७ ॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचर्तं राजसु नस्तृधि । रुचं  
विश्येषु शूद्रेषु मरिधेहि रुचा रुचम् ॥४८॥

अग्नि देवत्याऽनुष्टुप् । हे अग्ने हमारे ब्राह्मणों में दीप्ति आरोप  
ए करि । हमारे क्षत्रियों में दी० वैश्यों में और शूद्रों में दी० किं  
च हमारे विषें दीप्ति सहित दीप्ति (अनविच्छिन्ना दीप्ति) ॥ यद्वा ब्रा  
ह्मण राजन्य विरु शूद्रों में जो दीप्ति तिसै हमारे विषें स्थापन  
करि ॥४८॥

तत्वा यामि ब्राह्मण वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो  
हविर्भिः । अहं उमानो वरुणेह बोध्युरुशर्त्तुमान  
आयुः प्रमोषीः ॥४९॥

वरुण देवत्या त्रिष्टुप् अनुः शेषदृष्टा । हे वरुण यजमान हवियें दे  
नेसै जो + धनपुत्रादिक को इच्छा करता है जिस काम को तेरे लिये  
हविर्दिया वोह यजमानेष्ट तुरसे में यामि (याचना + करता हूं) वो  
ह तुरकरि के देने योग्य है । कैसा हूं मैं कि त्रयी लक्षण वेदसै तुमै स्तु  
ति करता किंच हे उरुशर्त्तुस (बहुस्तुते) इस स्थान में अ क्रोध होकर

+ निष० ३. १२

+ अत्र होतुं चोदन्ते तत्रैकस्य यज्ञपरिणामः कार्यः ॥



तू मेरी प्रार्थना जानि। किंच हमारा जीवन मत चुराइ अर्थात् पूर्ण आयु दे ॥४६॥

स्वर्णं घृमे; स्वाहा स्वर्णं र्कः स्वाहा स्वर्णं शुक्रः स्वाहा-  
स्वर्णं ज्योतिः स्वाहा स्वर्णं सूर्यः स्वाहा ॥५०॥

पञ्चाग्नेयानि १.३.४.५. दे-वि. २. दे-पं. सूर्यो हर्देववाची स्वशब्दः नवार्थः। अर्कश्च मेधसंतति संज्ञाः पञ्चाहुतयः। अर्क (अग्नि) अश्च मेध (सूर्य) तिन्हों की सन्तति ऐं अग्न्यादित्येक्य कारिका आहुति यें होमें। अथा अर्कश्च मेधयो रित्यादिष षण्णं शत ० ४. ४. ३. १८-२३ श्रुती नामनुसारेण मन्त्राणां व्याख्या यथा। न इवार्थः स्वः दिवसः। ऐंसे जो घर्म (आदित्य) तिसे स्वाहा (अग्निमें) होमताहूं तमग्नाविति शेषः पूरणीयः (आदित्य को अग्निमें स्थापन करताहूं)। स्वः (सूर्य) ऐंसे जो अर्क (अग्नि) तिसे आदित्य में स्थापन करताहूं। स्वः (देवता) ऐंसे जो शुक्र (आदित्य) तिसे आदित्य हीमें स्थापन ०। स्वः (स्वर्ग) ऐंसे यह ज्योति (अग्नि) तिसे अग्नि ही में स्थाप ०। एवं अग्नि को सूर्य में सूर्य को अग्नि में और सूर्य को सूर्य में और अग्नि को अग्नि में स्थापन करिके किंवहुना तिन्हों का संयोग करि सूर्य को उत्तम करे। स्वः (सर्वदेवरूप) ऐंसे जो सूर्य तिसे स्वाहा उत्तम करताहूं ५। एवं पञ्चाहुतिभिरग्न्यर्कयो रैक्यं विधाय सर्व देवेष्क र्कस्योत्तमत्वं कृतमिति भावः ॥५०॥

अ. ११ अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं वयसा ब्रह्मन्तम्। तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपठं स्वीरु

+ स्व-हा। अ. ५. ५. ३. १८. ॥५०॥  
५ अथ यानामनेकार्थत्वात् स्वाहा शब्द उत्तमार्थः सर्वदेवाभिन्नाभ्यान्त्याभासंते बलुनः सूर्य एव नाना रूपैः स्वीतीव शब्दार्थः।

स्वर्णं ज्योतिः स्वाहा स्वर्णं सूर्यः स्वाहा ॥५०॥  
+ दिनकरास्त्रिंशत्स्वर्णं स्वाहास्मिन्नाम्

हाणु अधि नाक मुत्तमम् ॥११॥

का. १८. ६. १६. प्रातरनुवाको पाकरणसै पहिले यथा पूर्वमिति उप-  
धानक्रमसै तीनि ऋचाओं करि प्रत्येक परिधी के स्पर्श करिके अग्नि  
योजन करै ॥ अग्नि देवत्या द्वे त्रिष्टुभौ तृतीया यङ्किः। बल और घृत क-  
रि अग्निको संयुक्त करता हूं। कैसे को कि दिवि में हुए। शोभन गमन  
वयसा (धूम करिके) वषे को +। किंचतिस अग्नि करिके युक्त ब्रध्न  
(आदित्य) के विष्टप वगत है ताप अर्थात् दुःस्वजिसका उस लोक को  
हम जावें। नः ब्रध्न विष्टप के ऊपर से स्वर्ग लोक को आरोहण कर  
ते हुए नाक (दुःस्वरहित) श्रेष्ठ लोक को जावें ॥५१॥

इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्यां रक्षार्थं सह पृथग्  
स्पृगे। ताभ्यां पतेम सुकृतां सु लोकं यत्र ऋषयो ज-  
ग्मुः प्रथमजाः पुराणम् ॥५२॥

हे अग्ने जो तेरे ये उत्तर दक्षिण पक्ष हैं। कैसे कि जरा रहित सदानवी-  
न। उत्पन्न शील। कि जिन पक्षों से तू राक्षसों को मारता है। उएवा-  
र्ये। ऐसे तिन्ही पक्षों से हम सुकृतां पुण्य करने वालों के लोक को  
जावें। कि जिस सुकृल्लोक में प्रथमोत्पन्न पुरातन ऋषि लोग ग-  
ये ॥५२॥

बन्तुर्दक्षः प्रपेन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुर-  
एयुः। मूहान्तस्य स्थे ध्रुव आ निषन्तो नमस्ते अस्तु  
आ मा हिरंसीः ॥५३॥

हे अग्ने जो तू एतादृश है तिस तेरे अर्थ नमस्कार हो तू मुझे हिंसा

+ अग्निर्वै पूषे जायते धूमदेवमवाहति तिस्रः ॥ ५३ ॥

मतकर। कीदृश है तू कि इन्दुः। ईश्वर वा चन्द्र वा दान्तादक। दक्ष (उत्साहवान्) श्येनः (श्येनपक्षिवत्) आकाशधारित्वात् यद्वा शंसनीयगतिः। अतावा (सत्य) यज्ञ वा उदकवाला। हिरण्यपक्षः (सुवर्ण) शकल हिरण्य रूप है पक्षजिसके। शकुन्तः (पक्ष्याकारः) भुरण्युः पोषकः। महान् (प्रभावेन) ध्रुवः (स्थिर)। ब्रह्माकरि सह स्थान में समन्तात् बैठा ॥५३॥

दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गेयामोषधीनाम्। विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्यथे ॥५४॥

का. १८. ६. १७. यज्ञायज्ञियस्तोत्र प्रकरण से पहिले दिवोमूर्धेति दो ऋचाओं करि दक्षिण उत्तर परिधिओं की संन्धिओं को उपस्पर्श करिके अग्निविमोचन करै ॥ आग्नेयी परोक्षिका। हे अग्ने जो तू ऐसा तिस पथ (स्वर्गमार्ग) के अर्थ नमस्कार हो (अग्नि मुखोहि देवयान पन्थाः श्रुतावुक्तः) केसा है तू कि दिवोमूर्धा (स्वर्लोक का उत्तमाङ्गस्थानीय) पृथिवी का नाभि (मध्यस्थानीय)। जल और ओषधीओं का सार। विश्वायुः (बहुजीवन वा सब प्राणियों का जीवन) शर्म (सर्वों का शरणभूत सप्रथाः (विस्तार सहित वर्तमान) तिर्यगूर्ध्वमधश्चानवलि न्न प्रभावः। ऐसे अग्नि के अर्थ नमः ॥५५॥

विश्वस्य मूर्धन्नधितिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वा-  
मुष्पो दत्तोदधिं भिन्त। दिवस्यर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथि-  
व्यास्ततो नो दृष्टाव ॥५६॥

आग्नेयी महापङ्क्ति जगती। हे अग्ने सो तू हमलोगों को दृष्टिक

रिके रक्षा करि। क्या करिके कि दिवः। (द्युलोक)से पर्जन्य (मेघ)से अन्तरिक्ष (आकाश)से पृथिवी के सकाश से अन्यत्र वा जहां जल ततः प्रदेश से जल लेकर इति शेषः। जोतूश्रितः (इन्द्रियों सुषुम्णा नाडी को आश्रित) होकर सबों के मूर्धन् (ऊपर में) रविरूप करि दीप्यमान है। जिस तेरा समुद्र (अन्तरिक्ष) तहां मध्यभाग पृथ्वी में चरल अर्थात् त्रिलोक व्यापी है। जिस तेरा जलों में जीवन ५ है। किंवहुना हे अग्ने उदधि (मेघों ॥) को भिन्धिकर जल दे ॥ ५५ ॥

इष्टो यज्ञो भृगुभिराग्नीर्देवसुभिः। तस्य न इष्टस्य  
अतस्य दैविणे हागमे ॥ ५६ ॥

का. १८. ६. १६. समिन्द्र ए इत्यादि नव ६ समिष्ट यजुओं ८. १५. २२ के होमान्त में इष्टो यज्ञः इष्टो अग्निः इन दोनों अपर आग्निक दो समिष्ट यजुओं को होमें ॥ यज्ञदेवत्या उषिगगालवदृष्टा। अध्वर्युर्द्रव्यं प्रत्याह। हे द्रव्यतिस यजमान के इस सदन में तू आ। कैसे यजमान कि हमारे इष्ट (प्यारे के) तिस किस के कि जिसके भृगु गोत्री ब्राह्मणों और वसुओं आदि देवताओं करि इष्ट सम्पादित है। के सा यज्ञ कि आशिओं (अभिलषित पदार्थों) का दाता। अर्थात् ब्राह्मणों देवताओं करि जिसका यज्ञ किया तिसके घर में तू सर्वदा ठैरि ॥ ५६ ॥

इष्टोऽग्निं राहुतः पिर्यतु न इष्टं हविः। स्वगेदं  
देवेभ्यो नमः ॥ ५७ ॥

अग्निदेवत्या गायत्री गालवदृष्टा। अग्नि हमारे अभिलषित को पूर्ण वा पालन करे। केसा अग्नि कि कृतपागः। हवि करिके सम

यजमानाधीनः जीवनं तत्र जन्तु दक्षः जन्तु ततोऽग्निं रित्यन्ते जलाधीनः जीवनं तत्र

न्नात् तर्पितः। किंचयह नमः हविः समिष्टयजुर्लक्षणे देवताओंके  
अर्थ हो। कैसा कि स्वयं गमनशील॥ १७॥

अ० १२ यदा कृतात्समसुसोद्धो वा मनसो वा सम्भृतं चक्षुषो  
वा। तदनु प्रेत सुकृतोऽमु लोके यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथ-  
मजाः पुराणाः॥ १८॥

का० १८. ६. २२. साग्निचित्ये मैत्रावरुण्य नूबन्ध्या वैश्यमेकाभवति-  
तेन तिसकी हृदय शूल संबन्धिसमिदाधानान्न करते यदा कृतादि  
ति प्रति ऋचा आठ सुवाहती होमें॥ अष्टावृत्त अग्नि देवत्या वि-  
श्वकर्म दृष्टा तृतीया देवी वा आद्या जगती तिसस्त्रिष्टुभः चतस्रोऽ-  
नुष्टुभः। हे ऋत्विज ओ तुम तिस प्रजापति के किये कर्म की अनुसरो  
अर्थात् प्रजापति के शरीर से उत्पन्न जो वैदिक कर्मनिसे करौ। तिस  
कर्म के करने से पुण्यवानों के लोक (स्वर्ग) को जाओ कि जहां पूर्वोत्पन्ना  
पुराण (पहिले) और नये अजर अमर ऋषिलोग गये। बोह कोन कर्म  
कि जो प्रजापति के आकृत (अभिप्राय) वा हृदय बुद्धिमान संकल्पात्म-  
क और चक्षुरादि इन्द्रियों से प्रसृत हैं अर्थात् प्रजापति ने जो सर्वांगी  
करि कर्म सृजातिसे करिके स्वर्लोक को जाओ। कैसा कर्म कि सम्भृत (स-  
म्भारों से पुष्ट पूर्ण सामग्री) क॥ मनः प्रवर्तक आत्मनो धर्म आकृ-  
तम्॥ १९॥

एतद्धं संधस्य परि ते ददामि यमावहा छेवधि जातवेदाः॥  
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वोऽत्र तथै स्म जानीत परमे  
व्योमन्॥ २०॥

सहतिष्ठन्ति देवा यत्रेति सधस्थः स्वर्गः तं प्रार्थयते। हे सधस्थ इस यजमान को तैरे अर्थ देता हूँ। जात वेदा (अग्नि) जिस देवधि (सुखनिधि) आहुति यरिणामभूत) को प्राप्त करता है। तिस यज्ञ फलभूत और सुख निधि को तुम्हें देता हूँ। अर्थात् दोनों को रक्षणार्थ तैरे अर्थ देता हूँ॥  
 एवं यजमान और यज्ञ को स्वर्ग में समर्पण करित तस्थान् देवानर्थयते अन्विति हे देवता ओ यज्ञपति (यजमान) तुम्हें कर्म समाप्ति में प्रत्याग मन करता है। इस उत्कृष्ट व्योम (आकाश-स्वर्गभूत) में आयेति स यजमान को तुम जानो अर्थात् स्वर्ग में आया वोह तुम लोगों करि सम्भावनीय है॥ ५५॥

एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य।  
 यदा गच्छात्यथिभिर्देवयानैरिष्टा पूर्ते कृणा वायावि  
 रस्मे॥ ६०॥

सहतिष्ठन्ति सधस्थाः॥ उत्कृष्ट स्वर्गभूत आकाश में सहस्थिता हे देवता ओ इस यजमान को जानो। किंच इस यजमान के रूप (वित्त) को जानो। विदित रूप यह यजमान जब कि देवयान (स्वर्ग मार्ग) करिके आवै है सब दृष्टा पूर्त श्रोत स्मार्त कर्म फल इस यजमान के अर्थ प्रकटी करे अर्थात् देओ॥ ६०॥

उद्बुध्य स्वाग्ने प्रतिजागृहिः त्वमिष्टा पूर्ते सः संजेयाम  
 यं च। अस्मिन् सधस्थेऽप्युत्तरस्मिन् चिश्च देवा य  
 जमानश्च सीदत॥ ६१॥

येन बहसि सहस्रं येनाग्ने सर्व वेदसम्। तेनेमं यज्ञं



नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥६२॥

हे व्याख्याते १५-१४-१५ ॥६१॥ ६२॥

प्रस्तरेण परिधिना सुचा वेद्या च बर्हिषा । ऋचेमं य

ज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥६३॥

हे अग्ने देवताओं प्रति प्राप्ति योग्य इस हमारे यज्ञ को स्वर्ग प्रति प्राप्ति करि। कैसे को कि प्रस्तर (सुगाधार भूत-दर्भमुष्टि) करि परिधि-ओं (तीनों बाहु मात्रकाष्टों) सुचा (जुहादिकाओं) वेदी वा मिताभूमि बर्हि (दर्भपूलक) और ऋचा (ऋगादि मन्त्रों) करि उपलक्षित को इति शेषः ॥६३॥

यहूतं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः । तद्गनिर्वैश्वकर्मेणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥६४॥

वैश्वकर्मा (प्रजापति से हुआ) विश्वकर्ता अग्निः हमारे तिसदान को स्वर्लोक में देवताओं के मध्य में स्थापन करे फल भोग के अर्थ। वोह कोन कि जो दत्त (भार्या पुत्रजा मातृ भगिनी तत्पत्यादिकों के अर्थ दिया) और जो परादान (दयादि करि अन्ध पशु कृपणादिकों के लिए दिया) और जो पूर्त (स्मृति विहित विप्र भोजन वापी कूपतडागा रामादि) और जो दक्षिणा (यज्ञ सम्बन्धिनी) यज्ञे गते यज्ञाङ्गत्वाद्यजमान स्वर्गत एव ॥६४॥

यत्र धारा अने येता मधो धृतस्य च याः । तद्गनिर्वैश्वकर्मेणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥६५॥

विश्वकर्ता अग्नितिस स्वर्ग में देवताओं विषे हमें स्थापन करे कि

जिस देशमें मधु घृत की च ओर-ओर पय दधि आदिकों की धारा  
(प्रवाह) अनपेता (उपसृज्य माना अप्यक्षीण) वर्ते हैं ॥ ६५ ॥

अग्नि रस्मि जन्मना जात वेदा घृतं मे चक्षु रमृतं मः  
आसन् । अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो  
हवि रस्मि नाम ॥ ६६ ॥

अग्न्य द्वैत वादिनी त्रिष्टुप् भारती देवश्रवा देववात दृष्टा यज्ञे  
विनुयुक्ता । अग्नि प्रकरणत्वाद्यजमान आत्मान मग्नि त्वेन ध्या  
यति । जन्मना-उत्पत्यैव में अग्नि (अग्नि रूपाहं) । नाम करि हविः  
(पुरोडाशदिक) में हूं । कैसा हूं में कि जात वेदाः (जात जात विन्द  
त इति-सब उत्पन्न का स्वामी) । अर्कः (अर्चनीय-यज्ञ-विधातुः  
(ऋग्यजुः साम लक्षण जिसके) । रजसो विमानः (उदक् कानिमो  
ता । अजस्रः (अनुपक्षीण) । घर्मः (आदित्य रूप वा मैध रूप । ए  
ता दृशः अग्नि में हूं । यतस्ततः घृत मेरे नेत्र (घृत हो) भी की देख  
ता हूं इति भावः । अमृतं मः आसन् (हवि मेरे मुख में हो मे हविकों  
अमृत करता हूं इति भावः) । एव मात्म न्यग्न्य द्वैतं सम्पाद्यम् ॥ ६६ ॥

ऋचो नामास्मि यजूंश्च विनामास्मि सामानि नामास्मि  
येऽग्नयः पाञ्चजन्या अस्यां पृथिव्या मधि ।  
तेषामसि त्वमुत्तमः प्रनो जीवा तवे सुव ॥ ६७ ॥ †

ऋचः ॥ आत्म देवत्यं यजुः ॥ यज्ञेऽस्य विनियोगो नास्ति । यजमानो  
ऽनेनात्मनि वेदत्रयात्मकं भावयति । नाम करिके में ऋचा (ऋग्वे  
दरूप) हूं यजुर्वेदरूप० सामवे० ॥ का० १८० ६० २३ चित्य अग्निका

चित्रोऽसि यह नाम रख कर तिसें उपस्थान करियें है कर्म शेष को स  
माप्त कर इस उपस्थान को करना उपस्थान के अनन्तर समारोपविधा  
न से इति सूत्रार्थः ॥ अग्निदेवत्यानुष्टुप् । इस पृथिवी के ऊपर में जे अग्नि  
एँ वर्तें हैं । कैसे कि पञ्चजन्याः (मनुष्यों के अर्थ अहित वा पञ्चचि-  
ति रूप) हैं । हेचित्याग्ने तिन पृथिवीस्थ आगियों में तू श्रेष्ठ है । पतः  
हमें चिरजीवन के अर्थ प्रेरि ॥ ६७ ॥

अ० १३ वार्षहत्याय शर्वसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तया  
मसि ॥ ६८ ॥

का० १०.७.१२ मृत्युराणानन्तर इसचिति को उपस्थानकरै सप्त ऋचाओं से कोईक आचार्य अष्ट वा दश ऋचाओं से उपस्थानक रते हैं ॥ आग्नेय्यः सप्त ऋच इन्द्रहृष्टाः । आद्ये द्वे द्वे हेन्द्र देवत्येगा यत्री त्रिष्टुभौ विश्वामित्रेणपि हृष्टे । हे इन्द्र हमतुम्हें उपस्थित करते हैं । किमर्थ कि तेरे बल की वृद्ध्यर्थ । कैसे बल के कि द्वे देवत्य के या त समर्थ । और शत्रु सेना पराभव समर्थ के अर्थ ॥ ६८ ॥

सहस्रानुं पुरुहूत क्षियन्ते महस्तमिन्द्र सम्पिणक्कुण  
रुम् । अभिदुत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा  
जघन्य ॥ ६५ ॥

हे पुरुहूत (बहुतों करि आहूत) हे इन्द्र तू सहदानु शत्रु<sup>+</sup> को हल  
हीन करि के भले प्रकार चूर्ण करि। कैसे को कि निकट में बसता।  
कुणारु दुर्वचन करता। हे इन्द्र वृत्र दैत्य को पादहीन करि के तूवल  
करि भले प्रकार मारि। कैसे वृत्र कि वर्धमान (जगद्भाषुवन्त को)।

सहस्रमयैः श्लिखितु समर्थ इति यः शत्रुं प्रेष्य सहो बलं ददाति स सहानु पक्षे एकीभूय यत्तु मेव ददाति सहदानुः शत्रुः ।

पियारु(देवताओं के हिंसा करने वाले)को ॥६६॥

विने इन्द्र मृगो नहि नीचा पैछ पृतन्यतः। सोऽअस्मोर  
ऽअभिदा सत्यधरं गमया तमः ॥७०॥

भारद्वाज सुत शासदृष्टा। व्याख्याता ८.४४.॥७०॥

मृगो नभीमः कुचरो गिरिष्ठा परावतः। आजगन्था प  
रस्याः। सुकठं स्रष्टुं शाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ता  
टिवि मृगो नुदस्व ॥७१॥

जय दृष्टा त्रिष्टुप्। हे इन्द्र परस्याः परावतः (दूरदेश और दूरदिशा)  
से आगमन करि। और आकर शत्रुओं को विशेषेण ताडि। और  
संग्रामों को विशेषेण दूर करि। क्या करि के कि पवि(वज्र)को तीक्ष्ण  
करि के। कैसे पवि कि शत्रु शरीर विषे चलते तिसै। तिग्म (उत्साहव  
न्त। कैसे कि मृगोन (जैसे मृग सिंह दूरसे चलकर प्राणियों को  
मारता। कैसा कि भीम (भयंकर) कुचरः (कुत्सित चलने वाला)। गि  
रिष्ठाः (पर्वताश्रयः) ॥७१॥

वैश्वानरो न उतयः आ प्रयातु परावतः। अग्निर्नः  
सुष्टुतीरुप ॥७२॥

हे वैश्वानर देवत्ये गायत्री त्रिष्टुभौ द्वितीया कुत्सदृष्टा। वैश्वान  
र (अग्नि) हमारी शोभना स्तुति श्रवण करने को दूरदेशसे आवै  
किस लिये कि हमारे रक्षा करने को ॥७२॥

पृष्टो दिवि पृष्टोऽअग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओष  
धी रा विवेश। वैश्वानरः सहसा पृष्टोऽअग्निः स

नो दिवा स रिष्यातु नक्तम् ॥ ७३ ॥

वैश्वानर (अग्नि) दिवस में हमें रक्षा करे और बोहरात्रि में हमें रक्षा करे अर्थात् सर्वदा हमें रक्षा करे। वोह कौन कि जो अग्नि दुःलोक में पृष्ठ है कौन यह आदित्यात्मा करितपता मुमुक्षुओं से पृष्ठ है (अन्तरिक्षेय मेतमादित्ये पुरुषं वेदयन्ते स इन्द्रः स प्रजापति स्त इत्येति श्रुतेः)। और जो अग्नि पृथिवी (अन्तरिक्षलोक) पृष्ठ है कौन यह विद्युदात्मा करि स्थित अलार्थिओं से पृष्ठ है। और जो सब ओषधी-ओं (ब्रीही आदिकों) से पृविष्ट हो पृष्ठ है कौन यह प्रजा-ओं का जीवन हेतु ताप पाक प्रकाश से उपकरता है। और बल करि अश्वर्य करि मथ्यमानः सन् पृष्ठ है कौन यह मनुष्यों से मथिये हैं। सो यह अग्नि दिन रात्रि बध से रक्षा करे अर्थात् हमें न मारे ॥ ७३ ॥

अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्यामरयिषं रयिवः सुवीरम् । अश्याम वाजमभि वाजयन्तो अश्याम युम्न मजराजरं ते ॥ ७४ ॥

आग्नेय्यो कामवत्यो द्वे त्रिष्टुभो आद्या भरद्वाज दृष्टा । हे अग्ने तेरे पालन करि हम तिस काम (अभिलाष) को प्राप्त हों वें अर्थात् तू तिसै इच्छा करते हैं। हे रयिवः (धनवन्) सुवीररयि (शोभन पुत्रों सहित धन) को प्राप्त हों वें। वाजयन्तः (बन्धि पूजा करते) अन्न को समन्तात् प्राप्त हों वें। हे अजर (जरारहित) अक्षीण तेरे युम्न यश को प्राप्त हों वें अर्थात् सर्वदा यशस्वि हों वें ॥ ७४ ॥

वयं ते ऽश्रुद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोप  
सद्यः । यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्त्रेधता मन्मना  
विप्रो ऽग्ने ॥ ७५ ॥

कतिसुन उत्कीलदृष्टा। हे अग्ने जिस कारण हम तेरे अर्थ काम (हवि) देते हैं। क्या करिके कि नमस्कार करि उपसद्य अर्थात् निकट आकर हवि देते हैं। कैसे हैं हम कि ऊंचे हैं हाथ जिन्हों के अर्थात् खोली हैं मुठी छोड़ों हैं कार्यण्य। तथा मन करि उपलक्षित सावधान। कैसे मन करि किय जिष्ट (अतिशयेन यष्ट) तथा अनन्यगत। मन्मदेवतायायात्म्यज्ञ। यतः एतादृशेन मनसा हम हवि देते हैं अतः हे अग्ने विप्र (मेधावी) तू देवताओं को पूजि अर्थात् मेरे विये हविसे देवताओं को तर्पण करि ॥ ७५ ॥

धाम छद्ग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । सचेतसो विश्वे दे  
वा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥ ७६ ॥

विश्वदेव देवत्यानुष्टुप्। एते देवा हमारे यज्ञ को रक्षा करें अर्थात् अन्यूनातिरिक्तिकरे (अन्यूनातिरेक एव कर्मणोरक्षणम्) शुभ (दृष्ट स्थान) और स्वर्ग में स्थापन करें इति शेषः यद्वा शुभस्थान में यज्ञ को प्रकृष्टेन रक्षा करें। एते के कि अग्निः देव इति सर्वत्र सम्बन्धनीयम् ॥ इन्द्रः ब्रह्मा चतुर्मुखः बृहस्पतिः (जीव) और विश्वे देवा धामों (स्थानों) को आछादन न्यूनों को पूरण अति रिक्तों को समीकरण इदं सर्वेषां विशेषणम्। तथा सचेतसः (प्रज्ञाया सहिताः) वासमानचित जिन्हों का। समाना अग्न्या द्यो मयज्ञं रक्षन्ति त्वर्थः ॥ ७६ ॥



त्वं यविष्ठ दास्युषो नृः पाहि शृणुधी गिरिः । रक्षा तोकमु  
तत्तमना ॥ ७० ॥

इति सर्गहितायां त्रयो दशोऽनुवाकः १३

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिन प्रारखीयायां वाजसनेयसर्गहिता  
यां दीर्घपाठेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

व्याख्याता १३. ५२. ॥ ७० ॥

इति भाष्ये त्रयो दशोऽनुवाकः १३

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
प्रमार्थोऽनुरोदेयादग्निदेवः सनातनः १८

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमध्यन्दिनीयशाखध्येतव्याघ्रपादान्वयवि  
श्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेववम्भोत्तमजरोक्किणाय  
नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येगिरिप्र-  
सादसर्वश्वेवसोर्ध्वाणदि चित्युपस्थानान्तवर्णनो नामाष्टादशोऽ-  
ध्यायः ॥ १८ ॥ आदितः अनुवाकसंख्या ॥ ६७ ॥

इति सर्वानुक्रमणिभाष्येगिरिप्रसादरचिते वेदार्थप्रदीपे-  
द्वितीयाध्यायस्यैकत्रिंशोः खण्डः ३१

चैत्रेमासे शुक्लपक्षे त्रयो दश्यां रवौ दिने  
ग्रहनेत्राङ्गभूवर्षेऽग्निमन्त्राः समागमन्  
अतः परं विभिरध्यायेः सौत्रामणीमन्त्रा उच्यन्ते

विश्वामित्रपुराणनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाशमयन्त्रालये मुद्रितम्  
विक्रमाब्दः १८२४ शकाब्दः १७४४ ज्येष्ठकृष्ण ३ भृगुवार ॐ शान्तिः

**हरिः श्रीम**  
**अथ संक्षेपतः सूचीपत्रम्**

अथाग्निमन्त्राणां सूचीपत्रम्					
पृष्ठांक	पंक्त्यांक	विषय	पृष्ठांक	पंक्त्यांक	विषय
४०१	७	प्रथमचितिमन्त्राः	६७६	४	युग्मस्तोम होम मन्त्राः
५२८	८	द्वितीयचितिमन्त्राः	६७६	२१	वयो होम मन्त्राः
५३६	६	तृतीयचितिमन्त्राः	६७७	१६	नामग्राह होमः
५४२	१२	चतुर्थचितिमन्त्राः	६७८	४	कल्प होमः
५५३	१४	पञ्चमीचितिमन्त्राः	६८०	४	इतिवसोर्धोममन्त्राः समाप्ताः
५८८	६	शतरुद्रियहोममन्त्राः	६८०	५	वाजप्रसवीयानि
६१६	८	चित्यपरिधेकादिमन्त्राः	६८२	१४	अभिषेकः
६२४	२१	वैश्वकर्महोममन्त्राः	६८३	१५	गृष्टभृद्धोमः
६३३	१०	अप्रतिरथसूक्तम्	६८६	१४	रथशिरसिहोमः
६३७	२०	अप्रतिरथसूक्तसमाप्तम्	६८७	२	वायुहोममन्त्राः
६५२	७	पूर्णहूतिमन्त्रम्	६८७	२०	नवाहुतीः
६५३	५	मरुद्धोममन्त्राः	६८८	२०	अग्नियोजनम्
६५५	१६	मरुद्देवत्यं यजुः	६८९	७	अग्निविमोचनम्
६५६	४	यज्ञस्तुतिर्वसोर्धोमिवादिनीघृतस्तुतिर्वा	६९२	८	समिष्टयजुर्होमः
६६५	८	वाजश्रेत्यादियजुर्भिर्यज्ञसमानोऽग्नेः कामान्याचते	६९३	३	यदाकृतादित्यश्चर्चः
६७२	७	अर्धेन्द्रहोममन्त्राः	६९६	३	अग्न्यहेतवादिनी
६७३	४	ग्रहहोममन्त्राः	६९७	१६	आत्मदेवत्यं यजुः
६७४	१३	यज्ञक्रतुहोममन्त्राः	६९७	१७	चित्राग्न्युपस्थानम्
६७५	८	अयुग्मस्तोमहोममन्त्राः	७०१	७	पुरीषवतीचित्युपस्थानम्
			७०१	२१	इति सूचीपत्रम्

## वेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये

हरिः ओम्

ओं नमो यत्तपुरुषाय

पञ्चात्मकद्विरूपं च साधनैर्वह रूपकम्  
स्वानन्ददायकं कृत्स्नं ब्रह्मरूपपरं स्तुमः १५

अथ सौत्रा मणी प्रजापते रार्षमश्विनो सरस्वत्याश्च

अ० १ स्वाहीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणा मृता मृतेन । मधुमतीं  
मधुमता सृजामि सटं सोमेन । सोमोऽस्य श्विभ्यां पच्यस्व  
सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्रामो पच्यस्व ॥ १ ॥ †

नत्वा सरस्वती देवी मश्विनौ च पुरन्दरम्  
प्रदीपे त्रिभिरध्यायैः सौत्रामाण्यः समीर्यते १५

अथ सौत्रा मणी मन्त्रास्त्रिभिरध्यायैस्तेषां प्रजापत्यश्विसरस्व-  
त्य ऋषयः ॥ ऋद्धिं काम स्याग्निचितो मुखेतरछिद्र सोमवा-  
मिनो मुखेन सोम वामिनो राज्यच्युतनृपस्य पशुकामस्य च सं-  
त्रामणीयागः ॥

ओनमोयाज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेनाध्यायोनवदशोऽधुना  
सुरादीन्द्राभिषेकान्तोवेदभाष्ये समीर्यते ॥ १६

अन्तःपात्यस्थानमें गोचर्मविषे इतने पदार्थ स्थापन करेंगे सोमसुरा  
विक्रयी वाली वसे मोल लेकर सीसा (धातु) से शष्य (विरूढा व्रीह  
यः) लेकर ऊर्ण (ऊन) करि तोकों (विरूढायवों) को सूत्र से लाजाभ  
ष्ट व्रीहयों को किसी एक द्रव्य से नग्नहु (सर्जत्वक् त्रिफला शुण्ठी पु  
नर्नवाचतुर्जातकपिप्यलीगजपिप्यलीवंशावकाहृहच्छत्राचित्रकेन्द्रवाण्य  
श्वगन्धाधान्यकयवानी जीरकद्वयहरिद्राद्वयविरूढयवव्रीहयः) को  
शष्य तोक लाज नग्नहुओं को दक्षिण द्वार से अग्नि गृह प्रति  
लेजा के भले प्रकार चूर्ण करि दर्शपोणमासधर्म से व्रीहि श्यामाक  
के चरु बहुत जल में पकाकर श्रुतालम्भ के अनन्तर तिन चरुओं के  
उष्ण निःस्त्राव को पृथक् पात्रों में लेके शष्यादि चारों के चूर्णों से मि  
लाय स्थापन करेंगे दोनों आचाम रूप चूर्णों की मासर संज्ञा है ॥ का.  
१६. १. २१. एवं आचाम चूर्ण संसर्ग से मासरत्व निध्यादन के अन  
न्तर ओदनों व्रीहि श्यामाक चरुओं को चारों चूर्णों से मिलाकर  
स्वाहीत्वा १ दूध मन्त्र और अहं शुना ते २०. २०. इस ऋचा से एक पा  
त्र में चूर्ण संसृष्ट ओदनों को मासरों से मिलाकर शाला के नैऋत्य  
कोण में गर्त करके तीनिरात्र स्थापन करेंगे। अयमर्थः। चरुओं को  
उद्दासन करि दोनों का पृथक् आचाम ग्रहण है ततः त्रिधा किये  
शष्य तोक लाज चूर्णों के तृतीयांश को देधा करके आचाम ओ

में डालें. ततः नग्नहु चूर्ण द्वेधा करिके एकार्ध को द्वेधा विभागक  
 रि आचाम ओं में डालें। एवं चूर्ण संसृष्ट आचाम ओं की मासर-  
 संज्ञा है। ततः श्राव्य तो कमलाज चूर्णों के दूसरे तृतीयांश को द्विधा  
 करिके एक-एक भाग ओदन ओं में डालें. नग्नहु चूर्ण के द्वितीया  
 र्ध को द्वेधा करिके ओदन ओं में डालें. ततः ओदन ओं को एकपा  
 त्र में करिके तत्र आचाम ओं को डालें. ततः स्वादीं त्वा अर्धं शुना  
 ते इन मन्त्रों से चूर्ण मासर सहित ओदन ओं का आङ्गालन क  
 रिके संसर्ग करना ततः त्रि एव निधानं हे श्राव्य तो कमलाज चूर्णों  
 के तृतीयांश का प्रतिदिन सुर में निवा पार्थ रक्षण है इति सूत्रार्थः  
 स्वादीं त्वा। सुर सोम देवत्या नुष्टुप् सुर रूपः सोमो देवता। अथ मं  
 त्रार्थः॥ हे सुरे तू मे सोम से संयुक्त करता हूँ। कैसे तू मे सादीं (मिष्ट)  
 मिष्ट रसा। तीर्त्रां (शीघ्र) मदन जनका। अमृत तुल्या। मधुर स्वादोपेता।  
 कैसे सोम से कि मीठे कटुरस सुधा तुल्य मधुर स्वादु॥ सोमोऽसि।  
 चत्वारि यजूंँसि १० दे-अ० २० या-गा० ३० या-उ० ४० या-वृ० सुरादे  
 वत्यानि। पूर्व एव विनियोगः॥ हे सुरे तू सोम संसर्ग से सोम है अतः  
 तू मे कहिता हूँ कि अश्विनी कुमारों के अर्थ पाक हो और सरस्व-  
 ती के अर्थ पाक हो और भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र के॥१॥  
 परीतो विञ्चता सुतर्दं सोमो य उन्नमर्दं हविः। दध  
 न्वा यो नर्योऽप्रप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः॥२॥  
 का० १४. १. २२-२७. सायं होम के अन्त में अश्विभ्यामपाकरोमि  
 इति हाथ से एक गौ को स्पर्श करि तिसे दुहिके दुग्ध से अध्वर्यु सुरा

को सींचे परीत इस मन्त्र से। रक्षित शय्य चूर्णों के तृतीयांश को सुरभाण्ड में डाले। दूसरे दिन की निशान्त में सरस्वत्याऽऽपाक रोमि इति दो गौःओं को स्पर्श करि तिन्हों के दुग्ध से तिसी मन्त्र करि सुरा को सींचे और तोकन चूर्ण के तृतीयांश को डाले। तीसरे दिन रवि में इन्द्राय सुत्रामोऽपाक रोमि इति तीन गोरों स्पर्श करि तिन्हों के एक की किये दुग्ध से सुरा को सींचे तिसी मन्त्र करि और लाज चूर्ण तृतीयांश को डाले॥ भरद्वाज दृष्टा सोम देव त्या ब्रह्मती। हे ऋत्विः इतः गौ के सकाश से गृहीत दुग्ध करि इति शेषः अभिषुत सोम परिस्र द्रूप को तुम पर इतः सींचो। तिस किसे कि जो सोम सब हवियों में श्रेष्ठ है और जो नरों के अर्थ हित होते यजमान को धारण करता हुआ। जलों के मध्य वर्तमान जिस सोम को पाषाणों से अध्वर्यु अभिषवन करता हुआ। तिस सोम सुरा रूपा पन्न को पय से सींचो इति सम्वन्धः॥२॥

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क सोमोऽतिद्रुतः॥ इन्द्रस्य युज्यः सरवा॥ वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क सोमोऽतिद्रुतः॥

इन्द्रस्य युज्यः सरवा॥३॥ + वा-स्वा॥ अ० ४३॥३॥

का० २४०२०८-१०० वायोः पूतः इति द्वे ऋचौ पुनाति तः इति तृतीया तासां व्युत्क्रमेण विनियोगमाह। पूता सुरा को लेकर गोऽश्वकेश निर्मित छत्रे से पलाश पात्र में तिसै छाने पुनाति ते ४० इस मन्त्र से तिसै वारण करना केचित् मुखेतर छिद्र सोम वामिन यजमान के सौ वामणि में वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क इति मन्त्र से सुरा को छानते हैं और मुखेन सोम वामि यजमान के वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क इति मन्त्र



सैं सुरा को छानते हैं ॥ ऋ क्रयमाभूति हृष्टं सोमदेवत्यं शायत्रम् । अन्य  
च्चति (अधोमुखचलता - गुदद्वारा गया) सोम पवित्र (उदरान्तर्वर्ति) ।  
वायु करि पूत (शुद्ध) है । कैसा कि इन्द्र का योगार्ह सरवा ॥ प्रा च्चति (ऊँ  
चे चलाता - मुखसे निकलता) सोम पवित्र (हृदयान्तर्वर्ति) वायुसे पूत  
है जो इन्द्र का योग्य सरवा ॥ ३॥

पुनाति ते परिस्वुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्व  
ता तना ॥ ४ ॥

अध्वर्युर्यजमानं प्रत्याचष्टे । हे यजमान सूर्य की दुहिता (पुत्री) शश्व  
तेरे परिस्वुत (सुरा) और सोम को पवित्र (शोधन) करे । यद्वा लुप्तोपमा-  
नम् तरे परिस्वुत को सोम वत्पवित्र करे । यद्वा सोमरूपा यन्ता परिस्वुत  
को शश्व शोधे । किस छाने करिकि अश्व बालनिर्मित । कैसे किशश्व  
त (अनादि) तथा तन (धनरूप) करि ॥ ४ ॥

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियं सूर्या सोमः सुत आ  
सुतो मदाय । श्रुकेण देव देवताः पिप्रग्धि रसेनान्नं य  
जमानाय धेहि ॥ ५ ॥

का० १६.२.११ अज मेष लोमकृत छाने में वेतस पात्र विषे उत्तर  
दिशामें दुग्ध को छानें ब्रह्म क्षत्रमिति मन्त्रेण ॥ सुरा सोम देवत्यादि  
षूप । हे देव सोम श्रुके (शुद्ध - वीर्य) करितू देवताओं (अग्न्यादिकों)  
को तृप्त करि । पुनः रस (घृतादि) सहित अन्न यजमान के अर्थ  
दे । क्योंकि सोम तू अभिषुतः मन् ब्राह्मण क्षत्रिय को तेज (कान्ति)  
इन्द्रिय (इन्द्रिय सामर्थ्य) देता है । आसुतः सुरया तीव्री कियेस

अश्व बालनिर्मितः

अपचयः

न तू मदके अर्थ होती है। अर्थात् ईदृशसामर्थ्ययुक्त तू देवताओं और यजमान को अभीष्टेन पूर्ण करि ॥५॥

कुविदङ्ग पवमन्तो यव चिद्यथा दान्त्येनु पूर्व विपूये।  
इहे हैंषा कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यज  
न्ति। उपयाम गृहीतोऽस्य श्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय  
त्वा सुत्राम्णा एषते योनि स्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बला  
य त्वा ॥६॥ + कु-न्ति। अ०। उ-मो। इ०। ए-त्वा। उ०॥६॥

का० १६.२.१३.१४. एवं सुरा पय को छानिकर कुविदङ्गेति मन्त्रेण  
तीनि पयो ग्रहों को ग्रहण करै- मन्त्र पाठ में उपयाम गृहीतोऽसि  
एषते द्वे यजुषी एकवार पटीहुई तीनों ग्रहों में पृथक् होती हैं ॥ त  
तश्चेते मन्त्राः। कुविदङ्गेति ऋचा को पठिके उपयाम गृहीतोऽ  
स्य श्विभ्यां त्वा। ऋग्व्याख्याता १०.३२. हे पयो ग्रह तू उपयाम पा  
त्र करि गृहीत है अश्विनी कुमारों के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ।  
सादयति एषते योनि स्तेजसे त्वा। यह तेरा स्थान तेज के अर्थ तुम्हें  
सादन करता हूँ। द्वितीये पयो ग्रहे कुविदिति पठित्वा उपयाम गृही  
तोऽसि सरस्वत्यै त्वा। सरस्वती के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ। सादय  
ति एषते योनि वीर्याय त्वा। वीर्य के अर्थ तुम्हें सादन करता हूँ ॥ तृ  
तीय पयो ग्रहे कुविदित्यन्ते उपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा सु  
त्राम्णा। रक्षक इन्द्र के अ०। सादयति एषते योनि बलाय त्वा।  
बल के अर्थ तुम्हें सा०॥ एतेषां क्रमादश्वत्यो दुम्बरन्यग्रोधया  
वैर्ग्रहणम् ॥६॥

नाना हि वा देवहितं सदैव स्तुतं मासर्धसंक्षया परमे  
व्योमन्। सुरात्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा माहि र्दंसीः  
संयोनिमविशन्ती ॥ ७ ॥

का० १४. २. २१. नाना हीति मन्त्रेण मन्त्रमयस्थालियों से तीनिसु  
राग्रहों को ग्रहण करे। आदिमें आश्विन पयोग्रह को लेके आसा  
दन करि आश्विन सुराग्रह का ग्रहण आसादन ततः सारस्वत  
पयो ग्रह सुराग्रह का आसादन ततः ऐन्द्र पयोग्रह सुराग्रह  
काहे। क्रमेण वा। उपयामयोनी अत्रापि पृथक् प्रथमे नाना हीति  
परित्वोपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेज इति ग्रहण मेष ते योनि मर्दा  
य त्वेति सादनम् द्वितीये नाना हीत्यन्ते उपयामगृहीतोऽसिसारस्व  
तं वीर्यमिति ग्रहण मेष ते योनिरानन्दाय त्वेति सादनम् तृतीये  
नानेत्यन्ते उपयामगृहीतोऽस्येन्द्रं बलमिति ग्रहण मेष ते योनिर्म  
हसे त्वेति सादनमिति सूत्रार्थः ॥ सुरा सोम देवत्या। हे सुरा सोमो जि  
सकारण तुम्हारा नाना (पृथक्) स्थान किया। कैसा स्थान किं देवता  
ओंके अर्थ पथ्य वास्थापित। इस कारण परम उत्कृष्ट व्योमवद्विशा  
ल हवन स्थानों में तुम संसर्गन करो। एवं द्वौ प्रत्युक्ता सुरा माह हे  
सुरे तू सुरा है कैसी कि शुष्मिणी (बलवती) अतः तुम्हें पीके मत्त होता  
है। यह सोम शान्त है अतः अपने स्थान को प्रवेश करती हुई सो  
म की मत्त बिनाशि माशब्दः पाद पूरणः ॥ ७ ॥

उपयाम गृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यं मेन्द्रं बलं  
मू। एष ते योनि मर्दाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा +

सा-त्रि०। आश्विनं तेजः साक्षात्त्वमेव। और सरस्वती संबंधि सामर्थ्य  
तूहै। और इन्द्रसम्बन्धि बल तूहै इति शेषः। सादयति यजुः। यहते  
रास्थान प्रमोदके अर्थ तुम्हें सादन करता हूं। आनन्दके० मह-  
त्वके० प्रत्येकं मन्त्राः॥ ८॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यं मसि वीर्यं मयि धेहि  
बलं मसि बलं मयि धेहि ह्यो जोऽस्यो जो मयि धेहि मन्यु  
रसि मन्यु मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ ४॥ +

का० १४. २. १०. आश्विन ग्रह ग्रहण के अनन्तर सादन से पहिले द्वेदर्भ  
तृणे प्रागये पात्रके ऊपर करिके गोधूम कुवल (स्थूल बदरी फल)  
का चूर्ण साथही दुग्ध में डाले॥ त्रीणि पयो देवत्यानि १. या-बृ० २.  
३. या-पं०। हे दुग्ध तू तेज है अतः मूर्धविषं तेज स्थापन करि +॥  
का० १४. २. १८. इन्द्रयवों सूक्ष्म बदरी फलों का चूर्ण सारस्वत पयो ग्रह  
में डाले॥ हे ग्रह तू वीर्य है अतः मूर्धमें वीर्य स्थापन करि॥ का० १४. २.  
२०. यवों अति स्थूल बदरी फलों का चूर्ण ऐन्द्र पयो ग्रह में डाले॥ हे ग्र-  
ह तू बल है अतः मूर्धविषं बल स्थापन करि॥ का० १४. २. २३. २४.  
वृक व्याघ्र सिंहके मिश्रित केशों से प्रतिमन्त्र सुराग्रहों को मिश्रित क-  
रे० ओजोऽसीत्याश्विनम् मन्युरसीति सारस्वतम् सहोऽसीत्येन्द्र-  
म् राके आचार्या वृकादिकेशों करियथासंख्य ग्रह को मिश्रित कर  
ते हैं० वृकके शौराश्विनम् वैयाघ्रैः सारस्वतम् सैं है ऐन्द्रम्॥ सुरा  
देवत्यानि त्रीणि १. या-अ० २. या-यं० ३. या-बृ०। हे सुरे तू ओज है अतः  
मूर्धमें कान्ति स्थापन करि॥ तू मन्यु (मानसकोप) है अतः मु०॥ स

न. गोपशतकः सतत्र निरुप्यतः दत्तियायात् ।

ह (बल) है अतः मु० ॥ ४ ॥

या व्याघ्रं विषूचि को भौ दृक् च रक्षति । शूपेन पतत्रिणं  
रं सिंहं हं सेमं पात्व रं हंसः ॥ १० ॥

का० १४. २. २७. अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता रौ साथ ही अन्तःपात्यस्थान  
में अवस्थित प्राङ्मुख यजमान को शूपेन पिछों से मार्जन करे दी  
क्षा वदिति एक करि नाभिसे ऊपर प्रदक्षिण दूसरे करि नीचे एक  
वार यद्वा दोनों करि नाभिसे नीचे और ऊपर द्विरिति ॥ हे मवर्चि ह  
ष्टा विषूचि देवत्यानुष्टुप् । व्याध्यधिष्ठात्री देवतास्त्रिंसा प्रार्थ्यते । जो  
विषूचिका विषु सर्वत्र अद्भुति गच्छति विषूची सेव विषूचिका रौ  
गविशेषः । व्याघ्र दृक् इन दोनों को रक्षा करती तथा शूपेन पक्षी औ  
र सिंह दोनों को रक्षा करती है नहीं हैं तिनमें अन्तःपरिणाम जनित  
दोष । वोह विषूचिका इस यजमान को अह (व्याधि हेतु मृत पाप) से  
रक्षा करे ॥ १० ॥

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो दधेनू । एतत्तद्गने अ  
नृणो भवा म्यहं तो पितरो मया ॥ सम्पूचं स्थ सं मा भद्रे  
ए पृङ्गु विपूचं स्थ वि मा पाप्मनो पृङ्गु ॥ ११ ॥ +

का० १४. २. २८. अग्नि प्रेक्षस्वेति प्रेषा करि अध्वर्यु यजमान को अ  
ग्नि दिखाता है सो प्रेषित यदापिपेष मन्त्रेण औत्तर वेदिक अग्नि  
को देखता है ॥ अग्नि देवत्या बृहती । में पुत्र प्रमुदित (प्रलुप्त) स्तनपान  
करता जो माता (जननी) को आपिपेष पेरों से पीडा देता हुआ । हे अ  
ग्ने इस से तेरे समक्ष अनृणा (ऋणत्रयरहित) हूँ अतएव कहिता

हं किं मेंने मातापितानहीं पीडितकियेजो पुत्रप्रत्युपकरनेको असमर्थ  
 हे सगवपितरों का हन्नेति भावः॥ का० १६.२.२६. यजमानसाथही  
 सम्युचस्थ से पयो ग्रहों का स्पर्श करे ॥ पयो ग्रह देवत्यमूया-वि० हे  
 पयो ग्रह ओ तुम स्वत एव संयोजका हो अतः मुझे कल्याण युक्त क  
 रौ ॥ का० १६.२.३०. विप्रचस्थ इससे सौरग्रहों का यजमानस्य० ॥  
 सुराग्रह देवत्यमू य-वि० हे सुराग्रह ओ तुम वियोजका हो अतः मु  
 जें निष्याप करौ ॥ ११॥

अ० २ देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना। वाचा सरस्व-  
 ती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥ १२॥

देवा यज्ञमित्यादिकण्डिकाविंशतिर्ब्राह्मणरूपातो विनियोगाभावात्  
 ब्राह्मणानुवाकोविंशतिरनुष्टुभः सौत्रामण्याः सोमसाम्यप्रतिपा  
 दिकाः ॥ अत्रेतिहासः ॥ अनुपहृतसोमपानसैभृष्ट इन्द्रके वीर्यको  
 नमुचि असुरनेपिशा तहां देवताओंने इन्द्र का भेषज्य किया तहां  
 अश्विनी कुमार और सरस्वती भिषज(वेद्य) हुए और सौत्रामणी  
 ओषधहुआ तथाच श्रुतिः शत० १२.८.३.१० त्वष्टा हतपुत्रोऽभिचर  
 णीयमपेन्द्रं सोममाहरत्तस्येन्द्रो यज्ञवेशासं कृत्वा प्रासहा सोमम  
 पिबन्स विष्वङ् व्यर्चनस्य मुखात्प्राणेभ्यः श्रीयशसान्यूर्ध्वान्युद  
 क्रामंस्तानि पशून्प्रादिषुः सस्मात्पशवो यशो यशो ह भवतिय ए  
 वं विद्वान्सौत्रामण्याभिषिच्यते ततोऽस्माऽ एतमश्विनौ च सरस्व  
 ती च यज्ञं समभरन्सौत्रामणी भेषज्याय तयैनमभ्यषिच्वंस्त  
 तो वेस देवानां षं श्रेष्ठोऽभवच्छ्रेष्ठः स्वानां भवतिय एतयाभिषिच्य



तः इति ॥ देवताओं ने यज्ञ (सौत्रामण्याख्य) भेषज (इन्द्र के ओष-  
धरूप) को विस्तार किया तब अश्विनी कुमार वैद्य हुए इति शेषः ॥  
और सरस्वती वाणी (त्रयीलक्षणा) करि वैद्य हुई । कैसे हैं सरस्वती अ-  
श्विनी कुमार कि इन्द्र के अर्थ वीर्यो (सामर्थ्य) को देते ॥ १२ ॥

दीक्षाये रूपं शय्याणि प्रायणीयस्य तोक्मानि । क्रय-  
स्य रूपं सोमस्य लाजाः सोमाश्च शवो मधु ॥ १३ ॥

इदानीं सौत्रामण्याः सोमसम्पत्तिं निरूपयति । शय्य (नवप्ररूढ व्री-  
हिरूप) दीक्षणीयेष्टि के रूप हैं (शय्याणि दीक्षणीयात्वेन ध्येयानि ।  
एवमग्रेऽपि । तोक्म (नवप्ररूढयव) प्रायणीयेष्टि के रूप जानना । ला-  
जा (मृष्टवीहि) सोमक्रय का रूप हैं । मधु सोम के अंशुरण (खण्ड) निरूप-  
य करि जानना यद्वा मधुरस्वाद लाजा ही सोमांशुरण जानना ॥ १३ ॥

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहः । रूपमुपसदा-  
मेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥ १४ ॥

किंच मासर (व्रीहि श्यामा को दनाचामयोः शय्य तोक्म लाज नग्न-  
हचूर्णेः संसर्गो मासरं पूर्वं मुक्तम्) आतिथ्येष्टिका स्वरूप जानना  
सर्जत्वगादिषड्विंशति वस्तून् ये कीकृतानि नग्नहः पूर्वोक्तः वोह महा-  
वीर (धर्म) का रूप ॥ जो त्रिरात्र पर्यन्त सुरा आसुता (सब को एकपा-  
त्र में करि स्वादीं त्वेति मन्त्रेण गर्त में स्थापन) एतत् उपसत्संज्ञा  
इष्टी ओं का रूप ॥ १४ ॥

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्यरिषिच्यते । अश्विभ्यां दु-  
ग्धं भेषजमिन्द्रायेन्द्रं सरस्वत्या ॥ १५ ॥

जो अश्विनीकुमारों और सरस्वती ने इन्द्र देवत्य इन्द्र के अर्थ ओ-  
 ध्रं दुग्धं पयः अश्विभ्या मषा करोमीति दुग्धेनैकगोः पयसा सर-  
 स्वत्याः अषा करोमीति दुग्धेन गोद्वय पयसा इन्द्रायापा करोमीति दुग्धे-  
 न गोत्रय पयसा तीनि दिनमें परिस्तुत् सुराजिससै सींचियेहें वोह  
 क्रीतसोमका रूप० एकस्याः पयसा पाकतेनाश्विनेन परिषिञ्चतिसा-  
 रस्वतेन द्वयोः प्रातः ऐन्द्रेणोत्तमेति स्मरणमिति १६.१.२३.२५.२७.  
 कात्यायनेन निर्दिष्टत्वादश्विभ्यां सारस्वत्या च दुग्धमिति निर्देशः ॥१५॥

आसन्दी रूपं रंजासुन्द्ये वेद्यै कुम्भी सुराधानी। अ-  
 न्तर उत्तर वेद्या रूपं कारोतरोभिषक् ॥१६॥

यजमान के अभिषेकार्थ आसन्दी (मश्विका) सोम की आसन्दी का  
 रूप तत्त्वेन ध्येया। सुराधानी (सुरा ररवतेहें जिसे वोह कुम्भी) वेदि  
 (सोमिक वेदि) का रूप० अन्तर (दोनों वेदियों का मध्यभाग) उत्तर  
 वेदी रूप० कारोतर (सुरा छानने की चालनी) इन्द्र और यजमान  
 का मिषक् जानना ॥१६॥

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम्। यूपेन यू-  
 प आप्यते प्रणीतोऽग्नि रग्निना ॥१७॥

वर्तमाना वेदि करि सौमिकी वेदि भले प्रकार प्राप्त है अर्थात् त  
 द्रुपाध्येया। बर्हिः आं करि सौमिक बर्हि समाप्यते। इन्द्रियों करि  
 इति शेषः इन्द्रिये (सामर्थ्य) समाप्यते फलदाने उभयोरप्यस्ती-  
 त्यर्थः। यूप करि यहं यूप आप्यते। अग्नि करि प्रणीतोऽग्नि  
 (सौमिक) आप्यते ॥१७॥

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती । इन्द्रायेन्द्रं  
सदस्क्रुतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥१८॥

इस सोत्रामणी में जो अश्विनी कुमार देवता वर्ते हैं तिन अश्विस-  
द्भाव से सोमिक हविर्धान आय्यते इत्यनुषङ्गः । यहां जो सरस्वती  
देवता है तिस सद्भाव करि सोमिक आग्नीध्र आय्यते । इन्द्र के अर्थ  
जो हवि बोह सोमिक सदः पत्नीशाला गार्हपत्यरूपेण ध्येयम् ॥१८॥

प्रेषेभिः प्रेषानां प्रोत्याग्नीभिः प्रीर्यज्ञस्य । प्रयाजेभिर  
नुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ॥१९॥

प्रेषाओं से प्रेषाओं को प्राप्त होता है । आग्नीओं प्रयाजयाज्याओं से  
यज्ञ की आग्नीएँ प्राप्त । प्रयाजेभिरित्यादि वाक्य चतुष्टयस्योत्तरप  
दलोपश्छान्दसः । प्रयाजों से प्रयाजों को । अनुयाजों से अनु । वष-  
ट्कारों से वष । आहुतियों से आहु । प्रेषादीनामुभयत्र सद्भावा  
त् ॥१९॥

पशुभिः पशूनां प्रोति पुरोडाशैर्हवींश्च । छन्दोभिः सा  
मिधेनीर्याज्याभिर्बषट्कारान् ॥२०॥

पशुओं करि पशु । पुरोडाशों से पुरो । हवियों से हवि । छन्दों से छन्दों ।  
सामिधेनियों से सामि । याज्याओं से याज्या । वषट्कारों से वष । प  
श्वदीनामुभयत्र सद्भावात् । अत्राप्युत्तरार्धलोपः पूर्ववत् ॥२०॥

धानाः करम्मः सक्तवः परीवापः पयोदधिः । सोमस्य-  
रूपं हविष आमिक्षा वाजिनं मधु ॥२१॥

धानादयः सोम का रूप जानना । धानाः । भृष्टधान्यकरम्मः । उद

मन्य।सक्तवः(सतुः। परीवायः(हविष्यङ्गि। दूध। दही। एतानि  
सोमरूपम्। आमिक्षा(फट। दुग्ध)मधुर औरवाजिन(फटेदुग्धका  
जल हविकारूपहे॥२१॥

धानानां रूपं कुवलेन परीवायस्य गोधूमाः। सक्तूनां  
रूपं वदरमुपवाकाः करम्भस्य॥२२॥

नन्वधस्तनमन्त्रे धानादीनां सोमरूपत्वमुक्तम् तेऽत्र कुत्र सन्ती  
ति धानादि सोमहविषां सोमस्य च सम्पत्तिं सौत्रामणीद्रव्यैरा  
ह। कुवल(कोमल वदरीफल)पूर्वोक्त धानों का रूप०। गोधूमाः  
परीवाय का रूप०। सर्व वदरीफल सक्तुओं का रूप० उपवाकाः  
(यवाः)करम्भका रूपजानना॥२२॥

पयसौ रूपं यद्यवा दूधो रूपं कर्कन्धूनि। सोमस्य  
रूपं वाजिनर्तं सौम्यस्य रूपमामिक्षा॥२३॥

जे यवाः ते पयका रूप कर्कन्धु(स्थूलवदर)दधिका रूप वाजिन  
सोम का रूप आमिक्षा सौम्यचरुका रूपजानना॥२३॥

आश्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावोऽपनुरूपः। यजेति  
धय्यारूपं प्रगाथा येयजामहाः॥२४॥

शस्त्र सम्पत्तिमाह। आश्रावयेति शब्दः स्तोत्रियारूप(स्तोत्रे प्रथ  
म स्तुचोऽनुवाकः) जानना। प्रत्याश्रावः(अस्तु श्रोषडिति शब्दः)  
अनुरूपः(उत्तरस्तुचः तद्वत्)। यजेति शब्दः धय्या(निष्केवल्ये-  
स्तोत्रियानुरूपयोरनन्तरं धय्या शस्यते) जानना। येयजामहाः(येय  
जामहः इति शब्दः प्रगाथा रूपत्वेन ध्येयाः॥२४॥

अर्धऋचै रुक्म्यानां रूपं पदे राप्नोति निविदः । प्रणवैः

श स्त्राणां रूपं ययसा सोम आप्यते ॥२५॥

अत्रत्य अर्धऋचों (अधोरियों) करि उक्थों (शस्त्रविशेषों) के रूपको प्राप्त होता है । पदों में न्यूनता का प्रा० प्रणव (ओंकार) से शस्त्र के रूप० दुग्ध करि सोम प्रा० अर्धऋचों उक्थादयो ध्येयाः ॥२५॥

अश्विभ्यां प्रातः सवनमिदं ऐन्द्रं माध्यन्दिनम् । वैश्वदेव  
तं सरस्वत्या तृतीयमाप्तं सवनम् ॥२६॥

सवन सम्पत्तिमाह । अश्विनी कुमार देवताओं से प्रातः सवन को प्राप्त है इन्द्र देवता करि इन्द्र देवत्य माध्यन्दिन सवन प्राप्त है सरस्वती-देवी करि विश्व देवत्य तृतीय सवन प्राप्त है ॥२६॥

वायव्यैर्वायव्या न्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् । कुम्भीभ्यां  
मम्भूणो सुते स्थालीभिः स्थाली राप्नोति ॥२७॥

वायव्यों पात्रों करि वायव्यों सोमपात्रों को प्रा० वैतसपात्र है तिस करि द्रोणकलश को प्रा० कुम्भीभ्यां (प्रातस्त्रिद्रा कुम्भी भुराधानी दो नों) करि अम्भूणो (पूतभृदाधवनीयो सोमाभिषवन करते तिन्हें) प्रा० स्थाली करि स्थाली प्रा० ॥२७॥

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहे स्तोमाश्च विष्टुतीः । छन्दोभिरु  
क्था शस्त्राणि साम्नावभृथ आप्यते ॥२८॥

यजुःओं से यजूं वि प्रा० ग्रहा ग्रहों से प्रा० स्तोमों से स्तोम प्रा० विष्टुति  
ओं (विविध स्तुतिओं) से विष्टुति प्रा० छन्दों से उक्थों और शस्त्रों को प्रा० साम करि साम प्रा० अवभृथ करि अवभृथ प्रा० ॥२८॥

इडाभिर्भक्षणां प्रोति सूक्तवाकेनाशिर्यः । श्रुयुतापत्नीसंया  
जान्तसमिष्ट यजुषासंस्थां ॥ २४ ॥

इडासे इडा को प्रा० भक्षों से भक्ष को प्रा० सूक्तवाकों से सू० आशिषा-  
ओं से आ० श्रुयु (होमविशेष) से प्रा० पत्नी संयाज से य० समिष्ट यजु  
से स० संस्था से सं० । इडादीनामुभयत्र सद्भावात् ॥ २४ ॥

व्रतेन दीक्षामां प्रोति दीक्षयां प्रोति दक्षिणाम् । दक्षिणा  
श्रद्धामां प्रोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ३० ॥

हुतोच्छिष्ट भक्षश्च तूरात्रमग्निहोत्रं जुहोतीति व्रतेन दीक्षा को प्रा० दी-  
क्षा से दक्षिणा को प्रा० दक्षिणा करि श्रद्धा (आस्तिक्य बुद्धि) को प्रा० श्र-  
द्धा करि सत्य (ज्ञान अनन्त ब्रह्म) को प्राप्त होता है श्रद्धा विना ज्ञाना-  
भावात् ॥ ३० ॥

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मण कृतम् । तदेतत्सर्वमाप्नो-  
ति यज्ञे सौत्राणी सुते ॥ ३१ ॥

यज्ञ (सोम यज्ञ) का एतावत् (एतत्परिमाण) रूप को जो देवताओं और  
ब्रह्मा (प्रजापति) ने किया (देखा) दर्शन करणयोः को भेदः सुप्त प्रतिबु-  
द्ध्या यो दर्शनं बुद्धिपूर्व तु करणम् । सौत्रा मणी यज्ञ विषे सुरा सो-  
म अभिषवन करते सति तदेतत् सोमयागरूप सव को प्राप्त हो-  
ता है ॥ ३१ ॥ इति ब्राह्मणोऽनुवाकः समाप्तः ॥

अ० ३ सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति महिषा न-  
योधिः । दधानाः सोमं दिवि देवता सु मदे मेन्द्रं यजमा-  
नाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥



का० १४०३०० सुरावन्तमिति मन्त्रेण अश्वर्युं तीनि पयो यहाँ को साथ  
ही होमें ॥ एवं सौत्रा मण्याः सोम सम्यति मा पाद्य प्रकृति मनु  
सरति । चतस्रस्त्रिष्टुभोऽश्विसरस्वसत्येन्द्रदेवताः महिषाः । महा  
न्तः ऋत्विजः । यज्ञ (सौत्रा मणी संज्ञ) को हि चति (वदाते वा प्राप्त क  
रते हैं) । कैसे यज्ञ को कि बहिः ओं पर बैठते हैं देवता जहां । तथा सुराव  
न्त को । सुवीर (शोभन ऋत्विज) को कैसे हैं महिषाः कि नमः । नमस्का  
र वा अन्तों सहित स्वर्ग में वर्तमान देवता ओं विषे सोम को धारण  
करते । तिस यज्ञ में इन्द्र को यजमानाः । पूजा करते हम हृष्ट होँ । कै  
से हैं हम कि स्वर्काः । शोभन हैं अर्चन वा मन्त्र जिन्हों केते । यद्वा शो  
भन है अर्क (अन्न) जिन्हों के ॥ ३२ ॥

यस्ते रसः सम्भृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सु  
तस्य । तेन जित्वा यजमानं मदेन सरस्वती मश्विना वि  
न्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

का० १४०३०४ प्रति प्रस्थाता पालां शोरवलसै दक्षिण में अग्नि वि  
धेयजै मृन्मय पात्र आहुति को नही व्याप्त होते इत्युक्ते ॥ हे सुरे ओषधियों  
में वर्तमान जो तेरा रस एकी किया । और सुरा सहित सोम का जो व  
ल है । तिस मर्जन क सुरारस और सोम शुष्म से यजमान और  
सरस्वती मश्विनी कुमार इन्द्र अग्नि को तप्त करि ॥ ३३ ॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्य सुनो दिन्द्रिया  
य । इमं नरुं अक्रं मधुमन्तमिन्दुं सोमं राजानमि  
ह भक्षयामि ॥ ३४ ॥

का० १४. ३. १०-१३. अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता आग्नीध्र आश्विनपथे  
ग्रह को क्रमेण दो-दो आवृत्य करि भक्षण करें सकृन्मन्त्रः होता  
ब्रह्मा मैत्रावरुण पूर्ववत् सारस्वत पथो ग्रह को भक्षण करें यज  
मानेन्द्र पथो ग्रह को भक्षण करें ॥ नमुचिनेन्द्रस्य वीर्यं पीतमृतस्मि  
न्हते रुधिरमिश्रः सोमे जातस्तं देवाः पयुस्तदभिवादिन्येषां कृत्वा  
असुरके पुत्रनमुचिके स काशसे जिस सोम को अश्विनी कुमारे ने प्रा  
हरण किया इति शेषः (अश्विनो ह्येनं नमुचे रथ्या हरतमिति १२. ८. १०  
३. श्रुते। और जिस अश्विनी कुमारे ने कर लाये हुए को सरस्वती ने इन्द्र के वी  
र्य वा भेषज्य के अर्थ अभिषेक वण किया तिस अश्विनी कुमारे ने करि  
लाये सरस्वती सुत इस राजा को इस यज्ञ विषे में भक्षण करता हूँ।  
कैसे सोम को कि शुद्ध (लोहिता संसृष्ट) अत एव रसवन्त परमैश्व  
र्य प्रद ॥ ३४ ॥

यदत्र रिपुर्धं रसिनः सुतस्य यरिन्द्रोऽपि बह्वची-  
भिः ॥ अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमर्धं राजानमिह  
भक्षयामि ॥ ३५ ॥

का० १४. ३. १४. पूर्ववत् अध्वर्यादयः आश्विन होत्रादयः सारस्व-  
त यजमानेन्द्र सुराग्रहों को यदत्रेति मन्त्रेण विहार दक्षिण  
में स्थित प्राचीना वीति भक्षण करें आघ्राण मन्येन मूत्येन भ-  
क्षणम् ॥ रसवत अभिषुत सोम के जिस भाग सुरा में लगे हुए  
और जिस सुरा लग्न सोमांश को शचीभिः (कर्मों से) शुद्ध क-  
रि के इन्द्र ने पिया तिस सुरा निर्गत सोम को शिव (शुद्ध) मनक

रि के दसयज्ञमें मैं (सुरासकाशंसे शुद्ध करि +) भक्षण करता हूँ ॥३५॥

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः पितामहेभ्यः स्वधायि  
भ्यः स्वधानमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः  
अक्षन्पितरोमीमदन्तपितरो ती तृपन्तपितरः पितरः  
शुन्धध्वम् ॥३६॥ +

अहं यम्  
नमाशिव नम्य  
शिवः य वाऽप  
भक्षोपसृगवा  
। नमाम्यशिव  
वेन मत कृत्वा  
त्यस्मन् प्रति  
१३.८.१.५  
श्रुते।

का० १८.१.१७. सुराग्रहों का भक्षण घ्राण और अन्यमूलकरिभूषा  
ल पान ये तीनि पक्ष कहे चौथा कहिता है अथवा परिधिसे बाहि  
र में स्थित आहवनीय के अङ्गारों विषे होम शेष सुराग्रहों को पि  
तृभ्य इति प्रति मन्त्र होमें तदेवाह उत्तर अङ्गारमें आश्विन मध्यम  
में सारस्वत दक्षिणमें ऐन्द्र सुराग्रहों को होंमें ॥ अपसव्येन कर्म। स  
प्रयजूषि पितृदेवत्यानि १. या-त्रि० २. आसु-अ० ३. सा-अ० ४. दे-  
य० ५. ६. या-अ० ७. या-गा० पितरों के अर्थ स्वधा संज्ञक नमः (अ  
न्न) होय द्वापितरों के अर्थ स्वधा (अन्न) हो और तिन्हों के अर्थ नम  
स्कार हो कैसें के कि स्वधा (अन्न) प्रतिजाने हैं एवं शीलाः स्वधायिनः  
तिन्हों के अर्थ ॥ एवं पितामहेभ्य इति मन्त्रों व्याख्येयो ॥ का० १८.३.  
१८. सौरग्रह होम पात्रक्षालनजल करिके यथा होम अङ्गारों को सी  
वे अक्षन् अमीमदन्त अतीतृपन्त मन्त्रों से ॥ पितरोने भक्षण किया ॥ पि  
तर तृप हए ॥ हम लोगों करि पितर तृप हए य द्वा हम लोगों को तृ  
प हए अभीष्ट दान करि तृप करते हैं ॥ का० १८.३.१४. पितरः शुन्ध  
ध्वं इति जपै ॥ हे पितरः तुम पाणिप्रक्षालन करि शुद्ध होओ ॥ ३६ ॥  
पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुन

तिः  
म त्वथा न पि तृ पितृ मन्त्र निमित्तः

+ पि-मः ॥ अ० १. ६० ॥ प्र-मः ॥ ३० ॥ अ-२ः ॥ अ० १. ६० ॥ लक्षणाः पि-मः ॥ ३६  
५ पितृभ्य इति बहुवचन पितृ व्याख्येयं पूजार्थं वा।

नु प्रपितामहाः पुनर्वचनं शतायुषा ॥ पुनर्नु मापिताम-  
हाः पुनर्नु प्रपितामहाः पुनर्वचनं शतायुषा विभक्तमायुर्व्य-  
भवे ॥ ३७ ॥ † पु-पा. अ. पु-वे. द. ॥ ३७ ॥

का. ०१६. ३. २०. दक्षिणा हवनीयपार्श्वयोः हों नोस्तम्भों के ऊपर द-  
क्षिणाग्रवशर खिकेतत्रस्थे शिक्वे शतछिद्राकुम्भीकोरखिकुम्भी  
केतलमें वालों कोरखिकेतहांसुरशेषकोसीचि अग्निके ऊपरसु-  
वती सुरविषे नवर्च यजमान प्रति वौंचे गोश्ववालकृतं सुराग-  
लनम् पवित्रमजाविलोमकृतम् पयोगलनम् हिरण्यं शतमा-  
नमितन् प्रतृचं वाचनमिति सूत्रार्थः ॥ पुनर्नुमानवर्चपावमान-  
म् आद्ये द्वे पितृदेवत्येऽनुष्टुभौ प्रजापतिदृष्टे। पितरमुक्ते शोधे किस-  
से कि पवित्र गोश्ववालकृत से कैसेसे कि शतायु (शतवर्षमित) आयु  
जिस करि तिस से अर्थात् जिसकरि पवित्र हुए शतायु होती है। पि-  
तामहाः और प्रपितामहाः मुझे पवित्र करें कैसे हैं पित्रादयः कि सो-  
म्याः (सोम को सम्पादन करते ॥ आदरार्थं पुनर्वचनम् पितामहाः  
प्रपितामहाश्च मां पुनर्नु शतायुषा पवित्रेण। एवं पित्रादयोऽसौ प्रामे  
सर्व आयु को प्राप्त हों उं ॥ ३७ ॥

अग्निः आयुर्धृषिपवसः आसुवोर्जमिषं च नः ॥ आरे-  
बाधस्व दुष्टानाम् ॥ ३८ ॥

वैश्वानरसहस्रान्नि देवत्या गावत्री। हे अग्ने तू स्वत एव आयुः शप-  
कों कर्मों की चेष्टा करता है। अतएव हमारे अर्थ इषा वीहि आदि-  
धान्य) और ऊर्ज (दध्यादि) दे (जीवन हेतुत्वात्। किंच दूरस्थित

दुष्टानां (दुर्जनों- बाबलेकुत्तों- भेड़ियाओं- दुष्टों) को नाश करता है  
दुर्जने जीवना शक्तेः ॥३८॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसाधियः । पुनन्तु विश्वा  
भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥३९॥

अनुष्टुप् लिङ्गोक्त (दंजनधीविश्वभूतजातवेदो देवत्या देवानु  
गामिनो जनाः मुंहे पुनन्तु मनसहित बुद्धि वा कर्माणि मुंहे पुनन्तु  
सर्वभूत मुंहे पु० हे जातवेदः तूभी मुंहे पवित्र करि ॥३९॥

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्लेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्र  
तू २ ॥४०॥

अग्नि देवत्या गायत्री । हे अग्ने हे देव शुद्ध पवित्र से मुंहे पवित्र क  
रि । के साहे तू कि दीयमान । किंच हे अग्ने हमारे यज्ञों को अनुलक्ष्य  
करिके क्रतु (कर्म) से तू पवित्र करि यज्ञ में मुंहे पवि० वायज्ञों को  
भले प्रकार कराय ॥४०॥

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने वितनमन्तरा । ब्रह्म तेन पुना  
तु मा ॥४१॥

आग्नेयी गायत्री तृतीयः पादो ब्रह्म देवत्यः । हे अग्ने तेरी ज्वाला  
ओं के मध्य में जो ब्रह्म (त्रयीरूप वा परब्रह्मरूप) पवित्र विस्तृत है  
निस पवित्र से आप मुंहे पवित्र करा ओ ॥४१॥

पवमानः सोऽअद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पो  
ता स पुनातु मा ॥४२॥

सोम देवत्या गायत्री + तृतीयः पादो वायु देवत्यः । बौह पवमान से

विचर्षणिः

धक सोम) इस दिन में पवित्र से हमें शोधे के साथे सोमविचर्षणि-  
 (दृष्टा) कृता कृतज्ञ वा विशिष्ट हैं मनुष्यः ऋत्विज जिसके वोह किं-  
 च जो पोता (पवित्र करने वाला + वा वायु) वोह मुझे पवित्र करे ॥ ४३ ॥  
 उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि  
 विश्वतः ॥ ४३ ॥

+ महोदधरमेत

सवित देवत्या गायत्री हे देव सवितः दोनों करि के सर्वतः मुझे पवित्र  
 करि किन् दोनों कि पवित्र (अजाविलोमनिर्मित) और सब (अनुज्ञा)  
 करि अर्थात् तेरी आज्ञा से यज्ञ सिद्धि है ॥ ४३ ॥

वैश्वदेवी पुनती देव्या गाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो बी-  
 तपृष्ठाः । तथा मदन्तः सधमादेशु बयश्च स्याम पतयो  
 रयीणाम् ॥ ४४ ॥

विश्व देव देवत्या त्रिष्टुप् । इयं प्रवल्हिका । अज्ञाता भिद्येया । ततः  
 कांचिद्देवतामुद्दिश्य व्याख्यास्यामः दक्षिणाग्निरुपरि शतावृणा  
 कुम्भी क्षरति ताम् सोत्रामणी वा वाचं वा उखां वा । देवी शीतमा-  
 ना सुरा कुम्भी आई कैसी कि वैश्वदेवी (सब देवताओं के अर्थ-  
 हिता वा सब देवताओं के अर्थ आई) पावन करने वाली । जिस कुम्भी  
 में ये प्रत्यक्षतो दृश्यमानाः बहु संख्या काः तन्वः (शरीर प्राया)  
 धाराएँ बर्ते हैं वे सीतन्वः कि बीतपृष्ठाः (इष्ट हैं स्वरूप जिन्हों के  
 ने कामित शरीर) सुरा धाराएँ (सुर्गों) करि चाह की जाती हैं । जिस कुम्भी  
 करि सधमादेश (साथ मदकी) प्राप्त हैं जिन यज्ञस्थानों में मोदमानाः  
 सन्तः हम धनों के पति होवें ॥ ४४ ॥



ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । तेषां लोकः स्वधान-  
मो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥४५॥

का० १४०३२३० सह दृहीत आज्य को दक्षिण अग्नि में प्राची नाबी  
नी दक्षिण मुख यजमान जुझ करिहोमें ॥ द्वे अनुष्टुभौ । आद्यापितृ  
देवत्या । यभके राज्य (लोक) में जे पितर बर्ते हैं । कैसे पितर कि समाना  
(जाति रूपादि) से तुल्याः । समनसः तुल्यमनस्काः । तिन पितरों के लो  
क में स्वधानमः (स्वभावाब्दोपलक्षित नमस्कार होय द्वा अन्न और  
नमस्कार हो । और यज्ञ देवताओं को तर्पण समर्थ हो ॥ ४५ ॥

ये स॒मानाः स॒मनसो जी॒वा जी॒वेषु मा॒मकाः॥तेषा॒ं श्रीर्म॒यि  
क॒ल्पता॒मस्मि॒लोके श॒न द॒सनाः॥४८॥

का० १५०३२४० उत्तर वेद्याहवनीय में सव्य करि यजमान अगली  
४६० ऋचा से हो में ॥ यजमानाष्टीः श्रीदेवत्या ॥ जीवों प्राणियों में जे  
समानाः समनसः मेरे प्राणिनः हैं ॥ सपिण्डाः जे मेरे तं मामकाः इ  
स लोक (भूलोक) में शत वर्ष तिन मेरे जीवों की श्रीसुख विषे लुप्ता  
हो अर्थात् तिन्हें छोड़ि सुखविषे आश्रित हो गोत्रिणो हि पापात्मानः ॥  
सहजाः शत्रवोऽत एव प्रार्थ्यते ॥ ४६० ॥

द्वे ह्युतीः पशूणां पितृणामहं देवानां मुत मर्त्यानाम् ।  
नाभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरं पितरं मातरं च ॥

का०१४३२५॥ सृष्टिगयजमानों के अन्वारम्भ किये पर अध्वर्यु प  
यहोमें ॥ देवयान पितृयान मार्ग देवत्या त्रिष्टुप् । मर्त्यो (मरण ध  
मी प्राणियों) के द्वे सती दो मार्ग में ने सुने । कोन द्वे सती अतः ग्राह

\* देवताओं का मार्ग और पितरों का मार्ग है। पितरों और मातरों की जो अन्तरा भूलोक द्युलोक के मध्य बोह कम्पमान क्रियावत् यह सर्वाति नस्तीओं देवयानपितृयानों से संगत है तिन स्तुतीओं के अर्थ सु हुत हो ॥४७॥

इदं हविः पजननं मेऽस्तु दशवीरुं सर्वगणं स्वस्तये।  
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्त्यभयसनि।  
अग्निः प्रजा बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽपस्मा  
सुधत्त ॥४८॥

का० १४.३.२६. उरवास्थित पय शेष को यजमान भक्षण करे ॥  
यजमानाशी देवत्या अवसाना अष्टिः। यह पयोरूप हवि मेरे स्व  
स्ति (अविनाश) के अर्थ हो। कैसा हवि कि प्रजात्या दक। जिस के पी  
ने से दशवीरों (प्राण. अपान. व्यान. उदान. समान. नाग. कूर्म.  
ह्मकर. देवदत्त. धनंजय. संज्ञक दश प्राणों) की स्वस्थता होती है  
तथा सर्व गणों (सब अङ्गों) की स्वास्थ्य है। आत्मसनि (आत्मा को  
देती वा सम्भजती) प्रजासनि पशुसनि लोक (ऐहिक सुरव) सनि  
अभय (स्वर्ग) सनि। एवं प्रार्थ्याग्निं प्रार्थ्यते अग्नि मेरी प्रजा को  
बहुला करे। एव मग्निमुत्ता वरत्विज आह हे ऋत्विजः हमलो  
गों विषे अन्न दुग्ध रेत (वीर्य) तुम स्थापन करे ॥ प्राणा वै दशवी  
रा इत्यादि० शत० १२.०.१.२२. श्रुतेः ॥४८॥

अ० ४ उदीरता मवरः उत्परात् उन्मध्य माः पितरः सोम्यासः।  
असुं यद्दुर्बुका ऋतशास्ते नो वन्तु पितरो ह

\* वास्तव में वायु प्राण एक है परन्तु स्थान कार्य भेद करि दृश है। हृदयस्थ ऊर्ध्ववा रीश्च  
गोमनवायु २ सर्वशरीरगत ३ कण्ठस्थ ४ नाभिस्थ ५ सोम्य कर्तृ दीपल कलगाने खोलने वा  
ला ६ शुधा करनहार ७ जृ मालता है ८ शरीर को फडकाता है ९ इति निवेदन भाष्ये ॥

वेषु ॥४६॥

का० १४. ३. २१. उदीरतामित्यादि त्रयोदशोर्चोऽनुवाकः तत्र उदीर-  
ताम् ४६. अङ्गिरसः ५०. येन ५१. इति वरुणस्य स्याग्नेष्वानित्य-  
न्त्यायाश्च ६१. विनियोगः कल्पकृतोक्तः त्वं सोमेति ५२. त्वं सोमव-  
ताम् बर्हिषद् इति ५३. त्वं बर्हिषदाम् आपन्तु न इति ५४. त्वं  
मग्निष्वानानाम् पुनन्तु मेति ५५. नवञ्च वाचनानन्तरं त्वं सोमे-  
त्यादि ५६. त्वं कल्पयातीत्यन्तं नवञ्च प्रत्युचमध्वर्युर्यजमाने  
न वाचयतीत्यर्थः ॥ त्रयोदशशङ्खदृष्टाः पितृदेवत्याः एकादशी अ-  
ग्निष्वानाः पितरः ५६. इयं जगती अन्या द्वादशविष्टुभः ॥ इत्यलोक-  
में अवस्थित पितर ऊंचेलोक को जावें। परलोक में स्थित पितर तिसस्या-  
नसे भी परस्थान को जावें। मध्यलोक में स्थित ऊंचे जावें। कैसे हैं पित-  
र कि सोम को सम्पादन करते। और ते देवत रूप को प्राप्त ते पितर आह्वा-  
नों में हमें रक्षा करें। कैसे कि नही हैं शत्रु जिन्हें के ते उदासीना वरुण  
सत्यज्ञावा यज्ञज्ञा स्वाध्यायनिष्ठावा ॥४६॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवर्गवा अथर्वोणा भृगवः सोम्या-  
सः। तेषां वयं सुमनो यज्ञिया नामपि भद्रे सोमन्-  
से स्याम ॥ ५० ॥

जे हमारे पितर हैं तिन्हें की शोभन बुद्धि में हम हों वें (ते हमारे में सुम-  
ति करें) और तिन्हें के कल्याणकारि शोभन मनस्व में हम हों (हमारे वि-  
षे कल्याण मन करें)। कैसे तिन्हें कि यज्ञ सम्पादकों के। कैसे हैं पित-  
र कि अङ्गिरसः (अङ्गिरसी बहून्पत्यानि) नवा (नूतन हैं) गवा (गति

ये दानवनीया स्तोतव्या तिन्होंकी। अथर्वीणः अथर्वीणो मुनेर्वहन्य  
 पत्यानि। भृगवः भृगून्यत्यानि। सोम्यासः सोमसम्यादिनः॥५०॥  
 येनः पूर्वे पितरः सोम्यासोः नूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः॥  
 तेभिर्यमः संहंरणाणो हवींश्च्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममन्तुः॥५१॥  
 हमारे जे पहिले पितरः सोमपान को देवताओं प्रति प्राप्त करते हुए  
 कैसे कि सोमसम्यादन करनेवाले। वसिष्ठाः (वसिष्ठ के गोत्रापत्या)  
 नि। यमः तिन्होंकरि संरणाः प्रीयमाणः सन् प्रतिकाम हवियोंको  
 मक्षण करे। कैसे है यम कि कामयमान। कैसे तिन्हों कि कामय  
 मानों करि॥५१॥

त्वर्हं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वर्हं रजिष्ठमनु नेषि प  
 न्यामू। तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभज  
 न्त धीरः॥५२॥

तू अपनी बुद्धिकरि ऋजुतम देवयान पन्था को प्राप्त कराता है। कैसे  
 सा है तू कि विशिष्ट चैतन्य युक्त। किंच हे इन्दो सोम हमारे पितरों ने ते  
 रि अभ्यनुज्ञान करि देवताओं की वेष्टि में रत्न रमणीय यज्ञफल।  
 को सेवन किया। सोमयागे नेव स्वर्ग पते। कैसे पितरों कि धीमन्तो (यज्ञ  
 ज्ञान वन्तों) ने॥५२॥

त्वया हिनेः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान  
 धीरः॥ बन्वन्वातः परिधी २॥५३॥ रपोर्णु वीरेभिरश्वैर्म  
 घवा भवानः॥५३॥

हे सोम हे पवमान शोधक हमारे धीमन्तो पूर्वजाः पितरों ने जि

सकारण से तुरु करियज्ञादि कर्म किये अतः प्रार्थना करते हैं कि तू  
परिधी ओं (सर्वतः उपद्रव के अर्थ खड़े हु ओं) को निकालि। कैसा है तू  
कि हमारे कर्मों को सम्भजमान। तथा वाताद्युपद्रवरहित। किंच वीरें  
ओर अश्वों सहित हमारा धनवान् हो यो यस्य दाना सतदीय धनवा  
निति लोक प्रसिद्धिः ॥५३॥

तव सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावा पृथिवीऽ आततन्य।  
तस्मै नऽइन्दो हविषा विधेम वयं स्थाम पतयो रयी-  
णाम् ॥५४॥

हे सोम तू द्यावा पृथिवी को विस्तार करता हुआ। कैसा तू कि पितरों  
के साथ संवाद करने वाला। हे इन्दो तिसतेरे अर्थ हम हवियें देते हैं ओ  
र हविर्दान से हम धनों के पति हों वें ॥५४॥ सोम वतां पितृणां षडृचः  
समाप्तः ॥

बर्हिषदः पितर ऊत्युर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध  
म्। तऽआगतावसा शंतमेनाथा नः शं योररूपो दधाम  
त ॥५५॥

हे बर्हिषदः (बर्हि ओं पर बैठने वाले पितर ओं) ते तुम रक्षण निमि  
त्त करि उरें आओ किमर्थ मिति चेत् कि तुम्हारे इन हवियों को हम  
करते हुए तिन्हें तुम सेवन करो। इस के अनन्तर सुख पितृ तम अन्न  
करि नर्पित हुए हमारे सुख रोग शमन भयों का पृथक्करण ओर पापा  
भाव स्थापन करो ॥५५॥

आहं पितृन्सुविदत्राँऽऽवित्सि नपांतं च विक्रमणं

च विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजेन्त पितृ-  
स्तद्दहामिष्ठाः॥५६॥

में पितरों करि अभिसुरबेन जानता हूं। कैसे पितरों कि कल्याण दान  
ओं। किं च विष्णु (व्यापनशील यज्ञ) के नपात (नहीं है जहां गये हू-  
ओं का पात देवयान मार्ग) और विक्रमण (विविध गमना गमन कि जहां  
गये हू) ओं का पुनः भोगान्त में पतन है पितृयान पथ) अर्थात् यज्ञ स  
म्बन्धि ओं देवयान पितृयान पन्था ओं और उद्दामि पितरों को जानता  
हूं। इस कारण कहिता हूं कि जे बर्हिषदः पितरः सवनीय लक्षण अन्न-  
सहित अभिषुत सोम के पान को सेवन करते हैं ते इस यज्ञ में आवें॥५६॥

उपहूताः पितरः सोम्यासौ बर्हिषेषु निधिषु प्रियेषु। त  
ऽआगमन्तु तद्दह शुवन्त्वधिब्रुवन्तु तेऽ वन्त्वस्मा  
न्॥५७॥

ते पितर इस यज्ञ में आवें ते हमारा वचन सुनें और सुन कर पितरों  
करि पुत्रों को जो कहिन्ना उचित है निसे कहें हमें पालन करें।  
कैसे हैं पितर कि अभिरुचित हवि यों में आजा देने वाले सोम्याः के  
से हवियों कि बर्हि ओं परसादिन तथा निधिवत्स्थापनीयों में॥

५७॥ बर्हिषदां पितृणां त्वः समाप्तः ॥ ॥

आयन्तु नः पितरः सोम्यासौ ऽग्निश्चात्ताः पृथिभिर्देव  
यानैः। अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽ व  
न्त्वस्मान्॥५८॥

हमारे पितर देवयान मार्ग करि आवें देवताओं सहित चलते हैं पित



रजिन्हों में ते देवयान मार्ग हैं। कैसे पितर कि सोम पानाही। अग्निष्वाताः  
अग्नि करि स्वादिताः अग्निर्यो न्दहन् स्वादयति। औतस्मार्त कर्मानुष्ठापि  
नः। जिन्हों के पुत्रादिकों करि एतत्कर्म अनुष्ठान करिये हैं। किंच पित  
र आकर इस यज्ञ में स्वधा अन्न करि तृप्त हुए हमें अधिक कहें तिन्हों के  
वाक्य से तैसे ही हम अधिक हों बें ते पितर हमें पालन करें ॥ ५८ ॥

+ तदुक्तम् पुत्रेण  
लोकां प्रयतिष्येति  
एतन्त्यमश्नुते  
अथ पुत्रस्य पो  
त्रेण ब्रध्नस्याप्नो  
ति विश्वमिति

अग्निष्वाताः पितर एह गच्छत सदः-सदः सदत सुप्रणी  
तयः। अन्ता हवींश्चि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिष्ठं सर्व  
वीर दधातन ॥ ५९ ॥

हे अग्निष्वाता पितर औ इस यज्ञ में तुम आओ और आकर सदः-स  
दः (प्रतिघर में) बैठो। कैसे हो तुम कि शोभना प्रणीती वाले। ततः  
सद में बैठे हुए हवियों को भक्षण करो। कैसे हवियों को किर्दमोप  
र नियम पूर्वक स्थापित हैं। इसके अनन्तर तृप्त हुए सर्व वीर धन  
को स्थापन करो ॥ ५९ ॥

येऽअग्निष्वाता येऽअनग्निष्वाता मध्ये दिवः स्वधया  
मादयन्ते। तेभ्यः स्वराड सुनीति मेतां यथा वशं तन्व  
कल्पयाति ॥ ६० ॥

जे पितर अग्निष्वाताः (अग्नि करि दग्ध हुए विधिवदौर्ध्वदेहिक  
को प्राप्त) और जे अनग्निष्वाताः (नहीं हैं अग्नि करि स्वादित, अ  
दग्ध, शूमशान कर्म को न प्राप्त हुए) स्वर्ग के मध्य में स्वधा (स्वक  
मोर्पार्जित अन्न) करि तृप्त हुए सुख को सेवन करते हैं। स्वराट  
(स्वैने वरजते) यमतिन पितरों के अर्थ यथा कामनर शरीर को

देंगे। कैसी शरीर कि असुनीति (प्राणयुक्ता-चिरकालजीवनी) को  
ते जैसे पुनः स्तम्भन कर ते हैं ॥ ६० ॥

अग्निष्वात्ता नृतुमतौ हवामहे नाराशंसं सोमपीथं  
यः आशुः। ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयं स्याम प  
तयो रयीणाम् ॥ ६१ ॥

अग्निष्वात्ता पितरों को हम आह्वान करते हैं। कैसे कि ऋतुयुक्तों को  
जे पितर नाराशंस चमस में सोमपान को पीते हुए। ते पितर हम  
रे बुलाये शीघ्र आवें। एवं बुलाये पितरों विषे हम धनों के स्वामी हों  
वें ॥ ६१ ॥ चतस्र ऋचः समाप्तः ॥

अ० ५ आच्या जानु दक्षिणतो निषद्ये मं यज्ञमभिगृणीत विश्वे। माहि  
हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्वा आगः पुरुषता कराम ॥ ६२ ॥

कात्यायनेन आच्यजान्वित्यनुवाकस्य विनियोगो नोक्तः उदीरतामि  
त्यनुवाकद्वयस्य आद्वेऽश्वत्सु द्विजेषु जपे विनियोगः ॥ दशर्चोऽनुवाकः  
आद्यानवपितृदेवत्या। देविष्टुभौ। हे पितरः सब (सोमवन्तो वर्हिषदोऽ  
ग्निष्वात्ताश्च) तुम इस यज्ञ (सौवामणी) की स्तुति करो अर्थात् दक्षिण  
मन्त्रकाल कर्तृ हविर्यजमानोत्कर्ष करियह यज्ञमलाहे यह स्तुति करो  
क्या करिके कि वाई जानु को नीची डालि तथा दक्षिण भिमुख वेठि क  
रि। किंच हे पितरः किसी भी अपराध करि हमें हिंसामत करो। क्यों  
कि पुरुष भाव (चलचिन्) सैतुम्हारा अपराध हम करें यद्यपि हम अ  
पराधी हैं तथापि हमें मत मारी ॥ ६२ ॥

आसीना सोऽगरुणी नामुपस्थे रयिधत्त शशुषे मर्त्या य।

के सहिते वा स्वभावः अथेन पितरः प्राचिना वीतिनः सव्यं जान्वा च्योसीदन्निति श्रुतेः।

अथ मादेना राशंसं चमसं पितृणां भक्षः अतिपादितः।  
३३. श्रुत्या नाराशंसं चमसं पितृणां भक्षः अतिपादितः।

पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जिदधात ॥ ६३ ॥  
 हे पितरओ हविदेनेवाले मर्त्य (यजमान) के अर्थ तुम धन को देओ  
 कैसे हों तुम कि अरुणी ओं (अरुण वरुण ऊर्ण ओं) के उपरि भाग में  
 बैठे हों ५ यद्वा अरुण वरुण रषिय ओं के उत्संग में बैठे आदित्य लो  
 कस्थाः) हों किंच द्वे पितर ओ पुत्रो (यजमानों) के अर्थ तिस धन को दे  
 ओ (जो अभी धन तिसै देओ पितरों के पुत्र से यजमान हें) ते  
 तुम इस हमारे यज्ञ में ऊर्ज (रस) को स्थापन करो ॥ ६३ ॥  
 यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्य से रयिम् तं नो गीर्भिः श्र  
 वाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ ६४ ॥  
 हे अनुष्टुभौ हे कव्यवाहनः १ हे अग्ने तू भी जिस रयि (हविर्लक्षण  
 धन) को उत्तम जानता है हमारे तिस रयि को देवता ओं में दे कैसे धन  
 को कि गीः (वाचाओं पुरोऽनुवाक्या यज्या वषट्कार लक्षणा ओं) करि  
 सुनने योग्य को। तथा योग्य को ॥ ६४ ॥  
 योऽग्निः कव्यवाहनः पितृभ्यस्तदाहृत्यः ॥ प्रेदु ह  
 व्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥ ६५ ॥  
 जो कव्यवाहनोऽग्निः पितरों को दृष्ट करता हुआ कैसे पितरों को कि क  
 त सत्य वा यज्ञ को वटाते हैं तिन्हें। योह अग्नि देवता ओं और पितरों के  
 अर्थ हवियें कहै अर्थात् ये देवता ओं और ये पितरों के अर्थ यह कहै ॥ ६५ ॥  
 त्वमग्ने ईदितः कव्यवाहना यो हव्यानि सुरभीणि  
 कृत्वी। प्रादाः पितृभ्यः स्वधया तेऽपक्षन्त द्वि त्वं देव प्र  
 यता हवींश्श्रुषि ॥ ६६ ॥

५ यमिः कृतपाः क्रियतेता ऊर्ण अरुण भवन्ति कृतपाचार नद आदिति मनु० ३. २३४ जी  
 लि आर्ध पवित्राणि दोहिवः कुतप रितिला रिति च २३५ कुतपं नेपाल कम्बलमिति कुल्लुकः

१ कव्यपितृभ्यो रयि मन्त्रं वहनीति कव्यवाहनः

चंतस्त्रिष्टुभः। हे कव्यवाहनः हे अग्ने तू हवियें सुगन्धित करिकें क  
हता हुआ। कैसा है तू कि ईडितः (देवताओं और ऋत्विजों करि स्तुति  
किया गया। किंच हवियों को वहि करि स्वधा (पितरों के मन्त्र) से पित  
रों के अर्थ देता हुआ। और ते पितर भक्षण करते हुए। हे देव तू भी शु  
द्ध हवियें भक्षण करि ॥ ६६ ॥

ये चेह पितरो ये च नेह यंश्च विप्र यं॥ उच न प्रवि  
प्र। त्वं वैत्य यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं  
जुषस्व ॥ ६७ ॥

जे पितर इस लोक में वर्ते हैं और जे इस लोक में नहीं हैं और जिन  
पितरों को हम जानते और जिन्हें प्रकर्षण नहीं जानते हैं। हे जात  
वेदः ते पितर यति (जितने) वर्ते हैं तिन्हें तू जानता है यद्वा यतीन् (शु  
द्धों) नित्य नैमित्तिकानुष्ठा नैर्निष्ठापान् तिन्हें तू जानि। किंच स्व  
धा (पितरों के मन्त्र) से शोभन यज्ञ को तू सेवन करि ॥ ६७ ॥

इदं पितृभ्यो नमोऽशस्त्वय्ये पूर्वी सो यः उपरास ईयुः  
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजना सुवि  
क्षु ॥ ६८ ॥

जे पितर पूर्वी सः पूर्व ईयुः स्वर्ग को गये) और जे उपरासः उपर  
तव्यापारः कृतकृत्य होकर परं ब्रह्म को प्राप्त हुए। और जे पार्थि  
वे रजसि (पृथिवी की अग्नि में) भले प्रकार बैठे और जे निश्चय  
यजमान लक्षणा प्रजा में स्थित हैं। कैसी प्रजा कि सुवृजना शोभ  
न बल जिस में तिस धर्म रूप बल युक्ता में इस दिन में तिन चतु

विधों (स्वर्ग ब्रह्माग्नि यजमानस्थों) के अर्थ यह नमस्कार हो ॥६८॥  
अथा यथा नः पितरः परासः प्रत्ना सोऽअग्नः ऋतमा  
शुषाणाः। शुची द्यन्दी धिति मुक्थशासः क्षामाभिन्द-  
न्तोऽअरुणीरपञ्जन् ॥६९॥

हे अग्ने हमारे पितर अध (देह पातो नरकाल) जिस प्रकार शुचि (नि-  
र्मल) दीधित रविमण्डल को प्राप्त हुए। कैसे पितर कि परा (उत्कृष्टाः)  
प्रत्ना (पुण्याः) ऋत (यज्ञ) को व्याप्त हुए। एवम्भूताः पितरः जैसे देवया-  
न को प्राप्त तैसे हम भी अरुणवर्ण सूर्य रश्मिओं को व्याप्त हो देवया-  
न मार्ग को प्राप्त होंगे। कैसे हम कि यज्ञों में शस्त्रों को पढ़ते हैं। तथा भूमि  
को भेदते (वेदिचात्वाल यूपा वटोपर वादि खनन करि विदारण करते  
अर्थात् सर्वोपकारण से यज्ञ को करते) हैं ॥६९॥

उशन्तस्त्वा निधी मत्युशन्तः समिधीमहि। उशन्तु शत  
आवह पितृन् हविषेऽअतवे ॥७०॥

अनुष्टुप्। हे अग्ने उशन्तः (कामयमाना) हम तिस तुम्हें स्थापन कर-  
ते हैं। कामयमाना एव हम तुम्हें संदीपन और तुम्हें कामयमानः काम-  
यमान पितरों को प्राप्त करि क्या करने कि हवियें भोजन करने को ॥७०॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रो दवर्तयः। विश्वा यदज-  
य स्पृधः ॥७१॥

ऐन्द्री गायत्री अग्रियानु वाक निदानभूता। हे इन्द्र जब कि तू स-  
ब संग्रामों को जीतता हुआ तब जलडिण्डीर करि नमुचि असुर  
का शिर छेदता हुआ ॥७१॥

अ० ६ सोमो राजा मृतं सुत ऋजीषेण जहान्मृत्युम् । ऋतेन  
सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं  
पयोऽमृतं मधु ॥७२॥

का० १४. २. २४. अष्टर्च अनुवाक करि समान काल ही पयो ग्रहों और  
सुरा ग्रहों की अध्वर्यु उपस्थान करे यद्वा चारि करि पयो ग्रहों और च  
रि करि सुरा ग्रहों को ग्रहण के अनन्तर ही उपस्थान करे मन्त्र पाठ क  
मादत्रालेखीत्यर्थः ॥ अश्विसरस्वतीन्द्रहृष्टा अष्टौ ऋचः आद्यास्ति सो  
महाबृहत्याः ॥ सोमो राजा अभिषुतः सन् अमृतरूप रसरूप होता है  
+ सोमस्य मृतपादतममृतमावः ।  
क्योंकि ऋजीष (नीरस सोमलता चूर्ण) करि मृत्यु (स्थूलभाव) को ना  
श करता है। इस ऋत (सत्य) करि यह सत्य जाना कि जो अंध (अन्व सो  
म) का विपान (विविच्यपान) शुक्र (शुद्ध) है अतएव इन्द्रियों को वीर्य प्र  
ददुःशा और पय इन्द्र का ऐसा हो कैसा कि इन्द्रियों को वीर्यवत् (अ  
मृत अजरामरत्व प्रद) और मधु (मधुर ॥ अफांफेनेनेत्यस्य मन्त्रास्या  
स्याष्टर्चानुवाकस्य च श्रुत्या सम्बन्ध उक्तः १२. ७. ३. ४. तस्य शीर्ष्णा  
द्धिन्ने लोहितमिश्रः सोमोऽनिष्टत् तस्मादवीभत्सन्त तः एतदन्वसो  
विपानमपश्यन्त्सोमो राजा मृतं सुत इति तेनेनर्हं स्वदयित्वात्म  
न्मदधतेति । यथा एक कारणानि वस्तूनि विविच्यमानानि दृश्यन्ते  
यथा च पृथग्भूतानि संमृष्टानि पुनर्विविच्यन्ते एवमपि लो  
हितमिश्रः सोमो विविक्तः सोम एवेति सर्वानुधाकार्य ॥७२॥  
यद्वा सायनानुसारेण व्याख्यातेतिरेय ब्राह्मण काण्ड २ प्रपाठ ६  
अनुवाक २। यह अभिषुत सोम राजा आप अमृत समान है जैसे



अमृत पीनेवाले की अपमृत्यु नहीं ऐसे सोमय की भी अपमृत्यु नहीं। तत्रायं हेतुः ऋजीष (कीट कस्थानीय नीरस) करि मृत्युको नाश करता हुआ। ऋजीष अपमृत्यु प्राप कर सनिः सरण करितिस के परित्याग से अपमृत्यु का हेतु परित्याग किया। अतः यह ऋत (यज्ञ निष्पादन) करि इन्द्रियों की वृद्धि का हेतु है तिस हेतु यह सत्य शपथ करता हूँ। और अन्नरस से विशेषेण पान योग्य सोमरसरूप है। अतः शुद्ध जो यह इन्द्र है तिस की भी इन्द्रिय वृद्धि का कारण किञ्च यह द्रव्य मधुर क्षीररूप अत एव अमृत रूप है ॥१॥ ७२॥

अथः क्षीरं व्यपिबत्क्रुद्धिरसो धिया। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७३॥

आङ्गिरसः (अङ्गो का रस-प्राण) जैसे क्रुद्ध (हंस) हो बुद्धि करि जल के सकाश से दुग्ध को पीता है (मिले हुए दूध जल से क्षीर ही हंस पीता यह जाति का स्वभाव है। इस सत्य करि यह सत्य है कि जो अन्न का विपान शुक्र हो निरन्तर इन्द्र का पय वीर्य अमृत हो ॥ यद्वा साय० दृष्टान्तः- जैसे लोक में क्रौञ्च पक्षी आङ्गिरसः (पुष्ट शरीर) तादृशः स्वबुद्धि करि क्षीर पात्र में स्वमुखे क्षिप्ते सति मुखगतरस सम्पर्क से क्षीरांश और जलांश को न्यारा करता है तहां जल भाग को छोड़ि क्षीर भाग को पीती है तद्वत् यह इन्द्र भी सोमरस को जल भाग से विवेचन करि पीता है अतः इन्द्रियद्वारेण इन्द्रिय वृद्धि हेतु सोम है तदेतत्सत्यम् ॥२॥ ७३॥

सोममद्यो व्यपिवच्छन्दसा हंसः शुचिषत् । ऋतेन  
सत्यमिन्द्रियं विपानर्हं शुक्रमन्थस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं  
पयोऽमृतं मधु ॥ ७४ ॥

हंसः (आदित्यः) जल के सकाश से छन्द (वेद- वेद रूप किरणों) करि  
जैसे सोम को पीता है (सोम और उदक से सूर्य सोमही को पी) । ऋतेन  
त्युक्तम् । केसा रवि कि शुचि (निर्मल गगन) में वास करता ॥ यद्वा साय-  
व्याख्या शुचि (स्वर्ग) हंसः (सब प्राणियों के हृदय में स्थित जीवात्मा त  
द्रूप धारी इन्द्र) छन्दसा साक्षितया ॥ २ ॥ ७४ ॥

अन्नात्यरिसुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिवत्क्षत्रं पयः सोमं प्रजा  
पतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानर्हं शुक्रमन्थस इन्द्रस्ये-  
न्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७५ ॥

अतिजगती । प्रजापतिः (प्रथम शरीरी) परिसुतो अन्नात् (सुररूप अ-  
न्न से) रस को ब्रह्मणा यत्री लक्षण) करि विविच्य पीताहुः आ । और क्षत्र  
क्षत्रिय के पान वशीकरण) को पय और सोम को पीताहुः आ अनेन  
सत्यनेन सत्यम् ॥ ७५ ॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशतिन्द्रियम् । गर्भोजरयु  
एणवत् उल्बं जहाति जन्मना ॥ ऋतेन सत्यमिन्द्रियं  
विपानर्हं शुक्रमन्थस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं म-  
धु ॥ ७६ ॥

अति शक्थी है । इन्द्रिय (पुम्प जनन लिङ्ग) योनि (स्त्री जनन में प्र-  
वेश करते वीर्य को छोड़ता है योनि प्रदेश से अन्यत्र मूत्र को स

मानद्वारहं रेत मूत्र के परन्तु मूत्रस्थान सै रेत अन्यत्र तिष्ठेहे ।  
जरायु (गर्भवेष्टन) करि आवृत गर्भजन्म करि जरायु को त्यागता  
हे । ऋतेनेति व्याख्यातम् ॥ यद्वा साय० जैसै लोक में पुरुष  
विश्व को त्यागता है एवं इन्द्रभी एक पात्र में स्थित सोम के सार  
को लेता और असार को त्यागता है ॥ ७६ ॥

+ भिन्नस्थाना  
नामेकद्वाराणां  
माद्यमुदाहरण  
मएकस्थानानां  
मेकद्वाराणां द्वि  
तीयम् ।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृ  
ते दधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्र  
यं विपानेन शुक्रमन्थे स इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृ  
तं मधु ॥ ७७ ॥

प्रजापतिः रूपे (रूपवती मूर्तिमती) सत्यानृते देवके व्याकरण पृ  
थक्क करता हुआ (यह सत्य यह असत्य) तदेवाह अनृतमें अश्र  
द्धा (नास्तिक्यबुद्धि) सत्यमें श्रद्धा (आस्तिक्यबुद्धि) स्थापन करता हुआ  
आ। अनेन ऋतेनेत्युक्तम् ॥ ७७ ॥

वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमि  
न्द्रियं विपानेन शुक्रमन्थे स इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽ  
मृतं मधु ॥ ७८ ॥

महा ब्रह्मी । प्रजापति (प्रथमशरीरी वा प्रजापति प्रजाका पालक  
इन्द्र) सुत (सोम) असुत (पय और परिसुत) के रूप वेद (ज्ञानवात्र  
यीविद्या) करि विविच्य पीतवान् । ऋतेनेत्युक्तम् ॥ ७८ ॥

दृष्ट्वा परिसुतो रसं शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत्पयः सोमं  
प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानेन शुक्रमन्थे स

इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७६॥

अतिजगती। प्रजापतिः परितुत (सुरा) केरस को देखि शुक्र (मन्त्र) करि पय और सोम को शुक्र (शुद्ध) करिके वियुज्य पीता हुआ। अतः तेनेत्युक्तम् ॥७६॥

अ०७ सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णसूत्रेण कवयो वयन्ति।  
अश्विना यज्ञं सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो  
भिषज्यन् ॥८०॥

का० १६.४.१२.१३ कृषभों (बड़े बैलों) के खुरों से वसा को लेसी सेनेति प्रति मन्त्र द्वाविंशत् सुराग्रहों + को होमें एक मन्त्र करि दो ग्रहों को ॥ अश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्याः षोडश जगत्यः जगती भिर्जुहोतीति १२.८.३.१३ श्रुतिबलाद्बह्वक्षरन्यूनानामपि कासां चिज्जगतीत्वमेव। दस्त्रादिभिर्यथा इन्द्रस्य भैषज्यं कृतं तदनेनानुवाकेन प्रतिपाद्यते। अश्विना (अश्विनौ-दसौ-अश्विनी कुमार) सविता सरस्वती और वरुण मन से विचारि करि यज्ञ (सौत्रामणी) को निष्यादन करते हैं। किस करि कि सीसा (शष्पक्रयपा) और ऊर्णसूत्र (तोकमक्रयण) से। तत्र दृष्टान्तः जैसे कोई सीसा धातु विशेष करि तन्त्र (अङ्गदविशेष) बनाता और ऊर्णसूत्र करि तन्त्र (पटविशेष) को विनता है तद्वत् +। कैसे हैं प्रश्न दयः कि मेधाविनः। क्रान्त दर्शनाः। इन्द्र के रूप के भिषज्यन् अर्थात् इन्द्र की भैषज्य के अर्थ यज्ञ को निष्यादन करते हैं ॥८०॥  
तदस्य रूपममृतं शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः सर्ग

† पञ्चपलाग्रह इति परिशिष्टे किः।

† तन्त्रं एष्टेचसिद्धन्ते परछन्दाप्रधानयोः अङ्गदेकुटुम्बकतेतन्नुवानेपरिछन्द इति कोशम्।

राणाः॥ लोमानि शष्पैर्बहुधा न तो कर्मभिस्तु गस्पमा  
२२ सममवन्त लाजाः॥ ८१॥

तीनों देवता (अश्विसरस्वत्यः) भले प्रकार रममाण सत्यः इस इन्द्र के  
तिस अमरण धर्म रूप को शचीओं (कर्मों) करि संदधुः (कर्मों) से सं  
धान करते हुए तदेवाह लोमों (इन्द्र के रोमों) को शष्पों (विरुद्ध ब्रीहिओं)  
से संदधुः और त्वचा को तोकमों (विरुद्ध यवों) से संदधुः लाजान  
(और लाजा) इसका मांस हुआ ॥ अध्याय समाप्ति पर्यन्त नका  
राः सर्वे चकारार्थः॥ ८१॥

तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशोऽ  
अन्तरम् । अस्थि मज्जान् मासैरेः कारोतरेण दधतो  
गवो त्वचि॥ ८२॥

रुद्रवर्तनी (रुद्रवत् मार्ग जिन्हों का ते वारुण वर्तनी) भिषजा (बैद्य)  
अश्विनी कुमार और सरस्वती तदन्तर (शरीरान्तर वर्ति) इन्द्र के रूप  
को भले प्रकार बांधते हैं। तदेवाह मासर (शय्यादि चूर्ण निःस्त्राव)  
से अस्थिओं को भ. हे। कारोतर (सुरा पावन चालनी) से मज्जा को  
कैसे हैं ते किणों के चर्म पर सुरा को स्थापन करते ॥ ८२॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शनं  
वपुः । रसं परिस्नुता न रोहितं नृग्नहृर्धीरस्तसरं न  
वेम॥ ८३॥

नासत्या (अश्विनी कुमारी) सहिता सरस्वती वसु (धन) और द  
र्शनीय वपु को पटमिव सृजती इन्द्र का इति शेषः कैसे साध

नकिपेशल(हिरण्यवत्वारूपवत्)।मनकरिविचारिके इतिशेषः।  
परिस्वृत(सुर)केरोहित(लोहित)और रस को सृजती इन्द्रवपुरज  
न के अर्थ अतएव वेदेषु इन्द्रोरोहितः पठ्यते। अथ तदा नग्नहुः  
(कि एवः पूर्वोक्तः सुरकन्दः) तसर (वयनसाधन) और वेम (वेमा) त  
सरधमानो कुविन्दानां प्रसिद्धौ। कैसा नग्नहुः किधीरः बुद्धिकोप्रेर  
णा करता अर्थात् मादक ॥८३॥

पयसा शुक्रममृतं जनिवर्धं सुरया मूत्राञ्जनयन्तरेतः।  
अपामर्तिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्यं बातर्धं सुबुं तदा  
रात् ॥८४॥

प्रकृतत्वात् अश्विनी कुमार और सरस्वती दुग्धकरि वीर्य को उ  
त्पादन करते इन्द्रका इति शेषः। कैसे वीर्य कि शुक्र अनश्रयमा  
न जननशील। समीपमें स्थित होतिस (प्रसिद्ध) ऊवध्यवातनाली  
गत और सबको और सुरकरि मूत्र को उत्पन्न करते हैं। कैसे हैं ते कि अ  
मति (बध्यभाव) और दुर्मति (दुर्बुद्धि) को निवर्त करते अर्थात् सु  
बुद्धि देते हैं ॥८४॥

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजा  
न। यकृत्क्रीमानं वरुणो भिषज्यन्मर्तसे वायुयेन  
मिनातिपितम् ॥८५॥

भले प्रकार रक्षा करने वाला इन्द्र (पुरोडाश देवता) इन्द्र के हृदय क  
रि हृदय को उत्पादन करता है। और सविता पुरोडाश करि इ  
न्द्र के सत्य को जजान। वरुण इन्द्र की चिकित्सा करते सन् पक

नकिपेशल(हिरण्यवत्वारूपवत्)।मनकरिविचारिके इतिशेषः।  
परिस्वृत(सुर)केरोहित(लोहित)और रस को सृजती इन्द्रवपुरज  
न के अर्थ अतएव वेदेषु इन्द्रोरोहितः पठ्यते। अथ तदा नग्नहुः  
(कि एवः पूर्वोक्तः सुरकन्दः) तसर (वयनसाधन) और वेम (वेमा) त  
सरधमानो कुविन्दानां प्रसिद्धौ। कैसा नग्नहुः किधीरः बुद्धिकोप्रेर  
णा करता अर्थात् मादक ॥८३॥



तू (कालखण्ड) और लोमान (गलनाडिका) को जजान। वायव्यो (सोमिको) ध्वपावो (मतस्ते) हृदयो भयपार्श्वस्थे अस्थिनी और पि नको सृजता है ॥ ८५ ॥

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पितृमाना गुदाः पात्राणि सुदु घा न धेनुः। श्येनस्य पत्रं न लीहा शचीभिरासन्दीमा मिरुदरं न माता ॥ ८६ ॥

+ सोमिक।  
न्यो ध्वपा  
त्राणि वायु  
व्यसेताः

स्थाली (आन्त्राणि) हुई कैसी स्थाली कि मधुसिञ्चन्त्यः। पत्रगुदस्या न द्रुण। और शोभन हो ग्धीधेनु आदित्येष्टि की दक्षिणरूपा गु दाही हुई। और श्येन के पात्र लीहा (हृदयवामभागस्य स्थितमांस पिण्ड गुल्फसंज्ञ) हुआ। और आसन्दी शचीकरिनाभि और उदर हुआ कैसी आसन्दी कि माता (जननी स्थानीया) आसन्द्या म भिषिच्यते तस्ततो जायत इव ॥ ८६ ॥

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भोऽ अन्नः। लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधा पितृभ्यः ॥ ८७ ॥

सुराधानकुम्भ शचीओं (कर्मी) करि वनिष्ठु (स्थूलान्त्र) उत्पन्न कर ता है। प्रथम जिस कुम्भरूप योनिस्थान के मध्य में गर्भ (सुरारू पा) उषित है। शतधार उत्स (कूपतुल्य) कुम्भ स्पष्ट शिशु हुआ। और कुम्भी सुराधानी पितरों के अर्थ अन्नको पूरती है ॥ ८७ ॥

मुखं सदस्य शिर इत्सतैन जिह्वा पवित्र मश्विना स न्तरं स्वती। चप्यं न पायुर्मिषगस्य वाली वस्तिर्नेश-

पो हरसा तरुस्वी ॥८८॥

इस इन्द्र के सत् (पात्रविशेष) शिर हुआ। पवित्र जिह्वा हुई। अश्विनी कुमार और सरस्वती मुख हुए। और चण्डपायु इन्द्रि हुई। बाल (सुर गलन बस्त्र) इस इन्द्र के वैद्य गुदा और लिङ्ग हुए बालेन त्रयं जातम् केसा लिङ्ग कि तरस्वी (वेगवान् ॥८८॥

अश्विम्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागैर्न तेजो हविषा  
शृतेन। पक्ष्माणि गोधूमैः कुर्वलैरुतानि पेशो नक्षुक्र  
मसितं वसाते ॥८९॥

अश्विनी कुमारों ने इस इन्द्र के चक्षुकिये ग्रहों (अश्विनी कुमारों) ने नेत्रही अमृत (अनम्बर) किये। छागरूप पक्ष हविकरि चक्षुसंबंधि तेज किया। गोधूम पक्षों करि नेत्र लोम किये कुवलों (वदरों) करि उतानि (चक्षुनिविष्ट लोम) किये। शुक्ल और कृष्ण नेत्रगत रूप अश्विनी कुमारों ने किया प्रकृतत्वात् ॥८९॥

अविर्न मेघो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्थो अमृतो ग्र  
हाभ्याम्। सरस्वत्यु पवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्वद  
रेर्जजान ॥९०॥

अवि (सारस्वत) और मेघ इन्द्र की नासिका में वीर्य के अर्थ अ  
वस्थित हुए। सारस्वत ग्रहों ने प्राण वायु का मार्ग अनम्बर  
किया। सरस्वती उपवाकों (यवाङ्गुरों) करि इन्द्र की व्यान वायु  
को उत्पन्न करती है। बर्हि वदरों सहित नासिका के लोमों को  
उत्पन्न करती है ॥९०॥

इन्द्रस्य रूपभृषभो बलाय कर्णाभ्यांश्च श्रोत्रं समृतं  
ग्रहाभ्याम् । यवान बर्हिर्भुवि केसराणि कर्कन्धुजस्त  
मधुसारघं मुखोत् ॥४१॥

अथभः सामर्थ्य के अर्थ इन्द्र के रूप को करता हुआ । ऐन्द्र ग्रहों करि  
भूत भवष्यद्वर्तमान शब्द ग्राहि कर्णशकुलियों में श्रोत्रेन्द्रिय स्थापन  
की गई । यवा और बर्हिः भुओं के रोम हुई कर्कन्धु (बदर मुख से सार  
घ मधुतनु लाला श्लेष्मादि उत्पन्न करते हुए) ॥४१॥

आत्मसुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे शमश्रूणि न व्याघ्रलो  
म । केशान शीर्षे न्यशसे श्रिये शिरवा सिंहे हस्य लोम त्वि  
षिरिन्द्रियाणि ॥४२॥

आत्मा (शरीर) और उपस्थ (गुह्य) में जे लोम हैं ते वृक के लोम हैं ।  
और मुख में जे शमश्रु (डाढ़ी मूँछ) हैं ते व्याघ्र लोम हैं और शिर में  
जे यश के अर्थ केश और जे शोभा के अर्थ शिरवा और जी त्विषि  
(कान्ति) और जे इन्द्रियें ते सब सिंह के लोम हैं ॥४२॥

अङ्गान्यात्मन्निषजा तद्विनात्मानमङ्गेः समधात्स  
रस्वती । इन्द्रस्य रूपं शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योति  
रमृतं दधानः ॥४३॥

अश्विनी कुमार वैद्य आत्मा (शरीर) में अङ्गों (अवयवों) को भले प्र  
कार योजते (जोड़ते) हुए सरस्वती तिस आत्मा को अङ्गों करि जोड़ती  
हुई । कैसे अश्व्यादयः कि इन्द्र के रूप और आयु को चन्द्र (आल्हा  
दक) ज्योति सहित अनश्वर सम्पादन करने कैसे रूप कि शतमान

संसारमात्रमस्ति का तत्त्वस्वव्यपार  
यमप्यायमयुनानां तत्त्वमप्यानीपता  
बललादि यवोदयोभोभवति तत्तला  
रोनामधुसारघं

अनेक प्राणियों की पूजा जिसमें तिस जगत्युज्यको ॥६३॥

सरस्वती योन्या गर्भमन्तरश्चिभ्यां पत्नी सुहृतं विभर्ति।

अपाथं रसेन वरुणो न सामेन्द्रं चिप्ये जनयन्सु  
राजा ॥६४॥

सरस्वती अश्विनी कुमारे की पत्नी होंके योनिके मध्यमें इन्द्रल-  
क्षण गर्भ को शोभन कृतजैसे तें विभर्ति धारण करती और जलों  
का ईश्वर वरुण उदकरस भूत साम करि इन्द्र को शोभा के अ-  
र्थ जनयन्सन् विभर्तीत्यनुषङ्गः ॥६४॥

तेजः पशूनां हविरिन्द्रिया वत्परिस्तुता पयसा सार-  
थं मधु। अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुता सुता  
भ्याममृतः सोम इन्द्रः ॥६५॥

इति सर्द्धहितायां सप्तमोऽनुवाकः ७

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसर्द्ध  
हितायां दीर्घपाठे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१६॥

वैद्यों अश्विनी कुमारे और सरस्वती नें इन्द्रियवान् (वीर्यवान्)  
पशुओं का सम्बन्धि हविले और परिस्तुत पय सहित सारथ और  
र मधु लेकर तेज दुग्ध स्रवाया। और परिस्तुत पय करि अमृत  
रूप ऐश्वर्य प्रद सोम दुहा ॥ एवं जिन सरस्वती अश्विनी कुमारे  
नें इन्द्र के अर्थ नाना द्रव्यों से अनेक रसों को लेकर उपकार  
किया तिन सौवामणी द्रष्टाओं के अर्थ नमस्कार ॥६५॥

इति गिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ७

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
 पुमार्थाश्चतुरो देयाद्यज्ञदेवः सनातनः  
 श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशारवाध्येतु व्याघ्रपादान्व  
 यविश्वामित्रपुराधिय श्रीमज्जयकिशोर देववर्मात्मजरोक्मिणे  
 यनृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येसोत्रा  
 मणीप्रकरणे सुरादीन्द्राभिषेकान्तवर्णनो नाम ऊनविठं शोऽध्या  
 यः ॥ १४ ॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं तनुमः १

अ० १ क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि । मातृर्हि ष्ठीं सी-  
 न्मा मां हि ष्ठीं सीः ॥ १ ॥ + क्ष-सिः अ० मा-सीः इ० ॥ १ ॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

सेकासन्द्यादिहोत्रान्तोर्विठं शोऽध्यायः समीर्यते १०

का० १४. ४. ७. जानुप्रमाणपादा आसन्दी वेदियों के मध्यमें सोमा  
 न्दीवत् (सुज्जरञ्जु सैविनी दोषाद दक्षिणवेदि दोषाद उत्तरवेदि  
 में जैसे जैसे) स्थापन करें ॥ क्षत्रस्येति आसन्दी देवत्या द्विपदा  
 गायत्री । हे आसन्दि तू क्षत्र का उत्पत्तिस्थान है (आसन्द्यामभि-  
 धिक्ते गुणधर्मानर्हति रज्जेति भावः) और क्षत्र का बन्धन है ॥ का०

१४.४.८. आसन्दि परकृष्णाजिनकोविद्धावै ॥ मात्वेति कृष्णाजिन  
देवत्याग्रा-गा० हे कृष्णाजिन आसन्दि तुमै न मारै और तूमुमै म  
तमारि ॥ १॥

निषसाद धृत व्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥  
मृत्योः पाहि विद्योत्याहि ॥२॥ †

॥ यद्देवैकं कृष्णं जिनं यत्तस्य चैवात्मनश्चाहिंसाये इति १३.८.३.५.श्रुतेः ॥

का० १८०४०८० निषसादेति मन्त्रेण यजमान कृष्णाजिनपरबैठे॥ व्याख्याता १००२७॥ का० १८५४१००११० आसन्दिपरबैठे यजमानके पैरों के नीचे दो रुक्म (मण्डलाकार भूषण विशेष) रखे राजत की सव्य के मृत्योरिति मन्त्रेण सौवर्ण की दक्ष के विद्योदिति सौवर्ण रुक्म की शिर पर एक आचार्य कहिते हैं॥ रुक्म देवत्ये यजुषी दैव्यौ वृहत्यौ । हे रुक्म मृत्यु (अकाल मरण) से मुझे रक्षा करि॥ हे सौवर्ण रुक्म विजली (विजलीपात) से मुझे रक्षा करि॥ ३॥

देवस्य त्वां सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणो हस्ताभ्या-  
म् ॥ अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसाया भिरिच्छामि  
सरस्वत्ये भैषज्येन वीर्यायान्नाद्याया भिरिच्छामीन्द्रस्येन्द्रि-  
येण बलाय श्रिये यशसे भिरिच्छामि ॥३॥ †

का० १४०४१४० वेतस पात्र स्थापित वसाग्रह शेषों से प्रतिदि शस्थि  
त अध्वर्यु आसुरवादवस्त्रावयन् आसन्दीस्थ यजमान को सींचे  
मन्त्र त्रयेण कैसे किसब सुगन्धिओं चन्दन कर्पूर कस्तूरी केस  
रदि से उद्धर्तित को । देवस्य त्वेति सावित्र यजु का तीनों मन्त्रों में अ  
नुषङ्ग है । चतुर्थोऽभिषेकः उत्तरे स्थित तीनों मन्त्रों महाव्याहति

+ नि-तुः॥ अणम्-हि। दण्-वि-हि। उण्॥ ३॥

+ वे-म।०स०॥अ-मि।२०।से-मि।३०।इ-मि।४०॥३॥



योंसे अथवा इन्द्रस्येति तृतीय मन्त्रसे करै ॥ देवस्य व्याख्यातम्  
१०१० ॥ अश्विनोः । त्रीणि लिङ्गोक्तदेवतानि १० प्रा-८०५ ३० आर्षी  
॥ हे यजमान अश्विनी कुमारों के वैद्य कर्म करि तुम्हें अभिषेक  
करता हूँ किमर्थ कि तेज (कान्ति) के अर्थ ब्रह्मवर्च (सर्वत्र अस्त्वलि  
त वेद वेदाङ्ग जनित कीर्ति) के अर्थ ॥ और सरस्वती के मिष कर्म  
करि वीर्य (सामर्थ्य) के अर्थ अन्नभक्षण सामर्थ्य के अर्थ तुम्हें अभि  
षेक करता हूँ ॥ और इन्द्र की इन्द्रिय (इन्द्रिय पादव सामर्थ्य) करि बल  
(सामर्थ्य) श्रिय (सर्व समृद्धि) यश (कीर्ति) के अर्थ तुम्हें अभिषेक कर  
ता हूँ ॥ ३॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा । सुश्लोक सुमङ्ग  
ल सत्य राजन् ॥ ४॥

का० १६०४०१६० अध्वर्यु यजमान का स्पर्श करै ॥ प्रजापत्या गायत्री  
उष्णिग्गर्भा । हे यजमान तू प्रजापति है श्रेष्ठ प्रजापति है (प्रजापति ब  
हुत हैं तिन्हें में तू उत्तम है) प्रजापति पद प्राप्ति के अर्थ तुम्हें में अभिषे  
क करता हूँ आ इति शेषः और प्रजापति के भाव के अर्थ अभिषे ० ॥  
का० १६०४०२०० अध्वर्यु करि स्पर्श किया यजमान सुश्लोकादिसंज्ञ  
कों नरों को बुलावै ॥ हे सुश्लोक (शोभन है कीर्ति जिसकी) यहां आ  
इति शेषः । शोभन मङ्गल (उदय) जिसका हे सुमङ्गल तू यहां आ ।  
हे सत्य राजन् (अविनाशी राजा जिसका) आ ॥ ४॥

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च शमश्रूणि । राज्ञो मे  
प्राणोऽमृतं स म्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥ ५॥

का १४४.४.२१. यजमान यथा लिङ्ग अङ्गों को स्पर्श करे ॥ इन्द्रशरीर वयव देवता के पञ्चर्च तत्र तृतीया गायत्री अन्त्याव्यवसाना महापङ्क्तिः तिस्रोऽनुष्टुभः ॥ अभिषिक्तो यजमान इन्द्ररूप आत्मानं सर्वात्मकं पश्यन्नाह ॥ मेरा शिर शोभा हो वावर्ने मेरा मुख यश हो केश और मुख केलोम दीप्ति हो ॥ राजा (दीप्यमान) मेरा प्राण वायु अमृत हो ॥ चक्षु इन्द्रिय भले प्रकार राजमान हो ॥ श्रोत्रेन्द्रिय विविध राजमान हो ॥ ५ ॥

जिह्वा में भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराष्ट्रभामः ॥ मोदाः

प्रमोदा अङ्गुली रङ्गानि मित्रं मे सह ॥ ६ ॥

मेरी रसनेन्द्रिय कल्याण रूपा हो ॥ वागेन्द्रिय पूज्यमाना हो ॥ मनको धरूप हो क्रोधफल देवे ॥ क्रोध खेनैव राजमान हो नतु कुतश्चित्प्रतिहान्यतामित्यर्थः ॥ १ ॥ अङ्गुलि एं आनन्दरूपा हो ॥ अङ्गानि प्रकृष्टहर्षा हों ॥ मेरा मित्र रिपुनाशक हो ॥ ६ ॥

बाहू मे बलमिन्द्रिय ठं हस्तौ मे कर्म वीर्यम् ॥ आत्माक्षत्रमुरो मम ॥ ७ ॥

मेरी बाहू बलवन्त होंवें ॥ और इन्द्रिय स्वकार्यक्षम हों ॥ मेरे हस्त सत्कर्म कुशल सामर्थ्यवन्त होंवें ॥ मेरा आत्मा (अन्तरात्मा) और हृदय त्राण करने वाला हो ॥ ७ ॥

पृष्ठी मे राष्ट्र मुदरमर्धसौ ग्रीवाश्च ओणी ॥ कुरूऽअरुत्नी जानुनी विशेषे मेऽङ्गानि सर्वतः ॥ ८ ॥

मेरा पृष्ठ प्रदेश देशवत्सर्वाधार हो ॥ मेरा उदर कन्धे काण्ठदेशक

+ तदुक्तम् शक्तिरहितोऽपि कुप्यते मानं चोदयति सेवकजनोऽपि अर्थरहितोऽपि कामी जानाति विषयविडम्बयितुमिति

दि ऊरू अरत्नी (हस्तदेशे) और जानु हैं और सब अन्य अङ्ग प्रजा  
वत् पोष्य हैं ॥ ८ ॥

नाभिर्मे चिन्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् । आनन्द  
नन्दावाण्डो मे भगः सोभाग्यं यसः ॥ जङ्घाभ्यां पद्भ्यां  
धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥

मेरी नाभि ज्ञानरूप हो । गुदाज्ञानजनित संस्काराधार हो । भसत् (स्त्री  
प्रजनन) प्रजारूप सुभग हो (यजमान पत्नी विषय भेतत् । मेरे वृषण  
सम्भोगजनित सुख के भोक्ता हों । मेरे अलिङ्ग सर्वदा भोगासक्त हो ।  
जङ्घाओं और पैरों (सर्वाङ्गों) में धर्मरूप हों ने से ही प्रजाविधे राजा प्र  
तिष्ठित हूँ (धर्म प्रतिष्ठित ही राजा होता है) ॥ ९ ॥

प्रतिक्षेत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु ।  
प्रत्यङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन्यप्रति प्राणेषु प्रतितिष्ठामि पुष्टे  
प्रति द्यावा पृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे ॥ १० ॥

का. १६. ४. २३. आसन्दी से यजमान उतरे । विश्वदेवदेवत्यं यजुः । मेक्ष  
त्रियजाति में प्रतिष्ठा युक्त हूँ । देश, अश्वों गोओं, अङ्गों (करपादाद्य  
वयवों) चित्त, यच्च प्राणों, समृद्धि, स्वर्ग, पृथिवी, यज्ञ (ज्योतिष्टोमा  
दिकों) विधे प्रतिष्ठा युक्त हूँ । क्रियापादावृत्तिः फलातिशय द्योतनार्थः ।  
क्षत्रियदेशयोः प्रतिष्ठा वशीकरणम् गोश्व प्रतिष्ठा तत्प्राप्तिः प्राणा  
ङ्गप्रतिष्ठा नीरोगत्वम् आत्मप्रतिष्ठा निराधित्वम् पुष्टप्रतिष्ठा धनस  
मृद्धिः द्यावा पृथिव्योः प्रतिष्ठोभयलोककीर्तिः यज्ञे प्रतिष्ठा यज्ञकर  
णम् वश्यविश्वः पशुमान् निराधिव्याधिः श्रीमान्यज्ञकर्ता च भवे

यमिति भावः ॥१०॥

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशः सुरार्धसः ॥ बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे ॥ देवा देवैरेवन्तु मा ॥११॥

का. ०१४. ५. ८. शस्त्रसमाप्तिविषे वषट्कृत त्रया इति कण्डिका द्वयात्मक मन्त्र करि त्रयस्त्रिंश वसाग्रह को हो में ॥ देव देवत्या त्रयवसाना पक्षि एकादश देवता वक्ष्यमाण देवताओं सहित मुमैरक्षा करें ॥ कैसे हैं कि त्रयाः (तीनि हैं अवयव जिन्हें के. एकादश त्रिगुण) ते कितने यह आप ही कहिता है कि त्रयस्त्रिंशः (ते तीस है संख्या जिन्हें की ते. शो भन है धन जिन्हें का। तथा बृहस्पति पुरोहित है जिन्हें का। तथा सविता देवता की आज्ञा में वर्तमानाः ॥ दीप्यमान है ॥११॥

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूंश्चैषि सामेभिः सामान्यृग्भिर्ऋचैः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥१२॥

कथमवन्तु तत्राह ॥ विश्व देव देवत्य माशीर्लिङ्ग मू यजुः ॥ प्रथमा देवा द्वितीयां सहित मुमैरक्षा करें ॥ द्वितीया तीसरीं सहित ॥ तृतीयाः सत्यसहित ॥ सत्य यज्ञ सहित ॥ यज्ञ यजुः ॥ ओं सहित ॥ यजुः सामों सहित ॥ साम ऋचा ॥ ओं स ॥ ऋचाएँ पुरोनु वाक्या ॥ ओं स ॥ पुरोनु वाक्याएँ याज्या ॥ ओं स ॥ याज्याएँ वषट्कारों स ॥ वषट्कारा आहुति ॥ ओं ॥ एवं ती निप्रकार एकादश संख्य देवताओं करि उत्तरोत्तर पालिता आहु

तियें मेरे अभिलाषों को पूरण करें भूः भुवनं भूः हुतं इदं स्वाहा सुहु  
तमस्तु ॥१२॥

लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ्मांश्चानतिरागतिः ॥ मांश्च संमन्त्र  
पनतिर्वस्वस्थि मज्जा मंश्चानतिः ॥१३॥

का० १४० ५० १० यजमान ग्रह शेष को प्रत्यक्ष उपहव पूर्वक भक्षण क  
रें ॥ लोमत्वगादि देवतानुष्टुप् मेरे लोमप्रयतिः (जैसे मेरे लोमों में प्र  
यति (प्रयत्न) वर्तते है तैसे उद्यामी मेरी त्वचा आनति (अर्थात् मेरी त्व  
चा को देख आते और मन करते हैं प्राणी) मेरा मांस उपनति (उपन  
मन करते हैं प्राणी) जहां मेरे अस्थि वसु धनरूप मेव मेरी मज्जा  
आनति (अनमन्ति भूतानि यत्र उपलक्षणमेतत् अर्थात् मेरी  
सप्त धातुएँ जगद्वशी करण समर्था हैं ॥१३॥

अ० ४ यहैवा देव हेडनं देवासश्च कृमा वमम् ॥ अग्निर्मा तस्मादे  
न सो विश्वान्मुञ्चत्वर्ह हसः ॥१४॥

इत उत्तरं भवभृवः ॥ का० १४० ५० १३ अवमृथेष्टि करिके यहैवा इत्या  
दि वरुण नो मुञ्च इत्यन्त १८ अ० सार्धकण्डि का चतुष्कात्मक म  
न्त्र से मासर कुम्भ को जल में तारे ॥ अग्नि वायु सूर्य देवत्यानि ति  
स्रोऽनुष्टुभः कूष्माण्डी संज्ञाः ॥ दीप्यमाना हे देवता ओहमनें जो  
देवताओं का हेडन (अपराध) किया ॥ अग्नि तिस पाप से मुँहें पृथ  
क् करे ॥ और सब पापों (विघ्नों) से छुडावे ॥१४॥

यदि दिवा यदि नक्त मेनांश्च सि चकृमा वमम् ॥ वायुर्मा त  
स्मादेन सो विश्वान्मुञ्चत्वर्ह हसः ॥१५॥

यमिति भावः ॥१०॥

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशः सुरार्धसः । बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सर्वे । देवा देवैरेवन्तु मा ॥११॥

का० १४. ५. ८. शस्त्रसमाप्तिविषे वषट्कत त्रया इति कण्डिका द्वयात्मक मन्त्र करि त्रयस्त्रिंश वसाग्रह को होमें ॥ देव देवत्या त्रयवसाना पञ्च एकादश देवता वक्ष्यमाण देवताओं सहित मुमैरक्षा करें । कैसे हों कि त्रयाः (तीनि हैं अवयव जिन्हों के) एकादश त्रिगुण) ते कितने यह आप ही कहिता है कि त्रयस्त्रिंशः (ते तीस है संख्या जिन्हों की ते) शोभन है धन जिन्हों का । तथा बृहस्पति पुरोहित है जिन्हों का । तथा सविता देवता की आज्ञा में वर्तमानाः । दीप्यमान है ॥११॥

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीया स्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्मिर्यजुश्च सामभिः सामान्युग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिमिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥१२॥

कथमवन्तु तत्राह । विश्व देव देवत्य माशीर्लिङ्गम् यजुः । प्रथमा देवा द्वितीयां सहित मुमैरक्षा करें । द्वितीया तीसरीं सहित तृतीयाः सत्यसहित सत्य यज्ञ सहित यज्ञ यजु ओं सहित यजुँ सामों सहित सम ऋचा ओं स ० ऋचाँ पुरोनु वाक्या ओं स ० पुरोनु वाक्याँ याज्या ओं स ० याज्याँ वषट्कारों स ० वषट्कारा आहुति ओं ० एवंत निप्रकार एकादश संख्य देवताओं करि उत्तरोत्तर पालिता आहु



तियें मेरे अभिलाषों को पूरण करें भूः भुवनं भूः हुतं इदं स्वाहा सुहु  
तमस्तु ॥१२॥

लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ्माऽऽनतिरागतिः । मांश्च संमञ्ज  
पनतिर्वस्वस्थि मज्जा मः आनतिः ॥१३॥

का० १४० ५१० यजमान ग्रह शेष को प्रत्यक्ष उपहव पूर्वक भक्षण क  
रें ॥ लोमत्वगादि देवतानुष्टुप् । मेरे लोमप्रयतिः (जैसे मेरे लोमों में प्र  
यति (प्रयत्न) वर्तते है तैसे उद्यामी । मेरी त्वचा आनति (अर्थात् मेरी त्व  
चा को देख आते और मन करते हैं प्राणी । मेरा मांस उपनति (उपन  
मन करते हैं प्राणी जहां । मेरे अस्थि वसु धनरूप मेव । मेरी मज्जा  
आनति (अनमन्ति भूतानि यत्र । उपलक्षणमेतत् अर्थात् मेरी  
सप्त धातुएँ जगद्वशी करण समर्था हैं ॥१३॥

अ० ४ यहैवा देव हेडनं देवासश्च कृमा वधम् । अग्निमी तस्मादे  
न सो विश्वान्मुञ्चत्वर्ह हसः ॥१४॥

इत उत्तरं भवभृवः ॥ का० १४० ५१३ अवमृथेष्टि करिके यहैवा इत्या  
दि वरुण नो मुञ्च इत्यन्त १८० अ० सार्धकण्डि का चतुष्कात्मक म  
न्त्र से मासर कुम्भ को जल में तारें ॥ अग्नि वायु सूर्य देवत्यानि ति  
सोऽनुष्टुभः कूष्माण्डी संज्ञाः । दीप्यमाना हे देवता ओहमनें जो  
देवताओं का हेडन (अपराध) किया । अग्नि तिस पाप से मुमें पृथ  
क् करे । और सब पापों (विघ्नों) से छुडावे ॥१४॥

यदि दिवा यदि नक्त मेनांश्च सि चकृमा वधम् । वायुमीत  
स्मादेन सो विश्वान्मुञ्चत्वर्ह हसः ॥१५॥

यदिचेत् दिनमें यदिरात्रि में हमने पाप किया। वायुतिसपाप और सब पापों (विघ्नों) से मुझे छुड़ावे ॥११॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्नऽ एनाथ्सि च ह्रमा वयम् । सूर्यो मात स्मादेन सो विश्वान्मु च्चत्वर्ह हसः ॥१६॥

यदि जाग्रदवस्था में यदि स्वप्न अवस्था में हमने पाप किया। सूर्य तिस पाप से और सब पाप से मुझे छुड़ावे ॥ अतुत्यात्वन्यथा व्याख्यातम् । जागते में मनुष्यों प्रति जो पाप किया सो ते में पितरों प्रति जो पाप किया तिस से मुझे छुड़ावे ॥१६॥

यज्ञा मे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्च ह्रमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्या वयं जनमसि ॥१७॥

लिङ्गोक्त देवतं यजुः । ग्राम में बन में सभा में पक्षपातादि जो पाप इन्द्रिय विषय में परापवाद परनारी दर्शनादि जो देवता विषय में वाशूद्र में वैश्य में जो पाप हमने किया। आवयोः दोनो पत्नी यजमान में से एक का भी कर्म विषय में जो पाप धर्म लोपोपलक्षणा तिस पाप का तू नाश करे। कुम्भं प्रतिवचनम् ॥१७॥

यदापोऽ अघ्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ॥ अव देवे देव हत मे नोऽ यक्ष्य व मर्त्ये मर्त्य हत पुरु सवर्णा देव रिषस्याहि ॥१८॥ + य-च। अ० अ-हि। इ० ॥१८॥

यदापः जोजल इति विशेषः अन्यद्वारव्यातम् ई. २२। का. २८. २. १४. पूर्ववत् अवभृथेत्यादि शोषधीरुताप इत्यन्त मन्त्रकरि सुरा

कुम्भ का जल में मज्जन है ॥ अवभृथ व्याख्यातम् ३४८ इयान्वि  
शेषः अयक्षि अवायक्षि नाशितवानहं ॥ १८ ॥

समुद्रे ते हृदय मप्सवन्तः संत्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ॥ सु  
मित्रिया न आप औषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु  
योऽस्मान्देष्टुर्यं च वयं द्विष्मः ॥ १९ ॥

समुद्रे ते द्विपदा विशन्तः आपो देवता व्याख्यातम् ८२५ ॥ का० १९  
५१५ यजमान अवभृथ प्रदेश से हो विक्रम उदीची में चलकर  
सुमित्रिया इति जलाञ्जलि को ले जिस दिशा में किरिपु है तिस प्रति  
दुर्मित्रिया इति सींचे ॥ व्याख्यातम् ६२२ ॥ १९ ॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ॥ पूतं पवि  
त्रेण वाज्यमापः सुन्धन्तु मे न सः ॥ २० ॥

का० १९ ५१६ जलस्थायिव जायापती सौमिका वभृथवत् स्नानक  
रि के कर्मकाल में धारण किये वस्त्र को जल में डालें ॥ अब देवत्यानु  
ष्टुप् जल मुझे पाप से पृथक् करे ॥ तत्र दृष्टान्तत्रयमाह - द्रुपदादिवे  
ति - द्रु तरु तन्मय पदपादुका तिस से छूटा जैसे पादुका दोष से अस  
म्बद्ध होता है ॥ और जैसे स्वेदयुक्त स्नान करते मल से पृथक् होता है  
जैसे पवित्र ऊर्ण के छन्ने करि तवाया आज्य तिनका ताते कीट प  
तङ्ग से पृथक् होता ॥ तैसे जल मुझे सुद्ध करे ॥ २० ॥

उह्यं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ॥ देवं देवत्रा सूर्य  
मर्गन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २१ ॥

का० १९ ५१७ सोमवदिति उह्यमिति मन्त्रेण जल से निष्क्रमण

है- अपाम सोम ममृता अभूमेति ऋग्वे० ८.४८.३. जप करते स-  
 बों का त्रिपशु देश विषे आगमन है ॥ सूर्य देवत्यानुष्टुप् प्रस्कावदृष्टा  
 हमतमो बहल इस लोक से निकले। कैसे हैं हम उच्छृष्ट स्वर्ग को देख  
 ते किंच देवलोक में सूर्य को देखते हुए ज्योति ब्रह्मरूप को प्राप्त ॥ २१ ॥  
 अपोऽअद्यान्व चारिषु रसेन समसृक्षमहि। पयस्वा  
 नग्नऽआगमं तं मा सर्गसृज बर्चसा प्रजया च धने  
 न च ॥ २२ ॥

का० १५.५.१८. यजमान आहवनीय को उपस्थान करे ॥ अग्निदेव  
 त्यापङ्क्तिः। हे आनेतिस मुझे ब्रह्मतेज पुत्रादि प्रजा और सुवर्णदिध  
 न करि भले प्रकार जोड़ि जोकि मैं आप (जल) को प्राप्त हूँ और जो मैं रस  
 (जल) करि संसृष्ट हूँ और जो मैं उदकवान् होकर आया हूँ। तिस मुझे  
 बर्च (तेज) आदि से जोड़ि ॥ २२ ॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।  
 समाववर्ति पृथिवी समुषाः समुसूर्यः। समुविश्वमिदं ज  
 गत् ॥ वैश्वानर ज्योतिर्भूयासं विमून्कामान्व्यश्मवे भूः स्वा  
 हा ॥ २३ ॥ + ए-हि।अ०।स-हि।इ०।स-त०।उ०।वे-हा।ऋ० ॥ २३ ॥

का० १५.५.१९. यजमान एधोऽसीति मन्त्र करि समिध लेके समिद  
 सीति मन्त्रेण अग्नि में धारण करे ॥ समिदेवत्ये यजुषी। हे समित्  
 तू दीपिका है हम तेरे प्रसाद से धनादि करि वृद्धि को प्राप्त हों ॥ हे  
 समित् तू प्रकाशती (दीपती) है और तेज है (तत्संयोगे नाम्नेर्ज्वलना  
 त् अतः सुरू विषे तेज धारण करि ॥ का० १५.५.२०. यजमान स

कृद्गृहीत आज्य को कण्डिका शेष करि होसैं ॥ समाववर्त्ति आग्नेयी अनिरुक्त गायत्री वैश्वानरज्योतिरिति यजुः। पृथिवी समाववर्त्ति नाश होती है। और उषाः दिन भी समाववर्त्ति एवं सूर्यः समाववर्त्ति समस्त जगत् स० ॥ अतः मैं वैश्वानर समस्त नरों के अर्थहित परमात्मा तद्रूप ज्योति ब्रह्म एव हों उँ। वडे कामों मनोरथों को प्राप्त हों उँ। भूः स्वाहा भुवनः सत्तामात्र ब्रह्म तिसके अर्थ सुदुत हो ॥ २३ ॥

अ० ३ अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि। व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽग्रहम् ॥ २४ ॥

का० १६. १. ११. सौत्रमणि की आदि में आदित्येष्टिको समाप्त करि त्रिपञ्चर्य आहवनीय दक्षिणाग्नि विहरण करि और अग्न्यन्वाधान ब्रह्मवरण करिके आहवनीयविषे पजमान तीनि समिधाएँ प्रति ऋचासै आधान करता है ॥ अग्निदेवत्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः आश्वतराश्विदृष्टा। हे अग्ने व्रतों (कर्मों) के पालक में तुम्हारे विषे समिध होमता हूँ तिस समिदाधान करि दीक्षित हो व्रत (कर्म) और श्रद्धा (विश्वास) को पहूँचता हूँ तुम्हें दीपन करता हूँ ॥ २४ ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चैव ज्ञातः सह। तं लोकं पुण्यं प्रज्ञैषं यत्र देवाः सहागमन्ता ॥ २५ ॥

पुण्य (पवित्र) लोक को जानूँ (लोकमप्राप्तानां तल्लोकज्ञानं न भवतीति स्वर्लोक गमनं प्रार्थ्यते। वोह कोन कि जिस लोक में ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति वियोग रहित तिष्ठें हैं कैसे ब्रह्म क्षत्र कि सम्यञ्चैव भले प्रकार अश्वते। और जहां अग्नि सहित देवता

चरते हैं। अर्थात् सदाचार विप्राः और क्षत्रियाः जहां जाते हैं तिस देवलोक को प्राप्त होंगे ॥२५॥

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यच्चै चरतः सह। तं लोकं पुण्यं श-  
शेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥२६॥

जिस लोक में इन्द्र और वायु भले प्रकार अश्वते चरते हैं और जहां सेदि (अन्नाप्राप्तिजनित दुःख) नहीं विद्यमान है तिस लोक को पवित्र जानता हूँ ॥२६॥

अर्धं शुना तेऽर्धं शुः पृच्यतां परुषा परुः। गन्धस्ते सो-  
ममवतु मदाय रसोऽश्च्युतः ॥२७॥

सुरा देवत्यानुष्टुप् सुरासंज्ञने विनियुक्ता तत्सूत्रं सौत्रा मण्यार-  
म्भे १६. १ लिखितम् ॥ हे सुरे तेरे अंशु हैं (भाग) सोम के अंशुओं  
के साथ जुड़े तेरे पर्व सोम के पर्वों के साथ युक्त हों। तेरे गन्ध अ-  
नश्वर और रस सोम आलिङ्गन करे किमर्थ कि मद के लिये  
(सुरा युक्त सोम पीने में मदजनक होता है इस हेतु दोनों का  
योग हो ॥२७॥

सिञ्चन्ति परिषिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च। सुरा-  
ये बभ्रुवै मदे किंत्वो बदति किंत्वः ॥२८॥

सुरा देवत्येन्द्र देवत्या बानुष्टुप् पूत सुरादाने विनियोग उक्तः का-  
१६. २. ७ ॥ बभ्रुवर्णा सुरा के मद में स्थित सुरा करि मत्त इन्द्र किं-  
त्व किंत्व यह कहता है किसकी तू इत्यादिक अनिरस्कार कर-  
ने वाले बचन कहता है। जिस सुरा को ऋत्विज पात्र में सींचते



पय आदि करि परि सींचते ग्रहों से उत्सींचते और गोवाल पवित्रहि  
रण्यादि करि पवित्र करते हैं ॥२८॥

धानावन्तं करुमिहामपु पवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रा  
तर्जुषस्वनः ॥२९॥

इन्द्रदेवत्या गायत्री विश्वामित्रदृष्टा स्मार्ते श्रवणाकर्माणि धाना हो  
मे विनियुक्ता प्रातःसवने पुरोडाश पुरे अनुवाक्यापि । हे इन्द्र तू प्रातः  
काल में हमारे पुरोडाश को सेवन करि कैसे को कि धानावन्त कर  
मिहाम अपुवन्त उक्थिन (शस्त्र-स्तुति युक्त) को ॥२९॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् । येन ज्योति रज  
नयन्तृता वृधो देव देवाय जागृवि ॥३०॥

का० १६. ५. २. अध्वर्यु करि प्रेषित ब्रह्मा इन्द्रदेवत्या बृहती ऋचावि  
धे साम गावे ॥ इन्द्रदेवत्या बृहती नृमेध पुरुष मेधदृष्टा । हे मरुतः  
(ऋत्विजः) इन्द्र के अर्थ तुम बृहत्साम गाओ कैसे बृहत् कि वृत्र (पाप  
वादेत्य) प्रतिशति शयेन गन्तार को । ऋत (यज्ञ) को बढ़ाते देवता वा ऋ  
त्विज जिस साम गान देवता (इन्द्र) के अर्थ तेज को उत्पादन करते  
कैसे तेज कि देव (दीप्यमान) जागृवि (जागरणशील-अविनश्वर  
को) । साम गाने नेन्द्र स्तेजस्वी जात इत्यर्थः ॥३०॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतर्हि सोमं पवित्र आनय पुना  
हीन्द्राय पातवे ॥३१॥

का० १६. २. ११. ब्रह्मा पय को अनुमन्त्रण करे । ऐन्द्री गायत्री । हे अ  
ध्वर्यो तू सोम को कम्बलमय छत्ने में सींचि कैसे को कि पाषाणों

करि अभिषुत । ततः गलाय इन्द्रकेपानार्थं ॥३१॥

अ०४ यो भूतानामधिपतिर्यस्मिं लोका अधि श्रिताः । य ईशं  
महतो महान्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वाम-  
हम् ॥३२॥

का० १४०४०२४० अभिषेक से पहिले सीसेन तन्त्रमिति १४०० षोड-  
श ऋचाओं करि द्वात्रिंशत् वसाग्रह हैं तिन्हों के संस्त्रव करिय जमा-  
न का अभिषेक किया फिरि अध्वर्यु मृतानामिति सार्धकण्डिका-  
त्मक मन्त्र करि त्रयस्त्रिंशतमे वसाग्रह को आर्षभस्वर से ग्रहण क-  
रें ॥ आत्मप्रवादा ग्रहदेवत्या नारायणीया कौण्डिन्यदृष्टा पङ्क्तिः ।  
जो परमात्मा भूतों (जरायादि चतुर्विधों) का अधिपति और जिसमें  
भूरादिलोका अधिश्रिताः अर्थात् यदाधारा हैं । महान् (सर्वोत्क-  
ष्ट) जो महत्त्व प्रमुख तत्त्वों का ईशानियन्ता वर्तते है । हे ग्रहमें  
तिस परमात्मा करि तुम्हें ग्रहण कर्ता हूं मयि परमात्मभावमापन्ने  
मयि विषये में तुम्हें ग्रहण कर्ता हूं ॥३२॥

उपयाम गृहीतोऽस्य श्विभ्यो त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा  
सुत्राम्णा एषते योनि रश्विभ्यो त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय  
त्वा सुत्राम्णे ॥३३॥ † उ-मो। अ०। ए-मो। इ० ॥३३॥

उपयाम० यजुसा-त्रि० व्याख्यातम् १०३२ इ० एषते यजुः प्राबु०  
सादने विनियोगः । ग्रह देवते द्वे यजुषी ॥३३॥

प्राणपा मेऽपानपाश्चक्षुष्याः श्रोत्रपाश्च मे । वाचे मे  
विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥३४॥

का० १४. ५. ४. सशस्त्रग्रह होम के अनन्तर शेष को सब ऋत्विज दो  
कण्डिकाओं करि संधते हैं ॥ ग्रहदेवत्ये दो अनुष्टुबुपरिष्ठाद्वहृत्यो  
। हे ग्रह तू मेरे प्राणों का पालक अपान का पालक है नेत्रों का रक्ष  
क और मेरे श्रोत्रों का रक्षक है । मेरी वागिन्द्रिय का विश्वभेषज (   
सब औषध जिस से वोह वाणी औषध उन्मार्गे निवृत्ति और जपा  
दिमें प्रवृत्ति तिसका कर्ता ) है । और मनका विलायक ( विषयों से  
निवर्त करि आत्माविषे स्थापक आत्मज्ञान प्रद यद्वा चक्षुरादि  
कों के साथ विलायक सब इन्द्रियों के साथ मन का जोड़ने वा  
ला ) है ॥ ३४ ॥

अश्विने कृतस्य ते सरस्वति कृतस्येन्द्रेण सुत्रामणा कृ  
तस्य । उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

हे ग्रह आज्ञा पाया मैं तुम्हें भक्षण करता हूँ । कैसे तेरे काकि अश्वि  
नी कुमारेण करि दृष्ट तिसका । सरस्वती करि दृष्ट का भले प्रकार त्रा  
णकर्ता इन्द्र करि दृष्ट का । ऋत्विजों करि आज्ञा दिये का ॥ ३५ ॥

॥ इत्याध्वर्यवंसमाप्तम् ॥

अ० ५ समिद्ध इन्द्र उषसामनी के पुरे रुचा पूर्व कदा नृधान  
त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जयानं वृत्रं विदुरे  
ववार ॥ ३६ ॥

इतः सोत्रामणिकं होत्रमुच्यते ॥ का० १४. ६. १२. समिद्ध इन्द्र इत्या  
द्या एकाद ऋचाँ प्रथम ऐन्द्र पशुकी अप्रिये प्रयाजयाज्याहं  
आङ्गिरस दृष्टा एकादशाप्रियः त्रिष्टुभः तासां क्रमादेना त्वं

ता इध्मः तनूनपान्नराशंसो वाइडः बर्हिः द्वारः उषासानक्ता  
 दैव्यो होतारो तिस्रो देव्यः त्वष्टा वनस्पतिः स्वाहा कृतयः एता देव  
 ताः यथा योगमिन्द्र विशेषण त्वेन व्याख्येयाः अनुवाकेनानेनेन्द्रः  
 स्तूयते। इन्द्र ने वृत्र (मेघ वा दैत्य) को मार और बुरः (द्वारों, मेघ के  
 स्रोतों) को विवृत किया वा दैत्यपुर द्वारों को शून्य किया। के साथ  
 इन्द्र कि समिद्ध संदीप्त मुख प्रातः काल में आगे प्रसरती हैं दीप्ति  
 हैं आदित्यात्मा करि पूर्वदिश को कर्ता। और तेती सो ३३ देवताओं  
 सहित वर्धमान। वज्रपाणि ॥३६॥

नराशर्षसः प्रति शूरे मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य  
 धामे। गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिर ऐषेऽन्त्री य  
 जति प्रचेताः ॥३७॥

एकस्यामृचिनाराशर्षसस्तनूनपातो। प्रचेता (कर्मज्ञाता यजमान)  
 तिस इन्द्र को प्रतिदिन यजता है। तिस किंसे कि जो ऐसा नराशर्ष  
 स (नरों, ऋत्विजों करि समन्तात् शस्त्रों करि स्तुति करिये हैं यद्वा  
 नरास्मिन्नासीनाः शंसन्तीति निरु० ८६ यास्कीत्तेः नराशंसो  
 यज्ञः तद्रूप वा तद्वान्। यज्ञस्य धाम (यज्ञ के स्थानों को जानता)  
 एकः प्रतिमिमान इत्यनेन सम्बध्यते परो यजतीत्यनेना तथा  
 शौर्यवान्। तनूनपात् तनोति (विस्तारता है) सृष्टिको तनूः प्र-  
 जापति मरीचि तिसकानपात् नाती कस्यपात्मजः यद्वा शरी-  
 र को जठराग्नि करि रक्षा करता अग्नि तद्रूप वा तनोति भोग  
 नू गो तिसका पौत्र घृत गोसे पय होतो है तिससे घृत अर्थात्

घृतरूप वा घृतवान् । गोभिर्वपावान् (पशुसम्बन्धिनी करिवपा  
वान्) मधुस्वादोपेत घृतकरि समञ्जन हवियों को भक्षण करता  
हिरण्येः पशवदानभूतकरि चन्द्री सुवर्णमस्यास्तीति ॥ ३७ ॥

ईडितं देवेर्हरिवां ॥ ३८ ॥ अभिष्टिरा जुह्वानो हविषा श  
र्धमानः ॥ पुनर्दुगे गोत्रभिद्वज्रबाहु रेषातु यज्ञमुप  
नो जुषाणः ॥ ३८ ॥

एवंविधि इन्द्र आवै कैसा कि देवता ओं करि पूजित (स्तुत) हरी  
अश्वों वाला । अभिष्टिः (समन्तात् याग जिसका वा अभिस्तूपते।  
हवि निमित्त करि द्विजों से आहूयमान । अतिवलायमान । गो  
त्रभिनत् (भूमिको दृष्टि से त्राण करनेवाले मेष तिन्हें दृष्टिके  
अर्थ भिन्दता वा गिरियों को भिन्दता । वज्रधरः । हमारे यज्ञ को उ  
पसेवमानः ॥ ३८ ॥

जुषाणो बर्हिर्हरिवान् इन्द्रः प्राचीनर्धं सीदत्युदिशा  
पृथिव्याः ॥ उरुप्रथाः प्रथमानं स्पोनमादित्यै रक्तं व  
सुभिः सजोषाः ॥ ३९ ॥

इन्द्र हमारे प्रागभव प्रदेश प्रति बैठे कैसा इन्द्र कि हरी अश्वों युक्त।  
पृथिवी (देवयजनभूमि) को प्रदिशता । विस्तीर्ण रव्याति जिसकी प्री  
ति सहित संतुष्ट । बर्हिर्ओं करि सेवमान कैसी बर्हिर्एँ कि वि  
स्तीर्ण । सुखरूप । आदित्यों वसुओं और मरुतों करि अक्तचि  
कनी की हुई ॥ ३९ ॥

इन्द्रं दुर्ः कव्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सु

समस्तद्विरित्युक्तिः ॥ ३८ ॥  
हविषा घृतेन समानादित्यै रक्तं वसुभिः सजोषाः ॥ ३९ ॥  
आदित्यादीनामुक्तवान् रक्तं वसुभिः सजोषाः ॥ ३९ ॥

पत्नीः। द्वा<sup>रे</sup> दे<sup>वी</sup> रु<sup>मि</sup>तो वि<sup>श्र</sup>यन्ता<sup>रि</sup> सु<sup>वी</sup>रा वी<sup>रं</sup> प्रथ<sup>मा</sup>  
ना महो<sup>भिः</sup>॥४०॥

दुरः। (यज्ञ गृह द्वार) इन्द्र को प्राप्त हों। कैसे इन्द्र को कि वर्षने वाले। श्र  
र। कैसी गृह द्वार कि कवच्यः। (शब्द करती वा शब्द करते हैं) मनुष्य  
जिन्हों में। तथा धाव माना। (आदर युक्ताः।) तथोपमानम् जनयः सुप  
त्नीः। (शोभना साध्विर्एँ पत्नी यज्ञ में सहाधि कारिणीयैस्त्री जैसे लु  
प्तोपमानम् ते जैसे धाव माना प्राप्त होती हैं) तैसि द्वार इन्द्र को प्राप्त हों  
किंच इन्द्र को प्राप्त होकर द्वारे देवी सर्वत्र विद्यता हों। कैसी हैं द्वारः कि  
शोभन वीर। (ऋत्विज लोग हैं जिन्हों में) बड़े तेजों वा उत्सवों से विस्त  
ता होती हैं॥४०॥

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पर्यस्वती सुदुधे शूरमिन्द्र  
म्। तन्तुं ततं पेशसा संवयेन्ती देवानां देवं यजतः  
सुरुक्मे॥४१॥

उषा आदित्यप्रभा और नक्ता रात्रि इन्द्र को (करि) यजतः। (संगत-सं  
गम) करें। कैसे इन्द्र कि महान्त सर्व देव पूज्य को। कैसी हैं उषासा  
नक्ता कि बड़ी उदक वालीयें अवश्यायवतिर्एँ शोभन दुग्धारें वि  
चित्र रूप करि योजती हैं इन्द्र को तत्र दृष्टान्तः जैसे पर (वस्त्र) के अ  
र्थ विस्तीर्ण सूत्र को रूप करि कोई विनता है। तथा शोभन कान्ति  
जिन्हों की॥४१॥

देव्या मिमाणा मनुषः पुरुत्रा होता राविन्द्रं प्रथमा सु  
वाचा। मूर्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्ह



विषा वृधातः ॥४२॥

यह अग्नि और यह वायु मध्यम ते देवताओं के होनेों होतार वायव-  
गनी प्राची दिशा में वर्तमान ज्योति (आहवनीयाख्य) को हवि करिब  
दाते। कैसे होतार कि बहुधा यज्ञ की निर्मिमाण करते। मनुष्य होता  
से आदिहें। वाचा जिन्हों की ते। यज्ञ के सूर्यन् (प्राधानाङ्ग में) इन्द्र को  
स्थापन करते ॥४२॥

तिस्त्रो देवी हविषा वर्धमाना इन्द्र जुष्माण जनयो न प  
त्नीः। अर्चिन् तन्तुं पयसा सरस्वती डा देवी भारती वि  
श्व तूर्तिः ॥४३॥

सरस्वती इडा भारती तीनों देवियें पय हवि करिके यज्ञ की विघ्नर  
हित करें इति शेषः। पुष्टियुक्ताः। साध्वी स्त्री (पत्नीएँ) जैसे इन्द्र को  
सेवमानाः। दीप्यमानाएँ सर्व गामिनीएँ ॥४३॥

त्वष्टा दधक्षुष्म मिन्द्राय वृषोऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पु  
रूणि। वृषा यजन्वृषाण भूरिरेता सूर्यन्यज्ञस्य समन  
क्तु देवान् ॥४४॥

त्वष्टा यज्ञ के शिरस्थानीय आहवनीय विषे देवताओं को भोज  
न करावै। कैसा त्वष्टा कि यशस्वि सेक्त इन्द्र के अर्थ बहुत बल  
को धारण कराता। तथा अपाकः नहीं विद्यमान है प्रशस्यजि  
सैं। वर्षनेवाला वर्षनेवाले इन्द्र को पूजता। भूरिरेताः (सर्वज  
नकः। त्वष्टा करता है।)। एसा त्वष्टा देवताओं भोजन करावै ॥४४॥

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्वन्या समञ्जश्छमितान

विष्णुः। त्वष्टा यज्ञ के शिरस्थानीय विषे देवताओं को भोजन करावै। त्वष्टा यज्ञ के शिरस्थानीय विषे देवताओं को भोजन करावै। त्वष्टा यज्ञ के शिरस्थानीय विषे देवताओं को भोजन करावै।

देवः । इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पूरणनः स्वदाति यज्ञं मधुना  
घृतेन ॥४५॥

वनस्पति यूपदेवता मधु(रस) और घृत करि यज्ञ को आस्वादन  
वा भोजन करावै कैसा वनस्पति कि अवसृष्टोन (आज्ञप्तजैसै  
पाशों करिके अपने में पशुओं को योजता । तत्र दृष्टान्तः जैसै श  
मिता पशुओं को पाशों करि अपने में योजता है । तथा हवियों क  
रि इन्द्र के उदर को पूरण करता ॥४५॥

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर इन्द्रे वृषायमाणो वृषभस्तु  
षाट् । घृतं शुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा अमृता  
मादयन्ताम् ॥४६॥

इन्द्र और स्वाहा कृतयः देवाः तृप्त हों । किस उद्देश्य करि कि स्तो-  
कानामिन्दुं प्रति स्तोका (वपासम्बन्धि घृतविन्दुएँ) तत्सम्बन्धि-  
जो इन्दु (सोम) तिस प्रति तिस उद्देश्य करि वपास्तोकों में सोमत्व  
आरोपण करिये है अर्थात् वपास्तोक रूप सोम को उद्देश करि इ  
न्द्र और स्वाहा कृतयः तृप्त हों । कैसा इन्द्र कि शूर वृषायमाण श  
त्रुओं प्रति गरजता वर्षनेवाला शत्रुओं को अभिभवता । कैसे स्वा  
हा कृतयः कि घृतविन्दु करि हीमन से मोदमानाः (संतुष्टाः) । अम  
रणधर्माणः (नहीं है मरण जिन्हों का ते ॥४६॥

अ० ६ आया त्विन्द्रे वसु उपे न इह स्तुतः सधु मादस्तु शूरः ।  
वा वृधानस्त बिषीर्यस्य पूर्वीद्यौर्न क्षत्रमभिर्भूति  
पुष्पात् ॥४७॥

का० १६. ६. १३. और वषा की आपात्विन्द्र इति ४० पुरोऽनुवाक्या  
आनइन्द्रो दूरादिति ४० याज्या. पशुपुरोडाश की आनइन्द्रो हरि  
भिरिति ४६ पुरोऽनुवाक्या. त्रानारमिन्द्रमिति ५० याज्या. पशुयाग  
में इन्द्र. सुत्रामेति ५१ पुरोऽनुवाक्या. तस्य वयमिति ५२ याज्यास  
त्रार्थः ॥ सप्तत्रिंशुभ इन्द्रदेवत्याः ॥ आद्या वामदेवदृष्टा ॥ इन्द्रह  
में रक्षा करने को समीप आवे। यहां आकर देवताओं के साथ भी  
जन कर्ता हो। कैसा इन्द्र कि शूर (विक्रान्त)। हम लोगों करिस्तुति कि  
या। वर्धमान। जिस इन्द्र के पहिले तविष्यः (बल) वृत्रवधादयः स्व  
र्ग जैसे कहियें हैं अर्थात् स्वर्ग जैसे स्तुति करियें हैं जैसे इन्द्र के बल  
स्तुति करियें हैं। और जो इन्द्र हमारे शत्रु को पुष्ट करता है कैसे शत्रु कि  
अभि भवनशील (शूर) को। वोह इन्द्र आवे इति सम्बन्धः ॥ ४७ ॥

आन इन्द्रो दूरादा न आसाद भिष्टि कदवसे यासदु  
ग्रः ॥ ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः संगे समत्सु तुर्वणिः

पृतन्यून ॥ ४८ ॥

इन्द्र हमारा दूर प्रदेश (छुलो) से आवे। और निकट प्रदेश से आवे।  
क्या करने कि हमारे रक्षा की कैसा इन्द्र कि अनारथ प्रदः ॥ उत्कृष्टः ॥  
ओजिष्ठेभिः (तेजस्वित में वै) युक्तः ॥ नरो कापालक। वज्र बाहुओं  
में जिसके। तथा संगे समत्सु. संग समदिति द्वे संग्राम नामनी नि  
घं ० २. १० संगे (एक संग्राम में) समत्सु (बहुत संग्रामों में) अर्थात्  
दोनों में शत्रुओं को हनन करता ॥ ४८ ॥

आन इन्द्रो हरिभिर्यात्व छावीचीनो ज्वसे राधसे च ।

‡ तिस्रहं वामदेवः ऋषिः इति हलायुधः ॥

५ तविष्यमिदं नाम नवतेर्द्विदिक  
मरण इति निरुद्धं २५ यास्कः ॥

तिष्ठति वज्री मधवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाज  
सातो ॥४६॥

इन्द्र अभि सुख होकर हम को अभि आयातु (आवे)। किन्हीं करि  
कि हरी-अश्वों। किसलिये कि रक्षण के अर्थ और धन के अर्थ औ  
र आकर वज्री इन्द्र हमारे इस यज्ञ प्रति अन्नसम्भजननिमि  
त्त में तिष्ठे। कैसा कि मधवा (धनवान्) विरप्शी (महान्) ॥४६॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र हवे-हवे सुहवर्षर  
मिन्द्रम्। हवामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मध  
वा धात्विन्द्रः ॥४७॥

गर्गहृष्टा + रक्षितार इन्द्र को प्रीणयितार इन्द्र को हव-हव (आ  
ह्वान-आह्वान बायज्ञ) में सुहव (सुखेन आहूयत इति सुहव)  
को शूर को शक्र (समर्थ) को पुरुहूत (बहुतों करि आहूत) को ईदृश  
इन्द्र को बुलाता हूँ। मधवा (धनवान्) इन्द्र बुलाया हूँ आहूत आ  
विनाश स्थापन करे। इन्द्र शब्दा वृत्तिरादरार्था ॥४७॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ २॥ अवाँभिः सुमृडी को भव  
तु विश्ववेदाः। बाधतां द्वेषोऽश्मयं कृणेतु सुवीर्यं  
स्य यतयः स्याम ॥४८॥

इन्द्र अन्नों करि शोभन सुखकारी होवे। कैसा इन्द्र कि सुत्रामा (स  
भले प्रकार त्राण करता है)। स्ववान् (धनवान्)। विश्ववेदा (सब ध  
न जिसका बोह) और वोह इन्द्र दौर्भाग्य को निवर्त करे। और आ  
भय करे। किंच इन्द्र के प्रसाद से हम सुवीर्य धन के स्वामी होवे।

शोभनवीरों पुत्रादिकों के अर्थहित तिस सुवीर्य के ॥५१॥

तस्य वयर्हं सुमनो यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्या-  
म। स सुत्रामा स्ववा २॥ इन्द्रोऽस्मेऽग्राणि द्वे-  
षः सनुतर्पु योतु ॥५२॥

हम तिस इन्द्र के शोभन बुद्धि में हों भद्र (कल्याणरूप) शोभन मन  
में हों अर्थात् इन्द्र हमारे विषे सुमति और मन भद्र करें। कैसे  
इन्द्र के कि यज्ञसम्पादक सुरक्षक धनवान् ब्रह्म इन्द्र हमसे  
दूर में वर्तमान हो भाग्य को अन्तर्हित कर के पृथक् करें ॥५२॥

आ मन्दैरिन्द्र हरिभिर्योहि मयूर रोमभिः। मात्वा के  
चिन्त्रियमन्वि न पाशिनोऽति धन्वैव तां २॥ इहि ॥५३॥

विश्वामित्र दृष्टा ब्रह्मती। आमन्दैः एवेत् अनयोर्विनियोगाभावः।  
हे इन्द्र तू हरी अश्वों करि आ कैसें करि कि गम्भीरनाद मयूर के से रे  
म जिन्हों के तिन मयूर सम वर्णों करि। किंच कोई दुष्ट लोग आते हू  
ए तुम्हें न बाँधें तत्र दृष्टान्तः पाशहस्ता व्याधिलोग जैसे पक्षियों को  
बाँधते हैं तैसे तुम्हें न बाँधें और जे परियन्ही लोग हों वे तिन्हें अतिक्रम-  
ण करि आ कैसें कि धन्व-निरुद्धकदेशः जैसे पान्य मरुदेश को  
अतिक्रमण करि चलते हैं तैसे आ ॥५३॥

एवेदिन्द्र वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासोऽभ्युर्चन्त्य  
कैः। स न स्तुतो वीरवद्धातु गोमधूयं पातस्वस्ति  
भिः सदानः ॥५४॥

वसिष्ठदृष्टा। वसिष्ठापत्यानि मुनयः अर्को (मन्त्रों) से एवमेव इ

इन्द्र को पूजते हैं कैसे इन्द्र को कि वर्षितार वज्र बाहू तिसै वोह इन्द्र  
स्तुति किये सन् पुत्र युक्त गोसंयुक्त धन हमारे अर्थ देवै। एवं पाद त्र  
येणेन्द्रं स्तुत्वा ऋत्विज आह-हे ऋत्विजः तुम अविनाशों करि स  
र्वदा हमें रक्षा करो ॥ ५४ ॥

अथ होत्रं विपशोः

अ० ७ समिद्धोऽग्नि रश्मिना तप्तो घर्मो विराट् सुतः। दुहे  
धेनुः सरस्वती सोमं ह शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥ ५५ ॥

का० १४. ६. १५. समिद्ध इत्याद्याद्वादश अनुष्टुप् छन्दस्काः विपशुकी आशि  
ये (प्रयाजयाज्याएँ) हैं ॥ विदभिर्दृष्टा अश्वि सरस्वत्येन्द्र देवत्या आ  
प्री संज्ञा द्वादशानुष्टुभः। अश्विना वध्वर्यु देवानामिति तौ प्रतिहो  
ता आह-हे अश्विनी कुमारो अग्नि दीप्त (हविके जलाने समर्थ) है  
घर्म (प्रवर्ग्य) तप्त है विविधं राजमान सोम अभिषुत है किंच धेनुगुणों  
की प्रीणयित्री सरस्वती ने सोमको दुहा है कैसे सोम को कि शुद्ध इ  
न्द्र के अर्थ हित बल करने वाला। एता वता यज्ञ सम्पन्नि है तुम भी  
आ ओ इति भावः ॥ ५५ ॥

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती। मध्वा रजा  
ंसीन्द्रियमिन्द्राय पृथिभिर्वहान् ॥ ५६ ॥

दोंनो अश्विनी कुमार सरस्वती मधु करिलोंकों को दुहते हैं। कैसे  
अश्विनी कुमार कि शरीरों के रक्षा करने वाले वैद्य। कसति। सोमे  
अभिषुते सति पूरते हैं। किंच अश्विनी कुमार सरस्वती इन्द्र के अर्थ  
वीर्य को यज्ञ मार्ग करि प्राप्त करते हैं ॥ ५६ ॥



इन्द्रायेन्द्रुं सरस्वती नराशं सैन नग्नहम् । अघाता  
मश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥ ५७ ॥

सरस्वती नराशंस (यज्ञ) सहित इन्द्र के अर्थ सोम और सुराकन्द-  
धारण करते हुए किंच वैद्यों अश्विनी कुमारों के सोम अभिषुते स-  
ति मधुर औषध धारण करते हुए ॥ ५७ ॥

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् । दृडाभिर-  
श्विनाविषुं समूर्जुं सठं रयिंदधुः ॥ ५८ ॥

इन्द्र को बुलाने वाली सरस्वती और अश्विनी कुमार इन्द्र के अर्थ  
इन्द्रिये (चक्षुरादीनि) देते और वीर्य (सामर्थ्य) देते हुए पशुओं स-  
हित अन्न देते हुए दध्यादि और धन देते हुए ॥ ५८ ॥

अश्विना नमुचेः सुतं सोमं श्रुतं परिस्वता । सरस्व-  
ती तमाभरद्बहिषेन्द्राय पातवे ॥ ५९ ॥

इन्द्र के पानार्थ अश्विनी कुमार सुरा सहित अभिषुत अमलिन सो-  
म को नमुचि असुर के सकाश से आहरण करते हुए और सरस्वती  
तिसही सोम को बहिषा स्तरणार्थ सहित आहरण करती हुई ॥ ५९ ॥

कवथ्यो न व्यचस्वती रश्विभ्यां नदुरे दिशः । इन्द्रो नरो-  
हसीऽनुभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥ ६० ॥

अस्यामृचित्रयो नकारश्चार्थाः । अश्विनी कुमारों सहित सरस्वती  
और इन्द्र दोनों द्यावा पृथिवीओं के सकाश से कामों को दुहते हुए द्वा-  
रों और दिशाओं के सकाश से दुहते हुए कैसी द्वारों कि सच्छिद्राः श्व-  
काशवत्यः ॥ ६० ॥

उषासानक्तमश्विनादिवेन्द्रं सायमिन्द्रियैः। संजाना  
ने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥ ६१ ॥

हे अश्विनी कुमारे रविप्रभा और रात्रि सरस्वति सहित दिवस और  
र सायंकाल में इन्द्र को वीर्यो सहित जोड़ते हुए। कैसे हैं ते कि ए  
कमती। शोभन हैं रूपजिन्हें के शुक्ला उषा कृष्णा रात्रिः ॥ ६१ ॥

पातं नोः अश्विना दिवा पाहि नक्तं सरस्वति। देव्या  
होतारं भिषजा पातमिन्द्रं सचा सुते ॥ ६२ ॥

हे अश्विनो दिवस में हमें रक्षा करो हे सरस्वति रात्रि में हमें रक्षा क  
रि। हे देव सम्बन्धि होता ओ वैद्य ओ अश्विनो सोमः भिषुते सति ए  
की होकर तुम इन्द्र को रक्षा करो ॥ ६२ ॥

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडो। तीव्रं परिस्रुता  
सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥ ६३ ॥

तीनों देवियों और अश्विनो सुर सहित सोम को इन्द्र के अर्थ अ  
भिषवन करते हुए। कौन तीनों कि सरस्वती भारती और इडा  
कैसी हैं कि तीनि प्रकार करि स्थिताः इति शेषः सरस्वती मध्यस्था  
ना भारती क्षुस्थाना इडा पृथिवीस्थाना कैसे सोम को कि पदुत्व  
कर मदजनक को ॥ ६३ ॥

अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती। इन्द्रे त्वष्टा  
यशः श्रियं रूपं रूपमधुः सुते ॥ ६४ ॥

अश्विना हमारे सरस्वती और त्वष्टा प्रयाज देवता सोम के अभि  
षुत होने पर इन्द्र में वस्तुओं को स्थापन करते हुए किन वस्तुओं

कों कि ओषध और मधुरूप ओषधकीर्ति लक्ष्मीनानाविधरूपको ॥६४॥

ऋतुधेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता। कीलालम-  
श्विम्या मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥६५॥

वनस्पतिः प्रयाजदेवः स्तुतिहुए सन् काल-काल में सुरा सहित  
कीलाल (अन्नरस) को इन्द्र के अर्थ दुहते हुए किंच सरस्वती अश्वि-  
नी सहिता धेनु होकर इन्द्र के अर्थ मधु दुहती हुई ॥६५॥

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता। समधातुर्धे स-  
रस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥६६॥

हे अश्विना मासर्करि परिस्रुत सहित और गोप्रभृति पशुओं सहि-  
त अभिषुत सोम को और मधु इन्द्र विषें तुम आरोपण करते हुए  
हे स्वाहाकृतयः प्रयाजदेवाः तुम सरस्वती सहित इन्द्र विषें सोम  
मधु आरोपण करते हुए ॥६६॥

अ० ८ अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती। आशुक्रमासु-  
राहसु मयमिन्द्राय जम्बिरे ॥६७॥

का० १४-६-१६-१० अश्विनेत्याद्यास्तिस्रस्तिस्रसं वयानां क्रमाद्या-  
ज्यापुरोऽनुवाक्याः तत्प्रकारमाह अश्विनवपायागे अश्विनेति  
६० अनुवाक्या यमश्विनेति ६० याज्या सारस्वतवपायागे यमश्वि-  
नेति ६० अनुवाक्या तमिन्द्रमिति ६० याज्या ऐन्द्रवपायागे  
तमिन्द्रमिति ६० अनुवाक्या अश्विनेति ६० याज्येति सूत्रार्थः ॥  
एकैकाश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः। अश्विना और सर-  
स्वती ने बुद्धि करिके नमुचि असुर के सकाश से इन्द्र के अर्थ इत

नी वस्तुर्ह्ये आहरण कीर्त्ति कितनी कि अमलिन हविः इन्द्रिय (वीर्य) और मघ (महनीय) विसुधन ॥ ६७ ॥

यमुष्मिना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन् । सविभेद बलं  
मुयं नमुचावासुरे सचा ॥ ६८ ॥

अश्विना और सरस्वती हवि करिके जिस इन्द्र को बढाते हुए वोह  
इन्द्र नमुचि असुर सहित मघ (महनीय बल मेघ) को विदारण क  
रता हुआ ॥ ६८ ॥

तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती । दधाना अभ्य  
नूषत हविषा यज्ञ इन्द्रियैः ॥ ६९ ॥

कर्माङ्ग भूता पशवः गोमेखजाः दोनों अश्विनो और सरस्वती  
सहित एकी हो यज्ञ में हवि और वीर्य करि पुष्ट करते तिस इन्द्र को अ  
भ्य नूषत (बढाते) वास्तुत करते हुए ॥ ६९ ॥

य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः ॥ स सुत्रामो ह  
विष्यतिर्यजमानाय सश्वत ॥ ७० ॥

का. १४. ६. १८. य इन्द्र इतितिस त्रयाणं पशु पुरोडाशानां या  
ज्यानुवाक्याः पूर्ववत् य इन्द्र ७०. सविता ७१. इत्येन्द्रस्यानुवा  
क्या याज्ये. सविता ७१. वरुणः क्षत्रम् ७२. इति सावित्रस्य ते वरुणः  
क्षत्रम् ७२. य इन्द्र ७०. इति वारुणस्येति सूत्रार्थः ॥ प्रत्येकमिन्द्र  
सवितृ वरुण देवत्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः । सविता वरुण भग इति जे  
तीनों देवता इन्द्र विषे वीर्य को स्थापन करते हुए । वोह हवियों का  
स्वामी शोभन त्राण कर इन्द्र यजमान को इष्टदान करि सुखी

करै ॥ ७० ॥

सविता बरुणे दधद्यजमानाय दाशुर्वे । आदत्तनमु  
चेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥

सुत्रामा इन्द्र नमुचि असुरके सकाश सै जो वसु धन और बल  
वीर्य ग्रहण करता हुआ सविता बरुण और भग पशु पुरोडाशमु  
न्वदेवाः तिस नमुचि सै लाये वस्वादिको यजमान के अर्थ देवे  
कैसे यजमान कि हवि देनेवाले के अर्थ ॥ ७१ ॥

बरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् । सुत्रामा  
यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥ ७२ ॥

बरुण सविता और सुत्रामा इन्द्र यज्ञ (सौत्रामणी) को आशत (भक्ष  
ण करते वा व्याप्त हुए) कैसे हैं ते कि क्षत्र (ज्ञाण सामर्थ्य) वीर्य को भ  
ग्य सहित लक्ष्मी और यश सहित बल को यजमान में स्थापन क  
रते हैं तहां बरुण क्षत्र और वीर्य को स्थापन करता है सविता भगप्रिय  
को सुत्रामा यश और बल को इति विभागः ॥ ७२ ॥

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् । हविषेन्द्र  
रस्वती यजमानमवर्धयन् ॥ ७३ ॥

का. १४. ६. १४. अश्विना गोभिरिति तिस्रो हविषां याज्यानुवा  
क्याः न्यूर्ववत् अश्विना ७३. ता नासत्या ७४. इत्याश्विन पशु  
यामे पुरोऽनुवाक्यायाज्ये ता नासत्या ७४ ताभिषजा ७५ इति सा  
रस्वते ताभिषजा ७५ अश्विना ७३ इत्येन्द्रे इति सूत्रार्थः ॥ अश्वि  
सरस्वतीन्द्र देवत्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः ॥ अश्विना और सरती इतने

पदार्थो करि इन्द्र और यजमान को बढाते हुए। किन्हों करि तत्राह  
गो प्रभृति पशुओं इन्द्रिय पाटव अश्वों (दक्षिण रूपों) वीर्य (मनःसा  
मर्थ्य) बल (शरीर दार्ढ्य) और पशु पुरोडाश करि। इन्द्र का वर्धन नृत्ति  
और यजमान का वर्धन धन पुत्र पश्वादि पुष्टि ॥७३॥

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा। सरस्वतीह  
विष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥७४॥

वे नासत्या (नहीं हैं असत्य) अश्विना और सरस्वती कर्मों (सौत्रा  
मण्यादियागों) में हमें रक्षा करें हे इन्द्र तू भी हमें रक्षा कर। कैसे  
नासत्या कि हिरण्य करि उषलक्षित है मार्ग जिन्हों का वे अर्थ  
तू जिस मार्ग में चलते हैं तहां सुवर्ण ही है। शोभन हैं रूप जिन्हों के  
और नराकार हैं। कैसी सरस्वती कि ह विष्मती ॥७४॥

ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती। सहत्रहा शत  
क्रतुर्गन्ता दधुरिन्द्रियम् ॥७५॥

वे षां ह वै अश्विनो और तौ ह प्रसिद्धा सरस्वती वोह प्रसिद्ध वृत्रहा  
इन्द्र कर्त्ता। सा सुदुघा (एतत्कल्प्यमव) के अर्थ वीर्य को धार  
ण करती। सहत्रहा इन्द्र ही राट्ट पात्र रूप करि बहुधा होता है देवा  
नामचिन्त्य शक्तित्वात्। कैसे वेद्य कि शोभन हैं कर्म जिन्हों के। कै  
सी सरस्वती कि साधु दोहना। कैसा वृत्रहा कि शत क्रतु बहु कर्मकर्ता  
वा शत संख्या ककिये हैं अश्व मेध जिसने ॥७५॥

युवर्षे सुरममश्विना नमुचावासुरे सचा। विपिपानाः  
सरस्वतीन्द्र कर्मस्वावत ॥७६॥



का० १६. ६. २०. तीनों पयो ग्रहों और सुराग्रहों की युवमिति पुरोऽनुवाक्या  
पुत्रमिवेति याज्या ॥ द्वे अश्वि सरस्वत्येन्द्रदेवत्येऽनुष्टुप्त्रिष्टुभौ । हेअश्वि  
नो हेसरस्वति तुमनमुचि असुर में वर्तमान सुरामय ग्रहको साथहीवि  
विधपान करतेहुए कर्म में इन्द्रको समन्तात् रक्षाकरौ ॥ ७६ ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनो मेन्द्रावयुः काव्यैर्दुर्घं सनाभिः ।  
यत्सुराम व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वामघवन्ममि  
षाक् ॥ ७७ ॥

इयंव्याख्याता १०. ३४. ॥ ७७ ॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षाणो वशा मेषा अवसृष्टा  
स आहुताः । कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं  
जनय चारुमग्नये ॥ ७८ ॥

का० १६. ६. २१. पशोः सम्बन्धिनिस्विष्टकृद्यागमें यस्मिन्नश्वास इ  
ति पुरोऽनुवाक्या आहव्यग्न इतियाज्या ॥ द्वे अग्निदेवत्ये जगतीत्रि  
ष्टुभौ । हे अध्वर्यो तिस अग्निके अर्थ मनो बुद्धि शुद्धे करौ कैसे अग्नि  
के अर्थ कि कीलालपे (अन्नरसकोपीनेवाले के) । सोमपृष्ठ (सोमकी  
आहुतियें होमियें हें) तिसके । शुभमति करनेवाले के । तिस किसके  
कि जिस अग्निमें एते पशवः अवसृष्टाः (अवदायावदाय चतुरव  
त्तेन निःक्षिप्ताः) तथा आहुताः (आदायादाय हुताः) के पशवः कि  
अश्वाः ऋषभाः उक्षाणः (सेचनसमर्था वृषाः वा) वशाः (बन्धाः)  
मेषाः (अजाः) जिसमें एते पशवो हुताः तिसके अर्थ मनः शु  
द्धि करे इति हानुर्वीक्षम् ॥ ७८ ॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते सुचीव घृतं चम्पूव सोमः।  
वाजसनिर्धं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धैहि यशसं  
बृहन्तम् ॥ ७५ ॥

हे अग्ने तेरे मुखमें हवि सर्वतः होम करते हुए संतत होमे दृष्टान्तः सुची  
व घृतम् जैसे सुचामें घृत सर्वदा स्थित चम्पा (अधिषवण चर्म) में सो-  
म जैसे सर्वदा स्थित तैसे में तेरे मुखमें हवि होमा। हे अग्ने सो-  
नू हमारे विषे ये वस्तुएँ स्थापन करि। कौन कि वाजसनि (अन्न  
का भोग) सुपुत्र युक्त धनं सर्व लोक प्रसिद्ध यश वा सोम दे (यशो वै  
सोमो राजेति श्रुतेः ॥ ७५ ॥

अ० ७५ अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्। वाचेन्द्रो  
बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७६ ॥

का० १५-६-२६-७-१-३ त्रयस्त्रिंशवशा ग्रह सादन के अनन्तर अ-  
ध्वर्यु का होता के पुरस्तात् प्रति गरार्थ उपवेशन कही तदाह प्रति  
गरिष्यति अध्वर्योः पुर उपविष्टे सति अध्वर्यु शौं सावो ३ मिति बु-  
लाकर अश्विना तेजसा चक्षुः इत्येका दशार्च शस्त्रको शंसा करे  
प्रथम और अन्न की दोनों ऋचाएँ तीनि-तीनि वार शंसनीय हैं  
मध्यस्थ तीनों तृचों की आदिमें आहावः करिये ॥ प्रथमाश्वि स-  
रस्वत्येन्द्र देवत्यानुष्टुप्। अश्विनो तेजसहित चक्षु इन्द्रियेन्द्र के  
अर्थ देते हुए सरस्वती प्राण सहित वीर्य इन्द्र के अर्थ ॥ और इन्द्र  
कल्यान्तरीण वल सहित वाचा इन्द्र (एतत्कल्योत्य) के अर्थ ॥ एवं अ-  
श्वि सरस्वतीन्द्रा इन्द्र के अर्थ ॥ ७६ ॥

गोमदूषु एणसत्याश्वावद्यात मश्विना। वर्तीरुद्रा नृपाय्य  
म॥८१॥

गृत्समददृष्टा अश्विदेवत्यास्तिस्रो गायत्र्यः। हे नासत्यो अश्विना  
हे रुद्रौ (शत्रुओं के रुलाने वाले ओ) तुम मार्ग करि नृपाय्य (यज्ञ)  
प्रति आओ क्या करि के कि गो युक्त अश्व युक्त धन लेकर ॥८१॥

न यत्परो नान्तर आदुर्ध्व दृषणवसू । दुःशर्त्तु सोम  
त्यो रिपुः ॥८२॥

हे दृषणवसू (दृष्टि ही है धन जिन्हें कायदा दृष्टि करि के लोकों को  
स्थापन करते हैं) हे अश्विनो दुःशर्त्तु (दुष्ट, अपवाद को शंसाक  
रता शत्रुमर्त्यः (मनुष्यापरः असम्बद्धः अन्तरः सम्बद्धः स्वकीयो  
अपि ईदृशो मर्त्यः जिस इन्द्र को पराभव करने नहीं समर्थ है ॥८२॥

तान् आवोत मश्विना रयिं पिशंगसंहशम् । धिष्ण्यावरि  
वो विदम् ॥८३॥

हे धिष्ण्यो (धिष्ण्यग्नि रूपों वाधाता रौ) हे अश्विना तुम हमारे धन  
को लाओ। कैसे धन को कि पिशंगसंहश (पीतवर्ण, सुवर्ण तथा  
वरिवो विदम् (धन को प्राप्त होता ॥८३॥

पावकानः सरस्वती वाजेभिर्वोजिनीवती । यज्ञं बभृधि  
यावसुः ॥८४॥

मधुच्छन्दो दृष्टाः सरस्वती देवत्यास्तिस्रो गायत्र्यः । सरस्वती हमारे  
यज्ञ को बभृ (कामयताम् चाहें जो जिसे इच्छा करता है) वोह  
तिस प्रति आता है अर्थात् हमारे यज्ञ प्रति आवे। कैसी सरस्वती कि पा

वयित्री। वाजों (अन्त्रों) करि वाजिनीवती (अन्त्रहं विद्यमानजिसमें  
बोह वाजनी-यज्ञक्रिया-वाजनी विद्यमान है जिससे बोह वाजि  
नीवती-यज्ञाधिष्ठात्री। धी (कर्म) करि वसु (धन) जिससे बोह धि  
या वसु ॥ ८४ ॥

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे  
सरस्वती ॥ ८५ ॥

सरस्वती यज्ञ को धारण करती है। कैसी कि सूनृताओं (प्रियसत्य  
वचनों-वेदयत्री शब्दों) की प्रेरयित्री। शोभना बुद्धिओं की देने  
वाली ॥ ८५ ॥

महोऽऽर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना। धियो विश्वा  
विराजति ॥ ८६ ॥

सरस्वती केतु (कर्मों वा यज्ञ) करि बड़े उदकों को चेताती (सबभू  
मि में वृष्टि कराती) है। किंच सर्वजन्तुओं की बुद्धि प्रकाश करती है  
निसे स्तुति करता हूँ ॥ ८६ ॥

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तनू  
धृतासः ॥ ८७ ॥

मधु इन्द्राया इन्द्र देवत्यास्तिस्रो गायत्र्यः। हे चित्रभानो (नाना  
विधा रीति यों वाले) हे इन्द्र तू आ। क्योंकि ये सोम अभिषुत हैं। कैसे  
हैं ये कि तुझे कामना करते। तथा अण्वीर्यी (अङ्गुलीयों) और त  
न (दशाधवित्र) करि शोधन किये। अर्थात् शोधिताः सुताः सोमा इ  
न्द्र हमें पीवें यह चाह करते हैं इस हेतु आ ॥ ८७ ॥

इन्द्रायाहि धियेषितौ विप्रजूतः सुतावतः । उपब्रह्मा  
णि वाघतः ॥ ८८ ॥

हे इन्द्र अपनी बुद्धि करि प्रेरित हू आ (अनन्य प्रेरित) यहां आ। कैसे  
हैं तू कि विप्रजूतः (मेधावियों करि सेवितः) किमिति आगन्तव्यमि  
ति चेत् कि सोमाभिषववान यजमान के ब्रह्माणि (हवियों) के समी  
पमें वाघतः (ऋत्विजः) वर्तते हैं इति शेषः अर्थात् ऋत्विज हविलं  
के स्थित वर्तते हैं ॥ ८८ ॥

इन्द्रायाहितू तु जान उपब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व  
नश्चनः ॥ ८९ ॥

हे हरिवन् हे इन्द्र तू तु जानः (त्वरमाणः) सन् तू हवियों प्रति  
आ। और जाके सोमेऽभिषुते सति हमारचनः (अन्न ५ सोम  
रूप हवि) उदर में धारण करि ॥ ८९ ॥

अश्विनो पिवतां मधु सरस्वत्या सजोषसा । इन्द्रः सुत्रा  
मा वृत्रहा जुषन्तां सोम्य मधु ॥ ९० ॥

इति सठें हितायां नवमोऽनुवाकः

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसठे  
हितायां दीर्घपाठे विठंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्यानुष्टुप् । अश्विनो मधुरस्वाद सोमको  
पियें। कैसे अश्विनो कि सरस्वतीसे प्रीतियन्ते। किंच सुत्रामा (भले  
प्रकार रक्षा करनेवाला वृत्रहा (वृत्रहन्ता) सोसा इन्द्र और अश्विनो  
सरस्वती मधुरसोममय हवि को सेवन करें ॥ ९० ॥

अनुविदनामसुनिधेयं ३१८

अन्ननाम  
निधेयं २७

इति गिरिधरभाष्येन वमोऽनुवाकः

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतव्याप्रपादान्च  
यविश्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजैरेकिणयेन  
पतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये सौत्रामणिप्र  
करणे सेका सन्धादिहोत्रान्तवर्णेनो नामविर्ठशोऽध्यायः ॥२०॥

हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः २१

अ० १ इमं मे वरुण शुची हव मद्या च मृडय। त्वामवस्युराच  
के ॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेनाध्यायो वेदार्थदीपके

याज्यादिप्रेषणान्तोयमेकविंशः समीयते २१

का० १५. ७. १३. अवभृथेष्टि में वारुण एक कपाल पुरोडाश की इ  
मं मे पुरोऽनुवाक्या तत्त्वा याज्या ॥ हे वरुण देवत्ये गायत्री त्रिष्टुभौ  
शुनः शेष दृष्टे। हे वरुण तू मेरे इस आह्वान को सुनि। और आज  
के दिन में हमें सुरव करि। क्योंकि मैं तुम्हें चाहता हूँ। कैसा हूँ मैं कि  
अपनी रक्षा को तुम्हें इच्छा करता ॥१॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मण वन्दमानस्तदाशस्तौ यजमानौ



हविर्भिः॥ अहेड मानो वरुणेह वोध्युरुशरं स मानश्चा  
युः प्रमोषीः॥२॥

व्याख्याता १८.४८.॥२॥

त्वं नोऽग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽवयासि  
सीष्टाः॥ यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांस्सि  
प्रमु मुग्ध्यस्मत्॥३॥

का० १८.१७.१४. अवभृथेष्टिमें ही अग्निवरुणयागविषेपुरेऽनुवा  
क्यायाज्ये ३४॥ अग्निवरुणदेवत्ये त्रिष्टुभौ वामदेव दृष्टे। हे अग्ने  
तू हमारे प्रतिवरुण देवताका क्रोधनिवर्तकरि। किंच सब दोर्भाग्य  
हमारे सकाशसे दूरिकरि। कैसा तू कि अपने अधिकार को जानता।  
अति शयनेनयष्टा। वह्नितमः (हवियों का बोझ)। शोशुचानः (अ  
त्यन्त प्रकाशता)॥३॥

सत्वं नोऽग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽस्या उषसो  
व्युष्टो। अवयश्चनो वरुणं रराणो वीहि मृडीकर्तं  
सुहवो न एधि॥४॥

हे अग्ने सो तू इस उषाके व्युष्टिकाल (इसदिन) में ऊती (अवन) रक्ष  
नकरि हमारा रक्षक और नेदिष्ठ (समीपतम) हो। यद्वा अत्यन्तमव  
तमः। किंच रराणः हवियें देते सन् हमारे वरुण को पूजिततः सु  
खकरै हविभक्षण करि। किंच हमारा सुहवः (स्वाह्वान) हो॥४॥

महीमूषु मातरं सुज्जतानामृतस्य पत्नीमवसे जुवे  
म। तुविक्षत्रा मजरन्ती मुरुचीं सुशर्मणमदिति

ठं सुप्रणीतिम् ॥ ५ ॥

का० १४०७०१५० आदित्यं चरुं यक्ष्यमाणो निर्वपत्यादित्यमीजान इत्यादावन्ते चादित्यचरुरुक्तः तिसकी सुत्रामाणमिति ईषुरोऽनुवाक्या मही मूषितियाज्या ॥ अदिति देवत्या त्रिष्टुप् । हमरक्ष करने योग्य अदिति (अदीना देवमाता) को बुलाते हैं । कैसी अदिति कि बड़ी को । सुब्रतां (शोभनकर्मा) की माता (निर्मात्री) को । ऋत (यज्ञ) की पत्नी (पालयित्री) को । तुविक्षत्रा (बहुक्षत्रा त्राणशीला) को । जररहिता को । बहुगमनशीला को । सुशर्माण (शोभन आश्रय वा सुखजिसका तिस) को सुप्रणीति (शोभनाप्रणीति प्रणयन भजनजिसका तिस) को ॥ ५ ॥

सुत्रामाणं पृथिवी द्यामनेह सठ्ठं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । देवीं नावथं स्वरित्रामनागसमस्त्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥ ६ ॥

+ गयज्ञातगयस्मान् अदिति देवत्या गयप्लावदृष्टा । देवसम्बन्धिनी नाव यज्ञरूपा को स्वस्ति (कल्याण अविनाश) के अर्थ हम आरोहण करें यज्ञकारि के स्वर्ग को जावें । कैसी नाव कि सुत्रामा । पृथिवी विशाला । द्या (स्वर्गरूपा) स्वर्ग हेतु भूता । अनेहस (क्रोधरहिता) । यदालुप्तोपमानम् पृथिवी जैसे पालयित्री स्वर्ग जैसे क्रोधरहिता । साधुसरणभूता । अदिति । सुप्रणीति (साधुप्रणेत्री) । स्वरित्रा (साधु केन्दुवाला प्रयाजादयो रित्रस्थानीयाः) । अनागस (अनपराधा) । अस्त्रवन्ती (अच्छिद्रा दोषरहिता) ईदृशी नाव को आरोहण करूं ॥ ६ ॥

† अरित्रशब्दः कोन्दुवालवाचकः अरित्रं केनिषत्तक इत्यभिधानात् अमर १२.२७।

सुनावमारुहेयमस्रवन्तीमनागसम् । शतारित्राथस्व-  
स्तये ॥ ७ ॥

स्वर्गसम्बन्धिनी देवत्या गायत्री । तद्वै सर्व एव यज्ञो नोः स्वर्ग्येति-  
श्रुतेः स्वर्ग्यो नो र्यज्ञ एव । शोभनानाव यज्ञ रूपा कोऽविनाश (सं-  
सारसागरोत्तराण) के अर्थ आरोहणकरं अर्थात् यज्ञकरं । कैसी  
को कि अछिद्रा । अनागस (सर्वेष्टदा । बहुकेन्दुवाला ऋग्यजुः सा  
म करि ॥ स्मार्ते नावा रोहणे विनियोगोऽस्या ऋचः तथा च पारस्क-  
रगृ० ३. १६ ॥ ७ ॥

आ नो मित्रावरुण घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजो  
थंसि सुक्रतू ॥ ८ ॥

का० १४. ७. १६. अवभृथ सैनिकलि मैत्रावरुणी पयस्या करियज्ञे  
इति जो पयस्या तिसकी आनो मित्रावरुणेति पुरोऽनुवाक्या प्रवा-  
हवेति याज्या ॥ मित्रावरुण देवत्या गायत्री विश्वामित्रहृष्टा । हे मित्रा-  
वरुणो देवो हमारे गव्यूति (यज्ञमार्ग) को घृत करितुमसींचो यद्वा ग-  
वि (पृथिवी) में ऊतिं (अवनहेतुभूतक्षेत्रको) घृतैः (शुद्धोदक करि)  
सींचो । किंच हे सुक्रतू (शोभन हैं कर्मजिन्हों के हे सुकर्माणों) मधुक-  
रि लोकों को सींचो ॥ ८ ॥

प्रबाहवा सिस्रतं जीवसे न आनो गव्यूतिमुक्षतं घृतैर्न  
आ माजने अवपतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुण ह-  
वेमा ॥ ९ ॥

मित्रावरुण देवत्या त्रिष्टुप् वसिष्ठहृष्टा । हे मित्रावरुणो हेतरुणो

(छिन्नजरसौ) हमारे चिरजीवन जीवनविघ्न निवारण के अर्थ बाहुएं प्रसारो। किंच हमारे गव्यूति (क्षेत्र) को घृत जल करि सींचो। तुम्हारे निष्पन्न धान्य करि यज्विन मुझे जनपद में तुम समन्तात् सुनाओ यह देओ यही में चाहता हूँ अर्थात् लोक में मुझे कहो। किंच तुम मेरे इन आह्वानों को अर्थात् सुनि के पूर्वोक्त करो ॥४॥

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वकीः।  
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षोऽसि सनेम्यस्म यु यवन्न-  
मीवाः ॥१०॥

वाजे-वाजेऽवत वाजिनो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः।  
अस्य मध्वः पिबत मादयेध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देव-  
यानैः ॥११॥

१४.७.१७. पयस्या में वाजिनयाग है तहां शंन इति पुरेऽनुवाक्य  
वाजे-वाज इति याज्या ॥ व्याख्याते ४.१६.१८. ॥१०॥११॥

३.१०.२ समिद्धोऽग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः। गायत्री छ-  
न्द इन्द्रियं त्र्यविर्गोर्वयो दधुः ॥१२॥

का. १४.७.१८. वायोधस पशु में समिद्धोऽग्नि रित्याद्या एकादश  
ऋच अग्नियें प्रयाजों की याज्या ॥ एकादश आप्री अनुष्टुभः स्व-  
स्त्यात्रेयदृष्टा वयोधा इन्द्रो देवता। अग्नि गायत्री छन्द और गौये-  
तीनों इन्द्र में इन्द्रिय (वीर्य) वयः (सत्त्व अन्न वा आयु) देवें। केसा  
अग्नि समिधा प्रयाज देवता करि दीप्ति है और अति दीप्ति है प्र-  
याज घृत करि इति शेषः वरेण्य (सम्भजनीय) है। कैसी गौ कि त्र्यविः

(तीनि अवय अनुचरत्व करि जिसके वा + एक वर्ष छै महीने की ॥१२॥

तनूनपाच्छुचिब्रतस्तनूपाश्च सरस्वती। उषिाहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाङ्मोर्वयो दधुः ॥१३॥

तनू(जल)कानपात्(नाती)अग्निः वातनू(गौओ)कानपात् घृत प्रयाजदेवता सरस्वती उषिावछन्द और गोये चारो इन्द्र विषे इन्द्रियं कैसा तनूनपात् कि शुद्ध है कर्म(ब्रत)जिसका। कैसी सरस्वती कि शरीरकी रक्षा करनेवाली। कैसी गौ कि दित्य हवि को बहती ॥१३॥

इडाभिरग्निरीक्षः सोमो देवोऽमर्त्यः। अनुष्टुप्छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गोर्वयो दधुः ॥१४॥

इडा प्रयाजदेवता सहित अग्नि सोमो देवः अनुष्टुप्छन्द और गो ये पांचो इन्द्र विषे कैसा अग्नि किस्तुत्य कैसा सोम कि अमरणाधर्मा कैसी गो कि पांच अवय अनुचर जिसके वा दो वर्ष छै महीनेको ॥१४॥

सुबर्हिरग्निः पूष एवान्तस्तीर्णवर्हि रमर्त्यः। बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गोर्वयो दधुः ॥१५॥

शोभन वर्हिः प्रयाजदेवता अग्निबृहती छन्द गो ये चारो इन्द्रिय और वय इन्द्र में स्थापन करें। कैसा अग्नि कि पूषा युक्तस्तीर्ण वर्हि ये जिसकी बौहअनश्वर। कैसी गो कि तीनि बछड़े अनुचर जिसके वातीनि वर्ष की ॥१५॥

दुरो देवीर्दिशो महीर्जसा देवो बृहस्पतिः। पृङ्क्तिश्छन्द इहे

न्द्रियं तुर्यवाङ्मोर्वयो दधुः ॥ १६ ॥

द्वारे देव्यः प्रयाजदेवता महती दिशा ऐं ब्रह्मादेवः बृहस्पति पङ्क्तिः छन्द चारि वर्ष की गो ये छे देवता इस इन्द्र में इन्द्रिय और वय ररेवं ॥ १६ ॥

उषे यत्नी सुपेशासा विश्वे देवा अमर्त्याः ॥ त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाङ्मोर्वयो दधुः ॥ १७ ॥

दिवचनात् उषे दिन और रात्रि ॥ अमर्त्याः विश्वे देवाः त्रिष्टुप् छन्दः पष्ठ (भार) को वहती गो ये पांच इन्द्र में ॥ कैसी उषे कि यत्नी (वडी) शोभन हं रूप जिन्हों के ॥ १७ ॥

देव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा ॥ जगती छन्द इन्द्रियमनङ्गानोर्वयो दधुः ॥ १८ ॥

देव्यो होतारो प्रयाजदेवो (यह अग्नि और यह मध्यमो वायु) जगती छन्द अन (शकट) को वहते अनङ्गानोः ये चारो इन्द्र में ॥ कैसे होता रों कि वैद्यो इन्द्र के साथ सयुजो संयुक्तो युजो परस्पर संयुक्तो ॥ १८ ॥

तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशाः ॥ विराट् छन्द इहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥ १९ ॥

इडा सरस्वती भारती तीनों प्रयाजदेव्यः मरुतो विशाः (इन्द्र प्रजाः) विराट् छन्द और धेनु (दोग्ध्री) गौ ये छे इन्द्र ॥ १९ ॥

त्वष्टा तुरीयोऽश्वत इन्द्राग्नी पुष्टि वर्धना ॥ द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥ २० ॥

त्वष्टा प्रयाजदेवः इन्द्राग्नी द्विपदा छन्द और उक्षा (सेक्ता) गौ ये पांच इन्द्र ॥ कैसा त्वष्टा कि तुरीय (तूण व्याघ्र) अश्वतः (महान्) कैसे इ



न्नाग्नी कि पुष्टि(धनादिपोष)के बढानेवाले ॥ २० ॥

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन्भगम् । कुकुच्छ-  
न्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः ॥ २१ ॥

वनस्पति प्रयाजदेव सविता(सूर्य)कुकुच्छन्द वशा(वन्ध्या)गोवे-  
हत्(गर्भघातनी)गोये पांच इन्द्र।कैसा वनस्पति कि हमारा शमि-  
ता(सुखयिता)कैसा सविता कि भग(धन)को देता ॥ २१ ॥

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् । अतिछन्दा इ-  
न्द्रियं बृहद्वेषभो गोर्वयो दधुः ॥ २२ ॥

शोभनक्षत्र(क्षतत्राण जिसका)बोहवरुण स्वाहा(स्वाहाकृतिप्रया-  
जदेवों)सहित यज्ञलक्षण औषध इन्द्रके अर्थ करें।किंच अतिछ-  
न्दा छन्द बडा ऋषभगोवरुण और स्वाहाकृतयः ये चारों इन्द्रिय  
और वय इन्द्र विषे देवें ॥ २२ ॥

अ० ३ वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिदता स्नुताः । रथन्तरेण  
तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २३ ॥

का० १६.७.२० वयो धस पशु में ही छै ऋचाएँ वपादिकों की याज्या  
नुवाक्याः तत्र वपायागे वसन्तेनेति २३ पुरोऽनुवाक्या । ग्रीष्मेणे-  
ति २४ याज्या । पशुपुरोडाशयागे वर्षाभिरिति २५ पुरोऽनुवाक्या ।  
शारदेनेति २६ याज्या । हव्यादियागे हेमन्तेनेति २७ पुरोऽनुवा-  
क्या । शैशिरिणेति २८ याज्येति सूत्रार्थः ॥ अनुष्टुभः षट् लिङ्गो  
क्तदेवताः वयोया इन्द्रे देवतेत्यर्थः । वसवो देवा इन्द्र विषे तेजस  
हित हवि(वपाख्य)और वय(शक्ति)स्थापन करें कैसे वसवः कि व

सन्त ऋतु विवृत्तोम और रथन्तर पृष्ठ करि स्तुताः ॥२३॥

ग्रीष्मेणः ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः ॥ बृहता

यशसा बलं हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२४॥

रुद्र देवा इन्द्र में यश सहित बल हवि और वयस्थाप ॥ कैसे रुद्राः

कि ग्रीष्म ऋतु पञ्चदश स्तोम और बृहत्पृष्ठ करि स्तुताः ॥२४॥

वर्षाभिः ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः ॥ वै रूपेण वि

शोमसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२५॥

आदित्याः देवा इन्द्र में विश प्रजा और ओजसहित हवि ॥ कैसे

आदित्या कि वर्षा ऋतु सप्तदश स्तोम और वै रूप पृष्ठ करि स्तुताः ॥२५॥

शारदेनः ऋतुना देवा एकविंशः ऋभवस्तुताः ॥ वै राजे

न श्रिया श्रियं हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२६॥

ऋभु संता देवाः इन्द्र में श्रिय हवि ॥ कैसे ऋभवः कि शरद ऋतु ए

कविंश स्तोम वैराज पृष्ठ और लक्ष्मी करि स्तुताः ॥२६॥

हेमन्तेनः ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुते स्तुताः ॥ बलेन शक्ते-

रीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२७॥

मरुतो देवाः इन्द्र में बल सहित इन्द्रिय सामर्थ्य हवि ॥ कैसे मरुतः कि हे-

मन्त ऋतु त्रिणव स्तोम शाक्कर पृष्ठ करि स्तुताः ॥२७॥

शैशिरेणः ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिंशोऽमृतास्तुताः ॥ सत्ये-

न रेवतीः क्षत्रं हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२८॥

अमृता देवाः सत्य सहित क्षत्र (क्षतत्राण) हवि और वय (शक्ति) इन्द्र में

स्थापन करें ॥ कैसे अमृताः कि शिशिर ऋतु त्रयस्त्रिंश स्तोम रेवतपृ

घृकरिस्तुताः ॥ २८ ॥

अ० ४ होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्य दे० अश्विनेन्द्रं सरस्वती-  
मृजो धूम्रो न गोधूमैः कुर्वन्ते भेषजं मधु शष्येर्न तेज  
इन्द्रियं पयः सोमः परिस्तुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य  
होत० र्यज ॥ २८ ॥

का० २४. ६. १४. होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्य ड इत्यादयः द्वादश  
कण्डिकाएँ त्रिपशुकी प्रयाज प्रैषाहँ ॥ द्वादशाप्रीणां प्रयाज वाज्या  
नां प्रैषा अश्वि सरस्वतीन्द्रदेवत्या। होता यक्षत्समिधाग्निमित्यादि-  
सूक्ता ब्रूहीत्यन्ताः २४-६१ सर्वाणि यजूंषि इति हलायुधः २४. ३० एका  
धिका अत्यष्टि ४१. अ० ३० उ० प्रा० पं० ४८-५१ आर्ष्य स्त्रियुभः व्यव  
हित पद प्राया ५१ अष्टि ६० धृतिः ६१ विकृतिरिति महीधरः। दैव्यो (देवस  
मन्धि होता) समिधा प्रयाज देवता सहित अग्नि अश्विनी कुमार  
इन्द्र और सरस्वती को इडः पद (गोपद आहवनीय) विषे यक्षत् (यज  
तु यजे)। तिसयाग में अज और धूम्र (मेष) गोधूमों (गेंहुओं) कुव  
लों (वेरों) और शष्यों (अद्भुत ब्रीहियों) सहित ओषध होता है इ  
न्द्र के अर्थ इति शेषः कैसा ओषध कि मधुर तेजः प्रद इन्द्रिय साम  
र्थ्य प्रद। किंच ते अश्वि सरस्वतीन्द्रा दैव्य होता करि इज्यमानाः स  
न्तः पय मदिरा सहित सोम घृत और मधु को पिये हे होतः (मनुष्य  
होतः) तूभी अश्व्यादिकों के अर्थ आज्य को दे ॥ २८ ॥

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषोन भेषजं पृथा  
मधुमता भरन् अश्विनेन्द्राय वीर्यं वदरैरुपवाकाभिर्भेष-

मिधा प्रयाज देवता सहित अग्नि अश्विनी कुमार इन्द्र और सरस्वती को इडः पद (गोपद आहवनीय) विषे यक्षत् (यज तु यजे)। तिसयाग में अज और धूम्र (मेष) गोधूमों (गेंहुओं) कुवलों (वेरों) और शष्यों (अद्भुत ब्रीहियों) सहित ओषध होता है इन्द्र के अर्थ इति शेषः कैसा ओषध कि मधुर तेजः प्रद इन्द्रिय सामर्थ्य प्रद। किंच ते अश्वि सरस्वतीन्द्रा दैव्य होता करि इज्यमानाः सन्तः पय मदिरा सहित सोम घृत और मधु को पिये हे होतः (मनुष्य होतः) तूभी अश्व्यादिकों के अर्थ आज्य को दे ॥ २८ ॥

जं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्य  
स्य होतुर्यज ॥ ३० ॥

देव्यो होता तनूनयात प्रयाजदेव सरस्वती अश्विनौ और इन्द्रकोय  
जै। तत्र यागे अवि(अज) और मेष रसवता यज्ञमार्ग करि आत्मा-  
को लाते सन् वदरीफलों इन्द्रयवों तोक्मों (अङ्कुरितव्रीहियों वा प-  
वों) सहित वीर्यकर औषध होता है। अश्वि सरस्वतीन्द्रा देव्यहोता  
करि इज्यमान पय आदिको पियें हे होतः तूभी आज्यको दे ॥ ३० ॥

होता यज्ञन्तरा श्रुतं न नग्नुहं पतिष्ठं सुरया भेषजं  
मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्यश्विनौ वर्षा इन्द्रस्य  
वीर्यं वदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः  
परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतुर्यज ॥ ३१ ॥

देव्यो होता नराशंसप्रयाजदेव सरस्वतीको और भिषजश्विनीकुमारों  
के रथ को यजे कैसारथ कि सुवर्णमयः + तहां सुरा सहित नग्नुहः  
(किएवः) मेषः तीनों पशुओं की वया वदर इन्द्रयव और तोक्माओं  
सहिता इन्द्रका वीर्यकर भेषहो। अश्व्यादयः पय आदीनि पियें हे  
होता आज्यको दे। कैसा नराशंसकि पालक ॥ द्वितीयो भेषजशब्द  
आर्षः ॥ ३१ ॥

होता यक्षदिडेडित आजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलं  
न वर्धयन्नुषभेण गवैन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं य-  
वैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता  
घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतुर्यज ॥ ३२ ॥

नराशंसप्रयाजदेव सरस्वतीको और भिषजश्विनीकुमारों  
के रथ को यजे कैसारथ कि सुवर्णमयः + तहां सुरा सहित नग्नुहः  
(किएवः) मेषः तीनों पशुओं की वया वदर इन्द्रयव और तोक्माओं  
सहिता इन्द्रका वीर्यकर भेषहो। अश्व्यादयः पय आदीनि पियें हे  
होता आज्यको दे। कैसा नराशंसकि पालक ॥ द्वितीयो भेषजशब्द  
आर्षः ॥ ३१ ॥

देव्यो होता इडा प्रयाज देवता को सरस्वती इन्द्र और अश्विनो को यज्ञेया  
करिकै कि ऋषभ और गोधेनु और बल कर इडादिकों को वटाता यज्ञे  
कैसा होता कि ऋत्विजों करिन्तु इडादिकों को बुलाता। तत्र यवों क  
कन्धुओं और लाजाओं सहित मधु और मासर (ओदन कानिः साव)  
इन्द्र के अर्थ वीर्य कर औषध होता है। आश्व सरस्वतीन्द्रा होत्रेज्य  
माना पय आदी निपियें और होताः तूयजि ॥ ३३ ॥

होता यक्षद्वर्हिस्त्विमदा भिषङ्गा सत्या भिषजाश्विना  
श्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुह इन्द्रा  
य भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्य  
स्य होत र्यज ॥ ३३ ॥

देव्यो होता ऊर्णजैः स मदीय वर्हि प्रयाज देव को वेद्यो सत्य रूपों अ  
श्विनो और सरस्वती को यज्ञे। तत्र शिशुमती अश्वा (बडवा) भिष  
क धेनुः और भिषक् इन्द्र के अर्थ औषध दुहती (पूरती) है (अश्वा  
दयो दक्षिणा दीयन्ते। ते पय आदी निपियें होता यजि ॥ ३३ ॥

होता यक्षद्वुरो दिशः कवप्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां  
न दुरो दिश इन्द्रो न रोदसी दुधे दुहे धेनुः सरस्वत्य  
श्विनेन्द्राय भेषजं शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः  
परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होत र्यज ॥ ३४ ॥

देव्यो होता द्वारः प्रयाज देवीः को और इन्द्र सरस्वती अश्विनो को  
यज्ञे कैसी है द्वार + कि दिशा ऐसे साव काशाः कवप्यः (समुधिग)  
अत एव व्यचस्वतीः (गमन वत्यः) दिक् तुल्या द्वार अश्विनीकु

द्वार शब्द सप्तम्यसारणम्

मारों सहिता सती रोदसी (द्यावापृथिवीओं) के सकाश सै इन्द्र के अर्थ  
दुहती कैसी रोदसी कि दुधे दुहे। और सरस्वती धेनु होके इन्द्र के अर्थ  
शुद्ध ज्योति और वीर्य दुहती। अन्यदुक्तम् ॥ ३४ ॥

होता यक्षत्सुपेश सोषे नक्तं दिवाश्विना समञ्जाते सरस्व  
त्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजं श्येनो न रजसा हृदाश्रिया  
न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य  
होतुर्यज ॥ ३५ ॥

होता सुपेशसा सुरूषे उषे (रातिदिन) प्रयाजदेवों और सरस्वती स-  
हित अश्विनी कुमारों को यजै। और तो अश्विनो राति और दिन में  
रज (ज्योति) और चित्त श्रिय सहित मासर रूप ओषध और श्येन प-  
त्र कान्ति को इन्द्र में जोड़ते। ते पय आदीनि पिये हे होतः तूयजि ॥ ३५ ॥

होता यक्षदैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा  
नक्तं न भेषजैः शूषं सरस्वती भिषक् सीसेन दुह इन्द्रि  
यं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतुर्य-  
ज ॥ ३६ ॥

दैव्यो होता दैव्यो होतारो (अयं चाग्निरसौ च मध्यमः) इन् प्रयाजदे  
वों को और भिषजों अश्विनो इन्द्र को यजै। भिषग्भूता सरस्वती भे-  
षजों सहित शूष (बल) और वीर्य को सीसा करिके दुहती कैसी सर-  
स्वती कि दिन राति जागरण शीला (स्वकार्य सिद्धाव प्रमत्ता) अ-  
श्व्यादयः पय आदी ॥ ३६ ॥

होता यक्षत्सो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधा तवोऽपसो रू



पमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती-  
मह इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्नुता घृतं मधु  
व्यन्त्वाज्यस्य होत यज ॥ ३७ ॥

देव्यो होता इडा भारती और सरस्वती तीनों प्रयाजदेवियों इन्द्र और  
र अश्विनो को यजै। जो सरस्वती वाचा (त्रयीलक्षणा) करि ओषध-  
और द्योतमानरूप तेज और इन्द्रिय इन्द्र के अर्थ दुहती। क्या करिके  
कि त्रयस्त्रिधा तवः (तीनों पशुओं करि तीनों धातु हैं प्रधानाङ्गी पयः  
क्षणाः प्रकाराजिन्हों के)। कैसे पशवः कि अप्सः कर्मवन्तः। तीनों  
पशुओं ज करि भेषज रूप इन्द्रिय महंसि इन्द्र के अर्थ दुहती। सिद्धं  
समानम् ॥ ३७ ॥

होता यक्षत्सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विनो  
भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो  
भिषग्यशः सुरया भेषजध्वश्रिया न मासरु पयः सोमः  
परिस्नुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होत यज ॥ ३८ ॥

होता त्वष्टार प्रयाजदेवको इन्द्र अश्विनो सरस्वती और भिषज को य  
जै। कैसे त्वष्टार कि सुरेतस (शोभन वीर्य वृष्टि लक्षण जिस का वा  
युरुष के रेतः कारण भूत) वर्षितार नरों के अर्थ हित कर्म जिस का  
तिसै। केन यजतु तदाह रभसः (सोद्यमः) भिषक् (वेद्यभूत) जो वृको  
तिस करि और सुरा करि और भेषज जो मासर तिस करि यजै। एवं  
च यागे ओज तेज जूति (वेग) वीर्य और श्री सहित यश इन्द्र में हों  
इति शेषः। शिष्ट मुक्तम् ॥ ३८ ॥

पमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वतीमोषः

सुरयां वृको न रभसो भिषग्यशः

होता यक्षद्वनस्पतिर्ऋषितारर्ऋषतक्रतुं भीमं न मन्यु  
र्ऋराजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामर्ऋसरस्वती भिषगिन्द्र  
य दुहः इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्य  
स्य होत र्यज ॥३६॥

देव्यो होता वनस्पति प्रयाजदेव को व्याघ्र विशेषेण जिघ्रति ऐसे राजन  
शतक्रतु इन्द्र अश्विनो और सरस्वती को अन्नकरि यजे कैसे वन  
स्पति कि पूपरूपेण पशुओं के संस्कर्तार भयंकर क्रोधात्मा को। वै  
द्यरूपा जो सरस्वती इन्द्र के अर्थ क्रोध और वीर्य दुहती। ते वनस्प  
त्यादय पय आदी ॥३६॥

होता यक्षदग्निं स्वाहाज्यस्य स्तोकां नानां स्वाहा मेद  
सां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्यां स्वाहा मेषर्ऋसरस्व  
त्यै स्वाहा ऋषभमिन्द्राय सिंहाय सहसः इन्द्रियं  
स्वाहाग्निं न भेषजं स्वाहा सोममिन्द्रियं स्वाहेन्द्रर्ऋ  
सुत्रामारर्ऋसवितारं वरुणं भिषजां पतिं स्वाहा व  
नस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजं स्वाहा देवा आज्यपा  
जुषाणो अग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु  
व्यन्त्वाज्यस्य होत र्यज ॥४०॥

होता अग्निं प्रयाज देव वा आहवनीय को यजे। किंच घृत के स्तोको  
(बिन्दुओं) को स्वाहा (सुष्टु आह-शोभन कहता है) यजमान इति शेषः  
षः। मेदसां वपासम्बन्धि मेदों को भलेहें यह पृथक् कहता है। अ  
श्विनीकुमारों के अर्थ छाग को शोभन कहता है। सरस्वती के अ

यं मेष को शोभ० इन्द्र के अर्थ वीर्य प्रद ऋषभ को शोभ० कैसे इन्द्र  
कि सिंह तुल्य शत्रुओं के अभिभवित्र तथा बलात्मक के अर्थ। और  
मेषज (हितकारिण) अग्निको शोभ०। और वीर्य प्रद सोम को शोभ० एता  
वग्नी वोमा वाज्यभागो सु आहेत्यर्थः। सुत्रामा इन्द्र को सविता को  
और वेद्यों के पति वरुण को शोभ० पशुपुरोडाश देवताः सु आहेत्य  
र्थः। प्रिय (इष्ट) पाय (अन्नभूत) और मेषज पशुदेवता के वनस्पति प्र  
याज देव को शोभ०। आज्यपा देवताओं को शोभ०। मेषज (ओष  
धभूत) को सेवमान अग्नि अश्वि सरस्वती और इन्द्र दैव्य होता-  
करि इज्यमानाः पय आ०॥४०॥

अ०५ होता यक्षदश्विनो छागस्य वपाया मेदसो जुषतां हविर्हो  
तर्यजे। होता यक्षत्सरस्वती मेषस्य वपाया मेदसो जुष-  
तां हविर्हो तर्यजे। होता यक्षदिन्द्र मृषभस्य वपायामे  
दसो जुषतां हविर्हो तर्यजे॥ ४१॥ + हो-जा अ०६० उ०॥४१॥

का० १६-६-२२ होता यक्षदश्विनो छागस्य होता यक्षत्सरस्वती मेष  
स्य होता यक्षदिन्द्रस्येति एक कण्डिका में तीनों वपाओं की क्रम से  
प्रेषा है॥ सप्तलिङ्गोक्त देवता ४१-४५। दैव्यो होता अश्विनो को यजे  
इज्यमानो तो अश्विनो छाग की वपा का मेध सम्बन्धि हवि (स्निग्धभा-  
ग) सेवन करें हे होतः यजि॥१॥ होता सरस्वति को यजे वोह मेष की  
व०॥२॥ होता इन्द्र को यजे वोह इन्द्र ऋषभ की व०॥३॥४१॥

होता यक्षदश्विनो सरस्वतीमिन्द्रं सुत्रामाणमिमे सो  
माः सुरामाणश्छागेन मेधैर्ऋषभैः सुताः शय्यैर्न तोक

+ प्रयाजानुयाजा वै देवा आज्यपाः। स्वाहेति क्रियाया यजमानः कर्ता देवा ह वा ऊचुर्ह  
न्त विजितमेवानु सर्वं यस्तु संहस्थापयेत्युपक्रम्य तत उत्तमे प्रयाजे स्वाहाकारेणैव  
यस्तु संहस्थापयन्नित्याहेति श्रुतेः समाश्रितवचनाः स्वाहाकारः।

मिलीजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पय  
स्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तान्निविना सर  
स्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्तां सोम्यं मधु पि  
बन्तु मदन्तु व्यन्तु होतुर्यज ॥४२॥

का० १६. ६. २३. होता यक्षदश्विनो सरस्वती मिन्द्रमिति चोथा ग्र  
हों का प्रेष ॥ होता अश्विनो सरस्वती और सुष्टु रक्षितार इन्द्र को  
यजें। एवं होतारमुक्ताध्वर्यूनाह हे अध्वर्यवः ये सोमाः तुम करि  
अभिषुतहें। कैसे सोमाः कि छागों मेषों और ऋषभों से सुरामा  
णाः (रमणीयाः वा सुरामयहें) तथा शाय्यों तोक्यों और लाजाओं  
करि तेज युक्तहें। मदाः (तृप्त करतहें) पूर्वोक्त मासर करि अलंकृत  
शोचिष्मन्त। पययुक्त। अमृतकल्प। प्रस्थित होमाभिमुख चलित।  
और मधुस्त्राविहें। अश्विनो सरस्वती और सुत्रामा वृत्रहन्ता इन्द्रति  
न सोमों को सेवन करें सोम्य मधुके पियें मदन्तु (तृप्त हों) व्यन्तु (रा  
जें वा हविभक्षण करें) हे होतः तूभी यजि ॥४॥ ४२॥

होता यक्षदश्विनो ब्राह्मणस्य हविष आनामद्य मध्यतो  
मेद उद्धृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो यस्ता नूनं  
द्यासेऽज्ज्राणां यवसप्रथमानां सुमक्षराणां श  
तरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्र  
णितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत ए  
वाश्विना जुषेतां हविर्होतुर्यज ॥४३॥

का० १६. ६. २४. चतुर्थ प्रेषा से आगे में पठनमाना (४१) होता यक्षद

अश्विनो छागस्य हविष इत्याद्याः तीनों यथा लिङ्ग आश्विनादि हविर्या-  
गों की प्रेषा हैं ॥ दैव्यो होता अश्विनो को यजे । तो इज्यमानो अश्विनो  
छाग सम्बन्धि हविका + भक्षण करें । किंच आज दिन में उदर मध्यसे  
उद्धत मेद वपारूप को भक्षण करें कथमुद्धतं तत्राह यज्ञ के द्वेषा  
(असुरराक्षसों) से उठाये अर्थात् जवतक ते पराभव के अर्थ आवेति-  
स से पहिले ही उद्धत को तथा गृभः पौरुषेय्याः (इडा से पहिले उद्ध-  
त को) वपायामिडा प्रयोजनाभावात् कैसी गृभः कि पौरुषेय्याः  
पौरुषेयी ऋत्विगर्था तिस से ॥ तो अश्विनो निश्चय अङ्गों का भक्ष-  
ण करें । कैसे अङ्गों कि यास (ग्रास) में अजरो (नवीनों) रुचिजनकों)  
का + तथा यवसों अन्नो के मध्य प्रथ में मुख्यों का (मांसत्वात् ए-  
तद्वै परममन्नाद्यं यन्मार्तं समिति श्रुतेः । सुमत्क्षरो (अपने आप  
क्षरतों) शतरुद्रियों (असंख्य हैं स्तुतिर्यै ऋजिन्हों की तिन बहुमन्त्रस्तु-  
तों का) अग्निकरि आस्वादितां अर्थात् पाककाल में पूर्व अग्निक-  
रि सुश्रुतों । पीवोपवसनों (स्थूलाङ्ग समीपस्थित सूक्ष्मों का) किंच पा-  
र्श्व प्रदेश कटि प्रदेश शिताम (बाहु प्रदेश ५) छेदन प्रदेश से । अङ्गा-  
दङ्गात् (प्रत्यङ्ग से) अवदानधर्मकरि गृहीतों अङ्गावयवों का अ-  
श्विनो तिन्हें भक्षण करें इति पूर्व ए सम्बन्धः । एवं अश्विनो हविः  
सेवन करें भक्षितावदानो तो करतः तद्विमिति शेषः पुनर्वच-  
नमादराय । हे मनुष्य होतः त्वमपि यज ॥ ५ ॥ ४३ ॥

होता यक्षत्सरस्वती मेषस्य हविष आवयदद्य मध्यतो  
मेद उद्धतं पुरा देवोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसेन्नु-

+ के मेषियः

+ अस्यानिग्रासं सूर्यो रश्मिः

+ रुद्र इति स्तो-  
त्र नाम मुनि-  
यं ० ३ १६  
प्रातः मध्य-  
ह्नौ नक्षत्र-  
विज्ञानं कि-  
ञ्चिद्विदुः

नं घासेऽप्रज्राणं यवस प्रथमानां सुमत्क्षराणं  
 शतरुद्रियाणामग्निघ्नानां पीवोपवसनानां पार्श्व  
 तः श्रोणिः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां  
 करदेवर्धं सरस्वती जुषतां हविर्होतुर्यज ॥४४॥  
 होता सरस्वती को यजै वोह सरस्वस्वती मेष का हवि भक्षण करै  
 अद्य मध्यतो मेद इत्यादिव्याख्या पूर्ववत्। वोह अङ्गों को भक्षण  
 करै। एवं सरस्वती हवि सेवन करै और नृत्तिकरै। इत्येक वचनानि  
 अन्यदुक्तम् ॥६॥४४॥

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष आवयद्य मध्यतो  
 मेद उद्धृतं पुरा द्वेषोम्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नु-  
 नं घासेऽप्रज्राणं यवस प्रथमानां सुमत्क्षराणं  
 शतरुद्रियाणामग्निघ्नानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः  
 श्रोणिः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां कर  
 देवमिन्द्रो जुषतां हविर्होतुर्यज ॥४५॥  
 होता इन्द्र को यजै वोह इन्द्र ऋषभ का भक्षण करै एवं इन्द्र हवि  
 सेवन करै इत्यन्तं पूर्ववत् ॥७॥४५॥

होता यक्षद्वनस्यतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया र  
 शनयाधित। यत्राश्विनोऽश्विनस्य हविषः प्रिया धामा  
 नि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि य  
 त्रेन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्ने  
 प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य



सुत्राम्नाः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि य  
त्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथ  
थंसि यत्र देवानां माज्यपाणां प्रिया धामानि यत्राग्ने  
र्हीतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् स्तुत्येवोपस्तुत्येवोपा  
वस्त्रक्षद्भीयस-इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुष-  
ताथ हविर्हीतयेज ॥४६॥

का० १६. ६. २५. अन्तमें पठमानौ होता यक्ष हनस्पति मभि होता य  
क्षदग्निं स्विष्टकृतमिति क्रमेण वनस्पति याग और स्विष्टकृदा-  
गमें प्रेषो ॥ यूपो देवता। दैव्यो होता वनस्पति यूप को सर्वतः यजे  
जिस कारण वनस्पति रज्जु करिके धारण करता हुआ पशुओं को  
इति शेषः कैसी रज्जु कि अत्यन्त सुरूपा ॥ इदानीं वनस्पतिः प्रार्थ्य  
ते जहां अश्विनीः सम्बन्धि छागरूप हवि के प्रिय (दृष्ट) धाम (स्था-  
न) वर्ते हैं इति शेषः एवमग्नेः पि जहां सरस्वती सम्बन्धि मेषरूप  
हवि के प्रिय० जहां इन्द्र सम्ब० ऋषभरूप० हवि प्रिय० एतेषां पशुदे-  
वानां स्थानानि। जहां अग्नि के प्रि० जहां सोम के प्रि० एतावाज्य-  
भागो। जहां सुत्राम्ना इन्द्र के प्रि० जहां सविता के प्रि० जहां वरुण  
के प्रि० एते पशु पुरोडाश देवाः। जहां वनस्पति के प्रिय पाथ (अ-  
न्त) हैं। अथ जहां आज्यपा देवताओं प्रयाज याज्याओं के प्रिय स्था-  
न हैं। जहां होतुरग्नेः स्विष्टकृत के प्रि० स्था० हैं। एतान् छागादीन्  
पशुओं को रभीयस-इव + और अत्यन्त रक्षार करिके और प्र  
कर्षेण स्तुत और समीप में स्तुत करितिन पूर्वोक्त स्थानों में वन-

+ इव पशु

स्यति देवता उपावसक्षन् (स्थापन करै) वनस्पति देव एवं करत्-  
(करै) और हवि सेवन करै हेमनुष्य होतः तूभीयजि ॥४६॥

होता यक्षदग्निं स्विष्टकृतमया इन्द्राग्निं रश्मिनो अग्निं  
स्य हविषः प्रिया धामान्ययात् सरस्वत्या मेषस्य हवि-  
षः प्रिया धामान्यया इन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रि-  
या धामान्यया इन्द्रेणः प्रिया धामान्यया सोमस्य प्रिया  
धामान्यया इन्द्रस्य सुत्रामाः प्रिया धामान्यया इन्द्र-  
वि-  
तुः प्रिया धामान्यया वरुणस्य प्रिया धामान्यया इन्द्र-  
स्यतेः प्रिया पाथां स्यया इन्द्राग्निं आज्यपानां प्रिया  
धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत्सं महि-  
मानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सोऽध्वरा जात-  
वेदा जुषतां हविर्होतुर्यज ॥४७॥

स्विष्टकृतदग्निदेवता। होता स्विष्टकृतदग्नि को यजै जो अग्निः स्विष्ट-  
कृत अश्विनी कुमारेण सम्बन्धि अग्निरूप हवि को प्रियों स्थानों  
को अयात् (अयाक्षीत् इष्टवान्) अर्थात् अवदानों को यजता  
इन्द्रा एव मयै अपि सरस्वती • मेष • इन्द्र • ऋषभ • एता प्रधान  
देवताः। अग्निके प्रियधामों को अयात् • सोमके प्रि • एता वाज्य  
भागो। सुत्रामा इन्द्र • सवितुः • वरुण • एताः पशुपुरोडाशदेवताः।  
वनस्पतेः • एतत्प्रधानाङ्गम्। आज्यपादेवा • एते प्रयाजानुयाजाः।  
होतुरग्नेः स्विष्टकृतः अपने ही प्रियधामों को इष्टवान्। सं महिमानं  
अपनी विभूतिको इष्टवान्। किंच एज्या समन्तात् (यजने योग्या) या

गार्होद्वषः (सकामाप्रजा) आयजताम् (भलेप्रकारं यज्ञं अर्थात् या  
गशीला और यागयोग्याहोंवें) वोह जात वेदा (स्विष्टकृदग्नि) अध्व  
रं (यज्ञों) को करें और हवि सेवन करें। हे मनुष्य त्वमपि यज ॥४७॥  
अ० ६ देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे अश्विना । तेजो न चक्षु  
रक्ष्यो बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु  
यज ॥४८॥

का० १६, ७, ८, ९ देवं बर्हिः सरस्वतीत्याद्या एकादश कण्डिकात्रि  
पशुओं के अनुयाजों की प्रैषा और याज्या होती हैं ॥ एकादशानुया-  
जप्रैषा अश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्या । सुदेव (शोभना देवाजिसकेबोह) जो  
बर्हिदेव (अनुयाजदेवता) तिसबर्हि सहित सरस्वती और अश्विनो  
इन्द्र में तेज दधुः (धारण करें) न (और) इन्द्र के नेत्रों में चक्षु इन्द्रिय  
धारण करें । वसुवनन (धनलाभ) के अर्थ और वसुधेयस्य (वसुनिधा  
नके अर्थ) अश्विसरस्वतीन्द्रा व्यन्तु (हवि भक्षण करें) हे मनुष्य हो  
तः त्वमपि यज ॥४८॥

देवीर्द्वारोऽश्विना मिषजेन्द्रे सरस्वती । प्राणं न वीर्यं न  
सि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४९॥  
जे द्वारो देवी (यज्ञगृहद्वारो देव्योऽनुयाजदेवाः) तिनद्वारों सहित अ  
श्विनो बैद्यो और सरस्वती इन्द्र में वीर्य और बल धारण करें इन्द्र की  
नासिका में प्राणेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय स्थापन करें वसु वनेतिव्या  
ख्यातम् ॥४९॥

देवीऽनुयासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती । बलं न वा

चमास्यः उषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य  
व्यन्तुयज ॥ ५० ॥

उषासा देवी (नक्तोषसौ अनुयाजदेव्यो) तिन नक्तोषाओं सहित अश्वि-  
नो और सुत्रामा (शोभनरक्षयावर्त्री) सरस्वती इन्द्र में बल को दधुः औ-  
र सुख में वागिन्द्रिय को दधुः वसित्युक्तम् ॥ ५० ॥

देवी जोष्टी सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन्। ओत्रं न कर्णे-  
योर्यशो जोष्टीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य  
व्यन्तुयज ॥ ५१ ॥

जे जोष्टी सुख की सेवन करनेवाली अनुयाज देवी छावा पृथिवीएँ  
वा अहोरात्रे +) तिन जोष्टीओं सहित सरस्वती और अश्विनो इन्द्र को  
वढाते हुए कथमवर्धयन् तत्राह इन्द्र में यश दधुः और कर्णों में ओ-  
त्र इन्द्रिय को दधुः वसु ॥ ५१ ॥

देवी ऊर्जाहृती दुधे सुदुधेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजाव-  
तः। शुक्रं न ज्योति स्तनयो राहृती धत्त इन्द्रियं वसुवने  
वसुधेयस्य व्यन्तुयज ॥ ५२ ॥

जोष्टो रेव देवता विकल्पः। जे देवी ऊर्जाहृती ऊर्जा (सरस्वती) आहुति  
आहुति वा आह्वान जिन्हें का ते दुहे (कामपूरके) सुदुधे (सुदोहने)  
तिन आहुतियों सहित सरस्वती और भिषजो अश्विनो इन्द्र को  
रक्षा करते हैं कथम् तदाह ज्योतिः (तेज) इन्द्र में धारण करते हैं औ-  
र स्तनों में शुक्र इन्द्रिय रखते हैं वसु ॥ ५२ ॥

देवा देवानां भिषजा होता राविन्द्रमश्विना। वषट्कारैः

सरस्वतीत्विषिं न हृदये मतिर्हं होतुभ्यां दधुरिन्द्रियं व  
सुवर्ने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५३ ॥

देवताओं के देवों जो होता रहे अनुयाज देवों तिन होताओं और वषट्का  
र सहित भिषजों अश्विनो और सरस्वती इन्द्र में त्विषि (कान्ति) रखते हृ  
दय में मति और बुद्धीन्द्रिय दधुः वसु ॥ ५३ ॥

देवीस्तिस्त्रिस्तो देवी रश्मिनेडा सरस्वती । श्रूषं न मध्ये  
नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवर्ने वसुधेयस्य व्यन्तु  
यज ॥ ५४ ॥

जे तीनों देवियें भारती इडा सरस्वती तिन तीनों देवियों सहित अ  
श्विनो सरस्वती और इडा इन्द्र की नाभि और मध्यमें श्रूष बल औ  
र इन्द्रिय रखें वसु ॥ ५४ ॥

देव इन्द्रो नराशंसस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते  
रथः । रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टादधदिन्द्रि  
याणि वसुवर्ने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५५ ॥

नराशंस देवोऽनुयाज रूपो यज्ञः + रेत (वीर्य) रूप (सौन्दर्य) अमृतजनि  
त्र (उत्तमजन्म) और इन्द्रिये इन्द्र के अर्थ रखें । कैसा नराशंस कि इन्द्र  
रथैश्वर्यवान् त्रिवरूथः तीनिवरूथः घरः सद हविर्याग आग्नीध्रजि  
हं सके बोह) तथा त्वष्टा जगत्कर्ता + जिस नराशंस का रथ सरस्वतीओं

के + अश्विनी कुमारों से चलाइये है । वसु ॥ ५५ ॥

शोंवं देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णेऽश्विभ्यां सरस्वत्यासु  
शेष पिप्यल इन्द्राय पच्यते मधु । ओजो न जृतिर्ऋषभो न मा

मं वनस्पतिर्नो दधेदिः

यज ॥ १६ ॥

देव्याणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु

वनस्पतिर्देवः हमारे को ओज(तेज)जू.

ये स्थापन करे जो वनस्पतिर्युयः इन्द्र के ति(वेगा)भाम(क्रोध) और इन्द्र  
हे इन्द्र के अर्थ फल दे। कैसा वनस्पति वि अर्थ मधुर फलपकता फलता  
ए पत्र पत्ते हैं अश्विनी कुमार सरस्वती जिः देवा जिसके हिरण्यमय प  
ल(शोभन फल) हैं। ऋषभः (पूज्य है) वसु ॥ १५ ॥ वनस्पति के सुपिप्प

देवं बर्हिर्बर्हितीनामध्वरे स्तीर्णं मश्विम् ॥

स्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः। ईशायै मन्युः मूर्ता मदाः सर

षा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज जानं बर्हि

हे इन्द्रः वारितीनां (जल में गति) जिन्हों की तिन जलों झवा ओष ॥ १६ ॥

की सम्बन्धि बर्हि हैं तेरे सदः सद में अध्वर (यज्ञ) में अश्विनी कुमारों

और सरस्वती करि आस्तुत हैं कैसी बर्हिः कि दीप्यमान ऊर्ण जैसे को

मल अत एव सुखरूप। किंच अश्विसर स्वत्यः बर्हिओं सहित दीप्य

न क्रोध और इन्द्रिय हे इन्द्र तुरु विषे ऐश्वर्य के अर्थ दधुः। वसु ॥ १५ ॥

देवोः अग्निः स्विष्टकृद्देवान्यक्षयथायथं होता रावि ॥ १६ ॥

मश्विना वाचा वाचं सरस्वती मग्निं सोमं स्विष्टं

स्विष्ट इन्द्रः सुत्रामा सविता बरुणो भिषगिष्टो देवो वन

स्पतिः स्विष्टा देवा आज्ययाः स्विष्टोः अग्निरग्निना हो

ता होत्रे स्विष्टकृद्दशो न दधेदिन्द्रिय मूर्जे मयचिति ॥ १६ ॥

धां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १८ ॥



स्विष्टकृत् (शोभनयाग को करता) अग्निर्देवः यथा यथं (जैसे जैसे) इष्ट  
व्य तैसैः वक्ष्यमाण देवतओं को इष्ट करे (यजै) । किन देवताओं को  
तदाह होता रहे (अयं चाग्निरसौ च मध्यमो वायुः होतु मैत्रावरुणो  
वा) इन्द्र और अश्विनो वाचा (मन्त्र) करि वाचा को सरस्वती अग्नि और  
र सोम को यजै । किंच स्विष्टकृत् शोभनयज्ञकारी सुत्रामा शोभनर-  
क्षक इन्द्रस्विष्टः (सुष्टु इष्टः) सविता वरुण और भिषगिष्टः वनस्पति  
देवः इष्टः आज्यपादेवाः प्रयाजानुयाजाः स्विष्टाः अग्नि (अधिष्ठाता)  
अग्नि (भोम) करि हविर्द्धारस्विष्टः (सुष्टु इष्टः) । किंच होता देव्यः स्विष्ट  
कृत् मनुष्य होता के अर्थ यज्ञ इन्द्रिय ऊर्ज (अन्न) अपचिति (पूजा)  
स्वधा (पितरों के अर्थ अन्न) देवैः । वसुवनन और वसुधान के अर्थ देवा  
हविभक्षण करें हे मनुष्य होतः यजि ॥ ५७ ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पच  
न्पुरेडाशान्वध्नन् अश्विन्या छागर्धं सरस्वत्ये मेषमिन्द्राय ऋ  
षभर्धं सुचन् अश्विन्यार्धं सरस्वत्या इन्द्राय सुत्रामो सुरा  
सोमान्त्सूपस्था अद्य ॥ ५८ ॥

का० १४. ७. १०० अग्निमद्य होतारमित्यादि सूक्ता ब्रूहीत्यन्तः कण्डिका  
त्रयात्मकः सूक्तवाक में प्रेषः होता है ॥ लिङ्गोक्त देवतः सूक्तवाक प्रेषः ।  
यह यजमान आज अग्नि होतार को वरण करता हुआ क्या करिके  
कि पचाने योग्य हवियों को पचाके सामान्ये नोक्ता विशेष माह पुरेडा-  
शों को पचाके अश्विनी कुमारों के अर्थ छाग को बाँधकर यूप में इति  
शेषः सरस्वती के अर्थ मेष को बाँध और इन्द्र के अर्थ ऋषभ को बाँ

ध तथा अश्विनौ सरस्वती और सुष्टुरक्षक इन्द्र के अर्थ सुर और सोमों को सुवाय अग्नि को वरण करता हुआ ॥ ५६ ॥

सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्ये मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षं स्तान्मेदस्तः प्रति पचता गृभीषता वीरुधन्त पुरोडाशैरपु रश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरसोमं स्वामद्य ॥ ६० ॥

आज वनस्पतिदेवः छागकरिके अश्विनी कुमारों के अर्थ सूपस्था अभवत् सुष्टु उपतिष्ठते सेवते सूपस्थाः छागकरि अश्विनी कुमारों की सेवा करता हुआ। मेषकरि सरस्वती के अर्थ सूपस्था होता हुआ ऋषभ करि इन्द्र के अर्थ सूपस्था हुआ वनस्पतिने छाग मेष ऋषभ करि अश्विनादिकों का उपस्थान किया। वोह कैसे जानात ह कहता है अश्विनादयो मेदस्तः (मेद वषा को आरम्भ करितिन छागादिकों को भक्षण करते हुए। पुनः पक्क अवदानों को प्रतिग्रहण करते हुए। पुनः ते पुरोडाशों कर बढते हुए। किंच अश्विना सरस्वती और सुत्रामा इन्द्र सुरा सोमों वा सुरामय सोमों को पीते हुए ॥ ६० ॥

त्वामद्य ऋषः आर्षेयः ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्य आ संगतेभ्य एष मे देवेषु बसु वार्यायक्ष्यत इति ता या देवा देव दानान्यदु स्तान्यस्मा आ च शास्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय त्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥ ६१ ॥

इति संहितायां षष्ठोऽनुवाकः ६

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां बाजसनेयसर्गं हितायां  
दीर्घपाठे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

देव्यो होताः अग्निरुच्यते। हे ऋषे (मन्त्रदृष्टः) हे अर्षेय यजमान अर्षेयै  
र्वियते। हे ऋषियों के नपात् (पुत्र) यह यजमान बहुम्यः संगतेभ्यः  
(मिलित देवताओं के अर्थ) इस हेतु अथ तुम्हें ही भले प्रकार वरण क  
रता हूँ। यह क्या कि यह अग्नि मुझकरि देवताओं के अर्थ देने योग्य  
धन को ग्रहण करेगा। किंच हे देव अग्ने जिन तिन दानों को देखा देते हू  
ए तिन दानों को इस यजमान के अर्थ इच्छा करि। दान के अर्थ उद्यम क  
रि। हे होतः तू इषित प्रेषित (प्रेरित) कथम् तदाह कि भद्रवाच्याय कह  
ने योग्य शुभवाणी के अर्थ अर्थात् भद्र कहि इति प्रेषित है। किंच सूक्ति  
यतू कहि इति सूक्तवचन के अर्थ और सूक्त कहिने को मानुष होता प्रे  
षित है ॥ ६१ ॥

॥ इति भाष्ये षष्ठाऽनुवाकः ६

श्रीवेदार्थप्रदीपे नतमीहादिनिवारयन् पुमार्थाश्चतुरो देवाद्यज्ञदेवः सनातनः  
श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येतव्या घ्राणादान्वयविश्वा  
मित्रपुण्ड्रिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मज रैकिर्गण्य नृपतिगिरिप्रसादे  
नरचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये सौत्रामणी प्रकरणे याज्या प्रेषा  
वर्णनो नामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ समाप्तोऽयं सौत्रामणीयागः

आदितोऽनुवाकसंख्याद्वाविंशः २१

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे द्वितीयोऽध्यायः २  
ज्येष्ठमासे भले पक्षे दशम्यारविवासे ग्रहनेत्राङ्कभूवर्षे सौत्रमन्त्राः समागमन्  
अतः परंचतुर्भिरध्यायैः अश्वमेधो वर्ण्यते

## अथःसंक्षेपतःसौत्र मन्त्राणां सूचीपत्रम्

पृष्ठा	पङ्क्तिः	विषयः	पृष्ठा	पङ्क्तिः	विषयः
७०३	५	अथ सौत्रा मणी	७६८	८	द्वैकर्मसु अविनुयुक्ताः
७१२	८	ब्राह्मणेऽनुवाकः	७७०	५	अथ होत्रं त्रिपशोः
७१८	१४	सुरावन्तं चतुर्ऋचम्	७७०	६	समिद्धोऽग्निद्वादशाग्नी
७२१	२१	नवर्चपावमानम्	७७३	१३	वपानां याज्याऽनुवाक्याः
७२५	१	येसमानाश्चतुर्ऋचम्	७७४	१३	पशुपुरोडाशानां याज्यानुवाक्याः
७२६	२०	सोमवतां पितृणां षडृचः	७७५	१५	हविषां याज्यानुवाक्या
७२८	१३	बर्हिषदां पितृणां तृचः	७७६	२०	गृहाणां पुरोऽनुवाक्या याज्या
७३०	१८	अग्निष्वात्तानां पितृणां चतुर्ऋचः	७७७	४	स्विष्टकृद्वागे पुरोऽनुवाक्या
७३२	१०	आच्याजान्वित्यनुवाकः			याज्या
७३६	१	सोमो राजेत्यष्टर्चोऽनुवाकः	७७८	१०	अश्विना तेजसेति शस्त्रम्
७४०	५	सीसेन तत्रमित्यनुवाकः	७८२	१०	इमं मे एकादशर्चोऽनुवाकः
७४७	१२	क्षत्रस्येत्यनुवाकः	७८६	१४	समिद्धोऽग्नि एकादशाग्नी
७५३	१२	अवभृथः	७८८	१३	वपादीनां याज्याऽनुवाक्या
७५७	१७	अभ्यादधामीत्यनुवाकः	७८९	२	त्रिपशोः प्रयाज प्रेषा
७६०	२	योभूतानामित्यनुवाकः	७९७	१०	वपादीनां प्रेषा
७६१	१५	इत्याध्वर्यवं समाप्तं अथ होत्रम्	८००	१७	वनस्पतिस्विष्टकृतोः प्रेषो
७६१	१६	समिद्ध इन्द्र एकादशाग्नी	८०३	४	त्रिपशोः याज्या प्रेषा
७६६	१८	वपानां याज्याऽनुवाक्याः	८०७	१२	सूक्तवाक प्रेषः इति सूचीपत्रम्

विश्वामित्रपुरीयनबलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाश्रमयन्त्रालये मुद्रितम्  
विक्रमाब्दाः १८२८ शकाब्दाः १७४८ आवर्णशुक्ला बुधवारजेम् शान्तिः

हरिःॐ

चत्वारोऽध्यायाऽश्वमेधमन्त्रास्तेषां प्रजापतिर्ऋषिः

पञ्चात्मकं द्विरुपच साधने वैद्विरूपकम्  
स्वानन्ददायकं कृष्णब्रह्मरूपं परं स्तुमः॥

अ०१ तेनोऽसि शुक्रममृतमायुष्या आयुर्मे पाहि देवस्य त्वास  
वितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणो हस्ताभ्यामादेदे॥१॥†

नत्वा गमं चोग्रसेनं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्  
वेदे चतुर्भिरिध्यायै रश्वमेधः समीर्यते

बाईसके अध्याय से ले पच्चीस पर्यन्त अश्वमेधके मन्त्र तिन्हों  
को प्रजापति ने देखा। सर्वकामा राजा का अश्वमेध यज्ञ तिसका  
फाल्गुण शुक्ला अष्टमी की आरम्भ है ॥

जेनमोयाज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

अश्वमेधाहुतिर्नामद्वाविंशोऽध्याय इत्येते २२

का० २१. २४. चतुःसुवर्णनिर्मित आभरणविशेषनिष्क कोयजमानके कण्ठमें  
 बांधते अश्वर्युते जो सिद्धमन्त्रको पढ़ें और तिस निष्क को प्रातर्होम के अन्त में पूर्ण हु  
 तिकरि अश्वर्युके अर्थ देवै ॥ ते जो सीत्यस्य प्रा-अ० सोवर्णनिष्क देवता  
 है निष्क तेज है आग्नेयत्वसै। शुक्रं- और अग्नि का वीर्य है अग्निर्हव  
 योऽभिदध्यावित्युपक्रम्य तासुरेतः प्रासि च्चतद्विरण्यमभवदिति  
 श्रुतेः। अमृतं और वह्नितापमें अनुच्छिद्य (द्या) मानद्रवत्वाधिक  
 रणत्व और दान करि अमृतत्व प्रदानसै हिरण्यदा अमृतत्वं भ  
 जन्त इति श्रुतेः। आयुष्या आयुका पालन करने वाला गोपायिता  
 अतः याचुना करता हूं कि मेरी आयुकी रक्षा करि यज्ञसमाप्ति प  
 र्यन्त आयुको प्रार्थना करता हूं ॥ का० २०. १. २०. देवस्य त्वेत्यादिसर  
 मारयन्तीत्यन्तेन मन्त्रेण त्रयोदशारत्निदर्भमयी द्विगुणा अश्वं  
 च नार्य रशना (लेजु) को ले ब्रह्मन् अश्वमित्यादि तेन- राध्या समित्य  
 न्त ४. अ० मन्त्रको ब्रह्मा धतिक है ॥ देवस्य त्वा व्याख्याता १. १०. आ  
 द देति दे- अ० इयमपि व्याख्याता १. २४. ॥ २॥

इमामगृह्णान् रशनामृतस्य पूर्व आयुषि विदयेषु  
 कव्या। सा नोऽस्मिन्सुत आवभूव कृतस्य साम  
 न्तरमारयन्ती ॥ २॥

संवत्सर यज्ञ पुरुष दृष्टा रशनादेवत्या त्रिष्टुप्। हमारे इस य



ज्ञ में ब्रह्म रशना उत्पन्ना। कैसीकि यज्ञ के प्रसार को कहती अर्थात् य  
ज्ञ प्रसार हो यह कहिती। वोह कौनकि यज्ञों में कुशल प्राप्तापत्यादिक  
जिस इस रशना को यज्ञ के पूर्व आयु के प्रारम्भ में ग्रहण करते हुए  
जो पूर्वोक्त गृहीता वोह रशना यहां उत्पन्न हुई इत्यर्थः ॥२॥

अभिधा असि भुवनमसि यन्तासि धर्ता। स त्वमग्निर्वै  
श्वानरुर्धं सप्रथमं गच्छ स्वाहाकृतः ॥३॥

का० २००१२०० तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राधुहीति ४ इ० मन्त्र  
करि ब्रह्मा से आज्ञापाया अध्वर्युः अभिधा असी त्यादि स्वगात्वा देवे-  
भ्यः प्रजापतये इत्यन्तेन मन्त्रेण रशना से अश्व को बांधे ॥ लिङ्गोक्ता-  
नि यजूर्धंषि अश्वो देवताद्यस्य। हे अश्व जो तू अभिधा और सबों का  
आश्रय है और नियमन कर्ता और जगत का धारण करने वाला है।  
एवंविधः तू स्वाहाकार करिके होमाहुआ अग्नि को प्राप्त हो। कैसे अ-  
ग्नि कि सवनरों के अर्थहित विस्तार सहित वा सर्वतः तिर्यगूर्ध्व और  
र अधः प्रथत ॥३॥

स्वगात्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन् अश्वं भन्त्स्यामि देवे-  
भ्यः प्रजापतये तेन राध्यासमू। तं बधान देवेभ्यः प्रजा-  
पतये तेन राधुहि ॥४॥ + स्व-मू। अ० तं-हि। इ० ॥४॥

हे अश्व तुम्हें देवताओं और प्रजापतिके अर्थ आपही से चलने वा-  
ला करता हूँ इति शेषः ॥ ब्रह्मन् अश्वं सा-पं० ब्रह्म देवता ब्रह्माण्डमा-  
न्वयते। हे ब्रह्मन् देवताओं और प्रजापतिके अर्थ अश्व बंधन करता हूँ ति-  
स अश्व बंधन से कर्म समाप्ति रूपा सिद्धि को प्राप्त हों ॐ ॥ तं बधान अध्व

युं देवतं यजुः ब्रह्मा प्रसूतेति । हे अश्वर्यो जिसे बाँधता चाहता है तिस अश्व को देवताओं और प्रजापतिके अर्थ बाँधि तिस अश्व बंधन से यज्ञसमाप्तिलक्षणा सिद्धि को प्राप्त होगा ॥४॥

प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामिन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि योऽपर्वन्तं जिघांथसति तमभ्यमीति वरुणः । परोमर्तः परः श्वा ॥५॥ †

का० अ० १३० ततः अश्वर्यु तडागादिस्था जल विषे जाकर तिस जलसे पांच मन्त्रों करि प्रतिमन्त्र से अश्व को प्रोक्षण करे ॥ लिङ्गोक्त देवतानि य० अ० १० या-नि० २० या-पं० ३० या-हृ० ४० ५० या-ज० ॥ हे अश्व प्रजापतिके अर्थ प्यारे तुम्हें सींचता हूँ इस सींचने से प्रजापतिके से वीर्य को अश्व में स्थापन करे ॥ तथा च श्रुति शत० १३० १० २० ५० प्रजापतिर्वै देवानां वीर्यवत्तमो वीर्यमेवास्मिन्दधाति तस्मादश्वः पशूनां वीर्यवत्तम इति ॥१॥ इन्द्राग्नी के अर्थ-हूँ इससे इन्द्राग्नी के से ओज को स्था-करे ॥ शत० १३० १० ३० ६० इन्द्राग्नी वै देवानां मौजस्वितमाऽओज एवास्मिन्दधाति तस्मादश्वः पशूनां मौजस्वितम इति ॥२॥ वायु के अर्थ-हूँ इससे वायु के से वेग को-करे ॥ शत० १३० १० २० ७० वायुर्वै देवानां माशिष्ठो जव मे वास्मिन्दधाति तस्मादश्वः पशूनां माशिष्ठ इति ॥ आशिष्ठो वेगवत्तरः ॥३॥ विश्वे देवाओं के अर्थ-हूँ इससे अश्व में यश को-करे ॥ शत० १३० १० २० ८० विश्वे वै देवा यशस्वितमा यश एवास्मिन्दधा

ति तस्मादश्वः पशूनां यशस्वितम इति ॥४॥ सवदेवताओंके अर्थप्रि  
य तुम्हें प्रोक्षण करता हूँ। इससे सवदेवता अश्वमें स्थापन करे ॥ शत०  
१३०१२४० सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामीति सर्वा एवास्मिन्देवताः  
श्वे अन्वायात यतीति ॥५॥ का० २००२०१० शूद्रस्य वैश्यामं उत्पन्नं हु-  
आ पुरुष अध्वर्यु करि प्रेरित चतुर्नेत्रं श्वानं रैवैरके मुशालं सै हननं  
कर्त्तुं सतियोऽश्वेनन्तमित्यादि- वरुण इत्यन्त मन्त्र को यजमान अ-  
तिपेटे ॥ गायत्री पूर्वार्धेऽश्वस्तुतिः परार्धे लिङ्गोक्तदेवता। जो अश्वन्त  
अश्वको मारने की इच्छा करता वरुण तिस अश्वमारनेवाले को मारे ॥  
का० २००२०२० परोमर्तः परः श्वा इति मन्त्रसे वेतस वृक्ष कृत कटक क-  
रि मृतक श्वान को अश्व के नीचे जल में तिगड़े ॥ अश्व को मारने की  
इच्छा करने वाला मनुष्य पराभूतः (अथ स्पन्दनीतः) नीचे पटक आओ  
र श्वान परें किया अर्थात् श्वान रूपसे अश्व काहन्ता ही पराभूतः ॥३॥  
अ० २ अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा पां मोदाय स्वाहा सवित्रे  
स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्प-  
तये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥६॥ +  
का० २००२०३० ततः स्थावरजलके सकाशसे अश्वको अग्निके स-  
मीपलाकर अग्नये स्वाहेत्येक कण्डिकात्मक अनुवाक करि प्रति मन्त्र  
एकवार ग्रहण करी जिह्वासे स्तोकीय संज्ञा दश आज्या हुति होमें अथ-  
वा अनुवाक को आवर्तन-आवर्तन करि सहस्र आज्या हुति होमें ॥  
दश यजूर्हवि १०२४०५०६०७०८०९० दे-पं० ३०८० दे-ज० १०० दे-त्रि०  
लिङ्गोक्त देवतानि। अङ्गीतीत्यग्निः। सुनोतीति सोमः। अपांजलानां

+ अ-हा। अ०। सी-हा। इ०। अ-हा। उ०। स-हा। ऋ०। व-हा। लृ०। वि-हा। आ०। इ-हा। ऊ०। मि-  
हा। ऋ०। व-हा। लृ०॥६॥

मोदाय मोदयति हर्षयति मोदः। सूते सविता। वानीति वायुः। वेवेष्टि  
व्याप्नोति विष्णुः। इन्द तीन्द्रः। बृहतां वेदानां पतिर्बृहस्पतिः। मिध्यति  
स्त्रिह्यति मित्रः। वृणोति भक्तं भजते वरुणः। एताभिराहुतिभिरेतेभ्यो  
दशदेवेभ्योऽश्वददाति तथा च श्रुतिः १३.१.३.३ एतावन्तो वै सर्वे देवास्ते  
भ्य एवैनं जुहोतीति ॥ ६ ॥

२५.३ हिङ्काय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहा वक्रन्दाय  
स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा प्राताय  
स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा संदिताय स्वाहा  
वल्गते स्वाहा सीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा  
जाग्रते स्वाहा कूर्जते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय  
स्वाहा विचृताय स्वाहा संहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहायना  
य स्वाहा प्रायेणाय स्वाहा ॥ ७ ॥

का० २०.३.३ हिङ्काय स्वाहेत्यादिकों के अर्थ उद्धार किये हुए दक्षिण  
ग्नि में प्रति मंत्र प्रक्रम संज्ञक उन्नचास होमों को होमों ॥ अश्वस्ये को  
नपचाशच्चेष्टितानि (व्यापारा) कण्डिका द्वयात्मके नानुवाकेन द्वे  
यजुषि। हिङ्काय (हींसता गृहिकार) तिसके अर्थ स्वाहा (हविर्दत्तम् ॥ १ ॥  
हिङ्कृत (किया जिसने हिङ्कार) तिस-त्तम् ॥ २ ॥ क्रन्दन् (बड़ा शब्द करता) ३  
अवक्रन्दन् (नीचे से बड़ा शब्द करता) ४ ॥ प्रोथन् (घासरवाताहु आफु  
र्रवोलता ॥ ५ ॥ प्रोथ-प्रकृष्टेन प्रोथति ॥ ६ ॥ गन्धलेता ॥ ७ ॥ आघ्राण  
करता ॥ ८ ॥ निवेशकरता ॥ ९ ॥ उपवेशकरता ॥ १० ॥ सन्दित (खण्डन-  
टापमारता ॥ ११ ॥ बल्गन् (कूमता ॥ १२ ॥ आसीनः चुपचाप खड़ा ॥ १३ ॥

शयन करता ॥२४॥ सोताहुआ ॥२५॥ जायत ॥२६॥ कूजता ॥२७॥ प्रवुह ॥  
२८॥ जम्माईलेता ॥२९॥ विशेषेणदीप्तिमान् ॥३०॥ संगतशरीर ॥३१॥ उ  
पस्थित ॥३२॥ अयतेअयनः-धरकरता ॥३३॥ अकृष्टमयतेकूदता-उकल  
ता ॥३४॥ अ।

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्वावाय स्वाहोद्दुताय स्वाहाशू  
काराय स्वाहा शूकताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिता  
य स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्तमानाय  
स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूता  
य स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाण  
य स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वा  
हा यदति तस्मै स्वाहा यत्पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं  
करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥ ८ ॥

गतीतियन्-धीरे-धीरे स्वाभाविक चलता ॥ २५ ॥ धावति किसी  
वस्तुकी ओड़ी चलता ॥ २६ ॥ उदाव (अधिकगतिजिस्की ॥ २७ ॥ उहु  
त (अधिकमागता ॥ २८ ॥ शूडितिकरोति (सिंहफुङ्कारकरता ॥ २९ ॥ किया  
जिसने शूकार ॥ ३० ॥ वेठता ॥ ३१ ॥ उठता ॥ ३२ ॥ जवते-वेगवान् ॥ ३३ ॥  
वलजिसें है ॥ ३४ ॥ विवर्तमान्-इधर उधर लुठता ॥ ३५ ॥ विवृत्त (इधर  
उधर लुठताहुआ ॥ ३६ ॥ कम्यता ॥ ३७ ॥ विधूयते-सौ विधूतः (कांपकर  
गिरता ॥ ३८ ॥ सुननेकी इच्छाकरता ॥ ३९ ॥ सुनता ॥ ४० ॥ ईक्षमाण-दे  
खता ॥ ४१ ॥ देखताहुआ ॥ ४२ ॥ वीक्षित-विशेषेणदेखताहुआ ॥ ४३ ॥  
पलकमारता ॥ ४४ ॥ जोकुछखाता तस्मै ॥ ४५ ॥ जोजलादिकपीतातिस

पान करने वाले के अर्थ ॥४६॥ जो मूत्र करता तस्मै मूत्रकर्त्रे ॥४७॥ करता ॥४८॥ करता ह्यु आ। तस्मै स्वाहेति सर्वत्र ॥४९॥ इत्येकोनपञ्चाशत्प्रक्रमा ॥८॥

अ० ४ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥४॥

षडुचः सवितुर्देवत्या गायत्र्यः सावित्रीणामिष्टीनां याज्यानुवाक्याः ॥ प्रथमा व्याख्याता ३.३५.॥४॥

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥१०॥

मेधातिथिदृष्ट्या । में रक्षा के अर्थ सविता को आह्वान करता हूँ । कैसे सविता को कि हिरण्य पाणिजिस्का । यतः बोह सविता चेतयिता (सर्वज्ञ) देवता । यदं ज्ञानियों का स्थान ॥१०॥

देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे । सुमतिर्हं सत्यरोधसम् ॥११॥

हम सविता देवता की सुमति (शोभना बुद्धि) को प्रकर्षण प्रार्थना करते हैं । कैसे सविता की कि चेततः (चेतता) । कैसे सुमति को कि वडी सत्य (अनश्वर) है धन जिस का वा सत्य को साधन कराती ॥११॥

सुष्टुतिर्हं सुमतीदृधो रतिर्हं सवितुरीमहे । प्र देवाय मती विदे ॥१२॥

हम सविता देवता की शोभन स्तुति और दान की प्रकर्षण याचना करने हैं । कैसे सविता की कि शोभन मति को बढ़ाता । तथा सर्वों की



मति को जानता ॥१२॥

एतिर्दं सत्यंतिं महे सवितारमुपेह्वये । आसुवं देव  
वीतये ॥१३॥

मैं देवताओं के तर्पणार्थ सविता को आह्वान करता और पूजता हूँ ।  
कैसे सविता को कि दान को देता । श्रेष्ठों का पालक । आभिमुख्य-  
न कर्मों को आज्ञा देता ॥१३॥

देवस्य सवितुर्मतिमासुवं विश्वदेव्यम् । धिया भगं म-  
ना महे ॥१४॥

सविता देवता की मति (बुद्धि) प्रति हम बुद्धि से भग (धन) को याचना  
करते हैं अर्थात् सविता देवता की बुद्धि हमारे विषे दान तत्परा हो । कैसे  
भग को कि धन करि सबों के आज्ञा देने को समर्थ । सब देवताओं के  
अर्थहित । धने नैव देव तर्पणादित्यर्थः ॥१४॥

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानोऽमर्त्यम् । हव्या दे-  
वेषु नो दधत् ॥१५॥

तिस्रः स्वष्ट कृति पुरोऽनुवाक्याः । अग्नि देवत्या गायत्र्यो यथा संख्यं  
(क्रमं) सुतम्भर विश्वामित्र विश्वरूप दृष्टाः । हे अध्वर्यो तू भले प्रकार  
दीपन करि कै स्तुति से अग्नि को अवगतार्थ करि । कैसे अग्नि को  
कि मरण धर्म रहित सो अग्नि बोधित हुआ हमारी हवियें देवताओं  
के विषे धारण करे यह उसका अधिकार है ॥१५॥

स हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्च नो हितः । अग्निर्धिया स  
मृणवति ॥१६॥

वोह अग्नि बुद्धि करि देवताओं के साथ हविर्दान के अर्थ एकी है कैसा है अग्नि कि हवियों का वोटा। मरणहीन। उशिकू-कामनीय वामेधा वी। देवताओं का दूत। चनोहितः-अन्न के अर्थ हित-हविरूप अन्न के भक्षण के अर्थ स्थापित ॥ १६ ॥

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्य वाहमुपब्रुवे। देवाँ २॥५ आसा दयादिह ॥ १७ ॥

जिस अग्नि को मैं पुरतः स्थापन करता हूँ तिस प्रति कहिता हूँ क्या कि हे अग्ने इस यज्ञविषे देवताओं को समन्तात् सादन करि। कै से अग्नि को कि दूत देवताओं हवि का वोटार ॥ १७ ॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्नोति पयः। गो जीरया ररंहमाणः पुरन्ध्या ॥ १८ ॥

अरुण (अरुण) त्रसदस्युभ्यां हृष्टा पवमानदेवत्यापि पीलिकामध्या कृतिरनुष्टुप्। पवमानस्तुतिः। हे पवमान तूने सूर्य को उत्पन्न किया है सामर्थ्य से जल को विशेषेण धारण किया है किस हेतु करि कि गोओं की जीविका का हेतु जल को धारण किया है तिन्हों के हवि से यज्ञ निष्पत्ति और प्राणियों के जीवन से। कैसा है तू कि पुरन्ध्या ररंहमाणः-बहुत स्थापन करनेवाली धाराओं से प्राप्त होता अर्थात् दशापवित्र से द्रोण कलश को प्राप्त होता ॥ १८ ॥

अ० ५ विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वा सि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणा असि। ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां यत्वान्विहि देवा आशापाला एतं

देवेभ्योऽश्वमेधाय प्रोक्षितं रक्षतेह रन्तिरिह रमता-  
मिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥१६॥†

का० २००२१६ तीसरी सावित्री इष्टीकी समाप्ति में अश्वयु यज-  
मानो अश्व के दक्षिण कर्ण में विभूर्मात्रेति मन्त्र को जपे ॥ अश्व  
देवतं यजुः ॥ हे अश्वत् माता पृथिवी के सकाश से समर्थ है, पिता  
दिवि के सकाश से समर्थ है ॥ अथ नामभिरश्वं स्तोति । तू अश्व  
मार्ग को व्याप्त होता वा व्याप्त है । हय-चलता है । अत्य (सतत  
गामी) है । मय (चलता वा सुखरूप) है । अर्वा (चलता वा वै-  
रियों को मारता है, सन्निसेन्य करि भले प्रकार प्राप्त होता) है । वाजी  
(गति शील वा पक्षोंवाला) है । वृषा (सींचनेवाला) है । नृमणा (यज  
मानों में मनरखता) है । ययु (चलता अश्वमेधीय अश्व) है । किंच  
नामकरि शिशु (स्तनको छू श करनेवाला) है । एवंविधिनामा तू आदि  
त्यों अर्थात् देवताओं के मार्ग को प्राप्त हो ॥ का० २००२१२ देवा आशा  
पाला इति चतुर्विंशति वार्षिक अश्व शतमध्यस्थ ईशान दिशामें उ-  
त्सृष्ट अश्व के रक्षक नरों को शिक्षा करि नियत करे कैसे नरों को कि ति-  
तनेही अनुचरी संख्यक अर्थात् शत १०० राजपुत्र शत १०० क्षत्रिय-  
पुत्र शत १०० सूत ग्रामणी (सूत-अश्वपोषक, ग्रामणी-मुख्यतिन्हेंके)  
पुत्र शत १०० क्षात्र संगृहीत्यों (क्षत्तार-आयव्यय-अध्यक्ष-तिन्हेंके)  
पुत्र क्रमसे कवचि-निषङ्गि-कलापि-दण्डिनः अर्थात् राजपुत्र कव-  
चि क्षत्रिय पुत्र खड्ग सहित सूत ग्रामणी पुत्र इषुधिमन्त क्षात्र संगृ-  
हीत पुत्र वंशादि दण्ड धराः बडवा और जल स्नान से अश्व डीलना-

पिता  
+ शत १३०१६ इयं माता सो पिता  
आमेवं न परिरक्षतीति

वर्षभरि आश्व का रक्षण तवतक यजमान वावाता (प्यारीराणी) के साथ शयन करै सावित्री करै वीणा गान पारिलव शस्त्र का पाठ और धृति होम इत्यादि ज्ञेय मिति सूत्रार्थः ॥ देव देव्यं आर्च्यं उ० आशादि शः पालयन्तीति आशापाला हे देवा तुम इस अश्व को रक्षा करै के से को कि याग के अर्थ प्रोक्षित (प्रोक्षण करि संस्कृत) राजपुत्रादिकही आशापाला हैं तदुक्तं शतं वै तल्प्या राजपुत्रा आशापालास्तेभ्य ए वै नं परिददातीति शत० १३० १० ६० २० ॥ का० २० ३० ४० सूर्य अस्तद्गुणपर अग्नि होम से पहिले अग्नि होत्रार्थ उद्धृत आहवनीय में चतस्र ४ धृति संज्ञा आहुति प्रति मंत्र वर्ष पर्यन्त होमें एवं चत्वारिंशदधिका चतुर्दशशती १४४० होती है तथा च श्रुतिः संवत्सरमाहुतीर्जु होति षोडशानवतीरेता वा अश्वस्य बन्धनं ताभिरेवैनं बध्नातीति शत० १३० १० ६० २० ॥ चत्वारि यजूषि १३० दे० बृ० २० दे० यं० ४० दे० ज० अग्निदेवत्यानि चतुर्थमन्त्रान्ते स्वाहाकार अवणानिष्वपि स्वाहाकारः प्रयोज्यः ॥ अश्वं प्रत्युच्यते हे अश्व यह रमण तेरा हो ॥ १॥ यहां तुम रमण करै ॥ २॥ यह तेरा सन्तोष हो ॥ ३॥ इस यज्ञ में निजधरण हो स्वाहा ॥ १४॥

अ० ६ काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहा धिमाथीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहा दित्यै मह्यै स्वाहा दित्यै सुमृडी कायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकयै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूषणे स्वाहा पूषणे प्रपथ्याय स्वाहा पूषणे नरं धियाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरु रूपाय स्वाहा

हा विष्णावे स्वाहा विष्णावे निभूयपाय स्वाहा विष्णावे  
शिपिविष्टाय स्वाहा ॥२०॥

का० २००४३५ चारि ४ अध्वरिक औद्गमणों को होमिके काय स्वाहे-  
त्याश्वमेधिक तीनि उद्गमणों को होमें अत औद्गमण होमके अन्तर  
दीक्षणीया शेष को समाप्त करि कृष्णजिन दीक्षा तत्र उपवेशनान्ताक  
रिये हैं। सप्ताह प्रचरन्तीति शत० १३१०२ श्रुतेः सप्ताह दीक्षणीया  
करिये हैं तत्र प्रतिदिवस का कर्तव्य कहिये हैं अध्वर दीक्षणीया के चा-  
रि ४ औद्गमणों (आकृत्यै प्रयुजेत्यादि ४०१) और तीनि ३ तीनि आ-  
श्वमेधिको (काय स्वाहेति कण्डिका पठित प्रति दिवस अन्य-अन्य  
पाठक्रमेण एवं सात०-सात० प्रति दिवस होमिये। काय स्वाहेति कण्डिका  
कामें पठित सात त्रिकों के मध्य सात दिवसों विषे क्रमेण एक-एक त्रि-  
क होमिये हैं तहां दूसरे त्रिक के तीनों मन्त्रों की आदि में स्वाहा कार  
है ॥ औद्गमण संज्ञानि यजूर्ध्विलिङ्गोक्तदेवतानि काय-प्रजापतिके  
अर्थ सुहृतमस्तु ॥१॥ कस्मै-प्रजापति-मस्तु ॥२॥ कतमस्मै-श्रेष्ठप्रजा-  
पति ॥३॥ १॥ आधान को अधीत (प्राप्तके अर्थ ॥१॥ मन विषे वर्तमान  
२॥ सर्वो के चित्त साक्षि प्रजापति के अर्थ ॥३॥ २॥ अखण्डता के अर्थ  
१॥ पूज्या अदितिके अर्थ ॥२॥ सुखयित्री अदितिके अर्थ ॥३॥ ३॥ स-  
रस्वति-वागधियात्री के अर्थ ॥१॥ शोधयित्री सरस्वती के अर्थ ॥२॥  
बड़ी सरस्वती के अर्थ ॥३॥ ४॥ पूषा के अर्थ ॥१॥ प्रगत पंथा तत्र भवप्रप-  
थ्यः पूषा के अर्थ ॥२॥ नरको उदयेन शब्दयति पूषा के अर्थ ॥३॥ ५॥  
त्वष्टा तनू करने वाले के अर्थ ॥१॥ तुरीष-वेगको रक्षा करने वाले के

+ सप्ताहमाधीतायिरित्यादि

अर्थ०॥२॥ बहुरूपी त्वष्टाके अर्थ०॥३॥६॥ व्यापक विष्णु के अर्थ०॥  
१॥ निभूयप (नितरंभूत्वा- मत्स्यादि अवतार करि रक्षा करने वाले  
विष्णु के अर्थ०॥२॥ शिपिविष्ट (पशु- प्राणियों में अन्नर्यामिरूपेण  
प्रविष्ट) विष्णुके अर्थ०॥३॥७॥२०॥

विश्वो देवस्य नेतुमर्तो ब्रूरीत सख्यम् । विश्वो रायः ईषु-  
ध्यति युम्नं वृणीत पुष्प से स्वाहा ॥२१॥

का० २००४०२५०१०० सातमी दीक्षणीया में यह विशेष है कि प्रतिदि-  
वस चारि ४ आध्वरिक औद्भुभण होमते हैं तिन चारों के स्थान में  
हैं ६ आग्निक आकृति प्रयुजमग्निं स्वाहेति ११०६६ होमिके औ-  
र आश्व मेधिक तीनि विष्णवे स्वाहेत्यादिक होमि विश्वो देवस्य  
दशमे औद्भुभण को होमं इति ॥ व्याख्याता ४०८०॥२१॥

अ०७ आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः  
शूर इषव्यो गतिव्याधी महारथो जायतां रोग्धी धेनुर्वो-  
ढान् दानाशुः सप्तिः पुरंधिर्योषा जिष्णूरथेष्टाः सभेयो  
युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः फ-  
र्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न औषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो  
नः कल्पताम् ॥२२॥

का० २००४०११० कृष्णजिन दीक्षा से आरम्भ करि के उरवाविषं त्र-  
यो दश समिदाधान पर्यन्त कर्म करि अध्वर्युही आब्रह्मन् यहज-  
पे उत्सर्गोपस्थान काल में एक आचार्य आब्रह्मन् इस जपको र-  
खा करते हैं यद्वा आश्व के उत्सर्ग काल विषे अर्थात् विभूर्मात्रेति १०



जपके अनन्तर ॥ लिङ्गोक्त देवता महीधर मते उत्कृति छन्दः । हे ब्रह्मन्  
हमारे देश विषे ब्रह्मवर्चसी (यज्ञाध्ययनशील) ब्राह्मण उत्पन्न हो ।  
और क्षत्रिय ऐसा उत्पन्न हो । कैसा कि शूरः (पराक्रमी) शूर विक्रान्तो शूर  
यति शूरः । इषव्य (बाणों से बंधने वाला) वावाण विद्या कुशल । अतिव्या  
धी (शत्रुभेदनशील) । महारथः (एक सहस्र को जीते बौह महारथः) । दुग्ध  
पूरयित्री धेनुः उत्पन्न हो राष्ट्रे इति सर्वत्र सम्बन्धः । वृषभ (बैल) वहन  
शील हो । अश्व शीघ्रगामी उ०-हो । स्त्री पुरंधिः (सर्वगुण सम्पन्न शरीरको  
धारण करने वाली) उ०-हो । रथ में स्थित युयुत्सु नरजयनशील उ०-हो । इस  
यजमान का युवा (समर्थ) सभाविषे योग्य वीर पुत्र उ०-हो । किंच हमारे रा  
ष्ट्र विषे पर्जन्य (मेघ) निरन्तर कामना में वर्षे । हमारे यवाद्या औषधी एं  
फल युक्ता (स्वयमेव फल) होंवें । हमारा योगक्षेम- योग करि युक्त क्षेम- यो  
ग (अलब्ध का लाभ) क्षेम (लब्ध का परिपालन) कृप हो ॥ २२ ॥

अ. ८ प्राणाय स्वाहा पानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा  
श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥ २३ ॥

का. २०. ४. ३१. आज्यादिकों का प्रति प्रहर विषे एक-एक को क्रमकरिके  
सर्वरात्र उत्तर वेदिस्थ अग्नि में होम करे प्राणाय स्वाहेत्यादि द्वादशक-  
ण्डिकात्मक अनुवाकों से । किं कृत्वा आवर्तम् कि प्राणाय स्वाहेत्यादिक एकशता-  
य स्वाहेत्यन्त मन्त्र गण को आवर्त-आवर्त करिके सर्वरात्रमिति द्वितीया ग्र  
हण से होम क्रिया का सबरात्रिका संयोग करियें है ततः प्रथम याम में घृत से  
याग है दूसरे में सक्तु-ओं से तीसरे में धानों से चोथे में लाजा से । एकस्मै इति  
द्वादशेऽनुवाके ३४. एकस्मै स्वाहा द्वाभ्यां स्वाहेत्यत्र त्रिभ्यः स्वाहा चतुर्भ्यः

स्वाहा पञ्चभ्यः स्वाहा षड्भ्यः स्वाहा सप्तभ्यः स्वाहा अष्टभ्यः स्वाहा नव-  
भ्यः स्वाहेत्येव मादयो मन्त्राः अपठितं हं परन्तु एक-एक के उच्चार्य करिकेश-  
नपर्यन्तों का प्रयोजन है एकोत्तर जुहोतीति शत० १३२१५ श्रुतिसे। व्यु-  
ष्टा (रात्रिकी समाप्ति विषे व्युष्टायै स्वाहेति एक घृत की आहुति को और सूर्य-  
के उदय में स्वर्गाय स्वाहेति होमें इति सूत्रार्थः॥ लिङ्गोक्तदेवतानि यजू-  
ंश्च। प्राणदय इन्द्रियदेवाः॥ २३॥

अ० ८ प्राच्यै दिशे स्वाहा वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिण्यै दिशे स्वाहा वा-  
च्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहा वाच्यै दिशे स्वाहो दीच्यै दि-  
शे स्वाहा वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्व्यै दिशे स्वाहा वाच्यै दिशे स्वा-  
हा वाच्यै दिशे स्वाहा वाच्यै दिशे स्वाहा॥ २४॥

अ० १० अद्भ्यः स्वाहा वाभ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा  
स्रवन्तीभ्यः स्वाहास्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहासूया-  
भ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहा एवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरि-  
राय स्वाहा॥ २५॥

अ० ११ वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेधाय स्वाहा विद्योत-  
मानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहा वस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहा व-  
वर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहो हृल्लते स्वाहो  
हृहीनाय स्वाहा पुष्पाते स्वाहा शीकायते स्वाहा शुष्माभ्यः स्वाहा  
द्राघुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा॥ २६॥

अ० १२ अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षा-  
य स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाशाम्यः स्वाहोर्ध्वै दिशे स्वा

हार्वाच्ये दिशे स्वाहा ॥२०॥

अ. १३ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा होरात्रेभ्यः स्वाहार्ध  
मासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहऋतुभ्यः स्वाहार्तवेभ्यः स्वा  
हा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा चन्द्राय स्वाहा  
सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहा  
क्षिप्तेभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूले  
भ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः  
स्वाहा फलेभ्यः स्वाहोषधीभ्यः स्वाहा ॥२०॥

अ. १४ पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा च  
न्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहा द्यौः स्वाहोषधीभ्यः स्वाहा वन  
स्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीस  
येभ्यः स्वाहा ॥२१॥

अ. १५ असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गण  
ध्रिये स्वाहा गणयतये स्वाहा भिभुवे स्वाहा धिपतये स्वाहा  
श्रूषाय स्वाहा सर्षपे स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वा  
हा मलिमुचाय स्वाहा दिवा पतयते स्वाहा ॥२२॥

अ. १६ मध्वे स्वाहा मधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा न  
भसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सह  
से स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहा  
हसस्पतये स्वाहा ॥२३॥

अ. १७ वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहा पिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा

स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्रुविने स्वाहान्त्याय स्वाहान्त्या-  
य मौदनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वा-  
हा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥

अ० १८ आयुर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पतां  
स्वाहा पानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पतां  
स्वाहा दानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा समानो यज्ञेन क-  
ल्पतां स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन  
कल्पतां स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा मनो यज्ञे-  
न कल्पतां स्वाहात्मा यज्ञेन कल्पतां स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन  
कल्पतां स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा स्वर्ग-  
ज्ञेन कल्पतां स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां स्वाहा पंक्तौ  
यज्ञेन कल्पतां स्वाहा ॥३३॥

अ० १९ एकस्मै स्वाहा द्वाभ्यां स्वाहा शताय स्वाहेकशताय स्वा-  
हा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥३४॥  
इति सर्गं हितायामेकौनविंशोऽनुवाकः १९  
इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीपायां वाजसनेयसर्गहि-  
तायां दीर्घपाठे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

प्राच्यादिदेवताः ॥२४॥ अद्भ्यः । जलदेवताः ॥२५॥ वाताय । मेघोपयोगि-  
देवताः ॥२६॥ अग्नये । आग्न्यादयः प्रसिद्धाः ॥२७॥ नक्षत्रेभ्यः । न-  
क्षत्रादयः कालाधिष्ठात्र्यः ॥२८॥ पृथिव्यै । पृथिव्यादयो लोकाधिष्ठा-  
त्र्यः ॥२९॥ असवे । अस्वादयश्च ॥३०॥ मधवे । मध्वादयो मासाधिष्ठा

तारः ॥३१॥ वाजाय । वाजादयोऽन्नाधीशाः ॥३२॥ आयुः । यज्ञेनाश्वमेधे  
 आयुः कल्पताम् एवमग्नेऽपि प्रार्थना मन्त्राः ॥३३॥ एकस्मै । संख्या  
 धीशाः । व्युष्टीरात्रिः । स्वर्गो दिनम् रात्रिर्वै व्युष्टिरहः स्वर्गोऽहोरात्रे  
 ऽ एव तत्प्रीणातीति श्रुतेः १३.२.१.६ ॥ प्राणादयोऽश्वमेधस्या वय-  
 विनोऽवयवाः स च प्रजापतेरवयवः स आत्मन इत्यात्मैव स्तूयते इ-  
 ज्यते इति भावः सर्वमिदं यदयमात्मेति श्रुतेः ॥३४॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरो देयाद्धर्मपुत्रोयुधिष्ठिरः २२

इतिगिरिधरभाष्ये एकोनविंशोऽनुवाकः १४

श्रीमच्छुक्लं यजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशारवाध्येत व्याघ्रपादान्व-  
 यविश्वामित्रपुराधिप श्रीमञ्जयकिशोरदेववर्मात्मज रौक्मिणी  
 यनृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये अश्व-  
 मेधाहुतिवर्णनो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

हरिः ओम्

ओं नमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरुपं च साधनैर्वै ह्यरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः २३

अ० १ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।  
 स दधार पृथिवीं धामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधे-  
 म ॥४॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

त्रयोविंशोऽयमध्यायो वर्ण्यते आश्वमेधिकः २३

द्वाविंशो होममन्त्रास्त्रयोविंशोऽध्यायेशिष्टं कर्मोच्यते का० २०. ५. १. २.  
प्रातः काल दूसरे दिनमें उक्थ्य संस्य दिवस होता है तहां महिम संज्ञक  
दो ग्रहों का आगन्तुत्व से आग्रयण उक्थ्य के मध्य में ग्रहण करें (अन्त-  
राग्रयणोक्थ्या वागन्तुस्थानं ग्रहाणमिति वचनात्) दोनों के मध्य में  
पूर्व महिमान को सौवर्ण उलूखल करिके ग्रहण करें ॥ व्याख्याता  
१३. ४. ॥ १॥

उपयाम गृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष  
ते योनिः सूर्यस्ते महिमा यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सं-  
म्बभूव यस्ते वायवन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दि-  
वि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वा-  
हा देवेभ्यः ॥ २॥ + उ-मि। अ० ए-मा। इ० य-भ्यः। ३० ॥ २॥

प्रजापत्यं यजुः ॥ उपयाम० प्रजापति के अर्थतुम् रुचित को हे ग्रह ग्रह  
ण करता हूं ॥ का० ४. ५. २५. एष ते योनिरिति ग्रह सादनम् ॥ या-त्रि०।  
यह तेरा स्थान तेरी महिमा (शक्ति) सूर्यः दीपस्येव प्रभा ॥ का० २०. ७. १६.  
पूर्व महिमान ग्रह को होमें वषट् कृते सर्वहुतम् ॥ देवदेवत्यं यजुः ॥  
हे महिमन् जो तेरी महिमा दिवस और संवत्सर निमित्त विषे उत्पन्न  
हुई वायु और अन्तरिक्ष विषे जो तेरी महिमा उत्पन्न दिवि और सूर्य  
विषे जो तेरी महिमा उत्पन्न तिस महिम्न प्रजापति और देवताओं



के अर्थ स्वाहा सुहुत मस्तु ॥२॥

अ० २ यः प्राणतो निमेषतो महित्वैक इन्द्राजा जगतो बभूव ।  
य ईशो अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा  
विधेम ॥३॥

का० २० ५ २ दूसरे महिमान ग्रह को राजत उलूखल करिके ग्रहण क  
रै ॥ हिरण्य गर्भहृष्टाक देवत्यात्रिष्टुप् । तिस प्रजापति देवता के अर्थ ह  
मने हवि दिया । तिस किस के कि जो प्रजापति जीवन करते निमेषण (ह  
गादि इन्द्रियों के व्यापार) करते अर्थात् सचेतन अगत का एक एक  
राजा हुआ तिस महित्व (महाभाग्य) करिके । और जो इस द्विपद (म  
नुष्य पक्षी आदिकों) और चतुष्पद (हस्ती गवादिकों) प्राणिजात का रे  
श्वर्य करता है ॥३॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनि-  
श्चन्द्रमास्ते महिमा यस्ते रौत्रौ संवत्सरे महिमा संम्बभूव  
यस्ते पृथिव्यामग्नेो महिमा संम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्र-  
मसि महिमा संम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः  
स्वाहा ॥४॥ + उ-मि अ० ग-मा । दू० य-हा । उ० ॥४॥

उपया मेति व्याख्यातं यजुः २ ॥ सादयति ॥ या-ज० चन्द्रमा तेरी महिमा ॥  
का० २० ७ २६ वपायाग के अन्त में दूसरे महिम्न करिके पूर्व वदिति स  
र्वहुत महिमान की होमें ॥ यजुः ॥ हे महिमन् रात्रि और संवत्सर विषे जो  
तेरी महिमा ० पृथिवी और अग्नि विषे जो ० नक्षत्र और चन्द्रमा विषे  
जो ० सर्व व्यापक जो ० तिस महिम्न प्रजापति और देवताओं के अर्थ स्वा



थे गया और इन्द्र के प्यारे शरीर को अत्यर्थ गया अतः हेस्तोतः (अ-  
ध्वर्यो) इस हमारे अश्व को इस मार्ग करि कि जिस मार्ग करि आया-  
फिरि तिसी करि लोटा ओ ॥७॥

वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभे-  
न छन्दसादित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा । भूर्भुवः स्व-  
र्लो जी ३ ऋचा ची ३ न्यव्ये गव्यः एतदन्वमत्त देवा एतदन्व-  
मद्वि प्रजापते ॥८॥†

का० २०५१५ जल प्रदेश से देवयजन प्रति आये रथसे छूटे अश्व को  
महिष्याद्याः तीनों पत्नि हैं यथाक्रम अश्व के पूर्वदिकों को घृत से चुपरे  
महिषी पूर्वकाय को वसव इति वावाता देह मभ्य को रुद्रा इति परिवृक्ता  
पश्चाद्वागको आदित्या इति मन्त्रेणेति सूत्रार्थः ॥ लिङ्गोक्त देवत्यानि १  
३ आसु-अ० २५-ज० त्रीणि । हे अश्व आठो वसुदेवता गायत्री छ-  
न्द करि तुमै स्निग्ध करे ॥ एकादश रुद्र त्रिष्टुप् छ० ॥ द्वादश आदि-  
त्य जगती छ० ॥ का० २०५१६ महिष्याद्याः तीनों पत्नि हैं एकाधिक  
शत-एकाधिकशत सुवर्ण मणीओं को जैसे नगिरें तैसे केसरो (शिरः  
स्कन्धपुच्छ रोमों) में बाँधे अर्थात् महिषी अश्व शिर रोमों में भूरिति-  
१०१ मणी हैं बाँधे वावाता ग्रीवा रोमों में भुव इति १०१ परिवृक्ता पुच्छ रो-  
मों में स्वरिति १०१ बाँधे ॥ भूर्भुवः स्वः व्याख्याता ३५३० ॥ का० २०५  
५१८१६ सक्तुधाना लज्जारा रूप रात्रिहृत शेष को अश्व के भक्षार्थ देवे  
और जो अश्व न खावे तो जल में डाले ॥ लाजीन् अश्व देवत्यं यजुः ॥ ला-  
जाओं का समूह सक्तुओं का समूह यवों का समूह दध्यादि गविओं

का समूह हे देवताओं इस अन्न को खाओ हे प्रजापते इस अन्न को खा ये-  
भ्योऽश्वः प्रोक्षितस्तद्रूपोऽश्वः सम्बोध्यते ॥ ८॥

कः सिंदेका की चरति क उ सिञ्जायते पुनः ॥ किं सिद्धि-  
मस्य भेषजं किञ्चावपनं महत् ॥ ९ ॥

का ० २० ५ २० यूपके दक्षिणतः उदङ्मुख ब्रह्मा यूपोत्तरतः दक्षिण  
मुख होता की पूछे ॥ ब्रह्मोद्ये कर्मणि होतुर्व्रह्मणश्च प्रश्न प्रति प्रश्न भू-  
ताश्च तस्रोऽनुष्टुभः ॥ सिद्धिति वितर्के एक असहायः ॥ अकेला कों  
न चलता है ॥ उपाद पूरणः कः सिद्धि विनष्ट होने पर उत्पन्न होता है ॥  
किं सिद्धि शीत की औषध है ॥ किं सिद्धि बड़ा वपने का स्थान है ॥ ९ ॥

सूर्य एका की चरति चन्द्रमा जायते पुनः ॥ अग्निर्हिम-  
स्य भेषजं भूमिरवपनं महत् ॥ १० ॥

का ० २० ५ २१ होता ब्रह्मा प्रति कहै ॥ सूर्य अकेला + चलता है (अने-  
न होतु ब्रह्माणो यजमाने ब्रह्मवर्चसं यतः ॥ असे वा आदित्य ए-  
का की चरत्येष ब्रह्मवर्चसं ब्रह्मवर्चसमेवास्मिंस्तद्धत इति १३ २६  
१० श्रुतेः ॥ चन्द्रमा क्षीणहुआ फिर करि बढ़ता है (अनेना युर्थतः ॥  
चन्द्रमा वै जायते पुनरायुरेवास्मिंस्तद्धत इति ११ श्रुतेः ॥ हिम की  
औषध अग्नि है (अनेन तेजोधतः ॥ अग्निर्वै हिमस्य भेषजं तेज  
एवास्मिंस्तद्धत इति १२ श्रुतेः ॥ भूमि (यह लोक) बड़ा वपने का स्था-  
न है (अनेनास्मिन्प्रतिष्ठां यतः ॥ अयं वै लोक आवपनं महदस्मिन्ने-  
व लोके प्रतितिष्ठतीति १३ श्रुतेः ॥ १० ॥

का सिद्धासीत्पूर्वे चित्तिः किं सिद्धासीद्बृहद्वयः ॥ का

१ एक की नीचा धमक है आस्य के चलते ऊपर का देन क्षम  
नारा दिखला देन हो देता ।

स्विदासीत्यलिप्यिला का स्विदासीत्यिशंगिला ॥११॥

का० २०५२२ होता ब्रह्मा को पूछे ॥ पूर्वचित्तिः-सर्वों की प्रथम स्मृति-विषया कौन थी वडीवय का यक्षी कोनथा। पिलिप्यिला कौन और पिशंगिला कोनथी ॥११॥

द्यौरासीत्पूर्वेचित्तिरश्व आसीद्बृहद्वयः। अविःरासीत्यलिप्यिला रात्री रासीत्यिशंगिला ॥१२॥

का० २०५२३ ब्रह्मा होता प्रति कहे ॥ पूर्वस्मरणविषया द्यौः (वृष्टि) थी। अश्व मेध बृहद्वयथा \*। अविः (पृथिवी) पिलिप्यिला (चिकूणा) थी। रात्रि पिशङ्गिला (सूयों की गिलने वाली \*\*) थी ॥१२॥

अ० ४ वायुष्ठा पचतै र्वत्वसितग्रीवशृङ्गागैर्न्यग्रोधश्चमुसेः शल्मलिर्वृद्धा। एषस्य राय्यो वृषा पडभिश्चतुर्भिरेदगन् ब्रह्माकृष्णश्च नोऽवतु नमोऽनये ॥१३॥ +

का० २०६७ अद्भ्यस्त्वोषधीभ्य इति प्राकृतेन मन्त्रेण ६० और वायुष्टेत्यारभ्य देवः सविता द्यात्वित्यन्तेन १६ आश्वमेधिचारि करिडका करि अश्व शोक्षण करै ॥ लिङ्गोक्तानि यजूंषि १० या-वृ० २५ या-उ० ३ या-गा० ४ दे-पं० ६७ या-अ० ८ दे-वृ० हे अश्व वायुपाक करि तुमै रक्षा करै (वायु संयोग सैं अग्नि शीघ्र पचाती है ॥ असित है ग्रीवा जिस की भूमसैं (अग्नि) छाग करि तुमै रक्षा करै ॥ न्यग्रोध चमस (सोमपात्र) करि तुमै रक्षा करै ॥ शल्मलि (संभरित वृक्षः) वृद्धि करि तुमै रक्षा करै \* ॥ किंचस्यः (स) राय वृषा (सींचनेवाला अश्व) राय्यः (रायविधे साधु) चारि पैगें करि आतां है ॥ किंचशृङ्गाः

द्यौरासीत्पूर्वेचित्तिरश्व आसीद्बृहद्वयः। अविःरासीत्यलिप्यिला रात्री रासीत्यिशंगिला ॥१२॥

वायुष्ठा पचतै र्वत्वसितग्रीवशृङ्गागैर्न्यग्रोधश्चमुसेः शल्मलिर्वृद्धा। एषस्य राय्यो वृषा पडभिश्चतुर्भिरेदगन् ब्रह्माकृष्णश्च नोऽवतु नमोऽनये ॥१३॥ +

१ वा-तु-अ० १० अ-भौ ॥ वृ० १० य-से ॥ उ० ३ या-गा० ४ दे-पं० ६७ या-अ० ८ दे-वृ० हे अश्व वायुपाक करि तुमै रक्षा करै (वायु संयोग सैं अग्नि शीघ्र पचाती है ॥ असित है ग्रीवा जिस की भूमसैं (अग्नि) छाग करि तुमै रक्षा करै ॥ न्यग्रोध चमस (सोमपात्र) करि तुमै रक्षा करै ॥ शल्मलि (संभरित वृक्षः) वृद्धि करि तुमै रक्षा करै \* ॥ किंचस्यः (स) राय वृषा (सींचनेवाला अश्व) राय्यः (रायविधे साधु) चारि पैगें करि आतां है ॥ किंचशृङ्गाः

१ वा-तु-अ० १० अ-भौ ॥ वृ० १० य-से ॥ उ० ३ या-गा० ४ दे-पं० ६७ या-अ० ८ दे-वृ० हे अश्व वायुपाक करि तुमै रक्षा करै (वायु संयोग सैं अग्नि शीघ्र पचाती है ॥ असित है ग्रीवा जिस की भूमसैं (अग्नि) छाग करि तुमै रक्षा करै ॥ न्यग्रोध चमस (सोमपात्र) करि तुमै रक्षा करै ॥ शल्मलि (संभरित वृक्षः) वृद्धि करि तुमै रक्षा करै \* ॥ किंचस्यः (स) राय वृषा (सींचनेवाला अश्व) राय्यः (रायविधे साधु) चारि पैगें करि आतां है ॥ किंचशृङ्गाः

(नहीं है कृष्ण) लाच्छनजिसमें वोह ब्रह्मा (चन्द्रमा) हमें रक्षा करे व  
हमारे अश्व को रक्षा करे ॥ अग्नि के अर्थ नमस्कार हो (विघ्नाभावाया-  
ग्नेर्न निःक्रियते ॥ १३ ॥

सर्गं शितो रश्मिना रथः सर्गं शितो रश्मिना हयः ॥ सर्गं शि-  
तोऽप्सु प्सुजा ब्रह्मा सोमपुरे गवः ॥ १४ ॥

तिस्रोऽश्वदेवत्या नुष्टु धिरा द्विष्टुभः क्रमेण ॥ हयः (अश्वः) रश्मि करि-  
संशित शोभित ॥ है ॥ अप्सुजा (जल में हुआ) अश्व वा जल करि मंशि-  
त है ॥ कैसा है कि ब्रह्मा (परिवृष्टः) सोमपुरे गवः (सोम को आगे करि स्व-  
र्ग लोक को जाता है) ॥ १४ ॥

स्वयं वाजिंस्तनुं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ॥ म-  
हिमा तेऽन्ये न न सं न शो ॥ १५ ॥

हे वाजिन् तू अपने शरीर (रूप) को करि याद श मिच्छ सीति १३.२.७.११  
श्रुतेः (जैसा तू चाहता है) स्वायज्यते रहै इति भावः अतः अपने को  
पूजि नहीं तेरा अन्य पूजने वाला स्वयं जुषस्व (इष्टस्थान को सेवन  
करि) यतः तेरी महिमा अन्य महिम करि नहीं व्याप्त होती ॥ १५ ॥

नवाऽऽणतन्म्रियसे न रिष्यसि देवां ॥ इदेषि पृथि-  
भिः सुगेभिः ॥ यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः  
सेविता दधातु ॥ १६ ॥

हे अश्व हम लोगों करि जो तू संज्ञपन किया जायगा इस करि तू नहीं  
मरता और न विनाश को प्राप्त होता ॥ जिस साधु गमन देवयान मार्ग करि दे-  
वताओं प्रति जाता है ॥ किंच साधु कारिणः मनुष्य जिस लोक में रहते और

† सम्पूर्वः श्रयतिः शोभनार्थः रथः रश्मिना कृत्वा संशितः दर्शनीयो भवति तस्माद् रथः पश्यतो दर्शनीय-  
तमो भवतीति १३.२.७.८ श्रुतेः ॥ ‡ अप्सु पोनिर्वाश्व इति १३.२.७.१० श्रुतेः ॥  
§ सोमपुरे ग(म) मे वै न ठं स्वर्गं लोकं गमयतीति १० श्रुतेः ॥

† वाजिन् तू वाजसा कृष्णश्चन्द्रमासः यत्नं परिदृशतीति १३.२.७.७ श्रुतेः ॥  
‡ विपदा विरोधः



जहां ते सुकृती गये तिस लोक में सविता देवता तुम्हे स्थापन करे +॥१६॥

† सवितैर्वैन  
र्हस्वर्गलोके द  
धातीति १३.२  
७.१२. श्रुतेः।

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्

ग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबेता अयः॥ वा

युः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्वायुः

स ते लोको भविष्यति तं जेयसि पिबेता अपः सूर्यः पशुरा

सी॒त्तेना॑य॒जन्त॑ स ए॒तं लो॒कम॑ज॒यद्य॑स्मिन्त्सूर्यः॑ स ते॑ लो॒

को भविष्यति तं जेष्यसि पिबेता अपः ॥१७॥

का० २०६०० अषां पेरुरिति ६१० प्राकृत मन्त्र और अग्निः पशुरिति वै

कृतमन्त्र करि प्रोक्षणी अश्व के पीने के लिये ग्रहण करें ॥ अश्व देवत्यानि

त्रीणि यजूंषि। सृष्टि देवताओं का अग्नि पशुहुआया तिस अग्निरूप प

शुकरिदेवता यजन करते हुए बौह अग्नि पशुभाव को छोड़ि इस (पृथ्वि)

का० २०.६.१३. सब पत्नीएँ पान्नेजनी हस्ता हो प्राण शोधन से पहिले  
अश्व को तीनि-तीनि प्रदक्षिणा देवें मध्य में तीन अप्रदक्षिणा फिरे  
तीनों मन्त्रों से और वसो ममेति तीनों में अनुषङ्ग है ततश्चैवम् प्रथम  
गणानां इस मन्त्र करि तीनि प्रदक्षिणा फिरे तहां एक मन्त्र पूर्व क दोचुप  
केसे फिरि प्रियाणाम् तीनि अप्रदक्षिणा निधीनाम् तीनि प्रदक्षिणा ऐ  
से नव ४ कृत्व इति सूत्रार्थः ॥ चत्वारि लिङ्गोक्तानि यजूर्ध्वि हे अश्व  
हम तुम्हे आह्वान करती हैं कैसे तुम्हे कि गणों के मध्य गण रूपेण पा  
लक को। प्रियों वल्लभों के मध्य प्रिय के पालक को निधीओं (सुरबनि-

वींओं के मध्य सुखनिधि के पालक को। हे वसुरूप अश्व मेरा पति तू  
हुआ इति शेषः। का० २००६१४ यत्नीओं करि शोधित पशुओं के प्राणों वि  
षे अध्वर्यु यजमान प्राण शोधन करते आहमजानीति मन्त्रेण महि  
षी अश्व समीपमें सोवै ॥ अश्व देवत्यम्। हे अश्व गर्भधारक रेत (शुक्र)  
को मैं षींचि कर डालती हूँ और तू गर्भधारक रेत मैं षींचि कर डालि ॥ १६ ॥

ता० उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके ओर्णवायं  
वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥

पूर्वमन्त्र शेषः। तू और मैं दोनों चारो पैरों को पसारें तेरे दो मेरे दो एवं  
संवेशन प्रकारः ॥ का० २००६१५ अधीवास (नीचे और ऊपर से आछा  
दन शक्त वस्त्र) करि स्वर्गलोक इति अश्व महिषी की आछादन करे ॥  
अध्वर्युर्वदति। हे अश्व महिष्यो तुम स्वर्गलोक इस यज्ञभूमि में  
कपडे करि आछादित होओ ॥ का० २००६१६ महिषी आपही अश्व  
शिश्न की निकालि वृषा वाजीति अपनी योनि में ररेवै ॥ अश्व देवत्य  
म्। अश्व मेरे विषे वीर्य स्थापन करे कैसा अश्व कि सींचने वाला वी  
र्य का धारण करने वाला ॥ २० ॥

अ० ६ उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्। यस्त्रीणां  
जीवभोजनः ॥ २१ ॥

का० २००६१७ उत्सक्थ्या इति अश्व की यजमान अभिमन्त्रित करे ॥  
अश्व देवत्या गायत्री। हे वृषन् (सेक्तः) अश्व महिषी की गुदा के ऊप  
र वीर्य धारण करि कैसी महिषी कि उत्सक्थ्या (ऊंची हैं करूँ जिसकी)  
तिसकी। कथं तदाह किलिङ्ग की भले प्रकार योनि में प्रवेश करि जो

पशुवे स्वर्ग लोको यज्ञ पशु हं सं प्रपयती  
ति २३०२०५ अन्तेः।

लिङ्ग स्त्रीओं का जीव भोजन है जिस लिङ्ग के योनि में प्रविष्ट होते स्त्रियों में जीवती और भोगों को प्राप्त होती हैं तिसमें प्रवेश करि ॥२१॥

यका सको शकुन्तिका हलगिति वञ्चति । आहन्ति गमे य सो निगलालीति धारका ॥२२॥

का. २०. ६. १८. अध्वर्या दयः पञ्च हये- हये साविति नमोच्चारणपूर्वक हये हये प्रियं वदे- जघन चपले मन्मथ मोहिनीत्यादि संमुखी करि करिके दशर्च सम्बन्धिनी दे- दे ऋचाओं करि कुमारी पत्नीओं के साथ उपहास सहित भले प्रकार कहें तहां प्रथम अध्वर्यु कुमारी को पूजता है अर्थात् हये-हये कुमारी यका सको शकुन्तिकेति ॥ कुमार्यादिदेवत्या दशतन्मध्ये द्वितीयो परिष्ठाद्बृहती अन्या नवानुष्टुभः ॥ अङ्गुल्या योनिं प्रदर्शयन्नाह । यका (या-जो) असको (असो-यह) शकुन्तिका (अल्पपक्षिणी) इव आहलक (हलेहले) शब्द करती हुई चलती है (स्त्रीओं की शीघ्रगमन में योनि हल हला शब्द करती है । जब कि शकुनिसदृश्या गम (भग) में लिंग आहन्ति (भले प्रकार जाता है तब धारका लिङ्ग की धारण करने वाली योनि) निगलालीति (निरन्तर में वीर्य को भरती है, चाहे जितनी पोंछे लिङ्ग के घुसते ही सरला होजाती है) यद्वा शब्दानुकरणम् गलाल शब्द करती है (जब कि विशेषतः सरला होजाती है तब गलाल शब्द निकलता है ॥२२॥

यको असको शकुन्तक आहलगिति वञ्चति । विवक्षत- इव ते मुख अध्वर्यो मा नस्त्वमभिभाषथाः ॥२३॥

कुमारी अध्वर्यु प्रतिकहती है । अङ्गुल्यां शिरः प्रदर्शयन्त्याह । हे

न यह बोली अध्वर्यु की बात है बोली जाती है पश्चात् दस कहें तब दसरी बात नहीं जानते हो दसम कसमहसम तब मुख पर दसम कहें तब दसमी वसनात नसमहसमी उच्यते नसमनयमे दसमी

शब्दानुकरणम्

५ वर्णविपर्ययः यह भी उत्तरे बोली बोली जाती है पश्चात् लोया साओः ऐसा आलो ।

अध्वर्यो जो यह अल्पपक्षी इव बोलने को इच्छा करता तेरा मुख ऐसे  
से हलहल बोलता इधर उधर चलता है (अग्रभाग में सच्छिद्र लिंग ऐसे  
तेरा मुख भासे है) अतः हमारे प्रतिमति बोलि तुल्यत्वात् ॥ २३ ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य रोहतः । प्रतिला मीति ते  
पिता गर्भे मुष्टि मर्तठं सयत् ॥ २४ ॥

ब्रह्मा महिषी माह । हये-हये महिषि तेरे माता और पिता जब कि वृक्षज-  
नित (काष्ठमय) मुञ्च के ऊपर आरोहण करते हुए तब तेरे पिताने योनि में  
मुष्टि तुल्य लिङ्ग (छोटा और मोटा दृढ़ होता है लम्बा पतला लंचिजाता  
है युक्तत्वात्) को डाला एवं तवोत्पत्ति वा लिङ्ग को उत्थान करि अलंकृत  
त किया प्रतिलामी (तेरे भोग से चिकना हुआ) यह कहि कर इति शेषः ॥ २४ ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडन्तः । विवक्षन्-इव ते  
मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो ब्रह्म ॥ २५ ॥

अनुचरी सहिता महिषी ब्रह्मा प्रति कहती है । हे ब्रह्मन् तेरे माता और  
पिताने जब काष्ठमय मुञ्च के ऊपर में रमण किया तब तेरी उत्पत्ति है  
तवापि तुल्यम् (यत्रोभयोः समो दोषः परिहारोऽपि वा समः । नैकः  
पर्यन्तु योक्तव्यस्तादृगर्थविचारण इति न्यायात् तुरुकरि यह कहना यो-  
ग्य नहीं इति भावः । एवं सत्यपि बोलने को इच्छा करता ऐसे तेरा मुख लखि  
ये है इति शेषः । हे ब्रह्मन् तू बहुत मत बोलि ॥ २५ ॥

ऊर्ध्वामेना मुच्छापय गिरौ भार्ठं हरन्निव । अथास्ये मध्यमे  
धतांश्शीते वाते पुनन्निव ॥ २६ ॥

उद्गाता वावाता माह । कंचिन्नरं प्रत्याह । हे नर इस वावाता को ऊँची उ-

ठाओ। कैसे कि जैसे कोई पर्वत के ऊपर भार को आरोहण करते निसे उ-  
ठाता है तैसे इसे ऊँची करो। कैसे ऊँची कीजिये तहां कहिता है जैसे इ-  
स वावाता की योनि बढि जावै तैसे बीच में पकडि कर उठाओ। दृष्टान्त-  
न्तर माह जैसे शीते वाते पुननिव- (धान्य पवन (परवत वाई) करिके  
कृषान धान्य पात्र (छवडा) को उठाता है तैसे ॥ २६ ॥

ऊर्ध्वमैन मुच्छयता द्विरे भार्ठं हरन्निव। अथास्य मध्यमे-  
जतु शीते वाते पुननिव ॥ २७ ॥

वावातो ज्ञातारं प्रत्याह। भवतोऽप्येतत्समानम्। हेनर इस उ ज्ञातार को  
ऊँचा उठाओ गिरे भार मिति पूर्ववत्। जैसे इस उ ज्ञाता का लिङ्ग काँपे  
लहके शीते वाते उक्तम् ॥ २७ ॥

यदस्या अर्द्धं भेद्याः कृधु स्थूल मुपात सत्। मुष्काविदस्या  
एजतो गोशुके शकुला विव ॥ २८ ॥

होता परिवृक्ता माह। जबकि इस परिवृक्ता की छोटी योनि प्रति स्थूल लि-  
ङ्ग जाता है तब दोनों वृषण इस की योनि के ऊपर काँपते हैं अर्थात् योनि  
के छोटे होने और लिङ्ग के स्थूल होने से वृषण बाहिर रहते हैं। तत्र दृष्टा-  
न्तः जैसे उदक पूर्ण तडाग में गो के पद के नीचे मत्स्य काँपते हैं। कैसी  
इस की कि अर्द्ध भेद्याः (भगविरार्य है जिस की बाभग भेदिये है जिस  
की ॥ २८ ॥

यद्देवासो ललामगुं प्र विष्टीमि नुमा विष्टुः। स वध्ना दे दिश्य  
ते नारी सत्यस्यास्ति भुवो यथा ॥ २९ ॥

परिवृक्ता होतार माह। जब देवासः (देवता) क्रीडा करते हैं होत्रा दिश्य-

जबकि पवन मही चलता तब वे पवन पार उड़ हो दोहने वरु को बाहर कर दोहो होयो से पवन चलाने हैं



विजलोग (ललामगु) लिङ्ग को योनि में प्रवेश करते हैं। ललामेति सुखना  
म. सुख की प्राप्ति होता है लिङ्ग वालिङ्ग योनि में प्रवेश करके उठता पुण्ड्रा-  
कार होता है। कैसा है लिङ्ग कि विशेषण गीला अर्थात् लिङ्ग योनि प्रवे-  
श में भीग जाता है। जबकि देवता (शिशु क्रीडी लोका) लिङ्ग को योनि में प्र-  
वेश करते हैं तब स्त्री ऊरुओं करि अत्यन्त लखिये है अर्थात् भोग समय  
में स्त्री के सब अङ्गों के पुरुष व्याप्तत्व से ऊरुमात्र से ही लखिये है कि यह  
स्त्री है। तत्र दृष्टान्तः सत्यस्याक्षिभुवो यथा इति सत्य दो प्रकार का। एकों  
का देखा और कानों का सुना। जैसे कोई अक्षिभुवा प्रत्यक्ष सत्य  
करि अत्यन्त लखिये है तहां विश्वास होता है तैसे ऊरुओं करि देखने  
से नारी लखिये है इत्यर्थः। ओत्र ग्राह्येतु सत्ये वक्तु राक्षस तमत्वमपे-  
क्षितम् ॥ २६ ॥

यद्धरिणो यवमति न पुष्टं पशु मन्यते । शूद्रा यदर्यजा-  
रा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥

क्षता पाला गलीमाह। जबकि हिरण क्षेत्रस्थ धान्य को भक्षण करता  
है तब क्षेत्री पशु (हिरण) को पुष्ट हुआ नहीं मानता अर्थात् मेरे धान्य भ-  
क्षण से पशु पुष्ट हुआ यह भला नहीं जानता कि तु मेरे क्षेत्र को खाया इ-  
ससे दुःखी होता है। एवं शूद्र जाति स्त्री अर्यजारा होती है अर्थात् वैश्य  
जब शूद्रा प्रति जाता है तब शूद्र पुष्टि को नहीं इच्छा करता (मेरी स्त्री वै-  
श्य के भोग से पुष्ट हुई नहीं इच्छा करता किंतु व्यभिचारिणी हुई यह  
दुःखी होता है ॥ ३० ॥

यद्धरिणो यवमति न पुष्टं बहु मन्यते । शूद्रो यदर्यजारे

जारे न पोष मनु मन्यते ॥३१॥

पालागली क्षतारमाह । जव हिरण क्षेत्रवाताहै तव ब्रह्म जैसै तैसै प-  
शु को पुष्ट नही मानता इदं भवतोऽपि तुल्यम् इयान्विशेषः जब शू-  
द्र वैश्याकाजार होताहै तब वैश्य पुष्टि को नही मानता अर्थात् मेरी स्त्री  
पुष्टा हुई यह नही भन्ना मानता किंतु शूद्र (नीच) ने भांगी यह लेश  
पाता है ॥३१॥ इति श्लील भाषणं (गालीबकना) समाप्तम् ॥

दधि क्रावोऽश्वकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि-  
नो मुखं कर्त्तव्यं आयुः क्षितारिषत् ॥३२॥

का० २० ई० २१ महिषी (यजमान की प्रथम परिणीता पत्नी) अश्व समीप  
में सीती हुई को उठाकर अध्वर्यु ब्रह्मा उद्गाता होता क्षता मन्त्र को पढ़े ॥ वा-  
मदेवात्मज दधि क्राव दृष्ट्वा श्वदेवत्यानुष्टुप् सुरभि मती । हम अध्वर्या  
दि की ने बुरा काम किया अश्लील भाषण मिति शेषः ॥ किमर्थम् अश्व के  
संस्कारयेति शेषः अर्थात् अश्व संस्कार के लिये श्लील भाषण किया ॥ कै-  
से अश्व के कि दधि क्रावा (मनुष्य को धारण करते चलता है) तिसके ।  
जयन श्लील के । चलने वाले के । हमारे मुख सुगंधित करें यज्ञ इति  
शेषः अर्थात् श्लील भाषण से दुर्गन्ध प्राप्त मुखों को यज्ञ सुगंध करें ।  
किंच हमारे आयु ठीक (वाल्म्य यौवन वार्धक्य जीवनो को बढ़ावें) मंठव-  
क ने गाली देने से मुख में दुर्गन्ध हो जाती और अवस्था घट जाती है इ-  
स कारण मुखों में सुगन्ध और जीवन की वृद्धि यज्ञ से प्रार्थना की ॥ इ-  
ति सुरभि मती ऋक् ॥३२॥

अ० ७ गायत्री त्रिष्टुब्ज गत्यनुष्टुप् ऋक् सहा बृहत्पुष्णिहा

+ सुरभि मती भव मनोऽन्तर्दुर्वचोऽपि  
युक्त इति १३२ ई० अ० ७ अ० ७

ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३३॥

का० २००७०१ गायत्री त्रिष्टु विति षड्च दो-दोऋचाओं करि महि-  
ष्याद्याः तीनों पत्नीएँ ताम्ररूप्य स्वर्ण मयी प्रत्येक १०१०१०१०१०१  
एकाधिक शत सूचीओं से अश्व के अङ्ग में शासके मार्गों को करें (शासके  
सुख प्रवेश के लिये सुईयों से वितुन-वितुन के अश्वत्वच को जर्जरी  
करें ॥ अश्व देवत्याः षड्चः आद्योष्णिक् । हे अश्व गायत्री त्रिष्टु पूजग  
ती अनुष्टुप् पङ्क्ता करि सहित ब्रह्मती उष्णिक् सहित ककुपये छन्दसि  
इन सूचीओं से तुम्हें संस्करें (विकरण व्यत्यय असि पथ के अर्थ त्वग्भेद  
न संस्कार है ॥३३॥

द्विपदा याश्चतुष्यदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः । विछन्दा  
याश्च सछन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३४॥

चतस्रोऽनुष्टुभः ॥ दोपद हैं जिन्हें के ते जे चारि पद के जे तीनि पद के जे  
छे पद के जे छन्द लक्षण हीन जे छन्द लक्षण युक्त ते सब छन्दों की जा  
तियें हे अश्व सू० ॥३४॥

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः । मेधीर्विद्युतो  
वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३५॥

महत् नाम जिन्हें के ते महानाम्नी शक्य ऋचाएँ । जिन ऋचाओं में स-  
म गाया जाता हे वे रेवती । सब दिशाएँ । कैसी दिशाएँ कि प्रभूवरीः (स-  
व भूतों के धारण करने की समर्थ हैं । मेघ से उठी विजली और वेद  
क्षणावाचा । ये सब हे अश्व ० ॥३५॥

नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया । देवानां पत्न्यो

दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३६॥

हे अश्व नारियें (स्त्रियें) तेरे रोमों को मन से क्वारि उखेड़ें। कैसी स्त्रियें कि यजमान भार्या (महिष्याद्या) पालि ऐं। किंच इन्द्रादि देवताओं की पत्नि ऐं प्राच्याद्यादिशाऐं हे अश्व ॥३६॥

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः। अश्वस्य वा-  
जिनेस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥३७॥

रजताः (रजतमय्यः) हरिणीः (सुवर्णमय्यः) सीसाः (ताम्रमय्यः) तीनि प्र-  
कारकी सूचीऐं होतीहैं लोहमयी रजतमयी हिरण्मयी दिशाऐं लोह-  
मयी अवान्तर दिशाऐं रजतमयी ऊर्ध्वा हिरण्मयी तिन्हें से सीमा क-  
रतीहैं + सूचीओं का दिग्वृत्त होने से अश्व संस्कार क्षमत्व है ते सूचीऐं  
कर्मों करि अश्व देहमें सीमाकरण योग्या होतीहैं। कैसी हैं ते किएकी  
भूताः। ते सूचीऐं वेगवान् अश्व त्वचा में भले प्रकार रेरवाऐं करें। कैसी  
हैं कि संस्कार करने वाली ऐं ॥३७॥

कुविदङ्गः यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वविषूयः इहे-  
हैषां कृणुहि मोजनानि ये वर्हिषो नमउक्तिं यजन्ति ॥३८॥

व्याख्याता १०३२ अ. ॥३८॥

अ० ८ कस्वाक्यति कस्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति। क-  
उ ते शमिता कविः ॥३८॥

का० २०७६ षडृच अनुवाक करि अश्व के उदर को फाड़ें मेद के उ-  
दरण के अर्थ वपा के अभाव से उदर मध्यस्थ घृताभश्चेत मांस को मेद  
कहते हैं ॥ अश्व देवत्या षडृचः आद्या गायत्री। हे अश्वकः (प्रजापति) तु

मे छेदता है। हे अश्व प्रजापति तुम्हें विशास्ति त्वचा काटता है। तेरे गा-  
त्रों को शमन करि हवि करता है। और प्रजापति ही मेधावी तेरा शमि-  
ता शमन करनेवाला अर्थात् प्रजापति ही सब करता है कुछ मैं न  
हीं करता हूँ ॥३६॥

ऋतवस्तः ऋतुथा पर्व शमितारो विशासतु। संवत्सर-  
स्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३७॥

पञ्चानुष्टुभः। हे अश्व ऋतुएँ शमितारः ऋतुथा (काल-कालमें) तेरे  
पर्वों (अस्थिग्रन्थियों) को कर्मों करि भिन्न करें। किस करि कि संवत्सरा-  
त्मक काल के तेज से। किंच ऋतुएँ तुम्हें पर्वविशासन करि हविकरें ॥३८॥

अर्धमासाः परूथंषि ते मासा आच्छेन्तु शम्यन्तः। अहो-  
रात्राणि मरुतो विलिख्येष्टं सूदयन्तु ते ॥३९॥

परवारे और महीने तिन्हों के अभिमानी देवाः संस्कार करते हे अश्व  
तेरे पर्वों को भले प्रकार छेदें। किंच अहोरात्राभिमान्नी देवा और मरुदे-  
वा तेरे अल्प अङ्गों को व्यर्थ न होने दें ॥४०॥

दैव्या अध्वर्यवस्त्वाच्छेन्तु वि च शासतु। गात्राणि पर्वश-  
स्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥४१॥

देव सम्बन्धनी अश्विनी कुमार अध्वर्यु हे अश्व तुम्हें समन्तात् छेदें  
और हवि करें किंच तेरे शरीरों पर्वों-पर्वों में मर्यादा (रेखा) करें वैसी रे-  
खाएँ कि संस्कुर्वाणाः ॥४२॥

शोस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्चिद्रूपेणानु ते। सूर्यस्ते नक्ष-  
त्रैः सह लोकं कृण्वन्तु साधुया ॥४३॥

स्वर्गपृथिवी अन्तरिक्ष तीनों लोकों के अभिमानी देवाः अग्नि वायु सूर्य और वायु (शरीरस्थ प्राणादि) हे अश्व तेरे छिद्रों (न्यूनताओं) को पूरे किं च नक्षत्रयुक्त सूर्य तुम्हें उत्तम लोक देवें ॥४३॥

शान्ते परंभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः । शमस्थभ्यो मज्जाभ्यः शमस्तु तन्त्रे तव ॥४४॥

हे अश्व तेरे ऊंचे अवयवों (शिरादिकों) के अर्थ सुख हो । और नीचे गात्रों (पादादिकों) के अर्थ सुख हो । तेरे अस्थों (हड्डों) और मज्जा के अर्थ सुख हो किम्बहुना तेरे सब शरीर का भी सुख हो ॥४४॥

अथ ब्रह्मोद्यम्

अ० ४ कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः । किं स्विद्विमस्य भेषजं किम्बावपनं महत् ॥४५॥

का० २००७१०० वषा होम से पहिले चारि ऋचाओं से पूर्व वदुक्ति प्रत्युक्त्या सद्के मध्यमें जाकर होता और अध्वर्यु संवाद करें ॥ अष्टादश ऋचो ब्रह्मोद्य संज्ञाः ब्रह्मोद्य परस्परं संवादः आद्याश्च तस्रोऽनुष्टुभः ४५-४८ चतुस्रस्त्रिष्टुभः ४९-५२ ततश्च तस्रोऽनुष्टुभः ५३-५६ पुनः षड्विष्टुभः ५६-६२ । होताध्वर्यु पृच्छति व्याख्याता ४ ॥४५॥

सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥४६॥

अध्वर्यु प्रत्याह । व्याख्याता १० ॥४६॥

किं स्वित्सूर्य समं ज्योतिः किं समुद्र समं सरः । किं स्विन्पृथिव्ये वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥४७॥



अध्वर्युर्होतारं पृच्छति। हे होतः सूर्य मण्डल तुल्य तेज कोन है तिसैक  
हु। समुद्र समान सर कोन। पृथिवी के सकाशसै वर्षीय(महत्तर) कोन कि-  
सका परिमाण नही है ॥४७॥

ब्रह्म सूर्य समं ज्योतिर्द्यौः समुद्र समं सरः। इन्द्रः पृथिव्यै।  
वर्षी यानोस्तु मात्रा न विद्यते ॥४८॥

होता प्रत्याह। सूर्य समान ज्योति ब्रह्म(त्रयीलक्षण वा पर) है। समुद्र स-  
म सर द्यौ(अन्तरिक्ष) है कोंकि वृष्टि होती है। पृथिवी के सकाश सै इन्द्र  
वर्षीयान्(वृद्धतर) है। और गौ(धेनु) का परिमाण नही है(यज्ञ धारकत्वा-  
त् ॥४८॥

पृच्छामि त्वा चितये देव सरव यदि त्वमत्र मनसा जगन्म-  
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमाविवेशं  
३॥गी॥४९॥

का० २०. ७. ११. ब्रह्मा उद्गाता को पूछे चारि ऋचाओं सै सदमें ॥ ब्रह्मा  
उद्गातारं पृच्छति। हे देवताओं के मित्र उद्गातः तुम्हें ज्ञान के अर्थ में  
पूछता हूँ यहाँ मेरे किये प्रश्न में जो कि तू मन करि जानता है। किं पृ-  
च्छसीत्यत आह- विष्णु(यज्ञ) जिन तीनों पदों(गार्हपत्या हवनीयद-  
क्षिणाग्नि) में याग करि तर्पित है तिन तीनों पदों में सब भूत जात प्र-  
विष्ट हैं वानही ॥४९॥

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमाविवेशं  
सद्यः पर्यमि पृथिवीमुत घामेकेनाङ्गेन दिवोऽस्य  
पृष्ठम् ॥ ५० ॥

+ भुवनमाविवेश इति वापाठः

उद्गाता प्रत्याह । जिन तीनों पदों में सब भूतजात प्रविष्ट हैं जो तूमें पूछति-  
नहीं तीनों पदों में मेंमी स्थित हूँ और तूभी तहां ही है किमे ताव देव जान-  
ता हूँ किंतु पृथिवी घां (स्वर्ग) दिवः (स्वर्ग) का उपरि भाग भी सद्यः (स्व-  
क्षणमेव) एके नाङ्गेन (मन करि) पर्येमि (जानता हूँ) किम्युन भूतानि  
प्रविष्टास्तीति भावः ॥ ५० ॥

केष्वन्तः पुरुष आविवेश कान्यन्तः पुरुषेऽर्पिता-  
नि । एतद्ब्रह्मन्तु पवल्हामसि त्वा किं स्वस्तिनः प्रतिवो-  
चास्यत्र ॥ ५१ ॥

उद्गाता ब्रह्माणं पृच्छति । हे ब्रह्मन् पुरुष किन पदार्थों के मध्यमें  
समन्तात् प्रविष्ट है । पुरुष के मध्य में कौन वस्तु स्थापित हैं । एतत्  
तुमै स्पर्धा करि पूछता हूँ । इस प्रश्न में क्या तू कहिता है ॥ ५१ ॥

पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश तान्यन्तः पुरुषेऽर्पिता-  
नि । एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानोऽपस्मि न मायया भवस्युत्त-  
रे मत् ॥ ५२ ॥

ब्रह्मा प्रत्याह । पुरुष (आत्मा) पांचो प्राणों के मध्यमें प्रविष्ट है ते (प्रसिद्ध)  
श्रोत्राधिकरण पुरुष के मध्य में स्थापित हैं (प्राणात्मना मन्योऽन्यापेक्षासि-  
द्धिरित्यर्थः) न चात्मानमन्तरेण प्राणाः ख्यायन्ते त प्राणानन्तरेणा-  
त्मेति बह्वच श्रुतेः यद्वा पांचो भूम्यादि भूतों में आत्मा प्रविष्ट है औ-  
र ते आत्मा में प्रविष्ट हैं (तानि सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशदिति श्रुतेः) हे  
उद्गातः मैं इस प्रश्न में यह उत्तर देता हूँ । किंच बुद्धि करि मूर्खसे उत्तर  
अधिक तू नहीं (मूर्खसे बुद्धिमान नहीं है) ॥ ५२ ॥

अ० १० का स्विदासीत्यूर्वचिन्तिः किं स्विदासीद्बृहद्वयः । का स्विदा-  
सीत्यिलिप्यिला का स्विदासीत्यिशंगिला ॥ ५३ ॥

का० २० ७. १२ फिरि सदसे निकलकर हविर्धानके सामने उत्तर वेदिके  
पीछे बैठकर होता अध्वर्यु चारि ऋचाओं से संवाद करें ॥ होना अध्वर्यु पृ-  
च्छति । व्याख्याता ११ ॥ ५३ ॥

द्यौरासीत्यूर्वचिन्तिरश्व आसीद्बृहद्वयः । अविरासीत्यिलि-  
प्यिला रात्रिरासीत्यिशंगिला ॥ ५४ ॥

अध्वर्यु प्रत्याह । व्याख्याता १२ ॥ ५४ ॥

क ईमरे पिशंगिला क ई कुरु पिशंगिला । क ई मास्कन्द-  
मर्षति क ई पन्थां विसर्पति ॥ ५५ ॥

अध्वर्यु होतार पृच्छति । अरे होतः कौन पिशंगिला और कौन कुरुपिशंगि-  
ला और कौन फुद्दी मारिके चलता और कौन मार्ग प्रति सरपट्टा भर-  
ता है ॥ ५५ ॥

अजारे पिशंगिला आवित्कुरुपिशंगिला । शश आस्कन्द-  
मर्षत्यहिः पन्थां विसर्पति ॥ ५६ ॥

होता प्रत्याह । अरे अध्वर्यो अजा (नित्या माया वा रात्रि) रूप को भक्षण  
करती है । आवित् (सेही) कुरु (शब्दानुकरण) पिश (अवयव) कुरु कु-  
रु शब्द करती हुई मूलाद्यवयवों को निगलती है ५ । शश (सस्सा) फुं-  
दक-फुंदक करि चलता है । सर्प मार्ग को विशेषण जाता है ॥ ५६ ॥

कत्यस्य विष्टाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा स-  
मिद्धः । यज्ञस्यैवा विदया पृच्छमत्र कति होतार ऋतु-

५ कुरु इति शब्द कुर्वीणा पिशान्मूलाद्यवयवाभिलति पिशंगिला मूलानां शतं कुक्षो ग्यापय-  
ति शतं च भक्षयतीति सेधायाः सभावः ।

अरे इति नीच मन्त्रो धनम् ।  
पिशंगिला (माया) अध्वर्युसते गवा-  
वपि रूपानि न प्रतीयन्ते तमसः ।

शो यजन्ति ॥ ५७ ॥

का० २०७०१३० उत्तरी पञ्चाङ्गको ब्रह्मा और उद्गाता चारि ऋचाओंसे संवाद करें। ब्रह्मोद्गातारं पृच्छति। इस यज्ञ के कितने विष्टाः (विशेषणति) छे हे यज्ञ जिन्हों में ते अन्न हैं। और अक्षर कितने। होम कितने। समिधार्ण कितनी। यज्ञवेदित्व हेतु करि इस स्थान में तुम्हें में पूछता हूँ कि ऋतु-ऋतु में कितने होता पूजते हैं ॥ ५७ ॥

षडस्य विष्टाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधौ ह  
तिलः। यज्ञस्य ते विदथा प्रब्रवीमि सप्त होतार ऋतुशो  
यजन्ति ॥ ५८ ॥

उद्गाता प्रत्याह। इस यज्ञ के छे ६ अन्न हैं (सर्वेषामन्नानां षड्रसात्मत्वात्)। शत अक्षर हैं (छन्दोंसे) यज्ञ निष्पादन करिये हैं और ते छन्द गायत्र्यादि अतिधृत्यन्त चतुर्दश चतुर्विंशत्यक्षरादि चतुर्वर्णान्तर तिन्हों की क्रमोत्क्रमगतिकरि दो मिलनेसे शत अक्षर होते हैं। तथाहि। गायत्री २४ अक्षर अतिधृति ७६ एवं १०० उषाक् २८ धृति ७२ एवं १०० अनुष्टुप् ३२ अत्यष्टि ६८ एवं १०० बृहती ३६ अष्टि ६४ एवं १०० पङ्क्ति ४० अतिशक्ती ६० एवं १०० त्रिष्टुप् ४४ शक्ती ५६ एवं १०० जगती ४८ अतिजगती ५२ एवं १०० अनेनाभि प्रायेण शतमक्षराणीत्युक्तम्। अशीष् होम्हें (अश्वमेधमें इक्कीस २१ यूप हैं तहां अग्निष्ट मध्यम यूपमें अश्व तू परगोमृगों को जोड़ै इतरों में षोडश पशुओं को तहां बीस २० यूपों में चारि चारि अशीष् पशु होते हैं इत्यभि प्रायेणोक्तम् अशीतिर्होमाः॥ ह (स्फुटं) नीनि ३ समिधार्ण अश्व तूपर गोमृग प्रजापति के पशु हैं न

द्रूपा समिधाओं से यज्ञ प्रकाशो है। किंच सप्त० होतारः (वषट्कर्तारः) ऋतुयार्जो में यजते हैं ॥५८॥

कोऽअस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावा पृथिवीऽअन्तरिक्षम्। कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतो जाः ॥५९॥

उद्गाता ब्रह्माणं पृच्छति। हे ब्रह्मन् इस भूतका नाभि (वन्धन स्थान कारण) कौन जानता है। द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्षको कौ०-हैं। वडे सूर्यकी उत्पत्ति किससे है। यतः चन्द्रमाकी उत्पत्ति तिसे कौन जानता है ॥५९॥

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावा पृथिवीऽअन्तरिक्षम्। वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमर्थो वेद चन्द्रमसं यतो जाः ॥६०॥

इस भुवन का कारण मैं जानता हूँ परब्रह्मैव जगत्कारण है। द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्ष को ब्रह्मका विकार भूत जानता हूँ। वडे सूर्यका उत्पत्ति कारण ब्रह्मही जानता हूँ। और यतः परमात्मा से दृष्टा चन्द्रमाको जानता हूँ ॥६०॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः। पृच्छामि त्वा वृषोऽअश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥६१॥

का० २० ७.१४. यजमानोऽध्वर्यु पृच्छति। हे अध्वर्यो पृथिवी का परमन्त (अवधिभूतपर्यन्त) तुम्हें मैं पूछता हूँ। जिसस्थल में भूतजात का कारण वोह भी तुम्हें पू० सीचने वाले अश्वके वीर्यको तु० वाणी (त्रयीलक्षणा)

के उत्कृष्ट स्थान को तुम्हें पूछता हूँ ॥६१॥

इयं वेदिः पुरोऽन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य ना-  
भिः । अयं सोमो वृष्णोऽश्वस्य रेतः ब्रह्मायं वाचः  
परमं व्योम ॥६२॥

का० २००७१५ अश्वर्युः यजमानं प्रत्याह । यह वेदि (उत्तरवेदि) पृथिवी  
की परअवधि है (वेदेः सर्वपृथ्वीरूपत्वात्) । यह यज्ञ (अश्वमेध) प्राणिज-  
त का कारण है (यज्ञाद्वै प्रजाः प्रजायन्त इति श्रुतेः) । यह सोम (सोमलता)  
अश्व का वीर्य है । यह ब्रह्मा (ऋत्विक्) वाणी (त्रयीरूपा) का परमस्थान  
है (ब्रह्मणः स्त्रिवेदसंयोगात् ॥६२॥ ॥ इति ब्रह्मसोद्यं समाप्तम् ॥

अ० ११ सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्पुर्णवे । दधे ह गर्भमृत्वि-  
यं यतो जातः प्रजापतिः ॥६३॥

सुभूरिति पूर्वस्य महिम्नः पुरोऽनुवाक्या उत्तरस्य याज्या च । उदिते ब्र-  
ह्मसोद्यं सम्प्रपद्याध्वर्युर्हिरण्यमेन पात्रेण प्राजापत्यं महिमानं ग्रहं गृ-  
ह्णाति तस्य पुरोरुग्धिरण्यगर्भः समवर्तताग्र इत्यस्यास्य पुरोऽनुवाक्या  
सुभूः स्वयम्भूरिति १३५२२३ श्रुतेः । प्रजापतिदेवत्यानुष्ठुप् । पुरुषः म-  
हति अर्णव (कल्यान्तकालीनसमुद्र) के मध्यमें गर्भको स्थापन करता हू-  
आ । कैसा कि सुभू (विश्वोत्पादक) स्वयंभू (स्वेच्छाधृत शरीरः) । कैसे गर्भको  
कि ऋत्विग्यम् (प्राप्तकालम्) जिस गर्भ से प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न हुआ ॥६३॥

होता यज्ञत्प्रजापतिर्हं सोमस्य महिम्नः । जुषतां विवृतुसे-  
मर्हं होतुर्यज ॥६४॥

प्राजापत्यः महिम्नः प्रेषः । होता यक्षत्प्रजापतिमिति प्रेष इति १३५२२



२३ श्रुतेः। यजुः। महिमसंज्ञकसोमग्रह के सम्बन्धि प्रजापति को देवो हो-  
ता यजन करे। इज्यमान वोह प्रजापति सेवन करे और सोममहिम ग्रह  
को पीवै। हे मनुष्य होतः तू भी यजन करि ॥६४॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव। य-  
त्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्तु वयथ्स्यो म पतयो रयीणाम् ॥६५॥

इति संहितायामेकादशोऽनुवाकः ११

इति श्री सुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहितायां  
दीर्घपाठे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

पूर्वस्य महिम्नो याज्या। प्रजापतेन त्वदेतान्यन्य इति होता यजतीति-  
२३ ५. २. २३ श्रुतेः। हिरण्यगर्भदृष्टा प्रजापतिदेवत्या त्रिष्टुप्। दशमे  
अध्याये २० अ. यजुर्मध्या व्याख्याता अत्रतुं ऋगियम् ॥६५॥

इति भाष्ये एकादशोऽनुवाकः ११

श्रीवेदार्थ प्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
पुमार्थाश्चतुरे देया धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः २३

श्री मच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनी शाखाध्येत व्याघ्र पादान्व-  
य विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जय किशोर देव वर्मात्मज ऐकमणेय  
नृपतिगिरि प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये आश्वमेधि  
कस्त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

हरिः ओम्  
गोनमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनेर्वह्निरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परंस्तुमः २४

अ. १

अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव आग्नेयो  
रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेष्पुधस्ताद्वन्वो राश्विनावधोरांमो  
बाह्वोः सौमायोषाः श्यामो नाभ्याथं सौर्ययामो श्वेत-  
श्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्टौ लोमशसंवथो सवथ्योर्वो-  
यव्यः श्वेतः पुष्ट इन्द्राय स्वपस्याप वेहर्द्वेष्वो वा-  
मनः ॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंगेन वेदभाष्ये समीर्यते

वेदनेत्रमितोऽध्यायो देवतापशुवाचकः २४

श्रुतिरूपमन्त्रा आश्वमेधिकानां पशूनां देवतासम्बन्धविधायिनोऽध्या-  
येनोच्यन्ते ॥ का. २०. ६. २-५. अग्निष्टेऽश्वतूपरगोमृगान्नियुनक्ति य-  
थोक्तमश्वदो देवताः यथाश्वस्तूपरोऽध्यायः पर्यङ्मानश्वेऽपञ्चदश-  
पञ्चदशरेहितादीन्सौर्यान्तानितरेषु ॥ तत्राश्वमेधे एकविंशतिर्यूपाः  
सन्ति तत्र मध्यमो यूपोऽग्निष्टसंज्ञः तत्र सप्तदश पशवो नियोजनीयाः  
तान्देवतासम्बन्धकथनपूर्वकमाह । अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः ।  
अश्वः तूपरः (शृङ्गोत्पत्तिकालेऽतीतेऽपि शृङ्गहीनः) गोमृगः (गवयः)  
एते प्राजापतिदेवताः ततः प्राजापतये जुष्टं नियुनज्मीति मन्त्रेण ब-  
न्धनीयाः । एवमग्रेऽपि यो यद्देवत्यः पशुः सः अमुष्मे जुष्टं नियुनज्मी-  
त्यादिमन्त्रैर्बन्धनीयः ॥ आग्नेयोऽग्निदेवतः कृष्णग्रीवः श्यामव-

एगलोऽजः अश्वस्य पुरस्तात् ललाटे उपायेन बन्धनीयः। हन्वीरथस्ता-  
त्सारस्वती मेघी बन्धः। आश्विनावधीरामौ अधोभागे सुक्तवर्णवज्रो-  
बाह्वोः अश्वस्य पूर्वपादयोरेकैकः। सोमपूषदेवत्यः श्यामः सुक्तकृष्ण-  
रोमाजोऽश्वस्य नाभ्यां बन्धः। श्वेतः कृष्णश्च सौर्ययामौ श्वेतः पशुः सूर्य-  
देवतो दक्षिणपार्श्वे बन्धः। यमदैवतः कृष्णोऽश्ववामपार्श्वे। त्वाष्ट्रोऽस्य  
वृद्धदेवतो लोमशसक्थो बहुरोमपुच्छिको पशुः अश्वस्य सक्थ्योऽसुर्वोः।  
आत्यदयोरेकैकः। वायव्यः श्वेतवर्णः पशुरश्वस्य पुच्छे। स्वपस्यायशो-  
भनकर्मणे इन्द्राय स्वपस्येन्द्रदेवता वेहतर्गमघातिनी वैष्णवो वाम-  
नः पशुश्च पुच्छेऽथैव अङ्गान्तरानुक्तेः॥ एवमश्वदिभिः सह पञ्चदश  
भवन्ति एते पर्यङ्का उच्यन्ते। अत्राश्वस्य शरीरं तरणाय तृवीफलवद्-  
ज्जुं बद्धागुम्फनीयम् ततः कृष्णग्रीवः आग्नेयो रराट् इत्यादयोऽश्व-  
स्य शरीरे यथोक्तस्थाने सम्बद्धायां रज्ज्वा बन्धनीयाः ततो रोहितो धूम्र-  
रोहित इत्यादयो द्वादशसंख्याकाः शितिबाहुरन्यन्तः शितिबाहुः समन्त-  
शितिबाहुस्ते बार्हस्पत्या इत्यन्ता मध्यमे एव यूपे नियोज्याः सप्तदशैव  
पशून्मध्ये यूपः आलभतः इति १३. ५. १. १५. श्रुतेः तत्र त्रयोऽश्वतूपर-  
गोमृगाः द्वौ चाग्नेयावेकादशिनौ द्वादश रोहितादयः एवं सप्तदश म-  
ध्यमे यूपे। ततः पृषती क्षुद्रपृषतीत्यादीनां श्वेताः सौर्या इत्यन्तानां १६  
शतत्रयसंख्याकानां पशूनां मध्ये पञ्चदश-पञ्चदश पशूनेकैकस्मिन् यू-  
पे युनक्ति। एवमितरेषु यूपेषु पञ्चदश-पञ्चदशैते पशवः एकैकश्चै-  
कादशिनः। एवं मध्यमयूपव्यतिरिक्तेषु विंशति यूपेषु षोडश-षोडश  
पशवो भवन्ति षोडश-षोडशैतरेष्विति १३. ५. १. १५. श्रवणात्॥ १॥

रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः  
शुकबभ्रुस्ते वारुणः शितिरन्ध्रोऽन्यतः शितिरन्ध्रः समन्त-  
शितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहु रन्यतः शितिबाहुः स-  
मन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थू-  
लपृषती ता मित्रावरुण्यः ॥२॥

रोहितः सर्वरक्तः धूम्ररोहितः धूम्रवर्णमिश्रो रक्तः तृतीयः कर्कन्धुरो-  
हितः बदरसदृशरक्तः ते त्रयः सौम्याः सोमदैवत्याः सोमाय जुष्टं नियु-  
नज्मीत्यादिमन्त्रेण प्रत्येकं मध्यमे यूपः एव नियोज्याः । ततो बभ्रुः क-  
पिलवर्णः अरुणबभ्रुः अरुणवर्णमिश्रः कपिलः शुकबभ्रुः शुकवर्ण-  
समवर्णः कपिलश्च ते त्रयो वारुणाः वरुणदैवत्याः मध्यमयूपः एव ।  
शिति कृष्णं रन्ध्रं छिद्रं यस्य स शितिरन्ध्रः अन्यतद्व्येकपार्श्वे शिति-  
रन्ध्रः एते सारस्वताः मध्यमे एव । शितिबाहुः श्वेतपूर्वपादः अन्यतः  
शितिबाहुः एकस्मिन्नेव पार्श्वे शितिपादः समन्तशितिबाहुः सर्वश्वेत-  
बाहुः शिती धवलमेचको एते बार्हस्पत्याः बृहस्पतिदैवत्याः मध्यमे  
एव ॥ ॥ अथ द्वितीययूपे । पृषती विचित्रवर्णविन्दुयुक्तशरीरा क्षुद्र-  
पृषती सूक्ष्मविचित्रविन्दुयुक्ता स्थूलपृषती स्थूलविचित्रविन्दुयुक्ता  
एते स्त्रीपशवो मित्रावरुण देवताः द्वितीये यूपे नियोज्याः ॥२॥

शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्तः आश्विनाः श्वेतः  
श्वेताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा अवलिप्ता  
रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥३॥

शुद्धवालः शुभ्रवालः सर्वशुद्धवालः मणिशुद्धवालः मणिवर्णकेशः

ते त्रय अश्विदैवत्याः द्वितीये । श्वेतः श्वेतवर्णः श्वेताक्षः श्वेतनेत्रः अर-  
णः रक्तः ते त्रयोरुभय पशुपतये पशुपतिरुद्रदेवता द्वितीये । कर्णस्त्र-  
यः पशुविशेषाः कर्णश्चन्द्रे च दृक्षेचेति विश्वोक्तेः कर्णश्चन्द्रसदृश  
श्वेत कर्णस्त्रयः पशवः बहुवचनस्य त्रित्वे पर्यवसानात् यामाः य-  
मदेवताः द्वितीये । अवलिप्ताः सगर्वास्त्रयो रौद्राः । एते द्वितीये पञ्च  
दश ॥ ॥ अथ तृतीये यूये । नभोरूपाः आकाशवन्नीलवर्णाः पर्जन-  
न्याः पर्जन्यदेवताः पशवस्तृतीये नियोज्याः ॥ ३ ॥

पृश्निस्तिरश्ची न पृश्नि रूर्ध्व पृश्निस्ते मारुताः फल्गूलोहितो-  
र्णी पलक्षी ताः सारस्वत्युः स्नीहाकर्णः शुण्डाकर्णः अद्या-  
लोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षः अजिसक्थ-  
स्तः ऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्तः उषसाः ॥ ४ ॥

पृश्निः विचित्रवर्णं तिरश्चीनानि पृश्नीनि विंदवो यस्य सः एवमूर्ध-  
नीनि पृश्नीनि यस्य सः ते त्रयो मारुताः मरुदेवतास्तृतीये । फल्गूः  
अपुष्टशरीरं लोहितोर्णी रक्तरोमवती पलक्षी श्वेता पलक्षशब्दो-  
वलक्षार्थः श्वेतपर्यायः तास्तिस्त्रोऽजाः सारस्वत्यः सरस्वतीदेवतास्त-  
ृतीये । स्नीहाकर्णः स्नीहा रोगविशेषः नद्युक्तो कर्णो यस्य स स्नीहाकर्णः  
अन्येषामपि दृश्यत इति पा० ६. ३. १३७. संहितायां दीर्घः शुण्डाकर्णः दू-  
स्वकर्णः अद्यालोहकर्णः रक्तवर्णकर्णः ते त्रयस्त्वाष्ट्राः त्वष्ट्रदेवतास्त-  
ृतीये । कृष्णग्रीवः शितिकक्षः श्वेतकक्षः अजिसक्थः अजि पुराणं  
सक्थोरूर्वोर्यस्य सः ते त्रय ऐन्द्राग्नाः इन्द्राग्निदेवताः तृतीये । पञ्च-  
दश पूर्णाः ॥ ॥ अथ चतुर्थे कृष्णाञ्जिः कृष्णपुण्ड्रः अल्पाञ्जिः महाञ्जिः अल्पम-

ञ्चि यस्य स तथा ते त्रय उषस्याः उषोदेवताश्चतुर्थे यूषे नियोज्याः ॥४॥

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्रयवयो वाचेऽविज्ञाता अदित्ये  
सरूपा धात्रे वत्सतुर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥५॥

विचित्रवणास्त्रिः स्त्रीपशवो वैश्वदेव्यः विश्वदेवदेवताश्चतुर्थे । रोहिण्यः  
रक्तवर्णाः त्रयवयः सार्धसंवत्सरास्त्रिः जावाचे वाग्देवताश्चतुर्थे । अप  
विज्ञाताः कृष्णाग्रीवादिचिह्नविज्ञानशून्यास्त्रयः पशवोऽदित्ये अदि-  
तिदेवताश्चतुर्थे । सरूपाः समानरूपास्त्रयः पशवो धात्रे धातृदेवताश्च  
तुर्थे । एवं पञ्चदश ॥ ॥ अथ पञ्चमे यूषे तिस्रो वत्सतयः बालद्वाग्यो  
देवानां पत्नीभ्यः तद्देवताः पञ्चमे ॥५॥

कृष्णाग्रीवा आग्नेयाः शितिभवो वसूनां रोहिता रुद्रा-  
णां श्वेता अवरोकिण आदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥६॥

कृष्णाग्रीवाः कालकण्ठास्त्रयः पशव आग्नेयाः अग्निदेवताः पञ्चमे ।  
शितिभवः श्वेतवर्णभूयुक्तास्त्रयो वसूनां वसुदेवताः पञ्चमे । रोहि-  
ताः रक्तवर्णस्त्रयः रुद्राणां रुद्रदेवताः पञ्चमे । श्वेताः अवरोकिणः  
अवलोकितः यद्वा अबाधस्ताद्वोकः छिद्रं येषां ते छिद्रं निर्व्यथनं  
रोकः ते त्रयः आदित्यानां तद्देवताः पञ्चमे ॥ ॥ अथ षष्ठे यूषे  
नभोरूपाः पार्जन्यास्त्रयः षष्ठे ॥६॥

उन्नत ऋषभो वामनस्तः ऐन्द्रो वेषावा उन्नतः शिति  
बाहुः शितिपृष्ठस्तः ऐन्द्रा बार्हस्पत्याः शुक रूपा बा  
जिनाः कल्माषा आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥७॥

उन्नतः उच्चः ऋषभः पुष्टः वामनः बहून्यपि वयसि गते रुद्रि-



रहितः ते त्रय ऐन्द्रा वैष्णावाः इन्द्रविष्णुदेवताः षष्ठे । उन्नतः शिति-  
बाहुः श्वेतपूर्वपादः शितिपृष्ठः श्वेतपृष्ठः ते त्रयः ऐन्द्रावार्हस्यत्याः  
इन्द्रबृहस्पतिदेवताः षष्ठे । शुकरूपाः शुकपक्षिसमवर्णाः त्रयोवा-  
जिनाः वाजिदेवताः षष्ठे । कल्माषाः कर्बुरास्त्रयः पशव आग्नि-  
मारुताः षष्ठे । एवं पञ्चदश ॥ ॥ अथ सप्तमे यूपे । श्यामाः शु-  
क्ल कृष्णवर्णाः पौषाः पूषदेवताः सप्तमे ॥ ७ ॥

एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा अग्नीषोमीया वामना अनड्वाह  
आग्नावैष्णावा वृशा मैत्रावरुणयोऽन्यत अन्यो मैत्र्यः ॥ ८ ॥  
एताः कर्बुरवर्णास्त्रय इन्द्राग्निदेवताः सप्तमे । द्विरूपाः वर्णद्वयोपे-  
तास्त्रयः अग्नीषोमीयाः अग्निसोमदेवत्याः सप्तमे । वामना अ-  
नड्वाहः त्रय आग्नावैष्णावाः अग्निविष्णुदेवत्याः सप्तमे । व-  
शाः बन्ध्याः तिस्रोऽजाः मैत्रावरुणयः तद्देवताः सप्तमे ॥ ॥ अथ  
ष्टमे यूपे । अन्यत अन्यः एकपार्श्वे कर्बुरवर्णस्तिस्रोऽजामैत्र्यः  
मित्रदेवत्याः अष्टमे ॥ ८ ॥

कृष्णाग्नीवा आग्नेया बभ्रवः सोम्याः श्वेता वायव्या  
अविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्प्यो देवानां  
पत्नीभ्यः ॥ ९ ॥

कृष्णाग्नीवा आग्नेयास्त्रयः अष्टमे । बभ्रवः कपिलवर्णास्त्रयः सो-  
म्याः सोमदेवत्याः अष्टमे । श्वेतास्त्रयः वायव्याः वायुदेवत्याः अ-  
ष्टमे । अविज्ञाताः चिन्हाविशेषेणाज्ञातास्त्रयः अदितिदेवत्याः अ-  
ष्टमे ॥ ॥ अथ नवमे । सरूपाः धातृदेवत्याः नवमे । वत्सतर्प्यः देव-

पत्नीदेवत्यास्तिस्त्रः नवमे ॥८५॥

कृष्ण भौमा धूम्रा अन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला  
वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥१०॥

कृष्णः भौमाः भूमिदेवत्यास्त्रयः नवमे । धूम्रवर्णस्त्रयः अन्तरि-  
क्षदेवत्याः नवमे । बृहन्तो महान्तस्त्रयः दिव्याः द्युदेवत्याः नव-  
मे ॥ ॥अथ दशमे। शबलाः कर्बुरास्त्रयः वैद्युताः विद्युदेवत्याः  
दशमे । सिध्माः सिध्मारव्यरोगवन्तस्त्रयः तारकाः नक्षत्रदेवत्याः  
दशमे ॥१०॥

अ० २ धूम्रान्वसन्ताया लभते श्वेतान्त्रीष्माय कृष्णान्वर्षाम्यो  
अरुणान्वरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥११॥

धूम्रवर्णान् त्रीनजान् वसन्ताय वसन्तदेवतानालभते निधुनक्ति  
दशमे । श्वेतान् त्रीन्त्रीष्माय दशमे । कृष्णवर्णान् त्रीन्वर्षाम्यः द-  
शमे ॥ ॥अथैकादशे। अरुणान् रक्तान् त्रीन् शरदे एकादशे ।  
पृषतः नानावर्णविन्दुयुक्तान् त्रीन् हेमन्ताय एकादशे । पिशङ्गान्  
लोहितमिश्रकपिलवर्णान् त्रीन् शिशिराय एकादशे ॥११॥

अवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिव-  
त्सा अनुष्टुभे तुर्यवाह उषिाहे ॥१२॥

सार्धसंवत्सरास्त्रयः गायत्र्यै एकादशे । सार्धद्विसंवत्सरास्त्रयः त्रिष्टु-  
भे एकादशे ॥ ॥अथ द्वादशे यूपे । दित्यवाहः द्विसंवत्सरास्त्रयो ज-  
गत्यै द्वा० । त्रिवत्साः त्रिवर्षाः त्रयोऽनुष्टुभे द्वा० । तुर्यवाहः सार्धत्रि-  
संवत्सरास्त्रय उषिाहे द्वा० ॥१२॥

पष्टवाहो विराजः उक्षाणो बृहत्याः ऋषभाः ककुभेः  
नङ्गाहः पङ्क्त्ये धेनवोऽतिक्षन्द्से ॥ १३ ॥

पष्टवाहः चतुःसंवत्सरास्त्रयो विराजे द्वा० । उक्षाणः सेचनसम-  
र्था युवानस्त्रयः बृहत्ये द्वा० ॥ ॥ अथ त्रयोदशे यूपे । ऋषभाः  
उक्षाणोऽप्यधिकवयस्काः त्रयः ककुभे त्रयोदशे । अनङ्गाहः शक-  
ट वहनसमर्था अजास्त्रयः पङ्क्त्ये त्रयो० । धेनवः नवप्रसूता  
अजास्तिस्त्रः अतिक्षन्द्से त्रयो० ॥ १३ ॥

कृष्णाग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्या उपध्वस्ताः सवित्रा व-  
त्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बह-  
रूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥ १४ ॥

अथ चातुर्मास्यदेवाः पशवः श्वेताः सौम्या इत्यन्ताः । तत्र प्रथमं वैश्व-  
देवपर्वपशव उच्यन्ते । कृष्णाग्रीवाः त्रयः आग्नेयाः त्रयो० । बभ्रवः क-  
पिलास्त्रयः सौम्याः ॥ ॥ अथ चतुर्दशे यूपे । उपध्वस्ताः उपध्वंसनम-  
धः पतनं तद्गुणविशिष्टा वर्णान्तरमिश्रिता वा त्रयः सवितृदेवताः  
चतु० । वत्सतर्यः तिस्रः सरस्वतीदेवताः चतु० । श्यामाः शृङ्गकृष्णाव-  
र्णाः पौष्णाः पूषदेवत्याः चतु० । पृश्नयः तनुकाया विचित्रवर्णा वा त्र-  
यो मरुदेवताः चतु० । बहुरूपास्त्रयो वैश्वदेवाः चतु० ॥ ॥ अथ पञ्च-  
दशे । वशाः वन्ध्यास्तिस्त्रो द्यावापृथिवीयाः द्यावापृथिवीदेवत्याः  
पञ्च ० ॥ १४ ॥

उक्ताः संचरा एता एन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मा-  
रुताः कायास्तूपराः ॥ १५ ॥

अथ वरुणप्रयासपर्वपशव उच्यन्ते । संचर शब्देन कृष्णाग्नीवा  
 आग्नेया इत्यादयः पूर्वकण्डि कोक्ताः पञ्चदश पशव उच्यन्ते  
 पञ्च संचराणि हवींषि भवन्तीति वत् यथा चातुर्मास्येषु चतु  
 र्ष्यपि पर्वसु आग्नेयादीनि पञ्च हवींषि समानानि एव मात्राणि  
 चतुर्णां पर्वणां सम्बन्धिनां आद्यानां पञ्चानां देवानामाद्या ए  
 ते पञ्चदश पशवः समाना एव भवन्ति । तेन संचरा उक्ताः आ  
 ग्नेयादयः पञ्चदश पशव उक्ता इत्यर्थः । आग्नेयाः कृष्णाग्नीवास्त्र  
 यः पञ्चदशे । सौम्याः बभ्रवस्त्रयः पञ्च० । सावित्रा उपध्वस्ता त्र  
 यः पञ्च० । सारस्वत्यः वत्सतर्यः तिस्रः पञ्च० ॥ ॥ अथ षोडशे ।  
 षोषणाः श्यामाः त्रयः षोडशे । ऐते संचराः उक्ताः । एताः कर्बुरास्त्र  
 य ऐन्द्राग्नाः इन्द्राग्निदेवताः षो० । पृश्नयः तनुशरीरास्त्रयः मारु  
 ताः षो० । त्रयः तूपराः निःशृङ्गाः कायाः कदेवताः षो० ॥ १५ ॥

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजाना लभते मरुद्भ्यः सांतपने  
 भ्यः सवात्यान्मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बक्षिहान्मरुद्भ्यः  
 क्रीडिभ्यः संहसृष्टान्मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशे । अथ साकमेधपशवः । प्रथमजान् मात्रा प्रथमग  
 र्भे जातान् त्रीन् अजान् अनीकवते अनीकवद्गुणविशिष्टायाग्नये  
 आलभते नियुनक्ति सप्त० । वातसमूहो वात्या तथा सह वर्तन्त इ  
 ति सवात्याः वातमण्डलीमध्यस्थान् त्रीनजान् सांतपनेभ्यः मरु  
 द्भ्यः सप्त० । बक्षिहान् चिरप्रसूतान् त्रीनगृहमेधिभ्यो मरुद्भ्यः स  
 प्त० । संसृष्टान् सहसृष्टान् त्रीन् क्रीडिभ्यो मरुद्भ्यः सप्त० । अनु

सृष्टान् अनु क्रमणेजातान् त्रीन् स्वतवड्यो मरुद्भ्यः सप्त ॥ १६ ॥

उक्ताः संचरा एता ऐन्द्राग्नाः शशुङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वै-  
श्वकर्मणाः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशे यूपे महाहविः पशवः कृष्णग्रीवादयः पञ्चदश पूर्व-  
वत् ॥ ॥ अथैकोनविंशतितमे एताः कर्बुरास्त्रय ऐन्द्राग्नाः एकोन ॥

शशुङ्गाः संहितायां दीर्घः प्रकृष्टशृङ्गयुक्ता माहेन्द्रदेवताः एकोन ॥  
बहुरूपास्त्रयो वैश्वकर्मणाः विश्वकर्मदेवताः एकोन ॥ १७ ॥

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणां सोमवता बभ्रवो धूम्रनी-  
काशाः पितृणां बर्हिषदा कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृ-  
णामग्निधातानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥ १८ ॥

अथ पित्र्येष्टि देवतापशवः । धूम्राः कृष्णवर्णमिश्रा लोहितवर्णाः  
बभ्रुनीकाशाः कपिलवर्णसहस्रास्त्रयः पशवः सोमवता पितृणां  
नियोज्याः एकोन ॥ बभ्रवः कपिलाः धूम्रनीकाशाः धूम्रा इव नित-  
रां काशान्ते इति तादृशास्त्रयः बर्हिषदा पितृणामेकोन ॥ ॥ अ-  
थ विंशे यूपे । कृष्णाः बभ्रुनीकाशाः अग्निधातानां पितृणां विंशे ।  
कृष्णाः पृषन्तः विन्दुयुक्ताः त्रैयम्बकाः त्र्यम्बकदेवताः विंशे ॥ १८ ॥

उक्ताः संचरा एताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः  
सौर्याः ॥ १९ ॥

अथ शुनासीरीयपशवः । तत्र संचराः आग्नेयादयः पञ्चदशोक्ताः ।  
तेन कृष्णग्रीवा आग्नेयाः विंशे । बभ्रवः सौम्याः विंशे । उपध्व-  
स्ताः सावित्राः विंशे ॥ ॥ अथैकविंशे यूपे । वत्सतयः सारस्वत्यः ए-

कविंशे । श्यामाः पौष्णाः एक० । एताः कर्बुराः शुन्नासीरीयाः शुन्ना-  
रदेवताः एक० । श्वेताः त्रयो वायव्याः वायुदेवत्याः एक० । श्वेताः त्रयः  
सौर्याः सूर्यदेवताः एक० ॥ एवं समाप्ताः यूपाः इत्यश्वाद्याः सौर्यान्ताः  
सप्तविंशत्यधिकशतत्रयं ३२० ग्राम्याः पशवः सर्वे उक्ताः ॥ १६ ॥

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्  
षोभ्यस्तितिरीञ्छुरदेवर्तिका हेमन्ताय ककराञ्छि शि-  
राय विककरान् ॥ २० ॥

अथारण्याः पशव उच्यन्ते ॥ का० २० ६६ कपिञ्जलादीन्पृषतान्ता-  
स्त्रयोदश-त्रयोदश यूपान्तरेषु । अत्रैकविंशतिर्यूपाः तेषां यूपानां  
विंशतिरन्तरालानि तेष्वन्तरालेषु अन्तरालोत्पत्तिक्रमेण कपिञ्ज-  
लादयस्त्रयोदश-त्रयोदश पशव आलम्बनीयाः । अत्र यूपान्तरा-  
लेष्वारण्यपशूनां बन्धनोपाय उक्तो मानवसूत्रे नाडीषु लुघिमश-  
कान् कराण्डेषु सर्पान् पञ्जरेषु मृगव्याघ्रसिंहान् कुम्भेषु मकरम-  
त्स्यमण्डूकान् जालेषु पक्षिणः कारसु हस्तिनो नौषु चोदकानि  
यथार्थमितरानिति । ये पशवो येनोपायेन यूपान्तरालेषु तिष्ठन्ति  
ते तेनोपायेन स्थापनीया इति तात्पर्यम् ॥ अत्र येषामारण्यजीववा-  
चिपदानामर्थो न ज्ञायन्ते ते निगमनिरुक्तनिघण्टुव्याकरणोत्सा-  
दितृत्यभिधानग्रन्थेभ्यो विलोक्यावगन्तव्याः आटवीकेभ्यश्च  
लक्षणीयाः ॥ तत्र प्रथमोत्पत्ते यूपान्तराले त्रीन्कपिञ्जलान्  
सन्ताय आलभते नियुनक्ति । त्रीन्कलविङ्कान् चटकान् ग्रीष्मा-  
य । तितिरीन् त्रीन्षोभ्यः । वर्तिकाः पक्षिविशेषान् शरदे । त



तस्त्रयाणां ककाराणां मध्ये एकं ककारं हेमन्ताय ॥ ॥ अथ द्वितीये-  
ऽवकाशेशिष्टौ द्वौ ककारौ पक्षिविशेषौ हेमन्ताय । त्रीन्विककारान् शि-  
शिगय ॥ २० ॥

अ० ३ समुद्राय शिशुमारनालभते पर्जन्याय मण्डूकान्द्रो म-  
त्स्यान्मित्राय कुलीपयान्वरुणाय नाक्रान् ॥ २१ ॥

त्रीन् शिशुमारान् जलचरजन्तून्समुद्रायालभते । त्रीन्मण्डूकान्भो-  
कान्यर्जन्याय । त्रयाणां मत्स्यानां मध्ये द्वौ अद्भ्यः ॥ ॥ अथ तृतीया-  
ऽवकाशे एकं शिष्टं मत्स्यमद्भ्यः । त्रीन्कुलीपयान् जलजान्मित्राय ।  
त्रीन्नाक्रान् नक्रा एव नाक्रास्तान् जलचरान् वरुणाय ॥ २१ ॥

सोमाय ह्रस्वं सानालभते वायवे वलाका इन्द्राग्निभ्यां  
कुञ्चान्मित्राय मधून्वरुण चक्रवाकान् ॥ २२ ॥

त्रीन् हंसान्सोमाय । तिस्रो वलाकाः वकपत्नीः वायवे ॥ ॥ अथ चतुर्थे-  
ऽवकाशे । त्रीन् कुञ्चान्यक्षिणः इन्द्राग्निभ्यां । त्रीन्मधून् जलकाका-  
न्मित्राय । त्रीन् चक्रवाकान्वरुणाय ॥ २२ ॥

अग्नये कुटूरानालभते वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमा-  
भ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान्मित्रावरुणाभ्यां कपो-  
तान् ॥ २३ ॥

त्रीन्कुटूरान् कुक्कुटानग्नये । ततस्त्रयाणामुलूकानां मध्ये ए-  
कमुलूकं वनस्पतिभ्यः ॥ ॥ अथ पञ्चमेऽवकाशे द्वौ उलूकौ क-  
कवेरिणौ । त्रीन् चाषानग्नीषोमाभ्यां त्रीन्मयूरानश्विभ्यां त्रीन्कपो-  
तान्मित्रावरुणाभ्याम् ॥ २३ ॥

सोमाय लवानालभते त्वष्ट्रे कीलीकान्गोषादीर्देवान्  
पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारु-  
ष्णान् ॥२४॥

त्रयाणां लवानां लावकानां मध्ये द्वौ सोमाय ॥ ॥ अथ षष्ठेऽव-  
काशे एकं लवं सोमाय । कीलीकान्यक्षिणः त्वष्ट्रे । तिस्रो गोषादीः  
गवं सादयित्रीः पक्षिणीः देवानां पत्नीभ्यः । तिस्रः कुलीकाः पक्षिणीः  
देवजामिभ्यः देववधूभ्यः जामिस्वस्त्यकुलस्त्रियोः । त्रीन्यारुणासंज्ञा-  
नगृहपतयेऽग्नये ॥२४॥

अद्वे पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः संधिभ्यो  
जतूर्मासेभ्यो दात्योहान्तसंवत्सराय षडृतः सुपर्णान् ॥२५॥  
अथ सप्तमेऽवकाशे । त्रीन्यारवतान्कलरवानद्वे तिस्रः सीचापूः पक्षि-  
णीः रात्र्यै तिस्रो जतूः पात्रारव्याः पक्षिणीः अहोरात्रयोः संधिभ्यः । त्रीन्दा-  
त्यूहान् कालकण्ठान्मासेभ्यः त्रयाणां महतां सुपर्णानां मध्ये एकं सं-  
वत्सराय ॥ ॥ अथाष्टमेऽवकाशे द्वौ महान्तौ सुपर्णौ संवत्सराय ॥२५॥

भूम्याऽआखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्तान्दिवे कशादि-  
ग्भ्यो नकुलान्बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥२६॥

भूम्यै आखून्मूषकान् त्रीन् पाङ्क्तान् मूषकजातिविशेषानन्तरिक्षा-  
य कशां तद्वेदानेव दिवे त्रीन्कुलान्दिग्भ्यः तत्र द्वौ अष्टमे ॥ ॥ अथ  
नवमे एकम् । त्रीन्बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥२६॥

वसुभ्य ऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरुतादित्येभ्यो न्यङ्कुन्विभ्यो  
भ्यो देवेभ्यः पृषतान्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥२७॥

त्रीनृष्यान् वसुभ्यः ऋष्यादयो मृगविशेषाः । रुद्रेभ्यः रुरुन् । त्री-  
न्यङ्कुनादित्येभ्यः ॥ ॥ अथ दशमेऽवकाशे त्रीनृषतान्विश्वेभ्यो  
देवेभ्यः त्रीन्कुलङ्गान् साध्येभ्यः ॥ २७ ॥

ईशानाय परस्वत आलभते मित्राय गौरान्वरुणाय म-  
हिषान्वहस्पतये गवयस्त्वष्ट्रजघ्नीन् ॥ २८ ॥

परस्वतः मृगविशेषानीशानाय । त्रीनगौरान्वमृगान्मित्राय त्रीन्महि-  
षान्वरुणाय तत्रैकं दशमे ॥ ॥ अथैकादशेऽवकाशे द्वौ महिषौ त्री-  
न्याजयान्गोमृगानारण्यपशून्वहस्पतये त्रीनुष्टान्त्वष्ट्रे ॥ २८ ॥

प्रजापतये पुरुषान्वस्तिन आलभते वाचे सुषींश्चक्षुषे  
मशकान्वोत्राय भृङ्गाः ॥ २९ ॥

प्रजापतये पुरुषान्वस्तिनः त्रीन् । त्रीन्सुषीन्चक्रतुण्डान्वाचे तन्मध्ये  
द्वौ सुषी एकादशे ॥ ॥ अथ द्वादशेऽवकाशे एकं सुषिम् । त्रीन्मश-  
कान् चक्षुषे । त्रयो भृङ्गाः ओत्राय नियोज्याः ॥ २९ ॥

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेघो य-  
माय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रेहिदृष-  
माय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्तिका नीलंगोः कृमिः स-  
मुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥ ३० ॥

प्रजापतये च वायवे च एको गोमृगः गवयः । एक आरण्यो मेघो व-  
रुणाय । एकः कृष्णो मेघो यमाय । एको मर्कटः मनुष्यराजाय । ए-  
को रेहिदृष्यः शार्दूलाय । एका गवयी ऋषभाय तदारव्यदेवाय ॥  
॥ अथ त्रयोदशेऽवकाशे एकावर्ति क्षिप्रश्येनाय देवाय । एकः कृमिः

कीटः नीलंगोः नीलंगवे । शिशुमारः एको जलचरः समुद्राय ।  
हस्ती हिमवते ॥३०॥

अ०४ मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्षणो वृषदंशस्ते धात्रे दिशं  
कङ्को धुङ्गाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते  
त्वाष्ट्रा वाचे कुञ्चः ॥३१॥

मयुः प्राजापत्यः तुरगवदनः किंनरः प्राजापतिदेवतः । उलो मृगवि-  
शेषः हलिक्षणः सिंहविशेषः वृषदंशो विडालः ते त्रयो धात्रे एकः  
कङ्कः वकः दिशं दिग्भ्यः । एका धुङ्गा पक्षिणी आग्नेयी अग्निदेव-  
त्या । कलविङ्कः चटकः लोहिताहिः रक्तवर्गसर्पः पुष्करसादी पुष्क-  
रे सीदतीति कमलभक्षी पक्षिविशेषः ते त्रयः त्वाष्ट्राः त्वष्ट्रदेवताः  
॥ अथ चतुर्दशोऽवकाशे एकः कुञ्चः वाचे ॥३१॥

सोमाय कुलङ्गः आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः  
क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिबो न्यङ्कुः ककदस्ते  
ऽनुमत्ये प्रतिश्रुत्वाये चक्रवाकः ॥३२॥

कुलङ्गः कुरङ्गो हरिण एकः सोमाय । आरण्यो वनजोऽजश्छागः न-  
कुलः शका शकुन्तिः ऐते त्रयः पौष्णाः पूषदेवत्याः । क्रोष्टा शृगालो  
मायोर्देवस्य । एको गौरमृगः इन्द्रस्य । पिबो मृगविशेषः न्यङ्कुः अ-  
पि कक्कटः स एव ते त्रयोऽनुमत्ये । चक्रवाकः प्रतिश्रुत्वाये ॥३२॥

सोरी बलाका शार्गः सृजयः श्याण्डकस्ते मैत्राः सर-  
स्वत्येः शारिः पुरुषवाक् आविद्वौमो शार्दूलो वृकः पृदा  
कुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥३३॥

बलाका वकस्त्री सूर्यदेवत्या । शार्ङ्गः पक्षिविशेषः ॥ ॥ अथ पञ्चद-  
शोऽवकाशे सृजयः पक्षिविशेषः शयाण्डकोऽपि ते मैत्राः मित्रदेव-  
त्याः पुरुषवाक् मनुष्यवद्वादिनी शारिः शुकी सरस्वत्यै । श्वावित्  
सेधा भौमी भूदेवत्या शार्ङ्गलो व्याघ्रः वृकः चित्रकः पृदाकुः सर्पः  
ते त्रयो मन्यवे । पुरुषवाक् शुकः सरस्वते समुद्राय ॥ ३३ ॥

सुपर्णः पर्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पत-  
ये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः स्रवो मद्गुर्मत्स्य-  
स्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ ३४ ॥

सुपर्णः गरुत्मान्पर्जन्यः पर्जन्याय आतिः आडी वाहसः दर्विदा का-  
ष्ठकुट्टः ते त्रयः पक्षिविशेषाः वायवे । बृहस्पतये वाचस्पतये वाचो  
वाण्याः पतये इति बृहस्पतिविशेषणम् ईदृशाय बृहस्पतये पैङ्गरा-  
जः पक्षिविशेषः ॥ ॥ अथ षोडशोऽवकाशे । अलजः पक्षिविशेषः  
आन्तरिक्षः अन्तरिक्षदेवतः । स्रवः जलपक्षी मद्गुः कारण्डवः म-  
त्स्यः ते नदीपतये । कूर्मः कछपः द्यावापृथिवीयः द्यावापृथिवीदेवतः ॥ ३४ ॥

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पती-  
नां हकवाकुः सावित्रो हर्षसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीप-  
यस्तेऽकूपारस्य द्वियै शाल्यकः ॥ ३५ ॥

पुरुषमृगः पुंमृगः चन्द्रमसः । गोधा कालका पक्षिविशेषः दार्वाघा-  
टः सारसः ते वनस्पतीनाम् । हकवाकुः ताम्रचूडः सावित्रः सवितृ  
देवतः हंसः वातस्य नाक्रः मकरः कुलीपयः ते त्रयो जलचरविशे-  
षाः अकूपारस्य समुद्रस्य त्रपाणं मध्ये द्वौ षोडशौ ॥ अथ सप्त

दःवकाशे एकः कुलीपयः अकूपारस्य । शाल्यकः श्वाविन् द्विये  
देव्ये ॥३५॥

एण्यन्ते मण्डूको मूषिका तिन्निरिस्ते सर्पणा लोपास  
आश्विनः कृष्णो रात्र्याः ऋक्षो जतूः सुषिलीका तद्भूत  
रजनानां जहका वैष्णवी ॥३६॥

एणी मृगी अन्हः आलभ्या । मण्डूको मूषिका तिन्निरिः ते त्रयः स  
र्पाणाम् । लोपाशो वनचरविशेषः आश्विनः अश्विदेवतः । कृष्णो  
भृगः रात्र्ये । ऋक्षः भल्लूकः जतूः सुषिलीका एते पक्षिविशेषोते  
त्रयः इतरजनानां देवानाम् । जहका गात्रसंकोचनी वैष्णवी विष्णु-  
देवत्या ॥३६॥

अन्यवापोऽर्धमासानां मृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वीणा-  
मपासुद्रो मासां कश्यपो रोहितकुण्डुणाची गोलत्तिका ते  
अप्सरसां मृत्युदेऽसितः ॥३७॥

अन्यवापः कीकिलारव्यः पक्षिविशेषोऽर्धमासानां पशुः ॥ अथा-  
द्यादशेऽवकाशे । ऋष्यो मृगविशेषः मयूरः बही सुपर्णो गरुत्मान्  
ते गन्धर्वीणां पञ्चावः । उद्रः जलचरः कर्कटसंज्ञः अपां पशुः । क-  
श्यपः कश्यपः मासां मासानाम् । रोहितः ऋष्यः कुण्डुणाची वनचरी  
विशेषः गोलत्तिकापि ते त्रयोऽप्सरसाम् । असितः कृष्णः पशुर्मृ-  
त्युदे ॥३७॥

अर्धहर्षतुनामारवुः कशी मान्या लस्ते पितृणां बला-  
याजगरो वसूनां रुषिजलः कपोतः उलूकः प्राशस्ते



निर्ऋत्ये वरुणयारण्यो मेषः ॥३८॥

वर्षाहः वर्षाभूः भेकी ऋतूनाम् । आखुः मूषकः कशः मान्थाल-  
श्च तद्विशेषो ते त्रयः पितृणाम् ॥ ॥ अथैकोनविंशे । अजगरे  
महासर्पः बलाय । कपिञ्जलो वसूनाम् । कपोतः उलूकः शशः ते  
निर्ऋत्ये । आरण्यो मेषो वरुणाय ॥३८॥

श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान्वाध्रीनसस्ते मत्याः अर-  
ण्याय सृमरो रुरुः रेंद्रः कयिः कुटरुर्दात्यो हस्ते वाजिनां  
कामाय पिकः ॥३९॥

श्वित्रः श्वेतः पशुरादित्यानाम् । उष्ट्रः दीर्घग्रीवः घृणिवान् तेजस्वी  
पशुविशेषः संहितायां घृणिशब्ददीर्घः वाध्रीनसी कण्ठे स्तनवा-  
नजः ते त्रयो मत्ये देव्ये । सृमरः गवयो अरण्याय देवाय । रुरुः मृगः  
रेंद्रः रुद्रदेवतः कयिः पक्षिविशेषः ॥ ॥ अथ विंशेऽवकाशो कु-  
टरुः कुककुटः दात्याहः कालकण्ठः ते त्रयो वाजिनां देवानाम् ।  
पिकः कोकिलः कामायः ॥३९॥

खड्गो वैश्वदेवः आ कृष्णः कर्णे गर्दभस्त रक्षुस्ते रक्ष-  
सामिन्द्राय सूकरः सिंध्यहो मारुतः कंकलासः पिप्पका  
शकुनिस्ते शरख्याये विश्वेषां देवानां पृषतः ॥४०॥

इति संहितायां चतुर्थेनुवाकः ४

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहिता-  
यां दीर्घपाठे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

खड्गो मृगविशेषो विश्वदेवदेवतः । एकः कृष्णः आ सारमेयः द्वि-

तीयः कर्णे लम्बकर्णे गर्दभः तृतीयस्तरक्षुः मृगादनः ते त्रयो र-  
क्षसां पशवः । सूकरः इन्द्राय । सिंहो मारुतः मरुद्देवतः । कृकला-  
सः सरदः पिप्यका पक्षिणी शकुनिः पक्षी ते त्रयः शरव्याये । एकः  
पृषतः मृगविशेषो विश्वेषां देवानां पशुर्मवति विश्वेभ्यो देवेभ्यो  
जुष्टं वियुनज्मीतियोज्यः ॥ ॥ एवं षष्ठ्यधिकं शतद्वयशरणा  
पशव उक्ताः ॥ ॥ अत्र द्वाविंशति रेकादशिनः २२ सप्तविंशत्यधिका-  
नि त्रीणि शतानि अश्वाद्यः सौर्यान्ताः ३२७ षष्ठ्यधिकं शतद्वयं  
कपिल्ललाद्यः पृषतान्ता आरण्याः पशवः २६० सर्वे मिलित्वा ष-  
ट् शतानि नवाधिकानि पशवो भवन्ति ६०६ । लोकश्च षट् श-  
तानि नियुज्यन्ते पशूनां मध्यमेऽहनि अश्वमेधस्य यज्ञस्य  
नवभिश्चाधिकानि चेति ॥ तेऽन्वारण्याः सर्वे उत्सृष्टव्या न तु  
हिंस्याः ॥ ४० ॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये चतुर्थोऽनुवाकः ४

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्याश्चतुरो देया इमे पुत्रो युधिष्ठिरः २४

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शारवाध्ये तद्व्याघ्रपादान्वय  
विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मज रोक्मिणेयनृ-  
पति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्येऽश्वमेधप्र-  
करणे देवतासम्बन्धविधायि पशुवर्णनो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः  
२४ ॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं हिरूपं च साधनैर्वद्गरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं तु मः २

अ. १ शादं दक्षिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बर्से सौ गान्दं श्रुम्यां  
 सरस्वत्याः अग्रजिह्वं जिह्वाया उत्सादमवक्रन्देन ता-  
 लु वाजुर्हं हनुम्यामप आस्पेन दृषणमाण्डाभ्यामादि-  
 त्यां शमश्रुभिः पन्थानं भुभ्यां द्यावापृथिवी वर्तोभ्यां वि-  
 द्युते कनीनकाभ्यां श्रुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा  
 पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि  
 पार्या इक्षवः ॥ १ ॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

पञ्चविंशोऽयमध्यायो वार्यते वाजिमेधिकः ३५

का. २०. ८. ४. ५. वनस्पतियागके अनन्तर सिष्टकृद्यागसै पूर्वशूल  
 विषे अपित मांस को प्रजापति + के अर्थ होमिके अमुष्मे स्वाहेति  
 शादादित्वगन्त १-४. देवताओं और अश्वके अङ्गों के अर्थ घृतहो-  
 में अनादेशे घृतस्योक्तत्वात् । और अग्निर्हं हृदये नेत्यादि विश्वे  
 भ्यो देवेभ्यः स्वाहेत्यन्ता ३४. ८-१३. आहुतियें भी होमें अश्वमेध-  
 त्वात् तत्राग्निर्हं हृदये नेत्यादि पुरीतदित्यन्ता ३४. ८. ४. देवताओं  
 र अश्वङ्ग हैं ततः लौमभ्यः स्वाहेत्यादि द्यावापृथिवीभ्यां स्वा

+ अनादेशे पत्योऽश्व इति वचनात्

हेत्यन्ता १०-१३ प्रायश्चित्ताहुतयो द्विचत्वारिंशत् ॥ तत्र शादं दद्वि-  
 रित्यादि-पृथिवीं त्वचेत्यन्तः संहिता भागो ब्राह्मणं न मन्त्राः १-२०  
 यजूर्ध्वि । शादादयो देवाः दन्ताद्यङ्गानि । ततः चतुर्गृहीत आज्य  
 कोले-लेकर शादाय स्वाहा दद्विः स्वाहेत्यादि पृथिव्ये स्वाहेत्यन्तं जु-  
 हुयादित्येकः पक्षः शाखान्तरोदितः । शादं दद्विः ग्रीणामि स्वाहेत्या-  
 दि होम मन्त्राः । देवता भोक्त्री द्वितीयया निर्दिश्यते अश्वद्भ्यः भोग्यं  
 तृतीयया करणविभक्त्या निर्दिश्यते । कचित्केवला देवतैव यथा  
 शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहेति क्वचिदन्यविभक्त्येव द्रव्यदेवतयो  
 निर्देशः यथा अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिति । तथा च श्रुतिः  
 १३.३.५.१ शादं दद्विरवकां दन्तमूलैरित्याज्यमवदानानि कृ-  
 त्वा प्रत्याख्यायं देवताभ्य आहुतीर्जुहोति या एव देवता अपि भागा-  
 स्ता भागधेयेन समर्धयतीति । अस्यायमर्थः । शादं नाम देवमश्व-  
 स्य दद्विर्दन्तैः प्राणामीति शेषः स्वाहाकारो दानार्थः । ततश्च शा-  
 दं दद्विः ग्रीणामि स्वाहेति एवमन्यान्यपि यांज्यानि । आज्यमव-  
 दानानि कृत्वा आज्यमेवाश्वद्भ्यत्वेन परिकल्प्य प्रत्याख्याय-  
 मवदानमवदानं प्रति शादादिदेवता आख्यायाख्यायाज्याहु-  
 तीर्जुहोति संकल्पिताश्वद्भ्यभावा घृताहुतीः शादादिभ्यो ददाति  
 एवं कुर्वन्नपि भागाः कल्पितभागास्ता भागेन समर्धयति ग्रीणा-  
 तीत्यर्थः ॥ अथ संहितार्थः । अश्वके दान्तो करि शाद देवताको  
 ग्रीणामि नृत्तकरताहं । दांतो कीजड करि अश्वका देवताको ग्री-  
 णान्तो कीपीठि करि मृददेव । दंष्ट्राश्वो करि जेगा दे । जिह्वाके अ-

ग्र करि सरस्वती दे०। जिह्वा क० उत्साद दे०। तालु० अवक्रन्द०। हनु-  
 ओं (वक्त्रैक देश०) वाज०। मुख० आपो०। अण्डो (वृषणों) वृषण०।  
 श्रमश्रुओं (मुखकेशों) आदित्यों०। भ्रूओं (ललाट गरोम पङ्क्तिओं) पश्या-  
 न०। वर्तुओं (पक्ष्मपङ्क्तिओं) द्यावापृथिवी०। कनीनकाओं (नेत्रकी पु-  
 तली) विद्युत०। शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा देवोद्देश एव नत्वङ्गम्  
 शुक्लाय कृष्णाय देवाय सुहुतमस्तु यद्वा चतुर्थ्याश्वाङ्गमेव निर्दिश्य-  
 ते प्राजापत्योऽश्व इति वचनाद्देवोऽध्याहर्तव्य शुक्ल और कृष्ण अश्वके  
 अङ्ग करि प्राजापतिको प्री० एवं लोमभ्यः स्वाहेत्यादावपि बोध्यम् ३४-  
 १०-१३। पक्ष्मों (नेत्रोपरिलोमों) ऊपर के पलक की विरूपनियों०। पार०। इ-  
 क्षुओं (नेत्राधोभागरोमों) नीचे के पलक की विरूपनी०। अवार०। विपरी-  
 तं वा अवार्याणि (अवार देवत्यानि) पक्ष्माणि इक्षवं पार्थाः (पार देवत्याः) ॥१॥

अ० २ वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाम मधरेणोष्ठेन स-  
 दुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्ये निवेश्य मूर्ध्ना  
 स्तनयितुं निर्बाधेनाग्निं मुस्तिष्केण विद्युतं कनीन-  
 काभ्यां कर्णाभ्यांश्च श्रोत्रंश्च श्रोत्राभ्यां कर्णौ नेदनीम-  
 धर कण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिष्ठ  
 शीष्णा निर्वृतं निर्जर्जल्येन शीर्ष्णा संक्रोशेः प्राणानि  
 व्याणं सुपेन ॥२॥

अश्वकी प्राण वायु करि वातको प्री०। अपान वायु० नासिकासंज्ञक  
 हो देवताओं०। नीचे के ओष्ठ० उपयाम दे०। ऊपर के ओष्ठ० सत्संज्ञक  
 दे० प्रकाश (ऊपर के देह की कान्ति) अन्तर दे०। नीचे के देह की का-

नि० बाह्यदे० मस्तक० निवेष्ट्य०। शिरो० स्थिमध्यसंलग्नमज्जाभाग०  
 स्तनयिन्तु०। शिरोमध्यस्थजर्जरमांसभाग(मस्तकमज्जा +)० अश  
 नि० कनीनकाओं० विद्युत०। कर्णों(कर्णशङ्कुलीओं)० श्रोत्र(अत्राश्रय  
 ज्वात्मिकएवदेवता)० श्रोत्रेन्द्रियों० कर्णों०। कण्ठधोभाग० नेदनीदे०।  
 कण्ठकेनिर्मासदेश० आपदे०। मन्या(ग्रीवाकेपीछेकीनाडियों)० चि  
 त्त०। शिर० अदिति०। नितरजर्जरीभूतशिरभाग० निर्वृति०। संक्रोशों  
 (चलतेहुएअश्वकेबोलनेवालेअङ्गों)० प्राणदेवताओं०। स्तुप्(शिरवा  
 भूतअङ्ग)० रेष्माण०॥२॥

अ० ३ मशकान्केशैरिन्द्रं स्वपसा वहैन बृहस्पतिर्हं शकुनि  
 सादेन कूर्मोऽष्टफैराक्रमणं स्थूराभ्यामृक्षलाभिः क  
 पिञ्जलाञ्जवं जङ्घाम्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेना  
 रण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं रोभ्यामश्विनावर्धसाभ्या  
 म् रुद्रं रोग्भ्याम्॥३॥

केशों(स्कन्धरेमों)० मशकदेवताओं०। वह(स्कन्ध)० इन्द्र०। कैसेवहक  
 रिकिस्वपसाशोभनहैअप० कर्मस्पर्शाधारणनखहनादिकजिस  
 का। शकुनि(पक्षीवत्)साद(गमन)वेगवत्कूटनातिसकरिबृहस्पति०  
 खुरों० कूर्मदेवताओं०। गुल्फों०। आक्रमण०। अक्षलाओं(गुल्फाधःस्थाना  
 डियों)० कपिञ्जलदेवताओं०। जङ्घाओं(गुल्फजानुओंकेमध्यभाग)०  
 जब०। बाहुओं(अगिलेपैरकीजानुओंकेऊर्ध्वभाग)० अध्वान०। जाम्बी  
 र(जम्बीरतरुकेफलसदृशजानुमध्यभाग)० अरण्य०। अत्यन्तरो  
 चमानों(जानुदेशों)० अग्नि०। कर्णों(अगिलीजानुओंकेअधोदेशों)०



पूषा ० अंसो (स्कन्धो) ० अश्विनी कुमारो ० रोरी (अंसग्रन्थिग्री) ० रुद्र ॥ ३ ॥

अ० ४ अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य च  
तुथ्येदित्ये पञ्चमीन्द्राण्ये षष्ठी मरुतां सप्तमी बृह-  
स्पतेरष्टम्युर्यमणे नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्येकादशी व-  
रुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥ ४ ॥

अत्र षष्ठ्या देवतोद्देशः प्रथमयाङ्गोद्देशः ततोऽस्त्वित्यध्याहारः । अ-  
ग्नेः देवस्य पक्षतिरस्तु । पक्षः साध्यविरोधयोः बले काले पतत्रे च रु-  
चौ पार्श्वे प्रकल्पिते इत्यभिधानोक्तेरत्र पक्षः पार्श्ववाची पक्षस्य मूलं  
पक्षतिः पक्षातिरिति पा० ५ २ २५ मूलार्थे तिगत्ययः ततः पक्षस्य पा-  
र्श्वस्य मूलभूतान्यस्थीनि बङ्क्रिशब्दवाच्यानि पक्षतिशब्देनोच्य-  
न्ते तानि च प्रतिपार्श्वं त्रयोदश भवन्ति षड्विंशतिरश्वस्य बङ्-  
क्रय इति श्रुतेः कौषीत० ब्रा० १० ४ ॥ तेषां क्रमेण देवतासम्बन्धं  
वक्तिः । तत्रादौ दक्षिणपार्श्वस्था देवता आह अग्नेः पक्षतिः ।  
दक्षिणपार्श्वका पहिला अस्थि अग्निदेवता का हो विभक्तित्यत्ययो  
वा पक्षति करि अग्नि देवता को प्रीणामि नृप करता हूं । निपक्षति  
द्वितीया पक्षति वायु देवता ० । तृतीया पक्षति इन्द्रस्येत्यादीनि स्पष्टा-  
नि ॥ ४ ॥

अ० ५ इन्द्राग्नयोः पक्षतिः सरस्वत्ये निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीया-  
या चतुर्थी निर्वृत्ये पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणां  
७ सप्तमी विष्णोरष्टमी पूषणो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्र-  
स्येकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्ये त्रयोदशी धावापु-

पि॒त्र्योर्दक्षि॑ण॒पार्श्वे॑ वि॒श्वेषां॑ दे॒वाना॑मु॒त्तर॑म् ॥ ५ ॥

अथ वामपार्श्वस्थं देवानाह । प्रथम (उपरिस्थ) वामपार्श्वस्थ इन्द्राग्नि देवताओं का हो । द्वितीया पक्षति सरस्वती का हो इत्यादि स्पष्टानि ॥  
अथ समस्तयोः पार्श्वयोर्देवानाह - दक्षिणपार्श्व द्यावा पृथिवी का हो । उत्तर वामपार्श्व सब देवताओं का हो ॥ ५ ॥

अ० ६ म॒रुता॑थ॒ स्कन्धा॑ वि॒श्वेषां॑ दे॒वानां॑ प्रथ॒मा की॑क॒सा रु॒द्राणां॑  
द्विती॒यादि॒त्यानां॑ तृती॒या वा॒योः पु॒च्छम॒ग्नीषो॒मयो॒र्भास॑दो॒ क्रुञ्चो॑  
श्रोणि॒भ्यामिन्द्रा॑बृह॒स्पती॑ ॥ ऊ॒रुभ्यां॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒ल्गाभ्या॑मा॒क्रम॑ण॒थ स्थू॒राभ्या॑ ब॒लं कु॑ष्ठाभ्याम् ॥ ६ ॥

अथाङ्गान्तराणां देवता आह । विभक्ति व्यत्ययः । स्कन्ध प्रदेशों करि मरुत् देवताओं को प्री० । कीकस (पुच्छ के ऊपर की प्रथमा अस्थिपङ्क्तिः) विश्वे देवाओं को० । द्वितीयास्थिपङ्क्तिः० रुद्रों० । तृतीया कीकस० आदित्यों० । पुच्छ० वायु० । भासदो (नितम्बों-चूतडों)० । अग्नीषोम देवताओं० । श्रोणियों (दक्षिणवाम कटि प्रदेश)० । क्रुञ्चो० । ऊरुओं० । इन्द्राबृहस्पती० । अल्गाओं (दोनों ऊरुसन्धिओं) मित्रावरुणों० । स्थूरा (नितम्बों के अधोभागों)० । आक्रमण० । कुष्ठो (ककुन्दरों)० । बल देवता को० ॥ ६ ॥

अ० ७ पू॒षणं॑ वनि॒ष्ठुना॑न्धा॒हीन्स्थू॒लगु॒दयो॑ सर्पा॒न्गुदा॑भिर्वि॒हृतं॑  
आन्त्रै॒रपो॑ व॒स्तिना॑ वृष॒णमा॑ण्डाभ्यां वाजि॒नरु॑णै॒रशे॑पेन प्र॒जाथ॑रेत॒सा चा॑षा॒न्पित॑तेन प्र॒दरा॑न्यायुना कू॒शमा॑च्छे॒कपि॑ण्डैः ॥ ७ ॥

वनिष्ठुः (स्थूलान्त्र) करि पूषा देवता को प्री० । स्थूलगुदा० । अन्य सर्पों० ।



+ क्रीमा उदरं जलाधारः हृदयस्य दक्षिणे यकृद्वै क्रीमा वामे ग्रीवा दुग्धसंश्लेषेति वैद्या इति शीरस्वामी क्रीमा गलनाडीति कर्कः।

संज्ञ है तिस)० उपल देवताओं० क्रीमाओं० + वल्मीक देवताओं० ग्लो  
(ग्लो वों-हृदयनाडियों)० गुल्म देवताओं० हिराओं (अन्नवाहिनीनाडि-  
ओं)० स्त्रवन्ति देवताः० कुक्षी (जठरके दक्षवामभाग)० हृद देवताओं०  
उदर (पेट)० समुद्र० अङ्गोत्थ भस्म करि वैश्वानर देवता को प्रीणामि॥ ८॥  
अ० ४ विधृतिं नाम्ना घृतं रसेनापो यूष्ण मरीचीर्विषुडभिर्नी-  
हारमूष्मणा शीन वसया शुष्णा अश्रुभिर्हृदुनीर्दूषिका-  
भिरस्त्रा रक्षाथंसि चित्राण्यङ्गेर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवी त्व-  
चा जुम्बकाय स्वाहा॥ ४॥

नाभि (उदर के नीचे की ग्रन्थि) करि विधृति देवता को प्रीणामि। रस (वीर्य-  
धानु विशेष)० घृत दे० यूष्ण (पक्वान्नरस)० आप दे० विषुट (वसाविन्दु-  
ओं)० मरीची० ऊष्णा (शरीरगत ऊष्णता)० नीहार० वसा० (मांसस्ने-  
ह)० शीन० दूषिका (नेत्रों के मल)० हृदुनी० असृक् (रुधिर)० रक्षसों०  
अङ्गों (पूर्वोक्त अवयवों)० चित्र देवताओं० रूप (सौन्दर्य)० नक्षत्र देवता-  
ओं० त्वचा (चर्म)० पृथिवी देवी को प्रीणामि स्वाहेति मन्त्रों से आज्य को  
होमें इत्यर्थः॥ का० २० ८० १६ अवभृथ याग के अन्त में जल विषे मग्न  
पिङ्गलाक्ष खल्वाट दन्तुर अतिगौर पुरुष केशिर पर जुम्बकायेति म-  
न्त्र से सकृद्गृहीत आज्य को होमें॥ वरुण देवत्या द्विपदा यजुर्गायत्री  
उदन्यपुत्र सुण्डिभदृष्टा। जुम्बकाय वरुण के अर्थ स्वाहा सुद्रुतम-  
स्तु वरुणे वै जुम्ब इति श्रुतेः। एषा चान्तर्जले जप्ता पापनाशिनी कात्या-  
सर्वा० अध्या० ३ रवण्ड ५ तथा चोक्तं हारीतेन जुम्बका नाम गायत्री  
वेदे वाजसनेयके। अन्तर्जले सकृज्जप्ता ब्रह्महत्या व्यपोहति॥ ४॥

\* वसा (मांस इत्यमरः २६० ४६ शुद्धमांसस्य यः स्नेह सावसेति वैद्या इति स्वामी

अ० १० हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रै भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०॥

यः प्राणतो निमेषतो महित्वेक इद्राजा जगतो बभूव । य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्यदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥११॥

चतस्रः कदेवत्याः त्रिष्टुभः प्रजापति सुतहिरण्यगर्भहृष्टाः प्राजापत्यपशूनामश्वादीनां याज्यानुवाक्याः द्वे व्याख्याते १३०४॥१०॥२३०३॥११॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहजुः । यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१२॥

हम कस्मै (प्रजापति के अर्थ) हवि देते हैं । इन हिमाचल प्रभृति पर्वतों को जिस प्रजापति का महिमान कहिते हैं पण्डितलोग । नदियों सहित समुद्र को महिमान कहिते हैं । ये पूर्वोद्या प्रकृष्टा दिशाएँ जिसका महित्व कहते हैं जिस की बाहुएँ जगद्रक्षण को इति शेषः । अर्थात् सब जगत् जिस प्रजापति की विभूति है ॥१२॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वः उपासते प्रशिष्य यस्य देवाः । यस्य व्यामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३॥

कस्मै देवाय हविषा विधेमेति व्याख्यातम् । जो प्रजापति आत्मदा (आत्मा को देता) उपासकों का सायुज्यप्रदः) बलदा (सामर्थ्य देता) मुक्तिमु-

क्तिप्रदः। सब मनुष्य जिसके प्रशिष (शासन) को उपासते और देवता जिसके प्रशिष को उपासते। किंच जिसकी छाया (आश्रयज्ञानपूर्वक उपासन) अमृत (मुक्तिहेतु) और जिसका अज्ञान (नजानना) इति शेषः मृत्यु (संसारहेतु) है। ॥१३॥

अ० ११ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदेव्यासोऽअपरीतास उद्भिदः। देवां नो यथा सदमिहृथेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारे दिवे-दिवे ॥१४॥

वैश्वदेव पशु वपापुरेडा शयश्रूनां याज्यानुवाक्या दश ऋचो विश्वदेवदेवत्या गोतमहृष्टाः। तत्रादौ पञ्च जगत्यः। क्रतवः (यज्ञ वा संकल्प) हमारे प्रति आवें अर्थात् हम यज्ञ कर्ता होंवें। कैसे क्रतवः कि कल्याण कारिणः। तथा निर्विघ्नाः। अपरीता (अज्ञाताः केनचित्फलानुमेया इत्यर्थः) उद्भिदः (यज्ञान्तरो के प्रकटीकर्तार) किंच जिस प्रकार करि देवता हमारी सदैव वृद्धि के अर्थ हों नैसे क्रतवः आवें। कैसे देवता कि अप्रायुवः (अनालसाः) हमारी वृद्धि के अर्थ हों तथा प्रतिदिन पालक हों ॥१४॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रतिरुभि नो निवर्त्तताम्। देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥१५॥

कल्याण कारिणी देवताओं की शोभना बुद्धि हमारे प्रति अभिमुखी हो। कैसे देवताओं की कि ऋजूयताम् (अवक्रगामियों वा साधु यजमान कामयमानों की) किंच देवताओं का दान हमारे अभिमुख हो अर्थात्

† तदुक्तम् पेतद्विदुःस्मृतास्ते भवन्त्यथतरे दुःख मेवोपयन्तीति श्वेताश्वतरोपनिषत् ३०१०॥

पशुसंज्ञावधि ज्ञानं विश्ववधि च शासनम्। कार्यावधि च कार्यं तस्य स्वयम्भूः पुनर्गुवः इति॥



देवता हमारे अर्थ दें। देवताओं की मैत्री को प्राप्त हों। देवता हम मित्रों की आयु को बढ़ावें ॥१५॥

तान्पूर्वया निविदा हूम्हे वयं भगं मित्रमदिति दक्षमसि-  
धम्। अर्यमाणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सु-  
भगा मयस्करतु ॥१६॥

पूर्वया (प्राचीना) अकृत्रिमा स्वयम्भुवा निविदा (वेदरूपवाचा)  
करि हमतिन (प्रसिद्ध) देवताओं को बुलाते हैं। तिन किन्हें तत्राह  
भग को मित्र अदिति (देवमाता) दक्ष (प्रजापति) अर्यमा वरुण सोम  
अश्विनी कुमारों को। अस्मिधम् इति भगादीनां विशेषणम् अच्युतों  
को। किंच सुभगा (शोभनभाग्या) सरस्वती भगादि सहिता हमारा सु-  
ख करे ॥१६॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पि-  
ता द्यौः। तद्वावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणु-  
तं धियाया युवम् ॥१७॥

पवन हमारे को ओषध हित जैसे तैसे वंहे अर्थात् अनुग्रह करे वा  
हित देवै कैसे हित कि मयो भु (सुरवोत्पादक। माता जगत की निर्माण  
करने वाली) पृथिवी तिसहित को दे। पिता (पालक) स्वर्ग हित दे। सोमा-  
भिषव करने वाले पाषाण तिस भेषज को दें। कैसे हैं पाषाण कि सुख  
के देने वाले। हे अश्विनी कुमारों तुम तिस वातादिकों से भेषज प्रार्थन  
को सुनों अर्थात् तुम भी हित देओ। कैसे हो तुम कि गृहवत् धारण  
करने वाले ॥१७॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम्।  
 पूषा नो यथा वेदसामसंहृद्धे रक्षिता पायुरदेव्यः स्वस्तये॥१७॥  
 हम तिस (प्रसिद्ध) ईशान रुद्र को बुलाते हैं। कैसे तिसे कि जगत (जड़-  
 म) और स्थुषः (स्थावर) भूतजात के पति को। बुद्धिसंतोष कारक को किस  
 लिये बुलाते हैं कि तृप्ति करने को यथा (जिस प्रकारसे) पूषा हमारी वृ-  
 द्धि और कल्याण के अर्थ हो तैसे बुलाते हैं। कैसा पूषा कि वेदसाधनों  
 वा ज्ञानों कारक्षक/पालक पुत्रादिकों का। अनुपहिंसितः॥१७॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।  
 स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पति-  
 र्दधातु॥१८॥

विराटस्थाना (त्रिष्टुप्) इन्द्र हमारे अर्थ स्वस्ति (अविनाशशुभ) देवें।  
 कैसा है इन्द्र कि वृद्धश्रवाः (बड़ी है कीर्ति जिसकी वोह) पूषा हमारे अ-  
 र्थ स्वस्ति देवें कैसा कि विश्ववेदाः (सबधन जिस का वा सब जानता।  
 तार्क्ष्य (रथवा गरुड) हमारे अर्थ स्वस्ति देवें कैसा कि अरिष्टनेमिः (अ-  
 नुपहिंसित हैं चक्रधार वा पक्ष जिस के। बृहस्पति (देवताओं का गुरु  
 हमारे अर्थ स्वस्ति देवें॥१८॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु ज-  
 ग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अ-  
 वसा गमन्ति ह॥१९॥

जगती। मरुत देवाः अन्न (हविर्लक्षण हेतु) करि इस यज्ञ में आवें।  
 कैसे मरुतः कि पृषदश्वा, पृषती संज्ञा हैं अश्वा (बडवा वाहन) जिन्हें

अग्निमुखां विदेवा इति  
धुनेः

स्थिरैरङ्गैः सुष्ठुवा २५ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२१॥

वर्धामु, सिक्ता-इव चर्म दण्डाः सर्वे प्रपत्ताः शिथिली भवन्तीति॥

शतमिन्नु शरदोऽग्नन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनु-  
नाम् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषता  
युर्गन्तो ॥२३॥

हे देवताओ शतवर्ष पर्यन्त तुम समीप में होओ इति शेषः । जहां शतश  
रुद में हमारे शरीरों की तुम जरा करो अर्थात् वार्धका वधि तुम समीप  
में होओ । यत्र हमारे पुत्र पितर हैं (पुत्र वन्त हों) अर्थात् जब तक हमारे  
पौत्र हों तब तक मध्य में हमारी आयु मत नष्ट करो । कैसी आयु कि ग-  
न्तो ! (गमन शील † ॥ २२ ॥

अदितिं धीरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।  
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्ज-  
नित्वम् ॥ २३ ॥

मन्त्रद्वयं सर्वात्मकत्वेनादितिं सौति । स्वर्ग अदिति है (तदधिष्ठातृत्वात्) ए-  
वमग्रेपि । अन्तरिक्ष अदिति है । माता और पिता बोह ही अदिति है । पञ्चज-  
नाः (मनुष्य) भी अदिति है । किं बहुना उत्पन्न हुए प्राणी जात और होने हा-  
र अदिति ही है ॥ २३ ॥

अ० १२ मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि-  
रव्यन् । यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तैः प्रवक्ष्यामो विदथे वी-  
र्याणि ॥ २४ ॥

का० २० ८ ७ मान इत्यादि षोडश कण्डिकात्मक दो अनुवाकों से पूर्ववत्  
चतुर्गृहीत आज्य लेकर होमें और षोडश अश्वस्तोमीया जुहोतीति १३३  
५५ श्रुति में मानो यदश्वस्य ये दो अष्टक कहे हैं । द्वाविंश शतपृथमश्व-  
स्तुति कात्या सर्वा खंड ५ द्वाविंशति ऋचो अश्वस्तुति परत्वादश्वदेवत्या-  
स्त्रिष्टुभो दीर्घतमो दृष्टा । अत्र एष छाग इति २६ तृतीया यूपवृत्का इति २७  
षष्ठी एते द्वे जगत्यौ । ततः षोडशों से होम छे ओं से स्तुति वा सबो से होम  
है अश्वस्तोमीयर्द्धत्वा द्विपदा जुहोतीति १३३ ५३ श्रुतेः ॥ अथ मन्त्रा-  
र्थः । विदथ (यज्ञ) में अश्व के वीर्यो (चरित्रों) को जो कि हम उच्चार करते  
हैं तहां मित्रादयः देवाः हमारे को निन्दान करें अस्माभिर्देवाः स्तुत्या  
न त्वश्वाद्यस्तिर्यञ्च इति यद्यपि निन्दोचिता तथाप्यश्वरूपेण देवाना-  
मेव स्तुतिः क्रियते । अथवा महानुभाव देवजात अश्वको कुछ मनुष्य

स्तुति करते हैं यह न कहें। कैसे अश्व के कि वाजिनः (वेगवान) देवजात (मृ  
र्य से उत्पन्न वा देवताओं करि उत्पन्न कराए हुए) के। सन्नेः (देवताओं स  
हित जोड़िये हे तिस के। कैमा निन्दन्तु तानाह मित्रः (अहरमि मानी देव)  
वरुणः (अभिमानी देवः। अर्यमा (आदित्य) आयु (वायु) इन्द्रः (देवराजः)  
ऋभुक्षाः (ऋभवो देवाः जहां निवास करते हैं वोह देवाधार) प्रजापति  
वा सबको व्याप्त इन्द्र विशेषण वा ॥२४॥

यन्निर्णिजा रेवणासा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो न  
यन्ति । सुप्राङ्जो मेम्यद्विष्वरूप इन्द्रा पूषणोः प्रियम  
प्येति पार्थः ॥ २५ ॥

जब कि विप्रलोक अश्व के मुखग्र में गृहीत रति (दान-आज्यसक्तु  
 धानान्नक्षण को प्राप्त करते हैं + तब अज (छाग) भक्षण के अर्थ प्राप्त  
 होता है। कैसा अज कि सुप्राङ् (भले प्रकार पूर्व की जाता अर्थात् ललाट  
 में बँधा +। तथा मेम्यत् (शब्दानुकरणम्-मे-मे यह शब्द करता। विश्व  
 रूपः (सर्वरूप-नानावर्णिकं च इन्द्रपूषणोः) (इन्द्र और पूषा के प्रियदुष्ट)  
 पाथ (अन्न-पशुलक्षण) को भक्ष के अर्थ वोह नाभि बद्ध आता है + अर्थात्  
 तू हन प्रोष अन्न जब अश्व के अर्थ दिया जाता है तब ललाट नाभि बद्ध  
 छाग भक्ष के अर्थ आते हैं। कैसे अश्व के कि निर्णिजा (स्नानकरि प्रा  
 वृत संस्कृत स्नापित के। तथा रेक्णासा (धनकरि ५) प्रावृत (आच्छादित)  
 के ॥२५॥

एष छागेः पुरोऽग्नेन वाजिना पूषो भागो नीयते विश्व-  
देव्यः । अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनर्द्धं सौश्रवसा

\* सोमापौष्णाः शृणामो नाभ्यामित्युक्तेः २४०१॥

॥ धन (सेवाएँ मणिलक्षण-एकशत-एकशतसुवर्णमणियों) को भूरित्यादिमन्त्रेणमहिष्या-  
द्यानीनां पात्रेण अथ केशिरादि केशरों में बांधती है इत्युक्तम् ३३, ८॥

† सुगदम्भं व-  
सवो निगतहेतु-  
पुष्पैः २५-२३॥

॥ लाजी ३ अकाची ३ निनि २३ ॥ ८ ॥ रात्रि हत शेष को

॥ कृष्णाग्रिव ॥  
अपानेयोललाट  
इत्युक्तेः २५, २६ ॥

५ रंकाइति धननाम  
त्रिषु ३ द्वयः।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।  
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्ज-  
नित्वम् ॥ २३ ॥

मन्त्र दृक् सर्वात्मकत्वेनादितिं सौति । स्वर्ग अदिति है (तदधिष्ठातृत्वात् ए-  
वमग्रेपि) । अन्तरिक्ष अदिति है । माता और पिता वोह ही अदिति है । पञ्च ज-  
नाः (मनुष्य) भी अदिति है । किं बहुना उत्पन्न हुए प्राणी जात और होने हा-  
र अदिति ही है ॥ २३ ॥

अ० १२ मा नो मित्रो वरुणोऽय्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि-  
रव्यन् । यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तैः प्रवक्ष्यामो विदथे वी-  
र्याणि ॥ २४ ॥

का० २० ८ ७ मान इत्यादि षोडश कण्डिकात्मक हो अनुवाकों से पूर्ववत्  
चतुर्गृहीत आज्य लेकर होमें और षोडशाश्वस्तोमीया जुहोतीति १३ ३  
५ ५ श्रुति में मानो यदश्वस्य ये दो अष्टक कहे हैं । द्वाविंशत्पृथमश्व-  
स्तुति कात्या० सर्वा० खंड ५ द्वाविंशति ऋचोऽश्वस्तुति परत्वादश्वदेवत्या-  
स्त्रिष्टुभो दीर्घतमो दृष्टाः अत्र एष छाग इति २६ तृतीया यूपदृस्का इति २६  
षष्ठी एते द्वे जगत्यौ । ततः षोडशों से होम छे ओं से स्तुति वा सबो से होम  
है अश्वस्तोमीयर्द्धत्वा द्विपदा जुहोतीति १३ ३ ५ ३ श्रुतेः ॥ अथ मन्त्रा-  
र्थः । विदथ (यज्ञ) में अश्व के वीर्यो (चरित्रों) को जो कि हम उच्चार करते  
हैं तहां मित्रादयः देवाः हमारे को निन्दान करें अस्माभिर्देवाः स्तुत्या  
न त्वश्वादयस्तिर्यञ्च इति यद्यपि निन्दोचिता तथाप्यश्वरूपेण देवाना-  
मेव स्तुतिः क्रियते । अथवा महानुभाव देवजात अश्वको तुच्छ मनुष्य



स्तुति करते हैं यह न कहें। कैसे अश्व के कि वाजिनः (वेगवान) देवजात (सूर्य से उत्पन्न वा देवताओं) करि उत्पन्न करण हुए) के। सप्तेः (देवताओं सहित जोड़िये हे तिस के। केमा निन्दन्तु तानाह मित्रः (अहर मिमानी देव) वरुणः (राज्यभिमानि देव)। अर्यमा (आदित्य) आयु (वायु) इन्द्रः (देवराज) ऋभुक्षाः (ऋभवो देवाः जहां निवास करते हैं वोह देवाधार) प्रजापति वा सवको व्याप्त इन्द्र विशेषण वा ॥२४॥

यन्निर्णिजा रेक्णासा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो न यन्ति। सुप्राडजो मेम्यद्विष्वरूप इन्द्रा पूषणोः प्रियमप्येति पाथः ॥२५॥

जब कि विप्रलोक अश्व के मुखवाग्र में गृहीत राति (दान आज्यसक्तु धानान्नक्षण) को प्राप्त करते हैं + तब अज (छाग) भक्षण के अर्थ प्राप्त होता है। कैसा अज कि सुप्राड (भले प्रकार पूर्व को जाता अर्थात् ललाट में बंधा) + तथा मेम्यत् (शब्दानुकरणम् मे-मे यह शब्द करता विश्व रूप (सर्वरूप नानावर्ण) किंच इन्द्रा पूषणोः (इन्द्र और पूषा के) प्रिय (इष्ट) पाथ (अन्न पशुलक्षण) को भक्ष के अर्थ वोह नाभि बद्ध जाता है + अर्थात् हुतशेष अन्न जब अश्व के अर्थ दिया जाता है तब ललाट नाभि बद्ध छाग भक्ष के अर्थ आते हैं। कैसे अश्व के कि निर्णिजा (स्नान करि प्रावृत संस्कृत स्नापित के। तथा रेक्णासा (धन करि) प्रावृत (आच्छादित) के ॥२५॥

एष छागः पुरोऽश्वेन वाजिना पूषणो भागो नीयते विश्वदेव्यः। अभिप्रियं यत्पुरोडाशमवता त्वष्टेदेनर्दं सोश्रवसा-

\* सोमापेणः श्यामो नाभ्यामित्युक्तेः २४-१।

॥ धन (सौवर्णमणि लक्षण एकशत एकशतसुवर्णमणिके) को भूरित्यादि मन्त्रेण महिष्याद्या तीनों पालिए अश्व के शिर आदि के सरों में बांधती हैं इत्युक्तम् २३-८।

+ मुरारश्वव-  
सुखिनिगष्टि-  
सुखिः २४-१३।

शेष को  
निति २३-८ रात्रि हुतशेष को  
३ लाजी ३-८ लाजी ३-८  
अश्व के अर्थ देते हैं इत्युक्तेः।  
इत्युक्तेः २४-१।

३ रेक्णासा धननाम  
निघ-२ ४८।

यं जिन्वति ॥२३॥

जब कि यह छाग वेगवान अश्व करि पुरस्तात् प्राप्त करि ये है (ललाट बद्धत्वात्) कैसा छाग कि पूषणो भागः (पूषणति देवानिति पूषाग्नि तिसका भाग-भजनीय) तथा विश्वदेव्यः (सर्वदेवार्ह) है। तब त्वष्टा (प्रजापति) ही अर्ब (अश्व) सहित इस छाग को तृप्त करता है। किसलिये कि सौ अवस (सुकीर्ति) के अर्थ (यज्ञे मृतानां स्वर्गां प्रेरुक्तत्वात्) कैसे इसै कि देवताओं के समन्तात् तृप्त करनेवाले। पुरोडाश (पुरस्ताद्वातव्य) को ॥२६॥

यद्ध विष्णुमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यग्नं नयन्ति ।  
अत्रा पूषणः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नुजः ॥२७॥

मनुष्याः (ऋत्विजः) जब कि अश्व को तीन बार पर्यग्नि करते हैं कैसे अश्व को कि हविर्योग्य। ऋतुशः (यज्ञकालमें) देवयान (देवताओं के प्रापणीय वा देवयानमार्गगामी यद्वा देव-आदित्यवत् गति जिसकी अर्थात् अनिवारित गति) को। इस समय (पर्यग्नि काल) में पूषणः पोषक वा वृद्ध अग्नि का भाग अज पुरोगामी हो चलता है। क्या करने कि देवताओं के अर्थ यज्ञ को प्रतिवेदयन् (प्रख्यापयन्-अपने शब्द करि जताने) ॥२७॥

होता ध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शथस्ता  
सुविप्रः । तेन यज्ञेन स्वरं कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृ  
णध्वम् ॥२८॥

हे होवादयः ऋत्विजः तिस (प्रसिद्ध) यज्ञ (अश्वमेध) करि वक्षणाः (नदी-

घृतकुल्याद्याः) आपृणध्वम्(घृतपयोदधिपयस्या पुरोडाश मांससं पूरण करो अर्थात् यज्ञ को सम्पादन करि फल को साधन करो। कैसे यज्ञ करि कि स्वलंकृत विग्रहविर्दक्षणादि करि शोभित। सुष्टु इष्ट। के ऋत्विज स्नानाह होता(आह्वान करने वाला देवताओं का तन्नामक ऋत्विक्। अध्वर्यु(अध्वर चाहाता। आवयाः(अभिमुख्येनावयति)प्रतिप्रस्थाता। अग्निमिन्धः(अग्नि को जलाता। ग्रावग्राभः(ग्रावस्रोता। ओरशंस्त(प्रशस्त। सुविप्रः(मेधावी) ब्रह्मा सर्वविद्यः। अयमनुक्तर्विगुपलक्षकः। एते यज्ञेन वक्षणा आपृणध्वमिति सम्बन्धः॥२८॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं येऽश्वयूपाय तक्षति।  
ये चार्वते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इच्च  
तु॥२९॥

तिन ऋत्विजों का अभिगूर्ति(उद्यम)हमें तृप्त करे व्याप्त हो वा हमारे यज्ञ को भले प्रकार साधे। तिन किन्हीं का कि जे यूप के लिये वृक्ष छे दते हैं और जे यूप को लाते हैं। और जे अश्वबन्धन यूप के अर्थ चषाल (यूप के अग्रभाग में स्थाप्य काष्ठ) को तक्षति(तक्षन्ति) साधु सम्पादन करते छीलते) हैं। और जे मुनुष्य अश्व के अर्थ पचन(पाकसाधनका) ष्टभाण्डादि लाते हैं तिन्हीं का उद्यम हमें तृप्त॥२९॥

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृ-  
ष्ठः। अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा  
सुवर्त्युम्॥३०॥

मन्म(मननीय फल)सुमत् स्वयं समीप प्राप्त हो वोह मननीयफल

सुम् करि धारणकिया । किंच यह वीत (पुष्ट) पुष्ट यद्वा वीत (कामित)  
 पुष्ट अश्व + देवताओं के मनोरथों को पूरे इति शेषः । किंच देवपुष्टि  
 निमित्त जिस अश्व को हम शोभन बांधते हुए विप्राः (मेधाविनो) अ  
 षयः (मन्त्र दर्शिनो वरुत्विजः) उस अश्व को तोषें ॥३०॥

यद्वाजिनो दामे संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना  
 रज्जुरस्य । यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणार्धं सर्वा ता ते  
 ऽपि देवेष्वस्तु ॥३१॥

वेगवान अश्व की जो दाम (ग्रीवाबद्धा रज्जु) और जो संदान (पादब-  
 न्धनरज्जु) और जो शिरोबद्धा इस अश्व की रज्जु और भी कटिस्था  
 रशना रज्जु हैं अथवा इस अश्व का घ (प्रसिद्ध) मुख में प्रक्षिप्त तृ-  
 ण है । हे अश्व तेरे सब तिन देवताओं में (देवोपयोगीनि) हो वा देव-  
 त्व को प्राप्त हो । (अत्रोपयुक्तानां सर्वेषां देवत्वमाशास्यते ॥३१॥

अ० १३ यदश्वस्य क्वविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरो स्वधितो रिप्त-  
 मस्ति । यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि  
 देवेष्वस्तु ॥३२॥

मक्षिणं अश्व की क्ववि जो खाती हुई अथवा जो मांस स्वरु (पशुज-  
 नकाल) लिप्त है । और जो स्वधित (शास) में लिप्त है छेदनकाल और  
 अवदानकाल में । और जो शमिता के हाथों में और जो नखों में लि-  
 प्त है हे अश्व सब त्वदीय देव भोग्य हो ॥३२॥

यद्वध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्वविषो गन्धो  
 ऽपि । सुकृता नक्षमितारः कृणवन्तूत मेधर्धं शृत

पाके पचन्तु ॥३३॥

उदर का ऊवध्य (थोड़ा जीर्ण तृण पुरीष +) जो नीचे चलता है। आ- + भक्षितम-  
म (अपक्व) के मांस का जो गन्ध (लेश) है विशसितारः तिस सबको पक्क मांस शय-  
सु संस्कृत करे। और मेध्य (अश्व) शृतपाक (देवयोग्य होवे) पाक जिस स्पृष्टमृषमुच्य-  
कर्म में) जैसे तेसे पचै अर्थात् अतिपक्व और ईषत्पक्व न करे ॥३३॥

यत्ते गात्राद्गिनना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधा-  
वति। मा तद्धूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशङ्गो  
शतयस्तु ॥३४॥

हे अश्व अग्नि करि पच्यमान तेरे शरीर से जो ऊष्मा वारस नीचे  
जाता है। तथा निःशेषेण हत का जो अङ्ग शूल करि किये पाक में  
निकलता है वोह निर्गत ऊष्माङ्गादिक भूमि में आश्लिष्ट न हो।  
तथा विशसन समय में तृणलग्न न हो। किं तर्हि वोह पतित तृण-  
लग्न सब देवताओं के अर्थ दत्त हो। कैसे देवताओं के अर्थ किचा  
ह करते हैं हविकी ॥३४॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाद्भुः सुरभिर्निर्हरेति।  
ये चार्वितो माथ्सभिक्षा मुपासतः उतो तेषां मभिर्गति  
र्न इन्वतु ॥३५॥

जे मनुष्य अश्व को देखते हैं कि यह पक्व यह जानते हैं। और जे यह  
कहते हैं क्या कि सुगन्धपाक हुआ अतः अग्नि के सकाश से उतारो।  
और जे मनुष्य अश्व के मांस की याचना करते हैं। उतो अपि च  
और तिन्हों का उद्यम हमें तृप्त करे यद्वायं मन्त्रो देव परो व्याख्येयः।

जे देवता पक्क अश्व को देखते हैं कि कब होजायगा और जे विलम्ब देखकर सुरभि पाकहुआ हमारे अर्थ देखो और जे घोड़े के मांस को याचते हैं तिन्हों का संकल्प हम को सफल हो ॥३५॥

यन्नीक्षणं मा० स्पृचन्या उखाया या पात्राणि यूषा  
आसेचनानि । ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्गाः सूनाः  
परिभूषन्त्यश्वम् ॥३६॥

एते पदार्था अश्व को अलं (स्वव्यापारेण साधन) करते हैं। एते के तानाह कि जो उखा स्थाली का नीक्षण (पाकपरीक्षार्थ दर्शन) करते हैं। कैसी उखा कि मांस पाकाधिकरण भूता। तथा यूषा (पक्करस) के आसेचनपात्र। और जे चरूओं (मांस पूर्ण पात्रों) के अपिधाना (ढकने)। कैसे हैं ढकने कि ऊष्मण्यापिधाना (ऊष्मा भाप बाहिर को निकले)। तथा अङ्गाः (चिन्ह साधनानि) हृदयाद्यवयवज्ञापकानि वेतसपात्राणि। सूनां (विशसन कारण भूताः) स्वधित्यादयः। एते अश्व परिभूषयन्ति ॥३६॥

मा त्वाग्निर्धनमीधूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभिविक्त  
जघ्निः । इष्टं वीतमभिगूर्तं वर्षदक्तं तं देवासः प्रतिगृह्ण  
न्त्यश्वम् ॥३७॥

हे अश्व (पच्यमानाश्वावयव) अग्निः तुम्हें धनि न करावे कारण यह है कि धनि होने में भाण्ड भङ्ग होता है। दह्यमान मांस सिमि-सिम यह शब्द करता है सो नहो। कैसा अग्नि कि धूमगन्धिः (धूम का है लेश जहां वोह) किंच भ्राजन्ती अतिताप करि दीप्यमाना उखा (स्थाली)



न चलै। कैसी उरवा कि जघ्निः (गन्ध को ग्रहण करती) अधिष्ठात्री दे-  
वता का घ्राण। तिस एवंविध अश्व को देवाः प्रतिग्रहण करें। कैसे अश्व  
कि इष्ट (प्रयाजों) वीत (आप्रियों) करि पर्यग्निकिये अभिगूर्त (ये यजा  
मह इति आगूर्योक्त) वषट्कृत (वषट्कार करि संस्कृत) को ॥३७॥

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पङ्गीशमर्वतः । य-  
च्च पयो यच्च घासिं जघासु सर्वा ता तेऽपि देवेष्व-  
स्तु ॥३८॥

जो निक्रमण (निरन्तर करने का स्थान) निषदन (उपवेशन स्थान)  
विवर्तन (इधर उधर लुठने का स्थान) और जो अश्व का पङ्गीश (पाद-  
बन्धन) क्रियापरा वा निक्रमणादयः शब्दाः आलम्भ समय में जे  
अश्व की निक्रमणादि चेष्टाएं। किंच जो जलपीयां और जो तृणादि  
खाया सो सब तेरे निक्रमणादिक देवताओं में हों। अर्थात् देवार्थ  
अश्व के रेमादिकों का निरर्थकत्व न हो ॥३८॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मे।  
संदानमर्वन्तं पङ्गीशं प्रिया देवेष्वायामयन्ति ॥३९॥

प्यारी ये वस्तुएँ देवताओं में आगमन कराती हैं अर्थात् ऋत्विज अ-  
श्व की ये देवताओं में ही प्राप्त कराते हैं। कानीत्यत आह अश्व के अर्थ  
जो अधीवास (आच्छादक वस्त्र) उढाते हैं तथा जे हिरण्यशकलें इस (अ-  
श्व) के अर्थ उपस्तृण करतें हैं। तथा अश्व का शिर बन्धन और पाद  
बन्धन। ये देवताओं में प्राप्त कराती हैं। कैसी हैं ये कि देवताओं  
की प्यारी ॥३९॥

अ० १४ यत्ते सादे महसा शूकतस्य पाषाण्या वा कशया वा  
तुनोद । सुचेव ता हविषोऽअध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मण  
सूदयामि ॥ ४० ॥

हे अश्व अश्ववार (घुडचढ़ा) चलते में तेरा (तुम्हें) पाषाण्यो (पाद के  
अधो भाग-एड) वा कशा (कोरडा वारज्जु) करि पीडा देता हुआ। कै-  
सा तेरा कि बल करि शूकत का यद्वा शब्दानुकरणम् बल करि शूकार  
करते हुए को। अध्वर में ते सब तेरे पाषाण कशादि ताडन ब्रह्म (म-  
न्त्र) करि मे चुवाता हूँ अर्थात् यज्ञ में आहुतित्व करि कल्पता हूँ। त-  
त्र दृष्टान्तः हवि (आज्यादिक) जैसे सुचि करि उपकाता हूँ तद्वत्।  
एकं ता पादं पादपूर्णय ॥ ४० ॥

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः  
समेति । अछिद्रा गात्रा वयुना हृणोत परुष्यरुनुधुष्या  
विशस्त ॥ ४१ ॥

स्वधितिः (पशुछेदन साधन-असि) अश्व की चतुस्त्रिंशत्संख्या कान्यु-  
भयपार्श्वस्थियों की भले प्रकार आती है छेदन के अर्थ। कैसे अश्व की  
कि वेगवान। देवताओं के प्यारे वा देवता हैं प्यारे जिस के तिसकी  
अतः हे ऋत्विजः ज्ञान करि अश्व के गात्रों को छिद्रहीन करे स्वधि-  
ति करि सछिद्र वर्त्ते हैं तिन्हें अछिद्र करे। किं च परुष्यरुः (प्रतिपर्व-  
प्रत्यवयव) अनुधुष्य यह-यह इसनाम करितुम छेदन करे ॥ ४१ ॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता ह्ययुनोरा भवतस्तथ ऋ-  
तुः । या ते गात्राणामृतुया हृणोमि ता-ता पिण्डानां

प्रजुहोम्यनो ॥४२॥

अश्व का विशसनकर्ता एक ऋतु। कैसे अश्व कि त्वष्टा दीप्त का।  
अर्थात् ऋतूपलक्षित कालात्मा प्रजापति ही अश्व का शास्ता है।  
तथा नियमकर्तारों दो द्यावा पृथिव्यभिमानी देवों होते हैं (तयोरेव सर्वे)  
षां नियन्तृत्वादिति भावः। एवमश्वस्य विशसत्यन्तृनुत्काध्वर्युः  
स्वकर्माह हे अश्वतेरे गात्रसम्बन्धि मांसपिण्डों को जिन अङ्गों में  
छेदता हूं ऋतूपलक्षित वसन्तादि यज्ञ काल में तिन अङ्गों को अ-  
ग्नि में प्रकर्षेण हुत करता हूं ॥४२॥

मा त्वा तपस्त्रिय आत्मापियन्त मा स्वधितिस्तन्व आ  
तिष्ठियते। मा ते गृध्रुरविशंस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्य-  
सिना मिथू कः ॥४३॥

हे अश्व प्यार + तेरा आत्मा (देह) तुम्हें प्राप्त दुःखित न करे (तुम्हें देह-  
वियोगजनिता व्यथा न हो इति विज्ञानात्मानं प्रत्युच्यते) कैसे तुम्हें  
कि देवलोक को चलते। किं च स्वधितिः (शस्त्र) तेरे अङ्ग न स्थापन क-  
रे अर्थात् सब छेदिके देवताओं के अर्थ दे। किं च शमिता तेरे अङ्गों  
को छोड़ि (शास्त्रोक्तक्रम छोड़ि) कर शास करि मिथ्या छिद्र (अयथछिन्न)  
न करे। कैसा शमिता कि लोभी (केवल मांस ग्रहण छुः) अत एव विश-  
सन में अकुशल है अर्थात् भले प्रकार अवदानानि करे ॥४३॥

न वाऽउऽएतन्मित्रयसे न रिष्यसि देवां ॥ इदं वि पृथि-  
भिः सुगेभिः ॥ हरी ते पुञ्जा पृथ्वी अभूतामुपास्थाद्वाजी धु-  
रि रसभस्य ॥४४॥

भोगायनत्वात्

ननु प्रत्यक्षत्वे मरणभङ्गना-  
शश्च दृश्यते तर्हि कथमेव मुच्यते तत्राह साधु गमन मार्गो देवयान-  
रूपो करि देवताओं को जाता है अथोपुक्ता मदुक्तिः । कथं देवान्प्रति  
गमनम् तत्राह हे अश्व तेरे हरी (इन्द्र के घोड़े) रथ में युक्त होंगे तथा पृष-  
ती (मरुतों के घोड़े) रथ में होंगे । किंच रासभ (अश्विवाहन) के धुरि (स्था-  
न) में कोई वाजी (अश्व) उपस्थित होगा । देवत्वं प्राप्तस्य तव वहनाप  
इन्द्रादयो निजवाहनानि प्रेषयिष्यन्तीति भावः यद्वा तत्तदेवभावं प्रा-  
प्तं त्वं तानि- तानि वाहनानि वक्ष्यन्तीत्यर्थः ॥४४॥

सुगव्यं नो वाजी स्वर्ग्यं पुंरसः पुत्रांश्च पुंरसः पुत्रांश्च पुंरसः पुत्रांश्च पुंरसः  
यिम् । अनागास्त्वं नोऽदितिः कृणोतु क्षत्रं नोऽश्वो व-  
नतां हविष्मान् ॥४५॥

इदानीं याच्चाक्रियते । वाजी (देवत्वं प्राप्तोऽश्वः) हमारा शोभन गोसमूह  
करे । तथा शोभन अश्वसमूह करे तथा पुंरसः (पुत्र वा पुरुषार्थ सायक पु-  
त्रों को) करे । और सर्वजन पोषण समर्थ धन करे । किंच हमारा अनागा-  
स्त्व (निष्पापत्व) करे पापसद्भावे उक्त फलाप्राप्तेः । किंच अश्व हमारा  
क्षत्र (क्षतत्राण बल वा पराभवाद्रक्षण) करे । कैसा अश्व कि अदितिः (न-  
हीं है खण्डन वा दैन्य जिसका । हविष्मान् यद्वा देवत्वाभ्यां हविष्मान् ।  
इह शोऽश्वः हमारा क्षत्र वननीय करे ॥४५॥

अ० १५ इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः । आ-  
दित्यैरिन्द्रः सर्गलो मरुद्भि रस्मभ्यं भेषजा करत् । य-

ज्ञं च नस्तन्त्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥४६॥  
 का०२००८०१२० अयस्मयपात्र करि अश्वलोहित होमानन्तर इमानु  
 कमित्याद्याः षट् द्विपदां होमं दे कण्डिकाओं की षट् अर्धारियें  
 हैं तिन्हों से षट् आहुतियें होमं ॥ द्विपदा छन्दस्का विश्वदेवदेवत्या आ-  
 प्य पुत्र भुवन दृष्टाः साधन दृष्टा वा तिस्रः ऋचः ॥ नु कम् एतो निपातो  
 पाद पूरणो ये भूतजात हम वशी करते हैं ॥ किं च इन्द्र ऐश्वर्यवान्  
 अपने गणों (परिवार) सहित और विश्वदेवा द्वादश आदित्यों और एको-  
 नपञ्चाशत्संख्य मरुतों सहित हमारे अर्थे ओषधें करें अर्थात् सब  
 देवता हमारे हित कारी हों ॥ किं च इन्द्र आदित्यों सहित हमारे यज्ञ (अ-  
 श्वमेध) शरीर और पुत्रादि प्रजा को वशी करें नीरोगाः सपुत्रा हमम-  
 ले प्रकार यज्ञ को करते हैं इति भावः ॥४६॥

अग्ने त्वं नोऽअन्तम उत ज्ञाता शिवो भवा वरूथ्यः ॥  
 वसुरग्निर्वसुश्च वा अहो नक्षि युमन्तमर्हं रयिंदो ॥  
 तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४७॥

इति संहितायां पञ्चदशोऽनुवाकः १५

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिन शारबीयायां वाजसनेयस-  
 हंहितायां दीर्घ पाठे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

तिस्रो द्विपदा व्याख्याताः अध्या० ३० २५ अ० ३० २६ अप० ॥  
 समिद्धोऽअश्वन् २६०१० आश्व मेधि कोऽध्याय इति वचनादत्र होत्रे  
 तन्मन्त्राणां विनियोगः ॥ समाप्तोऽश्वमेधः सप्तविंशत्युत्तरवर्ष-  
 साध्यः ॥४७॥

न देवत्व प्राप्तवैश्यमाणात्वात्  
# अर्थे हिंसायाः श्रमावात्

वै- एवार्थे उ- अवधारणे । हे अश्व तू एतन्नैव मरता (इतराश्ववत् न-  
हीं मरता) है । अत एव नहीं हिंसा होता है । ननु प्रत्यक्षत्वे मरणभङ्गना-  
शश्च दृश्यते तर्हि कथमेव मुच्यते तत्राह साधु गमन मार्गो देवयान-  
रूपो करि देवताओं को जाता है अथोपुक्तामदुक्तिः । कथं देवान्मति  
गमनम् तत्राह हे अश्व तेरे हरी (इन्द्र के घोड़े) रथ में युक्त होंगे तथा पृष-  
ती (मरुतों के घोड़े) रथ में होवेंगे । किंच रासभ (अश्विवाहन) के धुरि (स्थान-  
न) में कोई वाजी (अश्व) उपस्थित होगा । देवत्वं प्राप्तस्य तव वहनाय  
इन्द्रादयो निजवाहनानि प्रेषयिष्यन्तीति भावः यद्वा तत्तद्देवभावं प्रा-  
प्तं त्वां तानि- तानि वाहनानि वक्ष्यन्तीत्यर्थः ॥४४॥

सुगव्यं नो वाजी स्वर्ग्यं पुंसः पुत्रांश्च पुत्रं विष्वापुषं व-  
यिम् । अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो व-  
नतां हविष्मान् ॥४५॥

इदानीं याच्चाक्रियते । वाजी (देवत्वं प्राप्तोऽश्वः) हमारा शोभन गोसमूह  
करे । तथा शोभन अश्वसमूह करे तथा पुंसः (पुत्र वा पुरुषार्थ साधक पु-  
त्रों को) करे । और सर्वजन पोषण समर्थ धन करे । किंच हमारा अनागा-  
स्त्व (निष्पापत्व) करे पापसद्भावे उक्त फलाप्राप्तेः । किंच अश्व हमारा  
क्षत्र (क्षतत्राण बल वा पराभवा द्रक्षण) करे । कैसा अश्व कि अदितिः (न-  
हीं है) खण्डन वा दैन्य जिसका । हविष्मान् यद्वा देवत्वाया हविष्मान् ।  
इह शोऽश्वः हमारा क्षत्र वननीय करे ॥४५॥

अ० २५ इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः । आ-  
दित्येरिन्द्रः सगणो मरुद्भि रस्मभ्यं भेषजा करत । य-



ज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥४६॥  
 का०२००८०१२० अयस्मयपात्र करि अश्वलोहित होमानन्तर इमानु  
 कमित्याद्याः षट् द्विपदा एं होमें दो कण्डिकाओं की षट् अर्धारियें  
 हैं तिन्हें सैं षट् आहुतियें होमें ॥द्विपदा छन्दस्का विश्वदेवदेवत्या अ-  
 ष्य पुत्र भुवन दृष्टाः साधन दृष्टा वा तिस्रः ऋचः ॥ नु कम् एतौ निपातो  
 पाद पूरणौ ये भूतजात हम वशी करते हैं किं च इन्द्र ऐश्वर्यवान्  
 अपने गणों (परिवार) सहित और विश्वदेवा द्वादश आदित्यों और एको-  
 नपञ्चाशत्संख्य मरुतों सहित हमारे अर्थ ओषधें करें अर्थात् सब  
 देवता हमारे हितकारी हैं किं च इन्द्र आदित्यों सहित हमारे यज्ञ (अ-  
 श्वमेध) शरीर और पुत्रादि प्रजा को वशी करें नीरेगाः सपुत्रा हम म-  
 ले प्रकार यज्ञ को करते हैं इति भावः ॥४६॥

अग्ने त्वं नोऽऽन्तम उत वाता शिवो भवा वरुण्यः ।  
 वसुरग्निर्वसुश्च वा अक्षा नक्षि युमन्तमर्हं रयिं दो ।  
 तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुन्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४७॥

इति संहितायां पञ्चदशोऽनुवाकः १५

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिन शाखी याया वाजसनेयस-  
 हंहितायां दीर्घ पाठे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

तिस्रो द्विपदा व्याख्याताः अध्या० ३० २५ अ० ३० २६ अप० ॥  
 समिद्धोऽश्वन् २६०१ आश्व मेधि कोऽध्याय इति वचनादत्र होत्रे  
 तन्मन्त्राणां विनियोगः ॥ समाप्तोऽश्वमेधः सप्तविंशत्युत्तरवर्ष-  
 साध्यः ॥४७॥

इति भाष्ये पञ्चदशोऽनुवाकः १५

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

सुमार्थोऽश्चतुरोदेयाद्वर्मपुत्रोयुधिष्ठिरः २५

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशारवाध्येतु व्याघ्रपादान्वय  
विश्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मज रौक्मिणेय  
नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये अश्वमेध  
प्रकरणे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथाग्नीलभाषणे श्रुतिः शत० काण्ड १३

अप वाऽरातस्मात् । श्री राष्ट्रं क्रामति योऽश्वमेधेन  
यजते ॥ १ ॥ ऊर्ध्वमेनामुच्छ्रापयेति । श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः  
श्रियमेवास्मै राष्ट्रमूर्ध्वमुच्छ्रयति ॥ २ ॥ गिरौ भार्ठं हरन्निवे-  
ति । श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः श्रियमेवास्मै राष्ट्रं संनह्यत्य-  
ष्टौ श्रियमेवास्मिन् राष्ट्रमधिनिदधाति ॥ ३ ॥ अथास्ये  
मध्यमेधतामिति । श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यं श्रियमेव राष्ट्रे  
मध्यतोऽन्नाद्यं दधाति ॥ ४ ॥ शीते वांते पुनन्निवेति । क्षे-  
मो वै राष्ट्रस्य शीतं क्षेममेवास्मै करोति ॥ ५ ॥ युकास-  
को शकुन्तिकेति । विड्वे शकुन्तिकाहलगिति वृच्चती-  
ति विशेषे वै राष्ट्राय वृच्चन्याहन्ति गभे पसो निगल्ग-  
लीति धारकेति विड्वे गभो राष्ट्रं पसो राष्ट्रमेव विश्याहन्ति

तस्माद्वाष्ट्री विशां घातुकः ॥६॥ माता च ते पिता च नः  
 इति । इयं वै मातासौ पिताभ्यामेवेन्नरं स्वर्गे लोकं गम-  
 पत्ययं वक्षस्य रोहत इति श्रीर्वै राष्ट्रस्याग्रं श्रियमेवे-  
 नरं राष्ट्रस्याग्रं गमयति प्रतिलासीति ते पितृ गभे  
 मुष्टिमर्तंसयदिति विद्धे गभो राष्ट्रं मुष्टो राष्ट्रमेव वि-  
 श्याहन्ति तस्माद्वाष्ट्री विशां घातुकः ॥७॥ यद्धरिणे  
 यवमनीति । विद्धे यवो राष्ट्रं हरिणे विशमेव राष्ट्र्या-  
 द्यां करोति तस्माद्वाष्ट्री विशमन्ति न पुष्टं पशुमन्यतश्च-  
 ति तस्माद्वाजा पशून् पुष्यति श्रद्धा यदयजारा न पोषाय ध-  
 नायनीति तस्माद्देशीपुत्रं नाभियिञ्चति ॥८॥ अप वाग्नेभ्यः  
 प्राणाः कामन्ति। ये यज्ञे पूता वाचं वदन्ति दधिक्रावोऽप-  
 कारिषमिति सुरभिमनीमृचमन्नतोऽन्वाहुर्वीचमेवपुनते  
 नेभ्यः प्राणा अपक्रामन्ति ॥९॥ ब्राह्मणम् ॥ ३॥ २ ॥९॥

आदितः अनुवाक संख्या ४६

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसाद रचिते वेदा-  
 र्थप्रदीपे तृतीयाध्यायस्य पञ्चमो खण्डः ५॥

समाप्तोऽयमश्वमेधः ॥

ज्येष्ठमासं मलेपक्षं पौर्णिमाभृगुवामरं  
 ग्रहनेत्राङ्कमूर्ध्वं हयमन्त्राः समागमन्  
 अतः परं दशभिरध्यायेः स्तिल्यान्युच्यन्ते

विक्रमाब्दाः १९२६ शकाब्दाः १७४४ आश्विनशुक्ला ९ भृगुवाशुभं भवतु

\* विदित हो कि संवत् १९२८ अधिक भाद्रपद शुक्ला १२ रविवार से ही मने पौडा-पौडा अश्वमेध के भाष्य  
 लिखने को अश्वमेधिका इस देव अग्निके समीप ही यह भी समाप्त हुआ ॥

## हरिःप्रोम्

### अथ संक्षेपत अश्वमेधमन्त्राणां सूचीपत्रम्

पृष्ठा	पङ्क्ति	विषय	पृष्ठा	पङ्क्ति	विषय
८११	५	निष्कधारणम्	८४४	७	सुरभि मती मृक
८११	५	रज्जु ग्रहणम्	८४४	२१	त्वग्भेदन संस्कार मन्त्राः
८१३	५	अश्व बन्धनम्	८४६	१७	अश्व विशसन मन्त्राः
८१४	४	अश्व प्रोक्षणम्	८४८	४	अथ ब्रह्मोद्यम्
८१५	१३	सोकीय संज्ञा दशाहुतिः	८५४	१०	याज्याऽनु वाक्या
८१६	६	अश्वस्यैकोन पञ्चाशच्चै क्षितानि	८५६	३	अश्वसूपरो ब्राह्मणोऽध्यायः
८१८	४	सावित्रीणमिष्टीनायाज्यानु वाक्या	८७५	५	शादादित्व गन्त देवताश्चाङ्गा नि
८१९	१३	स्विष्टकृति पुरोऽनु वाक्या	८८२	८	पाप नाशिनी
८२०	१८	विभूर्मात्रे त्यादि मन्त्राः	८८३	९	याज्यानु वाक्या
८२२	१६	ऋग्वेदमण होमः	८८४	५	याज्यानु वाक्या
८२४	१८	अध्वर्युजप मन्त्रः	८८८	८	मान इत्यनु वाकः
८२५	१३	आज्यादि होमः	८९२	१३	यदत्यनु वाकः
८२६	१८	महि मग्न ग्रहणम्	८९८	२०	इमान वित्यनु वाकः
८३२	२	रथ योजनादि मन्त्राः	९००	८	अथाश्लील भाषणे श्रुतिः
८३४	३	हेतुर्व्रत्येणश्च प्रश्न प्रति प्र- श्नः			समाप्नोऽयमश्व मेधः
८३५	१०	अश्व प्रोक्षणदि मन्त्राः			
८४०	३	अश्लील भाषणम्			

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

(अथ खिल्यानि विवस्वदृष्टानि)

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्  
स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः २६

ॐ१ अग्निश्च पृथिवी च संनते ते मे संनमतामदो वायुश्चा  
न्तरिक्षं च संनते ते मे संनमतामद आदित्यश्च स्यो-  
श्च संनते ते मे संनमतामद आपश्च वरुणश्च संनते ते मे  
संनमतामदः सप्त स्रष्टाः सदीः अष्टमौ भूतसाधनी सकामौ  
२॥ अध्वनस्सु संज्ञानं मस्तु मे मुनी ॥१॥

नत्वारविंशत्यवल्क्य तथामाध्यन्दिनं मुनिम्  
शुक्लवेदे दशाध्याया उच्यन्ते खिलसंज्ञकाः २७

इषे त्वेत्वारभ्य दर्शयैर्णमासपितृयज्ञाग्निहोत्रोपस्थानपञ्चातुर्मास्या-  
ग्निष्टोमवाजपेयगजसूयाग्निषोत्रामण्यश्चर्मधसन्वद्धा मन्त्राः व्याख्याताः ।  
इदानीं खिल्यानुच्यन्ते कचिद्विनियोगानुक्तेः । तेषां विवस्वानृषिरन्यस्यानुक्तेः  
आदित्यानीमानि यजूषि व्याख्यायन्त इति श्रुतेः बृहदारण्यक २.५.३३ याज्ञ-  
वल्क्यो वा याज्ञवल्क्येन व्याख्यायन्त इति श्रुतेः ॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

अनुक्तमन्त्रकथनः षड्विंशोऽध्याय ईर्यते २६

अग्निश्च । सप्तलिङ्गोक्तानि यजूंषि । अग्निश्च १ वायुश्च २ आपश्च  
४ आर्चीगा ० आदित्यश्च ३ सप्तसंसदः ५ यथेमाम् ७ यजूंषि सका-  
माम् ६ आ-अ ० ॥ अग्निश्चैरपृथिवी संनते (आनुकूल्येन प्रवृत्तिभांग  
के अर्थ संगत हैं अतः कहिता हूं कि ते अग्नि पृथिव्यो मे (मेरे) अपदः (अ-  
मुक देवदत्त को) संनमताम् (संनमयताम् वशवर्तिकरै) ॥ १ ॥ एवमुक्त-  
रेष्वपि मन्त्रेषु योज्यम् । वायु और अन्तरिक्ष संनते ॥ २ ॥ आदित्य और  
द्यौ संन ॥ ३ ॥ आप (जल) और वरुण संन ॥ ४ ॥ परमात्मानं प्रत्युच्यते  
हे स्वामिन् जो कि तेरे सप्त संसदः (सात अधिष्ठान अग्नि १ वायु २ अ-  
न्तरिक्ष ३ आदित्य ४ द्यौ ५ जल ६ वरुण ७) हैं तहां अष्टमी भूतसाध-  
नी (पृथ्वी भूतों को उत्पादन करती) है अतः सर्वाधिष्ठान भूत तू आ-  
ध्वनः (मार्गों को) सकाम करि अर्थात् जिन मार्गों में मैं चलू तहां मुझे  
काम प्राप्ति हो । किंच देवदत्त करि मेरा संगत ज्ञान (मेरी इष्ट संप्रति)  
हो । विज्ञानात्मा वोच्यते जिस तेरे सप्त संसदः (पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि म-  
न और बुद्धि सप्तायतन) हैं अष्टमी भूतसाधनी (भूतों को वशी कर-  
ने वाली वाणी) है सो तू हमारे अध्वनः सकाम करि अमुक सहित मे-  
रा संगत ज्ञान हो ॥ ५ ॥ ६ ॥ १ ॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनैभ्यः ब्रह्मरजन्या-  
भ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च । प्रियौ देवानां



दक्षिणाये दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप  
माहो नमतु ॥२॥ + य-च।अ०।प्रि-तु।इ०॥२॥

यह कल्याणी अनुद्देशकरी वाचा को मैं यथा यतः सर्वतः कहता हूँ (दी-  
यताम् भुज्यताम् इति सर्वेभ्यो वच्मि। केभ्यस्तदाह ब्राह्मणों के अर्थ  
राजन्यों वैश्यों शूद्रों स्व (अपनों) अरणों (परायों) शत्रुओं वा वाक्स्म-  
न्धरहित शत्रुओं) के अर्थ ॥ प्रियो देवानाम् मय्यः वसान रहितानुद्देश-  
लोगाक्षिहृष्टा। यथेति पूर्वोक्तेरत्र तथाशब्दोऽध्याहार्यः यतः संश्ल-  
षणदिकों के अर्थ कल्याणी वाणी कहता हूँ तथा (ततः) देवताओं का ध्यान होवे  
और इस संसार में दक्षिण के दाता का ध्यान होवे अर्थात् देव दक्षिणा  
और दातार मेरे विषे प्रीति करें। किं च मेरा अर्थ यह काम (अर्थमिति  
नामनिर्देशः धनपुत्र दिलाभकामः) सफल हो। किंच यह (देवदत्त) भु-  
मे प्रीणयतु (तृप्त करे) ॥२॥

बृहस्पतेऽप्रति यदयोऽग्रहीदद्युमद्विभाति क्रतुमज्जने-  
षु। यहीदयच्छ्वेसः ऋतप्रजात तदस्मात् दुर्विगं धेहि  
चित्रम्। उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वेष ते योनिर्बृह-  
स्पतये त्वा ॥३॥ + रु-मा।अ०।उ-त्वा।दुर्भाग-त्वा।उ०॥३॥

ब्रह्मदेवत्या त्रिष्टुप् गृत्समददृष्टा बृहस्पतिसवे बार्हस्पत्यग्रहणेऽस्याः  
सोपयामाया विनियोगः ॥ हे ऋतप्रजात (सत्य वा ब्रह्म) के सकाश से जन्म  
जिसका हे बृहस्पते (बृहत् वेदों के पालक) नानाविध बोह धन हम  
यजमानों में स्थापन करि। बोह कौन कि जिस धन की स्वामी पूजा करे  
(अर्थात् ईश्वर योग्य धन दे। जो धन की लोकों में विविध शोभे। केस

धन कि धुमत् (कान्तिमान्) क्रतुमत् (जिससे यज्ञ किये जावें) अर्थात् ताह-  
 श धन दे। जो धन बल करि दिलाता वा प्राप्ति करता अर्थात् धनान्ता वोह  
 धन दे ॥ उपयामेति सा-उ० उपयाम पात्र करि गृहीत है बृहस्पति के अर्थ  
 तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ एष ते या-त्रि० यह तेरा स्थान बृहस्पति के अर्थ  
 तुम्हें सादन करता हूँ ॥ ३॥

इन्द्र गोमन्निहायाहि पिबा सोमर्धं शतक्रतो विद्यद्भि-  
 र्ग्रीवभिः सुतम् । उपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमते  
 एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ४॥ +

हे शतक्रतो (शत कर्म जिसके) हे इन्द्र हे गोमान् (गावः-धेनवः-स्तुत-  
 यः-किरण वा विद्यते यस्य स) तू इस यज्ञ में आ और सोम को पान क-  
 रि। कैसे सोम कि ग्रावों (पाषाणों) से अभिषुत कैसे पाषाणों कि विद्यत्  
 (विशेषों) खण्डन करते-पीसते हैं तिन्हों करि ॥ उप० ४. ५. सा-उ० गो-  
 मान् इन्द्र० सादयति एष० ४. ५. या-ज० ॥ ४॥

इन्द्रायाहि वृत्रहन्पिबा सोमर्धं शतक्रतो । गोमद्भिर्ग्रीव-  
 भिः सुतम् । उपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमते एष ते  
 योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ५॥

हे वृत्रहन् (वृत्र-दैत्य के मारने वाले) हे शतक्रतो हे इन्द्र तू आ और  
 सोम को पी कैसे सोम कि ग्रावों करि सुत कैसे ग्रावों कि स्तुति है जिन्हों  
 की ॥ उप० एष० व्याख्याते ॥ ५॥

ऋतवानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घ-  
 र्ममीमहे । उपयाम गृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वेष ते यो-

निर्वैश्वानराय त्वा ॥६॥ + कर-हे।अ०।उ-त्वा।इ०।ए-त्वा।उ०।दि

तिस्रो वैश्वानरीयाः पुरोऽनुवाक्याः। आद्या गायत्री प्रादु राक्षिह-  
ष्टा। हम वैश्वानर की याचना करते हैं यज्ञ समाप्ति को इति शेषः।  
कैसे वैश्वानर कि करतावान (सत्य यज्ञ वा जलवान) को सत्य (अवि-  
नाशि) ज्योति के पति अर्थात् तेजो गधिष्ठान को। अजस्र (अनुपक्षी-  
ण) को। धर्म (जलक्षरते वा दीप्त) को ॥ उप० ६.७.८. सा-उ० वैश्वानर  
के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ ण्य० ६.७.८. या-त्रि० सादन कर-  
ता हूँ ॥ ६॥

वैश्वानरस्य सुमतो स्याम राजा हि कं भुवनानामभि-  
श्रीः। इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सू-  
र्येण। उपयाम गृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वेष ते योनिर्वै-  
श्वानराय त्वा ॥७॥ + + वै-ए।अ०।उ-त्वा।इ०।ए-त्वा।उ०।७॥

त्रिष्टुप्कुत्सदृष्टा। वैश्वानर की शोभन बुद्धि में हम होंवें। कं निपातः पा-  
दपूरणः। हि जिस हेतु से वैश्वानर इतः अरणि से उत्पन्न हो इस स-  
ब कर्मानुरूप को देवता और सूर्यसम तेजा है। कैसा अग्निः कि रजता  
भूतजातों का आश्रयणीय। उप० ण्य० व्याख्याते ॥७॥

वैश्वानरो न ऊतयः प्रयातु परावतः। अग्निरुक्थे  
न बाहसा। उपयाम गृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वेष ते  
योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥८॥ + + वै-सा।अ०।उ-त्वा।इ०।ए-त्वा।उ०।८॥

गायत्री। हमारी रक्षा के अर्थ दूर देश से वैश्वानर अग्नि आवे किस वा-  
हन करिकि उक्थ (स्तोम) करिके ॥ उप० ण्य० व्याख्याते ॥८॥

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे  
महागयम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते  
योनिर्ग्नये त्वा वर्चसे ॥ ६ ॥ †

अग्निदेवत्या गायत्री वसिष्ठभरद्वाजदृष्टा पुरोरुक् । महानायः (म-  
हास्तुति जिस की वा महागृहरूप) तिस अग्नि को हम याचना करते  
हैं । तिस किसे कि जो अग्नि ऋषि (मन्त्रदृष्टा) पवमान (इधर उधर च-  
लता वा शोधता) है । पाञ्चजन्यः (पाञ्चजनों के अर्थहित) पुरोहित (अ-  
ग्न में स्थापित) है ॥ उप० सा-उ० तेजस्व अग्नि के अर्थ तुम्हें ग्रह ॥  
एष० या-उ० ॥ ६ ॥

महो २ ॥ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु । हन्तु पा-  
प्मानं योऽस्मान्नेष्टि । उपयाम गृहीतोऽसि महेन्द्राय-  
त्वेय ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ १० ॥ †

महेन्द्रदेवत्या गायत्री वसिष्ठकृता । पुरोरुक् । इन्द्रशर्म (सुख) देवै ।  
और जो हमें सुख दे तिस पापिष्ठ को मारे यद्वा हमारे देखार और  
पाप्मान (पाप-ब्रह्महत्यादिक) को नाश करे । कैसा इन्द्र कि महान् (श्रे-  
ष्ठ) वज्र है हाथ में जिस के वोह । षोडशी-पञ्चप्राणा दशेन्द्रियाणि म-  
नश्चेति षोडशपदार्था लिङ्गशरीररूपा जिस के वोह आत्मरूप इत्यर्थः ॥  
उप० आसु-अ० एष० या-पं० द्वे उक्ते ॥ १० ॥

न वो दुस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्थसः । अभि व-  
त्स न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गोभिर्निवामहे ॥ ११ ॥

इन्द्रदेवत्या पथ्या बृहती नोधागोतमदृष्टा । स्वाध्यायादिषु नियुक्ता ।

हे यजमानऽं तिस इन्द्र को हम स्तुति लक्षण वाणियों करि स्तुति करते हैं। कैसे इन्द्र को कि तुम्हारे दर्शनीय। ऋतिषत् (अभिभवता शत्रुओं को) तिसे। स्थिति हे तुभूत अन्न करि मोदमान को। दृष्टान्तमाह वत्सं नखस-  
रेषु (दिनों में जैसे नख प्रसूता गायें वछड़े को बुलाती हैं। तद्वत् हम इन्द्र को स्तुति करते हैं ॥११॥

यद्वाहिष्ठं तद्ग्नये बृहद्वचं विभावसे। महिषीव त्वद्र-  
यिस्त्व द्वाजा उहीरते ॥१२॥

अग्निदेवत्यानुष्टुबम् युदृष्टा। हे उद्गातः अग्नि के अर्थ तिस बृहत्साम का गान करि। वाह क्या कि जो प्राप्त करता है अति श्रयन इष्ट को। किंच सामगान से प्रत्यक्ष अग्नि को कहि क्या कि हे विभाव (कान्तिही है धन जिस का वाह) हे अग्ने धन आंग अन्न तेरे सकाश से ऊंच चलते हैं। तत्र दृष्टान्तः महिषीव जैसे प्रथम परिणीता स्त्री घर से भाग के अर्थ ऊंची चलती है। एकं त्वत्यदं पादपूरणम् वाधन नुम् से ऊंचा चलता है ॥१२॥

एह्यु शु ब्रवाणि तेग्ने इत्येतं गिरिः। एभिर्विधास इन्दुमिः ॥१३॥

अग्निदेवत्या गायत्री भरद्वाजदृष्टा। हे अग्ने तू आ। इस प्रकार करि (४) इतराः (अन्याः) स्तुति लक्षण वाणिगं सुतरा कहें। किंच इन सोम विन्दुओं से बढि ॥१३॥

ऋतवसे यज्ञं वितन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः। सं-  
वत्सरस्ते यज्ञं दधानु नः प्रजां च परिपातु नः ॥१४॥

अग्निदेवत्या ब्रह्मती। हे अग्ने ऋतुलक्षणाः कालविशेषाः तेरे यज्ञ

को विस्तारें । चैत्रादि मासाधिष्ठातारो देवाः तेरे हवि (पुरोडाश) को रक्षा करें । संवत्सराधिष्ठाता देवता तेरे अर्थ हमारे यज्ञ को पुष्ट करें और हमारी पुत्रादि प्रजा को संवत्सर ही रक्षा करें ॥ १४ ॥

उपह्वरे गिरीणां च संगमे च नदीनाम् । धिया विप्रो  
ऽऽजायत ॥ १५ ॥

सोमदेवत्या गायत्री वत्सदृष्टा । वर्तों के निकट और नदीयों के संगममें मेधावी सोम उत्पन्न हुआ किस बुद्धि करि कि विप्रादिक मुझ करि यज्ञ करेंगे यह विचारि के इत्यर्थः ॥ १५ ॥

अ० २ उच्चा ते जातमन्थसो दिवि सङ्गम्याददे । उग्रं शर्मम-  
हि श्रवः ॥ १६ ॥

सोमदेवत्यास्तिस्रो गायत्र्य आमही यवदृष्टाः । हे सोम तेरे अन्न (रसरूप) से उत्पन्न होम से हुए अपूर्व कंचे गये स्वर्ग में विद्यमान को भूमि ग्रहण करती है । किं तत् द्युलोकस्थं भूमिर्गृह्णाति तदाह । उत्कृष्ट सुख (गृहपुत्रादिजन्य) को बड़े श्रवः (कीर्तिवाधन) को ॥ अनेन मन्त्रेण पञ्चाहुति परिणाम उक्तः । स यथा । होम किई दुई आहुति प्रथम दिवि में जाती है ततः अन्तरिक्षमें जलरूप करि फिरि भूमि में अन्नरूप से ततः नर में रेत रूप से फिरि योनि में नररूप करि आके नर को धन यश से सुखी करती है इति भावः ॥ १६ ॥

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवो वितरि-  
स्रव ॥ १७ ॥

हे सोम तू हमारा परिश्रव क्षररूप) होके आहुतित्व को प्राप्त हुआ



इत्यर्थः। किमर्थम्। कि इन्द्र वरुण और मरुतों के अर्थ अर्थात् इन्द्र-  
दिकों की तृप्ति के अर्थ परिस्रव। कैसे इन्द्र कि पूजने योग्य के अर्थ। य-  
ज्यवे (यज्यवे इदं त्रयाणां विशेषणम्। यज्युभ्य इति (पूजा योग्यो) मरुतों  
के अर्थ। कैसा है तू कि वरिवोवित् धनका ज्ञाता वा प्रापक ॥१७॥

एना विश्वान्यर्य आ युम्नानि मानुषाणाम्। सिषासन्तो  
वनामहे ॥१८॥

ईश्वर सोम इन सब मनुष्यों के युम्नों (धनों वा यशों) को लावै इति शेषः अ-  
र्थात् हमारे अर्थ देवै तिन सोमदत्त युम्नों को हम सम्भजें। कैसे हैं हम  
कि सिषासन्तः (दान को करते) धनभाज हों इत्यर्थः ॥१८॥

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वञ्चैरनु सर्वेण पुष्टैः।  
अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवानो यज्ञमनुया न  
यन्तु ॥१९॥

यज्ञपुरुषमुद्गलदृष्टा त्रिष्टुप् आशीरियं देव देवत्या। हम वीरों (पुत्रों)  
करि पुष्ट होंवेंगे धेनुओं से पुष्ट होंवेंगे अश्वों से पु० और और कामना-  
ओं गृहादि कों से पु०। द्विपदों (दासादि मनुष्यों) और चतुष्पदों (गजा-  
दि कों) से पुष्ट हों। किंच ऋतु-ऋतु में देव हमारे यज्ञ को प्राप्त हों ॥१९॥

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानो मुशतीरुप। त्वष्टारुठं सोम-  
पीतये ॥२०॥

अग्नि देवत्या गायत्री मेधातिथिदृष्टा। इतः पञ्च ऋचोऽग्निष्टोमे  
नेष्टुर्याज्याः आद्या प्रातः सवने नेष्टुचमसयागे याज्याः। हे अग्ने देव-  
ताओं की पत्निएँ इस यज्ञ में तूला कैसी पत्निएँ कि कामयमानाः। किं-

च सोम पान के अर्थ त्वष्टा देवता को प्राप्त कर ॥२०॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिबः ऋतुना । त्वर्हं  
हि रत्नधा असि ॥२१॥

हे ऋतुदेवते गायत्री मेधातिथिदृष्टे ऋतुयागे नेष्टुर्याज्ये । हे ग्नावः  
(पत्नीवन्) हे नेष्टः हमारे यज्ञ को स्तुति कर । किंच ऋतु देवता सहित पान  
करि सोम को इतिशेषः । क्यों कि तू रत्नों (रमणीयधनों) का दाता है ॥२१॥  
द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च निष्ठत । नेष्ट्राहृतुभिरि-  
ष्यत ॥२२॥

द्रविणोदाः (धनदाता अग्नि) पीने चाहता है सोम को इतिशेषः ॥ अतः  
हे ऋत्विजः तुम होमों और कर्म में उद्युक्त होओ । किंच नेष्टा के धि-  
षाय से देवों सहित सोम प्रति जाओ ॥२२॥

तवायर्हसोमस्त्वमेत्यर्वाङ् शश्वत्तमर्हं सुमना अस्य  
पाहि । अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठरं द-  
न्दुमिन्द्र ॥२३॥

इन्द्रदेवत्या त्रिष्टुप् विश्वामित्रदृष्टा । माध्यन्दिने सवने नेष्टुचमसयागे  
याज्या । हे इन्द्र तेरा यह सोम है अतः अस्मदभिमुखः तू आ सर्वकाल  
इस सोम की (को) रक्षा कर । कैसा है तू कि प्रसन्नचित्त । किंच इस यज्ञ  
में आस्तन दर्भों पर बैठ इस सोम की उदर में रख ॥२३॥

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना र-  
गिष्टन । अथा मन्दस्व जुजुषाणोऽन्यसस्त्वष्टदेवेभिर्ज-  
निभिः सुमङ्गलः ॥२४॥

त्वष्ट्रदेवत्या जगती गृत्समदृष्टा । तृतीयसवने नेष्टृचमसागेयाज्या  
देवपत्न्यः प्राथ्यन्ते । अपने घर में ऐसे हमारे यज्ञ की हे देवपत्नीओं तुम  
आओ । हिं पादपूरणः । दर्भों पर बैठो । रणिष्ठनः फस्पर वार्ता करो । कैसी हो  
तुम कि शोभन है आह्वान जिन्हों का । एवं देवपत्नीरुत्काथ त्वष्टार  
माह हे त्वष्टः तू निरन्तर आइ दुई देवपत्नीओं विषे तृप्त हो । कैसा है  
तू कि हविलक्षण अन्न को सेवमान और देवपत्नीओं से सुमङ्गलः (सं  
तुष्ट हैं देवगण और स्त्रीगण जिसके ॥ २४ ॥

स्वादिष्ट्या मदिष्ट्या पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पात  
वे सुतः ॥ २५ ॥

सोमदेवत्ये द्वावनिरुक्तौ + गायत्र्यो मधुच्छन्दो दृष्टे जपादिषु नियुक्ते । हे सो-  
मधारा करि दशा पवित्र से द्रोण कलश प्रति जा । कैसी धार कि  
अत्यन्त स्वादवती । अत्यन्त मदयित्री । क्यों कि इन्द्र के पीने की तू अ-  
भिषुत है हम लोगों करि इस हेतु धारा • प्रति जा ॥ २५ ॥

रक्षोहा विश्वचर्षणि रभि योनिमयो हते । द्रोणे सधस्य  
मासदत् ॥ २६ ॥

इति सठें हितायां द्वितीयोऽध्यायः २

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिन शारवीयायां बाजसनेयस  
ठें हितायां दीर्घपाठे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सोम द्रोणकलश लक्षण स्थान को तिष्ठे है । कैसा है सोम कि राक्षसों  
(दुष्टों) का हन्ता विश्वचर्षणि (सब जगत को देखता वा सब मनुष्यक  
त्विग्यजमान लक्षण जिस के कण्डनाहरणादि में बोल) तथा कैसा है

व्रीण कलश कि लोह करिके हत (उत्कीर्ण) वनाया गया । तथा सधस्थ (सार्धं धैर्यं) हैं । सोमजहां ॥ २६ ॥

इति भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः १

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्द निवारयन् ॥

पुमार्थाश्च तरो देयाद्भानुदेवः सनातनः २६

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तरगत माध्यन्दिनीय शाखाध्येतृ व्याघ्रपादान्वयवि-  
श्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मज रौक्मिणेय नृपति-  
गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये खिलप्रकरणेऽनुक्तम-  
त्र कथनः षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

हरिः ओम्

ओं नमो याज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वर्द्ध रूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं तुमः २६

समास्त्वाग्निर्कोऽध्यायः (प्रजापतिदृष्टः)

अ. १. समास्त्वाग्निः ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।  
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा अभाहि प्रदिशश्चतस्रः १

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ॥ ॥

सप्तविंशोऽयमध्याय आग्निर्को वर्ण्यते धुना २

अयमध्यायः पञ्चचितिकस्याग्नेः सम्बन्धी प्रजापतिदृष्टः । नव ऋचोऽग्नि-

देवत्यास्त्रिष्टुभोऽग्निना दृष्टाः दृष्टकापशौ समिध्यमानसमिदित्यो रन्तराले  
आसां विनियोगः। अग्निर्ऋषिः कर्मोद्भूतमग्निं स्तोति। हे अग्ने एते  
तुम्हें बढावें। के (कोंन) कि समा (समाः-महीनें) वसन्ताद्या ऋतुएँ संवत्स-  
रः तिस के अधिष्ठातारः। ऋषयः (मन्त्रदृष्टारः) जे हैं सत्य अर्थात् सत्य-  
रूपामन्त्राः। और तू इन्हों से वर्धमान दिवि में हुई दीप्ति करि संदीप्त हो।  
किं च सब प्रदिशाएँ और चारों दिशाएँ दीप्त करि ॥१॥

सं चेंध्यस्वान्ते प्र च बोधयेन्मुञ्च निष्ट महते सौभगाय  
मा च रिषदुपसत्ता तेऽग्ने ब्राह्मणस्ते यशसः सन्तु  
मान्ये ॥२॥

हे अग्ने संदीप्त हो और इस यजमान को ज्ञातार्थ करि। बडे ऐश्वर्य  
रूपे को उद्यम करि। किं च हे अग्ने तेरे समीप बैरनेवाला (यजमान) ना-  
श न हो। तेरे ब्राह्मणः (ऋत्विग्यजमानाः) यशस्विनः हों। और और य-  
जन न करने वाले यशस्विनः नहों ॥२॥

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मण इमे शिवोऽग्ने संवरणे भवानः।

सपत्न्या नोऽभिमातिजिच्च से गये जागृत्य प्रयुञ्जन् ॥३॥

हे अग्ने ये ऋत्विग्यजमानाः तुम्हें याग के अर्थ भजें हैं अतो हे अग्ने संव-  
रणे (ब्राह्मणों सहित एकस्मिन् वरणे सति) हमारे को शान्त हो। हमारे शत्रु-  
ओं का हन्ता हो और हतावशिष्टों का जेता हो। किं च अपने घर में प्रमाद  
छेडि सावधान हो ॥३॥

इहैवाग्ने अधिधारया रयिं मा त्वा निक्कन्पूर्वचितो निका-  
रिणः। क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां तेऽग्ने

संवत्सरस्य पृथगुक्तेः  
समा गन्तव्यमाप्तवचनं

अग्निं ऋषिं ज्ञातुं  
यजमानोऽग्निं सौमसी दातुं

निष्ठृतः ॥४॥

हे अग्ने इहेव- हम यजमानों में तू धन को अधिक दे। किंच पूर्वचितः  
(प्रथम अग्नि को चित करनेवाले) अत एव निकारिणः (निरन्तर यज्ञ  
करणशीलाः) तुम्हें नीचा न करें (मा अवजानन्वित्यर्थः)। किंच हे अ-  
ग्ने क्षत्रजाति तेरे सुख करिके वशी करने को समर्थ हो। किंच तेरा उ-  
पसदनकर्ता यष्टा अनुपहिंसितः सन् धन पुत्रादि करि बँदे ॥४॥

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सर्गं भस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व।  
सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदि-  
हीह ॥५॥

हे अग्ने तू क्षत्रियों को यज्ञ कराय। कैसा है तू कि स्वायुः (शोभन है  
आयु-जीवन जिस का वा शोभन आयु + मनुष्य-यजमान है जिसका  
बोह। किंच हे अग्ने मित्र (सूर्य) सहित वर्तमान होते मित्रधेये यतस्व-  
मित्र (यजमान) का धेय (कार्ययागलक्षण) तहां यत्न करि (यजमान क-  
रियज्ञ कराय। किंच समानजन्मा भी यज्ञकर्ता हों। किंच हे अग्ने इ-  
स यज्ञ गृह में दीप्त हो। कैसा है तू कि राजाओं करि यज्ञमें आह्वान्यः ॥३॥

अति निहो अति मिथोऽत्यचित्तिमत्य रतिमग्ने विश्वा  
त्यग्ने दुरिता सह स्वायास्मभ्यर्धं सह वीरार्थं रुयिं दाः ॥६॥

हे अग्ने हि (निश्चय) सब पापों को तू निवारि। क्या करिके कि नि-  
हः (मारनेवालों को अतिक्रमण करिके। कुत्सिताचारों को अति।  
अन्यमनस्कों को अति। अज्ञातारों को अति। अर्थात् सब दुष्टों को  
अतिक्रम्य पाप का नाश करि। किंच निरन्तर हे अग्ने हमारे अर्थ



पुत्रों सहित धन दे ॥६॥

अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रमुही  
दिहीह । विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीभिर्यः शिवेभि  
रद्य परिपाहि नो वृधे ॥७॥

हे अग्ने इस कर्मविषे वर्तमान तू सब दिशाएँ प्रकाशि। कैसा है तू  
कि अनाधृष्यः (परमभवितुं अशक्यः) जातवेदाः (जातहै धन वा ज्ञान जि-  
ससे) अनिष्टृतः (नहीं है हिंसित किसी से) । विविध यजमान क्षत्र को पु-  
ष्ट करता। किं च मानुषी भिर्यः (जन्मजरा मृतिदेन्य शोकादिकाः) को निव-  
र्तयन्सन् शान्तों से हमें रक्षा करि ॥७॥

बृहस्पते सवितर्वोध्यैर्नष्टं संहंशितं चित्संतरांश्च संहंशि  
शाधि । वर्धयेन्न महते सौभगाय विश्वेऽएन्मनुमद-  
न्तु देवाः ॥८॥

हे बृहस्पते हे सवितः इस यजमान को कर्माभिज्ञ करि किंच चित् चि-  
दप्यर्थे संहंशितं चित् शिक्षित को भी संत एम् (अतितरां) शंशिशदी  
शिक्षा करि। किंच वडे ऐश्वर्य के अर्थ इसें बढा। विश्वे देवा इस यज-  
मान को अनुमदन्तु (तृप्ता दृष्टा वा भवन्तु) हों बृहस्पति सवितृशब्दा-  
भ्यां सामिधेन्यङ्गभूतोऽग्निरेवोच्यते वाक्यद्वयं वा एकेन बृहस्पति  
रुक्तोऽन्येन सविता ॥८॥

अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पतेऽप्रभिशास्तेरमु-  
ञ्चः॥ प्रत्योहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भि-  
षजा शन्वीभिः ॥९॥

हे बृहस्पते तू अमुत्र भूयात् परलोक गमन मरण से छुटा अर्थात् मरण से रक्षा करि। अथ (अथ) यम का भय (परलोक भय नरक पाता-दि तिस) से भी बचा। किंच अभिशाप (लोकपाद) ये भी छुटा। दे-वताओं के वैद्य अश्विनी कुमारों इस यजमान से मृत्यु को निवर्त करो किन्हीं करिके कि शचीओं कर्मों करिके अत्र बृहस्पति रगेन रेवसा-मिधेनी प्रकरणेणाग्नेयत्वात् ॥४॥

उदयं तममस्यारिस्वः पश्यन्त उन्नरम् । देवं देवानां सूर्य-  
मगन्मज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥

व्याख्याता २०.२१. ॥१०॥

अ० २ ऊर्ध्वो अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वो शुक्रा शोक्षीथं प्युने।  
द्युमत्तमा सुप्रतिकस्य सूर्नोः ॥११॥

द्वादशाग्नीदेवत्या उषिणो विषमपादा आग्नेय्याग्निना हृष्टाः।  
अग्निः प्रजापतित्वेन स्तूयते तेन प्राजापत्या अपि। ता आग्नेय्यः  
प्राजापत्या यदग्निं पश्यन्तेनाग्नेयो यत्प्रजापतिमग्निनाग्नेन प्रा-  
जापत्या इति श्रुतेः। इस अग्नि की समिधों ऊर्ध्वो (देवगामिन्यः)  
होती हैं और तंजोंसि ऊर्ध्वो होते हैं। कैसे तेज कि शुद्ध। द्युमत्तमा (वि-  
श्वप्रकाशक)। कैसे अग्नि के कि सुष्ठु मुख जिसका। तथा यजमान  
पुत्रकी। जो ऐसा तिसें स्तुति करते हैं इति शेषः ॥११॥

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः। पयोऽज-  
नक्तु मधो घृतेन ॥१२॥

देवोऽग्नि मधुरघृत करि यज्ञमार्गों को छिड़के भाव्य है कि यज्ञमें घृ-

त बहुत हो कि जिस करि मार्ग घृताभ्यक्त हों। कैसा देव कि तनूनपात  
(जल का पौत्र)। असुरः (प्राणवान्)। विश्ववेदाः (सर्वधनः)। देवों में भी  
दीप्तिमान् श्रेष्ठ ॥१२॥

मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराश्रमं सोऽग्ने। सुकृहे-  
वः सविता विश्ववारः ॥१३॥

हे अग्ने तू मधु स्वादघृत करि यज्ञ को व्याप्त है। कैसा है तू कि देव-  
ताओं को तृप्त करता। नराश्रम (ऋत्विजों करि आश्रम स्तुत। शोभ-  
नकारी। दीप्तिमान्। विश्वात्यादक। विश्ववार (सबों करि सेवित वास-  
व को अङ्गी करता ॥१३॥

अल्लायमेति शवसा घृतेनैडानो बन्धिर्नमसा। अग्नि-  
ं सुचां अध्वरेषु प्रयत्सु ॥१४॥

यह अध्वर्यु अध्वरों में वर्तमान अग्नि को प्राप्त करता है। कैसा कि ज्ञा-  
नवल करिके स्तुतः। तथा बन्धिः (बहता है यज्ञभार को यज्ञनिर्वाह-  
कः। क्या करिके कि घृत हविर्लक्षण अन्नसे उपलक्षितः जुह्वाद्याग्रहण  
करि इति शेषः ॥१४॥

स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ई मन्द्रा सुप्रयसः।  
वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥१५॥

वोह अध्वर्यु इस अग्नि के महिमान को यज्ञ और मद्जनक हवियों  
देवे। कैसे अग्नि के कि सुप्रयसः (शोभन हैं अन्नजिस के। कैसे अ-  
ग्नि के महिमान को यज्ञ कि जो वसुः वासयिता अतिचेतयिताधनों  
का दातृ तमः ॥१५॥

द्वारे देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः। उरुव्य-  
चसो धाम्ना पत्यमानाः॥१६॥

द्वारे देव्यः इस अग्नि के व्रत (कर्म) धारण करती हैं। पीछे सब दे-  
वता अग्नि के०। कैसी हैं द्वार कि विशालान्तर। तथा स्थानों से ऐश्व-  
र्य कराती अर्थात् ऋत्विजों को स्थान देतीं ताः स्तुमः॥१६॥

ते अस्म्य योषणे दिव्ये नयोनाऽऽषासानता। इमं यज्ञ-  
मवतामध्वरं नः॥१७॥

अहोरात्रि देव्यो हमारे इस यज्ञ को रक्षा करें। कैसी हैं ते कि अग्नि  
की भार्यो हैं। तथा स्वर्गस्थे। कैसे अग्नि की योनि में कि गार्हत्य स्था-  
न में स्थित के इति शेषः नकारः पाद पूरणः। कैसे यज्ञ को कि  
अध्वर (अकुटिल) को॥१७॥

देव्या होतारऽऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभिगृणीत-  
म्। कृणुत नः स्विष्टिम्॥१८॥

हे देव्या होतारों (अग्निवायू) तुम हमारा शोभन यजन करो। किंच ह-  
मारे यज्ञ को ऊँचा (देवमार्गगामी) करो। अग्नि की ज्वाला को वर्णन क-  
रो अर्थात् समीची वन्दिज्वाला है यह स्तुति करो॥१८॥

तिस्त्रो देवीर्बहिरेदं सदन्विडा सरस्वती भारती। म-  
ही गृणाना॥१९॥

तीनों देवि इस बहिर् पर बैठें। कोन तीनों कि बूडा पृथिवी स्थाना सर-  
स्वती (मध्यस्थाना) भारती (द्युस्थाना)। मही (महती) गृणाना (स्तुवन्ति इ-  
ति विशेषण द्वयं तिस्रणाम्॥१९॥

तन्नस्तुरीयमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् । एयस्योष वि-  
ष्यतु नाभि मस्मे ॥२०॥

त्वष्टा देव तिस (प्रसिद्ध) धन की पुष्टि को हमारी नाभि प्रति छोड़ें (नाभि पर छोड़ा उत्सङ्ग में गिरता है इति भावः) । कैसे धन की पुष्टि को कि हमें शीघ्र प्रापक । अद्भुत (महान्) पुरुक्षु (बहुतों में निवास करता) साधु वीर्यो । अर्थात् ऐसे धन को दे ॥२०॥

वनस्यते वसृजा रराणस्मना देवेषु । अग्नि हव्यं शमिता सृदयाति ॥२१॥

अग्निः शमिता हव्य को संस्करता है यतः अतो हे वनस्यते तिस संस्कृत हव्य को अवसृज (सुड्युख से अवाचीन डालि) । कैसा है तू कि आत्मा करि देवों में हवि देता ॥२१॥

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् । विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥२२॥

हे अग्ने हे जात प्रज्ञान हवि को इन्द्र के अर्थ स्वाहाकार करि के दे किं च विश्वे देवा इस हवि को सेवन करें ॥२२॥

अ० ३. पीवो अन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिन्नीः । ते वायवे समनसो वितस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्या नि चक्रुः ॥२३॥

अथैतं वायवे नियुत्वते शुक्लं तूपरमालभते इति हुतस्य पशोः पीवो अन्ना रयिवृध इत्याद्याः षट् याज्यानुवाक्याः । हे वायुदेवत्ये त्रिष्टुभो वसिष्ठदृष्टे । शुक्लो हि वायुरिति श्रुतेः श्वेतो वायुः जिन नियुत्वो (अश्वों) को

सेवन करता है ने नियुतः समानमनस्काहो वायु के अर्थ विशेषेणति-  
ष्ठं हैं। कैसे अश्वों कि पुष्ट है अन्न जिन्हों का तिष्ठे। तथा धन को वढाते।  
कैसा श्वेत कि शोभन बुद्धि जिस की। अश्वों का आश्रयणीय। एवं वायु  
करि किये अश्व योग में नरः (ऋत्विजः) सर्वाण्येव शोभनापत्यप्राप-  
कानि करता हुआ कर्म इति शेषः ॥२३॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसी मे राये देवी धिषणा धाति देव-  
म् । अथ वायुं नियुतः सञ्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं  
निरेके ॥२४॥

ये रोदसी धावापृथिव्यो जिस वायु को उत्पादन करती हुई नु (क्षिप्र)  
किमर्थम् कि धन (उदकरूप) के अर्थ। बुद्धि को देती वाली देवी देव  
(वायु) को धारण करती है धन के अर्थ रोदसी के सञ्चाव में भी वा-  
यु विना जगद्धारण शक्त से वायु उत्पादितः। अथ उत्पत्त्यनन्तरमेव  
उत (निश्चय) निजाश्वा वायु को सेवन करते हैं। कहा कि निरेके (बहु-  
जनाकीर्ण स्थान में)। कैसे वायु कि श्वेत वर्ण को। तथा धन के धार-  
यितार को ॥२४॥

आपो ह यद्ब्रह्मतीर्विश्वमायन्नाभं दधाना जनयन्ती-  
रग्निम् । ततो देवानां च समवर्तता सुरेकः कस्मै देवाय  
हविषा विधेम ॥२५॥

हे प्रजापति देवत्ये विष्णुभो हिरण्यगर्भ प्राजापत्य दृष्टे प्रथमा द्युधिका। आ-  
पो हवा इदमग्रे सलिलमेवासेति ११.१६.१ ब्राह्मणमेतयोः कण्डिकयोर्नि-  
दानभूतं बोध्यम्। ह (प्रसिद्धो) जब कि जल विश्व को प्राप्त हुए। कैसे



जल कि वहुलाः॥ तथा गर्भ (हिरण्यगर्भलक्षण) को धारण करते अतए-  
व अग्नि (अग्निरूप हिरण्यगर्भ) उत्पादन करते ततः संवत्सरोषित  
गर्भ से देवताओं का प्राणरूप आत्मा लिङ्ग शरीररूप हिरण्यगर्भ उ-  
त्पन्न हुआ। प्रजापतिरूप हिरण्यगर्भ के अर्थ हवि देते हैं ॥२५॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्य हृक्षं दधाना जनयन्तीर्य-  
ज्ञम्। यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा  
विधेम ॥२६॥

चिदप्यर्थः और जो अन्नर्यामी देव महिमा करि पूर्वोक्ता जलों को देवता  
हुआ। कैसी जल कि दक्ष (कुशल) प्रजापति को स्थापन करती। यज्ञ को  
उत्पन्न करती। अर्थात् सृष्टिकर्त्री। और जो देवताओं के ऊपर एक देव  
रहा तिस देवता के अर्थ हवि देते हैं ॥२६॥

प्र याभिर्योसि द्वाश्चाथ्समच्छा नियुद्धिर्वायविष्टये दुरो-  
णे। नि नो रयिर्हं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं  
च राधः ॥२७॥

हे वायुदेवत्ये त्रिष्टुभो वमिष्ठदृष्टे। हे वायो तू जिन नियुतों (अश्वओं)  
करिके याग के अर्थ यज्ञगृह में वर्तमान हविर्दत्तवन्त यजमान को  
अभिमुख जाता है तिन नियुतों करि आके हमारे अर्थ धन को दे।  
कैसे धन कि सुष्ठु भोगिये है। किं च पुत्र और गौ अश्वरूप धन को दे ॥२७॥

आ नो नियुद्धिः शतिनीभिरध्वरर्हं सहस्रिणीभिरुपया-  
हि यज्ञम्। वायो अस्मिन्सर्वने मादयस्व यूयं पोत स्वस्ति-  
भिः सदा नः ॥२८॥

यस्य शब्द न यज्ञकर्त्री प्रजा उच्यते

नियुत्वा न्वायवागह्ययर्धं शुक्रोऽजयामि ते । गन्तासि सु-  
न्वतो गृहम् ॥ २५ ॥

वायो शुक्रोऽग्न्यामि ते मध्वोऽन्नं दिविष्टिषु । आयाहि  
सोमपीतये स्यार्हो देव नियुत्वता ॥ ३० ॥

वायु रग्नेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मन्सा यज्ञम् । शिवो नि-  
युद्धिः शिवाभिः ॥३१॥

दे गायत्र्यो । वायु कल्याणरूपा ऋष्याश्रं करि चित्त सहित सादर

यज्ञ को चलें कैसा कि आगे चलनेवाला । यज्ञप्रीः यज्ञकरितृप्त होता  
कल्याण कर ॥३१॥

वायो ये ते सहस्रिणा रथासंस्तभिर्गर्गहि । नियुत्वान्तो  
मर्षीतये ॥३२॥

हे वायो जे ते सहस्र संख्याकाः रथाः हैं तिन रथोंकरि सोमवान के  
अर्थ आगमन करि कैसा हैं तू कि अश्वायुक्तः ॥३२॥

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टयं विठंशती च ।  
तिस्रभिश्च वहसे त्रिठंशता च नियुद्धि वायविह ता  
विमुञ्च ॥३३॥

त्रिष्टुप् अनयश्चो पात्राणि मुच्यन्ते । हे स्वभूते निजा समृद्धिर्जगद्रूपा  
जिसकी सो हे वायो एक दश दो बीस तीन और तीस अश्वाओं क-  
रिके जे पात्र वंहे हैं ते पात्र इस यज्ञ में विशेषेण छान्दि । पञ्च चका-  
राः समुच्चयार्थः ॥३३॥

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवाथंस्यावृणी-  
महे ॥३४॥

गायत्री आङ्गिरस्योव्यश्वदृष्टा । हे वायो हे ऋतस्पते (सत्यके पालक)  
हे त्वष्टुर्जामातः (आदित्यसै जल लेकर वायु गर्भता हैं फिर दृष्टि हो  
ती है इस कारण वायु आदित्य का जामाता । हे अद्भुत (आश्चर्यरूप)  
तेरे अन्नों को प्रार्थना करते हैं ॥३४॥

अ० ४० अभि त्वा शूर नो नुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य  
जगतः स्वर्हशमीशानमिन्द्र तस्युषः ॥३५॥

विष्टुते वायेरित्युक्तेः निघं २५

बृहतीसतोबृहतीद्वयं प्रगाथं वसिष्ठदृष्टमिन्द्रदेवत्यम् । रथन्तरं द-  
क्षिणी पक्षे इति श्रुतेः । नान्योऽध्यर्योगीयेदित्यध्यर्योगीनं विहितम् ।  
अतः साम्नां योनय ऋचः पश्यन्ते तत्रैन्द्रः प्रगाथो रथन्तरस्य यो-  
निः । हे शूर हे इन्द्र हम तुम्हें आभिमुख्यकरि अत्यन्त स्तुति करते  
हैं । तत्र दृष्टान्तः जैसे अदुग्धा गौएँ वत्साओं को स्तुति करती हैं ।  
कैसे तुम्हें कि जङ्गम के ईशान स्वर्हश (आप देखता है वा आदित्य)  
को स्थावर के प्रभु अर्थात् नियन्तार को ॥३५॥

न त्वाँ वाँ ॥ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनि-  
ष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा  
हवामहे ॥३६॥

हे मघवन् (धनवन्) हे इन्द्र दिवि में हुएओंविषें तेरे सहश नहीं हैं  
इति शेषः और न हुआ और न होगा । इस हेतु हम तुम्हें बुलाते हैं  
कैसे हैं हम कि अश्वों को कामयमानाः । हविर्युताः । गोकामाः । अ-  
र्थात् गोघोडेदे ॥३६॥

त्वामिद्धि हवामहे सातो वाजस्य कारवः । त्वां वृत्रेधि-  
न्द्र सत्येति नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥३७॥

ऋग्वयमेन्द्रः प्रगाथः शस्युदृष्टः बृहत्साम्नो योनिः अध्यर्योगी-  
नस्योक्तेः आद्या बृहती द्वितीया सतोबृहती बृहदुत्तरे पक्षे इति  
श्रुतेः । हे इन्द्र कारवः (यज्ञों के करनेवाले) नरः (ऋत्विज) हम तुम्हें  
बुलाते हैं । इत् एवार्थे हि निश्चये । किसनिमित्त कि अन्न के लाभ  
निमित्त शत्रुघातनिमित्त दिग्विजयनिमित्त । कैसे तुम्हें कि सातों

(श्रुतिस्मृत्युक्ताचाररतों निषिद्धत्यागियों) के पालक को। तथा अश्वप्राप्ति निमित्त। त्वां शब्दावृत्तिरद्वयार्थः ॥३७॥

स त्वं नश्चित्रं वज्रहस्तं धृष्णुया महं स्तवानोऽद्रिवः ।  
गामश्चरं रथ्यमिन्द्रं संकिरं सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥३८॥  
हे चित्र (आश्चर्यकारिन्) हे वज्रहस्त हे अद्रिवान् हे इन्द्र सो तू हमारे गौ और अश्व दे। कैसे अश्व कि रथ वहन समर्थ। कैसे है तू कि प्रागल्भ्य और तेज करि स्तूयमानः। कैसे कि जैसे जिग्युषे (जीतते) अश्व वा हस्ती के अर्थ) अन्न देते हैं तैसे हमारे अर्थ दे ॥३८॥

कया नश्चित्रं आभुवदूती सदावृधः सर्वा। कया शचिष्ठया वृता ॥ ३९ ॥

तिस्रो गायत्र्य इन्द्रदेवत्या वामदेवदृष्टाः वामदेव्यं साम्नो योनिः वामदेव्यमात्मन्निति श्रुतेः अन्त्या पादनिवृत्त सप्ताक्षरत्रिपदा। पूर्वर्चः इन्द्रपदमनुषज्जनीयम्। इन्द्रः किस ऊती (अवन तर्पण वा प्रीणन) करिके हमारा सहाय आभिमुख्येन होता है। तथा तिसं अतिशयवती यागक्रिया करि हमारा सर्वा होता है। कैसे इन्द्र कि चित्रः विचित्र वाष्ट्रज्य। सदा वर्धमानः ॥३९॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मर्हिष्ठो मत्सदन्यसः। वृदा विदरुजे वसु ॥४०॥

हे इन्द्र अन्ध (सोमरूप अन्न) का कः (अंश) मत्त करता है। कैसे कि मदनक हवियों के मध्य मर्हिष्ठ-अष्ट (अत्यन्त मदनक वा अत्यन्त प्रकाशता वा बढाता। जिस अंश करि मत्त हो हृदों कन कादिधनों को

तू चूर्ण करता अर्थात् देने को ताँड़ि-तोड़िकर देता है ॥४०॥

अभी शु णः सग्वीनामविता जगितृणाम् । शानं भवास्तू-  
तये ॥४१॥

हे इन्द्र तू पालन के अर्थ भले प्रकार शान (बहुतरूप रखता) है।  
कैसा है तू कि मित्रों स्तुति करने वालों हम ऋत्विजों का पालयि-  
ता ॥४१॥

यज्ञा-यज्ञा वोऽअग्नये गिरा-गिरा च दक्षसे । प्र-प्र-  
वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंहीमिषम् ॥४२॥

तृचः प्रगाथः आग्नेय्यः प्रथमा शम्युदृष्टा यज्ञायज्ञियस्य साम्नो  
योनिः । यज्ञायज्ञियं पुच्छमिति श्रुतेः । हे बृहत्यो तृतीया सतो बृह-  
ती । अनेक यज्ञों में अन्या-अन्या स्तुति करि के तुम्हें वा तुम्हारे अ-  
र्थ अग्नि को स्तुति करता हूँ । कैसे अग्नि कि उत्साहिन वा बलव-  
न्त की । अमरणधर्म की । जात हे ज्ञान वा धन जिस से तिसें प्रीतिज-  
नक की । जैसे कोई मित्र को स्तुति करता है तद्वत् अग्नि को स्तु-  
ति करता हूँ । अत्र विकरणव्यत्यः ॥४२॥

पाहि नोऽअग्नः एकया पाह्युत द्वितीयया । पाहि  
गीर्भिस्तिसृभिर्रूर्जा पते पाहि चेतसृभिर्वसो ॥  
॥४३॥

भर्गदृष्टा । हे अग्ने हे अन्नों के पालक हे वसो (वासयित वा वसुमन्)  
एक गिरा ऋग्लक्षणा करिके स्तुतः सन् । हमें रक्षा करि । और दूसरी  
(यजुर्लक्षणा) से स्तुतः सन् हमें रक्षा करि । तीनों ऋग्यजुः सामल-



क्षणोऽं) सैस्तु० चारों (ऋग्यजुः सामनि गदलक्षणोऽं) सैस्तु० गद्य  
पद्य काव्यादिरूपा चतुर्थी गीः ॥४३॥

ऊर्जो नपातर्हं स हिनायमस्मयुर्दशैम हव्यदातये ।

भुवद्वाजैषविता भुवद्बुधः० उत त्राता तनूनाम् ॥४४॥

शाम्युद्दृष्ट्वा यजमानोंऽयुं प्रार्थयते । हे अध्वर्यो जल के पौत्र अग्नि + को  
सो नूतर्पण करि । क्यों कि यह अग्नि हमें इच्छा करता है अतः हवियों  
के दानार्थ संकल्प करते हैं । यतः यह अन्नों में रक्षिता होता है और शरीरों  
(आर्या पुत्रादिकों के शरीरों) का रक्षिता होता है । अग्नि अन्त्र शरीर रक्षितावर्ध-  
यिता हमें चाहता है अतः हविर्दान के अर्थ निसे संकल्प करते हैं ॥४४॥

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि व-  
त्सरोऽसि । उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्ध-  
मासास्ते कल्पन्ता मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ता-  
० संवत्सरस्ते कल्पन्ताम् । प्रेत्याऽएत्ये मे चाञ्च व च सा-  
रय । मृपणं चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद ध्रुवः सी-  
द ॥४५॥

इति सठि हितायां चतुर्थोऽनुवाकः ४

इति श्री सुक्त यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसठि हितायां  
दीर्घे पाठे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अग्नि देवत्यं यजुः चित्याग्निमर्शने विनियोगः । यच्च संवत्सरमयं-  
युगाध्यक्षं प्राजापतिमिति ज्यो० १० १० ज्योतिः शास्त्री क्तमिहोच्यते । हे  
अग्नि नू संवत्सर है परिवत्सर है इदावत्सर है इद्वत्सर है वत्सर है

अग्निः देवता जगत्पतिः  
अग्निः देवता जगत्पतिः  
अग्निः देवता जगत्पतिः

+ पुनः भवेत्सर्वत्र चैव नो भवेत् । शास्त्रादिभिः ।

अर्थात् निर्विशेषेण पांच संवत्सरात्मक युग रूप है । तिस तेरे उषसः (प्रातः कालादयः कालविशेषाः संगवमध्याह्नादयः) अहोरात्राः (दिवस निशाः) अर्धमासाः (पक्षाः) मासाः (चैत्रादयः) ऋतवः (वसन्तादयः) कल्यन्ताम्, अवयवत्व करि क्लृप्ताहोर्वे । संवत्सरश्च उपलक्षणा मेतत् और पांचो संवत्सरादिक भी कल्यन्ताम् । किं च प्रममन के अर्थ समञ्च और प्रसारय, भाव यह है कि संकोच विकास करि । किं च सुपर्णाकारक रचितत्व से सुपर्णचित्र है । तिस देवतया वाचा सहितः सन् अङ्गिरस इव (प्राण-इव) ध्रुवः (स्थिर) मीद (तिष्ठ ॥ ४५ ॥

इति भाष्ये चतुर्थोऽनुवाकः ४

श्री वेदार्थे प्रदीपेन तमोद्गाहं निवारयन्

पुमार्थाश्चतुरो देया दग्निदेवः मनातनः २७

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्यतृव्याघ्रपादान्वयविश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मज गौकिमण्यन्तर्गतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थे प्रदीपे गिरिधरभाष्येखिलप्रकरणेऽग्निवर्णनो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

हरिः ओम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चत्मकं द्विरूपं च साधनेर्बहु रूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्म रूपपरं तु मः २८

इन्द्रमिडः सौत्रामणिकोऽध्यायः (प्रजापत्याश्वसरस्वत्यदृष्टः)



४ मनुष्यों के अभिभावकों में अत्यन्त ओजस्वि एवं विधि इन्द्र आज्य को पिये। हे मनुष्य होतः तू भी यजि ॥१॥

होता यक्ष न नूनपातमूतिभिर्जेता रमयराजितम् । इन्द्र  
देवत्वं स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशंसैर्न तेजसां  
वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२॥

नराशंस देवता सहित तनूनपात और इन्द्र देवता को होता यजे। किन्हीं  
सैं कि पथियों (जाते हैं स्वर्ग को यजमान जिन्हें सैं तिन हवियों) करि। कै  
सीओं कि ऊतियों (तृप्ति करती हैं तिन्हें) तथा मधुमत्तमाओं सैं। कैसे इ-  
न्द्र कि शत्रुओं के जीतनेवाले किसी सैं भी न पराभूत स्वर्विद (स्वर्ग को  
जानते वा अपनों का जानते वा स्वर्ग में विद्यमान को। कैसे नराशंस  
कि तेजस्वि करि युक्त। एवं दस देवताओं युक्त इन्द्र आज्य पिये। शेष पूर्व  
वत्। अब तनूनपान्न शंसावेकत्र प्रयाजे पठिता वित्यु भयवानयं प्र-  
याजः ॥३॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् ।  
देवो देवेः सर्वीर्यो वज्रहस्तः पुरंदरो वेत्वाज्यस्य हो-  
तर्यज ॥३॥

होता इडाओं (प्रयाज देवताओं) सहित इन्द्र को यजे। कैसे इन्द्र कि ई-  
डित (ऋत्विजों करि स्तुत) आजुह्वान (यजमानों करि आहूयमान वा दे-  
वताओं को आह्वयन्त) अमरण धर्म को। ऐसा इन्द्र देव आज्य पिये कै-  
सा देव कि सर्वीर्य (समान वीर्य जिस का बोह अर्थात् सब देवताओं में जि-  
तना वीर्य बोह अकेले इन्द्र में। वज्रहस्त। पुरंदर (शत्रुओं के नगरों

को दाता । उक्तमन्यत् ॥३॥

होता यक्षद्वर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम् । वसुभी  
रुद्रे रंदिन्यैः सयुग्मिर्बर्हिरसद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥४॥

बर्हि प्रयाज देवता पर स्थित इन्द्र को होता यजे कैसे इन्द्र कि उप देवाओं  
में श्रेष्ठ वर्षितार नरों (यजमानों) के अर्थ हितकारि । सो इन्द्र वसुओं रुद्रों  
आदित्यों तीनों सबन देवों सहित बर्हि पर भले प्रकार बैठे और आज्य  
पियें । कैसे वसु आदिकों कि सयुक् (समान योगों) सहित ॥४॥

होता यक्षदीजो न वीर्युर्धं सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन् ।  
सुप्रायणा अस्मिन्यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय  
मीदुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥५॥

जे द्वारः प्रयाज देवाः इन्द्र में औज (इन्द्रियबल) वीर्य (शारीरबल) औ  
र सह (मनोबल) बढाते हुए तिन द्वारों को होता यजे । और ते द्वार  
इन्द्र के अर्थ विवृता हैं और इस यज्ञ में आज्य पियें । कैसे द्वारः कि  
सुखेन प्रकृष्ट गमन जिन्हों में । अतः (यज्ञ) को बढाते । कैसे इन्द्र  
कि सींचने वाले के अर्थ ॥५॥

होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुधे मातरा मही । स  
वातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्धनां वीतामाज्यस्य  
होतर्यज ॥६॥

होता नक्तोषे + यजे और ते तेजकरि इन्द्र को बढावें और आज्य पियें ।  
नत्र दृष्टान्तः सवातरौ न (समान हैं वाता वछडे जिन्हों के ते एक  
शिशु के गौरं वत्स को जैसे बढाती हैं तेसे इन्द्र को बढावें कैसे

पूर्वपदलोपः

नक्तोऽथे किं धेनूः (प्रीणयिष्ये) । दुग्धं को पूरयन्त्ये । मातृवत्यालिके ।  
महन्त्ये ॥ ६ ॥

होता यक्षहेव्या होताग भिषजा सर्वाया हविषेन्द्रं भिष-  
ज्यतः । कवी देवो प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं बीता-  
माज्यस्य होतर्यज ॥ ७ ॥

देव्यो होतागैः (अयं चाग्निरसौ च मध्यमः) तिन्हे होता यजै और जे  
हवि करि इन्द्र को चिकित्सतः । इन्द्र के अर्थ वीर्य को धारण करत  
हैं । कैसे कि चिकित्सा कुशलौ अन्योन्य स्नेहवन्तौ । क्रान्तदर्शनौ । दी-  
प्यमानौ । प्रकृष्टज्ञान जिन्होंका तौ ॥ ७ ॥

होता यक्षत्तिस्त्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा  
सरस्वती भारती महीः । इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्वाज्य-  
स्य होतर्यज ॥ ८ ॥

भेषजरूपा जे तीनों लोक तिन्हें और इडा सरस्वती भारती तीनों दे-  
वीओं को होता यजै और ते आज्य को पियें । कैसे हैं तीनों कि अग्नि  
वायु सूर्य तीनों धर्तार हैं जिन्हों के । अपस्विनः (कर्मवन्तः) शीतो  
ष्ण वातवर्षादि जिन्हों के कर्म हैं । कैसे हैं तीनों कि महत्त्वः इ-  
न्द्रकी पत्नी हैं (पालयिष्यः) । हविष्मती हैं ॥ ८ ॥

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजं सुयजं घृतश्रिय-  
म् । पुरुषं सुरेतंसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदि-  
न्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ९ ॥

होता त्वष्टा प्रयाज देवता को यजै । कैसे त्वष्टा कि इन्द्र (प्रभु) देव (दाता



र)भिषज(रोगनिवर्तक)माधु यष्टव्य को घृत करि के प्रोभा है जि-  
स की तिसे पुरुष (बहुत हैं रूप जिस के तिसे) प्रोभन है रेत (वीर्य)  
जिस का तिसे मधवन्त(धनवन्त) को और सो त्वष्टा इन्द्र के अर्थदीर्घ  
कोधारण करते सन् आज्य पिये ॥४॥

होता यक्ष वनस्पति के शमितार ॥ शत क्रतुं धियो जाष्टार-  
मिन्द्रियम्। मध्वा समज्जन्यथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं  
मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतुर्यज ॥१०॥

होता वनस्पति प्रयाज देवता को यजे। कैसे वनस्पति कि उलूखलादिरू-  
प करि हवियों के संस्कर्ता। शतक्रतु(बहुकर्मा) बुद्धि के सेवितार इन्द्रि-  
य (आत्मा के हित वा वीर्यरूप) को। वोह वनस्पति मधु स्वादु घृत करि  
यज्ञ को समृक्षयन्सन् सुगमन मार्गों से मधु(स्वादु) घृत करि यज्ञ  
को देवताओं प्रति प्राप्त करे आज्य को पिये ॥१०॥

होता यक्ष इन्द्र ॥ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोका-  
नां स्वाहा स्वाहा कृतीनां स्वाहा हव्यसूक्तीनाम्। स्वा-  
हा देवा आज्यपा ज्ञायाना इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु हात-  
र्यज ॥११॥

होता इन्द्र को यजे। स्वाहाकार करि आज्य के देवताओं को यजे। स्वा-  
हाका० मेद के देव०। स्वाहाका० स्तोकों (सौमविन्दुओं) के देव०। स्वाहा०  
स्वाहा कृतीः प्रयाज देव०। स्वाहा० हव्यसूक्तीओं (हव्य सम्बन्धि सुवच-  
नों) के देव०। स्वाहाकार करि आज्यपा देवाः प्रीयमाणा होते और इ-  
न्द्र आज्य को पिये ॥११॥

अ० २. देवं बहिरिन्द्रं सुदेवं देवेवीरवत्स्तीर्णं वेद्यामवर्धयन्।  
वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतं राया बहिष्मतोऽन्यगावसुवने  
वसुधेयस्य वेतु यज ॥१२॥

एकादश ऐन्द्रपशोः सम्बन्धिन एवानुयाजप्रेषाः। देवता बहिरादयः  
॥ मेवावरुण कहिता है। बहिः संज्ञानुयाजदेवता इन्द्र की बढाता है  
कैसा बहिः कि शोभना देवा मरुदादयः जहां वोह। तथा देवों (दाताओं  
ऋत्विजों) करि वीरयुत। वेदी में आछादित। वस्त (दिन) में वृत (लून)  
अक्त (रात्रि) में प्रभृत (प्रकर्षण धृत) जो बहिः हविलक्षण धन करि ब-  
हिष्मत (बहिकरियुक्तों) अन्य प्राणों को अति क्रमण करि गया। संस्कारों-  
त्कर्ष से बाह बहि वसुवनन (धनदान) के अर्थ वसुधान (धननिधान)  
यजमान के घर में निरवनन के अर्थ वेतु (आज्य को पिये) और हेमनु-  
ष्य होतः तू यजि। एव मयेपि कण्डिका शेषो व्याख्येयः ॥१२॥

देवी द्वार इन्द्रं संघाते वीड़ीर्योमन्नवर्धयन्। आ व-  
त्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वीणं रेणु-  
ककाटं नुन्दन्ता वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१३॥

यज्ञगृहद्वारेऽत्र देवताः। याम (नियत होते हैं) ऋत्विज जहां कर्म में  
जे द्वारे देविणं इन्द्र की बढाती हुई। कैसी द्वारः कि संघाते (देहली कपा-  
ट द्वार शारवांगला समूह सति दृढा हैं) संघात विना द्वार दृढ नहीं हो-  
ता ॥ ते द्वार रेणुककाट (रेणुओं करि ककाट कुत्सित कूप) को निवर्त  
करें। किमित्यतो विशेषण। कैसे कूप कि वत्स (गोपुत्र) तरुण और  
कुमार करि आमिमुख्येन अर्वाण (जाते हैं जहां तिस) को। कैसे गोपु-

त्र कि मीवता (हिंसाशील करि। हिंसाशील(चञ्चल) उच्चलन्त वत्स-  
और कुमार जहां गिरते हैं तिस कृप को रोके- उपलक्षण मेतनु आशा-  
य यह है कि यज्ञ प्रजा के विघ्नकारी कृपा दिकों को मार्ग से निवर्तक-  
रे। और ते आज्य पियें ॥१३॥

देवीः उषासानकेन्द्रं यज्ञे प्रयत्युह्वेताम्। देवीर्विशुः प्रा-  
यासिष्ठाथ सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीता य-  
जे ॥१४॥

अहो रात्राधिष्ठात्र्यो देवी देव्यो यज्ञ में प्रवर्तमाने सति इन्द्र को बुला-  
ती हुई। और जे देव सम्बन्धिनी प्रजा (वसवो रुद्र आदित्या विश्वे देवा  
मरुत इत्यादिकों) को चलाती हुई। और ते पियें कैसी हैं कि सुप्रीते (अ-  
तितुष्टे) सुधिते (सुतरां हिते) ॥१४॥

देवी जोष्टी वसुधिते देवमिन्द्रमवर्धताम्। अयाव्यन्या-  
द्या द्वेषाथस्यान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शि-  
क्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीता यजे ॥१५॥

प्रीति युक्ते देव्यो वसुधिते धनका धारण जिन्हों से ते द्यावा पृथिव्यो  
अहोरात्रे वा-सत्यं च समाचेति कात्यक्यः निरु० ४१०) ते इन्द्र दे-  
वता को बढ़ाती हुई। तिन्हों के मध्य अन्य (एका) अर्घ्य (पार्यो) और द्वे-  
षो (दोर्भाग्यो) को दूर करती। दूसरी वार्यो (वरणीय भोगयोग्यो) धनों  
को प्राप्त कराती। कैसी हैं ते कि शिक्षिते (विदितवेद्ये) तत्त्वज्ञे। तेपीये ॥१५॥

देवीः कृज्जहती दुधे सुदुधे पयसेन्द्रमवर्धताम्। इयमू-  
र्जमन्या वक्षत्सग्धिष्ठं सपीतमन्या नवेन पूर्वदयमाने

पुराणेन नवमधातामूर्जं मूर्जाहुतीः ऊर्जयेमाने वसु वार्योणि  
यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१६॥

अधमन्न मन्त्रोक्तो देवताविकल्पः । देव्यो पूर्व प्रेषोक्ते दुग्ध करिदन्नको  
बढाती हुई । कैसी हैं कि ऊर्जाहृती बलयुक्ता आह्वान जिन्हों काते । दुग्धे  
(दोग्ध्यो) सुदुग्धे (साधुदोहने) तिन्हों के मध्य एका अन्न और दध्यादि  
यजमान के अर्थ प्राप्त करती है । दूसरी सग्धि (समान भोजन) और  
सपीति (पुत्रादि सहित पान भोजन) को वहती है । जे देवियें नये अन्न  
करि पुराने अन्न को पुराने अन्न करि नये अन्न को यजमान के धारण  
कराती और वार्यों वसुओं को रखाती अर्थात् अन्न धन को अक्षय  
करती हुई । कैसी हैं कि दयमाने (उक्षन्त्यो वा कृपयन्त्यो) क्षिप्तिते ।  
ते पिर्यें ॥१६॥

देवा देव्या होतारा देवमिन्द्र सवर्धताम् । हुताघशर्षसावा-  
भोर्घो वसु वायीणि यजमानाय शिक्षितो वसुवने वसुधे-  
यस्य वीतां यज ॥१७॥

एकः पार्थिवोऽग्निः अन्यो मध्यमः । देवो देव्यो होता रौ इन्द्रदेव को ब-  
 दाते हुए और यजमान के अर्थ वीर्यो वसुओं को आहरण करते हुए ।  
 कैसे कि हताघशंसौ (पापनिवर्तकौ) । ते पिर्यं ॥ १७ ॥

देवीस्त्रिस्त्रिस्त्रो देवीः यतिमिन्द्रमवर्धयन्। अस्पृक्षद्वारतीदि  
वर्धं रुद्रेयज्ञं सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने व-  
सुधेयस्य व्यन्तु यजे ॥१८

तीनों देवीयें पालक इन्द्र को बटाती हुई । ताणवाह-भारती (भरत-रविनि-

सकी कान्ति) स्वर्ग को स्पर्श करती है। सरस्वती रुद्रों युता यज्ञ को स्पर्श करती। वसुयुता इडागृहों (भूलोक) को स्पर्श करती है। ते पिये ॥१८॥

देव इन्द्रो नराशंसं सस्त्रिवरूथस्त्रिवन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत्। शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पति स्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१९॥

नराशंस (यज्ञदेव) इन्द्रदेव को बढाता हुआ। कैसा नराशंस कि ऐश्वर्यवान्। त्रिवरूथ (तीनों घर, सब हविर्धान आग्नीध्र जिसके बोह। त्रिवन्धुर (ऋग्यजुः सामलक्षण तीनों बन्धन जिसके। बोह नराशंस शिति (श्याम) पृष्ठों गौओं के शत करि आहितः सन् गो सहस्र करि प्रवर्तते हैं। मित्रावरुण दस नराशंस के होतृ कर्म में योग्य होते हैं बृहस्पति औह्रात्र को अश्विनो दस के आध्वर्यव को योग्य होते हैं। बोह पिये ॥१९॥

देवो देवेर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशारवः सुपिप्यलो देवमिन्द्रमवर्धयत्। दिवमग्नेण स्पृक्षदन्तरिक्षं पृथिवीमहर्हो ह्यसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२०॥

यूप उच्यते वनस्पतिर्देवः देवों सहित इन्द्र को बढाता हुआ। कैसा किहिरण्यमय हैं पते जिसके। रसवती शारवा जिसकी। शोभन फल जिसके। जो वनस्पति अग्र (टुकसी) करि स्वर्ग को स्पर्श करता है अन्तरिक्ष को मध्य करि इति शेषः सर्वतः स्पर्श करता पृथिवी को ऊपर करि इति शेषः दृढ करता। सो पिये ॥२०॥

देवं बर्हिर्वरितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत्। स्वासस्यमिन्द्रे

एणसन्नमन्या बर्हीथं ष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु  
यज ॥२१॥

बर्हि (अनुयाज देव) इन्द्रदेव को बढाता हुआ अन्य बर्हिओं को अभिहोता है वो-  
ह पिये। कैसा बर्हि कि वारितीयों (ओंषधीओं) के मध्य में देव (दीप्यमा-  
न श्रेष्ठ) स्वासस्थ (सुख आसन करि जहां स्थित होते हैं वोह) इन्द्र  
करि आश्रित ॥२१॥

देवोऽग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयत्। स्विष्टं कुर्व-  
न्स्विष्टकृत्स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य  
वेतु यज ॥२२॥

स्विष्टकृद्देवः अग्निः इन्द्रदेव को बढाता हुआ वोह हमारा स्विष्ट  
(साधुदृष्ट) करे और पिये। कैसा कि स्विष्ट करते सन् स्विष्टकृत्नाम (शे-  
भन दृष्ट को करूंगा यह तिस का अधिकार है) ॥२१॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्यक्तीः प-  
चन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय ह्यगम्। सूपस्था अद्य देवो  
वनस्पतिरभवदिन्द्राय ह्यगैर्न। अयत्तं मैदस्तः प्रति प-  
चताग्रं भीदवीरुधन्पुरोडाशेन। त्वामद्यः ऋषे ॥२३॥†

त्वामद्य अयं प्रतीकः उभयत्रापि। ऐन्द्रपशुसम्बन्धी सूक्तवाक्प्रेषः  
त्वामद्यः ऋषे इत्ययं मन्त्र उभयत्रापि ऐन्द्रानुवाके वायोधसानु-  
वाके च प्रतीकोक्तेः आदिमात्रेणोक्तः सकलो ज्ञेयः। व्याख्यातः  
प्रेषः २१. ५४-६१॥२३॥

अ. ३. होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमि



न्रं वयोधसम् । गायत्रीं छन्द इन्द्रियं अविं गां वयो  
दधद्देत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२४॥

एकादश वयोधसे यज्ञो प्रयाज प्रेषाः समित्तनूनपादाद्याप्रीदेवताः ।  
दैव्यो होता अग्नि को और वयोधा इन्द्र आयु के दाता वा धारयितार)  
को यजे । कैसे अग्नि कि दीप्यमान । वंडे यज्ञ करि दीप्त । वरणीय को । क्या  
करता यजे कि गायत्री छन्द वीर्य एकवर्ष छे महीने की गो और आयुस्था-  
पन करता इन्द्र में इति शेषः । प्रयाज देवता इन्द्र युता आज्य को पिये ।  
हे मनुष्य होतः तू भी यजि । एवमग्रेऽपि ॥२४॥

होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमि-  
न्द्रं वयोधसम् । उषिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो  
दधद्देत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२५॥

होता तनूनपात प्रयाज देवता को और वयोधा इन्द्र को यजे अदिनि  
ने जिसे गर्भ में धारण किया अर्थात् तिस इन्द्र को । कैसे तनूनपात  
को कि उद्भिद (यज्ञफलों के उद्गतार । पवित्र को । क्या करता कि उषि-  
हं छन्द वीर्य दो वर्ष की गो और आयु इन्द्र में स्थापन करता ॥२५॥

होता यक्षदीडेन्यमीदितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्य ठं  
सहः सोममिन्द्रं वयोधसम् । अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं  
यच्चाविं गां वयो दधद्देत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२६॥

होता इडाओं प्रयाज देवताओं सहित वयो ० । कैसे इन्द्र कि ईडेन्य (स्तु-  
तियोग्य) को । ईडित (ऋषियों करि स्तुत । अत्यन्त वृत्रहा । ईडा (सर्वोक्त-  
रिस्तुत्यः । सहः सोम (बल करि सोम वदाल्हादको) को । क्या करता कि अ-

नुष्टुप छन्द इन्द्रिय दोवर्ष छैं महीने की गो और वय इन्द्र में स्थापन करता ॥२६॥

होता यक्षत्सु बर्हिषं पूषणवन्तममर्त्यं सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम् । बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवलं गां वयो दधद्देवाज्यस्य होतुर्यज ॥ २७ ॥

होता वयो० । कैस को कि शोभन बर्हिः प्रयाज देवता जिस के तिसै। पूषणयुक्त । अमरण धर्मो । प्रिय अनश्वर बर्हि पर बैठे को । क्या० कि बृहती छन्द इन्द्रिय तीन वर्ष की गो (का वृषभ) और आयु इन्द्र में स्थापन करता ॥२७॥

होता यक्षद्वचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययी ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् । पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्द्वन्त्वाज्यस्य होतुर्यज ॥ २८ ॥

होता द्वारो देवीः और ब्रह्मा (परिवृट) वयो० कैसी द्वारः कि गमनावकाश विद्यमान हैं जिन्हें में । अत एव शोभन प्रकर्ष करि गमन हैं जिन्हे में । सत्य की बढ़ाने वाली । हिरण्ययी ब्रह्माः । क्या० कि पङ्क्ति छन्द इन्द्रिय तीन वर्ष छैं महीने की गो और वय इस इन्द्र में स्थापन करता ॥२८॥

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्ये बृहतीऽनुभे नक्तोषासान दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् । त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्टुवाहं गां वयो दधद्दीतामाज्यस्य होतुर्यज ॥ २९ ॥

होता दोनों नक्तोषा (रात्रि और रात्रि के अपरभाग) और सर्वोत्तम वयो० कैसी  
ओं की नक्तोषसौ कि शोभन हैं रूपाजिन्हों के। सुशिल्य (यद्वे प्रतिरूपं तच्छि-  
ल्यमिति युते) शोभन शिल्य जिन्हों के ते अन्योन्य प्रतिरूपे। बृहत्स्यो। दशे  
नीये। क्या० कि त्रिष्टुप् छन्द इन्द्रिय चारि वय की गों और वय इन्द्र में  
स्था०। तेषिये ॥२६॥

होता यक्षत्यचतसा देवानामुत्तमं यशां होतारु देव्या  
कवी सयुजेन्द्र वयोधसम्। जगती छन्द इन्द्रियमनडा  
हं गा वयो दध द्वाता मान्यस्य होतयेज ॥३०॥

होता देव्यो होतारों० और वयो०। कमें होतारों का कि प्रचतसौ (प्रकृष्ट  
ज्ञान जिन्हों का तिन्हें) देवानामुत्तमं यशां० युजी कृतदेव यशो रूपो। क  
वी (क्रान्तदर्शनों)। समानयोगों। क्या० जगती छन्द इन्द्रिय शकटक्षमो  
वृषः और वय इन्द्र में स्था०। तेषिये ॥३०॥

होता यक्षत्येषास्वतीन्तिमं देवीर्हि गायत्री भारती वृहती  
मेहीः पतिमिन्द्र वयोधसम्। विगजं छन्द इहेन्द्रिय धेनुं गां  
न वयो दध द्वाता मान्यस्य होतयेज ॥३१॥

होता तीनों देवियों और पालक वयो०। कैसी तीनों कि रूप समृद्धा। हिरण्य  
लङ्कृत देहाः। बृहतीः (प्रभाव करि) महतीः (तेज करि) आदित्येन्द्राग्नि स  
म्बन्धात्। किन तीनों कि इडा सरस्वती भारती०। क्या० विगज छन्द इन्द्रि-  
य धेनु (होग्धीगा) और वय इन्द्र में स्था०। इन्द्रसहिता ता पिये ॥३१॥

होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टि वर्धनं रूपाणि विभ्रतं  
पुष्टिपुष्टिमिन्द्र वयोधसम्। द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं

अथर्ववेदोक्तं नक्तोषा रात्रि अपरभाग इति होतारो देव्या कवी सयुजेन्द्र वयोधसम् जगती छन्द इन्द्रियमनडा हं गा वयो दध द्वाता मान्यस्य होतयेज ॥३०॥

गां न वयो दध्नेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३२॥

होता त्वष्टा और वयो० कैसे त्वष्टा कि शोभन रेत जिसका (जगदुत्पाद-  
कत्वाम्। पुत्रादि पुष्टि के वर्धयितार। पृथक् (नाना जातियों में) रूपों और  
पुष्टि को धारण करने को। क्या० द्विपद छन्द इन्द्रिय रेतः से कक्षम वृषभ  
और वय इ० इन्द्र सहित त्वष्टा पिये ॥३२॥

होता यक्षहनस्यतिष्ठं शमितारं शतक्रतुं हिरण्यप-  
णमुक्थिनं रशनां विभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधस-  
म्। ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दध्नेत्वा-  
ज्यस्य होतर्यज ॥३३॥

होता वनस्यति और वयो० कैसे वनस्यति कि हवियों के संस्कर्ता। बहुक-  
र्मा। हिरण्यपणोंवाले। उक्थिन (शस्त्रवाले वा यज्ञवन्त। रज्जु को धार-  
ण करते)। कान्त। भजनीय। क्या० कि ककुपू छन्द इन्द्रिय वन्द्या औ-  
र गर्भोपघातिनी गो और वय इ० इन्द्र सहित वनस्यति पिये ॥३३॥

होता यक्षत्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं  
कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम्। अतिछन्दसं छन्द इन्द्रियं  
बृहद्वेषभं गां वयो दध्नेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३४॥

होता स्वाहाकृतीः प्रयाजदेवताओं और इन्द्र को यजे। कैसे इन्द्रकिञ्च-  
ग्नि (आगे में गन्तार) पृथक् (प्रत्येक) यज्ञों में गृह के पालक। वरुण  
(ऋत्विजों करि वरणीय। रोगनाशक। कान्तदर्शन। प्रहार से नातार।  
वयोधा (आयु के दातार। क्या० कि अति छन्द के छन्द इन्द्रिय (वीर्य)  
बड़े पुष्ट गो और वय इन्द्र में स्थापन करता। इन्द्र सहिताः स्वाहा-

कृतयः देवाः आज्यपिये । हे मनुष्य होतः त्वमपि यज ॥३४॥

अ० ४० देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रं मवर्धयन् । गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥३५॥  
वयोधसे यथा वैवैकान्तशान्तु याजानां प्रेषाः बर्हिर्गदिदेवताः । बर्हिदेव वयोधा इन्द्रदेवता को वदता ह आ । कैसा बर्हि कि गायत्री छन्द करि के वक्षु इन्द्रिय और वय इन्द्र में स्थापन करता । वोह वसुवनन और वसुधान के अर्थ आज्यपिये । हे मनुष्य होतः तू भी यजि । एव मग्नेऽपि व्याख्येयम् ॥३५॥

देवी द्वारे वयोधसं शुचिमिन्द्रं मवर्धयन् । उषिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥३६॥

द्वारे देविये वयोधा यवित्र इन्द्र० । उषिक् छन्द करि प्राणेन्द्रिय० ॥३६॥  
देवीऽउषा सानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् । अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३७॥

उषामानक्तो देविये दीप्यमाना वयोधा दीप्यमान इन्द्र० । अनुष्टुप् छन्द करि बल इन्द्रिय० एकं देवी देवं शब्दो दीप्तिवाचको अन्यो सुखाचको ॥३७॥

देवी जोष्टी वसुधिति देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् । बृहत्या छन्दसेन्द्रियं औत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३८॥

दीप्यमाने देव्यो (अनुयाज देवते) जोष्ट्रियं दीपवयोधा इन्द्र ० बृहती  
छन्द करि श्रोत्रेन्द्रिय ॥ ३८ ॥

देवीऋजुर्जाहती दुधे सुदुधे पयसेन्द्र वयोधसं देवी देव-  
मवर्धताम् । पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियं ऋक्मिन्द्रे वयो दध-  
द्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३९ ॥

ऊर्जा ह्वान्यो देव्यो (दात्र्यो) पय करि दीप वयो ० कैसी कि दुधे सुदुधे । प-  
ङ्क्ति छन्द करि श्रुक्तेन्द्रिय ॥ ४० ॥

देवा देव्या होतार देवमिन्द्र वयोधसं देवो देवमवर्धता-  
म् । त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने  
वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ४० ॥

देव्यो देवो (दीप्तौ) देवसम्बन्धिनी होतारो दीपवयो ० त्रिष्टुप् छन्द क-  
रि कान्ति इन्द्रिय ॥ ४० ॥

देवीस्तिस्तिस्तिस्त्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्धयन् ।  
जगत्या छन्दसेन्द्रियं ऋषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने व-  
सुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४१ ॥

तीनों देवियें भारतीडासरस्वत्यः वयोधा पति इन्द्र को ० जगती छन्द  
करि बल इन्द्रिय ० अभ्यास आदरार्थः ॥ ४१ ॥

देवो नराशंसो देवमिन्द्र वयोधसं देवो देवमवर्धय-  
त् । विराजा छन्दसेन्द्रियं रूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने  
वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४२ ॥

दाता नराशंसो देव दीप वयोधा इन्द्र देव ० विराज छन्द करि रूप



न्द्रिय०॥४२॥

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् ।  
द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधेद्वसुवने  
वसुधेयस्य वेतु यज ॥४३॥

दाता वनस्पतिर्देव द्योतन वयोधा इन्द्रदेव० । द्विपदा छन्द करि  
भगेन्द्रिय ०॥४३॥

देवं बर्हिर्वोरितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्ध-  
यत् । ककुभा छन्दसेन्द्रियं यश इन्द्रे वयो दधेद्वसुवने  
वसुधेयस्य वेतु यज ॥४४॥

वारितीयोंके मध्यदीप्त (श्रेष्ठ) बर्हिः देव दीप्यमान वयोधा इन्द्रदेव० ।  
ककपू छन्द करि यशोरूप इन्द्रिय ०॥४४॥

देवोऽग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमव-  
र्धयत् । अतिछन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधे  
द्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४५॥

दाता स्विष्टकृतू अग्निः देव (दीप्त) वयोधा इन्द्रदेव० । अति छन्द छन्द  
करि क्षत् सेवणरूप इन्द्रिय ०॥४५॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः ।  
पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम् । सूपम्या  
अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन ।  
अद्यतं मेहस्तः प्रति पचताग्रभीदवी हृद्यत्पुरोडाशेन ।  
त्वामद्य ऋषे ॥४६॥

इतिसर्गहितायां चतुर्थोऽनुवाकः४

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनशारवीयायां वाजसनेयस

र्गहितायां दीर्घ पाठेऽष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

वायो धसपशुसम्बन्धि सूक्तवाकप्रेषः। व्याख्यातः कण्डि०२३। इन्द्रा-

य वयोधसे इति विशेषः॥४६॥

इति गिरिधरभाष्ये चतुर्थोऽनुवाकः४

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्द निवारयन्

पुमार्थाश्चतुरे देयाद्यज्ञदेवः सनातनः२८

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशारवाध्येतु व्याघ्रपादान्वयवि-

श्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरेणुकिमणायनृपतिगिरि-

प्रसादेन रचितं श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये सोत्रामणि सम्बन्धि प्र-

याजानुयाजप्रेषनिरूपणं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः २९

समिद्धोऽञ्जन्नाश्च मेधिकोऽध्यायः (प्रजापतिदृष्टः)

अ० १०

समिद्धोऽञ्जन्नुदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत्पिब-

मानः। वाजी वहन्वाजिनं ज्ञानवेदो देवानां वक्षि प्रि-

यमा सुधस्थम् ॥१॥

ॐ नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्री वेदार्थ प्रदीपके ॥

गृहनेत्रयुतेऽध्याये हयशिष्टः समीर्यते २५

अश्वमेधिकोऽध्यायः ततोऽस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आद्या एकादशविष्टु-  
मः आप्रीसंज्ञा अश्वस्तुतयो वामदेवपुत्रेण बृहदुक्थेन समुद्रपुत्रे-  
णाश्वेन वा दृष्टाः समित्तनूनपादिडादिदेवताकाः । हे अग्ने हे जात-  
वेद तू देवताओं के सहस्थान प्रति प्रियमावक्षि (देवताओं को तृप्त क-  
रि। कैसा है तू कि दीप्तः मती-ओं (बुद्धि-ओं) के कदर (उदर-गर्भ) को व्यक्ती-  
करता अर्थात् बुद्धिरहस्य को प्रकाश करता । स्वादुघृत को देवताओं  
में सींचता । वाजी (चलनवान्) वाजिन (हवि) वहन् (देवताओं को प्राप्त  
करते सन् तृप्त करि ॥१॥

घृतेनाज्जन्तं यथो देवयानान्प्रजानन्वाज्ययेतु देवान् ।

अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताथ स्वधामसै यजमा-  
नाय धेहि ॥२॥

अश्वदेवताओं को प्राप्त करे । कैसा कि घृत करि देवताओं के मार्गों (ह-  
वियों) को आजता । प्रजानन् (देवताओं का हविहं यह जानता । एवं य-  
रोक्षमुक्ता प्रत्यक्षमाह । हे सप्ते (अश्व) दिगाश्रय भूत तुम्हें सेवन करें ।  
किं च इस यजमान के अर्थ अन्न दे । अत्र घृत शब्दस्तनूपाद्धाची ॥२॥

ईक्षुश्चासि चन्दश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।

अग्निष्ठा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जा-  
तवेदाः ॥३॥

अश्वमेधिकोऽध्यायः ततोऽस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आद्या एकादशविष्टु-  
मः आप्रीसंज्ञा अश्वस्तुतयो वामदेवपुत्रेण बृहदुक्थेन समुद्रपुत्रे-  
णाश्वेन वा दृष्टाः समित्तनूनपादिडादिदेवताकाः । हे अग्ने हे जात-  
वेद तू देवताओं के सहस्थान प्रति प्रियमावक्षि (देवताओं को तृप्त क-  
रि। कैसा है तू कि दीप्तः मती-ओं (बुद्धि-ओं) के कदर (उदर-गर्भ) को व्यक्ती-  
करता अर्थात् बुद्धिरहस्य को प्रकाश करता । स्वादुघृत को देवताओं  
में सींचता । वाजी (चलनवान्) वाजिन (हवि) वहन् (देवताओं को प्राप्त  
करते सन् तृप्त करि ॥१॥

हे सभे हे वाजिनू सुन्यहें नमनीयहें ॐ आशुमेध्यः (अश्वमेधकें अर्थ योग्यहें) किंच जात वेदाः अग्नि तुम्हें देवता ॐ को प्राप्त करे। कैसे अग्नि कि वसु देवता ॐ करि प्रीति सहित। कैसे तुम्हें कि प्रीति (तुष्ट) वहि (हवियों के बोझार) को ॥३॥

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणेरु पृथु प्रथमानः पृथिव्या  
मू। देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वन्ना सु-  
विते दधातु ॥४॥

हम बर्हि सुष्टरीम (साधुस्तरण करते हैं) अदिति देवी स्तीर्ण वोह बर्हिः  
स्वर्गलोकमें स्थापन करे। कैसे अदिति कि प्रीति करि युक्ता। सुष्टरीम को  
करती। प्रीयमाण। कैसे बर्हि कि बहुत विस्तीर्ण। पृथिवी में विस्तार्येति मान।  
देवता ॐ सहित ॥४॥

एता उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयम। एता  
उदोतैः। ऋषाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारे देव। मीः  
सुप्रायणा भवन्तु ॥५॥

हे ऋत्विज यजमान ॐ तुम्हारी ये द्वारे देवीः (यज्ञगृह द्वारे देव्यः)  
ईदृशीहों। उ पादपूरणः। कैसे कि सुभगाः (शोभन श्रीजिन्हों में) ना  
नारूपचित्राः। पक्षों (पक्षप्राय कपाटों) से विस्तार्यमाणः। कैसे पक्षों  
कि ऊर्ध्व प्रसृतों। पुनः कैसे द्वारः कि इतस्ततो गमनशीलाः महत्यः  
सतीः (समीचीनाः। कवषः (कपाट जो डते समय शब्द करती वा सुषि-  
र। शोभमानाः ॥५॥

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती सुरंवे यज्ञानाममिसंविदा-

ने। उषासा वाथं सुहिरण्ये सुशिल्येऽऋतस्य योनावि-  
ह सादयामि ॥६॥

हे पत्नी यजमानो तुम्हारे यज्ञ के स्थान में इन रात्रि दिन को स्थापन करता हूँ। कैसी रात्रि दिन कि मित्रावरुणो अन्तरा (द्यावापृथिवी के मध्य में) वर्तमाने + यज्ञो (अग्नि होत्र) के मुख (होमकाल) को कहतीं- उठो यह अग्नि होत्र होमकाल है यह विप्र प्रातः काल कहिते हे तदुषस्युपचर्यते। साधु हिरण्यं भूतं जिहो काने। अन्योन्यं प्रतिरूपे ॥६॥

प्रथमा वाथं सरथिना सुवर्णा देवो पश्यन्तो भुवनानि  
विश्वा। अपि प्रयं चोदना वां मिमाना होतां ज्योतिः प्र-  
दिशा दिशन्ता ॥७॥

हे यजमानो तुम्हारे मुखो होतां (अयं चाग्निरसौ च मध्यमः) को में प्रीणितवान् हूँ। कीदृशो कि सरथिनो (एकरथारूढौ) शोभन ब-  
णो। देवो (दीप्यमानो-दातां)। सब भुवनों को देखते। तुम्हारे चोदना (कर्मों) को निर्मिमाणो। प्रदिशा (प्रदेश-अभिनय) करि ज्योतिः दिशन्तो (आहवनीयाख्यज्योति यष्टव्य यह दिखलाते) ॥७॥

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञं सरस्वती सह रुद्रैर्न  
आवीत्। इडोपहृता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीर-  
मृतैषु धत्त ॥८॥

आदित्यों करि युता भारती हमारे यज्ञ को चाहै। सरस्वती रुद्रों सहित हमारे यज्ञ की रक्षा करें। और इडारक्षा करें कैसी कि उपहृता (कृतो-

इति श्रुतेः।  
+ अयं वेदो किं मित्रो सो ब्रह्म

तवा) वसुदेवताओं से प्रीति युता। एवं यरोक्षमभिधाय प्रत्यक्षमाह-  
देवी: (भारती सरस्वतीडा:) हमारे यज्ञ को देवताओं में स्थापन  
होतः ॥८॥

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुर्वी जायतः आश्वरथः  
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि  
होतः ॥८॥

त्वष्टा वीर (पुत्र) को उत्पन्न करता है कैसे पुत्र कि देवकाम (अथवा  
या पाकरण समर्थ) को। त्वष्टा के सकाश से अश्व उत्पन्न होता है कैसे  
अश्व कि अर्वा (गमनशील) आशु (दिशः व्याप्त होता वा भक्षण करता  
किंच त्वष्टा इस सब भूत को उत्पन्न करता। हे होतः एवं बृहत् कार्य के  
कर्तार त्वष्टा को इस यज्ञ में नू यजि ॥८॥

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवां २॥ ऋतुशः पाथ  
एतु। वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदिता  
नि वक्षत ॥९॥

अश्वः पाथः (अश्वरूप हवि) ऋतुशः (यज्ञकाल में) आप देवताओं को  
प्राप्त हो। कैसे अश्व कि घृत करि समक्त (पत्नीओं करि समुक्षित। किंच  
वनस्पति देव हवियें बहै देवताओं प्रति। कैसे हवियें कि अग्नि ने  
आस्वादन करि मिष्टी कि ई ॥९॥

प्रजापतेस्तपसा बार्हधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमे  
ग्ने। स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरव  
न्तु देवाः ॥१०॥



हे अग्ने तू यज्ञ को धारण करता है कैसे है तू कि प्रजापति के तप करि वर्धमान। सद्यो जातः (अरणी से उत्पन्न)। किं च स्वाहाकार कहे हुत हवि सहित अग्रगामी सन् देवताओं प्रति जा तेरे गये सति देवताश्रेष्ठ हवि भोजन करें ॥११॥

अ० २ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्तमुद्रादुत वापुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महिजातं ते अर्वेन ॥१२॥

त्रयो दशा ग्रीस्तुतिरूपास्त्रिष्टुभो भार्गवो जमदग्निदृष्टा दीर्घतमा दृष्टाश्च श्वस्तुतो विनियुक्ताः। हे अर्वेन (अश्व) जब कि तू अक्रन्द (बड़े शब्द से हीं सता हुआ) तब तेरा माहात्म्य स्तुतियों ग्य हुआ। कैसी स्तुति योग्य तदाह कि श्येन के पक्षों हरिण के बाहू इस क्रन्दन से जीते इति शेषः अर्थात् शौर्य करि श्येन पक्षों वेग करि हरिण बाहू। कैसा है तू किस मुद्र (अन्तरिक्ष वा उदधि) से जायमान उत वा (अथवा) पुरीष (पशु) के सकाश से उत्पद्यमान ॥१२॥

यमेन हन्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमोऽपध्यतिष्ठतु। गन्धर्वोऽस्य रशनामगृम्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥१३॥

वसवो षष्ठगणदेवाः सूर (आदित्यमण्डल) से अश्व को निरतष्टः (नितक्षते हुए)। ततः त्रितः (विस्थानो वायुः) यम करि दिये इस अश्व को जोड़ता हुआ। और इन्द्र इस अश्व को प्रथम अधिष्ठित हुआ। गन्धर्व (विश्वावसु) इस अश्व की रशना (रज्जु) पकड़ता हुआ। जो ऐसानी

मैं स्तुति करते हैं ॥१३॥

असि यमोऽपस्यादित्योऽर्वन्नसि त्रितो गुह्येन  
व्रतेन। असि सोमेन समया विष्टुक्त आहुस्ते त्रीणि  
दिवि बन्धनानि ॥१४॥

हे अर्वन् तू यम है और आदित्य है गोप्य व्रत (कर्म) करि त्रित (वि-  
स्थान इन्द्र) है। सोम सहित एकीभूत है। एव यमादि करि सायुज्य प्राप्त  
तुम् आदित्य रूप करि नभ में स्थित के तीनि बन्धन बुद्धिमान कहते हैं  
(ऋग्यजुः सामरूप मण्डलान्तर पुरुष की अर्चि हैं तीनि बन्ध-  
न स्वरूप हैं) ॥१४॥

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समु-  
द्रे। उतेव मे वरुणश्छन्त्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं ज-  
नित्रम् ॥१५॥

हे अर्वन् जहां तेरा परम जनित्र आदित्य रूप बुधा कहते हैं तहां तरे पूर्वमन्त्रोक्त  
तीनि बन्धन कहते हैं। जल में तीनि बन्धन कहते हैं (कषि-दृष्टि-बीज-  
रूप करि। समुद्र (अन्तरिक्ष) में तीनि बन्धन (मेघ-विद्युत्-स्तुनयितु) क-  
हते हैं। उतेव और वरुण रूप तू मुझे प्रशंस (अर्चन) है ॥१५॥

इमा ते वाजिन् वमार्जना नीमा शफानां सनितुर्नि-  
धाना। अत्रा ते भद्रा रशना अपश्य मृतस्य या अभि-  
रक्षन्ति गोपाः ॥१६॥

हे वाजिन् तेरे इन अवमार्जनों (वेतसकरादिकों) की मैं देखता हूं। शफों  
(खुरों) के सनितुः (सम्भक्तुर्नियन्तुः पादवास के) इन निधानों (स्थानों)

की देखता हूँ। इस यज्ञ में तेरी रशना (मध्यबन्धनरज्जुः) देखता हूँ। कै-  
सी रशना कि भद्राः (कल्याणरूपाः) स्तुत्याः। गोपाः (रक्षणकर्त्र्यः) जो  
रशना यज्ञ को सर्वतः रक्षा करती है ॥१६॥

आत्मानं ते मनसा राद जानामवे दिवा पतयन्त पतंग-  
म्। शिरोऽपश्ये पृथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जहमानं  
पतत्रि ॥१७॥

एवमश्वं स्तुत्वा भविष्यत्कर्मणा स्तोति। हे अश्व तेरे आत्मा को मन  
करि दूर में जानता हूँ। कैसे आत्मा कि अधः प्रदेश से नमो मार्ग  
करि पतंग (सूर्य) प्रति उत्पतन्त को। किं च तेरे शिर को सूर्य रूप दे-  
खता हूँ। कैसे शिर कि नमो मार्ग करि जहमान चलता कैसे मार्ग  
कि सुगमों रेणु (उपद्रव) रहितों करि। पुनः कैसे कि पतत्रि (प-  
तनशील-गन्ता को ॥१७॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे  
गोः। यदा ते मर्तोऽनु भोगमान डादिभू सिष्ठ ओष-  
धी रजीगः ॥१८॥

हे अश्व इस गोः पद (सूर्यके मण्डल) में तेरे उत्तमरूप को समन्तात्  
देखता हूँ। कैसे रूप कि इष (हविरूप अन्न) जीतने को इच्छा करता।  
किं च मनुष्य जब कि तेरे हविरूपभोग को समर्पण करता है अनन्तर मे-  
व नू हविर् (ओषधिरूपाः) भक्षण करता है कैसा है नू कि अत्यन्त  
भक्षयता ॥१८॥

अनु त्वा रथोऽनु मर्योऽवन्ननु गावोऽनु भगः

कनीनाम् । अनु ब्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा  
ममिरे वीर्यं ते ॥ १८ ॥

हे अवेन् (अश्व) रथ तुमै अनुवर्ते है इति शेषः । मनुष्य तुमै अनु गो  
तु । कन्याओं का सौभाग्य तु । अर्थात् जहां तू जहां रथादिक हैं ।  
किंच ब्राताः (मनुष्यसंघा) तेरे सख्य (मैत्री) को प्राप्त हुए । किं बहु  
ना देवता तेरे वीर्य (सामर्थ्य) को अनुममिरे (अनुमितवन्तः) ॥ १८ ॥

हिरण्यशृङ्गोऽयोऽस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र  
आसीत् । देवा इदस्य हविरद्येमायन्योऽर्बन्तं प्रथ-  
मोऽध्यतिष्ठत् ॥ २० ॥

जो प्रथम (मुख्य) अर्बन्त (अश्व) को अधिष्ठित हुआ वोह भी इन्द्रा-  
क्षया न्यून था कैसा इन्द्र कि हिरण्यशृङ्ग (हिरण्यवत् दीप्तिजिसकी)  
इस अश्व के पादा अयः (लोहरूपावा हिरण्यरूपा) के से पादा कि म-  
नोवत् वेग जिन्हों का ते । किंच देवा इस अश्व के हविरक्षणाभक्ष्य  
प्रति आये ॥ २० ॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सर्गं शूरणासो दिव्या-  
सोऽपत्याः । हर्षं सा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषु-  
दिव्यमज्जमश्वः ॥ २१ ॥

सूर्याश्वरूपेण यमश्वः स्तूयते । जब कि अश्वः (सप्त रविरथस्थाः) श्रेणि  
भूताः हंस ऐसे भले प्रकार प्रयत्न करते हैं तब दिवि में हुए अज्ज (गम-  
न वा संग्राम) को व्याप्त होते हैं अर्थात् हंस जैसे गमन के अर्थ प्रयत्न  
करते हैं तैसे अश्व भी । कैसे घोड़े कि ईर्मान्तासः (पेरित है अन्तः श-

रीरप्रान्तजिन्हों का अर्थात् पृथुजघनोरस्का। सिलिकमध्यमासः (संलग्न हैं मध्य प्रदेशजिन्हों का अर्थात् कशोदरा। शूरणासः (शीघ्र हैं स्ववायु ह्व जिन्हों का यद्वा शूरणा रवितिसके सम्बन्धिनः। दिव्यासः (दिवि में हुए। अत्याः (सतत चलते हैं) सकृद्युक्ता ब्रह्माह पर्यन्त रविरथ को वह ते हैं ॥२१॥

तव शरीरं पतयिष्यन्वेन्तव चित्तं वात-इव ध्रुजीमान्। तव शृङ्गाणि विष्टिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणां चरन्ति ॥२२॥

हे अर्बन् तेरा शरीर उत्पतनशील है। तेरा चित्त गतिमान् वात जैसे वेगवत् सूक्ष्मार्थों को जाता। तेरे शृङ्ग (दीप्ति) वनों में दवाग्निरूप करि प्रसरती हैं कैसी शृङ्ग कि बहुधा विष्टिता (विविधस्थित) विद्युच्चन्द्रार्काग्नि में स्थित। जर्भुराणां (जृम्भ विकसन में विकसित हैं) ॥२२॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः। अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥२३॥

अर्वा (अश्व) विशसनस्थान को समीप आया। कैसा अर्वा किवाजी (गमनशाल वा अन्नवान्) देवद्रीचा मनसा दीध्यानः (देवताओं प्रति गये चित्त करि दीप्यमान। किं च इस अश्व के आगे में अज स्थापन करिये हैं। इस की नाभि में अज स्थापन करिये हैं। इस के पीछे कवयः (ऋत्विजलोग) चलते हैं। कैसे कवयः कि रेभाः (स्तुतिकर्तारः) ॥२३॥

उप प्रागात्परमं यत्सद्यस्थमर्वा २॥५ अछा पितरं मा-  
तरं च । अद्या देवान्जुष्टतमो हि गम्या अथाशास्ते  
दाशुषे वार्याणि ॥ २४ ॥

एवमश्वं स्तुत्वा यजमानाह । अर्वांन् (अश्व) पिता और माता (द्यावापृ-  
थिव्यो) के अछ (समीप) में परम उत्कृष्ट जो सहस्थान तिसके समी-  
प गया अश्व के ही देवलोक को जाते है यजमान प्रीततमः सन् अद्यः (अव-  
तू देवलोक को जावैगा अथैवं देवत्व को गये हविर्देव बने तेरे अर्थ  
वरणीय भोग्यवस्तुएं क्षिप्र देवगण वा अश्व देवें ॥ २४ ॥

अ. ३. समिद्धोऽप्यद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जात-  
वेदः । आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरे-  
सि प्रचेताः ॥ २५ ॥

द्वादशाग्नी संज्ञास्त्रिष्टुभः जमदग्निदृष्टाः समित्तनूनपादादयो देवताः ।  
हे जातवेदः (जातज्ञान) मनुष्य (यजमान) के यज्ञ गृह में आज तू देवता-  
ओं को यजि। कैसा है तू कि दीप्तदानादिगुणयुक्त । और हे मित्रमहः (मि-  
त्रों-यजमानों को पूजता है) देवताओं को बुला अर्थात् यजि। क्योंकि  
तू ऐसा है कि चिकित्वान् (चेतनवान्) दूतक्रान्तदर्शी प्रचेता (प्रकृष्टचेतजि-  
सका बोह) अतएव यजि ॥ २५ ॥

तनूनपात्यथ ऋतस्य यानान्मधा समञ्जन्त्स्वदया  
सुजिह्व । मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च क-  
णुत्यध्वरं नः ॥ २६ ॥

हे तनूनपात् (अग्ने) हे सुजिह्व (शोभनाजिह्वा जिसकी बोह +) ऋत



के पयों (हवियों) को स्वदय (रोचय-भक्षण करि)। क्या करता कि मधु-  
र रस करि संभक्षयन्। किं च हमारे यज्ञ को देवता (देवताओं) प्रतिशप्त  
वरि। क्या करता कि बुद्धिओं सहित ज्ञानों और यज्ञ को समर्थयन्-  
शीत् हमारे ज्ञान और यज्ञ को बढाके यज्ञ को देवलोक में प्राप्त  
करि ॥२६॥

— यायन्ते  
धैर्ये बु ते पा-  
नास्तान् अ-  
तो यज्ञः तस्य  
गमनसाधना  
हवींषि।

नराशंसस्य महिमानं मेघामुपलोषाम यज्ञतस्य य-  
ज्ञैः। ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभ-  
यानि हव्या ॥२७॥

नराशंस (प्रजापति वा अग्नि) के महाभाग्य को इन देवताओं के मध्य  
में हम स्तुति करते हैं। कैसे नराशंस कि यज्ञों करि यज्ञ के। इनकि-  
न्हे के कि जे देवाः उभय हवियें (सोम और इतरों को) भक्षण कर-  
ते। कैसे देवा कि शोभन हैं कर्म जिन्हें के। निष्यायाः। बुद्धि वा कर्म  
को स्थापन करते ॥२७॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चायाह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।  
त्वं देवानामसि यद्व होता स एनान्यक्षीषितो य-  
जीयान् ॥२८॥

हे अग्ने तू आ कैसा है तू कि देवताओं को बुलाता। स्तुत्यः। नमनी-  
यः। वसुदेवताओं से समान प्रीतिः। किं च हे यद्व (महन्) जो तू देवताओं  
का आह्वता है सो तू एतान् (आयों को) यजि। कैसा है तू कि इषितः (प्रे-  
षित वा अभीष्ट) यजीयान् (अत्यन्त यष्टा) ॥२८॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अ-

गेऽअन्ताम् । व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्योऽआदित  
स्थोनम् ॥२४॥

दिनों के अग्र (पूर्वार्ध) में बर्हिः प्रागग्र प्रस्तीर्य है + अदिशा (प्रागग्र) + इ-  
स वेदी के आछादन को। सो बर्हिः स्तीर्यमान सत् विविध स्तीर्ण होता  
है। कैसी बर्हिः कि अत्यन्त विस्तीर्ण। देवताओं और अदितिके अर्थ  
सुरवकर ॥२४॥

व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्ता पतिभ्यो न जनयः शुभ-  
मानाः । देवीद्वारे बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सु-  
प्रायणाः ॥३०॥

द्वारे देव्यः विवृता हैं। कैसी द्वारः कि उरुत्व करि गमनवत्यः कैसे कि  
जैसे पत्निएँ पतिओं के अर्थ ऊरू फैलाती हैं। एवं परोक्षमुक्ताप्रत्यक्ष-  
माह हे द्वारे देव्यः तुम देवताओं के अर्थ सुप्रगमना होओ। कैसी  
कि बृहत्यः विश्वमिन्वा (विश्वजाता है जिन्हें मैं वे) शोभमानाः।  
उर्विया इति द्वारविशेषणम् उरवः (विशालाः) इयाद् (इयाज इयार-  
श्चेति ॥३०॥

आ सुषयन्ती यजतेऽउपाकेऽउषासानक्ता सदतां नि-  
यानौ । दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मेऽअधि श्रियर्धं शु-  
क्रपिशां दधाने ॥३१॥

अहो रात्रे देवते यज्ञगृह में भले प्रकार बैठें। कैसी कि सुषयन्ती (पर-  
स्पर हसन्ती वा साधु स्वपन्ती) यजनीय में। परस्पर समीपस्थिते दि-  
वि में हुई। स्त्रीरूपिणीयें। बृहत्यो। सुरुक्मे (साभरणे) शुक्रपिशां (शुक्ला-

+ अन्ताम् को अन्तः प्रसक्तता दत्ताम् अन्तः इत्युक्तम्  
+ अन्ताम् को अन्तः प्रसक्तता दत्ताम् अन्तः इत्युक्तम्  
+ अन्ताम् को अन्तः प्रसक्तता दत्ताम् अन्तः इत्युक्तम्

दिवसः कपिशाः रात्रिः श्रियः (शोभा) को धारण करती हैं ॥३१॥

देव्यां हांतां प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुष्यो  
यजध्ये । प्रचोदयन्ता विदयेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः  
प्रदिशा दिशान्ता ॥३२॥

देव्यों होतारों ऐसे हैं इति शेषः । कैसे कि आद्यो । शोभनवाक् जिन्हों की  
तों । मनुष्य के यजनयोग्य यज्ञ को निर्मिमाणो । यज्ञों में ऋत्विजः  
प्रेरयन्तों । कारू (स्वयंकर्तारों) पूर्वदिशा में हुई ज्योति आहवनीया-  
रव्य को प्रदिशा (अभिनय श्रुतिवाक्य करि) दिशान्ता (पूजेंगे यह  
कहते ॥३२॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेतिडा मनुष्यदिह चेतय-  
न्ती । तिस्रो देवी बर्हिरेदं स्योनर्ह सरस्वती स्वपसः  
सदन्तु ॥३३॥

भारती इडा और सरस्वती हमारे यज्ञ को क्षिप्र आवें । कैसी कि मनु-  
ष्यवत् इस कर्म में चेतयन्ती (कर्मज्ञान को बोधयन्ती) यह तीनों का  
विशेषण । ये तीनों देवियें सुरवरूप इस बर्हि पर बैठें । कैसी कि शो-  
भन हैं कर्म जिन्हों के ॥३३॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिर्हं शद्रुवनानि  
विश्वो । तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह  
यक्षि विद्वान् ॥३४॥

हे होतः आजप्रेषितः सन् तू त्वष्टा देवता को इतः यज्ञ में यजि । कै-  
सा है तू कि अत्यन्त यष्टा । अपने अधिकार को जानता । वोह क्या

किं जे। त्वष्टा ये द्यावाभूमीयें रूपों करि विचित्र करता हुआ। सबभूत-  
जातों को रूपों करि विविध करता हुआ। कैसी द्यावा पृथिवीएँ कि  
शक्तियों की उत्पादन करने वाली हैं॥३४॥

उपावसृज त्वन्या समञ्जन्देवानां पाथं ऋतुथा ह-  
वींश्च। वनस्पतिः शमिता देवोऽग्निः स्वदन्तु ह-  
व्यं मधुना घृतेन॥३५॥

यजमानो वदति। हे होतः अपने सैं हवियें यज्ञकाल में तू दे। क्या क-  
रता कि देवताओं के पाथ (हवि) मधुररस (घृत) करि के समृक्षयन।  
देवताओं के इत्युक्त तानाह वनस्पति (यूप) शमिता देवः अग्निः।  
ये तीनों होता करि समृज्यदिये हवि को भक्षण करें॥३५॥

संघो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्यु-  
रोगाः। अस्य होतुः प्रदिश्युतस्य वाचि स्वाहाकर्तुं  
हविरदन्तु देवाः॥३६॥

देवा हवि भक्षण करें। कैसा हवि कि इस अग्नि के वाचि (वागिन्द्रियो-  
पलक्षित मुख में) स्वाहा कार करि हुत को कैसा ईस काकि होतुः  
(देवताओं के बुलानेवाले) प्रदिशि (पूर्वदिशा में) ऋतस्य (आह-  
बनीयात्मा करि स्थित का। इस किस का कि जो अग्नि सद्य उत्पन्न  
हुए सन् यज्ञ को विशेष करि निर्माण करता हुआ और जो देवता  
ओं का अग्रगामी (मुख्य) हुआ॥३६॥

अ०४. केतुं कृणवन्तं केतवे पेशी मर्या अपेशसे। समुष-  
डि रजायथाः॥३७॥

अग्निदेवत्या गायत्री मधुच्छन्दोद्दृष्टानिरुक्ता। हे अग्ने तू उषत् (अग्निहोत्रक-  
रीरयजमानों) करि उत्पन्न है। कैसा है तू कि अकेतु (अज्ञानी) अर्थ (मनुष्य)  
के अर्थ केतु (ज्ञान) को करता। अपेश से (विन सुवर्ण के मनुष्य के अर्थ सुवर्ण करता) ॥ ३७ ॥

जीमूतस्यैव भवति प्रतीकं यद्धर्मी याति समदामुप-  
स्थे। अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो  
महिमा पिपर्तु ॥ ३८ ॥

एवमग्निं स्तुत्वाश्वरक्षणे योधा। युद्धोपकरणानि च स्तूयन्ते। भरद्वाज-  
स्तुतपायुः संमाङ्गानि प्रत्यृचं सौति त्रिष्टुब्धिः। वर्म स्तूयते। जबकि  
वर्मी (कवची) समदों (संग्रामों) के उत्सङ्ग में जाता है तब प्रतीक (से-  
नामुख) जीमूत (मेघ) का सा होता है। सह माद्यन्ति (तृप्त होते हैं) योधा  
जिन्हों में ताः समदः (संग्रामाः)। मेघ का मुख विद्युत्तनयितु धाराओं  
से जैसे असह्य है एवं हस्त्यश्वरथपदात्यस्त्रजालतूर्यनादशरीरैश्च करि  
सेनामुख असह्य होता है इत्यर्थः। अतः में कहिता हूं कि हे वर्मिन्  
अक्षत शरीर करि तू शत्रुओं को मारि के जय को प्राप्त हो। किं च वो-  
ह वर्म की महिमा तुम्हें पालन करे ॥ ३८ ॥

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो  
जयेम। धनुः शत्रौरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्र-  
दिशो जयेम ॥ ३९ ॥

धनुः स्तूयते। धनुष करिके हम पृथ्वी जीते। धनुष करि मार्गे जीते।  
उग्र संग्रामों को धनुष करि जीते। धनुष शत्रुओं के अनोरथाभाव क-  
रता है। किं च धनुष करि सब प्रदिशाएँ जीते ॥ ३९ ॥

वक्ष्यन्ती वेदागनीगन्ति कर्णे प्रियर्हं सखायं प्रिय-  
स्वजाना। योषेव शिङ्गे वितनाधि धन्वन्त्याऽद्वयर्हं  
समने पारयन्ती ॥४०॥

ज्या स्तूयते। यह ज्या धनुष के ऊपर में विस्तारिता सती अव्यक्तशब्द  
करती है। कैसे कि जैसे कामिनी कामुक के रञ्जनार्थ अव्यक्त क-  
हती है ऐसे यह भी। कैसी ज्या कि संग्राम से उतारती अर्थात् वि-  
जय करती। यह कौन कि जो ज्या आकृष्टासती योधा के कर्णप्रति  
अत्यर्थ आती है। कैसी कि जैसे अन्य बोलने को इच्छा करता क-  
र्णप्रति आता है। इस प्रियसखा (इष्ट मित्रवाणस्स) को आलिङ्गन करती ॥४०॥

तेऽआचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामु-  
पस्थे। अप शत्रुन्विध्यतां संविदानेऽआर्त्तीऽइमे  
विष्फुरन्तीऽअमित्रान् ॥४१॥

धनुः कोटी स्तूयेते। ते प्रसिद्ध आर्त्ती (धनुः कोटीयें) उत्सङ्ग (मध्यभा-  
ग) में धारण करें शर को इति शेषः। तत्र दृष्टान्तः जैसे माता धार-  
ण करती है पुत्र को उत्सङ्ग में। और शत्रुओं को ताडन करें। कैसी  
आर्त्ती कि आती हैं धानुष्क प्रति तत्र दृष्टान्तः कि समान मन हैं  
जिनों के ते स्त्रियें जैसे कान्त को आती हैं परस्पर संकेत करती हैं।  
शत्रुओं प्रति टङ्कार करती हैं ॥४१॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चाकृणोति समना-  
वगत्य। इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निन-  
द्यो जयति प्रसूतः ॥४२॥



इषुधिः स्तूयते। जो इषुधिः (तूण) बहूतों (बाणों) का पालक है। क्योंकि बा-  
णों को रखता है। इस इषुधिके बहुत पुत्र + (बाण समूह पुत्रस्थानीय) + पुरुषबहून्  
हैं (पाल्यमानत्वात्)। सो इषुधिः संग्रामों को जानि कर चिश्वा कृणोति वायतेति पुत्रः  
(चिश्च यह शब्द करता, शब्दानुकरणमेतत् तूण सैनिकलते दुए  
वाण में चिश्च यह शब्द होता है। और वोह इषुधिः धानुष करि पीठि में  
बद्धा भी अनुज्ञातः सन् सब शत्रु सेनाएँ जीतता है। कैसी शत्रु सेनाएँ  
कि सङ्गाः (सचन्ते संवध्यन्ते वा संकीर्यन्ते) योधा जिन्हों में ते ॥४२॥

रथे तिष्ठन्त्यति वाजिनः पुरे यत्र-यत्र कामयते सुषा-  
रथिः। अभिशूना महिमानं पनायत मनः पश्चाद-  
नुयच्छन्ति रश्मयः ॥४३॥

अर्धेन सारथिरर्धेन रश्मयः स्तूयन्ते। जगती इयम्। शोभन सारथि  
जिस-जिस प्रदेश में चाहता कि मैं यहां जाऊंगा तहां- तहां पुरे वर्तमानों  
वाजियों को प्राप्त करता है। कैसा कि रथ में बैठा। दिसें स्तुति करता  
हूँ इति शेषः। इदानीं रश्मयः स्तूयन्ते। हे मनुष्यश्रेष्ठो अभिशूनों (र-  
श्मिश्रेष्ठों) के महाभाग्य को तुम स्तुति करो। जे रश्मि एँ पीछे में वर्तमान  
हुई मन (अश्वचित) को वशवर्ति करती हैं ॥४३॥

तीव्रान्योषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह  
वाजयन्तः। अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रोन्धिणन्ति  
शत्रूँ ॥ रनपव्ययन्तः ॥४४॥

अश्वाः स्तूयन्ते। वृषाः (आश्वाः) हाथ में जिन्हों के ते वृषपाणयः (अश्व  
वराः) तीव्रघोषों (जय-जय इन शब्दों) को करते हैं। अश्व भी रथस-

हित चलते हुए तीव्रघोषों (हेषाशब्दों) को करते और शत्रुओं को नाश करते हैं। कैसे अश्व कि पादाग्रों (खुरों) से रिपुओं को अवक्रामन (ढुकराते-रुंदते हैं) ॥४४॥

रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य  
वर्म । तत्रारथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं  
सुमनस्यमानाः ॥४५॥

शकटद्वारा रथः स्तूयते। इस (अन्न-शकट) का रथ वाहन (रथको वहता) नाम है। तथा इस का हविर्धान नाम है। जहां (इस शकट में) योधा के वर्म और आयुध स्थापित हैं तहां (शकट में) हम रथ को उपसादन करते हैं। कैसे रथ कि सुख कर को। कैसे हैं हम कि सर्वदा शोभन मन जिन्हें कीते ॥४५॥

स्वादुषंसदः पितरौ वयोधाः कृच्छ्रे श्रितः शक्तीवन्तो  
गम्भीराः । चित्रसेना इषुबला अमृधाः सतोबीरा  
उरवो ब्रातसाहाः ॥४६॥

रथ गोपान्तेति। ऐसे नर हमारे रथ के गोप्ता हों इति शेषः। कैसे कि स्वादुसंसदः (सुखजैसे जैसे भले प्रकार सीदें हैं ते। पितरः (रक्षितारः। अन्न वा आयु को धारण करते। कृच्छ्रे श्रितः (कष्ट में सेवन करते वा दुःख को प्राप्त होके भी स्वामि सेवन पराः। शक्तीवन्तः (सामर्थ्यवान् वा आयुधवान्। गम्भीरबलाः और गम्भीरज्ञाः। नानाविधा सेना जिन्हें कीते। वाणों करि बल जिन्हें का। अमृधाः (कठिनाङ्ग वा उग्रशासना। सतोबीराः (अश्वमेधयाजिनः

भूराः यद्वा विद्यमानबलके प्रेरकाः । उरवः (प्रयुज्यन्ते) नोरस्काः । व्रात-  
साहाः (भूरसमूहों को अभिभवते हैं) ते ॥४६॥

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी  
अनेहसा । पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकि-  
र्नोऽप्रघशर्त्तुस ईशत ॥४७॥

जगती लिङ्गे क्तदेवता । ब्राह्मणाः हमें रक्षा करें । और पितर रक्षा करें । कै-  
से कि सोमसम्पादिनः वा सोमपानयोग्या द्यावाभूमी हमें रक्षा करें ।  
कैसी कि कल्याणकारिण्यो । अपराधनिवर्तके । किंच सूर्य हमें पापों से  
रक्षा करें । एवं परोक्षेणोक्ता प्रत्यक्षमाह हे ऋतावृधः (सत्यको बढ़ाते  
देवाः) हमें रक्षा करें । कोई पापी हमारे ऐश्वर्य को न करे अर्थात् हम  
दुष्टवशान हों + ॥४७॥

सुपर्णं वस्ते मृगोऽपस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पत-  
ति प्रसूता । यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्य  
मिषवः शर्म यर्त्तसन् ॥४८॥

ह्याभ्यामिषुं स्तौति आद्या त्रिष्टुप् अन्यानुष्टुप् । जोवाण सुपर्ण (पक्षि-  
पिच्छ) को धारण करता है । शोभन पिच्छ जिस का बोह सुपर्ण (पक्षी) तिस  
का विकार सौपर्ण (तत्र कृत्स्नवन्निगमा भवन्तीति निरु० २५ यास्कोत्तेः  
सुपर्ण शब्द करि तपिच्छलेंना-वाणपुच्छ में पिच्छ के आरोप्यमाणत्व  
से । किंच इस वाणका दन्तः (फल) मृगः (रिपुओं को मारता) किंच जो  
वाण गोविकार (स्नायु) करि संनद्धा (बद्धा) प्रसूता (धनष्मता करि प्रेरि-  
तासती) पतति (शत्रुबल प्रतिजाती है) और जहां नर (योद्धार) भले प्रका-

प्रकाशयति वायं जंतुः (दुष्टः)  
+ अथ (पापं) शंसति बक्ति प्रकाशयति वायं जंतुः (दुष्टः)

रजाते और विविध प्रसरते हैं तहां (रण में) बाण हमें सुख देवें ॥४५॥

ऋजीते परिवृद्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः । सोमो

अधिब्रवीतु नोऽदितिः शर्मं यच्छतु ॥४६॥

हे ऋजीते (ऋजुगामिनि) हे इषो हमारे विषे मत पतन करि जि

च हमारा शरीर पाषाण तुल्य दृढ हो । सोम हम को अधिक कहै ।

अदितिः (देवमाता) सुख देवें ॥४६॥

आजह्वन्ति सान्वेषां जघनान् ॥ उपजिघ्रते । अश्वज-

नि प्रचेतसोऽश्वान्समत्सु चोदय ॥४७॥

अनुष्टुप् । कशास्तूयते । हे अश्वजनि (अश्वचलाइयें और क्षिपियें

हैं जिस से वोह) हे कशे तू संग्रामों में अश्वों को जय के अर्थ प्रेरिकों

को कि प्रकृष्ट (शूर) हैं चेत (मन) जिन्हों के ते । हे कशे जिस तुरु करि अ-

श्ववारा इन अश्वों के सानु (सानुतुल्य मांसोपचित अङ्गों) को ताडन

करते जघनों (कटिभागों) को मारते हैं । अर्थात् तुरङ्गारेहा जिस क-

रि अश्वों को वश करते हैं सो तू अश्वों को प्रेरि ॥४७॥

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेति परिवर्धमा-

नः । हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्युमान्युमाध-

सं परिपातु विश्वतः ॥४८॥

सप्तविष्टुभः । आद्या हस्तघ्नः स्तूयते । हस्त में स्थित होने है हस्तघ्न (खे-

टक) यद्वा हस्त को प्राप्त है हस्तघ्न (प्रकोष्ठत्राण) पुमांस मुमै सर्वतः

परिपातु (रक्षाकरै) कैसा है हस्तघ्न कि सब ज्ञानों को जानता । तथा पुमान्

(पुंस्त्वयुक्त-शूर) जो हस्तघ्न भागों (स्वशरीरवयवों) करिके हस्त को वे-

घृण करता है। कैसे कि अहिरवि (जैसे सर्प भोगों करि स्वदेह हस्तादि-  
कों) को घृण करता है। कैसा कि शत्रु प्रेरित ज्यायाः हेति (वाण) को नि-  
वर्त करता खेटकपक्षे प्रकोष्ठत्राणपक्षे तु ज्यायाहेति (प्रहार) को नि-  
वारण करता (ज्याधातस्य निवारकत्वात्) ॥५१॥

वनस्पते वीडुङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सु-  
वीरः। गोभिः संनद्धो असि वीडुय स्वास्याता ते जय-  
तु जेत्वानि ॥५२॥

तिस्र ऋचो रथ देवता। हे वनस्पते (काष्ठमयरथः) नूढटाङ्ग हो।  
कैसा कि हमारा मित्र भूत। प्रतरणः (संग्राम पार को जाता। सुवीरः  
(शोभन रथीजहां। किं च हे रथ यतः तू गोविकार चर्मों से बद्ध है  
अतः आत्मा को सम्मन करि। किं च तेरा स्याता (रथी) जेतव्य रि-  
पु धनों को जीते ॥५३॥

दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्धृतं वनस्पतिभ्यः पर्योभृत-  
ं सहः। अपामोज्मानं परि गोभिराहतमिन्द्रस्य बज्र-  
ं हविषा रथं यज ॥५३॥

हे अध्वर्यो तू हवि करिके रथ को यजि। कैसे रथ कि ध्रु लोक से पृथि-  
वी के सकाश से समन्तात् उद्धृत को ओजः (तेजः) तथा वृक्षों से स-  
मन्तात् आनीत बल को। तथा जलों के ओज्मान (तेजः) सारभूत।  
अर्थात् द्यावापृथिवी वृक्षजल चारों के तेज करि निर्मित को।  
तथा किरिणों करि वेष्टित को + यद्वा गों के चर्म से वेष्टित। तथा इन्द्र  
के बज्र से हुण को जबकि इन्द्र ने वृत्र के अर्थ बज्र को मारा तब वृत्र

+ कृत्स्न वनिगम निरु. २.५.

निरु. २.५.

और वी कठिना करि प्रतिहत चतुर्धा हुआ यूप. स्प्य. रथ. और शर.  
चतुः स्प्य हैं तहा यूप और स्प्य विप्रों ने गृहण किये रथ और  
शर नृपों ने †। अर्थात् ऐसे रथ को यजि ॥५३॥

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य  
नाभिः। सोमा नो हव्यदाति जुषाणे देव रथ प्रति ह-  
व्या गृभाय ॥५४॥

हे रथ हे देव सो तू हवियें प्रति गृह करि कैसा है तू कि इन्द्र का वज्र  
(वज्रोत्पन्नत्वात्। मरुतों का मुख्य (देवताओं के जय प्रापकत्वात्।  
मित्र (सूर्य) करि सूर्यमान। वरुण का नाभि (हन्नसाधन †। हमारे  
इस हवि के दान को सेवमान ॥५४॥

उपश्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा तै मनुतां विष्टितं  
जगत्। स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराहवीयोऽप-  
सेधु शत्रून् ॥५५॥

तिस्र ऋचो दुन्दुभिदेवत्याः। हे दुन्दुभे सो तू पृथिवी और द्यां (अन्त-  
रिक्ष को) उपश्वासय (शब्दित करि। विविधस्थित जगत् (स्थावरजङ्ग-  
मादिक) बड्धा तुम्हें जानें (यह कि दुन्दुभिनाद करता है)। सो तू अ-  
त्यन्त दूर शत्रु को निकालि। कैसा है तू कि इन्द्र और देवताओं क-  
रि प्रीतियुक्त ॥५५॥

आक्रन्दय बलमोजो न आधा निष्टनिहि दुरितावा-  
धमानः। अपप्रोथ दुन्दुभे दुष्टुना इत इन्द्रस्य मुष्टि-  
सि वीडयस्व ॥५६॥



हे दुन्दुभे तू बल (शत्रुसैन्य) को आक्रन्दय (रुलाय-भागो-भागो हमारे सब मारे गये इत्यादि शब्द कराय। हमारे को तेज दे। पापों को निरा करे सन् निष्टनिहि (शब्द करि। किं च हमारी सेना के सकाश से दुष्टानों (दुष्ट श्वानों तिन दुष्ट श्वान सहश शत्रुओं) को नाश करि। क्यों कि तू दुन्दुका मुष्टि (मुष्टिवत् अङ्गभूत) है अतः हम लोगों को दृढ़ करि ॥५६॥

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमहुन्दुभिर्वावरीति। समष्टिपणीश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥५७॥

हे इन्द्र अमूरः (शत्रुसेना) को तू समन्तात् परिक्षेप करि। क्यों कि दुन्दुभिः केतुमत् (प्रज्ञावत्) जैसे अत्यन्त बजै है अतः हमारी सेना प्रत्यावर्तये (जय को प्राप्त करि के लोटाया। किं च हमारे नर (योधा) संचरें हें केसे योधा कि अश्व का सा पतन जिन्हों का ते। किं च हमारे रथ स्थायु ह में जय को प्राप्त हों ॥५७॥

आग्नेयः कृष्णाग्नीवः सारस्वती मेधी वसुः सोम्यः पौ-  
णः प्रयामः शितिपृष्टो बार्हस्पत्यः शिन्धो वैश्वदेव ऐ-  
न्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः सर्गहितोऽधोरोमः सा-  
वित्रो वारुणः कृष्ण एकशितिपात्येत्वः ॥५८॥

अश्वमेधेश्रुतिरस्ति द्वे त्वेवैतेश्चकादशिन्यावालभेतेति शत० १३० ५० १०  
३ तयोरेकादशिन्योऽपशवस्तद्देवताश्च कण्डिकाद्वयेनोच्यन्ते तेनेमानि  
ब्रह्मणवाक्यानि द्रव्यदेवता प्रतिपादकानि न तु मन्त्राः ॥ कृष्णाग्नीवा  
जिस की बार्ह कृष्णाग्नीव पशु आग्नेयः (अग्निदेवता) १ मेधी सार  
स्वती (सरस्वतीदेवताका) २ वसुः (पिङ्गलवर्णः पशुः) सोम देवतः ३

श्यामः (कृष्णवर्णः) पूषदेवत्यः ४ शिति (श्याम) पृष्ठजिसका वोह शि  
ति पृष्ठः बृहस्पतिदेवत्यः ५ शित्यः (विचित्रवर्णः) विश्वदेवदेवत्यः ६  
अरुणः (रक्तः) इन्द्रदेवत्यः ७ कल्माषः (कर्बुरः) मरुदेवत्यः ८ संहितः  
(हृदाङ्गः) इन्द्राग्निदेवत्यः ९ अधोरामः (अधोदेशमें श्वेत) सवितृदेव  
त्यः १० एकः शितिः (श्वेतपादजिसका) वोह एक शितिपात् (एकपदमें  
श्वेत अन्यवर्णः) पेतवः (पतनशील) वेगवान् पशुः वरुणदेवत्यः ११  
एवमेकादश जाताः ॥ ५८ ॥

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनृद्वानधोरामो सवित्रो  
पौष्णो रजतनाभी वैश्वदेवो पिशाङ्गो तूपरो मारुतः  
कल्माषे आग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वोरु  
णः पेतवः ॥ ५९ ॥

द्वितीयैका दशिनी पशुदेवानाह। रोहित (रक्त) अञ्जि (तिलक जिस  
का सो अनृद्वान् (छकडे का बैल) अनीकवान् (अनीक-सुरबवा  
सैन्य जिसका उस) अग्नि के अर्थ १ अधोरामो (अधोभाग में श्वेत  
हो पशु) सवितृदेवतो २ ३ रजत वर्ण नाभि जिन्हों की वे रजत ना  
भी द्वो पूष देवत्यो ४ ५ पिशाङ्गो (पीतौ) तूपरो (शृङ्गरहितो) विश्वदे  
वदेवत्यो ६ ७ कल्माषः (कर्बुरः) मरुदेवत्यः ८ कृष्णः (श्यामः) अजः  
(मेषः) अग्निदेवत्यः ९ मेषी सारस्वती १० पेतवः (वेगवान्) वरुणदेव  
त्यः ११ एवमेकादश। अश्वमेध में एक विंशति यूप होते हैं तहां अ  
ग्नि ४ संज्ञक मध्यम यूप में दो पशु दोनो एकादशनियों (कृष्णाग्नीव  
पशु अग्निदेवत्यः १ रोहिताञ्जि अनृद्वान् अग्नयेऽनीकवते २) के बाँ

धे जाते हैं शेष विंशत यूषों में प्रत्येक यूष में प्रत्येक पशु बाँधते हैं ॥१५॥

अग्नये गायत्राय विवृते रथन्तरायाष्टाकपालं इन्द्राय  
वैष्टुभाय पञ्चदशायवर्हितायेकादशकपालो विश्वेभ्यो  
देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशक-  
पालो मित्रावरुणभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविंशेभ्यो वै-  
राजाभ्यो ययस्या बृहस्पतेये पाङ्काय त्रिणवाय शाकृग-  
ये चरुः सवित्रेऽश्विभ्याहाय त्रयस्त्रिंशाय रैदताय द्वा-  
दशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्ये विष्णुपत्ये चरुरग्न-  
ये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्याऽष्टाकपालः ॥१६॥

इति संहितायां चतुर्थीऽनुवाकः ४

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनशार्वीयायां वाजसने-  
यसंहितायां दीर्घपाठे एकोनविंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथाग्निषोमीयस्य पशुपुरोडाशमनुदिशामावेष्टीर्निर्वपतीत्युपक्र-  
म्य तदाहुर्दशहविषमन्त्यामिष्टिं निर्वपेदिति श्रुत्या अशहविष्कावे-  
ष्टिसंज्ञेष्टिः कथिता तस्या देवता हवीषि चाह । इमान्यपि ब्राह्मणवा-  
क्यानि न मन्त्राः ॥ अग्नि के अर्थ अष्टाकपालः (आठकपालों में संस्कृ-  
त पुरोडाश करिये हैं) कैसे अग्नि कि गायत्री करि स्तुति किये के अर्थ  
विवृत्स्तोम करि स्तुति किये के अर्थ रथन्तराया करि स्तुति किये के अर्थ इन्द्र के  
अर्थ एकादशकपाल पुरोडाश करिये हैं कैसे इन्द्र कि जगती छन्द क-  
रि स्तु० सप्तदशस्तोम० वैरूपसाम० २० विश्वदेवाओं के अर्थ द्वादशक-  
पालः पुरोडाशः कैसे के कि जगती छन्द करि स्तु० सप्तदशस्तोमस्तु०

वैरूपसाम०३ मित्रावरुणों के अर्थ पय करि अत्र चरुः कैसें के अर्थ कि  
अनुष्टुप् करि स्तु० एकविंशस्तोम० वैराजसाम०४ बृहस्पति के अर्थ  
चरुः कैसें के कि पङ्क्ति छन्द० त्रिणवस्तोम० शाक्करसाम०५ सविता के अ-  
र्थ द्वादश कपालः पुरोडाशः कैसें कि उष्णिक् छन्द० त्रयस्त्रिंशस्तोम०  
रैवतसाम०६ एवं छन्दः स्तोमसहितानि षट् देवताओं को कहि कर  
चतुरः कंदलों को कहिता है प्रजापति देवत्यश्वरुः करिये है ७ वि-  
ष्णुपत्नी अदिति के अर्थ चरुरेव ८ वैश्वानर गुणविशिष्ट अग्नि-  
के अर्थ द्वादश कपालः पुरोडाशः ९ अनुमति देवता के अर्थ अष्ट  
कपालः पुरोडाशः करिये है १० दशहविषो वैष्टे देवता हवींष्यपि  
अश्वमेधो पयोगित्वा दुक्तानि समिद्धोऽञ्जन्नाश्वमेधिकोऽध्याय  
इति कात्यायनोक्तेः अनुक्रमणायाम् अ०३ ख० ११ ॥ ६ ॥

इति गिरिधरभाष्ये चतुर्थोऽनुवाकः४

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थोऽथतुरेदेयाद्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः५

श्री मच्छुक्तयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वय  
विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेवबर्मात्मरौक्मिणेयनृपति  
गिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्येखिल प्रकरणे  
आषी आदि पुरोडाशान्त वर्णनो नामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

समाप्तोऽयमश्वशिष्टः

ओं शान्तिः

शान्तिः

शान्तिः



हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरुपं च साधनेर्वद्विरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३०

देवसवितर्द्वावध्यायौ पुरुषमेधो नागायणः पुरुषो ३० ददर्श

अ० १० देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो  
गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वीचं नः  
स्वदतु ॥ १ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्र-  
चोदयात् ॥ २ ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि यगंसुवं । यद्भद्रं तन्न  
आसुव ॥ ३ ॥

विभक्तारं हवामहे चमोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं  
नृचक्षुसम् ॥ ४ ॥

ओं नमो यज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीप के ।

त्रिंशोऽध्याये प्रकथ्यन्ते पशवो नरमेधिकाः ३०

दूतजतरं पुरुषमेधः । द्वावध्यायौ नागायणः पुरुषोऽपश्यत् । अतिष्ठा  
काम + ब्राह्मण राजन्य का पुरुषमेधसंज्ञक यज्ञ होता है । चित्र शुक्ल  
शमी में आरम्भ है । अत्र त्रयोविंशति दीक्षा होती । द्वादश उपसद  
पञ्च सुत्या इति चत्वारिंशद्विनों करि सिद्धि होता है । अत्र यूपैकाद-

मन्त्रेभ्यस्तन्मन्त्रस्थानमभिष्ट

शिनी होती हैं एकादश अग्नीषोमीयाः पशु होते हैं तिन्हों का प्रतियू-  
प वा मध्यमयूप में यथेच्छनियोजन है ॥ का० २१.१.६ एक बार लिये  
आज्य करि देव सवितरिति प्रति ऋचा सै तीनि ३ आहुतियें आ हव-  
नीय में होमें ॥ तत्र देव सवितः ११.७ तत्सवितुः ३.३५ द्वे व्याख्यात-  
१॥२॥ विश्वानि देव द्वे गायत्र्ये सवितृ देवत्ये क्रमेण श्यावाश्व ३ मेधा-  
तिथि ४ हृष्टे । हं देव सवितः सब पापों को दूर में चला । जो कल्याण सो  
हमारे प्रति आगमन करि ॥ ३॥ हम सविता देवता को बुलाते हैं कैंसे  
को कि वासयितुः नाना विधधन के विभज्य दातार नरों के यथा यो-  
ग्य द्रष्टार को ॥ ४॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे  
शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरुहणं पाप्मने क्लीब-  
माक्रयायाऽऽयोगं कामाय पुंश्चलूमतिकुष्टाय माग-  
धम् ॥ ५॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणमिति द्वे कण्ड के तपसोऽनुवाकश्च ब्राह्मणरूपः ॥ अ-  
तः परं पुरुष मेधकाः पशवः आ अध्याय समाप्तेः । ततः प्रतियूप  
एक-एक एकादशिन को नियोग करि ब्राह्मणादीनि अष्टचत्वारिं-  
शत्संख्य पुरुषों प्रकामोद्याथोयसदमित्यन्तों को अग्निष्ट्र यूप में नि-  
योग करे इतर यूपों में एकादश-एकादश पुरुषों बर्णयानुरुधमि-  
त्यादीनि को जोडे ॥ ब्रह्मणे ब्राह्मणम् तत्र ब्रह्मणे जुष्टं नियुनज्मीति  
अग्निष्ट्रे ब्राह्मणं ग्रन्थमं नियुनक्ति । एवमग्रे सर्वेषां यूये एव बन्धनम्  
चतुर्थ्यन्तं देवतापदं द्वितीयान्तं पुरुषपदं बोद्धव्यम् ॥ ब्रह्मा के अर्थप्रि-



य ब्राह्मण को नियोग करता हं १. क्षत्राय राजन्यं (क्षत्रियम्) २. महद्भ्यो  
वैश्यम् ३. तपसे शूद्रम् ४. तमसे तस्करं (स्तेनम्) ५. नारकाय वीरह-  
णं (नष्टाग्निं शूरं वा) ६. पाप्मने क्षीवं (नपुंसकम्) ७. आक्रयायै अयो-  
गूमयसो गन्तारम् ८. कामाय पुंश्चनूं (अभिचारिणीम्) ९. अतिक्रु-  
ष्टाय मागधं मगधदेशजं क्षत्रियायां वैश्यपुंसो जातं वा) १०. ॥ ५ ॥

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्मीय सभाचरं नरि-  
ष्टायै भीमलं नर्मीय रेभं हसाय कारिमानन्दा-  
य स्त्रीषरवं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्या-  
य तक्षणम् ॥ ६ ॥

नृत्ताय सूतं (ब्राह्मण्यां क्षत्रियाज्जातः सूतः) ११. गीताय शैलूषं (नट-  
म्) १२. धर्मीय सभाचरं (सभायां चरतीति तम्) १३. नरिष्टायै भीमलं  
(भयकरम्) १४. नर्मीय रेभं (शब्दकर्तारं वाचाटम्) १५. हसाय कारि-  
(करणविशिष्टम्) १६. आनन्दाय स्त्रीषरवं (स्त्रियाः सरवायम्) १७. प्र-  
मदे कुमारीपुत्रं (कानीनम्) १८. मेधायै रथकारं (माहिष्येण करिण्यां  
जातम्) १९. धैर्याय तक्षणं (सूत्रधारम्) २०. ॥ ६ ॥

अ. २. तपसे कौलालं मायायै कर्मोर्धं रूपाय मणिकार-  
र्धं शुभे वपर्धं शूरव्याया इषुकार्धं हेत्यै धनुष्कारं  
कर्मणे ज्याकारं दिष्टायै रज्जुसर्जं मृत्यवे मृगयम-  
न्तकाय श्वनिनिम् ॥ ७ ॥

तपसे कौलालं (कुलालापत्यम्) २१. मायायै वर्णं (लोहकारम्) २२.  
रूपाय मणिकारं (रत्नकर्तारम्) २३. शुभे (शुभाय) वपं (बीजवत्सारम्)

२४. शरव्यायै वृषुकारं (वाणकर्तारम्) २५. हेत्यै धनुःकारं (चापकारिणम्) २६. कर्मणे ज्याकारं (प्रत्यञ्चनकर्तारम्) २७. दिष्टाय रज्जुसर्जितोत्तमस्रष्टारं, निर्मातारम्) २८. मृत्यवे मृगयुं (मृगग्राहम्) २९. अन्तकायश्च निन (शुनो नेतारम्) ३०. ॥ ७ ॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो ब्रातृं प्रयुग्य उन्मत्तं सर्पदेवजनेभ्यः प्रतिपदमयेभ्यः कितवमृषीर्यतायाः अकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठं (पुञ्जिष्ठोऽन्यजः) पुल्कसस्तदपत्यम्) ३१. ऋक्षीकाभ्यो नैषादं (निषादपुत्रम्) ३२. पुरुषव्याघ्राय दुर्मदमुन्मत्तम्) ३३. गन्धर्वाप्सरोभ्यो ब्रातृं (सावित्रीपतितम्) ३४. प्रयुग्यः उन्मत्तम्) ३५. सर्पदेवजनेभ्यः अप्रतिपदं (प्रतीपद्यते जातानीति प्रतिपत्, अतथाविधं विकलमित्यर्थः) ३६. अयेभ्यः कितवं (द्यूतकारम्) ३७. इयतायै अकितवमद्यूतकृतम्) ३८. पिशाचेभ्यः विदलकारिणीं (वंशपात्रकारिणीम्) ३९. यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीं (कण्टकी कर्मतत्कारिणीम्) ४०. ॥ ८ ॥

संधये जारं गेहायोपपतिमार्त्ये परिवित्तं निवृत्त्यै पारिविविदानमर्गच्छाऽणदिधिषुः पतिं निवृत्त्यै पेशस्कारीथं संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णयानुरुधं बलायोपदाम् ॥ ९ ॥

संयये जारमुपपतिम् ४१. गेहाय उपपतिं (व्यभिचारिणम्) ४२. आर्त्ये  
परेवित्तम् (ऊढे कनिष्ठेऽनूढम्) ४३. निर्ऋत्ये परिविविदानम् (अ-  
नूढे ज्येष्ठे ऊढवन्तम्) ४४. अराद्धौ देव्ये एदिधिषुः पतिम् (ज्येष्ठा-  
यं पुत्र्यामनूदायामूढा एदिधिषुः तत्पतिम्) ४५. निःकृत्ये पेश-  
स्कारीं (रूपकर्त्रीम्) ४६. संज्ञानाय स्मरकारीं (कामदीप्तिकरीम्) ४७.  
प्रकामोद्याय तत्संज्ञाय देवाय उपसीदतीत्युपमत् (समीपस्थितस्त-  
म्) ४८. एतानग्निष्टेनियुनक्ति ॥ ॥ अथ द्वितीयं यूपे । वर्णाय अ-  
नुरुध्यते (नुसरतीत्यनुरुत्तम्) १०. बलाय उपदाम् (उपददातीत्युप-  
दास्तमुपायनदातारम्) २॥ ४६॥

उत्सादेभ्यः कुञ्जं प्रमुदे वामनं द्वाभ्यः स्वप्ना-  
यान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय न-  
क्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षायै अभिप्र-  
श्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥ १०॥

उत्सादेभ्यः कुञ्जं (वक्राङ्गम्) ३. प्रमुदे वामनं (ह्रस्वाङ्गम्) ४. द्वाभ्यः स्व-  
पनं (सर्वदाजलक्लिन्ननेत्रम्) ५. स्वप्नाय अन्धं (नेत्रहीनम्) ६. अधर्मा-  
य बधिरं (कर्णेन्द्रियहीनम्) ७. पवित्राय भिषजं (वैद्यम्) ८. प्रज्ञा-  
नाय नक्षत्रदर्शं (नक्षत्राणि दर्शयति, गणकम्) ९. आशिक्षायै  
प्रश्निनं (प्रश्नवन्तम्, शुकमादिप्रष्टारमित्यर्थः) १०. उपशिक्षायै  
अभिप्रश्निनम् ११. ॥ ॥ अथ तृतीये यूपे । मर्यादायै प्रश्नविवाकं  
(कृतान्प्रश्नान्यो विविनक्ति ब्रूते स प्रश्नविवाकस्तम्) १०॥ १०॥

अग्नेभ्यो हस्तिपं जवायाश्चपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्याय

विपालं तेजसं जपालमिराये कीनाशं कीललाय  
सुराकारं भद्राय गृहपथं श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्याया  
नुक्षत्तारम् ॥ ११ ॥

अग्नेर्मयो हस्तिपं (गजपालकम्) २ जवाय अध्वपं (तुरगपालकम्)  
३ पुष्ट्यै गोपालकम् ४ वीर्याय अविपालम् ५ तेजसे अजपालम्  
६ द्राग्यै कीनाशं (कर्षुकम्) कीनाशः कर्षुवं यमे ७ कीललाय  
सुराकारं (मद्यकृतम्) ८ भद्राय गृहपथं (गृहपालकम्) ९ श्रेयसे वित्त-  
धं (वित्तं दधातीति वित्तधस्तम् धनकर्तारम् १० आध्यक्ष्याय अनु-  
क्षत्तारं (सारथ्यनुसारिणम् ११ ॥ ११ ॥

भायै दार्वोहारं प्रभायोऽअग्न्यधं ब्रध्नस्य विष्टपाया-  
भिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोका-  
य पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारं सर्वेभ्यो  
लोकेभ्य उपसेक्तारमवऋत्यै बधायोपमन्थितारं  
मेधाय वासः पत्न्यूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

अथ चतुर्थे यूये । भायै दार्वोहारं (काष्ठानामाहर्तारम्) १ प्रभायै  
अग्न्येधम् (अग्निमेधयतीति तमग्नेर्वर्धकम् २ ब्रध्नस्य विष्टपाय  
(सूर्यलोकाय) अभिषेक्तारम् ३ वर्षिष्ठाय नाकाय (उत्कृष्टस्वर्गाय) प-  
रिवेष्टणकर्तारम् ४ देवलोकाय पेशितारम् (पेशावयवे विंशती-  
ति पेशिता तम् प्रतिमाद्यवयवकर्तारम्) ५ मनुष्यलोकाय प्रक-  
रितारम् (कृ विक्षेपे विक्षेप्तारम् ६ सर्वेभ्यो लोकेभ्यः उपसेक्तार-  
मुपसेचनकर्तारम् ७ अवऋत्यै बधाय उपमन्थितारमुपमन्थ-

नकर्तारम् ८. मेधाय वासः पल्पूलीम् वाससां प्रक्षालनकर्तारम्,  
पल्पूल प्रक्षालनच्छेदनयोः) ६. प्रकामाय रजयित्रीं (वस्त्राणां रङ्ग-  
कारिणीं नारीम्) १०॥ १२॥

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्तेये क्षत्ता-  
रमोषद्रष्ट्यायानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परि-  
ष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्याऽअश्वसादथस्व-  
र्गाय लोकाय भागदुग्धं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवे-  
ष्टारम् ॥ १३॥

ऋतये स्तेनहृदयं (स्तेनस्यैव हृदयं यस्य तम्) ११. ॥ अथ पञ्च-  
मे यूपे । वैरहत्याय पिशुनं (परवृत्तसूचकम्) १०. विविक्तेये क्षत्तारं (प्र-  
तीहारम्) २. ओषद्रष्ट्याय अनुक्षत्तारं (प्रतिहारसेवकम्) ३. बलाय  
अनुचरं (सेवकम्) ४. भूम्ने परिष्कन्दम् (परितः स्कन्दति रेतः सिञ्च-  
ति तम्) ५. प्रियाय प्रियवादिनं (मधुरभाषिणम्) ६. अरिष्ट्ये अश्व-  
सादम् (अश्वारोहम्) ७. स्वर्गाय लोकाय भागदुग्धं (भागं दुग्धं  
भागदुग्धस्तन् विभागप्रदम्) ८. वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ६. ॥ १३॥

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारं  
शोकायाभिसर्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूले-  
भ्यस्त्रिष्टिनं वपुषे मानस्कृतं शीलायाञ्जनीकारीं  
निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥ १४॥

मन्यवे अयस्तापमयस्तपं लोहतापकम् १०. क्रोधाय निसरं (नित-  
रं सर्तारम्) ११. ॥ अथ षष्ठे यूपे । योगाय योक्तारं योगकर्ता-

रम् १. शोकाय अभिसर्तारं (संसुरवमागच्छन्तम्) २. क्षेमाय विमोक्षारं (विमोचनकरम्) ३. उत्कूलनिकूलेभ्यः त्रिष्टितम् (त्रिषु तिष्ठतीति त्रिष्टी तम् विद्यादिषु स्थितं शीलवन्तमित्यर्थः) ४. वयुषेमानस्कृतं पूजाया अभिमानस्य वा कर्तारम् सकृच्छान्दसः ५. शीलाय आज्ञनीकारीम् (अज्ञानविद्याकर्त्रीम्) ६. निर्वृत्यै कोशकारी (खड्गद्यावरणं कोशस्तत्कारिणीं स्त्रियम्) ७. यमाय असूम् (न सूते सा असूः ताम् वन्ध्याम्) ८. ॥ १४ ॥

यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाथ संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराथ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसंधर्तं साध्येभ्यश्चर्मन्मम् ॥ १५ ॥

यमाय यमसू (युग्मप्रसवित्रीम्) ८. अथर्वभ्योऽवतोकां (निरपत्ताम्) ९. संवत्सराय पर्यायिणीम् (पर्यायोऽनुक्रमस्तद्वतीमनुक्रमज्ञाम्) १०. ॥ ॥ अथ सप्तमे यूपे । परिवत्सराय अविजाताम् (अप्रसूताम्) १. इदावत्सराय अतीत्वरीमत्यन्तं कुलराम् पुंश्चली कुलठेत्वरी २. इद्वत्सराय अतिष्कद्वरीम् (अतिस्कन्दति स्रवति इत्यतिष्कद्वरी स्कन्देर्वन्नन्तात् डीब्रेफो) ३. वत्सराय विजर्जरां (शिथिलशरीराम्) ४. संवत्सराय पलिक्नीं (श्वेतकेशाम्) ५. ऋभुभ्यः अजिनसंधं (चर्मसंधातारम्) ६. साध्येभ्यः चर्मन्तं (चर्मभ्यासकरम्) ७. ॥ १५ ॥

सरोभ्यो वैवुरमुपस्थावरभ्यो हाशं वैशान्ताभ्यो वेन्दनद्वुलाभ्यः शौक्लं पारय मार्गारमवारय केवर्तती



र्थेभ्य आनन्द विषमेभ्यो मैनाल ७ स्वनेभ्यः पर्णिकं गु-  
हाभ्यः किरातुर्दं सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पू-  
रुषम् ॥ १६ ॥

हरोभ्यो धैवरं (कैवर्तपत्यम्) ८ उपस्थावराभ्यः दाशम् (दाशु दा-  
नं दातारम् दाशो धीवरो वा ६ वैशान्ताभ्यो वैन्दं (विन्दो निषादा-  
पत्यम्) १० नडुलाभ्यः शौष्कलं (मत्स्यजीविनम् शुष्कला मत्स्यासौ-  
जीवति तम्) ११ ॥ ॥ अथाष्टमे यूये । यागय मार्गारम् (मृगारेप-  
त्यं मार्गारस्तम्) १२ अपवागय केवर्तम् २ तीर्थेभ्यः आनन्दम् (अदि-  
बन्धने अदति आनन्दस्तं बन्धनकर्तारम्) ३ विषमेभ्यो मैनालम्  
(अल् वारणे मीनानलति वारयति जालैरसौ मीनालस्तदपत्यम्)  
४ स्वनेभ्यः पर्णिकं (भिल्लम्) ५ गुहाभ्यः किरातम् ६ सानुभ्यः जम्भ-  
कं (जभि नाशने जम्भयतीति तम् हिंसकम्) ७ पर्वतेभ्यः किम्पूरुषं  
(कुत्सितनरम्) ८ ॥ १६ ॥

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वा-  
णिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सि-  
ध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमात्यै जनवादिनं  
व्युद्गाः अपयगुल्भठं सठं शरायै प्रच्छिदम् ॥ १७ ॥

बीभत्सायै पौल्कसं (पुल्कसापत्यम्) ८ वर्णाय हिरण्यकारं (स्वर्ण-  
निष्पादकम्) १० तुलायै वाणिजं (वाणिगपत्यम्) ११ ॥ ॥ अथ  
नवमे यूये । पश्चादोषाय ग्लाविनं (ग्लो द्वर्षक्षणे अदृष्टम्) १२  
विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं (सिध्मारव्य रोगवन्तम्) १३ भूत्यै जागर-

एणं जागरूपकम्)३. अभूत्यै स्वपनं(शयालुम्)४. आर्त्यै जनवादिनं  
(जनान्वदति तम्)५. व्युद्यै अपगल्भम् ६. संशराय प्रच्छिदं(प्रच्छेदन-  
कर्तारम्)७. ॥१७॥

अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रैतायै कल्पि-  
नं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्याणुं मृत्यवे  
गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्ष-  
माण उपतिष्ठति दुःकृताय चरकाचार्यं पाप्मने सै-  
लगम् ॥१८॥

अक्षराजाय कितवं(धूर्तम्)८. कृताय आदिनवदर्शम्(आदिनवो-  
दोषस्तं यश्यति तथाभूतम्)९. त्रैतायै कल्पिनं(कल्पकम्)१०. द्वाप-  
राय अधिकल्पिनम्(अधिकल्पनाकर्तारम्)११. ॥ ॥ अथ दशमे  
धूपे । आस्कन्दाय सभास्याणुं(सभायां स्थिरम्)१. मृत्यवे गोव्यच्छं(गाः  
प्रति गमनशीलम्)२. अन्तकाय गोघातं(गवां हन्तारम्)३. क्षुधे यो  
गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति यः पुमान् गां विकृन्तन्तं छिद-  
न्तं भिक्षमाणो याचमानः उपतिष्ठते तं याचितारं क्षुधे दैव्ये आ-  
लभेत ४. दुःकृताय चरकाचार्यं(चरकाणां गुरुम्)५. पाप्मने सैलगं  
(सीलगो दुष्टस्तदपत्यम्)६. ॥१८॥

प्रतिश्रुत्वायाः अर्तनं घोषाय मयमन्ताय बहुवादिनम-  
न्ताय सूकठं शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावाद्  
क्रोशाय तूणवध्ममवरस्यराय शङ्खध्मं वनाय वनपमं  
न्यतोऽरण्याय हावपम् ॥१९॥

प्रतिश्रुत्कार्ये अर्तनं (दुःखिनम्) ७. घोषाय भयं (जल्पकम्) ८. अनन्ताय ब-  
ह्वादिनम् ९. अनन्ताय मूकं (वाग्विकलम्) १०. शब्दाय आडम्बर-  
घातम् (आडम्बरमाहन्ति तम् कोलाहलकर्तारम्) ११. अर्थेयान्त्रे-  
यूपे । महसे वीणावादं (वीणावादनकर्तारम्) १२. क्रोशाय तूणावधम्-  
मू (तूणवं वाद्यविशेषं धमति तथाभूतम्) १३. अवरस्पर्शाय शङ्खम्  
(शङ्खवादकम्) १४. वनाय वनपं (वनपालकम्) १५. अन्यतोऽग्रायाय वा-  
वपं (वनवन्धिपम्) १६. ॥१६॥

नर्माय पुंश्चलं हसाय कारीं यादसे शाबल्या ग्राम-  
ण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं  
तूणावधं तान्नुत्तायानन्दाय तलवम् ॥१७॥

नर्माय पुंश्चलं (दुष्टं नारीम्) ६. हसाय कारिं (करणाशीलम्) ७. या-  
दसे शाबल्याम् (शबलः कर्बुरवर्णः तदपत्यभूतां स्त्रियम्) ८. ग्राम-  
ण्यं (ग्रामनेतारम्) ९. गणकं (ज्योतिर्विदम्) १०. अभिक्रोशकं (निन्दक-  
म्) ११. तान् त्रीन्महसे जुष्टं नियुनज्मीति एकादशे यूपे आलभते  
॥ ॥ एवं प्रतियूप एकादश-एकादश नियुक्तौमेंजे अधिक (अवशिष्ट)  
हैं तिन समाप्ति पर्यन्तों को दूसरे उद्धृत यूपमें नियुक्त करें और ते  
वीणावादं पाणिघ्नमित्यादीनि रात्र्ये कृष्णं पिङ्गक्षमित्यन्ताः चतु-  
र्विंशहं ततः अथेतानष्टौ विरूपान् इत्यष्टौ और मागधादीनि  
चतुरः एवं षड्विंशति दूसरे यूपमें पूर्वोक्ता एकादश एवं सप्तत्रिं-  
शत् ३७। तान्नेवादः वीणावादम् पाणिघ्नं हस्ततालवादकम् तान् त्री-  
न् नृत्ताय आलभते ३. आनन्दाय तलवम् (वा गतिगन्धनयोः ग-

न्यनं हिंसातलं हस्तादितलं वाति वाद्यमुखं हन्ति स तलवस्तम्  
वाद्यवादकम् ४० ॥२०॥

अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डाल-  
मन्तरिक्षाय वंशानर्तिनं दिवे खलतिष्ठं सूर्याय हर्य-  
क्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासमन्त्रे शुक्लं  
पिङ्गाक्षं रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् ॥२१॥

अग्नये पीवानं (स्थूलम्) १. पृथिव्यै पीठसर्पिणं (पीठेनासनेन स-  
र्पति गच्छति पीठसर्पी तं पङ्गुम्) ६. वायवे चाण्डालं (चाण्डालकर्म-  
णम्) ७. अन्तरिक्षाय वंशानर्तिनम् (वंशेन नर्तनशीलम्) ८. दिवे ख-  
लतिमलोमशिरस्कं खल्वारमितीत्यर्थः ९. सूर्याय हर्यक्षं (हरितनेत्रम्)  
१०. नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं (कर्बुरवर्णम्) ११. चन्द्रमसे किलासं (सिध्म-  
रोगवन्तम्) १२. अन्त्रे शुक्लवर्णं पिङ्गाक्षम् १३. रात्र्यै कृष्णवर्णं पि-  
ङ्गाक्षम् १४ ॥२१॥

अथैतान्ष्टौ विरूपानालभते गतिदीर्घं चातिह्रस्वं चा-  
तिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकु-  
ल्वं चातिलोमशं च । अश्वद्रा अत्रास्यणास्ते प्राजाप-  
त्याः । मागधः पुँश्चली कितवः स्त्रीबोऽश्वद्रा अत्रास्य-  
णास्ते प्राजापत्याः ॥२२॥

इति सर्गहितायां द्वितीयेऽनुवाकः २

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिनशाखीयायां वाजसने-  
यसर्गहितायां दीर्घपाठे त्रिंशोऽध्यायः ३०

ततः इन बक्ष्यमान आठों विरूपों (परस्परविरूप) पशुओं को आलम्भ करे। तानाह। अतिदीर्घ (लम्बा) १. अतिह्रस्व (बौना) २. अतिस्थूल ३. अतिकृश ४. अतिशुक्ल ५. अतिकृष्णः ६. अतिकुल्ब (रोमरहित) ७. अतिलोमश (सर्वाङ्गव्यापिरोम) काते आठों शूद्र ब्राह्मणव्यतिरिक्ता पशु होते हैं और ते आठों प्राजापत्या (प्राजापतिदेवताके) हैं। अत्र जातिनियम से पूर्वी में जाति का नियम नहीं है। वीणावादादयश्चतुर्दश अतिदीर्घादयोऽष्टौ एवं द्वाविंशतिः श्रेष्ठाः। तथा मागधः १. पुंश्चली २. कितवः ३. क्लीबः ४. ये चारों भी शूद्रब्राह्मणव्यतिरिक्ताः प्राजापतिदेवताः पूर्वी सहित षड्विंशति हैं ते सब दूसरे यूप में नियोज्याः ॥ ॥ सर्वों के नियोगानन्तर तिन नियुक्त पुरुषों को सहस्रशीर्षा पुरुष इति ३१-१-१६ षोडशर्च अनुवाक करिदक्षिणत उपविष्टो होतृवदभिष्टौति (होतृवदिति प्रथमोत्तमयोस्त्रिर्वचनम् ऋगन्तानां प्रणवेन संधानं च। यथा। सहस्रशीर्षा पुरुष-०ङ्गुलो ३। पुरुष एवेवर्ध-० रोहितो ३म्। एवमभिष्टौति। ततः आलम्भन क्रमसे यथादेवत प्रोक्षणदि है। ब्राह्मणादिकों के पर्यग्नि करणान्तर इदं ब्रह्मणे. इदं क्षत्राय. इत्येवं सबों का यथास्वस्वदेवतोद्देश करि त्याग है। ततः सब ब्राह्मणदिकों को यूपों से खोलि करि उत्सर्जन करे (छोड़े)। ततः एका दक्षिणी के पशुओं से संज्ञयनादि प्रधान यागान्न वनस्पति याग करिके स्विष्टकृत से पहिले अर्धयु आज्य को संस्कार करि एकवार लिये आज्य को लेकर ओम् पुरुष देवताभ्यो ब्रह्मादिभ्यः आहवनीय में होमें ओम् ब्रह्मणे स्वाहा १६-

१. अष्टौः उक्तमाना लभत इत्युपक्रम्य ते वै प्राजापत्या भवन्तीति १३-६. ३०-८. युतेः।  
२. तानाह वेदिक, आरग्व पशुजोवत् नष्टे ताते हैं युते का हिंसन नहीं है।

त्राय स्वाहा २ मरुद्भ्यः ३ तपसे ४ तमसे ५ इत्यादि अध्याय पर्यन्त च  
 तुरशीत्युत्तरशतसंख्याकों १८४ के अर्थ तितनी ही घृताहुती होमिके  
 सिष्ट कृदादि उदवसानीयान्त कर्म करि अन्तमें यजमान अयंते यो-  
 निः ३-१४ इति मंत्रेण आत्मा में अग्नियें आरोपण करि अद्वाः स-  
 म्भृत इति ३१-१७-२२ षडृच अनुवाक सैं सूर्य को उपस्थित करि  
 पीछे अनदेखते आरण्य को जाके संन्यास करे (गार्हपत्येऽधरा  
 रणिमनु प्रहृत्या हवनीयः उत्तरारणिमात्मन्नाग्नी समारोप्यारण्यं  
 ब्रजेदिति शाङ्खायनोक्तेः) यदि पुरुषमेधके अनन्तर ग्राम वासेछा  
 नहि उदवसानीयान्ते सायमाहुती होम के आरण्य में अग्नी स  
 मारोपण करि उत्तरनाशयण सैं अर्क को उपस्थान करि देवयज-  
 न को आदीपन करिके घरको चले घर में आ मन्यन करि अग्नि  
 को स्थापन करे और यथेच्छ यज्ञों को करे। अयमपि पक्षोऽस्ति।  
 तत्पुरुषमेधानन्तरं संन्यास एव ॥२२॥

इति गिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः १

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थोऽश्चतुरोदेयाद्विराजपुरुषः परः ३०

श्री मच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाध्येत्य व्याघ्रपादान्क-  
 यविश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेव वर्माज रैकिमणेयन-  
 पति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये नरमेधि-  
 काः पशुवर्णनो. नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

ॐ शान्तिः

शान्तिः

शान्तिः



हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहु रूपकम्  
स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३१

अथ पुरुषसूक्तानुवाकः प्रथमः १

अ० १. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिर्दे-  
सर्वतः सृत्वात्यतिष्ठद्दृशाद्भुलम् ॥ १ ॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्री वेदार्थप्रदीपके

नरमेधोऽध्याय एष एकं त्रिंशोऽयमीर्यते ३१

का० २१. १. ११. नियुक्तों ब्राह्मणमित्यादि पशुओं को सहस्र शीर्षेति षोड-  
शर्च अनुवाक करि ब्रह्मा होतृवत् (त्रिः प्रथमा त्रिः उत्तमा इत्यादि  
उक्त प्रकार से) स्तुति करे ॥ नारायण पुरुष दृष्टा जगद्बीज पुरुष देवत्या-  
षोडशैः ऋचः पञ्चदशानुष्टुभः षोडशी त्रिष्टुप् । ब्राह्मणे ब्राह्मणमि-  
त्याह ॥ पुरुषमेधरूप परमात्मा के अवयव पूर्वाध्याय के अन्त में  
कहे तिन्हें का अवयवी पुरुष यहां स्तुति करिये हैं । अव्यक्त महदा-  
दि हिलक्षण चेतन जो पुरुष-पुरुषान्न परः किंचिदित्यादि श्रुतिषु  
(पुरुष से नहीं है परे कोई इत्यादि श्रुति में) प्रसिद्ध सर्व प्राणि समष्टि-  
रूप से ब्रह्माण्ड देह विराजनामा है । कैसा कि सहस्रशीर्षा (असंख्यात  
हैं शिर जिस के हैं सब प्राणियों के जे शिर हैं ते सब तिस देह के अन्तः  
पाति त्व से तिसी के हैं यह सहस्रशीर्षत्व है । मरेऽपि । असंख्यात

संख्यावाच के सहस्राक्ष इति विशेषः स्यात् न च सहस्रद्वयेन भाव्यम् ।  
संख्यावाच की संख्यावाची संख्यावाच बहुत्ववाची । सहस्र शब्द बहुत्ववाची ।

† नवग्रहों सर्वकर्मों में प्रयोज्यता के कर्म  
+ पाद ग्रहों के कर्मों में प्रयोज्यता के कर्म

हैं नेत्र जिस के + असंख्यात हैं पाद जिस के +। सो पुरुष भूमि (ब्रह्मा-  
ण्डलोक रूपा वा यच्च भूतों) को व्याप्त हो दशाङ्गुल परिमित देश को अ-  
ध्यतिष्ठत् (अतिक्रमण करि अवस्थित) है। दशाङ्गुलमित्युपलक्षणम्  
अर्थात् ब्रह्माण्ड से बाहिर भी सर्वतः व्याप्त हो अवस्थित यद्वा नाभिके  
सकाश से दशाङ्गुल अतिक्रमण करि हृदय में स्थित है नाभि से यह क-  
हां से पाया कि कतम आत्मेत्युपक्रम्य सोऽयं विज्ञान मयः प्राणेषु हृदय-  
न्तर्ज्योतिरिति श्रुतेः विज्ञानात्मा का हृदय में अवस्थान है कर्मफल भो-  
ग के अर्थ अन्तर्यामी नियन्त्रत्व करिके तदुक्तम् ऋक्सं० अष्ट० २ अध्या०  
३ व० १० मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६४ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं  
वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचा-  
कशीति इति ॥ स पुरुषोऽत्र देवता तथा च श्रुतिः १३६२१ इमे वै  
लोकाः पूरयमेव पूरुषो योऽयं पवते सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात्पुरु-  
ष इति ॥१॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्वृत्तं यच्च भाव्यम् । उतामो  
स्येशानो यदन्नैनातिरोहति ॥२॥

जो यह वर्तमान जगत् सो सब पुरुष ही है और जो भूत जगत्  
जो भविष्य जगत् वोह भी पुरुष ही है (जैसे इस कल्प में वर्तमान  
देहाः सब विगट पुरुष के अवयव हैं तैसे ही भूत भविष्य कल्प  
भी द्रष्टव्य हैं इति भावः । और अमृतत्व (देवत्व) का स्वामी  
पुरुष जिस से प्राणियों के भोग्य अन्न (फल-निमित्तभूत) का  
पानी कारण अवस्था को अतिक्रम्य परिदृश्यमान जगद्

त्रपाश  
चण्डोय  
नरको  
शा

का प्राप्त होता है तिस से पुरुष है। अर्थात् प्राणियों के कर्मफलभोग के अर्थ जगदवस्थास्वीकार से नहीं है तिस का यह वस्तुत्व ॥३॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायौश्च पुरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिषादस्यामृतं दिवि ॥३॥

आतीतानागतवर्तमानकालसम्बद्ध यावत् जगत है एतावान् (सर्वे र्गय) इस पुरुष की महिमा (स्वकीयसामर्थ्यविशेषविभूति) है न तु वास्तव स्वरूप है वास्तव तो पुरुष है और यह महिम्न (पुरुष) जगज्जाल से ज्यायान् (अतिशयेनाधिकः)। एतदुभयं स्पष्टीकियते- इस पुरुष के सब भूत (कालत्रयवर्ति प्राणिजात) पादः (चतुर्थीशः) इसका अवशिष्ट (त्रिपात्स्वरूप) अमृत (विनाशरहित) वोह दिवि (द्योतनात्मक स्वप्रकाशस्वरूप) में अवतिष्ठे है इतिशेषः। यद्यपि संत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्मेत्याम्नात परब्रह्म की इयता के अभाव से पादचतुष्टय निरूपण करने को अशक्त तदपि यह जगत् ब्रह्मरूपापेक्षा करि अल्प है इति विवक्षतत्वात्पादत्वोपन्यासः ॥३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्युरुषः पादोऽस्येहामवत्युनः। ततो विषुड्व्युक्रामत्साशनानशनेऽभि ॥४॥

जो यह त्रिपात्युरुष संसारस्पर्श रहित ब्रह्म रूप ऊर्ध्वः उदैत् (इस अज्ञानकार्य संसार से बहिर्भूत यहां के गुण दोषों से अस्पृष्ट उत्कर्ष करि स्थित हुआ। तिस का पाद (लेशजगद्रूप) इस माया में फिर उत्यन्न हुआ (सृष्टिसंहार करि फिर-फिर आता है) फिर साया में आकर निरन्तर उदवतिर्यगादिरूप करि विविध हो व्याप्त हुआ क्या क-

रिके कि साशनानशने अभि अर्थात् अशनादि व्यवहारोपेत चेतन  
प्राणिजात अशनरहित अचेतनगिरिनद्यादिक ते अभिलक्ष्य स्व-  
यमेव विविधहोके व्याप्त हुआ ॥४॥ .

ततो विराडजायत विराजोऽधि पूरुषः । स जातोऽं-  
त्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

विष्वङ् व्यत्क्रामदिति यदुक्तम् तदेव प्रपञ्च्यते । तिस आदिपुरु-  
ष से विराट् (ब्रह्माण्डदेह) हुआ (विविधराजें हे वस्तुएँ जहां इति विराट्)  
विराट् देह के ऊपर उसही देह को अधिकरण करिके पुरुषः (तिसदेहभि-  
मानी एक एव पुमान् हुआ (अर्थात् सर्ववेदान्तवेद्यः परमात्मा स्वमाया  
करि विराट् देह ब्रह्माण्डरूप को सृजि के तहां जीवरूप करि प्रविश्य  
ब्रह्माण्डाभिमानी देवता आत्मा (जीव) हुआ + किं च सो हुआ विराट्  
पुरुष अतिरिक्त देवतिर्यङ् मनुष्यादिरूप हुआ पीछे (देवादिजीवभा-  
व से ऊपर) भूमि को सृजा इति शेषः अथः (भूमि सृजने के अनन्तर)  
तिन जीवों के पुर (पूरे हैं सात धातुओं से शरीर) सृजे ॥५॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्मृतं पृषदाज्यम् । पशून्तान्श्च-  
क्रे वायव्या नारुण्या ग्राम्याश्च ये ॥६॥ ८॥

तिस सर्व हुत् (सब होमियें हैं जिस में तिस पुरुषमेध) यज्ञ से पृषदा-  
ज्य (दधिमिश्रित आज्य दध्याज्यादिभोग्यजात) सम्पादित हैं पु-  
रुष करि इति शेषः । तथा वोह पुरुष वायु देवता काः तिन (प्रसिद्ध)  
पशुओं को उत्पन्न करता हुआ । तिन किन्हे कि जे आरण्याः (अर-  
में हु (एह रिणादयः) और जे ग्राम्याः (गाँव में हुए गवाश्वादयः) तिन

पशुओं को किया ॥६॥८॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दा-  
थ्सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥ ४ ॥

तिस सर्वहुत यज्ञ से ऋचाएँ और सामाएँ उत्पन्न हुईं। और गाय-  
त्र्यादीनि छन्दांसि उत्पन्न हुईं तिस से यजु उत्पन्न हुआ (ऋग्यजुः  
साम और छन्दों विना यज्ञ नहीं सिद्धि होते ॥७॥ ४ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चौभयादतः। गावो ह ज-  
ज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥८॥ १० ॥

तिस यज्ञ से अश्व उत्पन्न हुए तथा जे कोई अश्व से अतिरिक्त ग-  
र्दभादयः और अश्वतराः उभयदन्ता (ऊपर नीचे दाँत युक्ता) हैं ने  
भी उत्पन्न हुए। तथा ह (स्फुट) और तिस यज्ञ से गौएँ हुईं। किं-  
च तिस यज्ञ से छेरी और भेड़ी हुईं। नहीं पशुओं विना यज्ञसि-  
द्धि होता ॥८॥ १० ॥

ते यज्ञं बर्हिषि प्रोक्षन्पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा  
अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥९॥ ७ ॥

यज्ञसाधनभूत तिस पुरुष को पशुत्व समझकर यूप में बँधे को  
वर्हिषों से मानसयज्ञ में प्रोक्षणादि संस्कारों से संस्कार करते  
हुए। कैसे को कि सृष्टिसे आगे हुए पुरुषत्व करि उत्पन्न को (एतच्च  
प्रागेवोक्तम् ततो विराडजायत विराजोऽपधिपूरुषः इति। ति-  
स पुरुषरूप पशु करि देवाः पूजते (मानसयाग करते) हुए कौन ते  
देवाः इत्यत्राह कि जे साध्याः (सृष्टिसाधनयोग्याः) अजायति प्रभुत-

यः) और जे तदनुकूला ऋषयः (मन्त्रदृष्टारः) ते सबभी यज-  
ते हुए ॥ ४॥ १॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्या-  
सीत्किं बाहू किमूरू पादाऽउच्येते ॥ १०॥ १२॥

प्रश्नोत्तररूपेण ब्राह्मणादिसृष्टिं वक्तुं ब्रह्मवादिनां प्रश्ना उच्यन्ते ।  
प्रजापति के प्राणरूपा देवा जब कि पुरुष को व्यदधुः (कालकरि उ-  
दपादयन् तब कितने प्रकारों करि विविध कल्पना करते हुए कि  
इस पुरुष का मुख क्या है कौन बाहुएँ और कौन ऊरू हैं किं च पाद  
भी कौन हैं ॥ १०॥ १२॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू  
तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांश्च शूद्रोऽज्जायत ॥ ११॥ १३॥

पूर्वोक्तप्रश्नोत्तराण्याह । ब्राह्मण (ब्रह्मजातिविशिष्टपुरुष) इस  
प्रजापति का मुखहुआ (अर्थात् मुख से उत्पन्न । राजन्य (क्षत्रियत्व  
जातिविशिष्ट) बाहुकृतः (बाहुत्व करि निष्पादितः) । तब इस प्रजा-  
पति के जे ऊरू तद्रूप वैश्य सम्पन्न (ऊरूओं से उत्पादितः) । तथा  
इस के पैरों करि शूद्रत्वजातिमान् पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ ११॥ १३॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षुः सूर्योऽज्जायत । ओत्रा-  
द्वायुश्च प्राणश्च मुखोद्गनिर्जायत ॥ १२॥ १४॥

यथा दध्यादिद्रव्याणि गवादयः पशवः ऋगादिवेदाः ब्राह्मणा-  
दयो मनुष्याश्च तस्मादुत्पन्नाः एवं चन्द्रादयो देवा अपि तस्मा-  
देवोत्पन्ना इत्याह । मन के सकाश से चन्द्रमा हुआ चक्षुओं से



सूर्यं ह्यग्ना वायुं और् प्राणं ओत्र सै उत्पन्नं ह्यग्ना मुखसै अग्नि  
उत्पन्नं ह्यग्ना ॥१२॥ ॥१४॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत । प  
द्भ्यां भूमिर्दिशः ओत्रात्तथा लोकां ॥१३॥ अकल्पयन् ॥१३॥ ॥१५॥

यथा प्रजापतेर्मनः प्रभृतयश्चन्द्रादीनकल्पयन् तथान्तरिक्षादिलो-  
कानित्याह नाभ्येति प्रजापति की नाभि के सकाश सै अन्तरिक्षं ह्यग्ना  
शिरसै द्यौः (स्वर्ग) उत्पन्नं ह्यग्ना । पैरों सै भूमि उत्पन्नं ह्यग्ना ओत्र सै दि-  
शाँ उत्पन्नं ह्यग्ना तथा तिस (उक्त प्रकार) करि भूरादि लोकों की प्रजापति  
के सकाश सै कल्पना करते हुए फलदानोत्सुकाः काला इति शे-  
षः ॥१३॥ ॥१५॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतेन्वत । वसन्तोऽस्यासी-  
दाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्विः ॥१४॥ ॥१६॥

जब कि (पूर्वोक्तक्रम सै) देव शरीर में ही देवता उत्तर सृष्टि सिद्ध्यर्थ बा-  
ह्यद्रव्य के अनुत्पन्नत्व करि मन सै हविष्ट्व करि संकल्प्य पुरुषारव्य  
हवियों सै मानस यज्ञ को विस्तारते हुए तब इस यज्ञ का वसन्त ऋ-  
तु आज्यत्व करि संकल्प करते हुए एवं ग्रीष्म इध्मत्व करि संकल्प क-  
रते हुए तथा शरद को पुरोडाशादि हविष्ट्व करि संकल्पते हुए । यहि-  
ले पुरुष के हवि सामान्यरूपत्व सै संकल्प है अनन्तर वसन्तादिकों  
का आज्यादिविशेषरूपत्व करि संकल्प इति द्रष्टव्यम् ॥ यहां कण्डि-  
का व्युत्क्रम है इस ऋचा के अनन्तर तं यज्ञम् अ. ३१. १८. रितस्माद्य गातृ  
तीर्थो क्रम सै ६. ७. ८. ततः सप्तास्यासन् १५. यह क्रम अपेक्षित है ॥१४॥ ॥१६॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यज्ञ-  
ज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥ ॥ ११ ॥

जब कि देवाः (प्रजापतिप्राणेन्द्रियरूपा) मानसयज्ञ को करते पुरुष प-  
शुमवध्नन् (विराट्पुरुषको ही पशुत्व करि भावना करते हुए। यह ही  
अभिप्राय पहिले १४ पुरुषेण हविषेत्युक्तम् तव इस संकल्पित यज्ञ के  
सातों गायत्र्यादीनि छन्दसि परिधयः हुए (ऐष्टिक आहवनीय के तीनि  
परिधि औत्तरवेदिक तीनि आदित्य सातवां परिधि प्रतिनिधिरूपहैं।  
त्रिः सप्त ३+) एकविंशति संख्याकाः समिधाएँ किई (द्वादशमहीने पाँ-  
च ऋतुएँ ये तीनों लोक यह आदित्य इक्कीसवां इक्कीसौ दारुयुक्त इ-  
ध्मत्व करि कल्पना किये वा तीनि सातगुने छन्दवर्ग समिधः कृताः  
गायत्र्यादीनि सप्त ७ अतिजगत्यादीनि सप्त ७ कृत्यादीनि सप्ते-  
नि ७ ॥ १५ ॥ ॥ ११ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्या-  
सन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वं साध्याः  
सन्ति देवाः ॥ १६ ॥

पूर्व प्रथम्वेनोक्तमर्थं संक्षिप्याह । देवाः (प्रजापतिप्राणरूपः) यज्ञ  
(यथोक्तमानससंकल्पः) करि यज्ञ (यज्ञस्वरूप प्रजापति) को पूजते हुए  
तिस पूजन सैं तिन (प्रसिद्ध) धर्म (जगद्रूपविकारों के धारकों) प्रथ-  
मों (मुख्यभूतों) को हुए । एतावता सृष्टिप्रतिपादक सूक्तभागार्थः सं-  
गृहीतः अथोपासन्नतत्फलानुवादकभागार्थः संगृह्यते । यत्र (जि-  
सविराट्प्राप्तिरूप) नाक (स्वर्ग) में पूर्वं साध्याः (पुराने विराडुपा-

न तया च श्रुतिः गुप्ते वाऽऽभिहितः परिधयो भवन्त्यर्थे तत्सूत्रे मेव चुरन्ता ज्ञातारं कोपेति न  
तन् एते आदित्यसदितः सप्त परिधयोऽत्र सप्तकन्दोत्तराः ॥

धिसाधकाः) देवाः तिष्ठे हं तिस विराट्प्राप्तिरूपस्वर्ग को ही ते महिमा-  
नः (तिस के उपासक महात्मा) प्राप्त होते हैं। सृष्टेः प्रवाहनित्यतां द-  
र्शयति तदुक्तम् सूर्योच्चन्द्रमसौ धातायथा पूर्षमकल्पयदिति ॥१६॥  
इति पुरुषसूक्तानुवाकः प्रथमः ॥१॥

अथोत्तरनारायणो मन्त्रः

अ० २ अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्ते-  
ताग्रे । तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देव-  
त्वमाजनमग्रे ॥१७॥

का० २१-२०-१७-१८ त्रैधातवी (उदवसानीयेष्टिः) तिस के अन्त में अ-  
यंते योनिरित्यग्नि आत्मा में समारोहण करि तिस उष्माण को सु-  
ख में प्रवेश करिके अद्भ्यः सम्भृत इति षडुच्चेनानुवाकेन सूर्यको  
उपस्थित करि पीछे न देवते वन को जाकर ग्राम को न आने अ-  
र्थात् वानप्रस्थ हो। यद्वा ग्राम में वास करने को इच्छा करता अर्णी-  
ओं में अग्नी समारोपण करि अर्कोपस्थान के अनन्तर ग्राम में जाकर य-  
ज्ञों को करे ॥ इति मन्त्रार्थः ॥ अद्भ्यः सम्भृत इत्युत्तर नारायणो नादित्यमुपस्था-  
येति १३-६-२० षट्कण्डिका उत्तरनारायणाम्। उपान्त्ये द्वे अनुष्टुभौ शो-  
षास्त्रिष्टुभः आदित्यदेवत्याः। पूर्वकल्पे पुरुषमेधयाजी आदित्यरूपं प्रा-  
प्तः स्तूयते। अद्भ्यः (जल) और पृथिवी के सकाश (पृथिव्यंषां ग्रहाणं भूतष-  
ट्चकोपलक्षकम् पांचोभूतों) से जो रस सम्भृत (पुष्ट) तथा विश्व कर्म (का-  
ल) के रस (प्रीति) से जो रस अग्र (पहिले) में हुआ अर्थात् भूतपञ्चक और  
काल के सबों प्रति कारण होने से पुरुषमेधयाजी के लिङ्ग शरीर में

पाँचोभूत तुष्ट और काल ततः तुष्टों से कोईक रसविशेष फलरूप  
उत्तमजन्मप्रद हुआ। तिस रस के रूप को धारण करना त्वष्टा (आदि-  
त्य) प्रतिदिन उदय करता है। अग्र (पहिले) में तिसमर्त्य (पुर्वषमेधया-  
जी मनुष्य) का आज्ञान (मुख्य) देवत्व है सूर्यरूप करिके। द्विविधा दे-  
वता हैं कर्मदेवाः (उत्कृष्टकर्म करि देवत्व को प्राप्ताः) और आज्ञान देवाः  
(सृष्टि की आदि में उत्पन्नाः) ते कर्मदेवाओं से श्रेष्ठ हैं + ॥१७॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात्  
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽय-  
नाय ॥१८॥

इस महान्त (सर्वोत्कृष्ट) पुरुष सूर्यमण्डलस्थ को मैं जानता हूँ इतिक्व-  
षेर्वचनम् कैसे कि. आदित्य वर्ण (आदित्य का सा वर्ण जिस का तिस उ-  
पमान्तर अभाव से स्वोपम) तथा तम (अविद्या) से दूर (तमरहित) ति-  
स आदित्य को जानकर मृत्यु को अतिक्रामति (परं ब्रह्म को जाता है।  
अयन (आश्रय) के अर्थ अन्य पन्था नहीं विद्ये है (सूर्यमण्डलान्तः  
पुरुष को आत्मरूप जानना ही मुक्ति है ॥१८॥

ऋजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमनो बहुधा विजायते।  
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्युर्भुवना-  
नि विश्वा ॥१९॥

जो सर्वात्मा प्रजापति हृदय के भीतर स्थितः सन् गर्भ मध्य में प्रवे-  
श करता है। और जो उत्पद्यमानः नित्यः सन् बहुधा (कार्यकारण-  
रूप करि) विजायते (माया करि प्रपञ्चरूपेण उत्पन्न होता है) धीराः

+ ते प्रातः कर्म देवानामानन्दः स रात्रिः आज्ञान देवानामानन्द इति श्रुतेः देवदत्तारं मा. ०. ४. २. ३५. सू-  
रीदयश्च आज्ञान देवाः ॥

(ब्रह्मविद्) तिस प्रजापति के योनि (स्वरूप) को देखते (अहं ब्रह्मास्मि जानते) हैं। सब भुवन (भूतजात) तिस ही कारणात्मा ब्रह्म में स्थित हैं। अर्थात् सब तदात्मक हैं ॥१४॥

यो देवेभ्य आतर्पति यो देवानां पुरोहितः। पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२०॥

जो प्रजापति आदित्यरूप देवताओं के अर्थ प्रकाश है और जो देवताओं का पुरोहित (सब कार्यों में नीत) है और जो देवताओं के सकाश से प्रथम उत्पन्न है तस्मै आदित्याय नमः (तिस आदित्य के अर्थ नमस्कार) कैसे कि रुचः (दीप्यमान) के अर्थ तथा ब्रह्मये (ब्रह्म के अपत्य ब्राह्मण, वा ब्रह्मावयव भूत के अर्थ) ॥२०॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तद्ब्रुवन्। यस्त्वेवं ब्राह्मणं विद्यात्तस्य देवा असुन्वसे ॥२१॥

देवाः (दीप्यमानाः प्राणाः) रुच (शोभन) ब्राह्म (ब्रह्म के अपत्य आदित्य) को उत्पादन करते हुए बोह वचन बोले। बोह क्या अत आह कि जो ब्राह्मण है आदित्य तुरै एवं (उक्तविधिकरि) उत्पन्न जानें तिस ब्राह्मण के देवता वशी होते हैं अर्थात् आदित्योपासिता जगत्पूज्य होता है ॥२१॥

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यातम्। इष्टान्निषाणामुं मेऽइषाण सर्वलोकं मेऽइषाण ॥२२॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिन शाखीयायां वाजसनेय-  
सर्गहितायां दीर्घ पाठे एकविंशोऽध्यायः ॥३१॥

ऋषिरादित्यं स्तुत्वा प्रार्थयते । हे आदित्य श्री और लक्ष्मी तेरी पत्नि-  
हैं (जाया म्यानीये त्वद्वेश्ये) हैं । तिस करि सर्वजनाश्रणीय होता है वो-  
ह श्री (श्रीयते नया श्रीः) अर्थात् सम्पत् । जिस करि लखिये (देखिये) है ज-  
नों करि वोह लक्ष्मी अर्थात् सौन्दर्य । अहोरात्र तेरी पार्श्वस्थानीये । नक्ष-  
त्राणि (गगन में चलने वाले तारा) तेरा रूप (तेरे तेजसे भासैं) हैं । अश्विनो  
(द्यावापृथ्व्यो) तेरे व्यात (विकासित) मुखस्थानीये हैं । जो ईदृ-  
श तिस तुरे याचना (कर्मफल को इच्छा) करते वा अन्नेच्छा करते  
सन् इच्छा करता है । किमेषणीयं तत्राहै अमुं (परलोक) मे (मम) इ-  
षाण (परलोक समीचीन हो यह इच्छा अर्थात् अमोघेच्छत्वं से इष्ट  
होता है । सर्व मे (मम) इषाण (सर्वलोकात्म में होउ यह इच्छा अर्था-  
त् मुक्त होऊ । सर्व खल्विदं ब्रह्मेति सामश्रुतेः ॥३२॥ इत्युत्तरना-  
रायणोमन्त्रः ॥ समाप्तश्चायं पुरुषमेधः ॥

इति गिरिधर भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थ प्रदीपन तमो हार्दनिवारयन्

पुमायंश्चतुरे देया द्विराज पुरुषः परः ३१

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाध्येतव्या घ्रादा न्वयं वि-  
श्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेव दस्मीत्मज रौद्रिचणोय नृपति  
गिरिप्रसादेन रचितं श्रीवेदार्थ प्रदीपे गिरिधर भाष्ये पुरुषमेध प्रकरणे पु-  
रुष सूक्तानुवाक सूर्योपस्थान वर्णनो नामैक विंशोऽध्यायः ॥३१॥

† अश्विनो द्यावापृथ्व्यो इमे ही देववशाश्रुवात  
निर्दिष्टे ।



हरिः ओम्

ॐ नमो याज्ञपुरुषाय

अथ सर्वमेधमन्त्राः स्वयम्भुवत्सदृष्टाः

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वैह रूपकम्

स्वानन्दहायकं कृष्णवत्सरूपं परं स्तुमः ३२

अ० १० तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शु-

क्रं तद्वत्स ता आपः स प्रजापतिः ॥१॥

ॐ नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

सर्वमेधिकमन्त्रोक्तिर्द्वात्रिंशोऽध्याय ईर्यते ३२

पुरुषमन्त्रा उक्ताः । अथ सर्वमेधमन्त्रा उच्यन्ते प्रवायुमच्छे-

त्यस्मात्प्राक् ३३, ५५ स्वयम्भुवत्सदृष्टाः आत्मदेवत्याः सप्तमेऽहनि  
आप्नोर्यामसंज्ञिके सर्वहोमे विनियुक्ताः आप्नोर्यामः सप्तमहर्भव-  
तीत्युपक्रम्य सर्वं जुहोति सर्वस्याग्ने सर्वस्यावरुद्धे इति श्रुतेः ३३  
७१ ४० ॥ द्वे अन्तुष्टुभौ । विज्ञानात्मा परेणात्मना विंशष्टौ ऽग्न्या-  
दिष्वेतत्प्रोतत्वेनोपास्योऽभिधीयते । अग्निः तदेव कारणं है (ब्रह्मैव)  
आदित्य वोहही है वायुवोही है तैसै ही चन्द्रमा । शुक्र प्रसिद्ध । ब्रह्म  
(त्रयीलक्षण) ब्रह्मैव । प्रसिद्धाः जलानि प्रसिद्ध प्रजापति भी वोह ही  
ब्रह्म है ॥१॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि । नैनं मूर्ध्नि  
न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ॥२॥

सर्वे निमेषाः त्रुटिकाष्टा घटी आदिक कालविशेष अधियुरुष के स-  
काश से उत्पन्न हुए। कैसे पुरुष से कि विशेषेण प्रकाशमान। किंच  
कश्चिदपि इस पुरुष को उपरि भाग में नहीं परिगृह्णाति गृहण करता।  
न इसे चारों दिशा में न परि मध्यदेश में भी नहीं गृहण करता अर्थात्  
तु यह प्रत्यक्षादिकों का विषय नहीं है + जग्रभूत ग्रहे शतरि जुहो-  
त्यादित्वेन रूपम् ॥२॥

न तस्य प्रतिमाऽ अस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिर-  
ण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जा-  
त इत्येषः ॥३॥ + न-शः। अ० हि-ष। इ० ॥३॥

द्विपदा गायत्री। तिस पुरुष का प्रतिमा (प्रतिमान उपमान) दिवस्तु  
नहीं अत एव नाम (प्रसिद्ध) बड़ा यश जिसका अर्थात् स-  
शा है ॥ हिरण्यगर्भ इत्येषोऽनुवाकश्चतुर्चः हिरण्यगर्भः ॥ ५ ॥  
एतः यस्य मे य आत्मदाः इति २५. १०-१३। मा मा हिंसीज्जनिते  
त्येका एषा १२. १०२. यस्मान्न जातः इन्द्रश्च सम्प्रदिति ७. ३६. १०  
द्युचोऽनुवाकः। एताः प्रतीकचोदिताः पूर्वं पठितत्वादादिमात्रेणोक्ताः  
ब्रह्मयज्ञे (जपे) च सर्वा अध्येयाः। एवं सर्वत्र ॥३॥

एषो हे देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ ग-  
र्भेऽश्नन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् ज-  
नास्तिष्ठति सर्वतो मुखः ॥४॥

चतस्रस्त्रिष्टुभः। यह प्रसिद्ध + देव सब दिशाओं को व्याप्त हो स्थि-  
त है। हे मनुष्यओं यह प्रसिद्ध प्रथम उत्पन्न है। गर्भ के मध्य में

न स एष जनि-न नामात्मागुह्यो न हि गुह्यत इति श्रुतिः

न स एष जनि-

बोह ही स्थित है। और वोह ही उत्पन्न है। और वोह ही उत्पत्त्यमा-  
गा है। प्रत्यङ् (प्रति पदार्थ) को अञ्चन करता है। सर्वतः मुखाद्यव-  
यव जिस के (अचिन्त्य शक्ति) है ॥४॥

यस्माज्ज्ञातं न पुरा किंचनैव य आब्रुवन् भुवनानि  
विश्वा । प्रजापतिः प्रजया सर्गरणस्वीणि ज्योती-  
श्च सचते स षोडशी ॥५॥

जिस से पहिले कुछ भी न हुआ और जो सब भूतजातों को समन्ता-  
द्भावयामास। वोह षोडशावयवलिङ्गः शरीरी प्रजापति प्रजाकरि-  
र्यमाण तीन् ज्योतिर् (सूर्यचन्द्र अग्निरूपी) सेवन करता है ॥५॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तभितं येन ना-  
कः । योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय ह-  
विषा विधेम ॥६॥

जिस पुरुष ने द्यौ उद्गूर्ण दृष्टि का देनेवाला किया इति शेषः। और  
जिसने पृथिवी दृढ की (सब प्राणियों का धारण दृष्टि का ग्रहण और  
अन्ननिष्पादन यह भूमि की दृढता है। जिसने आदित्य मण्डल  
को धौंभा और जिसने स्वर्ग धौंभा। जो अन्तरिक्ष (नभ) में जल  
(दृष्टिरूप) का निर्माता। तिसै छोडि किस देवता के अर्थ हवि देते हैं  
अर्थात् किसी के अर्थ नहीं ॥६॥

यं क्रन्दसीऽवसा तस्तभाने अभ्येक्षेतां मनसा रे-  
जमाने । यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय  
हविषा विधेम । आपो ह यद्दहतीयश्चिदापः ॥७॥

क्रन्दसी (द्यावापृथिवीएँ) जिस पुरुष को मन कार साधु कृत यह देव  
तीं हर्ष कैसे हैं क्रन्दसी कि अवसा हविलक्ष्णा वृष्टिजन अन्न करि  
प्राणिजात को आभती। शोभमान हैं। सूर्यजिन द्यावा पृथिवीओंमें  
उदित हो अधिक प्रकाशता वा शोभता है तिसे छोड़ि किस देवता के  
अर्थ हवि देते हैं ॥ आपो ह यह हती ॥ २७ ॥ २५ यश्चिदापः २७ ॥ २६ द्वे प्रती-  
कोक्ते जपादावध्येये ॥ ७ ॥

अ० २० वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनी-  
डम् । तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रो-  
तश्च विभूः प्रजासु ॥ ८ ॥

वेनः (विदितवेदान्तरहस्यः पण्डितः) तत् (ब्रह्म) की देवता (जानता) है।  
कैसे तत् को कि गुहा (रहःस्थान) में स्थापित दुर्ज्ञेय। स  
स ब्रह्म विषे विश्व (कार्यजात) एकनीड (एक ही है आश्रय जिस ५०  
अर्थात् अविभक्तमविशेषकारणमेव) होता है। तिस ब्रह्म में यह  
भूतजात संहार समय जाता और सर्गकाल में निकलता है। सो पर-  
मात्मा प्रजाविषे ओत और प्रोत (ऊर्ध्वतुन्तु में पट जैसे शरीर भावक-  
रि ओत तिर्यक्तुन्तु में पट जैसे प्रोत) है। कैसा है कि विभूः (कार्यका-  
रणरूपेण विविध होता है) सब ब्रह्म ही है ॥ ८ ॥

अ तद्वैचिदमृतं तु विद्वान्गान्धर्वो धाम विभृतं गुहास-  
त् । त्रीणि यदनि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स-  
पितुः पिता सत् ॥ ९ ॥

गंधर्व (वेदवाचाको विचार करने वाला वेदान्तवेत्ता) विद्वान् (पण्डित)

क्षिप्र अमृत (शाश्वत) तत् (ब्रह्म) को प्रहृष्टेन कहें गुहा विषे विद्यमान धाम (स्वरूप) विभूत (सर्गस्थिति प्रलय रूप से विभक्त) किं च इस अमृत के तीन पद (स्वरूप) गुहा विषे निहित हैं (तीन पद सर्गस्थिति प्रलय वा वेद ३ काल वा ब्रह्म अनर्थात्मी विज्ञानात्मा) किं च जो तीन पदों को जानता है वोह पिता (पर ब्रह्म) ही होता है ॥४॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवना-  
नि विश्वा । यत्र देवा असृतमानशान्नास्तृतीये धा-  
मेन्द्रधैरयन्त ॥१०॥

वोह परमात्मा हमारा बन्धुवन्मान्य है उत्पन्न करने वाला और वोह धारण करने वाला । वोह सब भूतजातों और स्थानों को जानता । अग्न्यादिक देवता तीसरे स्थान (स्वर्ग) में स्वेच्छया बंते हैं । कैसे हैं देवता कि अमृत (मोक्षप्रापकज्ञान) को जिस ब्रह्म विषे व्याप्त हुआ । भाव यह है कि ब्रह्मनिष्ठज्ञान को प्राप्त हुआ स्वर्ग में देवता मोदते हैं ॥१०॥  
परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो-  
दिशश्च । उपस्थाये प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानम्-  
भि संविवेश ॥११॥

इदानीं सर्वभूतेष्वहमस्मि सर्वाणि भूतानि मयीति ज्ञानवतः स-  
र्वमेधयाजिनो मुक्तिरुच्यते । किं च सर्वमेधग्रहोऽपि न ज्ञानं प्र-  
धानम् ब्रह्मज्ञानवतो यजमानस्याग्निहोत्रादयोऽपि यज्ञाः सर्व-  
मेध्या एवेत्याह परीत्य भूतानीति कण्डिकाश्रयः ॥ एवं ज्ञानवान्  
सर्वमेधयाजी आत्मा (जीवरूप) करि ऋत (यज्ञ) के आत्मा (अधिष्ठा-

तार (परमात्मा) को प्रवेश करता अर्थात् ब्रह्म ही होता है। क्या करिके कि सब भूतों को ब्रह्मत्वेन जानि। सब दिशा और विदिशाओं को तद्रूपा जानि के। प्रथमोत्पन्ना (त्रयीरूपावाचा) को उपस्थित हो (संसेव्य-अर्थात् यज्ञादिकरिके)। अपिहि तस्मात्पुरुषाद्ब्रह्मैव पूर्वमसृज्यते-ति श्रुतेः प्रथमा वाक् वेदरूपा ॥११॥

परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान्परि दिशः  
परि स्वः। ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यन्तद-  
भवन्तदासीत् ॥१२॥

सर्वमेधयाजी तत् (ब्रह्म) को देखता है ब्रह्म ही होता वास्तव्य में ब्रह्म ही है। भाव यह है कि अज्ञान निवृत्ति देखना और होना है। क्या करिके कि द्यावापृथिवी सद्यः तद्रूपेण जानि कर लोको दिशाओं और आदित्य को तद्रूपेण। गुह्यं वस्तु पुनः-पुनः कथितं चित्तमारेहतीति पुनरुक्तिः॥ ऋत (यज्ञ) के तन्तु (कर्तव्यता) को जैसे प्रसारा तैसे समाप्त करि अर्थात् यज्ञ करिके ॥१२॥

सदस्यति मद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सुनि मेधा-  
मयासिष्वं स्वाहा ॥१३॥

इत उत्तरमृच्छये मेधा याच्यते चतुर्थ्या श्रीर्याच्यते। प्रथमा गायत्री लिङ्गेक्तदेवता। अग्नि द्रव्यदान और मेधा को याचना करता हूँ। कैसे अग्नि को कि यज्ञ गृह के पति अचिन्त्य शक्ति इन्द्र के मित्र धनमेधार्थियों करि कामनीय ॥१३॥

यां मेधां देवगणाः पितरं श्रोषासते। तया मामद्य मे-



अयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥१४॥

अनुष्टुप् । हे अग्ने तिस मेधा से आज मुझे मेधावी (बुद्धियुक्त) करि  
स्वाहा सुहृत्तमस्तु । तिस किस से कि जिस मेधा को देवताओं के समू-  
ह और पितर पूजते हैं । अर्थात् देवपितृमान्या बुद्धिहमारे कोहो ॥१४॥

मेधा मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः । मेधा-

मिन्द्रश्च वायुश्च मेधा धाता ददातु मे स्वाहा ॥१५॥

लिङ्गोक्त देवतानुष्टुप् । वरुण मेरे अर्थ मेधा देवे अग्नि और प्रजा-  
पति मेरे • देवे इन्द्र और वायु मेधा को देवे धाता मेरे • स्वाहा सु-  
हृत्तमस्तु ॥१५॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् । मयि देवा  
दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥१६॥

इति सठं हितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिन शारवीयायां वाजसने-  
य सठं हितायां दीर्घ पाठे द्वाविंशोऽध्यायः ॥३२॥

मन्त्रोक्त देवतानुष्टुप् । श्री कामोऽनयाश्रियं याचते । ब्राह्मणजाति क्ष-  
त्रियजाति ये दोनों मेरी श्री को सेवन करें । देवता मेरे विषे उत्तमा  
श्री को स्थापन करें । असिद्धा तुरु श्री के अर्थ सुहृत्त हो । श्री मेधेविना  
यज्ञासिद्धेस्ते आर्थ्ये ते ॥१६॥

इति श्रीगिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमाय्याश्चतुरोदयात्स्वयं ब्रह्मस्मना तनः ३२

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येतव्याप्र पादान्वरदि  
श्वामित्र पुराधिप श्रीभृञ्जय किशोर देव वर्मात्मज रौक्मिणेय नृ-  
पति गिरि प्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधर भाष्ये गिरिप्र-  
सादसर्वस्वे सर्वमेधवर्णनो नाम त्रविंशोऽध्यायः ॥३२॥

हरिः श्रीम्

ॐ नमो यज्ञ पुरुषाय

यच्चात्मकं ११ रूपं च साधनैर्वहु रूपकम्

स्वानन्द दीयकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं तु मः ३३

अ. २.

अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्भूमासोऽग्निनयः पा-  
वुकाः ॥ अतिचयः आत्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वा-  
यवो न सोमाः ॥१॥

ॐ नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसाद संज्ञेन त्रयस्त्रिंशः प्रदीपके

सर्वमेधो ब्रह्मयज्ञारम्भान्नोऽध्यायर्क्षते ३३

सर्वमेधेऽग्निष्टोम संस्थेऽग्निष्टुतं संज्ञे त्रयमेऽहनि अस्याजरास इ-  
त्याद्या महो अग्ने इत्यन्ताः सप्तदश ऋचोऽग्निदेवत्याः पुरोरु-  
चो भवन्ति । पुरोरुक्शब्देन ऋगूपा गृहाणमन्त्रा उच्यन्ते न य-  
जूरूपाः ऋग्धि पुरोरुगिति श्रुतेः । उक्थ्य महावैश्वदेवपात्नी-  
वतहारिषीजनेषु यजूरूपे गृहाणमन्त्रे सत्यपि तं वाऽअपुरो-  
रुक्कं गृह्णातीति श्रुतेस्तत्र न दोषः अत एवाग्नेयीभिर्ऋच एव

निवर्त्यन्ते नोपयामादीनि ॥ ॥ आद्ये द्वे ऐन्द्रवायवग्रहस्य पुरो-  
रुचौ । वत्सप्रीहृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप् आ वायवित्यस्याः ७.७ स्थाने ।  
इस यजमान के अग्न्ययः ऐसे हैं कैसे कि अजरामः (वाह्यकपदीना)  
दमामरित्रा घरों के रक्षकाः (अरित्राः वैरियों से ब्राण करनेवाले यद्वा-  
मामरित्रा दमनीय रक्षकों से तारकाः । अर्चनीय धूमोपलक्षिता ज-  
ला जिन्हें की ते अर्चद्भूमाः । पावकाः (सोधकाः) श्वितीचयः (यजमा-  
न का उज्जलत्व बढ़ाते) श्वात्रासः (क्षिप्रफलप्रदाः) भरणकतीरः । व-  
नर्षदः (वन-काष्ठ में स्थितः) वायु-इव दीप्तारः । सोमा-इव य-  
जमानेष्टदाः ॥ १॥

हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतन्ते वृथ-  
गगनयः ॥ २॥

गायत्री विरूपहृष्टा इन्द्रवायू इत्यस्याः ७.८ स्थाने । अग्नयः  
वृथक् (नानाप्रकारेण) स्वर्ग चलने को यत्न करते हैं । कीदृशाः  
कि हरितवर्णाः । धूमकेतवः (धूमएव ज्ञापक जिन्हें का ते) । वात-  
जूताः (वात करि प्रसार जिन्हें का ते) ॥ आ वायो इन्द्रवायू इमे ७-  
७.८ अग्नयोः स्थाने एते द्वे उक्ते ॥ २॥

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवां २॥ ऋतं वृहत् ।  
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ३॥

गायत्री गोतमहृष्टा मित्रावरुणस्य पुरोरुक् अयं वामित्यस्याः ७.९  
स्थाने । हे अग्ने हमारे मित्रावरुणा यजि । देवताओं को यजि । बडे  
यज्ञ को यजि । अपने गृह को यजि ॥ ३॥

धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतन्ते वृथ-  
गगनयः ॥ २॥

युक्त्वा हि देवहूतमाँ २॥ अश्वौ ॥ अग्ने रथीरिव नि  
होता पूर्यः सदः ॥ ४॥

आश्विनग्रहस्य पुरोरुक् या वा कशेत्यस्याः स्थाने ७.११ व्या-  
ख्यातेयम् १३.३७ ॥ ४॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुपधापये-  
ते । हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां  
दहशे सुवर्चाः ॥ ५॥

शुक्रग्रहपुरोरुक् कुत्सदृष्टा त्रिष्टुप् तं प्रत्येत्यस्याः ७.१२ स्थाने ।  
द्वे रात्र्यहनि निरन्तरं प्रवर्तते हैं । कीदृशो किं विविधरूपजिह्वों के क-  
षण रात्रि, शुक्लं अहः । स्वर्थे (कल्याणप्रयोजने) । अन्यान्या (अन्या  
और अन्या) वत्स को उपधापयेते (क्षीरपिलाती) अर्थात् अन्या (ए-  
का) रात्रि वत्स (अग्नि) को उपधापयते । अन्या दिवसरूपा वत्स (आ-  
दित्य) को उप० । किं च तदेवाह अन्यस्यां (रात्रिमें) हरिः (हरितवर्ण-  
अग्नि) अन्नवान् होता है दिनमें शुक्ल आदित्य शोभन तेजादीस-  
ता है । यद्वा द्वेद्यावा पृथिव्यो अग्निर्भूमौ स्वधावान् रविर्दिवि सुवर्चा  
दृश्यते ॥ ५॥

+ रात्रि वत्स (अग्नि) को उपधापयते ।

अयमिह प्रथमो आयि धातुभिर्होता यजिष्ठो अध-  
रेष्ठीऽप्यः । यमप्रवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं  
विम्बं विशेविशे ॥ ६॥

मन्थिग्रहपुरोरुक् अयं वेन इत्यस्याः ७.१६ स्थाने । व्याख्याता  
३.१५ ॥ ६॥

\* अग्नि सूर्य देवर्षमग्नि होवम् ।

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव  
चासपर्यन् । ओक्षेन्धुतेरस्तेणन्वर्हिरेस्मा आदिहोता-  
रं न्यसादयन्त ॥ ७ ॥

विश्वामित्रहृष्टा त्रिष्टुप् विश्वदेवं देवतस्याग्रयाणग्रहस्य पुरोरुकू ये  
देवास इति ७.१६. स्थाने । त्रीणि शतानि त्रीणि सहस्राणि त्रिंशान् ओ-  
र नव देवाः यथा ३३३६ । एते वस्वादिगणं देवा अग्नि को परिचरते  
हैं । यद्वागमोक्ता देवाः नवैवाङ्गास्त्रिवृद्धाः स्युर्देवानां दशकैर्गणैः  
ते ब्रह्मविष्णुरुद्राणां शक्तीनां वर्णभेदत इति ते च ३३३ ३३३ ३३३  
एतावन्तो भवन्ति । कथं परिचरन्ति तदाह ते घृत करि अग्नि को सींच-  
ते अस्मै (इस अग्नि के अर्थ) वर्हिः आच्छादन करते अनन्तरमेव हो-  
ता को वरण करिके होत्रकर्म में विठलाते हैं । घृत सेचनवर्हिः स्तरणहो-  
त्रवरणमेवाग्निपरिचर्येति भावः ॥ ७ ॥

मूर्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतः आ जात-  
मग्निम् । क्विठं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं  
जनयन्त देवाः ॥ ८ ॥

प्रकृतिवदेव ध्रुवग्रहपुरोरुकू । व्याख्याता ७.२४. ॥ ८ ॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्वविणस्पुर्विषन्यया । समिद्धः  
शुक्र आहुतः ॥ ९ ॥

गायत्री भरद्वाजहृष्टा ऐन्द्राग्नग्रहपुरोरुकू इन्द्राग्नी आगतमित्य-  
स्याः ७.३१. स्थाने । अग्नि पापों को अत्यन्त नाश करता है । किससे  
कि विविधा पूजा करि । कैसा अग्नि कि हविर्लक्षणधन को इच्छा

करता। दीप्त। शुद्ध। निमन्त्रित॥४॥

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुनो। पिबामि  
त्रस्य धामभिः॥१०॥

गायत्री मेधातिथिदृष्टा वैश्वदेवग्रहपुरोरुक् ओमासश्चर्यणीत्य-  
स्याः ७.३३. स्थाने। हे अग्ने विश्वेदेवाओं इन्द्र और वायु सहित मे-  
म मय मधु को पी। कैसा है तू कि मित्र के नामों करि स्तुत इति  
शेषः +॥१०॥

आ यदिषे नृपतिं तेज आनद शुचिं रेतो निषि-  
क्तं द्यौरभीर्के। अग्निः शर्धमनवद्यं युवानथस्वा-  
द्यं जनयत्सुवयच्च॥११॥

+ स्वमतेवरुणे आपसे पुरुष मित्रो भवसिदत्त देवः त्विषुकेः।

त्रिष्टुप् शक्तिमुत्पराशरदृष्टा मरुत्वतीयग्रहपुरोरुक् इन्द्र मरुत्व इत्य-  
स्याः ७.३५. स्थाने। जब कि तेज का हेतुभूत हवि नृपति (यजमान  
के पालक अग्नि) को व्याप्त होता है अर्थात् जब अग्नि में हवि हो-  
मिये है तब अग्नि रेत (जगद्बीजभूतजल) को द्यौ के समीप अन्तरि-  
क्ष में उत्पन्न करता है और मेघरूपेण पुरः दृष्टि द्वारा करि सरता  
है। कैसा तेज कि दृष्टि के अर्थ देवतोद्देश करि अग्नि में हुत। शुचि  
(मन्त्रसंस्कृत) कैसा रेत कि शर्द्ध (बलहेतुभूत) अनवद्य (निर्दोषप्र-  
शस्य) युवतुल्य (परिपक्व) रस, दृढ। स्वाध्य (चिन्तनीय) सब दृष्टिको  
चाहते हैं। अर्थात् हवि करि तर्पित अग्नि अष्टमास करि जलको  
निष्यादन करिके वर्षा में वर्षता है। व्यवहितपदो मन्त्रः॥११॥

अग्ने शर्धं महते सोमगाय तव द्युन्नान्युत्तमानि



सन्तु। सं जास्यत्यर्हं सुयममाकृणुष्व शत्रूयतामभि-  
तिष्ठा महाशंसि॥१२॥

त्रिष्टुप् अत्रदुहिता विश्ववारादृष्टा द्वितीयमरुत्वतीयपुरोरुक  
मरुत्वन्तं वृषभमित्यस्याः ७-३६ स्थाने। हे अग्ने तू बल को प्रकट  
करि किस लिये कि बडे सौभाग्य (लोकस्थिति) के अर्थ। तेरे उदय हो-  
ते शुम्भ (हविर्लक्षण अन्न वायु) उत्कृष्ट हों। किं च जास्यत्य (जा-  
यापत्य पत्नीयजमानरूपा) को सुयम (जितेन्द्रिय मन्योन्या बद्धराग)  
करि। किं च शत्रुत्व को इच्छा करतेओं तेजवानों को पराभव दे॥१२॥  
त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्वृमहे महि नः श्रो-  
ष्यग्ने। इन्द्रं न त्वा शर्वसा देवता वायुं पृणन्ति  
रार्धसा नृतमाः॥१३॥

त्रिष्टुभ्ररवाजदृष्टा माहेन्द्रग्रहपुरोरुक इन्द्रो नृवदित्यस्याः ७-  
३६ स्थाने। हे अग्ने हम तुम्हें वरण करते हैं कैसे तुम्हें कि अतिग-  
म्भीर किन्हीं से कि अर्कशोकैः (अर्कवत् दीप्त मन्त्रों अविश्रुत ब्रह्मच-  
र्य करियथोक्त अधीतों से। क्यों कि हमारे स्तोत्र को तू सुनता है। किं  
च नृतमाः (मनुष्यश्रेष्ठाः) तुरू देवता को हविरूप अन्न करि पूर-  
ण करते हैं। कैसे तुम्हें कि बल करि इन्द्र जैसे और वायु जैसे स्थि-  
त को॥१३॥

त्वेऽग्ने स्वाहुत त्रियासः सन्तु मय्यः॥ यन्तारो ये  
मयवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम॥१४॥

वे बृहत्यो आदित्यग्रहपुरोरुचौ आद्या वसिः दृष्टा अन्या प्रस्क-

एव हृष्टा कदाचन स्तरीरसि कदा चन प्रयुच्छसीत्यनयोः ८.२.३.  
 स्थाने । हे स्वाहुत (सुष्टुहूयते) हे अग्ने जनों के मध्य में जनाः गौश्रो-  
 सम्बन्धि दुग्ध दधिघृत सहित अन्नविशेष पुरोडाशादिकों को देते हैं ।  
 ते पण्डिताः तेरे प्यारे हों । कैसे हैं ते कि निगृहीतेन्द्रियाः । धनवन्तः ॥१४॥  
 शुधि शुत्कर्णे वह्निभिर्देवैरग्ने स्यावभिः । आ-  
 सीदन्तु बर्हिषि मित्रोऽर्यमा प्रातर्यावाणोऽपध-  
 रम् ॥१५॥

† प्रयुक्तः देवताः अग्निवचः प्रातर्यो कर्णे यस्य स शुत्कर्णेः  
 हे शुत्कर्णे + देवताओं सहित नूयज्ञ को सुनि । कैसे देवताओं कि वह्नि-  
 ओं से हवियों को वहाते तिन्हें करि । साथ चलने वालों । किं च मित्र अ-  
 र्यमा और प्रातर्यावाणः । प्रातः काल हवि को प्राप्त होते हैं ते प्रातः स-  
 वन में जिन्हें की हविः प्राप्त है ॥१५॥

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणा-  
 म् । अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृडी को भवतु  
 जातवेदाः ॥१६॥

विष्णु बोतमहृष्टादित्यग्रहदधिअयणे विनियुक्ता यज्ञो देवानामित्य-  
 स्याः ८.४. स्थाने । अग्नि ऐसा हो कैसा कि सब देवताओं के मध्य में अ-  
 दितिः (नहीं है खण्डन जिसका अदीन) कैसे देवताओं कि यज्ञा हैं ।  
 तथा सब मनुष्यों के पूज्य देवताओं के हविर्लक्षण अन्न को परिच-  
 रण करता । सुमृडीकः (शोभन सुख जिससे) । जातवेदाः ॥१६॥

महोऽग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे  
 स्वस्तये । श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो

अथा वृणीमहे ॥१७॥

लुशोधानाकदृष्टा त्रिष्टुप् सावित्रग्रहपुरोरुक वाममध्येत्यस्याः ७० स्थाने। देवताओं के तिस हविलक्षणा अन्न को हम संस्करते हैं। क सति कि सूर्य की आज्ञा में +। कैसी आज्ञा कि श्रेष्ठ (अन्यदेवताओं की आज्ञा से सूर्य आज्ञा उत्कृष्ट)। कैसे हम कि अग्नि मित्र वरुण के आश्रय में अपराधरहिता। कैसे अग्नि कि पूज्य दीप्यमान के ॥१७॥ अग्निष्टुत्संज्ञं प्रथममहः समाप्तः ॥ ॥

अ० २० आपश्चित्पिष्यु सूर्यो न गावो नक्षन्तृतं जरितारस्त  
इन्द्र। याहि वायुर्न नियुतो नोअच्छा त्वर्हि हि धी-  
भिर्देयसे वि वाजान् ॥१८॥

इन्द्रस्तु दुक्थ्यो द्वितीयमहर्भवति तस्यैन्द्राग्रहा भवन्त्येन्द्रः पुरोरु-  
चः सर्वमेन्द्रमसदिति सर्वमेधे श्रुतिः १३.७.१.४। ततः इन्द्रस्तुत्सं-  
ज्ञे उक्थ्यसस्ये सर्वमेधस्य द्वितीयेऽहनि आपश्चिदित्यादि इमां त इत्यन्ता  
द्वादश ऋचः तं प्रत्नया अयं वेनः महा इन्द्रः कदा चनस्तरीः कदा चन प्रय-  
च्छसीति पञ्च प्रतीकांताः एवं सप्तदशेन्द्र देवत्याः ऐन्द्रवायवादिसा-  
विवान्तानां ग्रहाणां ग्रहणमन्त्राः ॥ ॥ वसिष्ठदृष्टा त्रिष्टुप् ऐन्द्रवाय-  
वस्य पुरोरुक आ वायो इत्यस्याः ७० स्थाने। हे इन्द्रः ऋत्विजतेरे-  
यज्ञ को व्याप्त होते हैं। आपः चित् (निग्राभ्या रूपा जलभी सोम को बदा-  
ती हैं। तत्र दृष्टान्तः सूर्यो गावो न (जैसे सोम सवन कराने वाली वेद-  
रूपा वाणी सोम को बदाती हैं) तैसे जल भी। अत एव तू हमारे अभिमु-  
ख प्राप्त हो कि जैसे वायु अपने नियुतों (अश्वों) को रिसंमुख आता है। क्योंकि

मविदुः  
हिस्य  
सर्वदृष्टुः

तू बुद्धिओं वा कर्मों करि अन्नों को विविध देता है अत एव आगमन करि ॥१८॥

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णे  
हिरण्ययो ॥१९॥

तिस्रो गायत्र्यः आद्या पुरुमीदाजमीदृष्टा ऐन्द्रवायवस्य द्वितीया  
पुरोरुक् इन्द्रवायू इत्यस्याः ७०८ स्थाने । गाव उच्यन्ते हेगौओ अव-  
त (कूप + चात्वालरूप) के समीप में प्राप्त होओ (दानार्थम् चात्वाला-  
न्तरेण गवां संचरोऽस्ति) को हेतुरागमने तत्राह मही (महत्योऽद्याव-  
पृथिव्यो) यज्ञ की रूप देने वाली हैं (शोभाकरें इति तुम आओ) किं  
च तुम्हारे देनों कर्णों हिरण्मयो अत एव दानार्थ आओ इत्य-  
र्थः ॥१९॥

+ अवत इति कूपनाम निघ० ३२३

यद्य सूर्य उदितेऽनागा मित्रोऽर्यमा । सुवर्तिस-  
विता भगः ॥२०॥

वसिष्ठदृष्टा मैत्रावरुणपुरोरुक् अयं वामित्यस्याः ७०४ स्थाने ।  
आज सूर्य उदिते सति मित्र अर्यमा सविता और भग जो प्रेरता हैं  
सो कर्म करें इति शेषः । नहीं है अपराध जिसका वेह अपनागा इ-  
ति चतुर्णां विशेषणम् ॥ २०॥

आ सुते सिञ्चत श्रियर्धं रोदस्योरभिश्चियम् । रसा  
दधीत वृषभम् । तं प्रत्नथायं वेनः ॥२१॥

सुनीतिदृष्टाश्विनपुरोरुक् या वामित्यस्याः ७०११ स्थाने । रसा  
(नदी) वृषभ (वर्षितार सोम) को पुष्ट करती है + तिस सोम के

अभिषुत होने में समन्तात् सींचौ चमसोंमें इति शेषः ऋत्विजः प्रति  
वचनमेतत् । कैसे वृषभ कि पृथिवी के आश्रय को । सर्वतः शोभाजि  
सकी तिसै ॥ तं प्रत्नया अयं वेनः द्वे प्रती कोक्ते शुक्रमन्थिनोः प्राकृ-  
ते ७.१२.१६ पुरोरुचौ ॥ २१ ॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषन्त्रियो वसानश्चरति  
स्वरोचिः । महत्तद्वृषाणो असुरस्य नामा विश्वरूपोऽ-  
मृतानि तस्थौ ॥ २२ ॥

विश्वामित्रहृष्टाग्रयणपुरोरुक् ये देवास इत्यस्याः ७.१६ स्थाने ।  
इन्द्रस्य वृष्टिकर्मोच्यते । विश्वे देवाः समन्तात्स्थित इन्द्र को परिरक्षत-  
वन्तः । सो इन्द्र सर्वतः चलता है । कैसा है कि त्रियो वसानः (देवताओं  
की हीप्ति आछादन करता) स्वरोचिः (अनन्याधीन हीप्ति) । किं च वि-  
श्वरूपः (विश्व को निरूपण करता इन्द्र) जिस कारण जलों को आ-  
स्थितवान् वृषाः (इन्द्र) का वोह प्रसिद्धनाम वासवो वृत्रहा इत्यादि ।  
कैसे वृषा कि असुर (आणवान् सावधान प्रज्ञावान्) का ॥ २२ ॥

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चो विश्वानराय विश्वामु-  
वे । इन्द्रस्य यस्य सुमरुर्वर्तं सहो महि श्रवो नृमां च रो-  
हसी सपर्यतः ॥ २३ ॥

सुर्चाकदृष्टा विष्टुष ध्रुवग्रहपुरोरुक् मूर्धानमित्यस्याः ७.२४ स्थाने ।  
हे ऋत्विजो तुम विश्वानर (सब यजमान जिसके तिस) के अर्थ पूजा  
को कैसे कि बडे के अर्थ । तुम्हारे हविरूप अन्न करि भोगमान के । विश्वभू (स-  
र्वव्यापि वा सब होता है जिस से तिस के) किं च द्यावापृथिवी जिससे

जगत्  
सोमस्य  
प्रस्ताव

इन्द्र की इन पदार्थों से पूजा करते हैं किन्हीं से कि शोभन यज्ञ बल  
बड़ा यश और धन। अर्थात् जिस की धावाभूमी मरवादिकों से मान-  
ता करते हैं तिसे पूजो ॥२३॥

बृहन्निदिध्म एवां भूरिं शस्तं पृथुः स्वरुः। येषामिन्द्रे  
युवा सरवा ॥२४॥

त्रिशोकदृष्टा गायत्री ऐन्द्राग्नपुरोरुक् इन्द्राग्नी इत्यस्याः ७.३१  
स्थाने। युवा (समर्थ) इन्द्र जिन यजमानों का सरवा है इन्हीं का इन्द्र म-  
हानेव होता है। शस्त (शस्त्र) भूरि (बहुत) स्वरुः (खड्ग) पृथुः (विशाल) य-  
ज्ञ बाहुल्यमाशास्यत इत्यर्थः ॥२४॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः। महोऽश-  
ः अभिष्टि रोजसा ॥२५॥

मधुच्छन्दोदृष्टा गायत्री वैश्वदेवपुरोरुक् ओमास इत्यस्याः ७.३२  
स्थाने। हे इन्द्र आगमन करि आके हविलक्षण अन्न और सो-  
मांशुओं करि तृप्त हो। कैसा है तू कि तेज करि श्रेष्ठ। अभियष्टव्य ॥२५॥

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद-  
र्पणीतिः। अहन्व्यर्धं समुशयगवनेष्वविर्धेना अ-  
कणोद्गम्याणाम् ॥२६॥

विश्वामित्रदृष्टा त्रिष्टुप् प्रथममरुत्वतीयपुरोरुक् इन्द्र मरुत्व  
इत्यस्याः ७.३३ स्थाने ॥ इन्द्र वृत्र (दैत्य) को युद्ध के अर्थ टकता  
हुआ। मायावी दैत्यों का मारता है। व्यंसमहन् (दुष्ट को मारता  
है) तिसे कहाँ कि वनों में अर्थात् वनस्थों को मारता है। राग्या-



एणं धेना आविः अह्णोत् (यजमान स्तुति करते हैं यह देवताओं में प्रकट करता है। कैसा है इन्द्र कि शर्यनीतिः (चतुरङ्ग बल में नीतिः जिस की। वर्ष नीतिः (नाना रूपधारी। उशधक् (चोरों का दाहक ॥ २६ ॥

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्यते किं ते इत्या। मय्यच्छ से समरणः शुभानैर्वोचस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे। महो २॥ इन्द्रो य ओजसा कदा च न स्तरी रसि कदा च न प्रयुच्छसि ॥ २७ ॥

अगस्त्यहंष्टा त्रिष्टुप् सशस्त्रमरुत्वतीयपुरोरुक् मरुत्वन्तमित्यस्याः ७.३६. स्थाने। इन्द्र प्रति मरुद्वाक्यम्। हे इन्द्र हे सत्यते (श्रुतिस्मृतिसंदाचाररतों के पते) तू एक (असहाय) होकर कहां जाता है तेरे गमन में क्या प्रयोजन है। कैसा है तू कि माहिनः (पूज्य वा उत्सववान्। किं च भले प्रकार चलते सन् शोभन वचनों से तू प्रच्छता है कि कौन सा पन्था यह लोगों से (एकाकित्वात्। हे हरिवः इन्द्र हमसे उस एका की गमन कारण को कहि क्यों कि हम तेरे हैं इस हेतु कहि + ॥ तिस्रः प्रती कोक्ताः तत्र महो इन्द्र इत्यस्याः ७.४०. माहेन्द्र ग्रहणे विनियोगः नृवदित्यस्याः ७.३६. स्थाने कदा चनेति ८.२.३. द्वयोः सदित्य ग्रहणे विनियोगः ॥ २७ ॥

आ तत्त इन्द्रायवः यन्ताभि यः ऊर्व गोमन्तं तित्त्सान्। सक्तस्त्वं ये पुरुषुवा महीथं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥ २८ ॥

शक्तिसुतगोरीवितिहंष्टा त्रिष्टुप् आदित्यग्रहस्य दधिअयणे विनियोगः यज्ञो देवानामित्यस्याः ८.४. स्थाने। हे इन्द्र मनुष्य के वाहकर्म पूजत हैं।

+ अस्याणिम इति ७.८. इन्द्रो यमः महर्षिभाष्ये

किं जे मनुष्यसोमरूप अन्न को सर्वतः हिंसा करने (गुवाने) चाहते हैं। कैसे  
अन्न कि गोमन्त (निग्राभ्यालक्षणोदक युक्त † को) किं च जे मनुष्य भू-  
मि को दुहते ते भी तेरा कर्मसुत करते हैं। कैसी भूमि कि सकृत्त्वम् (एक-  
वार ही सवती हिरण्यधान्यादि देती है) पुरुपुत्रा (बहुत पुत्रा †) सहस्रधा-  
रा (असंख्य धाराएँ हिरण्यादयः) जिस की तिस बहुभोगदा वा असंख्य प्रा-  
णिजात को धारण करती। बड़ी। अर्थात् जे विप्र सोमाभिषव करते और  
जे क्षत्रिय भूमि को दुहते (पालते-देते हैं) ते इन्द्र का वृत्र वधादि कर्म स्तुति  
करते हैं नहीं कोई अन्य दुर्बुद्धि॥२८॥

इमां ते धियं प्रभरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्तः  
आनजे। तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्र देवासः  
शर्वसामदन्ननु॥२९॥

कुत्सदृष्टा जगती सावित्रपुरोरुक् वाममद्येत्यस्याः ८.६. स्थाने। हे इन्द्र  
इस अपनी धी (बुद्धि-स्तुति वा कर्म) को तेरे अर्थ समर्पण करता हूँ। तुम्हें  
कैसे कि पूज्य के। कैसी बुद्धि कि बड़ी जिससे इस यजमान की धिषणा  
(बुद्धि वा वाक्) क्रियमाण स्तोत्र में तुम्हें व्याप्त करती है। किं च देवता ति-  
स इन्द्र की स्तुति करते हैं। कहाँ स्तुति करते हैं कि उत्सव (अभ्युदय) और  
प्रसव (गुर्वाद्यनुज्ञा वा पुत्रादिरूप उत्सव) में। कैसे इन्द्र कि बल करि  
शत्रुओं के अभि भवितार को॥२९॥ इन्द्रस्तुत्संज्ञं द्वितीयमहः समाप्तम्॥

अ० ३ विभ्राड्बृहत्पिवनु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यत्तपतावविदु-  
तम्। वातेजुतो योऽभि रक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पु-  
रुधा विराजति॥३०॥

अथ तृतीयमहः सूर्यस्तु तथा च श्रुतिः १३.७.१.५ सूर्यस्तु दुक्थ्यस्त-  
तीयमहर्भवति तस्य सौर्या ग्रहा भवन्ति सौर्यः पुरोरुचः सर्वर्षी सौर्य-  
मसदिति । चतुर्दश पुरोरुचस्तिस्त्रः प्रतीकोक्ताः एवं सप्तदश ऋचः  
सूर्यस्तुत्संज्ञे उक्थ्यसंस्थे सर्वमेधस्य तृतीयेऽहाने ॥ ऐन्द्रवायवादिसा-  
विवान्तानां ग्रहाणां पूर्वोक्तक्रमेण ग्रहाणामन्त्रा बोध्याः ॥ विभ्राड्मे-  
र्यदृष्टा जगती ऐन्द्रवायवपुरोरुक । विविधराजमान सूर्य सोम्य (सो-  
मरूप हवि) को पिये कैसे सोम्य कि बडे मधुर स्वादु को । जो सूर्य आ-  
त्मा करि प्रजा पालन करता और पुष्टि करता बहुधा शोभे है । कैसा है  
कि यज्ञपति (यजमान) में अखण्डित आयुस्थापन करता । वात करि-  
के प्रेरित (वात करि प्रेरित रवि मण्डल भ्रमता है इति प्रसिद्धः ॥३०॥

उदु त्यं जातवैदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वा-  
य सूर्यम् ॥३१॥

तिस्रः प्रस्कण्वदृष्टाः आद्या ऐन्द्रवायवस्य द्वितीया पुरोरुक । व्याख्या-  
ता ७.४१. ॥३१॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनां २.५ अनु । त्वं च-  
रुण पश्यसि ॥३२॥

गायत्री मैत्रावरुणपुरोरुक । सर्वमेधे पक्ष्याकारेण गनि श्रीयते  
तद्रूपमात्मानं सम्पाद्य मुक्तिमाप्नोति तदत्र प्रार्थ्ये ते । हे पावक (शो-  
धक) जिस दर्शन करि तू भुरण्यन्त (भुरण्यु-क्षिप्रयाती पक्षि सदृश आ-  
त्मा करता है तिस) को देखता है । अर्थात् सर्वमेध यजि भुरण्युपक्षि-  
रूप आत्मा को करि के स्वर्ग जाते को जिस दर्शन करि देखता है । निसी द-

पूजन करि हम सुरणों को हे वरुण (सूर्य) देखि ॥३२॥

देव्यावधूर्युः आगतं रथेन सूर्यत्वचा । मधो यज्ञ-  
हं समञ्जाथे । तं प्रत्नथाय वेनश्चित्रं देवानाम्

॥३३॥

आश्विनपुरोरुक् गायत्री । हे देव्यो अधूर्यो अश्विनो तुम रथ करि आ-  
ओ कैसे रथ कि सूर्य की सी कान्ति जिस की । आके गधुर हवि (सोमपुरो-  
डाशदध्यादि) करि यज्ञ को बहु हवि करो ॥ तं प्रत्नथा ७.१२ अयं वेनः  
७.१६ चित्रं देवानाम् ७.४२ तिस्रः प्रतीकोक्ताः आद्ये द्वे शुक्रमन्थि-  
पुरोरुचौ तृतीयाग्रयणस्य ॥३३॥

आ न इडाभिर्विदधे सुशस्ति विश्वानरः सविता दे-  
व एतु । अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जग-  
दभिपित्वे मनीषा ॥३४॥

अगस्त्यदृष्टा त्रिष्टुप् ध्रुवपुरोरुक् । विश्वनरहितकारी सवितादेवः  
हमारे यज्ञ गृह में आवे । कैसे कि इडाभिः सुशस्तिः (जैसे इडा भ-  
क्षण करि शोभना प्रशंसा जिस में अर्थात् सब इडा भक्षण करते हैं  
तैसे आवे यद्वा इडाओं करि शोभन प्रशंसायुक्त यज्ञ गृह में । एवं  
सूर्यमुक्त्वा देवानाह हे जरारहिताः देवताओ तुम निश्चय आग-  
मन काल में तृप्त होओ तैसे हमारे जगत् (पुत्रगवादिकों) को बुद्धि  
करि तृप्त करो । अर्थात् जैसे आप लोगों करि तृप्ति करिये तैसे हमारे  
ही प्रजा तर्पणीय है ॥३४॥

यद्य कच्च वृत्रहन्तुदगा अभि सूर्य । सर्वं तद्विदुः

ते वशे ॥३५॥

श्रुतकक्षसुतकक्षदृष्टा गायत्री ऐन्द्राग्नपुरोरुक् । हे वज्रहन् (एवि-  
नित अन्धकार के नाशक) हे सूर्य हे इन्द्र (ऐश्वर्य युक्त) आज ज-  
हां कहीं तू उदय होता है सो सब तेरे वश में है इति शेषः । यद्वा जो  
कुछ प्राणिजात उदय होता सो सब तेरे वश में है अर्थात् सबों का  
प्रेरक तू ही है ॥३५॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कदमि सूर्य । विश्वमामा-  
सि रोचनम् ॥३५॥

प्रस्फावदृष्टा गायत्री वैश्वदेवपुरोरुक् । हे सूर्य तू तेज का कर्ता  
है और विश्व को प्रकाशता अर्थात् अग्नि विद्युन्नक्षत्र ग्रह ताराओं  
में तेरा ही तेज है । कैसे विश्व कि दीप्यमान को तेरे प्रकाश करि दू-  
ति भावः । कैसा है तू कि तरणिः (अतिक्रमण करता नभोवर्त्म में)  
विश्व का दर्शनीय ॥३६॥

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततर्ठं सं-  
जमार । यदेदयुक्त हरितः सद्यस्यादा शची वासस्त-  
नुते सिमस्मै ॥३७॥

कुत्सदृष्टे द्वे त्रिष्टुभौ मरुत्वतीययोः पुरोरुचौ । सूर्य का वोह दे-  
वतानुभाव और वोह महाभाग्य ऐश्वर्य है वोह क्या कि कर्ताः (ई-  
श्वर कार्यश्रेष्ठ जगद्रूप के) मध्य में विस्तारित अंशुजाल को संह-  
रता है अर्थात् नहीं कोई एतादृश अंशुजाल के प्रसारने वा संह-  
रने को समर्थ है । किं च जब ही हरितवर्णरश्मिओं को अपने में

+ वृत्रो मेघेरिषो ध्यान्ते दानवे वासवो गिराविति कोशत

आरोपण करता सधस्थ (सह तिष्ठे) हैं अंशुजाल जहां तिस व्योममण्डल से अर्थात् सन्ध्या काल में पीतवर्ण अंशुओं को जबकि व्योममण्डल से अपने में योजता है। अनन्तर ही रात्री सर्व वस्तु को तम से आच्छादन करती है ॥३७॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरुपस्थे । अनन्तमन्यदुशदस्य पाजः कृष्णमन्यहरितः सम्भरन्ति ॥३८॥

सूर्य द्युलोक के उत्सङ्ग में मित्र और वरुण के तिस रूप को करता है कि जिस रूप से जनों को देखता अर्थात् मित्ररूप करि सुकृतिओं पर अमुगृह और वरुणरूप करि दुःकृतिओं का निगृह करता। इस सूर्य का एक रूप अनन्त (काल और देश करि परिच्छेद्य) रुशत (शुक्ल दीप्यमान विज्ञानयनानन्द ब्रह्मैव) है। अन्यत् (दूसरा) कृष्ण (द्वैतलक्षणरूप) हरित दिशाएँ वा इन्द्रियें धारण करती हैं। इन्द्रियग्राह्य द्वैतरूप एक और दूसरा शुद्ध चैतन्य अद्वैतरूप ये दो रूप सूर्य के सगुण निर्गुण हैं अर्थात् ब्रह्म सूर्य ही है ॥३८॥

ब्रह्महो २॥ असि सूर्य बडादित्य मुहो २॥ असि । मह-  
से सतो महिमा पनस्पते द्वा देव मुहो २॥ असि ॥३९॥

जमदग्निदृष्टे द्वे बृहतीसतो बृहत्यौ । आद्या माहेन्द्रपुरोरुक् । हे सूर्य प्रेरे हे कर्मों में जगत् को वद (सत्य) तू महान् (श्रेष्ठ) है । हे आदित्य (आदान करता है अंशुओं को) सत्य तू श्रेष्ठ है । किंच तुर बडे निम्न की महिमा लोकों करि स्तुति करिये है । हे देव अद्वा (सत्य) तू बडा है । पुन



रुक्तिरदरार्थी ॥३४॥

बर्हस्पत्ये अवसा महो ॥ असि सत्रा देव महो ॥ असि  
सि। मुन्हा देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदा-  
भ्यम् ॥४०॥

आदित्यग्रहप्रथमग्रहणम्। हे सूर्य सत्य अव (धनवा यश) करिसे  
महान् है। हे देव सत्य तू महत्व करि देवताओं के मध्य में श्रेष्ठ है। कैसा है तू कि  
असुर्यः (प्राणिहितः) पुरोहितः (अग्र में स्थापित) सब कार्यों में पूज्य  
क्यों कि सब देवताओं की पूजा का सूर्यार्घ्य दानान्तर ही अधिकारसे।  
व्यापक अनुपहिंस्य तेज तू ही है ॥४०॥

आयन्त-इव सूर्य विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि ज्ञाते  
जनमानः ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥४१॥

नृमेधदृष्टा बृहती। आदित्यस्य पुनर्ग्रहणम्। सूर्य को आश्रयन्त  
(रश्मीर्गै) ही इन्द्र के सब धनों (दृष्टिधान्यनिष्पत्त्यादिकों) को विभा-  
ग करि प्राणियों को देती अर्थात् इन्द्र दत्ता दृष्टि की भूमि में विभाग  
करती हैं। किं च हम तिन्द्र ही धनों करि उत्पद्यमान पुत्र में तेज स-  
हित धारण करते हैं। कैसे कि जैसे अपने भाग को पुत्रादिकों में धार-  
ण करें हैं ॥४१॥

आद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरर्हंसः पिपृता निर-  
वद्यात्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः मित्युः  
पृथिवीः उत द्यौः ॥४२॥

कुत्सहृष्टा विदुषु दध्नादित्यग्रहत्रयणे विनियोगः। हे देवाः (रश्मयः)

हमें पापों से छुड़ाओ और दुर्यशों से पृथक् करो। कहा कि आज के दिन सूर्य उदय में हमें शुद्ध करो। किं च मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी और द्यौः हमें पूजें अर्थात् अङ्गीकरें ॥४२॥

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निदेशयेन्नमते मर्त्ये च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥४३॥

अङ्गिरसो हिरण्यस्तूपदृष्टा त्रिष्टुप् सावित्रपुरोरुक् । सविता देवता हिरण्यमय रथ करि आता है। क्या करने कि कृष्ण रजं रत्रिलक्षण सहित पुनर्भ्रमाण करने अमृत (देवादिक) और मर्त्य (मनुष्यादिक) को अपने-अपने प्रदेश में स्थापन करने भुवनों को देखने कि कौन भला और कौन बुरा करते यह विचारने ॥४३॥ तृतीयं सूर्यस्तुतुक्थमहः समाप्तम् ॥

अ० ४० प्रवाहजे सुप्रया बर्हिरेषामा विशपतीव वीरिदः इयाते । विशामुक्तोरुषमः पूर्वहतो वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥४४॥

अथ चतुर्थमहः वैश्वदेवस्तुत् तथा च श्रुतिः १३.७.१०६ वैश्वदेववच्चतुर्थमहर्भवति वैश्वदेवा ग्रहा भवन्ति वैश्वदैव्यः पुरोरुच इति । वैश्वदेवस्तुति चतुर्थेऽग्नि एकादश पुरोरुचः षट् प्रतीकोक्ताः इति सप्तदश ऐन्द्रवायवादि सावित्रान्तग्रहाणां पुरोरुचो ग्रहणमन्त्राः ॥ वसिष्ठदृष्टा त्रिष्टुप् ऐन्द्रवायव पुरोरुक् । इन यजमानों के कल्याणार्थ अन्तरिक्ष में वर्तमान वायु

और पूषा आते हैं। कैसा वायु कि नियुत्संज्ञा अश्वों वाला। किस स-  
मय कि रात्रि और दिवस के प्रथमाह्वान (अग्नि होत्र होम समय) में दि-  
न के पूर्वाह्न में रवि आता है रात्रि में वायु वायुसखल करि अग्नि जानना-  
रात्रि होम के अग्निदेवत्व से। तत्र दृष्टान्तः जैसे विशां पती (होराज)  
मनुष्यों के गण में आते हैं तद्वत् ते भी तिन्हों के कल्याणार्थ आते हैं।  
इन किन्हों कि जिन्हों की बर्हिणं शोभन प्रस्तरण प्रस्तीर्य हैं ॥४४॥

इन्द्रवायू वहस्पति मित्राग्निं पूषणं भगम् । आदित्या-  
न्मरुतं गणम् ॥४५॥

मैधातिथिदृष्टे द्वे गायत्र्यो आद्या ऐन्द्रवायवस्य पुनर्ग्रहणे द्विती-  
या मैत्रावरुणग्रहणे । इन्द्रवायू वहस्पति मित्र अग्नि पूषा भग-  
आदित्यों मरुत्सम्बन्धिगण इन्हों को आह्वान करता हूँ ॥४५॥

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । कर्तान-  
नः सुराधसः ॥४६॥

वरुण और मित्र सब रक्षणप्रकारों से प्रकर्षेण रक्षक हों। किंच-  
हमें शोभन धनवान् करें ॥४६॥

अधि न इन्द्रेषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो  
अश्विना । तं प्रत्नथायं वेनो ये देवास आ न इडा-  
भिर्विश्वेभिः सोम्य मध्वोमासश्चर्षणीधृतः ॥४७॥

कण्वसुत कुसीदिदृष्टा गायत्र्याश्विनपुरोरुक् । हे इन्द्र हे विश्वो  
हे मरुतः हे अश्विनौ हमारे इन सजातीयों के मध्य तुम आओ ॥  
अत्र प्रतीकोक्ताः तं प्रत्नथा ७.१२ शुक्रग्रहे अ- वेनः ७.१६ मन्त्रि-

ग्रहे ये देवासः ७.१६. आग्रयणस्य आन इडाभिः ३३.३४. ध्रुव-  
त्य विश्वेभिः सोम्यं मधु ३३.१०. ऐन्द्राग्नस्य ओमासश्चर्षणी-  
घृतः ७.३३. वैश्वदेवस्य ग्रहणे ॥४७॥

अग्नः इन्द्र वरुण मित्रं देवाः शर्धः प्रयन्त आरुतोत  
विष्णो । उभा नासत्या रुद्रोऽध ग्नाः पूषा भगः सर-  
स्वती जुषन्त ॥४८॥

प्रतिक्षत्रहृष्टा त्रिष्टुप् मरुत्वतीयपुरोरुक् । हे अग्ने हे इन्द्र हे वरुण  
हे मित्र हे देवताओ हे मरुद्गणः और हे विष्णो तुम बल देवो । एवं प्र-  
त्यक्षमुक्ता परोक्षणमाह दोनो नासत्याः (अश्विनौ) रुद्रः अध (अ-  
थ) ग्नाः (देवपत्यः) पूषा भग और सरस्वती सेवन करें हवियें ॥४८॥

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादिति स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः  
पर्वतां २॥ अपः । इवे विष्णु पूषां ब्रह्मणस्पतिं भगं  
नु शर्धं सते सवितारमृतये ॥४९॥

काश्यपोवत्सारहृष्टा जगती सशस्त्र मरुत्वतीयपुरोरुक् । इन्द्राग्नी  
मित्रावरुणो अदिति स्वः (आदित्य) पृथिवीं द्युलोक मरुतः पर्वतां अ-  
पः विष्णु पूषा ब्रह्मणस्पतिं भग शंस (स्तुत्य) सविता इन्हें क्षिप्र र-  
क्षा के अर्थ बुलाता हूं ॥४९॥

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतो सजोषाः ।  
यः शर्धं सते स्तुवते धारि पञ्च इन्द्रज्येष्ठा अस्मां २॥  
अवन्तु देवाः ॥५०॥

पञ्च त्रिष्टुभः आद्या प्रगाथहृष्टा माहेन्द्रपुरोरुक् । जो नर शंसा

(शस्त्रों) को करता है स्त्रीयों को प्रकर्षण जपता है पञ्चः (प्रातर्जि-  
तधनः) सन् देता है हवियें तैसे और हम यजमानों को देवाः र-  
क्षा करें। कैसे देवा कि हम यजमानों के विषे धन के सेतारः। रुद्राः  
(रुलानेवाले शत्रुओं को) पर्वतासः (उत्सववन्तः) दत्तासुरबध के अ-  
र्थ संग्राम में बुलाये एकमतयः। इन्द्र है ज्येष्ठ जिन्हें काते। ऐसे दे-  
वा रक्षा करें ॥५०॥

अर्वाञ्चोऽपद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमा-  
नो व्ययेयम्। त्राधं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राधं  
कर्ता देवपदो यजत्राः ॥५१॥

गार्त्समदो कूर्मदृष्टादित्यस्य प्रथमा पुरोरुक्। हे यजत्राः (यजन्तं  
त्रायते वायष्टव्याः) देवाः आज तुम हमारे अभिमुख होओ। क्योंकि  
में भयमान तुम्हें मन करि बुलाता हूं। किं च हे यजत्राओ हमें वृक  
से रक्षा करो कर्त (कूप) से रक्षा करो। कैसे कूप वृक कि निजुर (हिंस-  
क) से। सीढ़ियों करि उतर ते हैं तिस कूप से ॥५१॥

विश्वेऽद्य मरुतो विश्वेऽजुती विश्वे भवन्त्वग्नयः स-  
मिद्धाः। विश्वे नो देवा अवसागमन्तु विश्वमस्तु इवि-  
णं वाजोऽस्मे ॥५२॥

लुशोधानाकदृष्टादित्यपुनर्ग्रहणे। व्याख्याता १८.३१.॥५२॥

विश्वे देवाः शृणुतेमर्तं हवै मे येऽन्नरिक्षे यऽउ-  
प द्वाविष्ट। येऽग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसधा-  
सिन्वदिमि मादयधम् ॥५३॥

सुहोत्रहृष्टादित्यग्रहस्य दध्ना अयणे विनियुक्ता । हे विश्वे देवाः ओ जे तुम अन्तरिक्ष में स्थित हो और जे स्वर्ग समीप में और जे वह्निमुखः और जे यजत्रा ते सब तुम मेरे आह्वान को सुनो और सुनिके बहिर्ओं पर बैठे तत्त होओ ॥ ५३ ॥

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वर्धं सुवसि भागमुत्तमम् । आदिहामानर्धं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥ ५४ ॥

वामदेवहृष्टा जगती सावित्रग्रहस्य पुरोरुक् । हे सवितः निश्चय उदय समय में यज्ञियार्ह देवताओं के अर्थ तू उत्तम भाग (अग्निहोत्ररूप) को प्रेरता (आज्ञादेता) है । कैसे भाग कि अमृतप्रद को । उदय के अनन्तर ही रश्मिसमूह को प्रसारता है । फिर मनुष्यों के अर्थ जीवन हेतु कर्मों को विस्तारता । कैसे कर्मों अनूचीनों रश्मिसमूहानुगतां । अर्थात् लौकिक वैदिक व्यवहार का प्रवर्तयिता तू है ॥ ५४ ॥ इति वैश्व देवस्तु चतुर्थमहः समाप्तः ॥ ॥ समाप्तोऽयं सर्वमेधः ॥

अथानारभ्याधीतं मन्त्रगणं आदित्ययाज्ञवल्क्यदृष्टम्

अ० ५ प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रथि विश्ववारर्धं रथप्राम् । द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमि यक्षसि प्रयज्यो ॥ ५५ ॥

अथ पञ्चदशपञ्चदशत्रयोदशर्चास्त्रयोऽनुवाकाः पुरोरुचोऽनारभ्याधीताः श्रोत कर्मण्यविनियुक्ताः ब्रह्मयज्ञार्हा आदित्ययाज्ञवल्क्यहृष्टाः पितृमेधपर्यन्तम् । पञ्चदशत्रयः द्वेच प्रती कोक्तेः

१-सर्वदेवतानामेव प्राणिनां कर्मसु प्रवर्तते



एवं सप्तदशकः पुरोरुगाणः ॥ ऋजिष्वदृष्टा त्रिष्टुप् वायुदेवत्या ।  
हे प्रयज्यो (प्रकर्षेण यजति अर्घ्यो) बड़ी बुद्धि करिके आभिमुख्ये-  
न तू वायु को प्रकर्षेण यजने चाहता है। कैसा है तू कि ज्ञानी। कैसे  
वायु कि महाधन। विश्ववार (संव के वरणीय वा सर्वव्यापक। यजमा-  
न के अर्थ देने योग्य धन करि रख को पूरने वाले। दीप्यमान नि-  
यमन वाले। नियुत्संज्ञक अश्वों करि चलते। क्रान्तदर्शन। अर्था-  
त् ईदृश वायु को यजि ॥ ५५ ॥

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम् । इन्द्रो वा-  
मुशन्तिहि ॥ ५६ ॥

व्याख्याता ७.८. ॥ ५६ ॥

मित्रं हवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृ-  
ताचीं साधन्ता ॥ ५७ ॥

हे मधुच्छन्दोदृष्टे गायत्र्यो आद्या लिङ्गोक्तदेवत्या । मित्र और व-  
रुण को आह्वान करता हूं। कैसे को कि पूतदक्ष (सदाचार को धन-  
पुत्रादि करि बढाता। रिशादस (दुष्टों को नाश करता। कैसे को कि  
घृताची (घृत होमते हैं जहां तिस) धिय (कर्म) को साधन करते ॥ ५७ ॥

दस्त्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आयोतर्ह-  
रुद्रवर्तनी ॥ ५८ ॥

आश्विनी । द्वयोरश्विनो रेकस्य दस्त्र इति नामापरस्य नासत्य इ-  
ति । हे दस्त्रो (दर्शनीयो) हे नासत्यो (सत्यवादिनो) तुम आयोको  
कि अभियुत हैं सोमा इति शेषः । कैसे सोम कि युवाकवः (तुम्हें च-

हते यह कि हमें पीवें यह इच्छा करते यद्वा अग्नि में मिश्री होते हैं  
वृक्त हैं बहियें जहां ते। कैसे हो तुम कि रुद्रवज्रमनशीलो। तं प्रत्न  
था ७.१२. अयं वेनः ७.१६. एते द्वे प्रतीकोक्ते ॥५८॥

विदध्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं ठं सध्य-  
क्कः। अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती  
गात् ॥५९॥

कुशिकदृष्टा त्रिष्टुप् इन्द्रदेवत्या। पहिली सरमा (त्रयीलक्षणवा-  
णी) यज्ञ को प्रतिपादन करती है। कैसी सरमा कि सुपंदी (शोभनप-  
द सुविदुःन्त हैं जिसमें) अकारादिक अक्षरों के शब्द को ज्ञापन  
करती। जो कि तिस सरमा को अध्वर्यु जानें तो पाथः (सोमलक्षण  
अन्न को) क्या करें क्यों कि वेदों के अभिज्ञ का सोमकाण्डन की अ-  
धिकार नहीं। कैसे पाथ कि सोमाभिषव गावों करि अभिषुत। महत्  
उपांश्वन्तर्यामैन्द्रवायव पात्रों में पूर्व गृहीत। सदैव हवनार्थ चलते।  
यजमान को मुख्यत्व प्राप्त करने वाले को (यज्ञ करि यजमान मु-  
ख्य होता है ॥ एवमधियज्ञं मन्त्रो व्याख्यातः। बहुचानां तु संवा-  
दसूक्तमिदम् ऋक्स० म० ३.३.३१. अ० ३.२६.। तत्र पणिभिरसुरैर्दे-  
व गोधने स्पृहते इन्द्रेण देवशुनी तद्धीन्ये प्रेरिता तदभिप्रायेण व्या-  
ख्यायते। सरमा (देवशुनी) इन्द्र करि गवान्वेषण के अर्थ प्रहिता  
सती जब कि गिरि के द्वार को प्राप्त हुई तब इन्द्र ने हवि (अन्न) को  
क्या किया कि तिस के अर्थ दिया। फिर शोभनपादयुक्ता बौह सर-  
मा अनपद्रुत गौओं के प्रान्त को प्राप्त हुई। प्रथम गौओं के रम्माने

को जानकर सामनें गई। कैसा अन्न कि बड़ा। पूर्व (पूर्व-प्रेषणको-  
ल में तेरी प्रजा अन्नादिनी करूं गा यह प्रतिज्ञात। सध्यक (इतरो  
सहित भोज्य ॥५८॥

नहि साशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुर एतारमु-  
ग्निः। एमैनमवृधन्नमृता अमर्त्य वैश्वानरं क्षेत्रजि-  
त्याय देवाः ॥६०॥

विश्वामित्रदृष्टा त्रिष्टुब्वैश्वानरी। देवाः वैश्वानर (अग्नि)सेअ-  
न्य स्पश (दूत) और पुर एतार (सवकार्यों में पुरः सर) को नहीं प्राप्त हु-  
ए। आ ईमू (अथ) अमृता (देवा) इस वैश्वानर को बढ़ाते। कैसे कि  
अग्नि अमरणधर्मो को यजमान की क्षेत्र प्राप्ति के अर्थ ॥६०॥

उग्रा विघ्निना मुध इन्द्राग्नी हवामहे। ता नो मृ-  
डात ईदृशौ ॥६१॥

भरद्वाजदृष्टा ऐन्द्राग्नी गायत्री। हम इन्द्राग्नी को आह्वान करते  
हैं कैसे इन्द्राग्नी कि उद्गूर्णबलै, हिंसकों को नाश करते। वे इ-  
न्द्राग्नी हमें ईदृश भयानक संग्राम वा कर्म में सुख देवें ॥६१॥

उपोसे गायता नरः पवमानायेन्दवे। अभि देवाँश्च  
इयक्षते ॥६२॥

देवलदृष्टा सितदृष्टा वा सोम देवत्या गायत्री। हेनरः (ऋत्वि-  
जः) हम सोमके अर्थ उपगान (उद्गातृशास्त्र को अनुसरण करिबो-  
ला-स्तोत्रों) को करो। कैसे सोम कि पवमान (दृष्टायवित्रकरि द्रोणकलश  
को चलते। संमुख देवताओं के यजने को दृष्टा करने के अ-

र्थ॥६२॥

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गवि  
ष्टो । ये त्वा नूनमनुमदन्ति विषाः पिबेन्द्र सोमर्धं  
सगणो मरुद्विः ॥६३॥

विश्वामित्रहृष्टाद्या द्वे त्रिष्टुभौ इन्द्रदेवत्यास्तिस्रः । हे मघवन जे  
मरुतो गण देवाः वृत्रहन्नन रूप कर्म में तुम्हें जहि वीरयखेत्यादि ब-  
चनों से बढाते हुए । हे हरिवः (हरिनामकाश्वयुक्त) शाम्बर सम्बन्धि  
युद्ध में जे तुम्हें बढाते हुए । और जे मरुतः पणि असुर करि हरी हु-  
ई गो के इष्ट (प्रत्याहरण) युद्ध में तुम्हें बढाते हुए । और जे विषाः (मे-  
धाविनः मरुतः) निश्चय तुम्हें उत्कर्ष देते वा तृप्त करते हैं । हे इन्द्र ति-  
न मरुतों करि गण सहित हो सोम को पान करि (आतृप्तेः मरुत्व  
नीयादि ग्रह को पी ॥६३॥

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र औजिष्ठो बहुलाभि-  
मानः । अवर्धन्निन्द्र मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्व-  
निष्ठा ॥६४॥

गोरीवितिहृष्टा । हे इन्द्र तू बल के अर्थ उत्पन्न हुआ है । कैसे बलकि  
वेगवान् । कैसा है तू कि उत्कृष्ट । स्तुत्य । अत्यन्त औजस्वी । बलाभि-  
मानः (सब जगत् मेरी विभूति यह भूयिष्ठाभिमनः । यहां वृत्रवध  
में ईहृष्ट इन्द्र को मरुतः भी बढाते हुए स्तुति सहायों करि इति शेषः ॥  
और इन्द्र से भाग्य गर्भकालीन को यह कहिते हैं कि अदिति माता  
धनिष्ठान्या वीर इन्द्र को गर्भ में धारण करती हुई ॥६४॥

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्स्माकमर्धमागहि । महान्मही-  
भिरूतिभिः ॥६५॥

वामदेवदृष्टा गायत्री । हे वृत्रहन् (आवरक पापों के नाशक) हे इन्द्र तू  
हमारे प्रति क्षिप्र आ और आके हमारे देवयजन देश को प्राप्त हो ।  
कैसा है तू कि बड़ी रक्षाओं करि महान् (जो दूसरों को रक्षा करता  
है वोह महान् कहलाता है ॥६५॥

त्वमिन्द्र प्रवृत्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः । अशस्तिहा  
जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥६६॥

तृमेधदृष्टे द्वे ऐन्द्र्यो यथ्यावृहतीसतो वृहत्यो । प्रहृष्टा है हिंसाजि-  
न्हों की जहां वा शत्रु वा संग्राम तिन प्रवृत्तिर्तिष्ठों में है इन्द्र तू सब श-  
त्रुसेनाओं को अभिभवता है । किं च यतः सब रिपूओं को मारता है ततः  
शत्रुओं को मारि । कैसा है तू कि अशस्तिहा (शंसारहितो) दुष्टों का  
हन्ता । जनिता (स्वपक्ष प्रशंसोत्पादकः ॥६६॥

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मात-  
रा । विश्वास्ते स्पृधः अथयन्त मन्यवे वृत्रं यद्विन्द्र  
तूर्वसि ॥६७॥

हे इन्द्र क्षोणी (द्यावापृथिवीस्थालोका) तेरे बल को अनुगमन करते (ब-  
हुत मानते हैं) । कैसे बल कि शत्रुओं के हिंसक को । अनुगमने दृष्टा-  
न्तः जैसे मातापिता बालक को अनुगमन करते हैं यस्य बलाद्  
द्यावापृथिव्यावप्यविभीतामिति निरु० १०१२ यास्कः । तेदेव प्र-  
पञ्चयति सब शत्रुसेनाएँ तेरे क्रोधसे टिना हंती हैं अर्थात् तेरे

क्रोधदर्शन से उद्विग्न हैं युक्तमेतत् क्यों कि युद्ध में इन्द्र तू देवासु  
में करि अबध्य वृत्र को मारता हुआ ॥६७॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडय-  
न्तः॥ आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादृढं होश्चिद्या वैरि-  
बो वित्तरासत् ॥६८॥

कुत्सहृष्टा त्रिष्टुप् । व्याख्याता ८.४.॥६८॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्टुढं शिवेभिरुद्य परिपाहि-  
नो गयम् । हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षामाकि-  
नोऽअघशर्ढस ईशात ॥६९॥

भरद्वाज हृष्टा जगती सवितृ देवत्या । हे सवितः (सब के उत्पन्न करने  
वाले) पालनों करि हमारे गय (घर बाधन) को तू आज सर्वतः पालि कैसे  
पालनों कि अनुपहिंसितों । शान्तों । कैसा है तू कि हिरण्यजिह्व (हिरण्य-  
वत् अचला जिह्वा जिसकी सत्यवाक् वा हित रमणीया ज्वाला जिस  
की ॥ किं च नवन्तर सुख के अर्थ हमें रक्षा करि । किं च कोई अघश-  
स (शत्रु) हमारे ऊपर समर्थ न हो ॥६९॥ पञ्चमः पुरोरुगणः समातः

अ० ६. प्र वीरया शुचयो दद्विरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुता-  
सः । बहे वायो निषुतो यात्यच्छा पिवा सुतस्यान्धसो म-  
हाय ॥७०॥

पञ्चदश ऋचः द्वे प्रतीकोक्ते एवं सप्तदशकः पुरोरुचां समूहः । व-  
सिष्टहृष्टा त्रिष्टुप् वायुदेवत्या ॥ हे पत्नीयजमानौ तुम्हारे सोमाः चू-  
र्णाहुए । कैसे सोमाः कि प्रवीरया (ज्ञानोद्भवा ऋत्विज जिन्हों को

हिरण्यकस्मादित्यादि हितरमणीयं भवतीति-  
सि.०.२.१३.पास्कोकिः



निर्मलाः। अधरनेताओं ऋत्विग्विशेषों करि सुता। मधु (निग्रा-  
म्यारूपजल) वन्तः। एवं पूर्वार्धे पत्नी यजमानो सम्बोध्य वायुमाह  
हे वायो (सर्वत्र चलनेवाले) नियुतसंज्ञाश्वों को तू देवयजन को  
प्राप्त करि के सोमाभिमुख वा सोम प्राप्ति को आ। और आकर मद  
(तृप्ति वा मत्तता) के अर्थ अभियुत सोम के अंश को पी ॥७०॥

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णे  
हिरण्ययो ॥७१॥

व्याख्याता ३३-१६॥७१॥

काव्ययो राजानेषु कृत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादसा  
सधस्थः आ ॥७२॥

दक्षदृष्टा गायत्री मैत्रावरुणी । हे रिशादसौ (शत्रूपक्षयितारे मित्रा-  
वरुणौ) यजमान के सधस्थ (देवमनुष्यों के सह सोमपानस्थान) में तु-  
म आओ। कैसे यजमान कि काव्ययोः (तुमक्रान्तदर्शनों ज्ञानसमुच्च-  
यकार्यों) के हित समन्तात् जन्म में सोमपानार्थ आविर्भूत देव यजन  
भूमि और यज्ञगृह में यज्ञकर्म करि दक्ष (उत्साहवान् यजमान के य-  
ज्ञ को बढ़ावो इत्यर्थः) ॥७२॥

दैव्यावधूर्युः आगतुं रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञं  
समञ्जायेत प्रत्नयायं वेनः ॥७३॥

व्याख्याता ३३-३३ । तं प्रत्नया ७-१२ । अयं वेनः ७-१६ । इति द्वे प्र-  
तीकोक्ते ॥७३॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरयामधः खिदासी ३ रुपि-

स्विदासी३त्। रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा  
अवस्तात्प्रयतिः पुरस्तात् ॥७४॥

परमेशी प्रजापतिहृष्टा त्रिष्टुप् भाववृत्तदेवत्या भावेषु पदार्थेषु वृ-  
त्तः स्थितो भाववृत्तः परमात्मा सोम्या देवता। आग्रयणग्रहे विनि-  
योगः क्रमपाठाल्लभ्यते ततोऽधियज्ञं तावद्धारय्यते। आधवनी-  
यादुन्नेता निगूण्यास्वासिञ्चति ताः पवित्रे यजमानस्ततो ग्रहग्र-  
हणमा ध्रुवादिति का० ६०५१७० कात्यायनेनोक्तम् तदभिप्रायेणो-  
च्यते। इन् प्रयमान सोमों की रश्मिँ ऋजीषादिकल्कनियाम-  
क दशापवित्रलक्षणः तिर्यङ् एव विस्तारितहं उद्गाता ओं करि-  
इति शेषः। तिस दशापवित्र के नीचे हुआ और ऊपर हुआ। किं-  
च तहां एके पदार्थी ग्रहचमसाधव नीयद्रोणकलशादयः रेत (जग-  
दुत्पत्तिबीजसोम) की धारण करते हैं तेरे तोधा (सोमाधार भूता)  
हैं + तथा परे पदार्थीः सोमरसरूपा तहां आधेय होके महिमान (उ-  
त्क्राष्टा) हैं। आधाराधेयभाव करि यह सब यज्ञात्मा ही स्थित है इ-  
ति भावः। किं च स्वधा (अन्न तद्रूप) अवस्तात् (होम से पहिले नी-  
चे) रहा। प्रयतिः (प्रयत्नवान् होमानन्तर लब्धफलकः सन्) परस्ता-  
त् (उत्क्राष्ट) हुआ ॥ ॥ अथाधिदैवतं व्याख्या। इन् प्रसिद्ध सूर्य-  
रश्मिओं के एक सुषुम्णारव्योरश्मि तिरश्चीन। विस्तृतः सन् कि-  
म् द्युलोक से नीचे स्वित् हुई और ऊपर स्वित् हुई (स्विदिति वि-  
तर्के)। किं च वोह रश्मि रेत (विश्वबीज उदक) की धारण करने हा-  
जी हुई ॥ और-और रश्मिँ महात्म्याध्यायिका हैं (विश्वप्रकाश-

सोमस्य  
+ यज्ञादे प्रजाः प्रजायन्त इति श्रुतेर्जा-

अथर्वविरिति स्मृतेः भगवद्गी० अ० ४० श्लो० २४०

रश्मिर्वष्टिवनिर्नाम येनेमाः सर्वाः प्रजा विभर्तीति श्रुतेः॥

त्वेन। किं च स्वधा (अन्ननिष्यादकः) वोहही रश्मि अवरः (भूम्यभि-  
 मुखः) प्रयतिः (अयत्न से ऊर्ध्वमुखः सन्) परस्तात् (परः उत्कृष्टः दर्श-  
 नमात्र करि देवताओं की नृप्ति देनेवाली है। तथोक्तं छान्दोग्यश्रुती  
 छान्दोग्योपनिषत् ५.१-६) असौ वाऽऽदित्यो देवमधित्युपक्रम्य  
 न वै देवा अश्नन्ति न पिवन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा नृप्यन्तीति ॥  
 अथाध्यात्मपक्षे व्याख्या। नासदासीदिति सप्तर्चेऽध्यात्मप्रतिपा-  
 दके सूक्ते अष्ट०८०१.१७ माण्ड०१०११.१० बहुत्रा इमामृतं पठन्ति  
 तत्र नासदासीदिति निरस्तसमस्तप्रपञ्चां प्रलयावस्थामनूद्य विश्व-  
 बीजमविद्योक्ता। कामस्तदग्रे समवर्ततेति पादेन च काम उक्तः। म-  
 नसो रेतः प्रथमं यदासीदिति पादेन पुण्यपुण्यात्मकं कर्मोक्तम्। ग-  
 वमविद्या कामकर्मणि सृष्टिहेतून्मुक्तातेषां स्वकार्यं जनने शेष्य-  
 माह तिरश्चीन इति। इन अविद्या कामकर्मो का रश्मि जैसे कार्य-  
 वर्ग वियदादि विस्तृतः सन् तिर्यक् अवस्थित (मध्यमस्थित) हुआ  
 और नीचे और ऊपर अर्थात् सूर्य रश्मिवत् युगपत्सर्व व्यापी हुआ।  
 तेदव विभज्यते रेतोधा इति। सृष्ट कार्य वर्ग में कोईक रेतोधा (बी-  
 जभूत कर्म के कर्तार और भोक्तार) हुए दूसरे महिमानः (महान्त-  
 विपुला वियदादयः भोग्या) हुए। एवं माया में ईश्वर सब जगत्  
 को सृजि और आप प्रवेश करि भोक्तृभोग्यरूपेण विभाग कर-  
 ता हुआ। तिन भोक्तृभोग्यों के मध्य में स्वधा (अन्न) भोग्यप्रपञ्च  
 अयस्तात् (निकृष्ट) हुआ प्रयतिः (भोक्ता) परस्तात् (उत्कृष्टः) अ-  
 र्थात् भोक्तृप्रपञ्चाधीन भोग्यप्रपञ्च किया ॥ ७४ ॥

आ रोदसीऽअपृणदा स्वर्महज्ज्ञातं यदेनमपसोऽअ-  
धोरयन् । सोऽअध्वराय परिणीयते कविरत्यो न वा-  
जसातये चेनोहितः ॥७५॥

तमेव वैश्वानरारव्यं भोक्तारं परमात्मानं स्तोति । विश्वामित्रदृष्टा  
जगती भाववृत्तदेवत्या (वैश्वानरदेवत्या) जब कि अरणी से उत्पन्न मात्र इ-  
स वैश्वानर को कर्मवन्त यजमानाः कर्म में स्थापन करते हुए तब वोह  
द्यावाभूमी को सर्वतः पूरताहुआ । न केवल द्यावापृथिवी किंतु मह-  
त् (प्रभूत) स्वः (अन्तरिक्ष) को सूर्यात्मा करि पूरताहुआ । अर्थात् त्रै-  
लोक्य को जाठरात्मा करि पूरित किया । गार्हपत्यादीनां लोकत्वं श्रु-  
त्योक्तम् । अयं वै लोको गार्हपत्यो द्यौराहवनीय इति । उक्तार्थमेव वि-  
वृणोति स इति वोह अग्नि याग के अर्थ सर्वतः अतिप्राणीत (आग्नी-  
ध्रीयादि धिष्यादिकों में प्रकर्षेण प्राप्त किया है) नयने दृष्टान्तः अ-  
त्योन वाजसातये (जैसे अश्व अन्नलाभ के अर्थ सर्वतः प्राप्त करिये है) ।  
जैसे राजा अश्ववान् भोगजात को प्राप्त होता तद्वत् विप्र अग्नि को सेवमा-  
न ब्रह्मलोकान् भोगों को इति भावः । कैसा अग्नि कि सर्वज्ञ । अन्न के  
अर्थ हित अर्थात् सर्वभोगसम्पादकः ॥७५॥

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्गू-  
षैराविवासतः ॥७६॥

वसिष्ठदृष्टा भाववृत्तदेवत्या (इन्द्राग्निदेवत्या) गायत्री । जे इन्द्रा-  
ग्नी आङ्गूषो (आद्योयो) चित् (लौकिक वाक्स्तोमों से भी) आते हैं ।  
वे उक्थो गिरा (स्तोत्रात्मिका सुति) करि परिचरण करिये हैं य-

जमानों करि इति शेषः। कैसे हैं वे कि वृत्र (आवरकपापो) के अति श-  
येन हन्ता। स्वभाव से मोदमानौ ॥७६॥

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये। सुमृडी-  
का भवन्तु नः ॥७७॥

सुहोवदृष्टा वैश्वदेवी गायत्री। जे मरणहीन प्रजापति के पुत्र  
(विश्वेदेवा) हैं ते हमारी गिरा समीप आकर सुनें और सुनि के  
हमारे शोभन सुख करने हारे हों ॥७७॥

ब्रह्माणि मे मतयः शरं सुतासुः शुष्म इपतिं प्रभृतो  
मेऽद्रिः। आशासते प्रतिर्हयन्त्युक्थेमा हरी वहत-  
स्ता नोऽपछ ॥७८॥

तिस्रस्त्रिष्टुभः द्वे इन्द्रमरुत्संवादे इन्द्रमरुद्देवत्ये आद्येऽगस्त्यह-  
ष्टे। इन्द्रो मरुतः सहचरणाह हे मरुतः ब्रह्माणि (मन्त्रवाक्यात्म-  
क स्तुति वचन वा आज्यादि हवियें) मेरा स्वभूत हैं चोदनावाक्ये  
अग्न्यादि देवान्तरसम्बन्धेन प्रतीयमानान्यपि सर्वदेवता प्राणा-  
त्मनः मुरु इन्द्र के ही ते हैं इति भाव। मननयुक्ता स्तुतियें भी मेरे  
सुरवोत्पादिका हैं। तथा अभिषुतासोमा मेरे अर्थ ही हैं इस हेतु  
यज्ञ में चलना चाहिये इति भावः। किंच मुरु करि प्रकर्षेण कि-  
या अद्रि (वज्र) जाते ही लक्ष्य (बेमे) प्रति नहीं प्रतिहत होता। कैसा  
वज्र कि शत्रुओं को सुरवाता अतएव चलने में राक्षसादिकों का  
उपद्रव नहीं है। केवल हवि आदिक ही मेरे न जानना। अपि तु  
यजमान प्रार्थना करते हैं जिन उक्थ शास्त्रों से वोह स्तोत्रशास्त्र भी

मुंमे चाहते हैं। किंच हमारे ये हरी घोड़े यज्ञाभिमुख मुंमे प्रा-  
प्र करते हैं अतएव हमें शीघ्र चलना योग्य है इतिभावः। यद्वा-  
र्थान्तरम्। ब्रह्माणि मतयः सुताः सोमाः प्रहृतः अद्रिः (सोमाभि-  
षवगावा) शुष्मः (सुरवरूपः) एतत्सर्वं मम शं (सुरवं) अर्पयति (उ-  
द्गमयति) समानमन्यत ॥७८॥

अनुत्तमा ते मधवन्नकिर्तु न त्वावौ ॥ अस्ति देवता  
विद्वान् ॥ न जायमानो न शते न जातो यानि करि-  
ष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥७९॥

एवमिन्द्रेणोक्ता मरुतः प्रत्याहुः। आ इति स्मरणे (हमजानते हैं  
कि) हे मधवन् (धनवन् इन्द्र) तेरा किसी करि नहीं नाशित महाभा-  
ग्य इति शेषः। नु (निश्चय) नहीं कोई भी तुरू से महाभाग्यनाश  
इति शेषः। नहीं केवल तेरा ऐश्वर्यमात्र किंतु सर्वज्ञत्वमपीत्याह  
तेरे सदृश विद्वान् देवता नहीं है। किंच हे प्रवृद्ध (पुराणपुरुष) जि-  
न कर्मों वृत्र वधादिकों को तू करता है तिन कर्मों को वर्तमान  
और भूत देवमनुष्यों में नहीं करता है। और न करेगा उत्पत्त्य-  
मान इति शेषः। अर्थात् तीनों काल में तेरे सदृश नहीं है इस  
हेतु तू यज्ञेश है ॥७९॥

तदिदं भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञः उग्रस्त्वेष नृमा ॥  
सद्यो जज्ञानो निरिणति शत्रून्नु यं विश्वे मद-  
न्त्यूमाः ॥८०॥

आथर्वणो बृहद्विबृहद्वा माहेन्द्री त्रिष्टुप्। भुवनों (भूतजातों) में



बोह ही ज्येष्ठ (श्रेष्ठ) होनेहार सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म ही था कि जिस ज्येष्ठ से उत्कृष्ट इन्द्र हुआ। कैसा कि त्वेषन्मृगाः (तेजोधनः) कार्ये दृष्ट्वा कारण महत्त्वं कल्पते। किं च जो इन्द्र जायमान एव तत्क्षण शत्रुओं को मारता है। किं च सब देवता जिस इन्द्र को अनुत्पन्न करते हैं। कैसे सब देवता कि रक्षक हैं ॥८०॥

इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो वर्धन्तु या मम। पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥८१॥

मेधातिथिदृष्टे आदित्यदेवत्ये हे बृहत्यो। हे पुरुवसो (बहुधनादित्य जे मेरी ये गिरः (शस्त्ररूपा वाचाएँ तुम्हें बढावें। किं च विद्वांसः (तेरे स्वरूपाभिज्ञा उद्गातारः) स्तोमों (स्तोत्रों) वहिष्पवमानादि) करि तुम्हें स्तुति करते हुए। कैसे विद्वांसः कि पावकवर्णाः (अग्नि तुल्यतेजसः ब्रह्मवर्चसवन्तः) अत एव शुचयः (शुद्धागमाः) अर्थात् स्तोत्रशस्त्ररूपा गिरः तुम्हें स्तुति करती हैं ॥८१॥

यस्यायं विश्व आर्यो दासः श्रेवधिपा अरिः। निरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सोऽप्रज्यते रयिः ॥८२॥

हे आदित्य यह सर्वोऽपि आर्यः (वर्णाश्रमविहितकर्मोत्प्राता) होकर दासवत् सर्वद्वारक्षणीयः श्रेवधिपाः (निधिरक्षक कृपाण) तेरा शत्रु। किं च एवंविध कृपाण अर्य (धनस्वामी वा वैश्य) विशेष अन्तर्भूत (भूमिगर्तादिक में निक्षिप्तोऽपि) तिस का धन निचयः तेरे अर्थ ही व्यक्त होता है अर्थात् कृपाण का धन तेरे अर्थ उपयुक्त

हैं पक्षहरणदि करि ननु ह्यण भोग के अर्थ होता है। कैस अर्थ  
कि रुशमः (धनापहर्ता) आतिथ्यादितिरस्कार करि आत्माही के  
हिमक) विषे यवीरवान् (आयुधवान् इन्द्र है। धनि करि अतिय  
त्न से गुप्तमपि धन को छीनि कर धर्मिष्ठ के अर्थ देता है इति  
भावः ॥८२॥

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्रतः समुद्र- इव प-  
प्रये। सत्यः सोऽस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु  
विप्रराज्ये ॥८३॥

मेधातिथिदृष्टादित्यदेवत्या सतोबृहती। यह आदित्य रूप इन्द्र उद-  
धिवत् अथित (व्यापक) हुआ। कैसा यह कि सहस्र संख्या का ऋषि-  
यों (अतीन्द्रियार्थदर्शिओं) करि बल से युक्त किया। किं च आदि-  
त्य की वोह महिमा सत्य (अवितथ) और बल सत्य है। यज्ञों विषे  
विप्रों के राज्य (स्तोत्रशास्त्रसंघ) में स्तुति करता हूं तिस महिमान-  
को इति शेषः। अर्थात् स्तोत्रशास्त्रों के संघ में पठन करि सो यह  
स्तुति करिये है ॥८३॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्टुर्गं शिवेभिरद्य परिपा-  
हि नो गयम्। हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षामा-  
किर्तोऽपघर्षां स इषात ॥८४॥

व्याख्याता ३३. ६६. ॥८४॥ षष्ठः पुरोरुग्गणः समाप्तः ॥

अ० ७. आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः।  
अन्तः पवित्रः उपरि श्रीणानोऽयं शुक्रोऽयं

मि ते ॥८५॥

इतोऽध्याय समाप्यन्ते त्रयोदश ऋचः प्रतीकोक्ताश्च तस्यश्चेति ऐन्द्र-  
वायवादि सवित्रान्तानां ग्रहाणां ग्रहणमन्त्राः पूर्ववत् ॥ जमदग्निदृष्टा  
वायुदेवत्या । वृहत्स आद्या नव द्वादशी च दशम्येकादशी त्रयोदश्यः स-  
तो वृहत्सः । हे वायो हमारे यज्ञ को आगमन करि कैसे यज्ञ कि द्युलोक-  
व्यापि अर्थात् ऋत्विग्यजमान वैदुष्य और दक्षिणासम्पन्नत्वसे स्वर्ग  
में भी श्रूयमाण को । आगम्य किं फलमत आह कि पात्र मध्यस्थ दशाप-  
वित्र के ऊपर में होतृचमस करि विषिच्यमान यह शुद्ध (ऋजीषकल्कर-  
हित) सोम (रसात्मा) त्वदीय भागत्व करि मूर्ध्नि संस्कृत है ॥८५॥

इन्द्रवायू सुसंहशां सुहवेह हवामहे । यथा नः सर्व इ-  
ज्जनोऽनमीवः संगमे सुमना असेत् ॥८६॥

तापसदृष्टेन्द्रवायवी । इस यज्ञ में हम इन्द्रवायू को बुलाते हैं । कैसे इ-  
न्द्रवायू कि भले प्रकार देवते । शोभनाह्वानों । तैसे बुलाते हैं कि जैसे हमारे  
सर्व एव जनाः (पुत्रपौत्रादि) ऐसे हैं कैसे कि व्याधिरहित संगम (धनप्र-  
प्ति वा समागम) में सुमनाः (शोभनचिताः वा उत्सार और वक्ता ॥८६॥

ऋधगित्या स मर्त्यः शशमे देवतातये । यो नूनं मित्रावरुण-  
वभिष्टयः आचुके हव्यदातये ॥८७॥

जमदग्निदृष्टा मित्रावरुणी । निश्चयः स्यो मनुष्य अभिमनलाभ और  
हव्य दाति (हवि के दान) के अर्थ मित्रावरुण को सेवन करता है । वोह मनुष्य  
इस हेतु (सेवनरूप) करि यमनियमशमादि युक्त होता है । कैसे वह कि देवतातिः  
देवता के कर्म-यज्ञ के अर्थ समृद्धिदान (यज्ञसम्पत्ति क्षमधनाढ्यः हो) ॥८७॥

न होता है। सत्य वचन वा सत्य युक्त होता है ॥८७॥

आयातमुपभूषतं मध्वः पिवतमश्विना । दुग्धं पयो  
वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिसृमागतम् ॥८८॥

वसिष्ठहृष्टाश्विदेवत्या । हे अश्विनो तुम यज्ञ प्रति आओ । और आ  
के यज्ञ को अलं करो । मधुर सोम को पियो । किं च हे यज्ञफल के  
सींचनेवालेओ हे जेन्यावसू (जेतव्य वा जित समन्तात् धन जिन्हों  
करि ताहणों वशी धनो) तुम वृष्मुदक दुग्ध को अन्तरिक्ष से दुहा  
ओ । किं च हमें हिंसा न करो । किं बहुना तुम आओ (आदराय पुनर्व  
चनम् ॥८८॥

प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः प्रदेव्येतु सूनृता । अछा वीरं न  
र्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥८९॥

कावहृष्टा वैश्वदेवी । ब्रह्म (वेद) का पति (हिरण्यगर्भ) हमारे यज्ञ को  
प्रकर्षण आवे । तथा देवी (देवतात्मा) सूनृता (प्रियसत्यस्वरूपातिस  
की वाली त्रयीरूपा) यज्ञ को प्रक ॥ किं च यष्टव्या देवा हमारे यज्ञ को  
करावें । कैसे यज्ञ कि वीर (शत्रुओं के विशेषेण उन्मूलयितार) को । म-  
नुष्यों के अर्थ हित को । पङ्क्तिराधस को (इन्द्र का पुरोडाश हर्योर्धीनाः  
पूषाकाकर्मः सरस्वती के अर्थ दधिमित्रावरुण की पयस्या यह ह-  
विः पङ्क्ति है । दिनाराशंस प्रातः सवन दिनाराशंस माध्यन्दिन सवन  
सहन्वाराशंस तृतीय सवन यह नाराशंसपङ्क्ति है । त्रीणि सवनानि  
पशुरूपवसथ्यः पशुरनुवन्ध्यः यह सवन पङ्क्तिः इन पङ्क्तिओं करि समृद्धि  
स की का पङ्क्ति हैं साधियें हैं जहां तिस को । ब्रह्मणस्पत्यादयः ऐसे

यज्ञ को हम लोगों से करावें इति सर्वार्थः ॥८६॥

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णे धावते दिवि । रयिं पिश-  
गं वहुलं पुरुस्पृहं हरिरेति कनिक्रदत् ॥८७॥

आस्यसुत त्रितहृष्टाहतिपरिणामवादिन्येन्द्री । आहुतेर्होमद्वयस्य  
परिणामो द्युपर्जन्यपृथिवीपुरुषयोषात्मकपञ्चाग्निक्रमेण परि-  
पाकः इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति श्रु-  
त्योक्तः तं वदत्येषा ऋक् । अधियज्ञं तावदर्थः । चन्द्रमा (देवताओं  
का आल्हाद करता) लतारूप सोम अभिषुतः सन् जल (वसती व-  
री निग्राभ्यादिजलों के) मध्य में रसरूप करि स्थित अग्नि में हुतः  
सन् सुपर्ण (गरुडाहति वा साधुपतन) होके दिव में शीघ्र चलता है ।  
हरितवर्ण सोमही दिव में गया पर्जन्यरूप को धारण करि उदक-  
दानद्वारा से धान्यभाव को प्राप्त होता अर्थात् व्रीहि आदि अन्नरू-  
प होता है । कैसा धान्य कि पिशंग (परिपाक करि पीतवर्ण) होता है ।  
वहुल (असंख्यात-चतुर्विधभूतग्रामजीवनपर्याप्त) पुरुस्पृह (बहु-  
तजिसधान्य को इच्छा करते तिसरूप) होता है । कैसा हरि कि कनि-  
क्रदत् (पर्जन्यरूप अत्यर्थ गर्जता) ॥८७॥

देवं देवं वोऽवसे देवं-देवमभिष्टये । देवं-देवं हवेम-  
वाजसातये गुणान्तो देव्या धिया ॥८८॥

मनुहृष्टा वैश्वदेवी । देवं-देवं + (जितने देवता तिन तुम्हें पालन के  
अर्थ हम बुलाते हैं) । अभिलषितफलप्राप्ति के अर्थ देव-देवं हम  
अन्नलाभ के अर्थ देवं-देवं ह० । कैसे हैं हम कि देव्या (देव्यु)

वैश्वदेवी व्यासः

त्स्यान्नुसंधानपरा) बुद्धि करि स्तुति करते वा स्वरादिसौष्टव करि दीप्य-  
मानः स्तुति करि स्तुति करते ॥४१॥

दिवि पृष्ठोऽग्नेरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहन् । क्षमया  
वृधान ओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते त-  
मः ॥४२॥

इन्द्रसुतमेधहृष्टा वैश्वानरी । जो अग्नि धुलोक में पृष्ठः (सिक्तः)  
आदित्यात्मा करि स्थितः सन् प्रकाशे है । कैसा अग्नि कि सवनरों  
का हित । बड़ा । किं च वोह अग्नि स्वप्रकाश करि लोकांनुग्रह के  
अर्थ रत्विजनिततम को निवर्त कतो है । कैसा कि पृथिवीस्थाम-  
नुष्यो करि दिये हवि से वर्धमान अत एव ओजसो चनोहितः (ओ-  
जसा कक्षम तेज करि अन्न के अर्थ हित अर्थात् अन्ननिष्पाद-  
कः) ॥४२॥

इन्द्राग्नीऽप्रपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः । हिल्वी शि-  
रो जिह्वया वावदच्चरन्निर्दशत्पदा न्यक्रमीत् ॥४३॥

सुहोत्रहृष्टा इन्द्राग्निदेवत्या प्रवल्हिका । हे इन्द्राग्नी यह स्वयं पाद  
रहिता उषापादयुक्ता सोती हुई प्रजा के अर्थ प्रथम भाविनी सती  
आती है और वोह तिस प्रजा के शिरो हिल्वी (निद्रात्याजन करि पृ-  
थिवी वा आप अशिरस्कासती) प्राणियों की वागन्द्रिय करि शब्द  
कराती हुई प्रसरती है । एवं चरती हुई उषा एकदिन (अहोरत्र)  
करि त्रिंशत्संख्याक पदों (गमनसाधनभूत मुहूर्तों) को निरन्तर  
संकाषि है ॥ यद्वा वाक्पक्षेऽर्थः । इन्द्र (प्राण) अग्नि (पुरुष) हे



इन्द्राग्नी तुम्हारा एतत्कर्म जो पादरहिता (गद्यात्मिकात्रयीलक्षणायह  
वाणी) प्रथमभाविनी सती आता है पादयुक्तों रामायणभारतादिहो-  
कात्मक वाल्मीकि व्यासादि वाणी के सकाश से। वेदवाचः प्राथम्यं शु-  
त्योक्तम् ततो ब्रह्मैव प्रथमं सृज्यतेति। एवं प्रथमजाया वाणी का अ-  
विहृतत्व निर्णय करि मानुष्या वाणी का विहृतत्व कहिता हैं हित्वा  
शिर इति प्राधान्यात् आख्यातपदमुच्यते अभ्याज गां दण्डे-  
न शुक्तां गां दण्डेनाभ्याजेत्येवं लौकिक्या वाणी पदप्रयोगनियमा-  
भाव से शिरः स्थानीय आख्यातपद को हित्वा (छोड़िके) विदुषः  
(विद्वानोंकी) वागिन्द्रिय करि अतिवदन्ती सती चरति (प्रकाशी  
होती है)। एवं चरन्ती वोह त्रिंशत्पदों को निक्रमण करती है (यहां  
पदशब्द अङ्गुलवाची है) मूलाधार से ले मुख पर्यन्त त्रिंशदङ्गुल  
को क्रामति। एवं वाग्विषयोऽर्थः॥ ४३॥

देवासो हि ष्या मनवे समन्यवो विश्वे साकठं सरोत-  
यः। ते नोऽप्यद्य तेऽप्यपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवो  
विदः॥ ४४॥

मनुहृष्टा वैश्वदेवी। ते प्रसिद्धा विश्वे देवाः राकी हुत आज (वर्तमा-  
न कालमें) हमारे की धन प्रापकाः हैं। पुनः भविष्यत्काल में हमारे  
तुचों + (पुत्रादिकों) के अर्थ धनप्रापकाः हैं। कैसे हैं ते कि मरु मनु  
नामक मुनि (मन्त्रदर्शि) के अर्थ समन्यवः (एकमत्य को शत्रु वा  
क्रोध सहित वर्तमानाः अर्थात् हमारे शत्रुहनन के अर्थ क्रोधयु-  
क्ताः तथा सरोतयः (दानसहिताः अर्थात् दानारः॥ ४४॥

तुगित्यपत्यं नाम नियं १०३८

अपाधमदभिशास्ती रशस्तिहाथिन्द्रो द्युम्याभवत्। दे-  
 वास्तः इन्द्रं सख्याय येमिरे बृहद्वानो मरुद्गणः ॥ ४५ ॥  
 नृमेधदृष्टे द्वे मरुत्वद्गुणविशिष्टेन्द्रदेवत्ये। हे बृहद्वानो (बड़ी दीप्ति-  
 ओंवाले) हे मरुद्गणः (मरुत हैं गण जिसके बोह) हे इन्द्र देवाः (वसु-  
 रुद्रादित्याः) तेरे सख्य (मैत्री) के अर्थ येमिरे कैसे कि इन्द्र हमको म-  
 खिभाव के अर्थ वरुणको इस अभिप्राय से अपने को संयत करते  
 हुए सो तू अभिशापो (शत्रुप्रयुक्तापवादों) को निवर्त करता है। अ-  
 थ (पीछे) द्युम्नी (अन्नवान् वायशस्वी) सर्वतः धनवान् होता है।  
 कैसा है तू कि अशस्तिहा (निन्दित असुरों का मारने हारा। इन्द्रः  
 (ऐश्वर्यवान्। भाव यह है कि जो दुष्टहन्ता अभिशापनाशक पश-  
 स्वी तेजस्वी बहुभृत्यसेव्य है तिसके सख्य को अन्य भी यत्न  
 करते हैं यह युक्त है ॥ ४५ ॥

अ व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत। वृत्रं हन-  
 ति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ४६ ॥

हे मरुतः अपने स्वामी इन्द्र के अर्थ तुम ब्रह्म (वेद-सामरूप स्तो-  
 त्र) को प्रकर्षण उच्चारण करो। कैसे इन्द्र कि बडे। ततो वृत्रहा (वृ-  
 त्र-असुर वायापी का मारने हारा। किस करि कि अपने आयुध श-  
 त हैं वर्ष (धाराएँ वाग्रन्थियें) जिसकी तिस वज्र से। कैसा वृत्रहा  
 कि शतक्रतु (बहुक्रमा वा बहुप्रज्ञ ॥ ४६ ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृषयर्धं शवो मदे सुतस्य वि-  
 षावि। अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुबन्ति पू-

वैथा। इमा उ त्वा यस्यायमयर्धं सहस्रमूर्ध्व ऊषुणः।  
॥४७॥

इतिसर्धं हितायां सप्तमोऽनुवाकः७

इति श्री शुक्लयजुषामाध्यन्दिनशाखीयायां वाजसने-  
यसर्धं हिताया द्वाघपाठत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

वैधातिथिदृष्टा माहेन्द्रा। इन्द्र इमं यजमान के वृषाय (वीर्य) और  
शत्रु बल को बढ़ाता है। कहाँ में कि अमिषुत सोम के विष्णु (सर्वेश-  
्वर) व्यापक मद में से यहा विष्णो (यज्ञ में अमिषुत के इतिमन्त्र)।  
अर्थात् सोमपान करि मत्त इन्द्र यजमान के महात्म्य और बल को  
बढ़ाता है। किं च इन्द्र के तिस उक्त यज्वन (वीर्योदित्वर्थनरूपमहि-  
मान) को इस काल में भी मनुष्य आनुपूर्व्येण स्तुति करते हैं त-  
त्र दृष्टान्तः जैसे पूर्ववृषिस्तुति करते हुए ऐसे अब भी मनुष्य स्तु-  
ति करते हैं इत्यर्थः॥ इमा उ त्वा यस्यायम् अयं सहस्रम् ३३.७१-  
७३ ऊर्ध्व ऊषुणः ११.४२ गताः प्रती कोक्ताः॥ ४७॥

इति भाष्ये सप्तमोऽनुवाकः७

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरो देयात्स्वयं ब्रह्मसनातनः ३३

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतव्याप्रपादान्वयवि-  
श्वामित्र पुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मज ऐकिमणय नृप-  
तिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिभाष्ये खिलप्रकरणे सर्व-  
मेधादिब्रह्मयज्ञारम्भान्तवर्णनो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

हरिः श्रीम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरुपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्द दायकं दृष्ट्वा ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३४

अ० १० यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तद् सुप्तस्य तथैवैति।  
दूरगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसं-  
कल्पमस्तु ॥ १॥

ॐ नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

चतुस्त्रिंशोऽयमध्यायो ब्रह्मयज्ञार्थं र्यते ३४

अनारभ्याधीतोऽध्यायः आपितु मेधातु आदित्य याज्ञवल्कदृष्टा  
मंत्रा पाठे विनियुक्ताः ॥ षडृचस्त्रिष्टुभो मनोदेवत्याः शिवसंक-  
ल्पदृष्टाः ऋषिर्वदति। तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु शिवः (कल्या-  
णकारी-धर्मविषयः) संकल्पजिसका तैसा हो अर्थात् मेरे मनमें  
सदा धर्म ही हो न कदाचित्पाप हो। बोह क्या कि जो मन जाग्रत  
पुरुष का दूरको चलता अर्थात् चक्षुःगद्यपेक्षा करि दूरगामी है।  
और जो देव (विज्ञानात्मा-आत्मग्राहक)। और जो मन सोते हु-  
ए पुरुष का जैसे गया तैसे ही फिर आता (स्वायकालमें सुषुप्ता-  
वस्थाविषे फिर आजाता है)। और जो दूरगमम् (दूरचलता अर्थात्  
अतीतो आगतवर्तमान विप्रकृष्ट व्यवहित पदार्थों का ग्राह-  
क)। और जो मन ज्योतिषों (प्रकाशकों-ओत्रादीन्द्रियों) का एक ही

† मनः सवान्दृष्टव्यमेतद् प्रमेयं  
भुवमिति श्रुतेः।

ज्योतिःप्रकाशकः प्रवर्तकः प्रवर्तित ही ओत्रादीन्द्रिये स्वविषय में प्रवर्तित हैं। आत्मा मन करि संयुक्त होता है मन इन्द्रियों से इन्द्रिय अर्थ से इस न्यायोक्ति से मनः सम्बन्धमन्तरातिन्हों की अप्रवृत्ति है। तादृश मेरा मन शान्त संकल्प हो ॥१॥

येन कर्मण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथे-  
षु धीराः। यदपूर्वं यक्ष्मन्तः प्रजानां तन्मे मनः शि-  
व संकल्पमस्तु ॥२॥

मेधावि लोग यज्ञ में जिस मन से कर्मों को करते हैं + किन्हों में कि-  
विदथों (यज्ञसम्बन्धि हविर्गदि पदार्थों के ज्ञान) में। कैसे मेधावि-  
नः कि अपसः (कर्मवन्तः सदाकर्मनिष्ठः) तथा धीराः (धीमन्तः॥  
और जो मन अपूर्व (इन्द्रियों से प्रथम वा आत्मरूप) और जो य-  
जने को शक्त। और जो प्रजाओं (प्राणिओं) के शरीर के भीतर में स्थि-  
त हैं। तादृश मेरा मन शिव संकल्प हो ॥२॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजा-  
सु। यस्मान्नः कृतं किं च न कर्म क्रियते तन्मे मनः  
शिव संकल्पमस्तु ॥३॥

जोमन प्रकर्षणज्ञानजनक और जो सामान्य विशेषज्ञानजनक और जो  
धैर्यरूप। और जो जनों के भीतर में वर्तमान हुए परज्योतिः (सब इन्द्रि-  
यों का प्रकाशक) और जो अमरणधर्म आत्मरूप जिस से कृतमें  
जिसमन बिना कांड भी कर्म नहीं करते हैं अर्थात् सब कर्म में प्रा-  
णिओं के मन को पूर्व प्रवृत्ति है। तादृश मेरा ॥३॥

+ मनः स्वास्थ्यं विना कर्मो प्रवृत्तेः।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतैर्न सर्व-  
म् । येन यज्ञस्तु यते सप्त होता तन्मे मनः शिव-  
संकल्पमस्तु ॥४॥

जिस मन करि यह सब परिगृहीत (सर्वतः ज्ञात) है । यह कि भूत  
वर्तमान भविष्यत् कालसम्बन्धि वस्तु अथोत्त्रिकाल सम्बद्ध व-  
स्तु में मन प्रवर्तै है । ओत्रादिक तो प्रत्यक्ष ही ग्रहण करत हैं । कैसे  
जिस कि अमृत (शाश्वत) मुक्तिपर्यन्त अर्थात् ओत्रादिक नाश हो-  
ते हैं परंतु मन अनश्वर है । और जिस करि यज्ञ (अग्निष्टोमादि)  
विस्तारिये है । कैसा यज्ञ कि सप्त होता (देवताओं के आह्वाता होता)  
प्रशास्ता २ ब्राह्मण छठसी ३ पोता ४ नेष्टा ५ आग्नीध्र ६ अछावाक ७  
हैं । तादृश ॥४॥

यस्मिन्नुचः साम यजूंश्च यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथना-  
भाविद्वाराः । यस्मिंश्चित्तु सर्वमोतं प्रजानां तन्मे  
मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥

जिस मन में ऋचाएँ प्रतिष्ठिता हैं जिस में सामाएँ प्रतिष्ठिता जिस  
में यजुषिएँ प्रतिष्ठिता हैं । तत्र दृष्टान्तः । जैसे रथचक्र की ना-  
भि के मध्य में आरा प्रतिष्ठित है तद्वत् छन्दजाल मन में । किंच  
प्रजाओं का सर्व (सर्वपदार्थविषयि) चित्त (ज्ञान) जिस मन में  
ओत प्रोत (पहुँचै) निहित है । तादृश मेरा मन प्रान्तव्या-  
पार हो ॥५॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते भीशु-

† मनः सास्थ्ये एव ज्ञानोत्पत्तिर्मनोवैयाग्ये ज्ञानाभावः ।

† अग्निष्टोमसप्त होतारो भवन्ति ।

† मनसः सास्थ्ये एव वेदवेदीस्यतेर्मनसि प्र-  
त्यक्षमस्य प्रतिष्ठितवत् अन्तर्मनसि हि सोम्य मन-  
सो ज्ञानोत्पत्तिर्मनस एव सास्थ्ये वेदोत्पत्ति-  
रप्युक्तिः प्रतिपादिताः ।



भिर्वाजिन- इव । हृत्प्रतिष्ठं च दर्जिरं तविष्ठं नन्वे  
मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ६ ॥

जो मन मनुष्यों को इधर उधर से अत्यर्थ लाता है (मनः प्रेरिता हा  
प्राणी वर्तते हैं मनुष्यग्रहण प्राणिमात्र का उपलक्षक है। तत्र दृष्टा-  
न्तः। जैसे शोभन सारथि कशा करि अश्वों को लाता है। द्वितीयो  
दृष्टान्तः जैसे शोभन सारथी रश्मिओं करि अश्वों को लाता है  
इत्यनुषङ्गः। उपमाद्वयम् प्रथमायां नयनम् द्वितीयायां नियम-  
नम् तैसे मन प्रवर्तते और नियच्छे है नरों को इत्यर्थः। और जो मन  
हृदय में स्थित है (हृदय में ही मन उपलभिये है। और जो मन अ-  
जर (जरारहित) बाल्य यौवनस्थाविरों में मन के तिस अवस्थत्व  
में। और जो मन वेगवत् + तादृश ॥ ६ ॥

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविष्ठीम् । यस्य त्रितो  
व्योजसा वृत्रं विपर्वमुदयेत् ॥ ७ ॥

अगस्त्य दृष्टा उषिणक् अन्नस्तुति । तिस बल के धारयितार अन्नको  
स्तुति करता हूँ। तिस किसे कि जिस अन्न के बल करि त्रितः (विस्था-  
न-इन्द्र) वृत्र (दैत्य) को विपर्व (विगतसम्बन्धन) करि के विविधम-  
र्दन करता हुआ अर्थात् इन्द्र ने वृत्र अन्न बल ही से मारा ॥ ७ ॥

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि । कृत्वे  
दक्षाय नो हिनु अ एण आयुधं प्रितोरिषः ॥ ८ ॥

चतस्रोऽनुष्टुभः द्वयोरनुमतिर्देवता । इत् निपातोऽनर्थकः ॥ हे अ-  
नुमते तू हमारे कहे को बोधन करि। और हमारा सुख ही करि। पु-

किं चनाशोयोऽस्ति हे  
न मनसः किं न मनसः  
किं चनाशोयोऽस्ति हे  
न मनसः किं न मनसः

नः हमारे कतु (संकल्प) और दक्ष (तत्समृद्धि के अर्थ) अर्थात् सं-  
कल्पसिद्धि के अर्थ हमें प्राप्त करि हमारी अवस्थाएँ बढ़ाय ॥७॥

अनु नोऽद्यानु मतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् । अग्निश्च  
हव्यवाहेनो भवतं दाश्रुषे मयः ॥८॥

अनुमति आज हमारे यज्ञ की यज्ञिय देवताओं में आज्ञा देवे औ-  
र हवियों का वोटा अग्नि यज्ञ को य० किं च हवियें देनेवाले य-  
जमान के अर्थ अनुमत्यग्नी सुख रूपों होंवें ॥८॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसो । जुषस्व  
हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिष्टि नः ॥९॥

हे गृत्समदृष्टे आद्यासिनीवाली देवता । हे सिनीवालि हे पृथुष्टु-  
के (पृथुकेशभारे वा महास्तुते वा पृथुकामे) जो तू देवताओं की म-  
गिनी (बहनि) है सो तू आहुत हव्य को ग्रहण करि और हे देवि ह-  
मारे अर्थ प्रजा को दे ॥९॥

अ० २० पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः । सरस्वती  
तु पञ्चधा सो देशोऽभवत्सरित् ॥१०॥

सरस्वती नदी देवत्या । जे दृषद्वत्याद्याः पाँच नदिएँ सरस्वती को जाती  
हैं कैसी कि समान हैं प्रवाह जिन्हों के ते । सो सरस्वती ही पञ्चधा  
देश में नदी हुई (पाँचों अपने नामों को छोडि सरस्वती ही  
हुई ॥१०॥

त्वमग्ने प्रथमोऽङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामम-  
वः शिवः सर्वा । तव व्रते कवयो विप्रनायसोः

जायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥१२॥

चतस्र आग्नेयः द्वे जगत्यौ आङ्गिरसो हिरण्यस्तूपदृष्टे अन्ये त्रि-  
ष्टुबन्तुष्टुभौ भारतीदेवश्च देव वातश्च दृष्टे । हे अग्ने तू देवताओं  
का आद्यो मित्रभूतः तूही हुआ । कैसा है तू कि आङ्गिराः (अङ्गोका-  
रस वा यजमानों के अर्थ सुख । ऋषि (दृष्टा) देव (द्योतमान) शिवः क-  
ल्याण । किं च तेरे व्रत (वर्तमानकर्म) में मरुतः ऐसे हुए । कैसे कि  
ज्ञानदर्शिनः । विद्यनायसः (विदितकर्माणः) । भ्राजदृष्टयः (शोभ-  
मान आयुध जिन्हों के ते ॥१२॥

त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्षतन्व-  
श्च कन्य । वाता तोकस्य तनये गवामस्य निमेषठं  
रक्षमाणस्तव व्रते ॥१३॥

रक्षणार्थो मन्त्रः । हे अग्ने हे देव (द्योतमान) हे स्तुत्य तेरे कर्म में व-  
र्तमान धनवानों (यजमानों) को पालि । हमारे शरीरों को पालि ।  
किन्हीं करि कि अपने पालनों से क्यों कि तू सावधान पालन क-  
रते सन् पुत्र पौत्र और गोओं का रक्षक है ॥१३॥

उत्तानायामवभग चिकित्वान्तुद्यः प्रवीता वृष-  
णं जजान । अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इडायासु-  
त्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥१४॥

जो इडा (पृथिवी) का पुत्र अग्नि वयुने (प्रज्ञान-कर्तव्यमें) अज-  
निष्टः (हुआ) कैसा कि अरुषस्तूपः (अहिंसक है ज्वालोछाय जि-  
स का बोह । इस अग्नि का दीप्त बल उत्तानां (अरणी) में अवाची-

न हर। चिकित्वान् (अरणिबल की जानता। क्याबल इति चेत्  
जो अरणि कामिता सती सेक्तार अग्नि को तत्काल उत्पन्न  
करती है सो अग्नि उत्पन्न हुआ ॥१४॥

इडायास्त्वा पदे वयं नामा पृथिव्या अधि।

जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोदवे ॥१५॥

हे जातवेदः (जातप्रज्ञान) हे अग्ने पृथिवी के स्थान देवयजना-  
ख्य में और पृथिवी की नाभि उत्तर वेदी के मध्य में हवि वहाने  
के लिये हम तुम्हें स्थापन करते हैं ॥१५॥

प्रमन्महे शवसानाय शूषमाङ्गुषं गिर्वणसे अ-  
ङ्गिरस्वत्। सुवृत्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामा-  
र्कं नरे विश्रुताय ॥१६॥

चतस्र एन्द्रस्त्रिष्टुभः द्वे नोधादृष्टे। हम इन्द्र के अर्थ स्तोम (त्रिवृ-  
दादिक) को प्रमन्महे (जानते हैं)। कैसे स्तोम कि बल हेतु। और अ-  
र्क (मन्त्र) अर्चाम (उच्चारण करते हैं)। अङ्गिरस्वत् (अङ्गिराओं-  
नै जैसे स्तोम जाना और मन्त्र पढ़ा तब)। कैसे इन्द्र कि शवसानः  
(बलभिलषमाण) के अर्थ। पुनः कैसे कि गिर्वणसे (गिरा स्तु-  
ति करि सम्भजवाता है) आत्मा को अभिलषितदान से स्तोतृयों  
के अर्थ वागिर करि इसे देवता भजते हैं तिस के अर्थ। पुनः कै-  
से कि शोभना स्तुतिओं करि स्तुति करता है तिस के अर्थ यजमा-  
नों को इति शेषः। पुनः कैसे कि ऋग्मियाय (वेदमय वास्तुति  
योग्य के अर्थ)। पुनः कैसे कि नररूप के अर्थ। पुनः कैसे कि

+ शर्वनामनकोषान्तर

विश्रुताय (शौर्यदानवलादिलब्धख्यातिके अर्थ) ॥१६॥

प्र वो महे महि नमो भरधमाङ्गुष्युर्धं शवसानाय  
साम। येना नः पूर्व पितरः पदज्ञा अर्चन्तोऽप-  
ङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥१७॥

बड़े बल की अभिलषमाण इन्द्र के अर्थ बड़े अन्न की तुम स-  
मर्पण करे। मुनियों का पुत्रादिकों प्रति वचन है। आङ्गुष्यस्तेम  
आघोष के अर्थ हित साम उच्चारण करे। क्योंकि हमारे पूर्व पि-  
तरः अङ्गिरसः जिस अन्न और साम करि अर्चन करते गाः (सू-  
र्यकिरणों की प्राप्त हुए वोह ही सामों का लोक है वोह साम उच्चा-  
रण करे। कैसे अङ्गिरसः कि पदज्ञाः (आत्मस्वरूप को जानते ॥१७॥

इच्छन्ति त्वा सोम्यासुः संवायः सुन्वन्ति सोमं दध-  
ति प्रयाथ्सि। तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामि-  
न्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१८॥

वे भारती देवश्वा देववातश्च दृष्टे। हे इन्द्र तेरे सकाशसे कोई  
भी लोकान्तरः प्रकेतः (प्रकृष्टोक्तानविशेषः) समन्तात् यतः हो-  
ता है अतः संवायः (ब्राह्मणः) तुम्हें इच्छा करते हैं अथ जे  
ब्राह्मणः शुश्रुवाथ्सः (अनूचानाः) ते + कैसे ब्राह्मणः कि सोम  
सम्पादिनः। इच्छन्तीति कथं ज्ञातम् तत्राह यतः ते सोम को अभि-  
षव करते हैं और हवियों को धारण करते हैं। तितिक्षन्ते च जनो के अ-  
भिशास्ति (दुर्वचन) को सहते अर्थात् मनोवाक्कायसंयताः क्षा-  
न्तिपराः हैं ॥१८॥

मनुष्यदेवा इत्युक्ते देवानां विप्राणां च संवित्वम्

इडायास्त्वा पदे वयं नामा पृथिव्या अधि !  
जानवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोदवे ॥१५॥

प्रमन्महे शवसानाय शूषमाङ्गुषं गिर्वल्लसेऽग्न-  
 द्गिरस्वत् । सुवृत्तिभिः स्तुवत् त्रैगमियायार्चमा-  
 र्के नरे विश्रुताय ॥१६॥

चतस्र एन्द्रस्त्रिष्टुभः द्वे नोधादृष्टे। हम इन्द्र के अर्थ स्तोम (त्रिवृ-  
दादिक) को प्रमन्महे (जानते हैं)। कैसे स्तोम कि बल हेतु। और अ-  
र्क (मन्त्र) अर्चाम (उच्चारण करते हैं)। अङ्गिरस्वत् (अङ्गिराओं  
नें जैसे स्तोम जाना और मन्त्र पढ़ा तद्वत्)। कैसे इन्द्र कि शवसानः  
(बलभिलषमाण) के अर्थ। पुनः कैसे कि गिर्वेण से (गिरा स्तु-  
ति करि सम्भजवाता है) आत्मा को अभिलषितदान से स्तोतृयों  
के अर्थ वा गिर करि इसे देवता भजते हैं तिस के अर्थ। पुनः कै-  
से कि प्रोभना स्तुतिओं करि स्तुति करता है तिस के अर्थ यजमा-  
नों को इतिशेषः। पुनः कैसे कि ऋग्मियाय (वेदमय वास्तुति  
योग्य के अर्थ)। पुनः कैसे कि नररूप के अर्थ। पुनः कैसे कि

† धातूनामने कार्थित्वान्



विश्रुताय (शौर्यदानवलादिलब्धख्यातिके अर्थ) ॥१६॥

प्र वो महे महि नमो भरधमाङ्गुष्यर्धं शवसानाय  
साम। येना नः पूर्व पितरः पदज्ञा अर्चन्तोऽपि  
ङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥१७॥

बड़े बल की अभिलषमाण इन्द्र के अर्थ बड़े अन्न को तुम स-  
मर्पण करो (मुनियों का पुत्रादिकों प्रति वचन है)। आङ्गुष्यसोम  
आघोष के अर्थ हित साम उच्चारण करें। क्योंकि हमारे पूर्व पि-  
तरः अङ्गिरसः जिस अन्न और साम करि अर्चन करते गाः (सू-  
र्यकिरणों की प्राप्त हुए वोह ही सामों का लोक है वोह साम उच्चा-  
रण करें)। कैसे अङ्गिरसः कि पदज्ञाः (आत्मस्वरूप को जानते) ॥१७॥

इच्छन्ति त्वा सोम्यासुः संखायः सुन्वन्ति सोमं दध-  
ति प्रयाथ्सि। तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामि-  
न्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१८॥

वे भारती देवश्वा देववातश्च दृष्टे। हे इन्द्र तेरे सकाशसे कोई  
भी लोकान्तरः प्रकेतः (प्रकृष्टोक्तानविशेषः) समन्तात् यतः हो-  
ता है अतः संखायः (ब्राह्मणाः) तुम्हें इच्छा करते हैं अथ जे  
ब्राह्मणः शुश्रुवाथ्सः (अनूचानाः) ते। कैसे ब्राह्मणः कि सोम  
सम्पादिनः। इच्छन्तीति कथं ज्ञातम् तत्राह यतः ते सोम को अभि-  
षव करते हैं और हवियों को धारण करते हैं। किं च जनो के अ-  
भिशास्ति (दुर्वचन) को सहते अर्थात् मनोवाक्कायसंयताः क्षा-  
न्तिपराः हैं ॥१८॥

मनुष्यदेवा इत्युक्ते देवानां विप्राणां च संखितम्

न ते दूरे परमा चिद्रजाधस्या तु प्रयाहि हरिवो  
हरिभ्याम् । स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता  
ग्रावाणः समिधानेऽग्निौ ॥१४॥

हे हरिवान् हृदसो हृद तुरसेतु के अर्थ समिध्यमान अग्नि में ये  
प्रातः सवनादीनि किये हैं और ग्रावाणः अभिषवकर्म में जोडे हैं  
इस हेतु हरी अश्वों करके आगमन करि। ननु स्वर्ग से अतिदूर  
में कैसे मेरा जाना यह तहां कहता है कि दूरदेशस्थस्थान तुम्हें दूर  
र नहीं हैं अर्थात् अति दूर भी तेरे निकट है इस हेतु आ ॥१४॥

अषाढं युत्सु घृतनासु पवित्रं स्वर्षामप्सां वृजनस्य  
गोपाम् । भरेषु जाधं सुक्षितिर्ह सुश्रवसं जयन्तं त्वा  
मनुमदेम सोम ॥२०॥

चतस्रः सोमदेवत्यास्त्रिष्टुभः गोतमदृष्टा । हे सोम तुम्हें जयन्त (उत्कर्षणवर्तमान) को अनुमदेम (अनुसरण करते हम लहष्ट होंवें) । कैसे तुम्हें कि युद्धोंमें अनभिभूत को । पुनः कैसे कि सेनाओं के प्रतिपालयितार । दिवि को सम्भजन करते । जलों को सम्भजन करते । बल के रक्षक । संग्रामों के जेतार । सुनिवास । शोभनकीर्तिवाले को ॥२०॥

अ० ३० सोमो धेनुर्ह सोमो अर्वन्तमाशुर्ह सोमो वीरं कर्म  
एयं ददाति । सादन्यं विदध्युधं समेयं पितृश्रवणं  
यो ददाशदसे ॥२१॥

जो यजमान इस सोम के अर्थ हविदेता है तिस के अर्थ यह सोम धेनु देता है । और शीघ्र अश्वको सोम देता है । और वीर (पुत्र) को सोम दे

ता है। कैसा पुत्र कि कर्म में साधु। गृह में साधु। यज्ञ में साधु।  
पित्राज्ञाकारी (विनीत) ॥२१॥

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपोऽञ्जनयस्त्व  
गाः। त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो  
ववर्थ ॥२२॥

हे सोम तू ये सब ओषधीएँ जल गौएँ उत्पन्न करता हुआ। तू  
विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को विस्तारता हुआ और तू तेज (आदित्यात्मा) करि  
अन्धकार को दूर करता है अर्थात् सर्वात्मा तू है ॥२२॥

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागर्हं सहसावन्-  
मियुध्य। मा त्वातनदीशिषे वीर्यस्योभयेऽयः प्रवि-  
कित्सा गविष्ठो ॥२३॥

हे देव सोम बलवन् देवसम्बन्धि मन सहित धन के भाग को ह-  
मारे अर्थ दे। एवं दानप्रवृत्त तुझे कोई मत बाँधो। कुतस्त्वमेवमुच्य-  
स इति चेत् यतः तू वीरकर्म का ईश्वर है। किं च गविष्ठो (स्वर्गैवाणा  
विषयभूता में) दोनों लोक प्राप्तर्यचिकित्सा करि उभयलोक प्रति-  
बन्धक विघ्न को निवर्तकरि। देवमन को प्राप्त हो लब्धधना शौर्य-  
रोगा सत्कर्म करते जैसे स्वर्ग को जावे तैसे करि इति वाक्यार्थः ॥२३॥

अष्टो व्यरव्यत्कुभः पृथिव्यास्त्री धन्व यो जेना स-  
प्त सिन्धून्। हिरण्याक्षः सविता देव आगाह्य इ-  
त्ना दाशुषे वार्योणि ॥२४॥

चतस्रः सावित्र्यः आङ्गिरसो हिरण्यस्तूपदृष्टा। द्वितीया जगती

त्रिष्टुभोऽन्याः। वोह सविता देव आवे। क्या करने कि हविदेनेवालेय-  
जमान के अर्थवरणीय रत्नों को देने वा स्थापन करने। कैसा कि हिर-  
ण्यक्षः। (हिरण्यकी सी कान्तियुक्त नेत्र जिस के वा अमृत दृष्टि। वो-  
ह कौन कि जो सविता पृथिवी सम्बन्धिनी आँठो ककुभः। (दिशाएँ)  
प्रकाश करता हुआ। और जो तीनि धन्व (लोकों) को प्रका०। और जो  
योजन गव्यूति क्रोशादि। अध्व (मार्ग) परिमाण विशेषों को प्रका०।  
और जो सप्तसिन्धुओं (गङ्गादि सप्तनदीओं) को प्रका०। उपलक्षण-  
मेतत् सर्वजगत्प्रकाशकः सवितारत्नों को देने आवे ॥२४॥

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुमे द्यावा पृथिवी-  
अन्तरीयते। अपामीवा बाधते वेति सूर्यमभि कृणे-  
न रजसा द्यामृणोति ॥२५॥

सविता (प्रसविता) सूर्यः दोनो द्यावा पृथिवीओं के मध्य में जब कि  
आता है तब अन्धकारलक्षणरोग को निवर्त करता है। अथ ज-  
ब कि अस्तमय समय में जाता है तब अन्धकारलक्षण करि दुलो-  
क को अभिव्याप्त करता है। कैसा सूर्य कि हिरण्यपाणि। कृताकृ-  
त प्रत्यवेक्षक ॥२५॥

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववा या-  
त्वर्त्तुडः। अपसेधन्क्षसौ यानुधानानस्थो देवः प्र-  
तिदोषं गृणान् ॥२६॥

जो देव (रवि) राक्षसों और यानुधानों (असुरकारों) को अपगमन  
करते सन् उदय होता है वोह देव हमारे अभिमुख आवे। कैसा देव

किं हिरण्यहस्तः (हिरण्य दानार्थं हाथ में जिस के वा रूपेण । असुरः  
प्राणिं को देता । सुनीयः (कल्याण स्मृति । साधुसुखयिता । धनवान् । प्र  
प्रतिदोष (प्रतिजन दोष) श्रुति स्मृति विहितधर्मपराङ्मुखों के जितने  
शेषतिनः को उच्चारण करता उप भोगार्थ को इत्यभिप्रायः ॥ २६ ॥

ये ते पन्थाः सवितः पूव्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।  
तेभिर्नोऽद्य पथिभिः सुगमेभ्य रक्षा च नोऽ  
अधि च ब्रूहि देव ॥ २७ ॥

हे देव हे सवितः पन्थाः (मार्गः) अन्तरिक्ष में साधुकृताः (धात्रा) वर्तते हैं।  
कैसे हैं ते कि पूर्वकालों में हुए । रेणुरहित । तिन मार्गों करि हमें अप्रा-  
प्त करि इति शेषः । पुनः चलता हमें रक्षा करि और अधिब्रूहि अङ्गीक-  
रि के कहि किये मेरे वा हमारा जोहित वोह उपदेश करि यद्वा अधिक  
कहि किये महा याज्ञिक दातार हैं । कैसे मार्गों कि सुगमनों अर्था-  
त् अन्नपान प्रभूतों करि ॥ २७ ॥

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्वि-  
याभि स्तुतिभिः ॥ २८ ॥

आश्विन्यस्तिस्रः एका गायत्री प्रस्कण्वदृष्टा । हे अश्विनो तुम दोनों  
हमारे अर्थ अविदीर्ण (अस्वण्डिता) पालनों सहित शर्म (सुख वा  
प्राण) को देखो । और दिये सुख को पालन करे इत्यर्थः ॥ २८ ॥

अप्रस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो हस्त्रा वृषणा  
मनीषाम् । अद्युत्ये वसे नित्वेये वा वृथे च नो  
भवतं वाजसन्तो ॥ २९ ॥

हे त्रिष्टुभो कुत्सहृष्टे। हे अश्विनौ हे दर्शनीयो हे सेक्तारौ तुम  
हमारी वाणी को कर्मवती करो तथा हमारे मन की इच्छा को कर्म  
वती करो। अर्थात् मन वाणी से यज्ञ करें तैसें करो। क्यों कि हम तु-  
म्हें बुलाते हैं किस निमित्त कि अद्युत्य (सन्मार्गागत) अन्न के रा-  
नार्थ। किं च वाजसानि (यज्ञमें) हमारी वृद्धि के अर्थ होओ ॥२६॥

द्युभिरकुभिः परिपातमुस्मानरिष्टेभिरुश्विना सोम-  
गेभिः। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः  
पृथिवीः उत द्यौः ॥३०॥

हे अश्विनौ दिवसों और रात्रियों करि हम लोगों को सर्वतः रक्षा  
करो। किन्हीं से कि सोमगों (शोभनधनों) अनुपहिंसितों से अर्थात्  
न अरवण्डितधनों से हमें रक्षा करो। किं च मित्र वरुण अदिति  
सिन्धु और द्यौः ये हमारे उस तुम से किये पालन को पूजन करें  
अर्थात् मानें ॥३०॥

अ० ४. आ कृष्णो न रजसा वर्तमानो निवेशयन्मृतं मर्त्यं  
च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि  
पश्यन् ॥३१॥

व्याख्याता ३३.४३ ॥३१॥

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रापि धामभिः।  
दिवः सदा धंसि बृहती वितिष्ठस आ त्वेष वर्तते  
तमः ॥३२॥

भरद्वाजपुत्री कश्यपादृष्टा रात्रिदेवत्या पथ्याबृहती। हे रात्रि जिस

† द्युतादागत द्युते भवे वा द्युत्यम् न द्युत्यमद्युत्यम् तस्मिन् द्युतादागत कर्मणि न भवतीत्यवमुच्यते द्युते  
मन्त्रेषामप्यन्यायधनारागमानामुपलक्षकम्।



तुम्हें करि पार्थिवं रजः (पृथिवीसम्बन्धिलोकः) पितुः (मध्यमलोक) के स्थानों सहित समन्तात् पूरती है। और जो तू द्युलोक के स्थानों को महती सती व्याप्त होती है। तिस तेरा तम आवर्ते तथापि प्रवर्ते है। कैसा तम कि त्वेष (महाप्राग्भार ॥ ३२॥

उषस्तच्चित्रमाभरास्मभ्यं वाजिनीवति। येन लोकं च तेनयं च धामहे ॥ ३३॥

उषो देवत्या गोतमदृष्टा पुरोषिणक्। हे उषः हे वाजिनीवति (अन्नवति) हमारे अर्थ वोह (प्रसिद्ध) आश्चर्यकारि महनीयधन दे किजि- स धन करि हम पुत्र और पौत्र (सब संतानवर्ग) को पुष्ट करें ॥ ३३॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रात-  
रश्विनो। प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत-  
रुद्रं हुवेम ॥ ३४॥

सप्तर्चं वसिष्ठदृष्टं आद्या जगती बहुदेवत्या। हम प्रातः पुनः पुनः इन देवताओं को बुलाते हैं इति प्रत्येकं सम्बध्यते। किन्हे कि अग्नि को इन्द्र मित्रावरुणो अश्विनो भग पूषा बृहस्पति सोम और रुद्र को ॥ ३४॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेयो विधत्ते।  
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुराश्चिद्राजा चिद्यं भगं भ-  
क्षीत्याहे ॥ ३५॥

यच्च भगदेवत्यास्त्रिष्टुभः। हम तिस भग (आदित्य) को बुलाते हैं। के-  
से की कि प्रातः जयनशील उग्र (उत्कृष्ट वा उद्गूणदान) आदित्य के

प्रातः पुनः पुनः

पुत्र। तिस किसे कि जो जगत का धारयिता। और जो आध्रश्चित् (नही  
 नृप होता वा समन्तात् नृप होता वा अतृप्त बुभुक्षित द्रिहो वापि) जि-  
 स भग को भजता है अर्थात् उदय को इत्याह क्या करने कि स्वार्थ-  
 सिद्धि के अर्थ पूजने वोह ही सूर्योदय में भिक्षादि करि किंचित् पाता  
 है ततः उदय को वाञ्छा करता है। तुरः (आतुर) भी जिस भग को भज-  
 ता है उदय को दिवस में तिस के सुखोदय से रोगी की रात्रि कष्ट से जा-  
 ती है यद्वा तुरोयमः वोह भी मारण के अर्थ दिनों को गिनता है। राजा  
 भी जिस भग को भजता है इत्याह तिस के उदय में ही राजों की व्यव-  
 हारदर्शन करि सर्वेष्टसिद्धि है ॥३५॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमा धियमुदवा ददन्नः।

भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्व-  
 म ॥३६॥

+ आदेशार्थं पुनः सत्याधनम्  
 हे भगः हे प्रणेतः (प्रकर्षेण धन को प्राप्त करता है) हे भगः + हे सत्यरा-  
 धः (आदिनस्वर धन जिस का वोह) हे भग तू धन को देते सन् हमारी  
 (रे) इस धी (प्रज्ञा वा कर्म) को ऊंची (वा) चला जैसे सूक्ष्मार्थों को देखें  
 तैस करि इति भावः। किंच हे भग हमें गो और अश्वों करि बटा। हे  
 भग हम मनुष्यों (पुत्रादिकों) करि मनुष्यवन्त प्रकर्षेण हों ॥३६॥

दन्तदानीं भगवन्तः स्यामीत प्रयित्वः उत मध्येऽश्व-  
 न्नाम्। उतोदिता मधवन्तः सूर्यस्य वयं देवानां सुम-  
 तो स्याम ॥३७॥

हे मधवन् (धनवन् रवे) और भी हम ऐसे भगवन्त (धनवन्त वा ज्ञान

वन्त) हैं और सूर्य के अस्तमय में भग०। और मध्यदिन में भग०। और सूर्य के उदय में भग०। किं बहुना सर्वदा हमारी धनवन्ता हो इत्यर्थः॥ किं च देवताओं की कल्याण बुद्धि में हम हैं अर्थात् देवता हमारे में शोभना अनुग्रह विषया बुद्धि धारण करें ॥३७॥

भग एव भगवाँ ॥३७॥ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्या-  
म। तं त्वा भग सर्व इज्जोहंवीति स नो भग पुराणा  
भवेत् ॥३८॥

हे देवताओं भग ही भगवान् (धनवान्) हो फिरि क्या अदाता धनी दे-  
वताओं करि इति भावः॥ तिस भगदत्त धन करि हम भगवन्त हैं। ए-  
वं देवानुत्क्याथ भगमाह हे भग सब ही मनुष्य तिस (प्रसिद्ध) तुम्हें  
इष्टसिद्धि के अर्थ अत्यन्त आह्वान करता है हे भग सो तू इस हमारे  
कर्म में अग्रयायी हो अर्थात् अग्रे सर होके सब कार्यों की साधि ॥३७॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिकावेव शुचये पदाय।  
अर्वाचीनं वसुविदं भग नो रथमिवाश्वा वाजिन-  
आवहन्तु ॥३८॥

प्रातः काल के अधिष्ठाता देवता अध्वर के अर्थ प्रह्वी होते हैं के-  
से कि दधिकावा (अश्व) जैसे अग्न्याधान के अर्थ शुचि पद की।  
ने देवाः भग (आदित्य) को हमारे अभिमुख आगमन करावें कैसे म-  
ग कि वसु (धन) लाभ होता है जिस से तिसै। पुनः कैसे कि जैसे  
वाजिनः (वेगवन्त वा अन्नवन्त) घोड़े रथ की चलाते हैं ॥३८॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भ-

द्राः। घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं यात स्वस्ति-  
भिः सदा नः॥४०॥

उषो देवत्या त्रिष्टुप्। उषा ऐं सदा काल हमारे अज्ञान लक्षणापाव  
को छुड़ावें। कैसी उषा ऐं कि अश्वं वती ऐं गोमती ऐं वीरवती ऐं क-  
ल्याणरूपाः जल को क्षरती ऐं सर्वतः धर्मार्थकामों को बढ़ाती ऐं।  
एवं परोक्षं प्रार्थ्य प्रत्यक्षमाह हे उषाओ तुम स्वस्तिओं (अविना-  
शों) करि हमें रक्षा करो॥४०॥

अ० ५. पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन। स्तोतारस्त-  
इह स्मसि॥४१॥

हे पोषण्यो गायत्री त्रिष्टुभौ आद्या सुहोत्र दृष्टा द्वितीया ऋजिष्वा-  
दृष्टा। हे पूषन् तेरे कर्म में व्रतमाना हम कदापि विनाशन हों। किं-  
च इस कर्म में तेरे स्तुतिकर्तारः हों॥४१॥

पथस्यथः परियतिं वचस्या कामेन कृतोऽभ्यास-  
दुर्कम्। स नो रासक्षुरुर्धश्चन्द्राग्रा धियं-धियं  
सीषधाति अ पूषा॥४२॥

जो पूषा अर्कदेव को सर्वतः व्याप्त होता है कैसा कि वाञ्छितवेदे-  
क्तवचन करि अभिसुखी किया। कैसा अर्क कि सबमार्गों का स्वा-  
मी। वोह पूषा हमारे अर्थ शोकनाश करने हारे साधनों को देवै-  
कैसे शोकनाश करने हारे साधन कि चन्द्राग्राः आल्हादक है  
अग्र जिन्हें की-तिन साधनों के करने में आल्हाद होता है। पुनः पू-  
षा सब कर्मों को प्रकर्षण सिद्धि करावै॥४२॥

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः॥ अतो  
धर्माणि धारयन् ॥४३॥

वैष्णव्यो गायत्र्यो मेधातिथिदृष्टे द्वयार्कचोरेकवाक्यम्। जोवि-  
ष्णु (यज्ञ) तीनि पदों (अग्निवाद्यादित्यारव्यों) का व्याप्तहुआ। कै-  
सा विष्णु कि जगतका रक्षक अहिंस्य। क्या करन कि इन तीनि  
पदों धर्मों (पुण्यों-कर्मों) की धारण कराने ॥४३॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाथंसः समिन्धते। विष्णो-  
र्यत्परमं पदम् ॥४४॥

तिस विष्णु (यज्ञ) का जो परमपद (ब्रह्मलक्षण) वोह ब्राह्मण लोग प्र-  
काशते (उपासते) हैं। कैसे ब्रा० कि विगत है संसार व्यग्रहार जिन्हें से  
(निष्कायाः जागरणशीलाः अग्रमत्ताः) ज्ञान कर्म में समुच्चयक  
रने हार ॥४४॥

धृतवती भुवनानामभिधियोर्वी पृथ्वी मधुदुग्धे सुपे-  
शसा। द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मिण विष्कभितेऽ-  
अजरे भूरिरेतसा ॥४५॥

भरद्वाजदृष्टा जगती द्यावापृथिवी देवत्या। द्यावापृथिव्यो वरुण  
(आहित्य) की धरणशक्ति करि दृढी हैं अर्थात् वरुण ने अपनी  
शक्ति से दृढी करीं। कैसी हैं ते कि धृतवती हैं (उदकवती हैं) भूतजातों  
की आश्रयणीयें। उर्व्यो (वस्तीर्ण) पृथिव्यो (पृथुल)। उदक की  
बुहने हारी हैं। मुरुपाएँ। जगरहिते। भूरिरेतसो (वहतरंत दालि) हैं म-  
बभूतां के रेत तिन्हें से ही उत्पन्न होते हैं ॥४५॥

विष्णुर्गोपा अदाभ्यः॥ अतो  
धर्माणि धारयन् ॥४३॥  
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाथंसः समिन्धते। विष्णो-  
र्यत्परमं पदम् ॥४४॥  
धृतवती भुवनानामभिधियोर्वी पृथ्वी मधुदुग्धे सुपे-  
शसा। द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मिण विष्कभितेऽ-  
अजरे भूरिरेतसा ॥४५॥

ये नः सपत्ना अप ते भवन्तिवन्द्वाग्निभ्यामवबाधामहे  
तान् । वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशो मोमं चेतोर-  
मधिराजमक्रन् ॥४६॥

विष्टुविह्व्यहृष्टा लिङ्गोक्तदेवता । जे हमारे शत्रु ते अप (अपगतवी-  
र्यो निरुद्यमा पराभव) हों । यतः हमतिन शत्रुओं को इन्द्राग्निबल  
करि नाश करें । किंच आठौ वसु एकादश रुद्र द्वादश आदित्य ये मुँहें ऐसा  
करें । कैसा कि उच्चस्थानस्थित । उल्लूष । ज्ञातार । अधिपति । ईश्वर ॥४६॥

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपे-  
यमश्विना । प्रायुस्तु रिष्टु नी रपांश्चसि मृक्षतर्हं से-  
धतं द्वेषो भवतर्हं सचाभुवा ॥४७॥

हिरण्यस्तूपहृष्टा जगती अश्विदेवत्या । हे नासत्यो हे अश्विनो त्रि-  
गुण एकादशों (त्रयस्त्रिंशत्संख्याक) देवों सहित मधुपेय (सोमपान)  
प्रति आओ । किंच आयु बढाओ । पापों को नाश करो । दोर्भाग्य  
को नाश करो । संयुक्तों होओ । अष्टौ वसव इत्यादिना त्रयस्त्रिं-  
शद्देवा गणिताः ॥४७॥

एष व स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मानस्य का-  
रो ॥ एषा यासीष्ट तन्व वयां विद्यामेष वृजनं जी-  
रदानुम् ॥४८॥

अगस्त्यहृष्टा मारुती विष्टुप् । हे मरुतः कारोः (यजमान का) यह स्तो-  
म और यह गीः सत्या और प्रियावाणी) तुम्हारे अर्थ वर्ते हैं इति  
शेषः । कैसे यजमान कि मान्दार्य (मैं मेरा इस स्वस्वामि सम्बन्ध-





अनुष्ठातारः । प्रभा सहिताः । शब्दप्रमाणपरोक्षानतत्पराः ॥ धीराः ।  
(धीमन्तः ॥ ४५ ॥

आयुष्यं वर्चस्यं रण्यस्योषमोद्भिदम् । इदं हिर-  
ण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ॥ ५० ॥

तिस्रः उषिक् शक्करी त्रिष्टुभः दक्षदृष्टाः । हिरण्यस्तुतिः । यह हिर-  
ण्य जय के अर्थ मुरु विषे तिष्ठे । कैसा कि आयु के अर्थ हित तेज  
के अर्थ हित धन का वर्धक उद्भिद (धन वा स्वर्ग का प्रकाशक) व-  
र्चस्वत् (अन्नसंयुक्त) ॥ ५० ॥

अ० ६० न तद्रक्षांश्च न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथ-  
मजं ह्येतत् । यो विभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु  
कृणुते दीर्घमायुः समनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ५१ ॥

रक्षसलोम और पिशाचलोग तिस हिरण्य को नहीं हिंसा कर स-  
कते क्यों कि यह हिरण्य प्रथमोत्पन्न देवताओं का तेज ही है । अतः  
एव जो हिरण्य को दाक्षायण (अलंकारत्व) करिधारण करता है  
वोह देवलोक में बहुत काल तक वसता है और वोह मनुष्य लोक  
में अपनी आयु को दीर्घ करता है (मनुष्यायु को अतिक्रम्य  
जीवता है) ॥ ५१ ॥

यदा बध्ना दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुम-  
नुस्यमानाः । तन्मः आवध्नामि शतशोरदायायु-  
ष्मान्तरदेहिर्यथासम् ॥ ५२ ॥

दाक्षायणाः (दक्षवंशीत्यन्ना ब्राह्मणाः) जिस हिरण्य को शतानी-

क (बहुत सैन्यों वाले) राजा के अर्थ बाँधते हुए। कैसे दाक्षायणादि सुमनस्यमानाः (मन में शोभन ध्यान करते शोभन मन करते) वो हिरण्य अपने में बाँधता हूँ किस लिये कि शत शरदजीवने के अर्थ। जिस प्रकार हिरण्य बन्धनारंभ करि में दीर्घजीवी और जरदष्टि जरा को व्याप्त वा जरा प्राप्त शरीर होऊँ तेसे बाँधता हूँ ॥५२॥

उत नोर्हिर्बुध्यः शृणोत्वज एकपान्पृथिवी सं-  
मुद्रः। विश्वे देवा ऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः  
कविशस्ता अवन्तु ॥५३॥

ऋजिष्वदृष्टा त्रिष्टुप्। और अहिर्बुध्यः (रुद्रविशेषः) सुनें हमारे वचनों की इतिशेषः अज एकपात् (रुद्रवाप्राण) सुनें और पृथिवी सुनें और समुद्र सुनें और विश्वे देवा सुनें। और सुनि के ते अहिर्बुध्यादयः हम को पालन करें कैसे हैं ते किं ऋत (सत्य वा यज्ञ) के बढाने हारे। मन्त्रों करि स्तुताः। कविशस्ताः (मेधावियों) करि पूजिताः ॥५३॥

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्त्रुः सनाद्राजभ्यो जु-  
ह्वो जुहोमि। शृणोतु मित्रोऽअर्यमा भगो नस्तुविजा-  
तो वरुणो दक्षोऽअरिष्टोः ॥५॥

गार्तमदो कूर्मदृष्टा आदित्यदेवत्या त्रिष्टुप्। इसवाणी जुहू (स्वचा) करि आदित्यों के अर्थ होमता हूँ (स्तुतिलक्षणावाणी बुद्धिरूपा सुचा करि आदित्यों के अर्थ समर्पण करता हूँ। कैसी वाणी कि घृतस्त्रुः (घृत प्रसारिणी वा घृत होम सहचरिता। कैसे आदित्यों कि चिर-

काल दीप्यमानों के अर्थ। वोह सुचाह्यमाना हमारी वाणी सुनें।  
 कौन कि मित्र अर्पमा और भग। नुविजातः (त्वष्टा वा वान। व-  
 रुण दक्ष और अंश। एते सूर्यविशेषाः ॥५४॥

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदम-  
 प्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो-  
 अस्वप्नजो सत्रसदौ च देवौ ॥५५॥

अध्यात्मवादिनी जगती। सप्त ऋषयः (प्राणाः त्वक् चक्षुः श्रवण-  
 रसना घ्राण मनो बुद्धिलक्षणाः) शरीर में व्यवस्थित हैं ते ही सा-  
 तों सदाकाल सावधान जैसे जैसे शरीर को रक्षा करते हैं। तेसां  
 सोते हुए मनुष्य के लोक (आत्मा) को प्राप्त होते हैं। कैसे हैं सातों  
 कि आपः (व्याप्त होते हैं देह को) तहां तिन ऋषीओं की लोकगम-  
 नावस्था में देवौ (दीप्यमानों, प्राणपानों) जागरण करते हैं। कैसे  
 कि अस्वप्नजौ (नही निद्रा जाती है जिन्हें में) तथा सत्रसदौ (जी-  
 वितदातारौ ॥५५॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्रय-  
 न्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राश्नुर्मवा सचा ॥५६॥

तृचो ब्रह्मणस्पतिदेवतः द्वे बृहत्यौ अधोरोकएवदृष्टे तृतीयानि-  
 ष्टपू गृत्समदृष्टा। हे ब्रह्मणस्पते (ब्रह्मणः देवस्य पते) उत्तिष्ठ (ऊ-  
 चा आरब्ध कार्य हो) क्यों कि हम देवताओं को चाहने हारे तुम्हें  
 याचना करते हैं अतः आगमन करि। तेरे आने के समीप में  
 मरुतः आवें। कैसे मरुतः कि सुदानवः (शोभनदातारः) हे इन्द्र

तू भी सहगमन के अर्थ प्रकर्षेण शीघ्र हो ॥५६॥

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं ब्रह्मव्युक्थ्यम् । यस्मिन्नि-

न्दो वरुणो मित्रोऽग्निर्यमा देवा ओकांशसि चक्रिरे ॥५७॥

ब्रह्मणस्पति निश्चय उक्थ्य (शास्त्रयोग्य) मन्त्र को प्रकर्षेण उ-  
च्चारता है कि जिस मन्त्र में इन्द्र वरुण मित्र अग्निर्यमा और अ-  
न्यदेवाः निवासों को करते हुए । अर्थात् सर्वदेवाधारभूत श-  
स्त्रपठनीय मन्त्र की कहिता है ॥५७॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं

च जिन्व । विश्वं तद्भद्रं यदवेन्ति देवा बृहद्वदे-

म विदथे सुवीराः । य इमा विश्वा विश्वकर्मा

यो नः पिता नैषते नस्य नो देहि ॥५८॥

इति संहितायार्थ षष्ठोऽनुवाकः ६

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिन शार्वीयायां वाज-

सनेय संहितायां दीर्घपाठे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

हे ब्रह्मणस्पते यतः तू इस जगत का नियन्ता है अतः प्रार्थना  
है कि मेरी कही स्तुति को बोधन करि । और मेरे तनयों (अपत्यों)  
को प्रीति करि । देवाः जिस भद्र (कल्याण) को पालन करते हैं  
वोह सब भद्र हमारे को हो इति शेषः । किं च सुवीराः (कल्याण-  
पुत्राः) हो कर हम यज्ञ में बृहत् (महत्) बोलें (देवो भोगो इत्या-  
दि उच्चारण करें) ॥ अथ चतस्रः कण्डिकाः प्रतीकोक्ताः य इमा  
विश्वा भुवनानि जुह्वत् १०-१० विश्वकर्मा विमनाः १०-२६ यो

नः पिता १७.२७. अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि १७.८३. इति। ता ब्रह्म-  
यज्ञेऽध्येयाः॥५८॥

इति भाष्ये षष्ठोऽनुवाकः६

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरो देयात्स्वयं ब्रह्मसनातनः३४

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशारवाध्येतृव्याघ्रपादा-  
न्वयविश्वामित्रपुराधियश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरो-  
क्मिणेयनृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिस्थिर-  
भाष्ये रिवलप्रकरणे ब्रह्मयज्ञवर्णनो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्या-  
यः॥३४॥

॥समाप्तोऽयं ब्रह्मयागः॥

॥

॥

हरिः॥ओम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वद्भूत्यकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः३४

अध्यायस्य पितरो देवता आदित्या ऋषयो देवावा

अ० १०

अपेतो यन्तु पण्योऽसुम्ना देवपीयवः। अस्य लो-  
कः सुतावतः॥द्युभिरहोभिरक्षुभिर्व्यक्तं यमो दे-  
दात्ववसानमस्मै॥१॥ + अ-तः। अ०द्यु-स्मै। इ०॥१॥

ओंनमोयाज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

पञ्चत्रिंशोऽयमध्यायः पितृमेधार्थं द्रव्यते३५



त्रयस्त्रिंशं श्रेष्ठ्याये सर्वमेधसम्बन्धिनः कियतो मन्त्रानुक्ता प्रवायु-  
मच्छेत्यारभ्य ३३. ५५. अनारभ्याधीतान्मन्त्रानुक्ता चतुस्त्रिंशेऽ-  
ध्याये तानेव समाप्येदानीं पञ्चत्रिंशेऽध्याये पितृमेधसम्बन्धि-  
नो मन्त्रा उच्यन्ते स च पितृमेधो मृतस्य वर्षास्मरणे भवति वर्ष-  
स्मृतौ तु विषमवर्षेषु भवति एकतारकनक्षत्रे चित्रादेो दर्शे चाग्नी-  
ष्ये शरदि माघे भवति ॥ पितृमेध करनेहारे द्विज करि कुम्भ में  
अस्थिसंचय करिये हैं। और मृतक के जितने अमात्य पुत्र पौ-  
त्र हैं तितने कुम्भ कर्मदिन में लाइयें हैं और कुम्भों में अधि-  
क छत्र हैं। ततः अरण्य में कुम्भ विषे किये अस्थिसंचयन को ग्र-  
मसमीप में लाकर शय्या में कुम्भ को स्थापन करि वस्त्र के एक  
देश से वेषन करि लोहमय बाजों के बाजते और वीणा के बाजते  
में मृतक के पुत्र पौत्र उत्तरीयों और बीजनाओं से अस्थि कुम्भ को  
बीजते हुए तीनि-तीनि प्रदक्षिणाएँ फिरें। कोईक आचार्यस्त्रियों  
को भी फिरना कहिते हैं। रात्रि के पूर्व मध्यअपरभागों में तिसदि-  
न विषे बहुत अन्नदान करते और नाचते गाते बजाते और अस्थि-  
कुम्भ के अर्थ अन्न को उपहरते हैं। फिर उपप्रात अस्थिकुम्भस-  
हिताः पूर्वोक्त कुम्भों और छत्रों कैलेकर ग्राम से दक्षिण दिशा को बा-  
हिर चलते हैं अध्वर्यु यजमानामात्याः ॥ प्रमशानान्तकर्म करते जैसे  
रवि उदय हो तैसे रात्रि में आरम्भ करना तहां वन में चलि के ग्राम  
से मार्ग से और अश्वत्थ तिल्वक हरिद्र सूर्जक विभीतक श्लेष्मान्त-  
क को विदारादिकों से दूर में अन्यवृक्षगुल्मादिवृत वा ऊषर वाज-

दक्षवण दक्षिणवण वा सम में वा सुखकारि रम्य में वन वा उ-  
 दक में पूर्वभाग वा उत्तरभाग में वर्तमान शर्तवान् वीरणातृणवान्  
 प्रदेश में श्मशानार्थे दिक्कोण पुरुषप्रमाणक्षेत्र को मान करते हैं।  
 पितृकां द्वि पुरुषं समचतुरस्रं कृत्वा कंरणीमध्येषु शङ्कुवः स समा-  
 धिरिति यजुः परिशिष्ट ०७२ शुल्वांक्तविधि करि वोह चतुरस्र उ-  
 त्तर और पश्चिम से पृथु (विशाल) होता है। तत्र साधन प्रकारः पूर्व  
 दक्षिणपार्श्वों से नौ अङ्गुल अपने त्रयोदशांश करि अङ्गुलचतु-  
 र्थ भाग सहित पुरुषप्रमाणमध्य में न्यून करियें हैं पश्चिमोत्तरपा-  
 र्श्वों से तितने पुरुषप्रमाण से अधिक तथा हि पुरुषमात्रक्षेत्र की  
 अक्षणाया प्राची करिके तिस के प्रान्तों में शङ्कुएँ रवि सार्धाष्टादशा-  
 ङ्गुलहीना पुरुषद्वयप्रमाण उभयतः पाशा रज्जु को मध्यमदेश में  
 सलक्षणकरिके पूर्वा शङ्कुओं से तिस की पाशा छोडि मध्यलक्षण  
 करि दक्षिण से चलाय दक्षिण कोण साधियें है ततः सार्धाष्टादशा-  
 ङ्गुलाधिका पुरुषद्वयप्रमाण रज्जु उभयतः पाशा को मध्यलक्षणपु-  
 ता करिके शङ्कुओं के पाशा छोडि मध्यलक्षण करि उत्तरतः चलाय  
 उत्तरकोण साधियें है इति। ततः पूर्वादिकोणों में पालाश शमीवा-  
 रण अशमयचारि शङ्कुएँ रवियें हैं। इस कर्म करनेहारों के निक-  
 ट में कोई यजमानपुरुष तृणपूलक ऊंचा करिके धारण करे। क-  
 र्म समाप्ति में घर को आ कर तिसै घर में ऊंची करे प्रजावृद्धि के अ-  
 र्थ। इत्यादि बोध्यम् ॥ कात्यायनः २१.३.३२ अप्रादक्षिण्येन नि-  
 ष्यादिन कीर्त्तुं रज्जु से तिस क्षेत्र को समन्तात् अप्रदक्षिण

वेष्टित करि अपेतो यन्त्विति मन्त्रेण क्षेत्रमध्यपतित तृणपर्ण-  
दिकों को पलाशशारवा करि क्षेत्र से बाहिर निकालै इति सूत्रार्थः ॥  
अस्याध्यायस्य पितरो देवता आदित्या ऋषयो देवा वा । आद्या  
गायत्रीः पण्यः । (परायेद्रव्य को व्यवहार करने हारे-असुरलोक)  
निकलजावें । कैसे पण्यः किं असुम्नाः । (असुरवकराः) । तथा देव  
पीयवः । (देवताओं के द्वेष करने हारे) । किमिति असुराणां अपग-  
मोऽर्थ्यते तत्राह इस अस्थिभूत यजमान का यह लोक (स्थान)  
है । कैसे यजमान कि सोमाभिषव करने हारेका ॥ द्युभिरहोभिरि-  
ति यजुः ॥ यम इस यजमान के अर्थ अवसान (स्थान) दे । कैसे  
स्थान कि द्युओं (ऋतुओं) दिवसों और रात्रियों करि स्पष्टी कि-  
या (अर्थात् ऋत्वाद्यधिष्ठातृ देवताओं से प्रकटित स्थान इ-  
स के अर्थ यम देवै ॥ १ ॥

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु । त-  
स्मै युज्यन्ता मुस्त्रियाः ॥ २ ॥

का० २१-३-३४- फिरिअध्वर्यु तिस पलाशशारवा को दक्षिणमा-  
ही निकालि परिश्रितों से वेष्टन करि तिस क्षेत्र के दक्षिणतः  
वा उत्तरतः छै ६ बेलों करि हल को जोड़े तिस युज्यमान में युद्धे-  
ति सम्प्रेष्य सवितेति मन्त्र को जपे ॥ गायत्री । हे यजमान सूर्य तेरे  
शरीरों के अर्थ पृथिवी में स्थान को इच्छा करे । (सविता की आज्ञा वि-  
ना कोई भी ठेगने को समर्थ नहीं होता) । द्वितीयं वाक्यमाह तिस स-  
विता करि दिये क्षेत्र के संस्कारार्थ अनङ्गाहः युक्ता होंवें ॥ २ ॥

तदेन मुनिमिश्रा हारात्रयसंज्ञां करेतीति श्रुतेः ॥ ३५-३३ ॥

वायुः पुनानु सविता पुनात्वग्नेर्भोजसा सूर्यस्य  
वर्चसा । विमुच्यन्तामुस्त्रियाः ॥३॥†

का० २१०४०१२० अर्धयु सर्वतः दक्षित रज्जु को अनुलक्षी क-  
रिके वायुः पुनात्विति प्रतिमन्त्रं पादेन-पादेन सीताएँ (हला-  
ये-हरैया) अप्रदक्षिण कृषे (जोते) तहां पहिली सीता उत्तर  
पार्श्व में पश्चिम को कृषे दक्षिणतः सीरयोजनपक्षेऽपितिससी-  
र (हल) को अप्रदक्षिण उत्तर से लाकर पहिले उत्तर से ही क-  
षे ॥ चत्वारि यजूंषि १३० है-पं० २०४० है-वि० लिङ्गोक्तदेवतानि ।  
हे पृथिवि तुम्हें वायु पुनानु (विदारै) सूर्य तुम्हें विदारै । अग्नि दीप्ति करि  
और सूर्य तेज करि तुम्हें विदारै ॥ का० २१०४०४० एवं पूर्वोक्त चारों मन्त्रों से  
चारों पार्श्वों में कर्षण करिके मध्य में भी सर्व क्षेत्र जैसे कृष्ट हो  
तैसे परिमिताः सीताः करिके बेलों को हल से छोड़ें विमुच्यन्ता-  
मिति ॥ है-ज० वृषदेवत्यम् । उस्त्रा (धेनुतिस) के अपत्य उस्त्रियाः  
(अनुद्धाहः) सीरसे छूटें ॥३॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभा-  
ज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥४॥

का० २१०४०४० हल को दक्षिण दिशा में चुपकें से फेंकि जुते क्षे-  
त्र में सर्वोषधि बीवें ॥ अनुष्टुप् व्याख्याता १२०७६० ॥४॥

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्य आवपतु । तस्मै  
पृथिवि शं भव ॥५॥

का० २१०४०५० तिस पुरुषमात्र क्षेत्र के मध्य में मृतक के अस्थियों

† नदप्रसववि पर्याहृत्यो नरतः । प्रतीची प्रथमाध्वसीतां कृषति वायुः पुनात्विति  
सविता पुनात्विति जयनादिन दक्षिणामरनेर्भोजसेति दक्षिणार्धेन प्राची ध्व  
सूर्यस्य वर्चसेत्यग्रेणादीचीमिति १३००२०६० अने ॥

† वा-तु-अ-स-तु। इ-अ-सा। उ-सू-सा। क-वि-याः। ल-॥३॥

की राशि करें और यह कर्म सूर्योदय काल में कर्तव्य है + ॥ सवित-  
देवत्या गायत्री। हे यजमान सूर्य तेरे शरीरों (अस्थियों) को माता  
(पृथिवी) की उग्रस्थ (गोदी) में स्थापन करें। हे पृथिवी तिस सविता  
करि स्थापन किये यजमान के अर्थ सुखरूपा हो ॥ ५ ॥

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ।

अप नः शोशुचदधम् ॥ ६ ॥

उष्णिक् प्रजापतिदेवत्या अस्थिनिवापे एव विनियुक्ता। असा-  
विति नाम ग्रहणम् अनुदात्तत्वादात्मन्वितम्। हे देवदत्त उद-  
क समीवर्तिस्थान में प्रजापतिदेवता विषं तुम्हें स्थापन करता हूं। वो-  
ह प्रजापति हमारे पाप को अत्यर्थ दहें यद्वा हमारे सैनिकालि-  
हमारे शत्रु को दहें + ॥ ६ ॥

परं मृत्योऽनु परं हि पन्था यस्तं अन्य इतरो  
देवयानोत्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा-  
नः प्रजाथं रीरिषो मोत वीरान् ॥ ७ ॥

का० २१. ४. ७. दक्षिण को चलिकर चुपके से कुम्भ को डालि-  
कर लौटि। यह कोई विप्र भेजा है तिस के कुम्भ को डालिकर  
लौटते में यजमान वा अध्वर्यु जयें ॥ मृत्युदेवत्या त्रिष्टुप् संक-  
सुकदृष्टा। हे मृत्यो पराङ्मुख होके पर (अन्य) पन्था को अनु-  
गमन करि। तमेव दर्शयति जो कि तेरा पन्था देवयान मार्ग  
से इतर (तुच्छ) अन्य (पितृयानाख्य) है। किं च चक्षुष्मान् (ज्ञा-  
नी) और सुनने हारा तेरा कुछ एक कहिता हूं। आदरार्थ कव-

नम् नहि तस्यादृष्टमश्रुतं वास्तिषष्ठ्यर्थे चतुर्थ्यो) क्या कि  
हे मृत्यो हमारी प्रजा (संतति-वंशपरम्परा) को मत हिंसा क  
रि और हमारे वीरों (पुत्रों) को मत हिंसि ॥७॥

शं वातः शर्हं हि ते घृणिः शं ते भवन्तिष्टकाः  
शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभिष्टू-  
शुचन् ॥८॥

का० २१०४०८० शंवात इति हो मन्त्रों करि तिन मध्य में न्युप्त अ-  
स्थिओं को पथाङ्ग (जो अस्थि जिस अङ्ग का तिस अस्थि से  
तिस अङ्ग) को कल्पना करि आकाश पुरुषाकृति करिके ति-  
स के मध्य में पादमात्री दृष्टका को चुप के से रखें ॥ द्वे अचाचनु-  
ष्टुब्धहृत्यो विश्वदेवदेवते । हे यजमान वायु तेरा सुखरूप हो । हि  
(पुनः) घृणिः (सूर्यकिरणः) तेरा सु० दृष्टका मध्य में और प्रतिदि-  
शा तीनि-तीनि डाली हुई तेरी सु० हों । और अग्निएँ तेरे सु० हों ।  
और पृथिवी में हुए अग्निएँ तुम्हें सर्वतः न तपावें ॥८॥

कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमार्यः शिवतमास्तुभ्यं भ-  
वन्तु सिन्धवः । अन्तरिक्षं शिवं तुभ्यं कल्पन्तां  
ते दिशः सर्वाः ॥९॥

दिशाएँ तेरे अर्थकृता होंवें । जल तेरे अर्थ कल्याणकारिणीएँ  
होंवें । और सिंधुएँ (समुद्र वा नदिएँ) कल्या० । अन्तरिक्ष (आका-  
श) तेरे अर्थ कल्याणकारि हो । सब दिशाएँ तेरे अर्थ कृता हों । आ-  
दरार्थ कास्म्यर्थ वा पुनर्वचनम् ॥९॥



अश्वमन्वती रीयते सर्धंरभधमुत्तिष्ठत प्रतरता  
सखायः। अत्र जहीमोऽशिवा येऽसंख्वान्वय-  
मुत्तरेमाभि वाजान् ॥१०॥

का० २१४. २२. गर्त वा पूर्व वर्धित कृषी (जुती) हुई दिशा से मृदा  
लेकर तिस से विष का मुखमित क्षत्रिय का उरोमित वैश्य का ऊ-  
रुमित स्त्री का भगमित शूद्र का जानुमित वा सर्वों का जानुमित  
ऊँचा श्मशान को करि शौवल और कुशाओं से आच्छादि तिसके  
दक्षिणातः दो गर्त खोदि दूधजल से सम्पूरि श्मशान के उत्तर में सा-  
त गर्तों को खोदि दक्षिणोत्तरों को जल करि पूरि उत्तर गर्तों में  
अध्वर्यु यजमान अमान्य तीनि पाषाणों को डालि कर अश्वमन्व-  
तीरिति मन्त्र करि तिस गर्त के ऊपर चलते हैं ॥ विश्व देवदेवत्या  
त्रिष्टुप् सुचीकहृष्टा। हे मित्रओ यह पाषाणवती नदी चलती है इस हेतु  
तुम उतरने के अर्थ प्रयत होओ। उगे (अभिमुरवहोओ) प्रकर्षेण ति-  
स नदी को तरो। किमिति क्यों कि इस प्रदेश में जे अशिवाः (अशा-  
न्ताः दुष्टा राक्षसादयः) हैं तिन्हें हम परित्याग करते हैं तिन्हें केत्या-  
गने में सुरव करें वाजो (अन्न विशेषों) को हम प्राप्त करावेंगे ॥१०॥

अ० २. अपाघमप किल्बषमप कृत्यामपो रपः। अपामा-  
र्ग त्वमस्मदप दुःखस्यैव सुव ॥११॥

का० २१४. २३. ते अमात्या यज्ञोपवीतिनः होके जल का उपस्पर्-  
श करि हाथ में लिये अपामार्ग करि अपने शरीर को शोध के  
चित् अपामार्गवीजों से उद्धर्तन करें ॥ लिङ्गोक्तानुष्टुप् अनुःशेष-

दृष्टा दुःस्वप्ननाशनी । हे अपामार्ग तू हमारे सकाश से अध (मान-  
सपाप) को दूर चलाय । और किल्बिष (कीर्तिभेदक कायकपाप)  
को दूर चलाय । और कल्पा (परकृत अभिचार) को दूर । और रपः (वाचिक  
पाप) को दूर । और दुःस्वप्न से उसे असुरवरूप फल को हम से  
दूर चलाय ॥११॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्त  
स्मै सन्तु योः स्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१२॥

का० २१.४.२४. सुमित्रिया इति मन्त्रेण स्नान करिके नूतनवस्त्रों  
को धारण किये अनङ्गाहमिति मन्त्रेण वृषपुच्छ को स्पर्श क-  
रि उद्वयमिति मन्त्रेण यजमानामात्या ग्राम को आते हैं यद्य-  
पि यहां सुमित्रिया इस मन्त्र से स्नान कहा तथापि सुमित्रिया  
इति जल अञ्जलि करि लेके दुर्मित्रिया इति शत्रु को सींचे  
का० १४.५.५५. द्वयं विधेयम् । दुर्मित्रिया -- द्विष्म इति यामस्य  
द्वेष्ट्यः स्यातां दिशं परासिञ्चते नैव तं पराभावयतीति १३.८.  
४.५. श्रुतेः ॥ व्याख्याता ई. २२॥ १२॥

अनङ्गाहमन्वारभामहे सौरमेयथं स्वस्तये । स न  
इन्द्र-इव देवेभ्यो वह्निः संतारणो भव ॥१३॥

अनुष्टुप् अनुदुहेवत्या उत्तरोर्ध्वर्चः प्रत्यक्षकृतः ततः सर्वना-  
म्नोऽध्याहारेण सामर्थ्यम् । हम स्वस्ति (अविनाश) के अर्थ अ-  
नङ्गाह को स्पर्श करते हैं कैसे कि सुरभी के अपत्य को । हे अनङ्ग-  
नू सो तू हमारा दुःस्वप्ननाशक हो । किं च तू वह्नि (देवताओं का

बोदा । तत्र दृष्टान्तः जैसै इन्द्र देवताओं के अर्थ तारक हैं ॥ १३ ॥

उद्वयं तमसस्परिस्वः पश्यन्त उतेरम् । देवं देवत्रा  
सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १४ ॥

उद्वयं तमिति ग्राम को आते हैं । व्याख्याता २००२१ ॥ १४ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरोः  
अर्थमेतम् । शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीरन्तर्मु-  
त्यु दधतां पर्वतेन ॥ १५ ॥

का० २१०४२५. स्वनिवासग्राम और प्रमशान के मध्य में बड़ा भा-  
री मृदा का टेला अध्वर्यु ही रखे ॥ मृत्युदेवत्या मनुष्यदेवत्या  
त्रिष्टुप् संकसुकदृष्टा । जीवों (विद्यमान जन्तुओं) के अर्थ परिधि  
(मर्यादा) को स्थापन करता हूँ कथमिति चेत् कि इन जीवों के मध्य  
में अपर (कोई) क्षिप्र (वेदोक्त आयु से बरें) इस अर्थ (पितृलोक  
गमनकार्य को उद्देश करि) न जावें । ये जीवाः शतवर्षायुषः हों  
कैसे शतवर्षायुषः कि पुरुचीः (दानाध्यनयागानुकूलाः) किंच  
पर्वत (लोष्ट-ढेले) करि ही मृत्यु को अन्तर्हित करें ये जीवाः ॥ १५ ॥

अग्नः आयुश्च विपवसः आसुवोर्जमिषै च नः । आ-  
रे बाधस्व दुह्नुनाम् ॥ १६ ॥

का० २१०४२६. कज्जलादि करि नेत्रों को आँजि तेल से पेरों को चु-  
परि औपासन करने आवश्यक आग्नि को दर्भों से परिस्तरण क-  
रि वारणवृक्ष के अवयवों से चारि ४ परिधिओं को चारों दिशा  
में चुप के से शरि वारणस्तुवा कारि एका आहुति दो १ ऋचा

† आयुष्मान् आधुष्मान् इति

ओं + सै होमं। ओपासनः प्रेतस्यैव तस्यैवाद्वारेण निरसनीयत्वा-  
दिति हविस्वामिनः कर्तुरेवोपासने होमस्तस्यैकदेशानिरसनमि-  
ति कर्कोदयः॥ व्याख्याता १६०३८०॥ १६॥

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतं  
पीनिरेधि। घृतं पीत्वा मधु चारुं गव्यं पितेव पु-  
त्रमभिरक्षतादिमान्त्वाहो॥ १७॥

अग्निदेवत्या त्रिष्टुब् वैरवानसदृष्टा। हे अग्ने तू ऐसा हो केसा  
कि आयुष्मान् (चिरंजीवी)। तथा हवियों करि वृद्ध। तथा घृत  
मुरव जिस का। घृत उत्पत्तिस्थान जिस का (उत्तरवेद्याधारण-  
भिप्रायमेतत्। सो तू गो सम्बन्धि घृत को पीकर इन जीवों को  
समन्तात् रक्षाकरि। तत्र दृष्टान्तः जैसे पिता पुत्र को रक्षा क-  
रता है। केसा घृत कि मधुर चारु (सुगन्धि) स्वाहा (सुहृत्तम-  
स्तु॥ १७॥

परीमे गामनेषत् पर्यग्निमहृषत्। देवेष्वक्रतु  
श्रवः क इमां २॥५॥ आदधर्षति॥ १८॥

का० २१४०२७० अध्वर्यु यजमानामात्यो का परिदा (रक्षण)  
संज्ञक मन्त्र परीमे गामिति कहै॥ इन्द्रदेवत्यानुष्टुप् भरद्वा-  
जात्मजशिरिम्बिठदृष्टा। ये जीवलोग गो (अनङ्गाह) को प-  
रिणीतवन्तः (अनुदुत्पुच्छालभनाभिप्रायम्। और ये जीवलो-  
ग अग्नि को परिहृतवन्तः (यस्मिन्नग्नावेतत्कर्म कृतं तं परि-  
जहुः। अद्वारेणोपासनं निरस्यतीत्येतदभिप्रायम्। ये देवाः

(कर्म में प्रकाश करते ऋत्विजः) तिन्हों में अबः (दक्षिणास्त-  
क्षण-धन) करते हुए। अतः इन कर्मों से कृतकृत्य हुए इन जी-  
वों को कौन निरस्कार करने को समर्थ होगा (अशक्यप्रतिक्रि-  
या ये हुए इति भावः ॥ १८ ॥

क्रव्यादमग्निं वह्निणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु  
रिप्रवाहः। इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं  
बहन्तु प्रजान् ॥ १९ ॥

का० २१.४.२८. आहुतिहोम के अनन्तर जहां हुता तिस ओ-  
पासन के एकदेश को निरसे प्रेत का ही उपासन इस पक्ष में  
सब को निरसे क्रव्यादमित्यर्थेन ॥ अग्निदेवत्या त्रिष्टुप्। जि-  
स करि पुरुष जलता है तिस क्रव्यादअग्नि को अपुनरागम-  
न के अर्थ दूर पहुंचाता हूं वोह गया हुआ क्रव्यादाग्नि य-  
म के राज्य प्रति जावे कैसा कि रिप्रवाहः (पाप का नाश कर-  
ने हारा ॥ का० २१.४.२९. इहैवायमिति यजमान जपे ॥ यह  
क्रव्यादाग्नि से इतर (अन्य) जातवेदाः (जातः प्रज्ञानोऽग्निः)  
इस घर में देवताओं के अर्थ हवि को प्राप्त करें क्या करिके  
कि अपने अधिकार को जानिकर ॥ ॥ इति पितृमेधः समाप्तः ॥  
उपधानासन्दी वृषभ अजीर्णयवों को तिस के दक्षिणात्व क-  
रि देवे जो इच्छा होतो सुवर्णादि भी देवे ॥ १९ ॥

बह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्य निहिता-  
न्यराके। मेदसः कुल्या उप तान्स्त्रवन्तु सत्या ए-

षामाशिषः संनमन्ताथं स्वाहा ॥२०॥

जातवेदो देवत्या त्रिष्टुप् । अस्या विनियोगः श्रौतसूत्रे नास्ति गृह्यसूत्रे गति तथा हि पारस्कर० ३-३ मध्यमाष्टका गोपशु करि करिये है तिस धेनु की वपा को होमे वह वपामिति मन्त्रेण ॥ हे जातवेदः (जात है धन जिस से) पितरों के अर्थ तू वपा (धेनुसम्बन्धिनी चर्मविशेष) को प्राप्त करि पराक्रान्त (दूरभी) जिस देश में स्थापितों इन पितरों को तू जानता है तहां प्राप्त करि इत्यर्थः ॥ तिस वपा से निकले मेद (धातुविशेष) की कुत्याः (नदियें) तिन पितरों प्रति उपस्त्रवे (प्रसरें) किं च इन देनेहारों के आशिषः (मनोरथाः) सत्याः (अवितथाः) प्रह्वीहो ॥ स्वाहा (सुहुतमस्तु) स्वाहेति ऋग्भिन्नं यजुः ॥२०॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छानुः शर्म सप्रथाः ॥ अप नः शोशुचदधम् ॥२१॥

पृथिविदेवत्या गायत्री मेधातिथिदृष्टा । अस्या अपि श्रौते विनियोगो नास्ति स्यार्ते प्रस्तरारोहणे शयने विनियोगः । तथा हि पारस्कर० ३-२ स्योना पृथिविनो भवेति दक्षिण करवट करि पूर्व में शिर करिके शयन करे ॥ हे पृथिवि तू हमारी सुखरूपा हो । कैसी है तू कि अन्वक्षरा (नहीं हैं) चोर काँटे दुखदायि जिस में । तथा निवेशनी (साधु प्रतिष्ठाना) तथा सप्रथाः (सर्वतः विस्तारसहिता) किं च हमारे अर्थ शर्म (शरण) दे ॥ अतः परं यजुः तद्विनियोगो गृह्यसूत्रे सम्बन्धि मरणनिमित्ते स्नाने जलापनोदने तथा हि पारस्कर० ३-१० सव्यस्यानामिकया अपनोद्याप नः शोशुचद-



धमिति। यह जल हमारे पाप को अत्यन्त दहै ॥२१॥

अस्मान्त्वमधि जानोऽसि त्वदयं जायतां पुनः।

असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥२२॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिन शार्वतीयायां वाजसने-

य संहितायां दीर्घ पाठे पञ्चविंशोऽध्यायः ३५

का० २५.७.३० साग्निक की पात्र प्रतिपत्ति के अन्त में दाह से पू-

र्व पुत्र वा भ्राता वा अन्य ब्राह्मण आज्याहुति को होमें ॥ अग्नि दे-

वत्या गायत्री अनिरुक्ता। हे अग्ने तू इस यजमान से आधान का-

ल में अधि उत्पन्न है। इस हेतु यह यजमान तू से उत्पन्न हो। असा-

विति विशेष नाम वचनः तथा हि देवदत्त स्वर्गलोक की प्राप्त्यर्थ

तू से उत्पन्न हो। तेरा वंश ही हो इति भावः। स्वाहा सुहुत मस्तु ॥२२॥

इति श्री गिरिधर भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्री वेदार्थप्रदीपेन तमोहार्द निवारयन् पुमार्थाश्चतुरो देयाद्गयाधीशो गदाधरः ३५

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शारवाथ्येतृव्याघ्रपादान्वय वि-

श्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जपकिशोर देववर्मात्मज रौक्मिण्यनृपति-

गिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये पितृमेधवर्ण-

नो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥३५॥ ॥ आदितोऽनुवाकस्तरव्या ॥३५॥

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसाद रचिते चतुर्थ अध्यायस्य चतुर्थोऽर्वाङ् ४४

अश्विनस्यासिते पक्षेऽभावायां बुधवासरे ॥ गृह्णेत्वाङ्क भूवर्षे रिवल्यमन्त्रा-

समागमन् ॥ अतः परं पञ्चभिरध्यायैः शुक्रमन्त्रा भविष्यन्ति ॥

## अथ संक्षेपतः खिल्यमन्त्राणां सूचीपत्रम्

पृष्ठा	पङ्क्तिः	विषयः	पृष्ठा	पङ्क्तिः	विषयः
६०३	६	अनुक्तमन्त्राध्यायः			अथ सर्वमेधः
६१४	१६	आग्निकोऽध्यायः	१००१	६	आग्नीर्योमः
		सौत्रामणिकोऽध्यायः	१००८	१०	अग्निष्टुत्
६३१	१	ऐन्द्रपशोः प्रयाजानां प्रेषाः	१०१५	८	इन्द्रस्तुत्
६३६	१	ऐन्द्रपशोः नुयाजप्रेषाः	१०२०	१४	सूर्यस्तुत्
६४०	२१	वायोधसे पशोः प्रयाजप्रेषाः	१०२६	१३	वैश्वदेवस्तुत्
६४५	२	वायोधसे पशवनु यज्ञप्रेषाः			ब्रह्मयज्ञः
		आश्वमेधिकोऽध्यायः	१०३०	१६	प्रवायुमहेत्यनुवाकः
६४८	१४	आग्नीसंज्ञा अश्वस्तुतयः	१०३६	१६	प्रवीरयेत्यनुवाकः
६५३	५	आग्नीस्तुतिरूपाः	१०४४	२०	आ न इत्यनुवाकः
६५८	४	आग्नीसंज्ञाः	१०५२	५	यज्ञायतः
६६२	२०	अग्निस्तुतिः सङ्ग्रामाङ्कः	१०५६	१४	पञ्चनद्यः
		स्तुतिश्च	१०६०	१७	सोमो धेनुम्
६७१	१३	द्वावेकादशिन्यो	१०६४	१४	आ कृष्णेन
		द्वावध्यायौ पुरुषमेधः	१०६८	८	पूषन्तव
६७५	६	होममन्त्राः	१०७२	४	न तत्
६७६	१०	पुरुषमेधकाः पशवः	१०७६	१६	पितृमेधमन्त्राः
६८६	६	पुरुषसूक्तानुवाकः			इति सूचीपत्रम्
६८७	६	उत्तरनारायणी मन्त्राः			

विश्वामित्रपुरीषनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाशमयन्त्रालये मुद्रितम्  
 विक्रमाब्दाः १४२४ शकाब्दाः १०४४ चैत्रकृष्ण-भृगुवार उमू शान्तिः ३

हरि ओम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वदु रूपकम्  
स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुतम् ॥ ३६ ॥

ऋचं वाचं पञ्चाध्यायी दध्यङ्गायवर्णे ददर्श

आद्योऽध्यायः श्रान्त्यर्थो वैश्वदेवः

अ० १० ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये सामं प्राणं प्रपद्ये

चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये । वागोजः सहोजो मां रये प्राणपानो ॥ १॥

दध्यङ्गायवर्णेन त्वा नासत्यो च पुरं दरम्

वेदे पञ्चभिरध्यायेः शुक्रभाष्यं तमो महम्

पञ्चाध्यायी अथर्वण के पुत्र दधीच ने देखी (दध्यङ्ग हवा : आथर्व-

ण एतर्हं शुक्रमेतं यज्ञविदां चकारेति १४.१.१.२०. श्रुतेः) उग्रश्वे-

त्याग्नि को मन्त्रः ३६.७. अग्निर्हृदयेनेत्यादि अध्याय समाप्ति

पर्यन्त आश्वमेधिक हैं ३६.८-१३. तिन दोनों को छोड़ि कै ॥ का०

२६.७. ५०. प्रवर्ग्यचरण की आदि और अन्तमें ऋचं वाचमिति

अध्याय करि श्रान्ति करण करना स्वाध्याय मन्त्र पाठ प्रवर्ग्य म-

न्त्रों की आदि में दूस् अध्याय के दर्शन से । अत एवोक्तम्

का० अनुक्रम ०४.५॥

ओंनमोयाज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीविदार्थप्रदीपके

अध्यायः शान्तिपाठार्थः षड्विंशोऽयं समीर्यते ३६.

अध्यायो विश्वदेवदेवत्यः। पञ्च यजूंषि लिङ्गेऽक्तदेवत्यानि। ऋग्यु-  
पावाचा को में प्रपद्ये। प्रवेशकरता। प्रारण जाता हूं। यजुस् रूप म-  
न को प्र०। प्राणरूप साम को प्र०। चक्षु इन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय को  
प्र०। वागादिकों का ग्रहण सप्तदशावयवोपलक्षण है अर्थात् सप्त-  
दशावयव प्रजापति के लिङ्ग को प्र० भाव यह है कि त्रयीविद्या श्रो-  
त्र लिङ्ग शरीर को प्रवेश हुए प्रवर्ग्य नहीं नाश करें। तथा वागि-  
न्द्रिय श्रोत्र (मानसबल धारण) और पुनः श्रोत्रो ग्रहण से शरी-  
र बल है और प्राणपानो (उच्छ्वासनिश्वासवायु) ऐसे एकी भूताः  
सन्तः मूर्खविषे वर्ते हैं। अतोऽपि प्रवर्ग्य हम लोगों को न मारें  
इति भावः ॥१॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातित्वं बृ-

हस्पतिर्मे तदधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्यतिः ॥२॥

बृहस्पतिदेवत्या यद्विः। प्रवर्ग्याचरण करि इति शेषः। मेरी चक्षु-  
रिन्द्रिय का जो छिद्र (अवरवण्डन) हुआ। हृदय वा बुद्धि का जो  
छिद्र हुआ। मन का वा जो अतिनृण (अतिहिंसन) प्रवर्ग्याच-  
रण करि जो चक्षु बुद्धि मन का व्याकुलत्व हुआ बृहस्पति (दे-  
वगुरु) मेरे तिस छिद्र और अतिनृण को दधातु (सं दधातु-छिद्र  
को निवर्त करें) भूतजात का जो अधिपति प्रवर्ग्यरूपो यज्ञः सो

हमारे को सुख रूप हो। अर्थात् बृहस्पति करि छिद्रापाकरण से प्रवर्ग्य कल्याण रूप हो॥२॥

भूर्भुवः स्वः॥ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि  
धियो यो नः प्रचोदयात्॥३॥ + भू-स्वः॥ अ० त० ता० ३॥३॥

कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सर्वा। कया  
शचिष्ठया वृता॥४॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मर्ठहिष्ठो मत्सदन्धसः। वृढा  
चिदारुजे वसु॥५॥

अभीषुणः सर्वाणामविता जेरितृणाम्। शान्तं  
भवास्पृतिभिः॥६॥

भूर्भुवः स्वः त्रीण्यजूर्ध्विः तत्सवितुः कया नः कस्त्वा अभीषु-  
णः एताश्च तस्र ऋचो व्याख्याताः ३ ३५ २७ ३६-४१ अभी-  
षुण इति इस ऋचा में शान्तं भवास्पृतिभिः यह बहुवचन है  
पहिले ऊतये यह पाठ था। ऊतिभिः (अवनों के हेतुओं से) श-  
न (असरव्य) रूप है॥३॥४॥५॥६॥

कया त्वं न ऊत्याभि प्रमन्दसे वृषन्। कया स्तो-  
तृभ्य आभर॥७॥

इन्द्रदेवत्या गायत्री अनिरुक्तेन्द्रपदहीना। हे वृषन् (सेतः इन्द्र)  
किस ऊति (तर्पण हविर्दान) करि हम लोगों को सर्वतः तृप्तः +  
करता है। और किस ऊति करि स्तुति करनेवाले यजमानों के अ-  
र्थ आहरण करता है धन देने को इति शेषः तिन दोनों करि तैसै

गते स्तुति मोदे मोदे स्तुति मोदे

हम करते हैं इति भावः ॥७॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नोऽस्तु द्विपदे शं च  
चतुष्पदे ॥८॥

द्विपदा विराट् । जगत का इन्द्र (परमेश्वर महावीर वा आदित्य) राजति (प्रकाशो वा ईश्वर है) । सो हमारे द्विपदों (युत्रादिकों) का सुख रूप हो और चतुष्पदों (गवादिकों) का सुखरूप हो ॥८॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वयमा । शं नु

इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥९॥

दे अनुष्टुभो । महावीर के प्रसाद से मित्र (भक्तों में स्नेह रखता है) देव हमारा सुखरूप हो । वरुण (अङ्गी करता है भक्तों को) सुख ० अर्यसा (चलता है भक्त प्रति) हमारा ० इन्द्र (देवेश) हमारा ० बृहस्पति (देवगुरु-वेदों का पालक) सुख ० विस्तीर्ण है पादन्यास जिस का वोह विष्णु (व्याप्त) हमारा ॥९॥

शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः । शं नः

कनिः क्रदद्देवः पर्जन्योऽभिर्वर्षतु ॥१०॥

वायु हमारा सुखकारी (अपरुष और अव्याधिजनक) वहै । सूर्य (प्रेरण करता है जनों को अपने-अपने व्यापार में) सुखरूप (अदहन और भेषजरूप) हमारे को किरियों प्रसारे । पर्जन्य (पूरता है जल को वा पहिले उत्पन्न होता है जल इस करि-पर्जन्यो देवः) हमारा सुखकर (काशानिक्षाररहित जैसे तेसैं) सर्वतः सींचे । कैसा कि कनिः क्रदत् (अत्यन्त शब्द करता ॥१०॥



अहानि शं भवन्तु नः शर्धं रात्रीः प्रतिधीयताम्  
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरु-  
णा रातहव्या। शं न इन्द्रापूषणा वाजसातो श  
मिन्द्रासोमा सुविताय शं योः॥११॥†

द्विषदागायत्री। दिन हमारे सुरवरूप हों रात्रीः सुरवरूपाः हमारे वि-  
षे प्रति स्थापन करें महावीर इति शेषः॥शं न इन्द्राग्नी त्रिष्टुप्।  
इन्द्राग्नी पालनों करिके हमारे सुरवरूप हों। हविस्तृप्तौ इन्द्रा-  
वरुणौ हमा०। अन्न के दान निमित्तभूत में इन्द्रपूष संज्ञो देवो  
हमा०। इन्द्रसोमो देवो सुरव०। किमर्थम् कि सुविताय। साधुग-  
मन वा साधु प्रसव के अर्थ। तथा शं। रोगों के शमन के अर्थ। योः  
भयों के प्रथक्करण के अर्थ। अर्थात् रोग और भय को निवर्त  
कर सुरवरूपों हों॥११॥

शं नो देवीरभिष्टयः आपो भवन्तु पीतये। शं यो-  
रभिस्रवन्तु नः॥१२॥

गायत्री। दीप्यमाना जल हमारे अभिषेक वा अभीष्ट और पा-  
न के अर्थ सुरवरूपा हों। हमारे स्नान और पान में जल सुरवीर-  
ज्यो हों। जल रोगों का शमन और भयों का प्रथक्करण अ-  
भिस्रवे अर्थात् भयरोगनाश करें॥१२॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षग निवेशनी। यक्षा  
नः शर्म सप्रथाः॥१३॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे-

रणाय चक्षसे ॥१४॥

यो वै शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ॥ उश  
तीरिव मातरः ॥१५॥

तस्मात्परं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयेथा च नः ॥१६॥

स्योना पृथिवि । व्याख्याता ३५०२१० ॥ आपो हिष्ठा । नृचो व्या  
ख्यातः ११०५०-५२० ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

अ० २० द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्ति-  
रापः शान्तिरेषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शा-  
न्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः  
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ २० ॥

यजूंषि संहशि जीव्या समित्यन्तानि क० १६० । द्युलोकरूपा जो  
शान्ति ओर अन्तरिक्षरूपा जो शान्ति भूलोकरूपा जो शान्ति  
जलरूपा जो शान्ति ओषधिरूपा जो शान्ति वृक्षरूपा जो शा-  
न्ति सर्वदेवरूपा जो शान्ति ब्रह्म (त्रयीलक्षण वा परं तिस) रूपा  
जो शान्ति सर्वजगद्रूपा जो शान्ति स्वरूप सै ही जो शान्ति वोह  
शान्ति मुरु प्रति हो । अर्थात् महावीर प्रसाद सै सब शान्तिरूप  
मुरु प्रति हो । यद्वा दिवि अन्तरिक्ष पृथिवि इत्यादिकों में जो शा-  
न्ति वोह मुरु प्रति हों + ॥ १७ ॥

दृते हर्षं मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूता-  
नि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि

भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥१८॥  
हृते (हृ विदोरे विदीर्णे जराजर्जरितेऽपि शरीरे) हे महावीर मुझे तू  
हृटी करि यद्वा हृते (विदीर्णे कर्म विषे) मुझे हृटी (अच्छिद्रकर्म) क  
रि यद्वा समुषिरत्व और सेतुत्व से हृति शब्द करि महावीर हे हे ह  
ते (महावीर) मुझे हृटी करि । कथं दाह्यं तदाह सब प्राणी मुझे मि  
त्र की आंख से देखें न बैरी की दृष्टि से अर्थात् सबों का प्यारा  
होंकं । किंच में भी सब भूतों को मित्र की आंख से देखू (सबमें  
प्यारे हों) । मित्रचक्षुः शान्त होती है मित्र किसी को नहीं मारता  
और मित्र को कोई नहीं मारता एवं परस्पर अद्रोह करि सबों को  
न मारते मित्र की आंख से हम देखते हैं ॥१८॥

हृते हृष्टं मा । ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि  
जीव्यासम् ॥१९॥

हे हृते (वीर) मुझे हृटी करि । हे महावीर तेरे संदर्शन विषे में ज्यो  
क् (चिर) जीकं । पुनरुक्तिरादरार्थः ॥१९॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽप्रस्त्वर्चिषे । अ  
न्यास्तेऽअस्मत्तेयन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यं  
शिवो भव ॥२०॥

व्याख्याता १७.११.॥२०॥

नमस्तेऽअस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयितृवे । नमस्ते  
भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥२१॥

हे अनुष्टुभो । हे भगवन् (महावीर) तू विद्युद्रूप के अर्थ नम

स्कार हो तेरे तिस गर्जितरूप के अर्थ नमः। जिस कारण से स्वर्ग  
जाने के लिये तू चेष्टा करता है इस हेतु तेरे अर्थ नमस्कार हो ॥२१॥

यतो-यतः समीहसे ततो नोऽभयं कुरु। शानः  
कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥२२॥

हे महावीर जिस कारण-जिस कारण दुश्चरित से तू हमारे विषे अ-  
प करने के लिये चेष्टा करता है तिस कारण-तिस कारण से हमें  
अभय करि। किं च हमारी प्रजा के अर्थ सुख करि और हमारे प-  
शुओं के अर्थ अभय करि ॥२२॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै  
सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३॥

यजुः। च्याख्यातम् ६-२२. ॥२३॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शर-  
दः शान्तं जीवेम शरदः शान्तं शृणुयाम शरदः  
शान्तं ब्रूवाम शरदः शान्तमदीनाः स्याम शरदः  
शान्तं भूयश्च शरदः शान्तात् ॥२४॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिन शार्वीयायां वाजसने-  
यसंहितायां दीर्घपाठे षट् त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सूर्यदेव्या (अक्षरातीत) पुर उषिक् छन्दस्का। इन मन्त्रों करि  
जो महावीर हम लोगों ने स्तुति किया वोह चक्षुः (जगत के नेत्रमू-  
त आदित्यरूप को) पूर्व की दिशा में उदय करता है। कैसा वोह कि

देवहित (देवताओं) करि स्थापित वा देवताओं का प्यारा) शुक्र (पा-  
पासंस्पृष्ट वा शोचिष्मत्) तिस के प्रसाद से शत १०० शरद + (वर्ष) + शत वर्ष में शत  
हम देखें (शतवर्षपर्यन्त हम अव्याहत चक्षुरिन्द्रिया होंगे)। शत श-  
रद अपराधीनजीवना होंगे। शत शरद स्पष्ट श्रोत्रेन्द्रिया होंगे।  
शत शरद असबलितवागिन्द्रिया होंगे। शत शरद किसी के भी  
अगाडी दें न करें। और शत शरद के ऊपर भी बहुत काल त-  
क पश्येमेत्यादि योज्यम् ॥ २४ ॥

+ शत वर्ष में शत  
शरद होती है

इति भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थ प्रदीपेन तमो हार्दनिवारयन्  
पुमार्थाश्चतुरोदेयाद्विश्वदेवाधिपः स्वयम् ३६

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीय शारवाध्येत व्याघ्रपादा-  
न्वय विश्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेव वर्मात्मज रौ-  
क्मिणोय नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थ प्रदीपेगिरिधरभाष्ये  
शुक्रियायां शान्तिपाठ वर्णनो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

हरिः शोम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वहुस्त्यकम्

स्वानन्द दायकं कृपां ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३७

अ० १० देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणो ह-  
स्ताभ्याम् । आदेदे नारिरसि ॥ १ ॥ +

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृह-  
तो विपश्चितः ॥ वि होत्रा हधे त्रयुना विदेक इन्मही  
देवस्य सवितुः परिष्कृतिः स्वाहा ॥२॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ॥

अभ्यादिरोहिणान्तोऽयं सप्तविंशो निरूप्यते ३७

का० २६० १०३ उदुम्बरतस्त्या वा विकङ्कततस्त्या हस्त प्रमाण  
अग्नि को देवस्य त्वा नारिरसीति मन्त्र से ले वाम हस्त में तिसे  
करिके दक्षिण हस्त से स्पर्श करि युञ्जते मन इति मन्त्र को ज-  
पे ॥ देवस्य त्वा प्रा-बृ० सावित्रम् । आददे० अग्निदेवत्यं दे-ज०  
हे अग्ने सविता देवता की आज्ञा में स्थित अश्विनीकुमारों को  
बाहुओं पूषा के हाथों से तुम्हें ग्रहण करता हूं और तू नारि (स्त्री-  
नाम्नी) है ॥ युञ्जते मनः । व्याख्याता ५०१४० ॥१॥ २॥

देवी द्यावापृथिवी मरुवस्य वामद्य शिरो राध्यासं  
देवयजने पृथिव्याः । मरवाय त्वा मरुवस्य त्वा  
शीर्षो ॥३॥† दे-व्याः । अ० म-र्षो । ई० ॥३॥

का० २६० १०४ अध्वर्युः देवीति मन्त्र करि विधाय मृत्पिण्ड को  
लेवे पिण्डवदिति पाणिओं से ग्रहण करे दक्षिणः सग्निरिति  
लभ्यते इति सूत्रार्थः ॥ देवीति यजुः । मरवायेति या-प० । देवी-  
शीर्षो त्रा-गा० द्यावापृथिवी देवतम् । हे देवी (दीप्यमाने) द्यावा  
पृथिव्यो इस दिन में पृथिवी के देवयजनस्थान में मरु (यज्ञ) का



शिरः सध्यासम् + (साधन) सिद्ध करता हूं। महावीरो यज्ञशिरः।  
क्या करिके कि तुम द्यावा पृथिवीओं (दिवों) श जल पृथिव्यंशमृ-  
द) को लेके इत्यर्थः। एवं द्यावा पृथिव्यौ प्रार्थ्य मृदमाह हे मृत् मरव  
(यज्ञ) के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूं। एवं सामान्येनोक्ता विशेषमा-  
ह मरव (यज्ञ) के शिर (महावीर) के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूं इति  
शेषः। तिस मृत्पिण्ड को उत्तरस्थापित कृष्णजिन पर स्थापन करे ॥३॥

+ राध. साध  
के संसिद्धे।

देव्यो वम्यो भूतस्य प्रथमजा मरवस्य वोऽद्य शिरों  
राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मरवाय त्वा मरवस्य  
त्वा शीर्षो ॥४॥ + दे-व्याः। अ० म-यो। इ० ॥४॥

का० २६.१.५.६. देव्यो-शीर्षो। उपदी कृतो मृत्संचयः (वल्मी-  
कः) तिस की वषा तिस के मध्यस्थ लोष्ट को लेके कृष्णजिन पर  
मृत्पिण्ड से उत्तर में चुपके से स्थापन करे ॥ देव्यो० यजुः। मरवा-  
य० या-पं०। देव्यो-शीर्षो अर्षीपंक्तिः। हे देव्यो (दीप्यमानाः)  
वम्यः (उपजिह्विकाः) तुम्हें लेके पृथिवी के देव० करता हूं। कै-  
सी हो तुम कि भूत (प्राणिजात) की प्रथमजाः (प्रथमोत्पन्नाः) पृ-  
थिवी जन्तुओं की प्रथमजा तिस सम्बन्ध से वम्यः भी प्रथम-  
जा कहियें ॥४॥

इयत्यग्र आसीन्मरवस्य तेऽद्य शिरों राध्यासं दे-  
वयजने पृथिव्याः। मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो ॥५॥+

का० २६.१.७. इयत्यग्र इति वराहोत्वातमृदा को ले चुपके से कृ-  
ष्णजिन पर वल्मीकवषा के उत्तर में स्थापन करे ॥ इयतीति

आर्ची अ०। मरवायेति या-पं०। इय-शीर्षो ब्रा-गा० वराहविह-  
तमृदेवत्यं। हे पृथिवि भवती आदि (वराहोदरणसमय) में इयती  
(प्रादेशमात्री†) थी तुम्हें पृथिवि के देवयजनस्थान में- कर-  
ता हूँ ॥ मरवायेति व्याख्यातम् ॥ ५॥

इन्द्रस्योजं स्थ मरवस्य वो०द्य शिरो राध्यासं देवयजने  
पृथिव्याः। मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो मरवाय त्वा  
मरवस्य त्वा शीर्षो मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो ॥ ६ ॥

का० २६.१०० पूतीकों (रोहिण्यतणों) को इन्द्रस्येत्यादि शीर्षो इ-  
त्यन्त ले चुपके से कृष्णाजिन पर वराहविहत के उत्तर में स्थापन  
करे ॥ इन्द्रस्य-शीर्षो आदारदेवत्यम् ऋक्त्रिष्टुप्। हे पूतीकाओ तु-  
म इन्द्र का ओज (तेजरूप) हो तुम्हें लेकर पृथिवी के देवयजन में  
यज्ञ का शिरसिद्धि करता हूँ मरव के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ  
और मरव के शिर (महावीर) के अर्थ ग्रहण करता हूँ ॥

का० २६.१०४ मरवायेति यय लेकर चुपके से कृष्णाजिन पर स्था-  
पन करे ॥ या-पं० ययोदेवत्यम्। हे यय मरव के अर्थ मरवशिर  
के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ का० २६.१०१० चुपके से गवेधुका  
भी ग्रहण करियें ॥ का० २६.१०११ मरवायेति सम्भृत सम्भा-  
रों की हाथ से स्पर्श करे ॥ या-पं० सम्भारदेवत्यम्। हे सम्भार-  
ओ मरव और मरवशिर के अर्थ तुम्हें स्पर्श करता हूँ ॥ ६ ॥

प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः प्रदेव्येतु सूनृता। अछा वीरं नय  
पङ्क्तिरयं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥ मरवाय त्वा मरव

† इयती हे वाः इयमयी पृथिव्यास प्रादेशमात्रीत्यादि वराह उज्जयानि १४.१.२.१२.श्रुतेः।

स्य त्वा। शीर्षो मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्षो।  
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्षो ॥७॥ +

प्रेतु ७. मखस्य ८. अश्वस्य ९. ऋजवेत्वा १०. यमाय त्वा. त्वेव  
स्त्वा. अर्चिरसि ११. घर्मदेवत्यानि (यो घर्मः स आदित्यो य एष  
तपति ॥ का० २६. १. १२. अध्वर्यु प्रति प्रस्थात्रादयः कृष्णाजिन को  
समन्तात् लेकर प्रैत्विति जपते हुए अन्तःप्रात्य सै उत्तर में परिवृ-  
त (पञ्चारत्निमितः समचतुरस्रः प्राग्द्वारः सिकतोपकीर्णः पूर्व-  
मेव किये सप्तभूसंस्कारसंस्कृतः छाये हुए प्रदेश) प्रतिजावे ॥ वृहती।  
व्याख्याता ३३. ८६. ॥ का० २६. १. १३. १४. अध्वर्यु कृष्णाजिनस्थो-  
ही सम्भारों को मखायेति परिवृत में स्थापन करे कैसे परिवृत कि  
उल्लिरिवत जलसिक्त (ये दो संस्कार पञ्चसंस्कारों से अधिक हैं)  
और सिकता युक्त प्राग्द्वार में इति सूत्रार्थः ॥ हे सम्भारो मख के  
अर्थ तुम्हें स्थापन करता हूँ ॥ का० २६. १. १५. मखायेति गंवधु-  
का अजापय पृथक् करिके वल्मीकवपादि तीनि सम्भारों क-  
रि मृत्पिण्ड को मिश्रित करे ॥ हे सम्भारो तुम्हें मख के अर्थ मृ-  
त्पिण्ड करि संयुक्त करता (मिलता) हूँ ॥ का० २६. १. १६. महावी-  
रपर्याप्त चुपके से मृदा लेकर मखायेति मन्त्रेण महावीर करे  
कैसा कि प्रादेशोच्च गर्तवन्त मेखलायुत मध्य में संकुचित मेख-  
ला के ऊपर तीनि अद्भुत ऊंचा इति सूत्रार्थः ॥ हे महावीर मख  
और तिस के शिर के अर्थ तुम्हें करता हूँ ॥ ७॥

मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्षो।

मरवस्य शिरोऽसि। मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो।  
 मरवस्य शिरोऽसि। मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो।  
 मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो। मरवाय त्वा मरवस्य  
 त्वा शीर्षो। मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो॥८॥

यजुः॥ का० २६.१.१० वामकरस्थ निष्यन्न महावीर को मरवस्य  
 शिर इति स्पर्श करे॥ मरवस्य शिरोऽसि या-गा०। हे महावीर तू म-  
 रव का शिर है॥ का० २६.१.१० इतर दो महावीरों को प्रतिमन्त्र  
 वैसे ही करे और स्पर्श करे॥ मरवाय दूसरे महावीर को करता  
 हूं। मरवस्य निष्यन्न को स्पर्श करता हूं॥ मरवाय तीसरे महा-  
 वीर को करता हूं। मरवस्येति निष्यन्न को स्पर्श करे + मरव का  
 शिर है मरव के अर्थ तुम्हें मरव के शिर के अर्थ तुम्हें स्पर्श करता  
 हूं॥ का० २६.१.२२ गवेधुकाओं से तीनों महावीरों को रगड क-  
 र सचिक्रण करे मरवायेति प्रतिमन्त्र से एक-एक को॥ मरव ओ-  
 र मरव के शिर के अर्थ तुम्हें गवेधुकाओं करि श्लक्ष्ण करता हूं॥  
 एवमग्निर्मे मन्त्रो॥८॥

+ तीसरे महावीर के स्पर्श में मरवस्य मरवाय दोनों पदों।

अश्वस्य त्वा वृषाः शुक्रा धूपयामि देवयजने पृ-  
 थिव्याः॥ मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो। अश्वस्य त्वा  
 वृषाः शुक्रा धूपयामि देवयजने पृथिव्याः॥ मरवाय  
 त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो। अश्वस्य त्वा वृषाः शुक्रा  
 धूपयामि देवयजने पृथिव्याः॥ मरवाय त्वा मरवस्य  
 त्वा शीर्षो॥ मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो। मरवाय

त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो । मरवाय त्वा मरवस्य त्वा  
शीर्षो ॥४॥ +

का० २६.१.२३. दक्षिणाग्नि करि दीप्त अश्वपुरीष से तीनों मन्त्रों  
करि तीनों महावीरों को धूपे एक-एक धूपने में सात-सात अश्व  
लेण्ड ग्रहण करें ॥ अश्वस्य० प्रा-बृ० हे महावीर पृथिवि के देवजन  
न स्थान में मरव और मरवशिर के अर्थ सेक्ता अश्व के पुरीष करि तु  
के धूपन करता हूँ ॥ एवं इतर मन्त्रों से इतर देने को का० २६.१.२४. म  
रवायेति तीनों मन्त्रों से तीनों महावीरों को पिबन रौहिणों सहित उखा  
वतु अपे (पकावे) ॥ मरव और मरवशिर के अर्थ तुम्हें निर्देह कर  
ता हूँ ॥ एवं इतरो ॥४॥

ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा । मरवाय त्वा  
मरवस्य त्वा शीर्षो । मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो ।  
मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो ॥१०॥ +

का० २६.१.२५. पक्क महावीरों को अपाकादिव उद्धार करें (निका  
ले) तीनि मन्त्रों से ॥ ऋजवे त्वा तिस्रो दे-बृ० ऋजवे प्रथमम् ।  
असौ लोक ऋजुः तत्र सत्यमेव न तु कौटिल्यम् । सत्यमादित्यः  
हे महावीर ऋजु (सत्य-आदित्य) के अर्थ तुम्हें उद्धपन करता  
हूँ इति शेषः तथा च श्रुतिः १४.१.२.२२ स उद्धयेत् ऋजवे त्वेत्यसौ वै लो  
क ऋजुः सत्यं ऋजुः सत्यमेष य एष तपत्येष उ प्रथमः प्रवर्ग्यस्त-  
देत मेवेतन्प्राणाति तस्मादाहर्जवे त्विति ॥ अथ द्वितीयम् साधवे  
त्वा । साधु (वायु) की प्रीति के अर्थ तुम्हें उद्धप ० तथा च श्रुतिः

+ अ- व्याः । अ० म- धी० । इ० अ- व्याः । उ० म- धी० । कृ० अ- व्याः । लृ० म- धी० । आ० ॥ ४॥  
+ ऋ- त्वा । अ० सा- त्वा । इ० सु- त्वा । उ० म- धी० । कृ० ॥ १०॥

१४.१.२.२३. साधवे त्वेत्ययं साधुर्योऽयं पवतः एष हीमां लो-  
कान्तिस्त्रोऽनुवतः एष उ द्वितीयः प्रवर्ग्यस्तदेतमेवैतत्प्रीणा-  
ति तस्मादाह साधवे त्वेति ॥ अथ तृतीयम् सुक्षित्ये त्वा। सुतरं  
क्षियन्ति निवसन्ति सर्वभूतानि यस्यां सुक्षितिः (भूमिः) तथा  
च श्रुतिः १४.१.२.२४. सुक्षित्ये त्वेत्ययं वै लोकः सुक्षितिर्स्मि-  
न्हि लोके सर्वाणि भूतानि क्षियन्त्यथोऽग्निर्वै सुक्षितिर्ग्नित्वेवा-  
स्मिं लोके सर्वाणि भूतानि क्षियत्येष उ तृतीयः प्रवर्ग्यस्तदेत-  
मेवैतत्प्रीणाति तस्मादाह सुक्षित्ये त्वेति ॥ का० २६.१. २६. अ-  
जापय करि तीनों महावीरों को सींचे मरवाय त्वेति प्रति म-  
न्त्र से ॥ मरव और मरवशिर के अर्थ अजापय करि तुम्हें सींच-  
ता हूं ॥ एवमितरौ द्वौ ॥ १० ॥ इति महावीरसम्भरणं समाप्तम् ॥

अ० २. यमाय त्वा मरवाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे। दे-  
वस्त्वा सविता मधानक्तु पृथिव्याः स॥ स्पृश-  
स्पाहि। अर्चिरेसि शोचिरेसि तपोऽसि ॥ ११ ॥ +

का० २६.२. १३. प्रचरेति ब्रह्मा सै आज्ञा पाया अध्वर्यु बैठि-  
कर यमाय त्वेति तीनि मन्त्रों करि प्रचरणीय महावीर को ती-  
निवार प्रोक्षण करे ॥ द्वे द्वे-बृ० तृतीया द्वे-ज०। यमयति (नि-  
यच्छति) सर्वमिति यम (आदित्य) तिस की प्रीति के अर्थ तुम्हें  
प्रोक्षण करता हूं तथा च श्रुतिः १४.१.३.४. सप्रोक्षति यमाय  
त्वेत्येष वै यमो य एष तपत्येष हीदर्थं सर्वं यमयत्येतेनेदर्थं  
सर्वं यतमेष उ प्रवर्ग्यस्तदेतमेवैतत्प्रीणाति तस्मादाह यमाय



त्विति॥ मरवाय त्वा॥ मरव (यज्ञ-सूर्यरूप प्रवर्ग्य) की प्रीति के अर्थ तुम्हें प्रीक्षण करता हूँ। तथा च श्रुतिः १४.१.३.५ एष वै मरवो य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्यस्तदेतमेवैतत्प्रीणाति तस्मादाह मरवाय त्विति॥ सूर्यस्य त्वा तपसे। तपतीति तपः (तेजः) सूर्यतेज रूप प्रवर्ग्य के अर्थ तुम्हें प्रीक्ष० तथा च श्रुतिः १४.१.३.६ एष वै सूर्यो य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्यस्तदेव मेवैतत्प्रीणाति तस्मादाह सूर्यस्य त्वा तपस इति॥ का० २६.२.२० होता करि अज्जन्ति यं प्रथयन्तीति मन्त्र पाठ करते में आज्य को विधि से संस्कार करि तिस आज्य से प्रचरणीय महावीर को देवस्त्वेति मन्त्र करि लेंगे (चुपेंगे)॥ या-पं० सविता देवः सर्वजगद्रूप मधुर आज्य करि हे महावीर तुम्हें लेंगे (चुपेंगे) तथा च श्रुतिः १४.१.३.१३ सर्वे वा इदं मधु यदिदं किं च तदेनमनेन सर्वेण समनन्तीति॥ का० २६.२.२१ रजत का शतमान (शतरक्तिका मित रजत) रवर में सिकतान्तर उपगूहन करें॥ या-अ० १॥ हे रजत संस्पृश (उपद्रव के अर्थ स्पर्श करने हों रक्षस) से तू महावीर को रक्षा करि। रक्षसों में डर हुआ देवता यज्ञरक्षार्थ अग्नि के अपत्य रजत को रक्षसों के घात के लिये ररवते हुए और पृथिवी भी महावीरपाक में अग्नि में डरी ततः यह न जले इस हेतु रजत रवर में अन्तर्हित किया यह श्रुति में कथा है तथा च श्रुतिः १४.१.३.१४ देवा अविभयुर्यद्वै न इममधस्ताद्रक्षां न नाश्या न हन्युरित्यग्नेर्वा एतद्वैतो यद्विरण्यं नाश्याणां रक्षसामपहत्या

रजतं देवत्येति महाधिरः॥

इति तथा १४.१.३.१४. अथो पृथिव्यु ह वाऽणतस्माद्विभयाच-  
 कार यद्वै मायं ततः शुशुचानो न हि श्वं स्यादिति तदेवास्याऽणत-  
 दन्तर्दधाति रजतमिति॥ का० २६. ३. ३. ४. होता करि संहिंसीदस्वे-  
 ति ११.३.७. पठते अध्वर्यु अर्चिरसीति मन्त्र से द्विगुणित मुञ्ज-  
 रवाण्डों को गार्हपत्य में प्रदीपन करि रवर में चारों दिशाओं प्र-  
 ति करि तिन मुञ्जों में संस्कृताज्यपूर्ण प्रचरणीय महावीर को  
 स्थापन करे॥ या-त्रि० हे महावीर तू अर्चि (चन्द्रक्रान्तिरूप) है  
 शोचिः (अग्नितेजरूप) है तपः (सूर्यतपरूप) है तथा च श्रुतिः १४.  
 १.३.१७. एष वै यमो य एष तपति सर्वे वाऽणतदेष्ट तदेतमेवैतत्प्री-  
 णातीति । स्मृतेश्च भगवद्गी० १५.१२. यदादित्यगतं तेजो जगद्भा-  
 सयतेरिवलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नेो तत्तेजो विद्धिमामकमिति॥११॥

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्येऽप्यायुर्मे दाः पुत्रव-  
 ती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः सुषदा  
 पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः आश्रुति-  
 रुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्योष मे दाः । विधृति-  
 रूपरिष्टा हृहस्पतेराधिपत्येऽञ्जो मे दाः विश्वाभ्यो  
 मा नाष्ट्राभ्यस्याहि मनोरथासि॥१२॥+

का० २६. ३. ५. महावीर के ऊपर अङ्गुष्ठाङ्गुलि रखते यजमान  
 को अध्वर्यु अनाधृष्टेति मन्त्रों को पढ़े॥ सप्तपृथिवीदेवत्यानि य-  
 जमानस्याशीः । १.३.४. ५. यजूंश्चि २. आर्ची गा० हे पृथिवीजो  
 तू पूर्वदिशा में राक्षसों करि अनाधर्षिता अग्नि के आधिपत्य में

होती मेरे अर्थ आयु दे। अग्नि मे वास्याऽअधिपतिं करोतीति १४.१.३. १४. अत्रुतेः॥ जो तू दक्षिणदिशा में इन्द्र के आधिपत्य में होती पुत्रयुता सो मेरे अर्थ पुत्रादिका प्रजा दे। इन्द्र मे वास्याऽअधिपतिं करोति नाष्ठा-  
ण्णं रक्षसामपहत्या इति १४.१.३. २०. अत्रुतेः जो तू पश्चिमदिशा में सुसदा है सविता देवता के आधिपत्य में होती मेरे अर्थ नेत्रेन्द्रिय को दे। देव मे वास्ये सवितारमधिपतिं करोतीति १४.१.३. २१. अत्रु-  
तेः॥ हे पृथिवी जो तू उत्तर दिशा में ब्रह्मा के आधिपत्य में होती आश्रु-  
ति (आश्रावन करते हैं ऋत्विज जिस में वोह यज्ञिय उत्तरदेश) है सो तू मेरे अर्थ धन की पुष्टि दे। धातार मे वास्याऽअधिपतिं क-  
रोतीति १४.१.३. २२. अत्रुतेः॥ जो तू उपरि प्रदेश में बृहस्पति के आधि-  
पत्य में होती सो तू मेरे अर्थ बल दे। बृहस्पति मे वास्याऽअधिपतिं करो-  
तीति १४.१.३. २३. अत्रुतेः॥ का. २६.३. ७. विश्वाभ्यो मेति महावीर-  
सै दक्षिणभूमि में यजमान मन्त्र पठते अपने करको उत्तानस्था-  
पन करे॥ या-बृ०। हे महावीर दक्षिणभूमे सब नाश करने वा-  
लों (लोकप्रसिद्ध पिशाचादिकों) सै हमलोगों को रक्षा करि।  
सर्वाभ्यो गोपायेति १४.१.३. २४. अत्रुतेः॥ का. २६.३. ८. मनोरथे-  
ति महावीर सै उत्तर में यजमान अपने प्रादेश को स्थापन करे॥  
दे-पं०। हे घर्मोत्तरभूमे तू मनु राजा की बहने के अर्थ अश्व (घो-  
डी) है। अश्व ह वा इयं भूत्वा मनुमुवाहेति १४.१.३. २५. अ-  
त्रुतेः॥ १२॥

स्वाहा मरुद्भिः परिरुन्नीः स्व दिवः सध्वं स्पृश्याहि।

मधु मधु मधु ॥१३॥ + स्वा-स्वा.अ.दि-हि।म-धु।२०॥१३॥

का० २६.३.४.१०. धृष्टियों से गार्हपत्य के भस्म और अङ्गारों को  
महावीर के परितः डालि कर प्रागग्रों उदगग्रों त्रयोदश विक-  
टुत शकलों से महावीर को वेष्टन करे (अङ्गारों के ऊपर शकलों  
को डाले) तिसके मध्य दो शकलें खाहा मरुद्भिरिति मन्त्र करि प्रा-  
ञ्चो रवे शेषों को चुपके से एवं प्रतिदिशं तीनि-तीनि स्थितों  
में अधिक त्रयोदशको दक्षिण में स्थापन करे ॥ महीनों के तेरह  
होने से तेरह शकलों से स्थापन है त्रयोदश वे मासाः संव-  
त्सरस्य संवत्सर एष य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्य इति १४.१.३.२८.  
श्रुतेः । या-यं० घर्मदे० हे घर्म तू स्वाहाकार है (हवि के आधार-  
त्वसे) सूर्यरूप है (एष वै स्वाहाकारो य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्य  
इति १४.१.३.२६. श्रुतेः) अतः तू मरुतों (हमरूप प्रजाओं) से प-  
रि श्रीयस्व (सेव्यस्व) अर्थात् मरुतः तुम्हें आश्रय हों। विशो वै  
मरुतो विशो वतत्क्षत्रं परिवर्द्धति तदिदं क्षत्रमुभयतो विशा प-  
रि वृद्धमिति १४.१.३.२७. श्रुतिः ॥ का० २६.३.१०. दिवः सत्स्व-  
ष्टा इति शतरक्तिकामित सुवर्ण करि महावीर को आच्छादन  
करे ॥ दे-ज० सुवर्णदेवत्या । हे शतमान धुलोकसम्बन्धिस्य  
श्री करनेवालों (देवताओं) को रक्षा करि देवा राक्षसों से डरि क-  
रि महावीर की रक्षा के अर्थ स्वर्ण को स्थापन करते हुए यह श्रु-  
ति में कथा है देवा अविभयुरित्यादिकार्यो १४.१.३.२६. ॥ का०  
२६.४.२. कृष्णजिन से किये (बनाये) तीनि दण्ड (डांडी) यु-

क्व तीनि बीजनाम्नोऽंसे अग्नि को दीपन के अर्थ बीजै मधु मधु म-  
धु इति ॥ त्रीणि यजूर्हवि प्राणदेवत्यानि १-३ दे-उ० मधुरससाम्या  
प्राणो मधु उच्यते मधु मधु मधु (प्राण उदान व्यान) तीनों म-  
हावीर में स्थापन करता हूं इत्यर्थः ॥ तथा च श्रुतिः १४.१.३.३०  
अथ धर्वित्रैराधूनाति मधु मधिति त्रिः प्राणो वै मधु प्राण मे-  
वास्मिन्नेतद्वधाति त्रीणि भवन्ति त्रयो वै प्राणाः प्राण उदानो व्या-  
नस्तानि वास्मिन्नेतद्वधाति ॥ १३ ॥

अवकाशमन्त्राः

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् । सं  
देवो देवेन सवित्रा गतं सठं सूर्येण रोचते ॥ १४ ॥

का० २६.४.११ बीजनाम्नोऽंसे बीजन समय में उत्तर देववत् प-  
रिक्रमणं प्रागुक्तं चेद्दिह तीनि परिक्रमा करि और इतरथावृत्तिको सक्र-  
तू करिके गर्भो देवानामित्यादि नमस्तु मा मा हिर्हि सीरित्य-  
न्त अवकाशसंज्ञक मन्त्रों से यजमान सहित ऋत्विजलोग महा-  
वीर को उपस्थान करें ॥ धर्मदेवत्या अवकाशमन्त्रा मा मा हिर्हि सी-  
रित्यन्ताः ॥ आद्या ऋचां पङ्क्तिः ॥ अथ मन्त्रार्थः ॥ देव (दीप्यमान-  
महावीर) सविता देवता सहित संगत होता है ॥ और जो धर्म सूर्य स-  
हित एकी भूतः सन् भले प्रकार दीप्ये है तिसै हम स्तुति करते हैं इ-  
ति शेषः ॥ कैसा कि देवों (दीप्यमानों) रश्मिओं वा सब दृश्यमानों  
का गर्भ (गृहीता) है ॥ एष वै गर्भो देवानां य एष तपत्येष हीदृष्टं सर्व-  
ं संगृभ्यत्येतेनेदं सर्वं गृभीतमेष उ प्रवर्ग्य इति १४.१.४.२०

श्रुतिः। तथा मतीश्रो (बुद्धिश्रो) का पिता (पालक-प्रवर्तक) प्रजाश्रो  
का पति (पालक) है ॥१४॥

समग्निरग्निना गतु संदैव्येन सवित्रा सर्गं सूर्येणारो-  
चिष्टु। स्वाहा समग्नस्तपसा गतु संदैव्येन सवित्रां स-  
र्गं सूर्येणारुरुचत ॥१५॥†

समग्निः सा-वि० स्वाहेति यजुः वामिलित्वात् ब्रा-अ०। जो  
अग्नि (धर्म) अग्नि सहित एकी होता है देव एव दैवः सविता देवता स-  
हित संगत होता है और जो सूर्य सहित संगत है ॥ अवरं स्वाहाकारं  
करोति परं देवतामसावेव बन्धुरिति १४.१.४.६. श्रुतेः। स्वाहा स-  
हित अग्नि (धर्म) तप (सूर्यतेज) करि संगत होता है और सविता देव-  
ता करि संगत होता है सूर्य सहित सब को भले प्रकार प्रकाश कर-  
ता है तिसे हम स्तुति करते हैं इति शेषः ॥१५॥

धृती दिवो विभाति तपसस्पृथिव्या धृती देवो देवाना-  
ममर्त्यस्तपोजाः। वाचमस्मे नियच्छ देवायुवम् ॥१६॥

ऊर्ध्वबृहती। वोह देव (धर्म) हम लोगों में वाचा (यज्ञ) को स्थापन क-  
रै कैसी वाचा कि देवयुवा (देवताओं को मिश्रित करनेहारीतिस)  
को अर्थात् देवसमूह को आह्वान करने हारे यज्ञ को समाप्त करै  
(यज्ञो वै वाग्यज्ञमस्मभ्यं प्रयच्छ येन देवान्प्रीणमेत्येवै तदाहेति  
१४.१.४.८. श्रुतेः। वोहो कौन कि जो देव पृथिवी में शोभे है।  
कैसा कि धुलोक का धारयिता। और तप (रश्मिजाल) का धार-  
यिता। और देवताओं का धारयिता। मनुष्यधर्मरहितः (अजरा-



मरः। तपः (आदित्य) से उत्पन्नः ॥१६॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पृथिभि-  
श्चरन्तम्। स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान् आवरी-  
वर्ति भुवनेध्वन्तः ॥१७॥

विषुब्दीर्घतमो हृष्टा। वोह धर्म भुवनों (तीनों लोकों) के मध्य में  
व्यवस्थित पुनः-पुनः आवर्तते हैं। कैसा कि सध्रीचीः (दिशाओं  
वारुणीयों) को आछादन करता। विषूचीः (दिशाओं वारुणीयों)  
को आछादन करता। सध्रीचीश्च ह्येष विषूचीश्च दिशो वस्तेऽथो-  
रुमीनिति १४.१४.१० श्रुतिः। एकः स शब्दः पादपूरणः। वोह  
कोन कि जिस आदित्यरूप को में देखता हूं कैसे को कि गोपाय-  
ता। न निपद्यमान (अन्तरिक्ष में चलते भी नहीं गिरते) को। पुनः  
देवमार्गों करि आते और जाते को ॥१७॥

विश्वासां भुवां यते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य  
वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते। देवश्रुत्वं देव धर्म  
देवो देवान्यात्यत्र प्रावीरन्तु वां देववीतये। मधुमा-  
ध्वीभ्यां मधु माधूचीभ्याम् ॥१८॥

अ० यजुः। इ० सा-उ० ऋ० आसुरी वृ० लृ० आसुरीयं०॥ हे सब पृथि-  
वीयों के स्वामिन् सर्वप्राणिगतमन के अधिपते सर्वप्राणिवच-  
न के पालक सर्व त्रयीलक्षणवचन के प्रवर्तक हे देवश्रुत (देव-  
प्रसिद्ध) हे देव (दीप्यमान) हे धर्म देव तू देवताओं की रक्षा करि।  
एवं धर्म सम्प्राप्त्याश्विनावाह हे अश्विनो इस यज्ञ में देवतर्पण

+ वि-ते। अ० दे-दि। इ० अ-यो। उ० म-म्। ऋ० ॥१८॥

के अर्थ अनन्तर धर्म तुम्हें तृप्त करे (तुम्हारी तृप्ति सैं सब देवता तृप्त होते हैं इति भावः क्यो कि जिन तुम्हारे अर्थ दध्यङ्गार्थवर्ण नें मधुसंज्ञक ब्राह्मण को कहा दध्यङ्ग ह वाः आभ्यामायवर्णो मधुनाम ब्राह्मणमुवाचेति १४. १४. १३. श्रुतेः। कैसों के अर्थ कि माध्वीभ्यां (मधुब्राह्मण को जानते तिन्हों के अर्थ। तथा माधूचीभ्यां (मधुब्राह्मण को पूजते तिन्हों के अर्थ॥ १८॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वे  
अध्वरं दिवि देवेषु धेहि॥ १९॥

परोषिणक्। हे धर्म हृदयस्वास्थ्य के अर्थ तुम्हें स्तुति करते हैं इति शेषः मन की शुद्धि के अर्थ तुम्हें स्तु. स्वर्गप्राप्ति के अ. (हृदय को शोधि मन को निर्मल करिके स्वर्ग को हमारे को लेजाकर सूर्य को तृप्त करि इति भावः। किं च ऊर्ध्व (सावधान) होकर हमारे यज्ञ को शुलोक में वर्तमान देवताओं विषे स्थापन करि यज्ञ के जाने में यजमान भी जाता है इति भावः॥ १९॥

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्तेऽस्तु मा मा  
हि ठंसीः । त्वष्टमन्तत्वा सपेम पुत्रान्यभून्मयि  
धेहि प्रजामस्मासु धेस्वरिष्टाहं सहयत्या भू-  
यासमे॥ २०॥ +

+ पि-सीः। अ०। त्व-म। इ०॥ २०॥

ऋगगायत्री वा साम्नी वृ० हे महावीर तू हमारा पिता (पालक) हे पिता ऐसै हमें बोधन करि सर्वथा तेरे अर्थ नमस्कार हो मुझे मत जी-  
ति॥ ॥ महावीरोयस्थानं समाप्तम् ॥ ॥ का० २६. ४. १३.

महावीर को देरवती अपनीतशिरोवस्त्रा घर्म को देरवती पत्नी को अधर्यु पदवावै ॥ ऋचां त्रिष्टुप् घर्मदेवत्या पत्न्याशीः ॥ हे घर्म हम मैथुन के अर्थ तुम्हें स्पर्श करती हें। कैसी हें हम कि त्वष्टमन्तः (रेत के अधिकारी त्वष्टा तिस सहिता)। अतः पुत्रों और पशुओं को मेरे विषे स्थापन करि प्रजा (उत्तरोत्तरवंशवृद्धि) हमारे विषे स्थापन करि। किं च पति (भर्तार) सहित में अनुपहिं-सिता होऊँ अर्थात् भर्तृमती चिरजीऊँ। वृषावै प्रवर्ग्यो योषा पत्नी मिथुन मैवै तत्प्रजननं क्रियतः इति १४.१४.१६ श्रुतेः ॥ २० ॥

अहः केतुना जुषताथं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।

रात्रिः केतुना जुषताथं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वा-

हा ॥ २१ ॥ + अ-हा। अ०। रा-हा ॥ इ० ॥ २१ ॥

इति सठं हितायां द्वितीयोऽनुवाकः २.

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेय-

सठं हितायां दीर्घपाठे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३ ॥

का० २६.४.१४. उपस्थान और गान की समाप्ति में रोहिणहव-  
नि स्तुचा करि अहः केतुनेति दक्षिण रोहिण पुरोडाशसर्वहुत  
को होयें ॥ घर्मदेवत्ये यजुषी सामानुष्टुभौ। केतः प्राज्ञा वा कर्म)  
सहित दिन को जुषताम् (रोहिण होम करि प्रीति हों कैसा दिन  
कि स्वकीयतेज करि शोभन ज्योति जिस की वोह विशिष्टतेज-  
स्क स्वाहा (यह हविः सुहुत हो। रोहति स्वर्गं यजमानो याभ्यां  
तौ रोहिणो अग्न्यादित्यो अहोरात्रे वा इमौ लोकौ वा चक्षुषी

+ मैथुनार्थोपसर्गो दीर्घ-  
विश्रुतापेक्षितोऽनन्तयुतः।

वा शिरः प्रवर्ग्यो रोहिणो चक्षुषी तत्र दधातीत्यादि रोहिण प्र-  
 शंसा श्रुतो १४.२.२.१-५ ज्ञेया ॥ का. २६. ४. १५. सायंकालीन प्र-  
 वर्ग्य मे रात्रिरिति मन्त्रेण देवो प्रवर्ग्यो को यथाकाल होमः ॥  
 केतु सहिता रात्रिः प्रीयताम् ज्योति करि सुज्योरितित्युक्तम् ॥ २२ ॥

इति भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थप्रदीपन तमोहार्दनिवारयन् ॥

पुमार्थाश्चतुरो देयान् महावीरो मखाधिपः ३७

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनी शारवाध्येतृ व्याघ्रपादान्व-  
 य विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जय किशोरदेव चर्मन्मज रोहि-  
 ण्यनृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये  
 श्रुक्रियायामभ्यादानादि रोहिण होमान्नः सप्तविंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम् ॥

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३७

अ. १.

हेनस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणो  
 हस्ताभ्याम् । आददेऽदित्ये रात्रासि ॥ १ ॥ †

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ॥

अष्टाविंशोऽयमध्यायो महावीरः समीर्यते ३८

का० २६. ५. १. अध्वर्यु देवस्य त्वेति रज्जुसंदान को लेकर गार्हप-  
त्य के पीछे चलता दृडः एहीति तीनों वाक्यों करि धर्मदुघा गौ को  
बुलावै और असावेहीति नाम करि तीनवार ऊँचे स्वर से ढेरै॥ दे-  
वस्य त्वा प्रा-बृ० आददे रज्जुदेवत्यं प्रा-गा० वा या-अ० हे रज्जो  
सविता देवता की आज्ञा में वर्तमान आश्वनीकुमारों के बाहुओं पू-  
षा के हाथों से तुम्हें ग्रहण करता हूँ क्योंकि तू अदिति (देवमाता)  
की रसना (मेखला) है॥ १॥

दृडः एह्यदितुर्गहि सरस्वत्येहि॥ असावेद्यसावेद्य-  
सावेहि॥ २॥ +

अ० दे-बृ० इ० उ० दे-पं० गौर्देवत्याः॥ हे इडे (मानवि) आगमन-  
करि॥ हे अदिते (देवमातः) आ०॥ हं सरस्वति (वाणी) आ०॥ इडा  
हि गौरदितिर्हि गौः सरस्वती हि गौरिति १४. २. १. ७. श्रुतेः॥ ती-  
नों नामों से ऊँचे ढेरै। दे-बृ० असौ (धवलि) आ० एवं त्रिः॥ २॥

अदित्ये रास्नासीन्द्राण्याः उष्णीषः॥ पूषासि धर्मा-  
य दीक्ष॥ ३॥ + अ-षः॥ अ० पू-सि। इ० घ-अ० उ०॥ ३॥

का० २६. ५. ३. आई हुई गौ को अदित्या इति मन्त्रेण पाशाकरि  
बाँधि तिस पाश को लम्ब में बाँधिकर पूषासीति वत्स को छोड़े।  
या-त्रि० हे रज्जुपाश तू अदिति की रसना है इन्द्राणी का उष्णी-  
ष (शिरोवेष्टन) है अर्थात् इस पाश करि इन्द्रपत्नी उष्णीष करती  
है तमैवेनमेतत्करोतीति १४. २. १. ८. श्रुतेः॥ वत्स को छोड़े। पूषासि  
दे-अ० वत्सो देवता। हे वत्स तू पूषा (वायु) है जैसे वायु वृष्टि आप्या-

+ इ-हि॥ अ० आ-हि। इ० स-हि। उ० अ-हि। अ० ल० आ०॥ २॥

अपि च यथाऽपि न्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पि  
स्व । स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत् ॥ ॥ ॥

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा  
सदत्रः । येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि  
विद्युः ।

स्वति तमिह सोथा शर्मे को यार्थ को ॥ वा

का० २६. ५. ७. यस्त इति गौ के ली वेदात्स स्तन को इस स्थान  
त्या त्रिष्टुप् दीर्घतमो ह्येष्टा हे सरस्व महावी



में पानार्थ करि अर्थात् मेरे पान के लिये दे। तिस किसे कि जो तेरा स्तन (जैसे) सोता ही है (अन्ये रनुपभुक्तत्वात् यस्ते स्तनो निहितो गुहायामिति १४.२.१.१५. श्रुतेः। और जो स्तन सुख प्राप्त करता है सब भूतों को। और जो रमणीय धनों का धारयिता। और जो धन को विन्दति वा वेत्ति। और जो शोभन दाता (ओस्को-ई धनवान् धन देने को नहीं समर्थ है परन्तु तेरा स्तन धनवान् और दाता यह औरों से आधिक्य है। किंच जिस स्तन करि सब वरणीय वस्तुएँ तू पुष्टि करती है तिस स्तन को मेरे पीने के अर्थ दे इत्यर्थः ॥ का. २६. ५. ११. होता करि उपद्रवेति मन्त्र पठते उर्विति मन्त्र करि अध्वर्यु गोसमीप से गार्हपत्य प्रति जावें ॥ प्रा-गा. विशाल अन्तरिक्ष को अनुसरण करिके जाता हूँ ॥ ५ ॥

गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वापरिग्रहाम्यन्तरिक्षेणोपयच्छामि। इन्द्राग्निना मधुनः सारथस्य घर्मं पातु वसवो यजत वाट। स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥ ६ ॥

का. २६. ५. १२. गायत्रमिति मन्त्रों से परीक्षाओं को ग्रहण करें ॥ यजुर्गायत्र्यो वादे-त्रि. परीक्षाओं देवते। हे परीक्षास तू गायत्री छन्द रूप है ॥ त्रिष्टुप् छन्द रूप है ॥ इति द्वितीयम् ॥ का. २६. ५. १४. तिन परीक्षाओं से द्यावापृथिव्याग्निमि महावीर को लेंवें ॥ या-ज. सा. गा. वा महावीरो देवता। हे महावीर द्यावा पृथिवीओं करिके तू मेरे परिग्रहण करता हूँ (परीक्षास्यो द्यावा भूमी अध्यस्ते महावीर

+ गा-मि। अ. त्रै-सि। इन्द्रा-ग्नि। उ. अ-मि। ऋ. इ-ना। लृ. म-ट। आ. स्वा-ये। इ. ॥ ६ ॥

चादित्योऽध्यस्तः तथा च श्रुतिः १४.२.१.१६. इमे वै द्यावा पृथिवी-  
 वीपरीणासाचादित्यः प्रवर्ग्योऽमुं तदादित्यमाभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां  
 परिगृह्णातीति ॥ का. २६.५.१५ परीणासोंकरि गृहीत महावीर को ऊँचा  
 करिके मूँज के बने वेद से संमार्जन करि उपयमनि सुक् करि  
 के अन्तरिक्षेणोपयच्छामीति तिसै ग्रहण करै ॥ या-वृ० हे धर्म  
 अन्तरिक्ष (आकाश वा उदर) करि तुमै निग्रहण करता हूँ (उपय-  
 मन्यन्तरिक्षेणोदरत्वेन च सूयते तथा च श्रुतिः १५.२.१.१७.  
 अन्तरिक्षं वाऽउपयमन्यन्तरिक्षेण हीदर्थं सर्वमुपयतमथोऽ-  
 उदरं वा उपयमन्युदरेण हीदर्थं सर्वमन्नाद्यमुपयतं तस्माद्ग्र-  
 हान्तरिक्षेणोपयच्छामीति ॥ का. २६.५.१६. अजा दुग्ध करि चु-  
 पके सै महावीर को सींचिके क्षीणज्वाला में इन्द्राश्विनेति मन्त्रेण  
 गौ का पय सींचै ॥ त्रु.दे-वृ० आ० आर्चीगा० ई० आसु-अ०  
 विश्वदेव देवत्यानि मिलित्वा द्वा-गा० वा। हे इन्द्र हे अश्विनो हे  
 वसंवः (वासयितारः) तुम मधु (मधुर-पय) के धर्म (रस) को पान  
 करो। कैसे मधु कि सारथ (मधुमक्षिका-भ्रमरा जैसै त्रित्विज-  
 लोग तिन्हो करि किये) का। किं च हे इन्द्रादयः वाट् (वषट्कार क-  
 रि) स्वाहा (सुष्टुहुत) सारथ मधु को सूर्य की रश्मि (किरण) के अ-  
 र्थ नुम देखो (वषट् कृतं हुतमेव तस्यैतद्वतीति श्रुतेः १४.२.  
 १.२०. कैसी रश्मि कि वृष्टि देनेहारि के अर्थ (जो रश्मि वृष्टि  
 देती है तिस के अर्थ मधु देखो)। तथा च श्रुतिः १४.२.१.२१.  
 सूर्यस्य हवा गहकी रश्मि वृष्टि वनिर्नाम येने माः सर्वाः प्रजा वि-

भर्ति तमेवैतत्प्रीणातीति ॥६॥

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा सरिराय त्वा वाताय  
स्वाहा। अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा प्रतिधृष्या-  
य त्वा वाताय स्वाहा। अवस्य वै त्वा वाताय स्वा-  
हा शिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥७॥+

का० २६. ६. १. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरिति होता करि उच्चारण करते  
आहवनी प्रति चलता अध्वर्यु समुद्रायत्यादीनि वातनामों को  
स्वर करि जपे ॥ द्वादश यजूर्दधि वातनामदेवत्यानि १०. २. ५. ८.  
६. या-पं० ३. ६. या-त्रि० ४. या-ज० ७. ११. १२. सा-उ० १०. आर्ची  
गा० हे धर्म वात के अर्थ तुम्हे स्वाहा (होमता हूं) कैसे वात किस  
मुद्र (उत्पन्न होते हैं सर्वभूत जिस से तिस) के अर्थ। अयं वै स-  
मुद्रो योऽयं पवतः एतस्माद्देसमुद्रात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि  
समुद्रवन्ति तस्माद्वै न जुहोतीति १४. २. २. २. श्रुतेः ॥१॥ सरि-  
र (साथ चलते हैं सिद्धि के अर्थ सर्वभूत जिस से तिस) वात के अ-  
र्थ हे धर्म तुम्हे होमता हूं। अयं वै सरिरो योऽयं पवतः एतस्मा-  
द्दे सरिरात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सहेरतः इति १४. २. २. ३. श्रु-  
तेः ॥ २॥ अनाधृष्य (नही पराभव करने की शक्यतिस) के अर्थ।  
अप्रतिधृष्य (नही प्रतियुद्ध की शक्यतिस) के अर्थ। वातायेत्यु-  
क्तम्। अयं वाऽअनाधृष्योऽप्रतिधृष्यो योऽयं पवतः इति १४. २.  
२. ४. श्रुतेः ॥ ३॥ ४॥ अवस्यु (अवनशील) के अर्थ। अशिमिद  
(क्लेशनिवर्तक) के अर्थ। अन्यदुक्तम्। अयं वाऽअवस्युरशिमि-

हो योऽयं पवतः इति १४. २. २. ५. श्रुतेः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्य  
वते स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा । सवित्रे  
त्वऋभुमते वाजमते स्वाहा । बृहस्पतये त्वा  
विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥ ८ ॥ †

वसुमान् रुद्रवान् इन्द्र (वात) के अर्थ हे धर्म तुम्हें होमता हूँ । अयं  
वाः इन्द्रो योऽयं पवतः इति १४. २. २. ६. श्रुतेः ॥ ७ ॥ आदित्ययुक्त  
इन्द्र (वात) के अर्थ स्वाहा ॥ ८ ॥ अभिमातिघ्नों (शत्रुओं) के हन्ता  
वात के अ० सपत्नी वाः अभिमातिरिति १४. २. २. ८. श्रुतेः ॥ ९ ॥  
सविता (चेष्टयिता) वात के ० कैसे के कि ऋभुमान् विभुमान् वा-  
जवान् आङ्गिरस सुधन्वा के तीनि पुत्र तिन्हो करियुक्त । अयं  
वै सविता योऽयं पवतः इति ॥ १० ॥ बृहस्पति (वडों के पति) तिस  
वात के अर्थ । अयं बृहस्पतिर्योऽयं पवतः इति १४. २. २. १०. श्रु-  
तेः ॥ ११ ॥ ८ ॥

अ० २. यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घ-  
र्माय स्वाहा धर्मः पित्रे ॥ ९ ॥ †

यम (वायु) के अर्थ हे धर्म तुम्हें । अयं वै यमो योऽयं पवतः इति  
१४. २. २. ११. श्रुतेः । कैसे यम कि आङ्गिरः पितृयुक्त ॥ १२ ॥ वात  
नामानि समाधानि ॥ ॥ का० २६. ६. २. स्वाहा यर्मायेति उप-  
यमनी सुकू करि सुक्स्थ घृत को धर्म में सींचें ॥ धर्म देवत्या  
दे-पं० धर्म के अर्थ स्वाहा (एतदाज्यसुहृत हो ॥ का० २६. ६. ३.

† इ-हा। अ०। उ०। स-हा। ऋ०। द-हा। त्व० ॥ ८ ॥

† स-हा। अ०। स्वा-य। इ०। स्वा-त्रे। उ० ॥ ९ ॥

अपसव्यवान्दक्षिणास्यः स्वाहेति मन्त्र को स्वरेण जपि कर सव्येन  
जल को स्पर्श करिके धर्महस्तोऽतिक्रम्याश्राव्य धर्मस्य यजेत्याह ॥  
धर्मदेवत्याहे-त्रि० स्वाहा धर्मः पित्रर्थे हो ॥४॥

विश्व आशा दक्षिणासद्वि श्वान्देवानयाडिह स्वा-  
हाकृतस्य धर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥१०॥

का० २६. ६. ४. वषट् कृते सति धर्म को होमें ॥ अश्विदेवत्यानुष्टु-  
प्। इस यज्ञ में दक्षिणातः स्थितोऽध्वर्यु सब दिशाओं और सब दे-  
वताओं को पूजता हुआ (दक्षिणातः स्थितो ह्याहुतीर्जुहोति। इस हे-  
तु से कहिता है कि हे अश्विनो वषट्कार के अनन्तर मधुर स्वाद ध-  
र्म को तुम पीओ ॥१०॥

दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः स्वाहाग्न-  
ये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥११॥ +

का० २६. ६. ५. महावीर को तीन बार ऊँचा कैंपावै एक बार दिवि  
धा इति मन्त्रेण दो बार चुपके से ॥ धर्मदेवत्यं सा-उ० आसु-उ०  
वा। हे महावीर इस मेरे यज्ञ को तू धुलोक में स्थापन करि (पुन-  
रुक्तिरदरार्था ॥ का० २६. ६. ६. अनुवषट् स्वाहेति मन्त्रेण धर्म को हो-  
में ॥ या-ज०। यज्ञहित अग्नि के अर्थ सुकृत हो यजुषों के सकाशों से  
हमारा सुख हो ॥११॥

अश्विना धर्मं पातठं हार्द्धी नमहर्दिवाभिरूतिभिः ॥

तन्त्रापिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥१२॥

का० २६. ६. ७. ब्रह्मा धर्म को अभिमन्त्रण करे ॥ स्वराडुषिणक्

अश्विनावादित्यो द्यावापृथिव्यो च देवताः। हे अश्विनौ तुम अ-  
बनों करिके धर्म को पियो कैसे अबनों कि प्रातः सायंकालीपल-  
क्षिताओं सै (प्रवर्ग्यकालः स एव यतः। कैसे धर्म कि हृदयप्रिय।  
एवं धर्म पीने के अर्थ अश्विनौ को प्रार्थना करि तिन्हों की सहाय  
के अर्थ सूर्यादिकों को नमस्कार करता है। तन्त्र (कालचक्र) में  
निरन्तर चलते सूर्य के अर्थ नमस्कार हो। एष वै तन्त्रायी य एष  
तपत्येष हीमां लोकांस्तन्त्रमिवानुसंचरन्तीति १४. २. २२ शु-  
ते। द्यावा पृथिवीओं (दोनों लोकों) तिन्हों के अधिष्ठाताओं के  
अर्थ नमः ॥१२॥

अपातामश्विनौ धर्ममनु द्यावापृथिवीऽभिमर्षसा-  
ताम्। इहैव रातयः सन्तु ॥१३॥

का० २६. ६. ८. यजमान धर्म को अभिमन्त्रित करे ॥ ककुबुषि-  
क अश्विदेवत्याः। अश्विनौ धर्म को पियें द्यावा पृथिवी भला कि-  
या यह जानें अतएव अश्व्यादिकों के प्रसाद सै हमारे घर में स्थि-  
त हमारे धन हों (इहैव रातयः सन्तितीहैव नो धनानि सन्तिती-  
वैतदाहेति १४. २. २. २६. श्रुतेः ॥१३॥

इये पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय  
पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुध-  
र्मा मेन्यसे नृमणानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धा-  
रय विंशं धारय ॥१४॥

का० २६. ६. ८. इये पिन्वस्वेति अतितप्ते धर्म को अभिमन्त्रणक



रे॥ अ०० इ०० दे० पं०० उ०० ऋ०० दे० वि०० लृ०० या०० बृ०० मिलित्वा  
 त् ऋगायत्री धर्मदेवत्या हे पिन्वमान (अतितप्त) धर्म वृष्टि के  
 अर्थ पिन्वस्व (पुष्ट हो) अन्न के अर्थ पिन्वस्व (अन्न को बढा) ब्रा-  
 ह्मणों के अर्थ पिन्व० क्षत्रियों के अर्थ पि० द्यावापृथिवीओं के  
 अर्थ पि० ब्राह्मणक्षत्रीद्यावापृथिवी तृप्त करि ॥ का० २६. ६. १०  
 धर्मासीति ईशाना दिशा प्रति उत्क्रामण करे ॥ या-गा० धर्मदे०  
 हे धर्म हे सुधर्म (साधुधरणाशील) तू धर्म (सब जगत का धार-  
 ण) हे अर्थात् आहुति परिणामद्वारा करि सब को धरता है ॥  
 का० २६. ६. ११ अमेन्यसे इति महावीर को खरपै स्थापन क-  
 रे ॥ खर देवत्यं यजुः ॥ हे धर्म अमेनिः (अकुध्यन्) सन् हमारे वि-  
 धे धनों को स्थापन करि (अकुध्यन्तो धनानि धारयेति १४. २. २  
 ३० श्रुतिः) ब्रह्म क्षत्र और विश को स्थापन करि (वित्रादिकों  
 को हमारे वश करि ॥ १४ ॥

स्वाहा पूषण शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिर-  
 वेभ्यः ॥ स्वाहा पितृभ्य ऊर्ध्ववर्हिभ्यो धर्मपावभ्यः  
 स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा विश्वेभ्यो देवे-  
 भ्यः ॥ १५ ॥ †

का० २६. ६. १२ धर्म में निरन्तर लिप्त करि विकङ्कतशकलों से  
 धर्माज्य को होमें स्वाहा पूषण इति प्रतिमन्त्रम् ॥ सप्तलिङ्गोक्त  
 देवतानि १. ३. या-उ०२. दे० पं०४. आसु-गा० ५. ६. या-अ०७.  
 या-पं० शरसे † (स्नेह करनेहारे) पूषा (प्राणरूपवायु) के अर्थ सु-

† स्वा-से। अ०। स्वा-भ्यः। इ०। उ०। ऋ०। सा-म्। लृ०। स्वा-भ्यः। आ०॥ १५ ॥

अत्र स्नेहमानवाची  
 शब्दो दधुपुगस्यस्नेहवाचकः  
 शः

हुत हो। अवरुद्धं स्वाहाकारं करोति परं देवतामिति १४.२.२.३२।  
 श्रुतेरादौ स्वाहाकारस्ततो देवतापदानि। अयं वै पूषा योऽयं पव-  
 तः ण्य हीदुर्धं सर्वं पुष्यत्येष उ प्राणः प्राणमेवास्मिन्नेतद्वधाती-  
 ति १४.२.२.३२. श्रुतिः ॥१॥ ग्रावों (विषयग्रहणशीलों प्राणों) के  
 अर्थ स्वाहा। प्राण वै ग्रावाणः प्राणानेवास्मिन्नेतद्वधातीति १४.२.  
 २.३३. ॥२॥ प्रतिरवों (शब्द करतेओं वा प्रति रमते हैं जिन्हें पाक-  
 र तिन प्राणों) के अर्थ स्वाहा। प्राण वै प्रतिरवाः प्राणान्हीदुर्धं स-  
 र्वं प्रतिरतमिति १४.२.२.३४. श्रुतिः ॥३॥ का. २६. ६. १४. चतुर्थ  
 शकल को अहुतमेव उदीची को देवता वेदि के दक्षिणभा-  
 ग में आनिष्ठ्याबर्हि में प्रवेश करै ॥ पितरों के अर्थ स्वाहा कैसे  
 पितरों उर्ध्वबर्हिओं (प्रागग्र दहिर्हैं जिन्हें की तिन सोम पीने-  
 हारों) के अर्थ तथा घर्म पीनेहारों के अर्थ ॥४॥ द्यावापृथिवी-  
 ओं (प्राणोदानों) के अर्थ स्वाहा। प्राणोदानों वै द्यावापृथिवी  
 प्राणोदानावेवास्मिन्नेतद्वधातीति १४.२.२.३६. श्रुतिः ॥५॥ वि-  
 श्वे देवाओं (प्राणों) के अर्थ स्वाहा। प्राण वै विश्वे देवाः प्राण-  
 नेवास्मिन्नेतद्वधातीति १४.२.२.३७. श्रुतिः ॥६॥ १५॥+

स्वाहा रुद्राय रुद्रहृतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्यो-  
 तिः। अहः केतुना जुषतां सुज्योतिर्ज्योति-  
 षा स्वाहा। रात्रिः केतुना जुषतां सुज्योतिर्ज्यो-  
 तिषा स्वाहा। मधु हुतमिन्द्रतमेऽग्नावश्या-  
 म ते देव घर्म नमस्तेऽस्तु मा मा हिंसीः ॥१६॥

का० २६.६.१५ मूलाग्रावधि धर्मघृताभ्यक्त सप्तम शकल को द-  
क्षिण की ओड़ी देवता प्रतिप्रस्थाता के अर्थ देंगे ॥ रुद्रों + (स्तो-  
त्रियों) से स्तुत रुद्र के अर्थ सुहुत हो ॥ ७ ॥ एवं सप्त यजुषां मध्ये च-  
तुर्थ सप्तमयोर्विनिर्योग उक्तः शेषैः पञ्चशकलै रज्य होमः ॥  
का० २६.६.१७ स्वाहा समिति धर्मसम्बन्धि घृत को उपयमनि  
में सींचें पहिले सुक्स्थ को धर्म में सींचा अब धर्मस्थ को सुक्स्थ  
में डालें ॥ पयोदेवत्यम् प्रा-गा० या-अ० वा० ज्योतिः (धर्मस्थ-  
घृत) ज्योतिः (उपयमनीस्थघृत) करि संगत हो स्वाहा (सुहुतमस्तु।  
ज्योतिर्वाः इतरस्मिन्ययो भवन्ति ज्योतिरितरस्यां ते ह्येतदुभे ज्यो-  
तिषी संगच्छेते इति १४.२.२.४० श्रुतेः पयो देवता ॥ का० २६.६.  
१८ उत्तररौहिण को संज्योतिषा ज्योति एतन्मन्त्रकर्म के अनन्त-  
रहेमें ॥ अहः केतुना ॥ व्याख्याते यजुषी ३७.२१ ॥ का० २६.६.२०  
उपयमनी में आनीत धर्माज्य को अग्निहोत्रहोमप्रकारेण सम-  
न्त्रक होमि के वाजिनवत् उपहवप्रार्थनपूर्वक होता अधर्युः ब्र-  
ह्मा प्रस्तोता प्रतिप्रस्थाता आग्नीध्र यजमान भक्षण करें ॥  
धर्मदेवत्यम् आर्चावृ० अग्निमें मधुर (धर्माज्य) हमलोगों ने होमा  
कैसे अग्नि कि इन्द्रतम (वीर्यवत्तम) में (मधुहृतमिन्द्रियवत्तमे  
अग्नावित्येवैतदाहेति १४.२.२.४२ श्रुतेः ॥ हे धर्म हे देव तेरे हुत  
शेष को हम भक्षण करते हैं तेरे अर्थ नमस्तार ही हमें हिंसा न  
करि (अपना परित्राण प्रार्थना करियें) ॥ १६ ॥

अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रयाः ॥ उत

पि  
रुद्र  
स्तो  
त्रि  
यों  
से  
स्तु  
त  
रुद्र  
के  
अर्थ  
सुहुत  
हो  
॥ ७ ॥

अवसा पृथिवीथं सर्गसीदस्व मुहो ॥२॥ असि रो-  
चस्व देववीतये विभूममने अरुवं मियेय्य सज  
प्रशस्त दशतम् ॥२॥ +

का० २६६ २५ प्रचरणीय महावारकों अभिममिति समन्त्रक आ-  
सन्दी में करें इतरो को चुपके से ततः शान्तिपाठः ॥ गायत्री बृ-  
हत्यो मध्ये वसानहीने अभिममू गायत्री सर्गसीदस्व बृह-  
ती यद्वा वसानत्रयोपेताति शक्करी अग्निदेवत्या एवेव च कृच्छ-  
गदयं वा । हे अग्ने तेरी महिमा दूस बिबि को अभि होती है । कैंसा  
महिमा कि विप्रः (विशेषेण) पूरता है सब को मेधावी । विस्तार-  
सहित । और अव (धनवायश) करि पृथिवी को अभिभवर्तात्यनु-  
षङ्गः ॥ सर्गसीदस्वेति व्याख्याते कादशेध्याये षड्विंशी कण्ड-  
का ११०३६ तत्र शोचस्वेति पाठे च रोचस्वेति अर्थ एक एव ॥ ११०

या ते धर्म दिव्या शुग्या गायत्र्याथं हविर्धाने ।  
सा तः आप्यायतां निष्पायतां तस्यै ते स्वाहा ॥  
या ते धर्मान्तरिक्षे शुग्या विष्टभ्याग्नीध्रे । सा तः  
ऽआप्यायतां निष्पायतां तस्यै ते स्वाहा ॥ या ते  
धर्म पृथिव्याथं शुग्या जगत्याथं सदस्यो । सा तः  
ऽआप्यायतां निष्पायतां तस्यै ते स्वाहा ॥ १८ ॥

का० २६७ ४० अध्वर्यु आज्य को संस्कार करि चतुर्गुहीत करि-  
के तिस से होमें अग्नीधा धियमाण तीनि शालाकात्रिकों में ती-  
नों मन्त्रों से तीसरे की वैठि करि ॥ धर्मदेवत्यानि त्रीणि १०३

+ अ० १६७ अभिममू सर्गसीदस्व अनवसानत्वात् ॥ १० ॥

+ या- हा अ० १६७ उ० ॥ १८ ॥

ऋक्पङ्क्तौ २ यजुः ॥ हे धर्म जो तेरी धु में जुड़ दीप्ति जो गायत्री  
छन्द में प्रविष्टा जो हविर्धान (यज्ञगृह) में प्रविष्टा सो तेरी दीप्ति  
बढो दृढ होओ तिस तेरी दीप्ति और तेरे अर्थ सुहत हो ॥१॥ हे ध-  
र्म जो तेरी दीप्ति अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप् छन्द में और आग्नीध्र  
सदन में प्रविष्टा सो तेरी इति पूर्ववत् ॥२॥ जो तेरी हे धर्म पृथि-  
वी में दीप्ति जगती छन्द में प्रविष्टा सद (यज्ञगृह) में स्थिता सो  
तेरी इत्युक्तम् ॥३॥ १८॥

अ० ३. क्षत्रस्य त्वा पुरस्याय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि । विश-  
त्त्वा धर्मणा वयमनुक्रामाम सुविताय नव्यसे ॥१९॥

का० २६. ७. ६. होम के अनन्तर अध्वर्यु पत्नी की आगे करि  
शाला से निकलें ॥ उपरिष्टादुहती धर्म देवत्या । हे धर्म हम तु-  
म्हें अनु चलते हैं तू ब्रह्म के शरीर को पालि । कि मर्यमनुग-  
मनम् कि क्षत्रिय (देव-सूर्य) के परम (उत्कृष्ट) पालने के अर्थ  
(एतद्वै देवं क्षत्रं य एष तपतीति १४. ३. १. ४. श्रुतेः ॥ किं च वि-  
शः (यज्ञ) की धारणानिमित्त करि हम तुम्हें अनु चलते हैं (य-  
ज्ञो वै विज्यज्ञस्य त्वारिष्ट्ये इति १४. ३. १. ४. श्रुतेः ॥ किमर्थ-  
म् कि नूतन सु प्रसूत कर्म की सिद्ध्यर्थ ॥ १९॥

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वा-  
युः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः । अपह्वे-  
योः अपह्वरोऽन्यब्रतस्य सश्रिम ॥२०॥

का० २६. ७. १४. प्रवृज्जनीय महावीर की उतरवेदि में स्थापन

करे॥ महाब्रह्मी धर्मदेवत्या। वोह धर्म हमारा सर्वायुः (पूर्णायुः प्रदः) हो (पुनरुक्तिरदरार्था)। कैसा बाह कि चतुः सक्तिः (चारों कोण दिगूषा जिस के-एष वै चतुः सक्तिर्य एष तपति दिशां ह्येतस्य सक्तय इति १४.१.३. १७. श्रुतेः। तथा ऋत (सत्य वा यज्ञ) का नाभि (बन्धनस्थान) सविस्तारः। जगत की आयु का दाता। और सर्वतः प्रथयिता। हे धर्म तेरे प्रसाद करि हमलोगों से द्वेष निकलजावे इति शेषः (बीतराग हों इति भावः)। और हमारे सै ह्वर (चलन-जन्ममरणलक्षण) निकलजावे। हम अन्यव्रत (मनुष्य कर्म के सकाश भिन्न व्रत जगदनुग्रहरूप परमात्मा) को सेवन करते हैं (परमात्मा की सायुज्य को प्राप्त होते हैं इति भावः)। अन्यद्वा एतस्य व्रतमन्यन्मनुष्याणामिति १४.३.१. १६. श्रुतेः॥ २०॥

धर्मे तने पुरीषे तेन वर्धस्व चा च प्यायस्व।  
वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि॥ २१॥

का. २६. ७. ३२. गर्तयुक्त पात्रों को दुग्ध से पूरण करे और ते पात्र सप्त हैं (३ महावीर २ पिन्वने १ उपयमनि १ सुवः)। अनुष्टुप् धर्मदेवत्या। हे धर्म यह पय तेरा पुरीष (पूरण करने हारा अन्न) है (अन्नं वै पुरीषमन्नमेवास्मिन्नेतद्वातीति १४.१.३. २३. श्रुतेः)। तिस (पय) करि वृद्ध हो और पूर्ण हो तेरे प्रसाद से हम वर्धिषीमहि आप्यासिषीमहि चेति व्याख्यातम् २. १४. ॥ २१॥



अचिक्रदहृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः॥ सठं  
सूर्येण दिद्युतदुद्धिर्निधिः॥२२॥

का० २६-७-१२-सामगानानन्तर उत्सादन देश में अचिक्रद-  
दिति तीन बार परितो जलसेक करिके वक्ष्यमाण करे॥ परोषिा क-  
यमदेवत्या॥ धर्मः सूर्यात्मना स्तूपते॥ आहुतिद्वारेण वृष्टि कर्ता य-  
र्म प्रवृज्यमानः सन् पुनः-पुनः शब्द करता हुआ॥ केसा  
कि हरितवर्ण वारसों का हर्ता (एष वै वृषा हरिर्य एष तपत्ये-  
ष उ प्रवर्ग्य इति १४-३-१-२६-श्रुतिः॥ महान् (प्रभावसे) मि-  
त्र ऐसे दर्शनीय अत एव सूर्यतुल्य प्रकारों है जल का धर्ता  
निधि सुखों का इति शेषः॥२॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रि-  
यास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्हेष्टि यं च वयं हि-  
ष्मः॥२३॥

का० २६-७-३७-सपत्नीकाः ऋत्विग्यजमानाः चात्वाल  
में यार्जन करते हैं॥ पत्न्या अपि मन्त्रपाठः॥ व्याख्यात  
६-२२॥२३॥

उद्वयं तमेसस्यरि स्वः पश्यन्त उत्तरम्॥ देवं दे-  
वत्रा सूर्यमगेन्म ज्योतिरुत्तमम्॥२४॥

का० २६-७-३८-रेशानी दिशा प्रति यजमान चलता है॥ व्या-  
ख्याता २०-२१॥२४॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो

मयि धेहि ॥२५॥ + ए-हि।अ.स-हि।इ.०।२३॥

का० २६.७.३६. यजमान पीछे को न देखता ईशान देश से लो-  
न करि एधोः सीति मन्त्रेण एक समिध लेके समिदसीति मन्त्रे-  
ण आहवनीय में रखे ॥ मन्त्रद्वयं व्याख्यातम् २०.२३.॥२५॥

यावती यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धुवा वि-  
तस्थिरे। तावन्नामिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्य-  
क्षिते मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥२६॥

का० २६.७.५४. सपवित्रा अग्निहोत्राहवणी में दधिधर्म ग्र-  
हण करें ॥ ब्राह्मी उषिणक् दधिधर्मदेवत्या इन्द्रदेवत्या च। हे  
इन्द्र अन्न सहित अनुपक्षीण तेरे ग्रह नितने परिमाण को में  
ग्रहण करता हूं और मूर्ख विषे अनुपक्षीण जैसे हो तैसे ग्र-  
हण करता हूं। तेरे ग्रहण करि मूर्ख में यज्ञक्षय न हो इत्यर्थः।  
नितना कितना कि यावापृथिवी जितनी और सप्त समुद्रा  
जितने परिमाण देश में विषेण स्थित हैं तितने महत्तर दधि-  
धर्म को ग्रहण करता हूं इत्यर्थः ॥२६॥

मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः।

धर्मस्त्रिभुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह  
ज्योतिषा तेजसा सह ॥२७॥

का० २६.७.५५. इतौ शेष दधिधर्म को यजमान ऋत्विज सो-  
पहव भक्षण करें ॥ यच्चपदापङ्क्तिर्यजमानाशीर्देवत्या दधि-  
धर्म देवत्या चेति महीधरः। वडा वोह (प्रसिद्ध) इन्द्रिय (वीर्य)

मुरु में विराजै। दक्ष (संकल्पसिद्धि) मुरु में वि०। क्रतु (सत्संकल्प) मुरु०। विराज (जगत्प्रसिद्ध) ज्योति (तेजः) आदित्यारब्ध सहित और ब्रह्म (त्रयीलक्षण) तेज सहित धर्म मुरु०। कैसा धर्म कि त्रिशुक् तीन हैं दीप्ति हैं जिस की बोह-या ते धर्म दिव्या-श्रुगित्यष्टादशी कण्डिका शालोक मन्त्र में कह गया ॥२७॥

पयसो रेत आभृतं तस्य दोहमशीमत्युत्तरामुत्तरा-  
थं समाम्। त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुमा-  
स्य ते सुषुमाग्निद्वतः। इन्द्रपीतस्य प्रजापति-  
भक्षितस्य मधुमत उपहृत उपहृतस्य भक्षयामि ॥२८॥

इति संहितायां तृतीयोऽनुवाकः ३

इति श्री सुक्ल यजुषि मांथ्यन्दिनीयायां वाजसनेय  
संहितायां दीर्घपाठेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥३८॥

धर्मदेवत्या गायत्र्यनवसाना। दधियर्मभक्षणे एव विनियु-  
क्ता। पय का रेत (वीर्य-सार-जगदुत्पत्तिबीज) जो आहरण  
किया दधियर्मरूप तिस के दोह (प्रपूरण) को हम उत्तरो-  
त्तर इस वर्ष में व्याप्त हों। (सर्वदा हम यायजूका हों) इत्यर्थः॥  
का० २६००५६० महावृतीय दिवस में त्विष इति मन्त्रेण हु-  
तशेष दधियर्म को भक्षण करना ॥ इन्द्रियर्मदेवत्यं यजुः॥  
हे त्विषः संवृक् (कान्ति के स्वीकर्त्ता है) हे सुषुमाः (शोभ-  
नसुरबदातः) हे दधियर्म में उपहृत किये सन् तेरा अंश वा  
तुम्हें भक्षण करता हूँ + कैसा तेरा कि संकल्प का सिद्धिदाता। +

एकसे-शेषः पादपूरणः

इति भाष्ये तृतीयोऽनुवाकः ३

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी प्रारवाध्येत व्याघ्रपाद-  
न्वय विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिंशोर देव वर्म्मात्मज रो-  
क्मिणेय नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थ प्रदीपे गिरिधर-  
भाष्ये श्रुक्रियायां महावीर निरूपणे षष्ठात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

हरिः ओम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनेर्बहुरूपकम्  
स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३६

ॐ०१० स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः । पृथिव्यै स्वा-  
हाग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा । दि-  
वे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ॥१॥+

ॐ नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेनोपान्त्येऽध्याये प्रदीपके  
व्यते संहिताभाष्ये सुक्ते धर्मादि निष्कृतिः ३४.

प्रवर्ग्ये यमभेदे प्रायश्चित्तम् नत्र का० २६.७.४६. अर्घ्यं भूमि-  
मिमं यः कृतेचिदिति हो मन्त्रों से भग्नधर्म की स्पर्शकरि परमे-  
ष्ठादि ८.५४-५६ चतुर्विंशत् आहुतियों होमिके स्वाहा प्राणेभ्य  
इति आद्या (पहिली) पूर्णाहुति को होमि पृथिव्ये स्वाहेति विंश-  
ति २० आहुतियों को सहजहुती करि होमि के मनस इति अन्त्या  
(पिछिली) पूर्णाहुति को करे ॥ स्वाहा प्राणेभ्यः १-३. मान्त्रवर्णि-  
को देवता। स्वाहा प्राणेभ्यः या-त्रि० मन्त्रार्थस्तु। अधिपति (हिर-  
ण्यगर्भ) सहित वर्तमान प्राणों के अर्थ स्वाहा (सुहुनमस्तु) इति  
पूर्णाहुतिमन्त्रः। ततो विंशतिः स्यष्टा मन्त्राः १. २. ४. ६. ८. ११. १४.  
१६. १७. १८. १९. २०. दे-यं ३. दे-ज ५. ७. १०. १२. १४. दे-वृ ८.  
११. दे-त्रि० पृथिवी के अर्थ सुहुन हों। एवमग्रेपि अग्नये अ-  
न्तरिक्षाय वायवे दिवे सूर्याय ॥ १॥

दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहा-  
द्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा। नाम्ने स्वाहा पूता-  
य स्वाहा ॥ २॥ +

दिग्भ्यः चन्द्राय नक्षत्रेभ्यः अद्भ्यः वरुणाय नमिदेवता-  
शोधकदेवता ॥ २॥

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा। चक्षुषे  
स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वा-  
हा ॥ ३॥ +

वागभिष्टान् एवमग्रेपि। प्राणेन्द्रियाधिष्ठान् (प्राणेशानां हि

+ दि-हा। अ० च-हा। इ० न-हा। उ० ज-हा। ऋ० व-हा। ल० ना-हा। आ० पू-हा। ई० म०  
+ वा-हा। न० ज्ञा-हा। इ० उ० च-हा। ऋ० ल०। ओ-हा। आ० ई० ॥ ३॥

त्वान्मन्त्रावृतिः। चक्षु तिस के अधिष्ठान्। श्रोत्र के अधिष्ठा-  
न०॥३॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय। पशू-  
नां रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि  
स्वाहा ॥४॥

द्वितीयः पूर्णहुतिमन्त्रः। अनुष्टुब्यजमानाशी श्रीदेवत्या। में  
मन के अभिलाष और आकूति (प्रयत्न) को प्राप्त होंउ और  
वाणी सत्य को प्राप्त होवै। मेरे विषे यह सब तिष्ठे पशुसम्ब-  
न्धिनी शोभा अन्न का स्वादुत्व यश (कीर्ति) और लक्ष्मी ॥४॥

प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो वैश्व-  
देवः संसृजो घर्मः प्रवृत्तस्तेज उद्यत आश्वि-  
नः पर्यस्यानीयमाने पौष्णो विष्यन्दमाने मा-  
रुतः कथन्। मैत्रः शरसि संताप्यमाने वायव्यो  
द्वियमाण आग्नेयो हूयमानो वायुतः ॥५॥

का० २६.७.५०० सम्भ्रियमाणश्च वस्था (महावीरभेद) में प्रजा-  
पतये स्वाहात्याद्या यथा काल आहुतियें होमियें हैं ॥ तद्यथा  
मन्त्रो दर्शयति सम्भ्रियमाण महावीर जब कि फट्टे दूटै त-  
ब प्रायश्चित्तहोम में प्रजापति देवता हैं। प्रजापतये स्वाहेति  
प्रायश्चित्ताहुति होमियें हैं इत्यर्थ (प्रजापतिः सम्भ्रियमा-  
णो यथाकालं प्रायश्चित्तदेवतेत्युक्तत्वात् अनुक्रम० ४.  
८। द्वे ५.६ यजुषी ॥ पयोऽवसेकानन्तर कुशासादनसिपूर्व



सम्भृत कहियेहै तिस के भेद (फटने-टूटने) में सम्राट् प्रायश्चित्त-  
 देवता, सम्राजे स्वाहेति ॥ आसादन सै ले मुञ्जप्रलवों पर  
 अधिश्रयण सै प्राक् सठसन्नः तहां भेद में विश्वदेवदेवतः विश्वे-  
 भ्यो देवेभ्यः स्वाहेति ॥ अधिश्रयण सै ले परिशासों करि ग्रहण  
 सै पूर्व प्रवृत्तः (प्रवृज्यत इति) तत्र भेदे यर्माय स्वाहेति ॥ उद्यम-  
 नसै ले अजापयो वसेक सै प्राक् उद्यतः तत्र भेदे तेजसे स्वा-  
 हेति ॥ अजापय के आसिच्यमान घर्मभेद में अश्विदेवत्यः घ-  
 र्महै, अश्विभ्यां स्वाहेति होमियेहै ॥ विशेषेण स्पन्दमान  
 (घीके बाहिर स्रवते) में घर्मः पूषदेवत्यः पूषो स्वाहेति हो ॥  
 मध्य में घीका आवर्तन तब मरुदेवत्यः तत्र भेदे मरुद्भ्यः स्वा-  
 हेति जुहोति ॥ पयो वसेक में योपरि तरिका उत्पन्न होती है वो-  
 ह शर कहिलाती है तिस के संताप्यमान (एध्यमान) में मित्रदे-  
 वत्यः तत्र शरआदि हरण सै प्राक् भेदे मित्राय स्वाहेति जु० ॥  
 आहवनीय की द्वियमाण होम सै पहिले वायुदेवत्यः तत्र भे-  
 दे वायवे स्वाहेति जु० ॥ ह्यमान घर्म अग्नि देवत है तत्र तवे-  
 दे अग्नये स्वाहेति जु० ॥ होम सै ऊपर उत्तरघर्मारम्भ सै प-  
 हिले वाग्देवतः तत्र भेदे वाचे स्वाहेति जु० ॥ एता आहुतिये  
 सकृद्गृहीत आज्य करिकें होमियेहैं ॥ ५ ॥

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीयं वायुस्तृतीयं आ-  
 दित्यश्चतुर्थं चन्द्रमाः पञ्चमः ऋतुः षष्ठे मरु-  
 तैः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रो नवमे वरु-

एण दशमः इन्द्र एकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥६॥  
 का० २६.७.५१ और सविता प्रथमे हन्ति प्रतिदिन में तथाचा-  
 नुक्रमणी ८.४ सविता प्रथमे हन्त्यहं क्रमेण ॥ प्रथम दिन  
 धर्म भेद में सविता सवित्रे स्वाहेति जु० ॥ एवमग्रेऽपि । दूसरे दि-  
 न य० अग्नि दे० अग्नये स्वा० ॥ तीसरे दिन वायवं स्वा० ॥ चौ-  
 थे दिन आदित्येभ्यः स्वा० ॥ पाँचमें चन्द्रमसे स्वा० ॥ छठवें ऋ-  
 तुः ॥ सातवें मरुतः ॥ आठमें बृहस्पतिः ॥ नवमें मित्रः ॥ दश-  
 में वरुणः ॥ एकादशे इन्द्रः ॥ द्वादशे विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वा-  
 हेति जु० ॥ उपसत्प्रवृद्धो एता एवाहुतयः पुनरादित आरभ्या-  
 वर्त्यन्ते ॥६॥

अ० २ उग्रश्च भीमश्च धान्तश्च धुनिश्च । सामह्वंश्चामि-  
 युग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥७॥

का० १८.४.२४ चयन में मारुतों षट् पुरोडाशों को शुक्रज्यो-  
 तिश्चेत्यादि षट् मारुतमन्त्रों से १०.८०-८५ होमि के अरण्यमें  
 अनूच्यसंज्ञक सप्तमपुरोडाश विमुख संज्ञक को उग्रश्चेति  
 मन्त्र करि हेमें तथाचानुक्रमणी ४.८ उग्रश्च मारुती गायत्री  
 विमुखारव्यो मन्त्रोऽग्नौ विनियुक्तस्तस्मादाग्निक एवास्यऽर्घिः  
 परमेष्ठी प्राजापत्यो वेति । आग्निकः प्रजापतिर्ऋषिः । अस्य म-  
 न्नस्यात्र पाठोऽरण्ये पाठयोग्यत्वात् । अथ मन्त्रार्थः ॥ जो एते  
 उग्रादिनामकाः सप्त मरुतः तिन्हों के अर्थ सुहुत हो । उग्र (उ-  
 त्कृष्ट ॥४३॥ विभेदने हारा ॥४४॥ शब्द करता ॥४६॥ शत्रुओं को

कंपाता ॥४६॥ शत्रुओं को अभिभवता ॥४७॥ हमारे संमुख योग  
को प्राप्त होता ॥४८॥ रिपुओं को विविध क्षयता ॥४९॥ ७॥

अग्निर्हं हृदयेनाशनिर्हं हृदयाग्रेण पशुपतिं कृ-  
त्स्नहृदयेन भवं यक्रा। शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं  
मन्युना महादेवमन्तःपरीव्येनोग्रं देवं वनिष्पु-  
ना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ॥ ८ ॥

का० २००८६-८० उग्रश्चेति मन्त्र विमुख है तिस से परे देवता अश्व-  
जों के अर्थ अग्निर्हं हृदयेनेत्यादिकों से चतुर्गृहीत आज्य को ले-  
लेकर होमें। तत्रापि यक्षद्वयम्। अग्नये स्वाहा हृदयाय स्वाहा अश-  
नये स्वाहा हृदयाग्राय स्वाहा इत्यादि कात्यायनादिकों का अभि-  
प्राय है अग्निर्हं हृदयेन ग्रीणामि स्वाहेत्यादि हरिस्वामिमते  
प्रयोगः। ततश्चाग्निर्हं हृदयेनेत्यादीन्विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहे-  
त्यन्तो होमें को करिके मान इति अनुवाकों २५-२४-३६०  
से षोडशाहुतियें होमिके द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहेति चरमा आ-  
हुति को होमें इति सूत्रार्थः॥ अरण्येऽनूच्यान्नुवा द्यावापृथिव्या-  
मुत्तमाहुतिं जुहोतीति श्रुतेः॥ अरण्य में अनूच्यों (पठितों) अ-  
ग्निर्हं हृदयेनेत्यादिकों विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेत्येवमन्तो होमें  
को करिके द्यावापृथिवीयामुत्तमा आहुति को होमें इति श्रुत्य-  
र्थः॥ तथा चानुक्रमणी ४०८० अग्निर्हं हृदयेणाश्वमेधिकानि  
तत्रोक्त एवर्षिलोमभ्यः स्वाहेति प्रायश्चित्ताहुतयो द्वित्वा-  
रिर्हंशत्। तत्राग्निं हृदयेण उग्रं लोहितेन हं कण्डिके ब्राह्मण-

रूपे देवताश्चावयवसम्बन्धविधानात् अरण्येऽध्येयत्वादिह  
पाठः । लोमादीन्यङ्गान्येव परितानि आयासादयो देवता ए-  
व ॥ अथ मन्त्रार्थः ॥ हृदयाङ्गं करि अग्निदेव को प्रीणामि (तृ-  
प्त करता हूँ ॥ हृदय के अग्रभाग करि अशनिदेव को प्री० ॥ स-  
मग्रहृदय करि पशुपतिदेव को प्री० ॥ यकृत (कालखण्ड) करि  
भवदेव को प्री० ॥ मतस्ताम्रं (हृदयास्थिविशेषों तिन्हें) करि श-  
र्वदेव को प्री० ॥ मन्यु (अश्वसम्बन्धिक्रोध) करि ईशान देव को  
प्री० ॥ अन्तर्वर्ति पर्शव्य (पार्श्वस्थ सम्बन्धिमांस) करि महादेव-  
देव को प्री० ॥ वनिष्टः (स्थूलान्त्र) करि उग्रदेव को प्री० ॥ वसिष्ठदे-  
व का हनुः (कपोलैकदेश) जानना । यद्वा वसिष्ठा जो हनुः (कपोल  
का अधोभाग हनता आहार को) हनुः लिङ्गव्यत्यः वसिष्ठहनुः  
तिसः करि और कोश्याम्रं (हृदयकोशस्थमांसपिण्डों) करि शि-  
ङ्गि संशकदेवताओं को प्री० ॥ ८ ॥

उग्रं लोहितेन मित्रं सौव्रत्येन रुद्रं दौर्ब्रत्येनेन्द्रं  
प्रकीडेन मरुतो बलेन साध्यान्प्रमुदा । भुवस्य  
कण्ठ्यं रुद्रस्यान्तःपार्श्वं महादेवस्य यकृच्छर्व-  
स्य वनिष्टः पशुपतेः पुरीततू ॥ ८ ॥

लोहित (असक्त) करि उग्रदेव को प्री० ॥ सौव्रत्य (शोभनगत्यादि-  
कर्मकर्तृत्व) करि मित्रदेव को प्री० ॥ दौर्ब्रत्य (दुष्ट-स्वलनोच्छल-  
नादिव्रत) करि रुद्रदेव को प्री० ॥ प्रकीड (प्रकृष्टक्रीडन) करि इन्द्र  
देव को प्री० ॥ बल (सामर्थ्य) करि मरुदेवताओं को प्री० ॥ प्रमुदा

(प्रहृष्टहर्ष) करि साध्य देवताओं को प्री०॥ कण्ठ में हुआ मांस भ-  
व देवता का हो वा कण्ठ में हुआ मांस करि भवदेवता की प्री०॥ एवम-  
येऽपि। पार्श्व के मध्य में हुआ मांस रुद्रदेवता का हो॥ यकृत (काल-  
खण्ड) महादेव-देवता का हो॥ स्थूलान्त्र शर्वदेवता का हो॥ परीत-  
त (हृदयाच्छादक अन्त्र) पशुपति देवता का हो॥ ४८॥

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्व-  
चे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदो-  
भ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा। माथंसेभ्यः स्वाहा मा-  
थंसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहास्थ-  
भ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः  
स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा॥ १०॥

त्रीणि यजूंषि ॥ लोमभ्यः स्वाहेति प्रायश्चित्ताहुतयो द्विचत्वारि  
ष्टंशतू॥ लोमादिक अङ्ग-हं। लोमभ्यः स्वाहा (लोमों की होमता  
हं इत्यर्थः) २० त्वचे ४० लोहिताय ६० मेदोभ्यः (मेदो-ध्यातुविशेषः  
८० माथंसेभ्यः १०० स्नावभ्यः (स्नायवोऽनसाः) १२० अस्थभ्यः  
१४० मज्जभ्यः (मज्जाः षष्ठोऽध्यातुः) १६० रेतसे (वीर्यः) १७० पाय-  
वे (गुदा) १८०॥ १०॥

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वा-  
हा वियासाय स्वाहाद्यासाय स्वाहा। शुचे स्वाहा  
शौचते स्वाहा शौचमानाय स्वाहा शौकाय स्वा-  
हा॥ ११॥

तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा  
तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा । निष्कृत्यै स्वाहा प्रा-  
यश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥१२॥

यमाय स्वाहान्नकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा ब्रह्मणे  
स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वा-  
हा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥१३॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनशाखीयायां वाजस-  
नेय संहितायां दीर्घपाठे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३६॥

आयासाय (आयासादयो देवविशेषाः) १६. प्रायासाय २० संयासाय  
२१. वियासाय २२. उद्यासाय २३. शुचे २४. शोचते २५. शोचमानाय  
२६. शोकाय २७. तपसे २८. तप्यते २९. तप्यमानाय ३०. तप्ताय ३१.  
घर्माय ३२. निष्कृत्यै ३३. प्रायश्चित्यै ३४. भेषजाय ३५. यमाय ३६. अ-  
न्नकाय ३७. मृत्यवे ३८. ब्रह्मणे ३९. ब्रह्महत्यायै ४०. विश्वेभ्यो देवे-  
भ्यः ४१. एतेभ्यो देवेभ्यः सुद्धतमस्तु । एता आहुतियै होमिके द्या-  
वापृथिवीभ्यां स्वाहेत्यन्ता आहुतिहोमै ४२. ॥ एता वता  
कर्म काण्डं समाप्तम् ॥११॥ १२॥ १३॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
पुमांश्चतुरो देयान्महाविष्णुर्मखाधिपः ३६.



श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्व-  
यविश्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरेणुकिमण्य  
नृपतिगिरिप्रसादेनरचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये शुक्रि-  
यायां प्रायश्चित्तवर्णनो नामैकोन चत्वारिंशोऽध्यायः॥३६॥

गिरिप्रसादसर्वस्वे श्रीवेदार्थप्रदीपके  
व्यरमत्कर्मकाण्डोऽयंवल्लभाग्निप्रसादतः१

अस्याग्रे एकेनाध्यायेनज्ञानकाण्डोभविष्यति

आश्विनस्यामले पक्षे चतुर्थ्यामानुवासे  
ग्रहनेत्राङ्कभूवर्षे कर्मकाण्डः समागमत्१

ॐ शान्तिः

शान्तिः

शान्तिः

हरिः ओम्

ॐ नमः परमात्मने

नमो भगवते तस्मै कृष्णायानुत कर्मणे  
रूपनामविभेदेन जगत्कीडनि यो यतः ४०

३० १० ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्। ते  
न त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधुः कस्य खिन्नम् ॥ १॥  
नत्वा रविं याज्ञवल्क्यं दध्यङ् दायर्वणं तथा  
संहिता चरमाध्याये ज्ञानकाण्डो वितन्यते २

एकोनचत्वारिंशताध्यायैः कर्मकाण्डं निरूपितम् इदानीं क-  
र्माचरणशुद्धान्तःकरणं प्रति ज्ञानकाण्डमेकेनाध्यायेन निरूप्यते।  
ईशा वास्यमित्यादिमन्त्राणां कर्मसु विनियोगो नास्ति तेषां शुद्ध-  
त्वेकत्वापापविद्वत्वाशरीरत्वसर्वगतत्वाद्यात्मयाथात्म्यप्रतिपाद-  
नात् तच्च कर्मणा विरुध्यते न हीदृगात्मोत्पाद्यो विकार्यग्राप्यः  
संस्कार्यः कर्ता भोक्ता वा भवेद्येन कर्मशेषता स्यात् तस्मा-  
दविद्याकृतमात्मनोऽनेकत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वाशुद्धत्वपापविद्व-  
त्वाद्यङ्गीकृत्य लोकबुद्धिसिद्धानि कर्माणि विहितानि यो  
हि दृष्टेन ब्रह्मवर्चसादिना दृष्टेन स्वर्गादिना कर्मफलेनार्थी स-  
न्नहं द्विजातिः कर्माधिकारवानित्यात्मानं मन्यते तस्य कर्म-  
धिकारः तस्मादेते मन्त्रा आत्मयाथात्म्यप्रकाशनेन शोक-  
मोहादिसाधनमज्ञानं विनिवर्त्यात्मज्ञानं जनयन्तीत्यभि-  
ध्येयसम्बन्धप्रयोजनानि। इदानीं ते मन्त्रा व्याख्यायन्ते ॥

हरिः ओम्

ओं नमो वेदपुरुषाय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

इर्यते चरमोऽध्यायः परमात्मनिरूपकः ४०

ईशा वास्यम्। आत्मदेवस्य अनुष्टुप्छन्दस्कोऽध्यायो दधीचार्थ-  
वर्णेन दृष्टः॥ ॥ गर्भाधानादिसंस्कारसंस्कृतमधीतवेदं ज-  
नितसुतं यथाशक्तिकृतयज्ञं निष्पापं निःस्पृहं यमनियमोपेतं  
सुमुक्षुमुपसन्नं शिष्यं पुत्रं वा ऋषिरुषदिशन्नाह ॥  
ईशा (परमेश्वर) सो ही सब जन्तुओं का आत्मा होते सब को ई-  
शे तेन अपने आप करि ईशा यह प्रत्यक्ष से दृश्यमान सब  
वास्यम् (आच्छादनीय है) परमात्मा हमें वेद सर्व इति परमार्थस-  
त्यरूपेण आत्मा करि सब यह आच्छादनीय अनृत है पर-  
मात्मा हमें वास्मि नान्यदस्तीति चिन्तन करे इत्यर्थः। यत्  
किम् चेति भिन्नक्रमः किं च जो जगती (तीनों लोक) में ज-  
गत् (जङ्गमादिक स्वामिसम्बन्धालिङ्गित) हो तिस सब त्यक्त  
स्वस्वामिसम्बन्ध करि भोग को अनुभव करे मा गृधुः (आ-  
कांक्षा मत करि यह मेरा यह बुद्धि त्यागि) किमिति स्वदि-  
ति निपातों वितर्के धन किस का स्वित् किसी का भी नहीं  
इत्यर्थः सब द्रव्यें अन्योन्य के समीप में जाते दीख पड़ते  
हैं इस हेतु यह मेरा यह बुद्धि अविद्या है तिसें छोड़ते  
योग में अधिकार है इत्यर्थः ॥१॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छुतर्हं समाः। एवं त्व-  
यिनान्यथेतुःस्ति न कर्म लिप्यते नरः॥२॥

आत्मज्ञानाशक्तस्य कर्मोपदेशमाह। कर्मा (अग्नि होत्रादि-  
कों निष्कामों मुक्ति के हेतुओं) की करते ही इस लोक में शतव-  
र्ष तू जीने के लिये इच्छा करे (पुरुषायुषः शतवर्षत्वाच्छतग्रहण-  
म्। तेरी ऐसे कर्म करते जीतेजी मुक्ति है इतिशेषः) उस प्रकार से  
अन्यप्रकार करि मुक्ति नहीं है अयमर्थः स्वर्गादिप्राप्ति  
में जैसे नानाप्रकार हैं नहीं हैं तैसे मुक्ति में इत्यर्थः निष्का-  
मकर्मानुष्ठान करि शुद्धान्तः करण की ही मुक्ति है इत्य-  
र्थः न तु कर्म की फल करि चाहकरना कथं मुक्तिरि-  
त्यत आह न कर्मेति मुक्त्यर्थं क्रियमाणं कर्म मनुष्य में न  
लिप्ये (बँधे) मुक्तिकारणान्तः करणशुद्धि अपादकत्व करि उ-  
पक्षीणशक्तित्व से जितनी इच्छा तितने कर्मों में अधिकार य-  
ह दिखलाया। उत्तरार्धस्यार्थान्तरं वा इस प्रकार तुरुजीनेकी  
इच्छा रखनेहारे नर (नरमात्राभिमानी) में इस कर्म करनेसे अ-  
न्यथा (प्रकारान्तर) नहीं कि जिस प्रकार से अशुभकर्म न  
लिप्ये अतः शास्त्रविहित कर्म करते ही जीने के लिये  
इच्छा करे प्रत्यवायपरिहार के अर्थं तदुक्तम् द्वाविमावय प-  
न्थानो यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तो  
च विभाषित इति॥२॥

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।

तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥  
अथ काम्यकर्मपरान्निन्दति । जे कोइक मनुष्य आत्महनः  
(आत्महत्यारे) अविद्वांसः काम्यकर्मपराः विद्यमान अजर  
अमर आत्मा का अविद्यादोष करि अनादर करते हैं ते मृत्यु  
हो (देहछोडि) कर तिन लोकों (स्थावरान्त जन्मों) को प्राप्त  
होते हैं । तिन किन्हों कि नाम (प्रसिद्ध) जे + लोक (लोकियें-  
देखियें-भोगियें-हैं कर्मफल जहां इतिजन्म) असुर्योः असु-  
रों (प्राणपोषणपरायणों) के अद्वैत को अपेक्षा करि दे-  
वता भी असुर हैं । कैसे लोक कि अदर्शनात्मक अज्ञानक-  
रि आच्छादित हैं । अर्थात् आत्मा के न जाननेहारे पुनः-  
पुनः उत्पन्न होते और मरते हैं ॥३॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आपुवन्पू-  
र्वमर्शत् । तद्वावतो न्यानत्येति तिष्ठन्तस्मिन्नुपो  
मातुरिश्वा दधाति ॥४॥

मुमुक्षुभिर्याहं ब्रह्मात्मत्वेनोपास्यम् यस्याज्ञानात्संसार-  
स्तदात्मस्वरूपमाह । त्रिष्टुब्धन्दस्केयमृक् । जो ब्रह्म अनेजतु (न-  
हीं काँपता) चलता सदा एकरूप) एक (अद्वितीय) सब भूतों में  
विज्ञानधनरूप करिके । मन (संकल्पादिलक्षणा) में जवीयः (अ-  
त्यन्त वेगवान्) ननु अनेजद्देवतोर्विरोधः मैवम् निरुपाधि-  
त्वकरि अनेजत् और संकल्पविकल्परूप अन्तःकरण की  
उपाधि के अनुवर्तन से जविष्ठ देहस्थ मन का दूरस्थ ब्रह्मलो-

कादिसंकल्पन क्षणमात्र से होता है इस हेतु मन वेगवत्तर लोक में प्रसिद्ध है मनसि दूर गच्छत्यात्म चैतन्यावभासः प्रथम प्राप्त इव गृह्यते इस कारण मन से जवीय यह कहा गया । देवाः (द्योतनात्मकाः चक्षुः से आदि ले इन्द्रिये) एतत् (प्रकृत आत्मतत्त्व) को नहीं प्राप्त होते हैं अर्थात् चक्षुरादिकों से मन जवीय अतः मनोव्यापार में व्यवहितत्व से आत्मा का आभासमात्र भी देवताओं का गोचर नहीं होता है इत्यर्थः क्योंकि पूर्वमर्शे (वेगवन्मनसे) भी प्रथम ही गया-व्योमवद्भाषित्व से सर्व संसारधर्मवर्जित सो आत्मतत्त्व निरुपाधिकस्वरूप करि अविक्रिय ही सत् उपाधि करी हुई सब संसारविक्रिया अनुभव करै है ऐसे यह अविवेकियों के प्रतिदेह को अनेक ऐसे प्रतिभासे है इतिभावः यद्वा पूर्वम् (पूर्वविद्यमान) अर्शात् (नही नाश होता) किं च तत् (जो) आत्मतत्त्व धावतः (शीघ्रचलते) अन्यो (मनोवागिन्द्रियादिकों आत्मविलक्षणों) को अत्येति (अतीत्य जाता) ऐसा है कैसा कि तिष्ठत् (आप अविक्रिय होने से ही चलता है) मातरिश्वा (वायु ५) तस्मिन् (तिसनित्यचैतन्यस्वभाव आत्मतत्त्व में) अपः (कर्मों को दधाति (धारण करता है) कार्यकारणजात जिस में ओतप्रोत हैं और जो सूत्रसंज्ञ सबजगत का विशेष करि धारण करनेहारा सर्वप्राणभृत्क्रियात्मक सो वायु भी प्राणियों की चेष्टालक्षण अग्निरविमेधादिकों के ज्वलनदहनप्रकाशाभिवर्धक कर्मों को जिस ब्रह्म में दधाति

+ रिश हिंसायाम्  
# तदः स्थाने यतो वृत्तिः



विभजवाता वा धारण कराता है + सब ही कार्य कारणदिक्रियाएँ  
सर्वास्पद नित्यचेतन्यरूप ब्रह्म में सत्येव होती हैं इत्यर्थः। य-  
द्वा मातरिश्वा (वायु) अपः (कर्मों-यज्ञ होमादिकों) को जिस में  
स्थापन कराता है स्वाहा वाते धा इति ८-११ समिष्टयजु  
में वायुस्थत्व कहिने से कर्मों को तब तक वायु में स्थापन करिये  
है समिष्टरूप वोह वायु भी जिस में कर्मों को स्थापन करा-  
ता है यागहोमदानादि कर्मों का परम निधान है इत्यर्थः ॥४॥

तदेजति तन्नेजति तदूरे तदन्तिके। तदन्तरस्य स-  
र्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

रहस्यं सकृदुक्तं चित्ते नायातीति पूर्वमन्त्रोक्तमप्यर्थं पुनर्वद-  
ति। सो प्रकृत (आत्मतत्त्व) एजति (चलता) और सो ही आप  
से नहीं चलता है अचल होने से मूढ़ दृष्टि करि चलता ऐसा है इ-  
त्यर्थः। किं च सो दूर में (अविद्वानों को) कोटि वर्ष पर्यन्त न प्रा-  
प्त होने से दूर में ऐसा है इत्यर्थः। सो ही समीप में (विद्वानों को)  
आत्मत्व करि भासमानत्व से नहीं केवल दूर और समीप में।  
इस सब (नामरूपक्रियात्मक जगत) के भीतर सो ही है। इस  
सब के बाहिर भी सो ही है ब्रह्मन भोवत् व्यापक होने से ॥  
अस्य मन्त्रस्यार्थान्तरं यथा पूर्वमन्त्रेण कारणरूपमा-  
त्मानमुद्दिश्य कार्यरूपमुद्दिश्यति। तदेजति। तिस्रोऽनुष्टुभः॥  
सो आत्मतत्त्व एजति। सर्वजन्तुरूप करि स्थित होने से कांपता  
क्रियावत् होता है। और सो ही स्थावररूपावस्था में नहीं चलता।

+ भीषां ऽस्माद्वतः पवते। भीषो देति सूर्यः। भीषा ऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्च-  
म इति तैत्तिरीयार. ०. ८. ८. श्रुतिः। ८. आप्यन्ते (प्राप्यन्ते) मुखदुःखानि याभिस्ता-  
आपः कर्मणि।

५ सो ही दूरमें (आदित्यनक्षत्रादिरूप करि स्थितत्वसे) सो ही समीप में (धरादिरूपत्वसे) सर्व खल्विदं ब्रह्मेति श्रुतेः। इस सब प्राणिजाति के भीतर में सो ही है विज्ञानधनरूप करिके। इस सब के बाहिर में सो ही है जडरूपत्व से अर्थात् चेतनाचेतनरूप अनन्त ब्रह्म है ऐसे के जपासक का अर्चिरादिमार्ग करि गमन नहीं है यहां ही ब्रह्मप्राप्ति से नहीं तिस के प्राण ऊंचे चलते यहां ही भले प्रकार लय होते हैं ब्रह्मैव सन्नत्वाप्येतति श्रुतेः॥५॥  
यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति॥६॥

अथोपासनप्रकारमाह। पुनः जो मुमुक्षुः सब भूतों (अव्यक्तों में आदिले स्थावरान्तों चेतनों) को अपने में ही देखता है (मुख में ही सब भूत स्थित हैं नहीं हैं मुख से व्यतिरिक्त) और सब भूतों में अपने को अवस्थित अव्यतिरिक्त देखता है अर्थात् तिन भूतों के स्व आत्मा को आत्मत्व करि देखता है इत्यर्थः। अयमर्थः। इस कार्यकारणसंघात का आत्मा हूं सर्वप्रत्ययसाक्षी भूतश्चेतयिता और निर्गुण और तैसे ही स्वरूप करि अव्यक्तादि स्थावरान्तों का मैं ही आत्मा यह सर्वों में अपने को निर्विशेष देखता है। ततः (तैसे देखनेसे) न विचिकित्सति (नहीं संशय को प्राप्त होता। भाव यह है कि आत्मा को अन्य न देखते सब संदेह होता है आत्मा को अत्यन्त शुद्ध निरन्तर देखते नहीं है संदेहावकाश इस हेतु आत्मज्ञ की विचारनि-

वृत्तिहे ॥६॥

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः॥ तत्र को  
मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः॥७॥

इममेवार्थमन्यो मन्त्रो वदति। जिसे (अवस्थाविशेष) में वि-  
जानतः (यह जानते) कि आत्मा ही है यह (उस सर्वं खल्विदं  
ब्रह्मेत्यादि वाक्यविचारकर अवधूत परमार्थके) सब भूत आ-  
त्मा ही हुए (परमार्थदर्शनसे आत्मा ही संवृत्त है) तिस अवस्था  
विषे एकत्व (विशुद्धगणोपम आत्माके एकत्व) देखते (जान-  
ते) कहां मोह और कहां शोक भाव यह कि अविद्या कार्य शोक  
मोहों के न होने से सकारण संसार का अत्यन्त उच्छेद है ॥७॥

स पर्यगाच्छुक्रमकायमब्रह्मस्त्राविरेहं शुद्धमपापवि  
द्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोः  
र्थान्त्वदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

एवम्भूतात्मज्ञस्य फलमाह। जगती छन्दस्केयमुक्त्वा जो ऐसै  
आत्मा को देखता है सो ऐसै ब्रह्म को प्राप्त होता है। कैसे कि  
शुक्ल (शुद्ध) विज्ञानानन्दस्वभाव अचिन्त्यशक्ति। अकाय (श-  
रीररहित)। अकायत्व से अब्रह्म (अक्षत)। अस्नाविर (शिरार-  
हित, अकायत्वादेव)। शुद्ध (सत्त्वरजतमों से अनुपहत)। अपा-  
पविद्ध (केशकर्मविपाकाशयों से अस्पृष्ट)। ऐसे ब्रह्म को आ-  
त्मज्ञ प्राप्त होता है इत्यर्थः॥ पुनस्तस्यैव फलान्तरमाह जो ऐ-  
सा उपासक सो अनन्तवर्षप्राप्ति के अर्थ यथास्वप्न स्वप्ना-

अकार्यमब्रणमस्माद्विरमिति पुनरुक्तमर्थानिश्चयद्योतनाय अभ्यासे भूषासमर्थं मम्यन्त इति याज्ञिकैः  
निरु० १००, ४२, १

मिसम्बन्ध छोड़ि चेतनाचेतन अर्थों से उपभोग करता हुआ।  
 कैसा कि कवि (कान्तदर्शी) मनीषी (मेधावी) परिभूः (ज्ञानवल  
 से) सर्वरूप (स्वयम्भूः) ब्रह्मरूप करि होनेहार। ऐसा पूर्वोक्त शु-  
 क्रमकायमित्यादिविशेषणविशिष्ट ब्रह्म को प्राप्त होता है इ-  
 त्यर्थः॥ एतस्या ऋचोऽर्थान्तरम्। यथा। जो यह अतीतमन्त्रोक्त  
 आत्मा सो सर्वत्र चलता (नभोवत्सर्वव्याप्त) है और व्याप्त हो  
 साश्वती (नित्या) समा (सम्बत्सरनामा प्रजायति तै) के अर्थ  
 याथातथ्यतः (यथाभूतकर्मफलसाधन से) अर्थों (कर्तव्य-  
 पदार्थों) को व्यदधात् (यथानुरूप विभाग करता हुआ)। सो  
 कैसा कि शुक्र (शुद्ध दीप्तिमान्) अकाय (लिङ्गशरीरवर्जित)  
 अब्रण (अक्षत) अस्त्राविर (शिरारहित) अब्रण अस्त्राविर इन  
 दोनों विशेषणों करि स्थूलशरीरप्रतिषेध है) शुक्र (शुद्ध निर्म-  
 ल) अपापविद्ध (अधर्मादिवर्जित) कवि (सर्वदृक्) मनीषी  
 (मनकास्वामी सर्वज्ञ) परिभूः (सर्वों के ऊपर-ऊपर में होता है)  
 स्वयम्भूः आप ही होता जिन्हें के ऊपर में होता और जो ऊपर में  
 होता है) सो आप ही होता है। सो नित्य ईश्वर सब करता हुआ इत्यर्थः॥ च।  
 अ० २० अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते। ततो भू-  
 य-इव ते तमो यऽउ सम्भूत्याथं रताः॥ ४॥

+ नान्यदेतोऽसि दक्षिणि शुभेः

अतः परमुपासनामन्त्रा उच्यन्ते। षडनुष्टुभः। येमनियमसम्बन्ध-  
 वान्निश्चानात्मा कोई भी नहीं जलबुद्बुद जीव है मदशक्तिवद्विज्ञा-  
 न है इत्यादि मतवादि बौद्धलोग कहिकर निन्दा करते हैं।

जे मनुष्य कि असम्भूति (असम्भव-मृतक का फिर सम्भव नहीं इस हेतु शरीर के अन्त में ही हमारी सुक्ति है यह) उपासते (कहते) हैं ते अन्य तम (अज्ञानलक्षण) को प्रवेश करते हैं। और जे सम्भूति (आत्मा) में ही रत (आसक्त-कर्म से पराङ्मुख अपनी बुद्धि के लाघव को न जानते आत्मज्ञानमाचरत) हैं आत्मा ही है नहीं हैं अन्यकर्मदिक कर्मकाण्डज्ञान काण्ड का सम्बन्ध नहीं है इस अभिप्रायवाले इत्यर्थः ते मनुष्य तिस अन्यतम से बहुतर+ अज्ञान को प्रवेश करते हैं ॥

अस्या ऋचोऽर्थान्तरमुच्यते अधुना व्याकृताव्याकृतोपासनयोः समुच्चिचीषया प्रत्येकं निन्देच्यते। सम्भूति (कार्य की उत्पत्ति तिस) से अन्या असम्भूति प्रकृति कारण अव्याकृतारव्य तिस असम्भूति अव्याकृतारव्याप्रकृति कारण अविद्याकामकर्मबीजभूता अदर्शनात्मिका को जे उपासते हैं ते तिसी के अनुरूप ऐसे अन्यतम (अदर्शनात्मकसंसार) को प्रवेश करते हैं। और जे सम्भूति (कार्यब्रह्म-हिरण्यगर्भाख्य) में रत हैं ते तिस से भी बहुतर ऐसे तम को प्रवेश करते हैं ॥४॥

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहु रसम्भवात् इति श्रुमु धीरेणा ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥

अथोभयोरुपासनयोः समुच्चयकारणमवयवफलभेदमाह। सम्भव (कार्यब्रह्मोपासन) से अन्यदेव (प्रथमेव-अणिमाद्यैश्चर्यलक्षणा फल) कहिते हैं धीरलोग। तथा असम्भव (अव्याकृत

नार्थकः  
+ इव प्रशङ्क



तोपासन)सै अन्यदेव(अन्धं तमः प्रविशन्तीत्युक्तं प्रकृतिलय  
यह पौराणिकोक्तफल) कहिते हैं। इति (एवंविध) धीरों (विद्वानों)  
का वचन हम सुनते हुए कि जे धीर लोग हमारे प्रति तिस (पूर्वोक्त  
सम्भूत्य सम्भूत्युपासनाफल) को व्याख्या करते हुए ॥१०॥

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयर्हं सह। विना-

शेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥११॥

सम्भूति (सर्वजगत्सम्भवैकहेतु परब्रह्म। और विनाश (विना-  
शधर्मक शरीर। तिन दोनो शरीरि शरीर रूप को जो योगी एकी-  
भूत जानता अर्थात् में देही से भिन्न हूं देही में वास कर्मव-  
श से यह जानि शरीर करि जानोत्यति करनेहारे निष्काम  
कर्मों को करता है। सो विनाशी (शरीर) से मृत्यु को तरि (अ-  
न्तः करण शुद्धि को सम्पादन करि) सम्भूति (आत्मज्ञान) करि  
अमृत (मुक्ति) को प्राप्त होता है ॥ अस्या ऋचोऽर्थान्तरम्। य-  
था। सम्भूत्युपासनयोरेकपुरुषार्थत्वात्समुच्चय एव युक्त इत्या-  
ह। अत्र विनाशशब्दद्वयेऽर्वालापो द्रष्टव्यः पृषोदरादित्वात्  
अन्यदाहुरसम्भवादियुक्तेः। सम्भूतिमविनाशं च व्याकृताव्याकृत-  
तोपासन दोनों को जो एकी भूत उपासना कराता है सो योगी अ-  
विनाश (अव्याकृतोपासन) करि मृत्यु (अनैश्वर्य और अधर्म-  
कामादि दोषजात) को अतिक्रम करि सम्भूति (हिरण्यगर्भो-  
पासना) से अमृत (प्रकृतिलयलक्षणा) को प्राप्त होता है ॥११॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये विद्यामुपासते। ततो



भूय- इव ते तमो य उ विद्यायाश्च रताः॥१२॥  
 ये तु कर्मनिष्ठाः कर्म कुर्वन्त एव जिजीविषन्ति तान्प्रत्यु-  
 च्यते। विद्याविद्ययोः समुच्चिचीषया प्रत्येकं निन्देच्यते। वि-  
 द्यां सैः अन्या अविद्या (कर्म) जे मनुष्य अविद्या (केवल अग्नि-  
 होत्रादिलक्षणा) को उपासते (स्वर्गके अर्थ केवल कर्मों को क-  
 रते) ते अदर्शनात्मक अज्ञान को प्रवेश करते (संसारपरम्परा  
 को अनुभव करते) हैं। और तिन्हें सै भी बहुतर तम को ते प्र-  
 वेश करते हैं कि जे विद्या (आत्मज्ञान-देवताज्ञान) में ही रत  
 हैं (कर्मों को छोड़ि कर्म के न करने में प्रत्यवाय के उत्पन्न हो-  
 ते अन्तः करणशुद्धि के अभाव करि ज्ञान का उदय न होने  
 सै इति भावः॥१२॥

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदेवाहुरविद्यायाः॥ इति  
 श्वश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥१३॥

तयोः फलभेदमाह। विद्या (आत्मज्ञान) का फल (अमृतस्वरूप)  
 अन्यत् कहिते और अविद्या (कर्म) का फल (पितृलोकस्वरूप)  
 अन्यत् कहिते हुए धीरलोग। कि जे धीर (धीमन्तः आचार्य)  
 लोग हमारे अर्थ ज्ञान और कर्म को कहिते हुए सो कहा-  
 यह ही धीरों का वचन हमने सुना है ॥१३॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्या-  
 या मृत्युं तीर्त्वा विद्यायामृतमश्नुते॥१४॥

समुच्चयमाह। विद्या (देवताज्ञान) और अविद्या (कर्म) तिन दो-

इति।  
 पितृलोक विद्या  
 कर्मणा

नों विद्याविद्यारूप को जो एकी करिके जानता (एक पुरुष करि अनुष्ठेय हैं कर्मकाण्ड को ज्ञानकाण्ड का गुणभूत जानता) है। सो अविद्या (अग्निहोत्रादिकर्म) करि मृत्यु (स्वाभाविककर्मज्ञान) को उत्तरिके अन्तः शुद्धि करि कृतकृत्य हो विद्या (देवताज्ञान) करि अमृत (देवतात्मभाव) को प्राप्त होता है + ॥१४॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तर्धं शरीरम् ॥ ओ३

मू कतो स्मर क्लिबे स्मर कृतं स्म ॥१५॥

अथ कतोपासनो योगी अन्तकाले प्रार्थयते। वायुरनिलममथेदमिति द्वे यजुषी तत्र प्रथमा प्राजापत्या गायत्री द्वितीया याजुषी बृहती। अथेदानीं परीष्यतः मेरा वायु (प्राणवायुग्रहणं सप्तदशकलिङ्गोपलक्षणार्थम् सप्तदशात्मकलिङ्गरूप प्राण अध्यात्मपरिच्छेद को छोड़कर) अधिदैवतरूप सर्वात्मक अमृत सूत्रात्मक अनिल (वायु) को प्राप्त हो इति वाक्य शेषः = अर्थात् ज्ञानकर्मसंस्कृतलिङ्ग को ऊँचनिकाले ॥१॥ अथ यह स्थूलशरीर अग्नि में होमा हुआ भस्मान्त (भस्मरूप हो कृतप्रयोजनत्वात् ॥२॥ अथ योगिनोऽवलम्बभूतमक्षरमुच्यते ओमिति ब्रह्मणः प्रतिमा नाम वा। ओ३मिति परमाक्षरस्य योगिनामालम्बभूतस्य यस्य ब्रह्मणः प्राणवारव्यस्यास्थूलादिगुणयुक्तस्य ब्रह्म ऋषिः छन्दो गायत्रं ५ परमात्मादेवता ब्रह्मारम्भे विरामे च याग होमादिषु शान्तिपुष्टिकर्मसु चान्येष्वपि काम्यनेमित्तिकादि-

+ नक्षत्रमृतमुच्यते यदेवनात्मगमनमिति श्रुतेः।

५ देवीगायत्री

५ वायुर्वाव गौतम सूत्रे वायुना गौतम सूत्रेण दर्शितं सर्वं संवद्व्यमिति श्रुतेः बृहदारण्यक-  
ध्या. ३. ५. ६.

षु सर्वेषु विनियोगोऽस्येति कात्या० सर्वानु० ४.४.॥ ३ ॥ प्रती-  
कात्मकत्वात्सत्यात्मकमग्न्याख्यं ब्रह्माभेदेनोच्यते। क्रतोः  
क्षिबे० कृतम्० त्रीणि यजूंश्चिदैवी बृहतीछन्दस्कानि। हे अ-  
ग्ने हे कृतो (संकल्पात्मक) स्मर (जो मेरा स्मर्तव्य है तिस का यह  
काल प्रत्युपस्थित है इस हेतु स्मर + जो कि तू ब्रह्मचर्य और  
गार्हपत्य में मेने परिचर तिसै स्मर ॥ १ ॥ क्षिबे स्मर कल्प्यते  
भोगायेति कृपू लोकः तिस के लिये स्मर (में इस के लिये यह  
लोक दूंगा तिस के लिये स्मर ॥ २ ॥ कृतं स्मर और जो मेने बा-  
ल्यप्रभृति में अनुष्ठान किया कर्म तिसै स्मर। स्मरेत्यस्याबु-  
त्तिरादरार्थी ॥ ३ ॥ क्रतो विभिर्यजुर्भिरन्ते यज्ञान्योगीस्मारय-  
तीति कात्या० सर्वा० ४.४.॥ १५ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयु-  
नानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूर्यिष्टां  
ते नमउक्तिं विधेम ॥ १६ ॥

पुनरन्येन मन्त्रेणाग्न्याख्यं ब्रह्म प्रति योगी मार्ग याचते।  
अग्ने नयान्ते नमस्कारोक्ति। अगस्त्यहृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप् व्या-  
ख्यातापि ५.३६ विशेषाय पुनर्व्याख्यायते। हे देव (दानादिगु-  
णयुक्त) हे अग्ने हम को शोभनमार्ग (देवयान) करि ले चलि (सु-  
पथ यह विशेषण दक्षिणमार्गनिवृत्त्यर्थ है) गतागतलक्षणा द-  
क्षिणमार्गकरि निर्विष्ट हूं इस कारण हे अग्ने तुमै याचता हूं कि  
पुनर्गमनागमनवर्जित शोभनपथ करि हम कर्मफलविशिष्टों

सुमिर-सम्भारि

को ले चलि। किस लिये कि राये (धन, मुक्तिलक्षणा कर्मफल भोग के अर्थ) कैसा है तू कि सब वयुनो (कर्मों वा प्रज्ञानों) को जानता। किं च जहुराण (कुटिल, प्रतिबन्धक वञ्चनात्मक) पाप को हमारे सकाश से पृथक् करि अर्थात् नाश करि। फिर विशुद्ध हुए हम तेरे लिये बहुत-बहुत नमस्कारवचन करेंगे क्यों कि यहां सपापत्व से तेरी परिचर्या करने को नहीं समर्थ हैं तिस हेतु तुरू करि पापनाश किये में शुद्ध हुए हम नमस्कार करि तुम्हें परिचर्येंगे ॥१६॥

हिरण्मयेन यात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।

श्री ३ मू खं ब्रह्म ॥१७॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २.

इति श्री शुक्लयजुर्वेदे माध्यन्दिनीयायां वाजसनेय-  
संहितायां दीर्घपाठे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

पुनरादित्योपासनमाह। उष्णिक् यजुर्द्वयान्ता। हिरण्यरेसे (हिरण्य-ज्योतिर्मय) जो यात्र (मण्डल-पीठी) हैं जहां स्थिता रवि मण्डल रसें को तिस तेजोरूपमण्डल करि सत्य (आदित्य-मण्डलस्थ अविनाशी पुरुष) का मुख (शरीर) अपिहित (आच्छादित) वर्तते हैं। तथापि जो असौ (प्रत्यक्षः) आदित्य (रविमण्डल) में पुरुष है (पुरुषाकारत्वं से-पूर्ण है इस से प्राणबुद्धि आ-  
ती है) अस्तजगत् यह वा परिशयन से सो मण्डलस्थ पु-

रुष असौ (प्रत्यक्षः कार्यकारणसंघातप्रविष्टः) में हूं। और इस उपासना को करे इत्यर्थः॥ ओम् एवं ब्रह्मेति द्वे यजुषी। ओमिति नामनिर्देशो ब्रह्मणः एवं ब्रह्मेत्याकाशरूपमन्ते ब्रह्मध्यायेत् कात्या० सर्वा० ४०४० यद्यपि ब्रह्मचेतन और आकाश अचेतन है तथापि एकदेश में सादृश्य है अर्थात् नभोवद्व्यापक ब्रह्म को ओम् यह जपते ध्यान करे। सूर्यमण्डलस्थ पुरुष में ही हूं यह अभेद से चिन्तन करे॥ १७॥

अथविचारः॥ विद्यां चाविद्यां चेत्यत्र क० १४ विद्याशब्देन किं मुख्या परमात्मविद्योच्यते उतो यासना वा अमृतमश्नुत इत्यत्र क० १४ अमृतशब्देन साक्षान्भूतिरुत्तरमार्गेण परम्परया वा। नाद्यः॥ विद्याकर्मणोर्यस्तद्वेदोभयं सहेति क० १४ समुच्चयानुपपत्तेः तयोर्विरोधात् विद्योत्पत्तौ तदाश्रये विद्यानुत्पत्तेः वह्निरुष्णाः प्रकाशश्चेति ज्ञानोत्पत्तौ शीतोऽग्निरप्रकाशश्चेति अविद्योत्पत्तिर्न सम्भवति नापि संशयोऽज्ञानं वा यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विज्ञानतः तत्र को मोहः कः शोक इत्युक्तत्वात् किं च विद्याशब्देन परमात्मविद्याग्रहणेऽग्ने नयेति सुपथयाचनमनुपपन्नम्। तस्माद्विद्योपासना अमृतं चापेक्षकमिति दिक्॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दनिवारयन्

पुमर्थीश्चतुरो दयात्कृष्णः स्वानन्ददायकः ४०

इति श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुदाकः २

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशारवाध्येतव्याघ्रपा-  
दान्वयविश्वामित्रपुराधिप कुरुकुलकमलकमलाकर श्रीम-  
ज्जयकिशोर देववर्मात्मज रौक्मिण्यगिरिधरदेववर्मणस्त-  
स्यानुजनृपति गिरिप्रसाद रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधर-  
भाष्ये गिरिप्रसादसर्वस्वे शुक्रियायां परमात्मवर्णनोनाम  
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

गिरिप्रसादसर्वस्वे श्रीवेदार्थप्रदीपके  
व्यरमज्ज्ञानकाण्डोऽयं बालकृष्णः प्रसादतः २

आदितोऽनुवाकसंख्या ११.

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते श्रीवेद-  
ार्थप्रदीपे चतुर्थोऽध्यायस्य नवमो खण्डः ४.  
पौषे मासेऽसिते पक्षे सप्तम्यां रविवासरे  
ग्रहनेत्राङ्कभूवर्षे शुक्रमन्त्राः समागमन् ६.  
समाप्ता चैयं माध्यन्दिनीया वाजसनेयसर्चहिता  
ओं तत्सत् श्रीबालकृष्णार्पणमस्तु  
अतः परं सर्वानुक्रमणिभाष्य उच्यते

विश्वामित्रपुरीयनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाशमयत्रालये मुद्रि-  
तम् विक्रमाब्दाः १४३० शकाब्दाः १०४५ वैशाखशुक्ला १५ चन्द्रवासरः  
ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः



**अथ संक्षेपत शुक्रमन्त्राणां सूचीपत्रम्**

पृष्ठा	पङ्क्ति	विषय	पृष्ठा	पङ्क्ति	विषय
१०४१	७	शान्तिपाठः			उपासनमन्त्राः षट्
१०४४	२०	प्रवर्ग्यधर्ममहावीरः			तत्रादौ
११३४	१६	प्रवर्ग्यधर्मभेदे प्रायश्चित्तम्	११५२	१७	सम्भृत्यसम्भृत्योः प्रत्येकं
११३६	३	द्वितीयः पूर्णहृतिमन्त्रः	११५३	१७	उभयोरुपासनयोः समुच्चयः
११३६	१०	सम्भ्रयमाणद्यवस्थायां होमः			यकारणमवयवफलभेदः
११३७	१४	प्रथमादिद्वादशाहपर्यन्त होमः	११५४	२१	विद्याविद्ययोः समुच्चयी
११३८	११	आग्निको मन्त्रः			षया प्रत्येकं निन्दा
११३८	३	आग्निमेधिको मन्त्रो	११५५	१२	तयोः फलभेदः
११४१	६	अश्वमेधे प्रायश्चित्नाहुतयः	११५५	१४	समुच्चयः
११४३	२१	कर्मकाण्डं समाप्तम्	११५६	६	कृतोपासनो योगी अपन्न-
		अथज्ञानकाण्डः			काले प्रार्थयते
११४४	५	उपदेशोऽधिकारश्च	११५६	७	योगिनोऽवलम्बभूतोऽक्षर-
११४६	१	आत्मज्ञानाशक्तस्य कर्मोप-	११५६	७	त्रीणि यजूंश्चि
११४६	२१	काम्यकर्मणो निन्दा	११५७	१२	अग्न्याख्यं ब्रह्म प्रतिमा-
११४७	१२	आत्मस्वरूपः			र्गयाचनम्
११४८	८	आत्मस्वरूपस्य पुनरुपदेशः	११५८	४	आदित्योपासनम्
११५०	८	उपासानप्रकार	११५८	११	दे यजुषी
११५१	२	पुनरुपासनम्			इति सूचीपत्रम्
११५१	११	आत्मज्ञस्य फलम्	११६०	२१	इति संहिता भाष्यम्

## सर्वानुक्रमणी

अथातः ऋग्वेदे देवता गायत्र्या अग्निरुषिहः सवितानुष्टुभः सोमो बृहत्या बृहस्पतिः पङ्केर्वरुणस्त्रिष्टुभ इन्द्रो जगत्या विश्वे देवा विराजो मित्रः स्वराजो वरुणोऽतिछन्दसः प्रजापतिर्विछन्दसो वायुर्द्विपदायाः पुरुष एकपदाया ब्रह्मा । सर्वाचरच आग्नेय्यः सर्वाणि यजूंषि वायव्यानि सर्वाणि सामानि सौराणि सर्वाणि ब्राह्मणानि च । स्वाहाकारस्याग्निर्वषट्कारस्य विश्वे देवाः । व. गैरम्मे मन्त्राणां देवता वेदितव्याः संन्यस्य मनसि देवतां ततो हविर्ह्रियते देवतामविज्ञाय यो जुहोति देवास्तस्य हविर्न जुषन्ते । स्वाध्यायमपि योऽधीते मन्त्रदेवतज्ञः सोऽमुष्मिं लोके देवैरपीड्यते तस्माच्च देवता वेद्या मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतो । मन्त्राणां देवताज्ञानान्मन्त्रार्थमधिगच्छति ॥

मन्त्रार्थज्ञानात्तु विधूतपाप्मा नाकमभ्येति

न हि कश्चिदविज्ञाय याथातथ्येन देवताः ।

श्रौतानां कर्मणं विप्रः स्मार्तानां चाश्रुते फलम् ॥१०॥

एवं मन्त्राणां देवानुक्ता छन्दसां देवानाह । अथातः छन्दों के देवतेति गायत्री का अग्नि. उषिह का सविता. अनुष्टुप् का सोम. बृहति का बृहस्पति. पङ्क्ति का वरुण. त्रिष्टुप् का इन्द्र. जगती के विश्वे देवा विराट् का मित्र. खण्ड का वरुण. अतिछन्द का प्रजापति. विछन्द का वायु. द्विपदा का पुरुष. एकपदा का ब्रह्मा । सब ऋचाएँ (गायत्र्यादि सप्तछन्दों तथा तिनके पदपङ्क्त्यादिभेदों और

अतिनगत्यादि सप्त अतिछन्दों करि लक्षणयुताँ) अग्निदेवता का हैं। सब यजुःछत्यादि सप्त छन्दों और देव्यादि एकोन पञ्चाशत् तथा आर्ष्यादि सप्त मिलित्वात् त्रिषष्टि ६३ और छन्द लक्षणरहिताः वायुदेवता का हैं। सब साम (गीता ऋचाँ) सूर्यदेवत्याः और सब (ऋग्यजुः साम) ब्रह्मदेवता का हैं। स्वाहाकार का अग्नि-वषट्कार के विश्वे देवाः। कर्म के आरम्भ में मन्त्रों के देवता जानने चाहिये मन में देवताओं को धारण करि के फिरि हवि होमिये हैं देवताओं को विनंजाने जो होमता है देवता तिस का हवि नहीं सेवन करते। और स्वाध्याय जो अध्यन करता है मन्त्रदेवता का जानने हारा सो इस लोक में देवताओं करि पीडा नहीं पाता

तिस हेतु यत्नपूर्वक देवता जानने चाहिये मन्त्र-मन्त्र में क्योंकि मन्त्रों के देवता जानने से मन्त्र के अर्थ को प्रवेश करता है॥ और मन्त्र के अर्थज्ञान से विधूत पाप्मानाक (स्वर्ग) को प्राप्त होता है

नहीं कोई विप्र (वैदिक) विनजाने जों के तों देवताओं के श्रोत और स्मार्त कर्मों के फल को व्याप्त होता ॥१०॥

अनादिष्टमध्वरादौ सवान्ते कर्माणि परिभाषितं मन्त्रगणं वक्ष्यामः । सर्वमाग्नेयं गायत्रं गौतमीयं सर्वं सावित्रीमोषिणं भारद्वाजीयं सर्वं सौम्यमानुष्यममार्थवर्णिकं सर्वं बार्हस्पत्यं बार्हतमाङ्गिरसं सर्वं वारुणं पाङ्कमालम्बायनी-

यर्हं सर्वमेन्द्रं त्रैष्टुभं याज्ञवल्कीयर्हं सर्वमादित्यदेवतं जा-  
गतं कौत्सम् ॥११॥

अध्वरः गृहः सवनः तीनों काण्डविहित कर्म में तिस-तिसप्र-  
करणेत्यमन्त्र के ऋष्यादिक इस अनादेश में जानना। समस्त  
अग्निदेवताके मन्त्रों का गायत्री छन्द गोतम ऋषि है अन्य-  
त्स्पष्टम् ॥११॥

ज्योतिष्टोमो दीक्षाप्रभृति वक्ष्यामो दीक्षायां भृगुर-  
ग्न्याविष्णू गायत्री प्रायणीयः आङ्गिरसोऽदितिरुषिणकू क्रये  
विश्वामित्रः सोमोऽनुष्टुप् आतिथ्ये वसिष्ठो विष्णुर्बृहती प्रव-  
र्ग्ये कश्यप आदित्यः यङ्गिः उपसत्त्वात्रेय उपसद्देवता त्रिष्टुप्  
अग्नीषोमीयेऽगस्त्योऽग्नीषोमौ जगती प्रायणीयेऽतिरात्रः आ-  
ग्निवेश्योऽहोरात्रेऽअतिजगती चतुर्विंशत्यहे सोमरायणः  
संवत्सरः शक्करी अभिप्लवे षडहे सावर्णेऽधर्मासा मासाश्चा-  
तिशक्करी पृष्ठ्ये षडहे सायकायन ऋतवोऽष्टिः अभिजिति  
प्रियव्रतोऽग्निरत्यष्टिः स्वरसामसु सरस्वत्यापो धृतिः विषुव-  
ति रौहिणायन आदित्योऽतिधृतिः विश्वजिति सोमर-  
इन्द्रः कृतिः गोऽआयुषोर्वाकलिर्मित्रावरुणो प्रकृतिः द-  
शरात्रः आचार्यो विश्वे देवा आकृतिः दशरात्रिके पृष्ठ्ये ष-  
डहे भाल्लवेयो दिशो विकृतिः छन्दोमेषु शैलवायन इमे लो-  
काः संकृतिः दशमेऽहनि पराशरः संवत्सरोऽभिकृतिः महा-  
व्रते शैलिनः प्रजापतिरुत्कृतिः उदयनीयेऽतिरात्रे भौबनायनो

वायुश्छन्दांसि सर्वाणि ॥१२॥

न्योतिष्ठेऽम मे दीक्षाप्रभृति वक्ष्यमाण जानना दीक्षामेभृ-  
 गु ऋषि अग्नाविष्णु देवता गायत्री छन्द एवमग्रेपि स्पष्टार्थः ॥१२॥  
 ऋषिभिरुपलक्षितं वाक्यमृषयः छन्दोभिरुपलक्षिता दे-  
 वता मन्त्रवर्णाह्वयजुषयोर्विनियोगतश्च विज्ञेयाः । सर्वमेतच्छ-  
 न्दो देवतमार्थं च विज्ञाय यत्किञ्चिज्जपहोमादि करोति तस्य  
 फलमश्नुते । ब्रह्मयज्ञारम्भे यथाविधि स्नात्वा छन्दः पुरुषमे-  
 नोनिर्णोदनर्हं शरीरे न्यसेत् तिर्यागबलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः  
 (निरु० १२. ३०. बृहदा० माध्य० २. २. ५. ६. ब्रह्मसूत्रम् २. ४. १)  
 तस्याक्षिणी गौतम भरद्वाजौ श्रौत्रे विश्वामित्रजमदग्नी ना-  
 सिके वसिष्ठकश्यपो वागत्रिः । गायत्रीं छन्दां ग्निदेवतार्हं शि-  
 रांसि विन्यसेदेवमेवोष्णिहर्हं सवितारं ग्रीवास्वनूके बृहतीं  
 बृहस्पतिम् बाह्वोर्बृहद्रथन्तरे द्यावापृथिवी मध्ये त्रिष्टुभ-  
 मिन्द्रर्हं आणयोजगतीमादित्यम् मेद्रेऽतिछन्दसं प्रजापतिम्  
 पायों यज्ञायज्ञियं वैश्वानरम् ऊर्वारनुष्टुभं विश्वान्देवान् अ-  
 ष्टीवतोः पङ्क्तिं मरुतः पादयोर्द्विपदां विष्णुम् प्राणेषु विछन्द-  
 सं वायुम् न्यूनातिरिक्तैश्चङ्गेषु न्यूनाक्षरं छन्द आपो देवतेत्येव-  
 र्हं सर्वाङ्गेषु योजयित्वा वेदमयः सम्पद्यते शापानुग्रहसमर्थो  
 भवति ब्राह्म्यं तेजश्च वर्धते न कुतश्चिद्वयं विन्दते ऋद्धयो  
 यजुर्मयः साममयो ब्रह्ममयस्तेजोमयोऽमृतमयः सम्भूय  
 ब्रह्मेवाभ्येति । तस्मादेतन्नाब्रह्मचारिणे नातपस्विने नासंव-

त्सरोषिताय नाप्रवक्तुं ब्रूयादनेनाधीतेन चान्द्रायणाब्दफल-  
मवाप्नोति अनेन च सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मणः सायुज्यं सत्तो-  
कतामाप्नोत्याप्नोति ॥१३॥

इति सर्वानुक्रमणीये चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

ऋषियों करि उपलक्षित वाक्य ऋषि और छन्दों करि उपलक्षि-  
ता देवता मन्त्रवर्ण (अक्षरसंख्या) और विनियोग से ऋचा-  
ओं और यजुओं के जानना। इस सब छन्द देवत और  
आर्ष को जानि जो कुछ जपहोमादिक करता है तिस के फ-  
ल को प्राप्त होता है। ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्यायपाठ) के आरम्भ में  
विधिपूर्वक स्नान करि एनोनिर्णेदन छन्दः पुरुष को शरीर  
में स्थापन करें चमसा का शिरोलक्षण तिर्यग्विल ऊर्ध्वबु-  
ध है तिस के नेत्र गोतम और भरद्वाज ओत्र विश्वामित्र औ-  
र जमदग्नी नासिका वसिष्ठ और कश्यप वाचा अत्रि है।  
गायत्री छन्द अग्निदेवता को शिर पर स्थापन करें एवं उ-  
ष्णिक् - न्यूनातिरिक्त अङ्गों में न्यूनाक्षर छन्द जलदेवता  
को इति एवं सर्वाङ्गों में योजन करि वेदमय सम्पद्ये है शाय-  
देंने और अनुग्रह करने को समर्थ होता और ब्रह्मतेज बढ-  
ता है नही किधर ही से भय प्राप्त होती ऋद्धय यजुर्मय सा-  
मय ब्रह्ममय तेजोमय अमृतमय हो कर ब्रह्म को प्राप्त हो-  
ता है। तिस कारण इस न्यास को अब्रह्मचारी अतपस्वि अ-  
संवत्सरोषित अप्रवक्त के अर्थ न कहें क्यों कि इस के अध्य-



यन करने से एकवर्ष चान्द्रायणव्रत किये के फल को प्राप्त होता और इस के सम्यग्ज्ञान करि ब्रह्म की सायुज्य और सलोकता को प्राप्त होता है प्राप्त होता है ॥१३॥

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते वेदार्थप्रदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ छन्दार्थसि गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यतिजगती शक्यति शक्यरूपत्यष्टिधृत्यतिधृतयः कृतिप्रकृत्या कृतिविकृतिसंस्कृत्यभिकृत्युक्ततयश्चतुर्विंशत्यक्षरादीनि चतुरुत्तराणि । ऊनाधिकेनैकेन निचृद्भुरिजौ द्वाभ्यां विराट्स्वरजौ । पादपूर्णार्थं तु क्षेप्रसंयोगैकाक्षरीभावान्व्यूहेत् । आद्ये तु सप्तवर्गे पादविशेषात्संज्ञाविशेषास्ताननुक्रामन्त एवोदाहरिष्यामो विराड्स्वरूपा विराट्स्थानाश्च बहूना अपि त्रिष्टुभ एवेत्युद्देशः । तत्र दशैकादशाद्वादशाक्षराणां वैराजत्रैष्टुभजागता इति संज्ञा अनादेशोऽष्टाक्षराः पादाश्चतुष्यदाश्चर्चः ॥१॥

छन्दसं स्वरूपमाह । अथ छन्दार्थं सीति अथ गायत्र्यादि एकविंशति छन्द चतुर्विंशति अक्षरों से आदि ले चारि-चारि अक्षर वढाकर चतुरुत्तर एक शत अक्षर पर्यन्त हैं । तहां गायत्र्यादि उक्तति पर्यन्त एकविंशति छन्दों की एक अक्षर ऊन होने से निचृत् और एक अक्षर अधिक से भुरिक्संज्ञा है तथा दो अक्षर ऊन विराट् और दो अक्षर अधिक स्वरान् ।

और जो इतने पर भी अक्षर ऊन रहें तो पादपूरण के अर्थ क्षेत्र संयोग से एकाक्षरी भाव करि व्यूहै यथा तत्सवितुर्वरेण्यम्- तत्सवितुर्वरेण्यम्-दिवं गच्छस्वः पतः-दिवं गच्छ सु-वः पत इत्यादि। और पहिले वर्ग गायत्र्यादि सप्त में पादविंश-

१ छन्दाधंसि			२ अतिछन्दाधंसि			३ अतिछन्दाधंसियजुर्ध्वय		
संख्या	नाम	अक्षर	संख्या	नाम	अक्षर	संख्या	नाम	अक्षर
१	गायत्री	२४	१	अतिजगती	५२	१	कृति	८०
२	उष्णिक्	२८	२	शक्करी	५६	२	प्रकृति	८४
३	अनुष्टुप्	३२	३	अतिशक्करी	६०	३	आकृति	८८
४	बृहती	३६	४	अष्टि	६४	४	विकृति	९२
५	पङ्क्ति	४०	५	अत्यष्टि	६८	५	संकृति	९६
६	त्रिष्टुप्	४४	६	धृति	७२	६	अभिकृति	१००
७	जगती	४८	७	अतिधृति	७६	७	उत्कृति	१०४

ष होने से संज्ञाविशेष होजाती हैं तिन्हें क्रमपूर्वक उदाहरण करूंगा विराड्रूपा और विराटस्थाना बहुत ऊनाभी त्रिष्टुप् (खण्ड ७) ही है यह उद्देश है तहां दश अक्षर का विराट्छन्द का एकपाद और एकादश अक्षर का त्रिष्टुप् द्वादश अक्षर का जगती एकपाद होता है अनादेशमें जहां अक्षर नहीं कहे गये तहां अष्टाक्षर का पाद है और जहां पाद संख्या नहीं कही तहां चतुः पाद हैं ॥१॥

अथमं छन्दस्त्रिपदा गायत्री। पञ्चकाश्चत्वारः षड्-  
 श्वेकश्चतुर्थश्चतुष्को वा पदपङ्क्तिः। षट्संज्ञैकादशा उषिण-  
 गगर्भा। त्रयः सप्तकाः पादनिचृन्मध्यमः षड्श्वेदतिनिचृ-  
 द्दशकश्चेद्यवमध्या। यस्यास्तु षट्सप्तकाष्टकाः सा वर्ध-  
 माना विपरीता प्रतिष्ठा। द्वौ षड्को सप्तकश्चेति हसीयसी॥२॥  
 पहिला छन्द त्रिपदा (तीनि पद ८ + ८ + ८। का) गायत्री। प-  
 दपङ्क्तिर्मायत्री ५ + ५ + ५ + ५ + ६। अथवा ५ + ५ + ५ + ४ + ६।  
 उषिणगगर्भा गायत्री ६ + ७ + ११। पादनिचृद्गायत्री ७ + ७ +  
 ७। अतिनिचृद्गायत्री ७ + ६ + ७। यवमध्यागायत्री ७ + १० +  
 ७। वर्धमाना गायत्री ६ + ७ + ८। प्रतिष्ठागायत्री ८ + ७ + ६।  
 हसीयसी गायत्री ६ + ६ + ७॥ ॥ गायत्री उषिणग्वा २६  
 अक्षर होने से विकल्प है अध्या० १७ काण्डी ८५। अनवसा-  
 ना (अवसानहीना, अवसानरहिता) गायत्री ५ + ३५। एकप-  
 दा गायत्री ८ अक्षर होने से ३०६। द्विपदा गायत्री २६ अक्षर  
 होने से २००१ एकद्वित्रिचतुष्पादमिति पिङ्ग० खण्ड ६ स-  
 व १८०॥२॥

द्वितीयमुषिणक् त्रिपदान्त्यो द्वादशकः। आद्यश्चेत्युरउ-  
 षिण्माध्यमश्चेत्ककुप्। त्रैष्टुभजागतचतुष्काः ककुबन्यङ्कु-  
 शिरैकादशिनोः परः षड्स्तनुशिरा मध्ये चेत्पिपीलिकम-  
 ध्याद्यः पञ्चकस्त्रयोऽष्टका अनुष्टुबाभा। चतुःसप्तको-  
 षिणगेव॥३॥

दूसरा छन्द पर उषिणक् ८+८+१२। पुर उषिणक् १२+८+८।  
 ककुबुषिणक् ८+१२+८। ककुबुषिणक् शिरोषिणक् १२+१२+४।  
 तनुशिरोषिणक् १२+१२+६। पिपीलिकमध्येषिणक् १२+६+१२।  
 इति त्रिपदा। अनुष्टुबार्धोषिणक् ५+८+८+८। उषिणक् ७+  
 ७+७+७॥ ॥ विषमपदेषिणक् (पादानियमान्) २७-२८-  
 २२। वर्धमानोषिणक् ६+७+८+६ (वृद्धितः) ७-२६॥ ३॥

तृतीयमनुष्टुप्। पञ्च पञ्चकाः षड्द्वैको महापदप-  
 ङ्क्तिः। जागतावष्टकश्च कृतिः। मध्ये चेदष्टकः पिपीलिक-  
 मध्या। नवकयोर्मध्ये जागतः काविराट्। नववैराजत्रयोद-  
 शोर्नष्टरूपा। दशकास्त्रयो विराडेकादशका वा ॥४॥  
 तीसरा अनुष्टुप्छन्द ८+८+८+८। महापदपङ्क्तिरनुष्टुप् ५+  
 ५+५+५+६। कृतिरनुष्टुप् १२+१२+८। पिपीलिकमध्यानु-  
 ष्टुप् १२+८+१२। काविराडनुष्टुप् ६+१२+६। नष्टरूपानुष्टुप्  
 ६+१०+१३। त्रिपदाविराडनुष्टुप् १०+१०+२० अथवा ११+११  
 +११॥ ॥ द्विपदाविराज २० अक्षर होने से ३२५ एकप-  
 दाविराज १० अक्षर ५०३५॥ ४॥

चतुर्थं बृहती तृतीयो द्वादशकः। आद्यश्चेत्पुरुस्ताहु-  
 हती। द्वितीयश्चेन्न्यङ्कुसारिएयुरोबृहती स्कन्धोग्रीवी वा। अ-  
 न्त्यश्चेद्गुपरिष्ठाहृहती। अष्टिनोर्मध्ये दशको विष्टारबृहती।  
 त्रिजागतोर्ध्वबृहती। त्रयोदशिनोर्मध्ये षष्टकः पिपीलिकम-  
 ध्या। नवकाष्टकेकादशाष्टिनो विषमपदा। चतुर्नवका बृह

त्येव ॥५॥

चौथा बृहती छन्दः पथ्या बृहती ८+८+१२+८। पुरस्ता बृहती १२  
+८+८+८। न्यङ्कुसारिणी वा उरो बृहती वा स्कन्धोग्रीवी ८+१२  
+८+८+८। उपरिष्ठा बृहती ८+८+८+१२। विष्टार बृहती ८+  
१०+१०+८। ऊर्ध्व बृहती १२+१२+१२। पिपीलिक मध्या बृह-  
ती १३+८+१३। विषमपदा बृहती ४+८+१०+८। बृहती ४+४  
+४+४॥ ॥ अनुष्टुप् बृहती वा ३४ अक्षर होने से ४०२१॥५॥

पञ्चमं पङ्क्तिः पञ्चपदा। अथ चतुष्पदा विराट् दश-  
काः॥ अयुजो जागते सती बृहती युजो चेद्विपरीताद्यो चेत्यस्ता-  
रपङ्क्तिराद्यन्ते चेतसंस्तारपङ्क्तिर्मध्यमो चेद्विष्टारपङ्क्तिः॥६॥  
पाँचवाँ पङ्क्ति छन्दः पञ्चपदा पङ्क्ति ८+८+८+८+८। चतुष्पदा वि-  
राट् पङ्क्ति १०+१०+१०+१०। सती बृहती १२+८+१२+८। विपरी-  
ता बृहती ८+१२+८+१२। प्रस्तारपङ्क्ति १२+१२+८+८। आस्ता-  
रपङ्क्ति ८+८+१२+१२। संस्तारपङ्क्ति १२+८+८+१२। विष्टारप-  
ङ्क्ति ८+१२+१२+८॥ ॥ पङ्क्तिर्बृहती वा ३८ अक्षर  
होने से ८०२६। स्वराट् पङ्क्ति १०+१०+११+११+१ होने से ११०  
२४॥६॥

षष्ठं त्रिष्टुप् त्रैष्टुभपदा। द्वौ तु जागते यस्याः सा जा-  
गते जगती त्रैष्टुभे त्रिष्टुप्। वैराजौ जागते चाभिसारिणी। नवकौ  
वैराजस्त्रैष्टुभश्च द्वौ वा वैराजौ नवकस्त्रैष्टुभश्च विराट्स्था-  
नेकादशिनस्त्रयोऽष्टकश्च विराट् रूपा। द्वादशिनस्त्रयोऽष्ट-

+ पथ्या पूर्वश्चेत्तृतीयः पङ्क्तिः ० ५० १०

८ कोष्टकिमेत स्कन्धोग्रीवी। पा स्कमते उरो बृहती। पङ्क्तिः ० ५० ४० १००

पङ्क्तिः ० ६० १००  
+ आदिः संदिग्धे

कश्च ज्योतिष्मती यतोऽष्टकस्ततो ज्योतिः। चत्वारोऽष्टका  
जागतश्च महाबृहती। मध्ये जागतश्चेद्यवमध्या। आद्यो  
दशकावष्टकास्त्रयः पङ्क्त्युत्तरा विराट्पूर्वा वा ॥७॥  
छठा त्रिष्टुप्छन्द ११+११+११+११। जगतीत्रिष्टुप् १२+१२+  
११+११। त्रिष्टुब्जगतीवा ११+११+१२+१२। अभिसारिणीत्रिष्टु-  
प् १०+१०+१२+१२। विराट्स्थानात्रिष्टुप् ६+६+१०+११।  
यद्वा १०+१०+६+११। विराट्पात्रिष्टुप् ११+११+१+८। उप-  
रिष्टाज्योतिस्त्रिष्टुप् १२+१२+१२+८। पुरस्ताज्योतिस्त्रिष्टुप्  
८+१२+१२+१२। महाबृहतीत्रिष्टुप् ८+८+८+८+१२। यवमध्या  
त्रिष्टुप् ८+८+१२+८+८। पङ्क्त्युत्तरात्रिष्टुप् यद्वा विराट्पूर्वा-  
त्रिष्टुप् १०+१०+८+८+८ ॥७॥

सप्तमं जगती जागतपदा। अष्टनस्त्रयः स्त्रो च द्वौ म-  
हासतोबृहती। अष्टकौ सप्तकः षड्को दशको नवकश्च षड-  
ष्टका वा महापङ्क्तिः॥

माध्यन्दिनीये वाजसनेयके सर्वानुक्रमणिकेष्वा कृ-  
तिर्भगवतः कात्यायनस्येवा कृतिर्भगवतः कात्यायनस्य॥८॥

इति सर्वानुक्रमणीये पञ्चमोऽध्यायः॥८॥

सातवां जगती १२+१२+१२+१२। महासतोबृहतीजगती ८+८  
+८+१२+१२। महापङ्क्तिर्जगती ८+८+७+६+१०+६। अथ वा  
८+८+८+८+८+८॥ माध्यन्दिनीया वाजसनेय संहिताकी  
सर्वानुक्रमणिका यह करी हुई भगवान् कात्यायन की-यह



करी हुई भगवान कात्यायन की ॥८॥

श्री वेदार्थप्रदीपेन तमो हार्द निवारयन्  
 पुमार्थाश्चतुरे देयात्कृपाः स्वानन्ददायकः  
 माधवे त्वसिते पक्षे पञ्चम्या गुरुवासरे  
 व्योमरामाङ्कभूवर्षेऽनुक्रमार्थः समागमत्  
 इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते श्री वेदार्थप्र-  
 दीपे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अतः परं अनुवाकाध्यायो भविष्यति

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

अथानुवाकान्वक्षामि ब्रह्मण विहिता (निर्मिता) न्युरा  
 शिष्याणामुपदेशाय यज्ञ संस्करणाय च  
 विप्राणां यज्ञकालेषु जपहोमार्चनादिषु  
 ऋषिर्वदति। अब मैं अनुवाकों को कहिता हूं कि जो पहिले ब्र-  
 ह्मा से उत्पन्न हुई (नें निर्माण करीं)। किमर्थम् कि विप्रों के य-  
 ज्ञकाल तथा जपहोमार्चनादिकों में शिष्यों के उपदेश और  
 यज्ञसंस्कार के अर्थ॥

इषेतैका वसोः पवित्रं तिस्रोऽग्ने व्रतपते सप्त पवित्रे  
स्थो द्वे शर्मासि तिस्रो धृष्टिरसि शर्मासि द्विको देवस्य त्वा  
तिस्रो देवस्य त्वा पञ्च प्रत्युष्टं रक्षस्तिस्त्रो दशैक त्रिं-  
शत् ॥१०॥३१॥१॥

इषे त्वा अनुवाक १० काण्डी १० वसोः पवित्रम् २० ३० अग्ने  
व्रतपते ३० ७० पवित्रे स्थो ४० २० शर्मासि ५० ३० धृष्टिरसि ६० २०  
शर्मासि ७० २० देवस्य त्वा ८० ३० देवस्य त्वा ९० ५० प्रत्युष्टं १०  
३० अनुवाक १० काण्डी ३१ अध्याय १ एवमग्रेऽपि

कृषोऽसि षडग्ने वाजजित्तिस्त्रो मयीदमग्नीषोमयोः  
पञ्चकावग्नेऽध्यायो ततस्तः संवर्चसा पञ्चाग्नये कव्यवाह-  
नाय षट् सप्त चतुस्त्रिंशत् ॥७॥३४॥२॥

समिधार्गिन् भूर्भुवः स्वश्चतुष्कावग्निर्ज्योतिर्द्वे उप प्रय-  
न्तः षड्विंशतिर्भूर्भुवः स्वश्चतस्रो गृहा मा तिस्रः प्रधासिनः  
पञ्च पूर्णा दर्वि द्वे अक्षन्नमीमदन्त षडेष्टे ते सप्तदश त्रिष-  
ष्टि ॥२०॥६३॥३॥

एदं द्वे महीनां पयश्चतस्रः आकृत्या ऋक्सामयोर्द्वि-  
को व्रतं कृणुत षडेष्टा ते चतस्रो वस्यसि तिस्र एष्टे ते द्वे  
शुक्रं त्वा चतस्रोऽदित्यास्त्वगष्टौ दश सप्त त्रिंशत् ॥  
१०॥३७॥४॥

अग्नेस्तन्त्रापतये चतुष्को तप्तायनी द्वे इन्द्रयोषस्ति-  
स्त्रो युञ्जतेऽष्टौ देवस्य त्वा चतस्रो देवस्य त्वा पञ्च विभूरसि

चतस्रो ज्योतिरसि षडुरु विष्णो तिस्रो दश त्रिचत्वारिंशत् ॥  
१० ॥ ४३ ॥ ५ ॥

देवस्य त्वा षडुपावीरसि पञ्च माहिः षट् ते तिस्रः स-  
मुद्रं गच्छ हविष्मतीर्द्विकौ हृदे त्वा पञ्च देवस्य त्वाष्टावष्टौ स-  
प्तत्रिंशत् ॥ ८ ॥ ३७ ॥ ६ ॥

वाचस्पतय उपयामगृहीतोऽसित्रिकावा वायोऽयं वा-  
द्विकौ यावामेका तं प्रत्यथा चतस्रोऽयं वेनो ये देवासस्त्रिकावि-  
न्त्राय मूर्धनं द्विकौ यस्त एका प्राणाय तिस्रो मधव इन्द्राग्नी-  
गतमाधौ मासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगतेन्द्रमरुत्वो मरुत्व-  
न्तं वृषभं मरुतां त्वोजसे सजोषा इन्द्र मरुत्वां रे ॥ इन्द्र महा रे ॥  
इन्द्रो महा रे ॥ इन्द्र एकैकोदुत्यमष्टौ पञ्चविंशतिरष्टाचत्वारिं-  
शत् ॥ २५ ॥ ७ ॥

आदित्येभ्यः पञ्च वाममद्य द्वे सुशर्मोस्येका बृहस्पति-  
सुतस्य द्वे हरिरसि चतस्रः समिन्द्राणोऽष्टौ माहिरेजनु दशमास्यः  
पञ्चकावातिष्ठ युक्ष्वाहीन्द्रमिदेकैका यस्मान्न द्वे अग्ने पवस्वो-  
तिष्ठन्नहश्चममुदुत्यमेकैकाजिघ्र द्वे विन इन्द्र वाचस्पतिं वि-  
श्वकर्मन्त्रेकैकाग्नये त्वा चतस्र इह रतिसिंस्रः परमेष्ठीदश  
त्रयोविंशतिस्त्रिषष्टिः ॥ २३ ॥ ६३ ॥ ८ ॥

देव सवितश्चतस्र इन्द्रस्य वज्रः पञ्च देवस्याहं द-  
शापये तिस्रो वाजस्यमष्टावग्निरेकाक्षरेणैषते चतुष्कौ सवि-  
ता द्वे अष्टौ चत्वारिंशत् ॥ ८ ॥ ४० ॥ ४ ॥

अपो देवाश्चतस्रः सोमस्य त्विषिः पञ्चावेष्टाः सप्त सो-  
मस्य त्वा चतस्र इन्द्रस्य वज्रः पञ्च स्योनासि चतस्रः सवित्रैका-  
श्विभ्यां चतस्रोऽष्टौ चतुस्त्रिंशत् ॥ ८ ॥ ३४ ॥ १० ॥

युञ्जान एकादश प्रतूर्तं षोडश देवस्य त्वा दशापो  
देवीर्द्वादशापोह्येकादशादितिष्टा पञ्चाकृतिमष्टादश सप्तत्र्य-  
शीति ॥ ७ ॥ ८३ ॥ ११ ॥

दृशानः सप्तदश दिवस्यरि द्वादश समिधं नि पञ्चद-  
शापेत सप्तदशासुन्वन् त्रयोदश या ओषधीः सप्तविंशतिर्मा मा  
षोडश सप्त सप्तदंशतम् ॥ ७ ॥ ११७ ॥ १२ ॥

मयि गृह्णामि पञ्चदश ध्रुवासि मधु वाता एकादशकौ  
सम्यक्स्रवंतिनवेमं मा षडपां त्वेकायं पुरः पञ्च सप्ताष्टापञ्चश-  
त् ॥ ७ ॥ ५८ ॥ १३ ॥

ध्रुवक्षितिः षट् सजूर्ऋतुभिर्मूर्द्धा वयो द्विकाविंश्रग्नी आयुर्मे  
षट्कावाशुस्त्रिंशदेकाग्नेर्भागोऽस्येकया चतुष्कावष्टावेकत्रिंशत् ॥  
८ ॥ ३१ ॥ १४ ॥

अग्ने जातान्यञ्च रश्मिना सत्याय चतस्रो राजस्ययं पुरः प-  
ञ्चकावग्निर्मूर्द्धेकोनत्रिंशद्येन ऋषयोऽष्टौ तपश्च नव सप्तपञ्च  
षष्टिः ॥ ७ ॥ ६५ ॥ १५ ॥

नमस्ते षोडश हिरण्यवाहव उष्णीषिरो तक्षभ्यो ज्येष्ठाय  
पञ्चकाः स्रुत्यायचतस्रः शंभवायैका पार्याय पञ्चद्रापे अन्धसो वि-  
ंशति नव षट्षष्टिः ॥ ८ ॥ ६६ ॥ १६ ॥

अश्वमन्त्रूर्जे दश नमस्ते पञ्चाग्निस्तिग्मेन नव चक्षुषः  
पित्ताष्टावाशुः शिशानः सप्तदशोदेनं क्रमध्वमग्निना पञ्चदश-  
कोः शुक्रज्योतिः सप्तमध्वं स्तनं त्रयोदश नवैकोनशतम् ॥६॥  
॥७७॥१७॥

वाजः सत्यमूर्क्षीतुक्का अश्वमग्निस्त्रिकावर्तशुः पञ्चका-  
चतस्रो वाजाय द्वे वाजस्यन्वष्टावृताषाड्भ्यां दशगिर्न युनज्मि-  
सप्त यदाकूताद्वात्रैहत्याय दशकोः त्रयोदश मप्तसप्ततिः ॥१३॥  
॥७७॥१८॥

स्वाह्वी त्वेकादश देवायज्ञं विष्टं शतिः सुरावन्तर्हं सप्त-  
दशोदीरतां त्रयोदशाच्या जानु दशमोमो राजाष्टौ सीमेन तन्त्र-  
र्हं षोडश सप्त पञ्च नवतिः ॥७॥१९॥२०॥

क्षत्रस्य योनिस्त्रयोदश यद्देवादशाभ्यादधाम्यंष्टौ को-  
मूतानां चतस्रः समिद्ध इन्द्र एकादशायात्वष्टौ समिद्धो अ-  
ग्निर्द्वादशाश्विना हविस्त्रयोदशाश्विना तेजसैकादश नव-  
नवतिः ॥८॥२०॥२१॥

इमं मे समिद्धो अग्निरेकाशको वसन्तेन ऋतुना षट्-  
होता यद्दद्वादशाश्विनो छागस्य सप्त देवं वर्हिश्चतुर्दश षडेक-  
षष्टिः ॥९॥२१॥२२॥

तंजोऽसि पञ्चाग्नये एका हिंकाराय द्वे तत्सावितुर्दश-  
विभूर्मात्रैका काय द्वे त्रयोदश शेषादेकैकोनविष्टं शतिश्चतुस्त्रि-  
र्हं शत ॥१०॥२२॥२३॥

हिरण्यगर्भो यः प्राणतो द्विको युज्यन्त्यष्टौ वायुष्टु पञ्च  
प्राणाय तिस्र उत्सकय्या द्वादश गायत्री कस्त्वा षट्को कःस्वि-  
दष्टौ कास्विदृश सुभूः स्वयंभूस्तिस्र एकादश पञ्चषष्टिः ॥११॥  
६५॥२३॥

अश्वस्तूपरो धूम्रान्वसन्ताय समुद्राय शिशुमारान्मयुः  
प्राजापत्यो दशकाश्वत्वारश्चत्वारिंशत् ॥४॥४०॥२४॥

शादं दद्विर्नवैकैका हिरण्यगर्भश्चतस्र अ. रो दश मानो  
यदश्वस्याष्टको यत्ते षडिमानु कं द्वे पञ्चदश सप्तचत्वारिं  
शत् ॥१५॥४७॥२५॥

अग्निश्च पञ्चदशोच्चात एकादश द्वौ षड्विंशतिः  
॥२॥२६॥२६॥

समास्त्वा दशोर्ध्वा अस्य पीवो अन्ना द्वादशकावभि त्वे-  
कादश पञ्चचत्वारिंशत् ॥४॥४५॥२७॥

होता यक्षदेकादश देवं वर्हिर्द्वादश पुनरप्येवं चत्वारः  
षट्चत्वारिंशत् ॥४॥४६॥२८॥

समिद्धो अज्जन्तेकादश यदक्रन्दस्त्रयोदश समिद्धो अद्य द्वा-  
दश केतुं कृण्वंश्चतुर्विंशतिश्चत्वारः षष्टिः ॥४॥६०॥२९॥

देव सवितः षट् तपसे कौलालर्धं षोडश द्वौ द्वाविंशतिः  
॥२॥२२॥३०॥

सहस्रशीर्षा षोडशाद्वयः संभृतः षट् द्वौ द्वाविंशतिः ॥२॥  
२२॥३१॥



तदेव सप्त वेनस्तन्नव द्वौ षोडशः ॥२॥१६॥३२॥

अस्याजरासः सप्तदशापश्चिद्द्वादश प्र बावृज एकादश  
इन्द्रवायुं प्रवीरया पञ्चदशकावानस्त्रयोदश सप्त सप्तनवतिः ॥  
७॥४७॥३३॥

यज्जाग्रतः पञ्चनद्यः सोमोऽधेनुमाह्वयोऽन पूषंतव द-  
शका न तदष्टौ षडष्टापञ्चाशत् ॥ ६॥५८॥३४॥

अपेतो दशापाद्यं द्वादश द्वौ द्वाविंशतिः ॥२॥३२॥३५॥  
ऋचं वाच ठं षोडश द्वौः शान्तिरष्टौ द्वौ चतुर्विंश-  
ति ॥२॥२४३६॥

देवस्य त्वादश यमाय त्रैकादश द्वावेकविंशतिः ॥  
२॥२१॥३७॥

देवस्य त्वाष्टौ यमाय त्वा क्षत्रस्य त्वा दशको त्रयोऽष्टावि-  
ंशतिः ॥३॥२८॥३८॥

स्वाहा प्राणेभ्यः षडुग्रश्च सप्त द्वौ त्रयोदश ॥२॥१३॥३९॥  
ईशा वास्यमष्टा बन्धं तमो नव द्वौ सप्तदश ॥२॥१७॥४०॥  
॥१६७५॥३०३॥ ४०॥

दशाध्याये समारव्याता अनुवाकाः सर्वसंख्यया  
शतं दशानुवाकाश्च नवान्ये च मनीषिभिः १  
सप्तषष्टिश्चाग्नेो ज्ञेयाः सौत्र द्वाविंशस्तथा  
अथ एकोनपञ्चाशन्पञ्चविंशतृविंशतृस्मृताः २  
श्रुक्रियेषु तु विज्ञेया एकादश मनीषिभिः

एकीकृत्यसमारख्यातं त्रिशतं अधिकंमतम् त्रिशतं अधिकंमतम् ३  
इत्यनुवाकाध्यायः

आदि के दश अध्यायों में ११४ अनुवाक हैं ॥१॥ और आ-  
ग्निक आठ अध्यायों में ६७। सौत्र के तीनि अध्यायों में २२। तथा  
आश्वमेधिक चारि अध्यायों में ४६। खिल के दश अध्यायों में ३५  
॥२॥ शुक्ल के पाँच अध्यायों में ११। समस्त संहिता के मिलि-  
कर ३०३ अनुवाक हैं ३०३ अनुवाक हैं ॥

इति वेदार्थप्रदीपे गिरिप्रसादरचिते अनुवाकाध्यायव्या-  
ख्या समाप्ताः ॥

माधवे विमले पक्षे पञ्चम्या गुरुवासरे ।  
व्योमरामाङ्कुभूवर्षे वेदभाष्यः समागमत् ॥१॥  
गिरिप्रसादपुत्रेण गरुडध्वजवर्मणा ।  
स्वपित्राल्लब्धविद्येन लिखितो वेददीपकः ॥२॥  
श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्द निवारयन् ।  
पुमार्थश्चतुरोदेयात्कृष्णः स्वानन्ददायकः ॥३॥

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतस्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-  
र्वेदैः साङ्ग्यदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ॥  
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो  
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥४॥

परंब्रह्म परमात्मा सच्चिदानन्द की प्रेरणा से मैंने श्री शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनीया वाजसनेयसर्वाहिता के श्रीवेदार्थ प्रदीप गिरिधरभाष्य कहिने का विचार करि विक्रमसेन के सम्बत् १८२६ शालिवाहन के शाके १७८१ आश्विनशुक्ला नवमी ६ सुरगुरुवासर विजय दशमी को आरम्भ किया परन्तु उस दिन मुहूर्त मात्र करिके सम्बत् १८२७ शाके १७८२ वैशाखशुक्ला पञ्चमी सुरगुरुवासर में मन्त्रार्थ लिखा और उसी अविनाशी की कृपाकटाक्ष से सम्बत् १८२८ शाके १७८४ पौष कृष्ण सप्तमी ० रविवासर को इखे लादि खं ब्रह्मान्त मन्त्रों की जाल्या समाप्त हुई ॥

यथापि आश्विनशुक्ला विजयदशमी से पौष कृष्ण सप्तमी पर्यन्त ११६६ दिवस होते हैं तथापि ५११ दिवसों में एक काम से कि दश अध्याय २०१ दिवस में और आग्न १५३ मौन ३३ अथ २६ गिदन्त ७२ शुक्ल २७ दिवस में) भाष्य लिखा गया शेष ६५२ दिवस सामारिक व्यवहार में व्यतीत हुए अवभैग संस्कृत में भाष्य संग्रह करने और पुनः ब्रज भाषा में भी दूसरी बार लिखने का विचार है सो भी निः सन्देह उसी अन्तर्यामी के अनुग्रह और वेदिकों की आशिषा से पूरा होगा हे विद्वानओ जहां कहीं भूलचूक हो तहां कृपा करिके शोधोगे ओम् नमः ॥ इत्युपसंहारः ॥

अथाशीः ॥ हे भगवन् हे वेदपुरुष धन्य है धन्य है धन्य है तू मत्तदा जययुक्त हो तूने मेरे छोटे छोटे हाथों से बहुत बड़ा काम करा दिया यह तेरी ही सामर्थ्य है हे स्वामिन् जो कुछ तूने देखा है तिसे धन्यवादपूर्वक स्वीकार करता हूं तथा जो कुछ देखेगा उसे माथे चढ़ा

कर लूंगा और धन्य कहूंगा हे ईश यह माँगता हूँ कि मेरे मातापिता गुरु और ज्येष्ठ भ्राता की स्वर्ग में पदवी तथा मेरी वेद में श्रद्धा वढ़ाई जावे किंच जैसा महागजा सम्राट् मनु एमचन्द्र युधिष्ठिर परीक्षित के समय में वेद का प्रचार था तैसा इस समय में कराया जावे हे सेखे मेरे वंश में जे हैं और जे उत्पन्न होंवे तिन्हें वेद पारंगी की जियो और तुरु तेज पुञ्ज से ही यह प्रदीप हुआ है सो इस की दिन-दिन ज्योति तथा जे इसे अनुसरें उन्हों की विद्याशक्ति वढ़ाई मे हमारे समस्त अपराध क्षमा किये जावे और हमारी सेवा स्वीकार हो क्यों कि हम तेरे सेवक हैं तथा तू हमारा स्वामी है हरिः ओम् तत्सत्

ओम् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तादुक्कमुच्चरत् । पश्येम शरदः शान्तं जीवेम शरदः शान्तं शृणुयाम शरदः शान्तं प्रब्रूयाम शरदः प्रातमदीनाः स्याम शरदः शान्तं भूयश्च शरदः शान्ताम् ओम् तत्सत्

श्रीमच्छुक्लयजुषो माध्यन्दिनीयशारदाध्येत श्रीसोमवर्धं शोधय व्याघ्रपादान्वयं विश्वामित्रपुराधिप कुरुकुलकमलकमलाकरपादव श्रीभज्जय किशोरदेववर्मोत्तमजरोक्मिणोय श्रीगिरिधरदेववर्मणस्तस्यानुज गिरिप्रसादवर्मरचितः श्रीवेदार्थप्रदीपको गिरिधरभाष्यः समाप्तिमगात् श्रीस्तु कल्याणमस्तु ओम् तत्सत् श्रीबालकृष्णार्पणमस्तु श्रीविश्वामित्रपुरीयनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाशमयन्त्रालये मुद्रितमेतन्मङ्गलम् विक्रमाब्दाः १८३१ शकाब्दाः १९५५ माघशुक्ला ५ श्रीपञ्चमी सुरगुरुवासरः ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः

हरिःउम

भगवद्वचन से मैंने श्रीवेदार्थप्रदीपगिरिधरभाष्य लिखा और प्रतिदिन के लेख की समाप्ति पर तिथिवार भी लिखता गया परं तु भूल से भाष्य के साथ ही मुद्रित न हुआ सो विद्वानों के विमोक्षार्थ उस की प्रति मुद्रित होती है इस में मूलशब्द से काण्डी और सूत्र से सूत्रार्थ तथा भाष्य से मन्त्रार्थ लेना इस से भली भाँति करि ज्ञात होगा कि असुक दिवस में इतना लिखा गया ॥

संहिता अध्याय	संवत् १४२० वै	२० १५ भाष्य	४ बुध	३० २० भाष्य	१५ बुध
१ काण्डी १० मूल	शारव शुक्ला ५	२० १६ भाष्य	१० गुरु	दिवस २१	
	चामी ५ गुरु	२० १८ मूल	१२ भृगु	३० ३० भाष्य	पौष क० २ शनि
१० १ भाष्य +	वे० शु० ६ भृगु	२० १८ भाष्य	१३ शनि	३० ३४ भाष्य	३ रवि
१० १ भाष्य +	वे० शु० ७ शनि	२० २१ भाष्य	१४ रवि	३० ३७ मूल	४ मीम
१० १ भाष्य	वे० शु० ८ रवि	२० २४ मूल	१५ सोम	३० ४० भाष्य	५ भौम
१० २ भाष्य	४ सोम	दिवस २२		३० ४३ मूल	६ बुध
१० ४ मूल	१० भौम	२० २६ मूल	आषाढ क० २ बुध	३० ४४ भाष्य	७ गुरु
१० ६ भाष्य	११ बुध	२० २८ भाष्य	३ गुरु	३० ४६ भाष्य	८ भृगु
१० ८ भाष्य	१२ गुरु	दिवस २		३० ४८ भाष्य	९ शनि
१० १० भाष्य	१३ भृगु	२० २८ भाष्य	मार्गशीर्ष क० २ गुरु	३० ५१ भाष्य	११ रवि
१० १२ भाष्य	१४ शनि	२० ३१ भाष्य	४ शनि	३० ५४ भाष्य	१२ सोम
१० १४ भाष्य	१५ रवि	२० ३४ मूल	६ सोम	३० ५७ भाष्य	१३ भौम
दिवस ११		२० ३४ मूल	७ भौम	३० ५९ भाष्य	१४ बुध
१० १६ मूल	पौष क० २ भौम	३० १ मूल	८ बुध	३० ६१ मूल	३० गुरु
१० १६ भाष्य	३ बुध	३० ३ भाष्य	४ गुरु	३० ६२ भाष्य	पौष क० २ शनि
१० १८ भाष्य	५ गुरु	३० ५ भाष्य	१२ रवि	४० १ सूत्र	२ रवि
१० २० भाष्य	६ भृगु	३० ७ भाष्य	१३ सोम	४० २ सूत्र	४ भौम
१० २२ मूल	७ शनि	३० ८ भाष्य	१४ सोम	४० २ भाष्य	५ भौम
१० २२ भाष्य	१० भौम	३० १० मूल	३० बुध	४० ८ मूल	१२ पौष
१० २६ मूल	१० बुध	३० ११ भाष्य	मार्गश्रु ३ भृगु	४० ४ सूत्र	१ गुरु
१० २८ भाष्य	११ गुरु	३० १४ मूल	४ शनि	४० ६ मूल	१० रवि
१० ३१ भाष्य	१२ भृगु	३० १५ भाष्य	५ रवि	४० ९ मूल	११ सोम
२० २ मूल	शुक्ला २ बुध	३० १६ भाष्य	८ बुध	४० १० मूल	१३ बुध
२० ३ भाष्य	३ गुरु	३० १८ मूल	९ गुरु	४० ११ सूत्र	१४ गुरु
२० ६ मूल	४ भृगु	३० १९ सूत्र	१० भृगु	४० १२ भाष्य	१५ भृगु
२० ७ भाष्य	५ शनि	३० २० भाष्य	११ शनि	दिवस २४	
२० ८ भाष्य	६ रवि	३० २२ मूल	१२ रवि	४० १५ मूल	माघ क० २ रवि
२० १० भाष्य	७ सोम	३० २४ भाष्य	१३ सोम	४० १६ मूल	४ भौम
२० १३ भाष्य	८ भौम	३० २६ भाष्य	१४ भौम	४० १८ सूत्र	५ बुध

+ अथ मन्त्रः वहा पर्यन्त लिखा गया

३ का० ४० २० २५ १० गदा तक लिखा गया

\* का० ई. २०८० यहाँ पर्यन्त भाष्य लिखे। ५ का० ०८.७.१० तथा व श्रुति: १२.५.१.१.२.  
॥ का० ०२५.२.४.



# आहिक

२

१०-१-मूल	१२ बुध	दिवस १८	१२-१०-मूल	१२-१०-मूल	७ बुध
१०-२-मूल	१३ गुरु	११-६४-मूल	प्रथमभा० क० बुध	१२-१०-मूल	८ गुरु
१०-४-सूत्र	३० शनि	११-६०-सूत्र	३ गुरु	१२-१०-मूल	९ भृगु
१०-४-भाष्य+	३० रवि	११-७५-सूत्र	४ भृगु	१२-१०-मूल	११ रवि
१०-७-सूत्र	शु० २ भौम	११-८१-सूत्र	५ शनि	१२-१०-मूल	१२ सोम
१०-८-सूत्र	४ गुरु	११-८३-भाष्य	६ रवि	१२-१०-मूल	१३ भौम
१०-११-मूल	५ भृगु	१२-३-मूल	७ सोम	१२-१०-भाष्य	१४ बुध
१०-१३-मूल	६ शनि	१२-५-मूल	८ भौम	१३-४-मूल	३० गुरु
१०-१६-सूत्र	७ रवि	१२-७-मूल	९ बुध	१३-६-मूल	शु० २ शनि
१०-१४-सूत्र	८ सोम	१२-१२-सूत्र	१० गुरु	१३-१०-मूल	३ रवि
१०-२०-सूत्र	१० बुध	१२-१४-मूल	११ भृगु	१३-१२-मूल	४ सोम
१०-२३-सूत्र	१३ भृगु	१२-१८-सूत्र	११ शनि	१३-१५-मूल	५ भौम
१०-२५-मूल	१४ शनि	१२-२०-मूल	१२ रवि	१३-१६-मूल	६ बुध
दिवस २३		१२-२३-मूल	१३ सोम	१३-१८-मूल	७ गुरु
१०-२८-मूल	आव० क० ३ बुध	१२-२८-मूल	१४ भौम	१३-२०-मूल	८ भृगु
१०-२८-भाष्य+	४ गुरु	१२-३४-सूत्र	३० बुध	दिवस २०	
१०-३२-भाष्य+	६ शनि	१२-४६-मूल	शु० २ भृगु	१३-२४-मूल	आश्वि० क० २ शनि
१०-३४-भाष्य	आ० क० ७ रवि	१२-४८-मूल	३ शनि	१३-२७-मूल	३ रवि
संवत् १८३८ दशाध्यायीसमाप्तदुर्ग		१२-५३-मूल	४ रवि	१३-३०-मूल	४ सोम
		१२-५७-मूल	५ सोम	१३-३७-मूल	६ बुध
१२-२-३-मूल	८ सोम	१२-६१-मूल	६ भौम	१३-३८-भाष्य++	१० सोम
१२-८-मूल	१० बुध	१२-६५-सूत्र	८ बुध	१३-४१-सूत्र	११ भौम
१२-१३-मूल	११ गुरु	१२-६७-मूल	९ गुरु	१३-४५-मूल	१२ बुध
१२-१६-मूल	१२ भृगु	१२-६८-मूल	१० भृगु	१३-४८-मूल	१५ भृगु
१२-१८-सूत्र	१४ रवि	१२-७१-मूल	११ शनि	१३-५३-मूल	३० शनि
१२-२१-सूत्र	शु० २ बुध	१२-७३-मूल	१२ रवि	१३-५४-सूत्र	शु० ५ बुध
१२-२४-मूल	३ गुरु	१२-७५-मूल	१३ सोम	१३-५५-मूल	६ गुरु
१२-२७-सूत्र	४ भृगु	१२-७७-मूल	१४ सोम	१३-५७-मूल	७ भृगु
१२-३३-मूल	५ शनि	१२-७८-मूल	१५ बुध	१४-०-मूल	८ शनि
१२-३६-मूल	६ रवि	दिवस २८	१५-०-मूल	१४-०-मूल	१२ भौम
१२-४०-मूल	७ सोम	१२-८१-मूल	दि० भाद्र० २ भृगु	१४-०-भाष्य++	१२ बुध
१२-४७-भाष्य+	९ बुध	१२-८५-मूल	३ शनि	१४-०-सूत्र	१५ शनि
१२-४७-मूल	१० गुरु	१२-८६-मूल	४ रवि	दिवस २९	
१२-५०-भाष्य+	११ भृगु	१२-८८-मूल	५ सोम	१४-०-मूल	कार्ति० क० २ सोम
१२-६०-मूल	१२ शनि	१२-९०-मूल	६ भौम	१४-०७-भाष्य++	३ भौम

११-११-११-११

११-११-११-११

५०-११-११-११

११-११-११-११

१४-२३-भाष्य+	५ गुरु १६-६१-मूल	१४ गुरु १८-५४-मूल	४ बुध
१४-२४-भाष्य+	६ भृगु १६-६६-भाष्य	३० भृगु १८-५६-मूल	१० गुरु
१४-२६-मूल	७ शनि १७-३-मूल	शु० ४ सोम १८-६३-भाष्य	११ भृगु
१४-२८-भाष्य+	८ रवि १७-८-मूल	५ भौम १८-७२-मूल	१२ शनि
१४-३०-मूल	९ सोम १७-१३-मूल	६ बुध १८-७७-भाष्य	चेन्नशुदी १३ रवि
१४-३१-भाष्य	११ बुध १७-१७-मूल	७ गुरु १८-८२-भाष्य	संवत् १८२६-अगस्तमास कुम्भा
१४-४-मूल	१२ गुरु १७-१८-मूल	८ भृगु	
१४-५-मूल	१३ भृगु १७-२५-मूल	९ शनि १८-१-३-मूल	१३ भौम
१४-६-भाष्य+	१४ शनि १७-३०-मूल	फाल० क० २ सोम	तिवस २१
१४-१०-मूल	शु० २ भौम १७-३२-भाष्य	३ भौम १८-७-मूल	विशा० क० २ गुरु
१४-१५-मूल	३ बुध १७-३६-मूल	६ भृगु १८-१३-भाष्य+	३ भृगु
१४-२३-मूल	४ गुरु १७-४३-मूल	७ शनि १८-२५-मूल	४ शनि
१४-२८-मूल	५ भृगु १७-५०-मूल	८ रवि १८-३२-मूल	५ रवि
१४-३४-भाष्य+	७ रवि १७-५७-मूल	९ सोम १८-३८-मूल	शु० २ गुरु
१४-४०-मूल	८ सोम १७-६०-मूल	११ भौम १८-४७-मूल	३ भृगु
दिवस १७	१७-६२-मूल	१३ गुरु १८-५०-मूल	४ शनि
१४-४०-भाष्य++	पौषशु० ४ रवि १७-६५-मूल	३० शनि १८-५७-मूल	७ भौम
१४-४१-मूल	६ भौम १७-७०-मूल	शु० ११ बुध १८-६३-मूल	८ बुध
१४-४४-मूल	७ बुध १७-७८-मूल	१२ गुरु १८-७१-मूल	९ भृगु
१४-४५-मूल	८ गुरु दिवस २७	१४-७५-मूल	१० शनि
१४-५४-मूल	९ भृगु १७-८०-मूल	चेन्नक० ३ बुध १८-८३-मूल	११ रवि
१४-६३-मूल	१० शनि १७-८७-मूल	४ गुरु १८-८९-मूल	१२ सोम
१४-६५-भाष्य	११ रवि १७-८८-मूल	५ भृगु २०-१-मूल	१४ बुध
१६-३-मूल	१२ सोम १७-८९-भाष्य+	६ शनि दिवस १४	
१६-८-भाष्य	१३ भौम १७-९३-भाष्य+	८ सोम २०-१-मूल	ज्येष्ठक० ३ शनि
१६-१६-भाष्य	१४ बुध १७-९७-मूल	९ भौम २०-१४-मूल	७ बुध
दिवस १०	१८-१-मूल	१० बुध २०-२१-मूल	८ गुरु
१६-२०-मूल	माघक० ३ रवि १८-५-मूल	११ गुरु २०-३०-मूल	९ भृगु
१६-२२-मूल	४ सोम १८-१३-मूल	१२ भृगु २०-३६-मूल	१० शनि
१६-२४-मूल	५ भौम १८-२८-मूल	१३ शनि २०-४७-मूल	११ रवि
१६-२५-मूल	६ बुध १८-३१-मूल	शु० २ भौम १८-२४ २०-५३-मूल	१२ सोम
१६-३५-मूल	१० रवि १८-३३-मूल	३ बुध २०-६१-मूल	१३ भौम
१६-४१-मूल	११ सोम १८-३८-मूल	६ रवि २०-७८-मूल	१४ बुध
१६-४६-भाष्य+	१२ भौम १८-४१-मूल	७ सोम २०-८७-मूल	३ गुरु
१६-५२-मूल	१३ बुध १८-४८-मूल	८ भौम २१-५-मूल	शु० २ शनि

२१-१३ मूल	४ सोम	२५-१६ मूल	११ सोम	२६-४३ मूल	१२ बुध
२१-३० मूल	५ भौम	२५-२३ भाष्य	१२ भौम	२६-४३ भाष्य	१३ गुरु
२१-४० मूल	६ बुध	२५-२४ मूल	१३ बुध	२६-५३ मूल	१४ भृगु
२१-५६ मूल	७ गुरु	२५-३६ भाष्य	१४ गुरु	२६-५८ मूल	१५ शनि
२१-६७ भाष्य	८ भृगु	२५-४७ भाष्य	ज्येष्ठ शु० १५ भृगु	दिवस २७	
२१-७५ मूल	९ शनि	संवत् १८२८ अश्वमेध समाप्त हुआ	२६-६० भाष्य	श्रा० क० २ सोम	
२१-६९ भाष्य	ज्येष्ठ शु० १० रवि	दिवस १०	३०-१२ भाष्य	३ भौम	
संवत् १८२८ सोम समाप्त हुआ		द्वितीय भाद्रपद शुक्ला १२ चन्द्र	३०-२२ भाष्य	४ बुध	
दिवस १८		वार संवत् १८२८ से मेने कि सी-कि	३१-३ भाष्य	५ गुरु	
		सी दिन अश्वमेध पर भाष्य किया	३१-४ भाष्य	६ भृगु	
		इस हेतु से सोम के समीप ही समाप्त हुआ	३१-१६ भाष्य	७ शनि	
२२-१-५ मूल	द्विभाष्य १२ सोम		३१-२२ भाष्य	८ रवि	
२२-६ भाष्य	१३ भौम		३१-२२ भाष्य	९ सोम	
२२-१५ मूल	१४ गुरु	२६-१-८ मूल	आषाढ क० २ रवि	१० भौम	
दिवस ३		२६-२० भाष्य	४ सोम	१२ गुरु	
२२-१६ भाष्य	आषाढ क० ५ भौम	२६-२६ भाष्य	५ भौम	१३ भृगु	
२२-२० मूल	७ गुरु	२७-६ मूल	६ बुध	१४ शनि	
२२-३४ भाष्य	७ भृगु	२७-१५ मूल	७ गुरु	३० रवि	
२३-७ भाष्य	८ शनि	२७-२३ मूल	८ भृगु	शु० २ भौम	
२३-१३ भाष्य	९ रवि	२७-२६ भाष्य	९ शनि	३ बुध	
दिवस ५		२७-३४ भाष्य	१० रवि	५ भृगु	
२३-१७ भाष्य	माघ क० ७ गुरु	२७-३८ मूल	११ सोम	६ शनि	
दिवस १		२७-४३ भाष्य	१२ भौम	७ रवि	
२३-२१ भाष्य	वै० क० १२ शनि १८२८	२७-४५ भाष्य	१३ बुध	८ सोम	
२३-३२ भाष्य	१३ रवि	२८-५ भाष्य	१४ गुरु	९ भौम	
२३-३८ भाष्य	३० भौम	२८-११ भाष्य	३० भृगु	१० बुध	
२३-४४ भाष्य	शु० ५ रवि	२८-१६ मूल	शु० २ रवि	११ गुरु	
२३-५२ भाष्य	६ सोम	२८-२६ भाष्य	३ सोम	१२ भृगु	
२३-५८ भाष्य	८ गुरु	२८-३७ मूल	४ सोम	१३ शनि	
२३-६१ भाष्य	१३ भौम	२८-२ मूल	५ बुध	१५ रवि	
दिवस ७		२८-८ मूल	५ गुरु		
२४-१-४० भाष्य	ज्येष्ठ क० २ भृगु	२८-१५ मूल	६ भृगु	दिवस २७	
२४-२ मूल	४ रवि	२८-२१ मूल	७ शनि	३३-६३ भाष्य	भाद्र क० २ भौम
२४-४ मूल	५ सोम	२८-२६ मूल	८ रवि	३३-७३ भाष्य	३ बुध
२४-७ मूल	६ भौम	२८-३१ मूल	९ सोम	३४-३ भाष्य	१२ भृगु
२४-८ भाष्य	शु० ३ रवि	२८-३८ मूल	१० भौम	३४-८ मूल	१३ शनि

## आन्धिक

३४. १४. मूल	१४ रवि	३६. १-१०. भाष्य	भा. कृ. ४ गुरु १४. २४	३४. ५. मूल	आश्वि. शु. २ भृगु
३४. १६. मूल	३० सोम	३६. २४. भाष्य	भा. कृ. ५ भृगु	३४. ७. सूत्र	आ. शु. ३ शनि
३४. २५. मूल	शु. २ गुरु	३७. ६. मूल	६ शनि	३४. १३. भाष्य	आ. शु. ४ रवि
३४. ३२. मूल	३ भृगु	३७. ४. मूल	७ रवि	संवत् १४२४ कर्मकाण्ड समाप्त हुआ दिवस ८	
३४. ४०. भाष्य	४ शनि	३७. ११. मूल	८ सोम		
३४. ४६. भाष्य	५ रवि	३७. १४. मूल	९ भौम	४०. १. भाष्य पौ. कृ. २ सोम १४. २४	
३४. ५०. भाष्य	६ सोम	३७. १८. मूल	१० बुध		
३४. ५४. मूल	८ भौम	३७. २१. भाष्य	११ गुरु	४०. ३. भाष्य	पौ. कृ. ३ भौम
३४. ५८. भाष्य	९ बुध	३८. ३. भाष्य	माद्र. शु. १२ शनि	४०. ५. भाष्य	पौ. कृ. ४ बुध
दिवस १३		३८. ६. मूल	१३ रवि	४०. ८. भाष्य	पौ. कृ. ४ गुरु
३५. १. सूत्र	आश्वि. कृ. १० भृगु	३८. ७. भाष्य	१४ सोम	४०. १४. भाष्य	पौ. कृ. ५ भृगु
३५. ६. भाष्य	११ शनि	३८. ११. मूल	१५ भौम	४०. १६. भाष्य	पौ. कृ. ६ शनि
३५. १२. मूल	१२ रवि	दिवस १२		४०. १७. भाष्य	पौ. कृ. ७ रवि
३५. १८. भाष्य	१३ सोम	३८. १३. भाष्य	आ. कृ. ३ भृगु	संवत् १४२४ ज्ञानदाण्ड समाप्त हुआ और संहिता भी पूर्ण हुई दिवस ७	
३५. १४. भाष्य	१४ भौम	३८. १६. मूल	५ शनि		
३५. २२. भाष्य	आश्वि. कृ. ३ बुध	३८. १८. भाष्य	६ सोम	इत्याहिकं समाप्तम् ओम् शान्तिः	
संवत् १४२४ खिल समाप्त हुआ दिवस ६		३८. २५. मूल	७ भौम		
		३८. २८. भाष्य	८ बुध		

## सूचना

विद्वानों को उचित है कि मुरझा लेखनी से भाष्य में चिन्ह देकर आर्विल पर आन्धिक में से तिथिवार उठाकर लिखें इस लिखने से भाष्य बहुत कुछ प्रीतिमान हो जावेगा और वृष्टा व लोकन में अतिशयेन चिन प्रसन्न होगा तथा पाठ के साथ में ही प्रतिदिन का लेख अकट होगा ॥

पाण्डव गुरुद्वयजवः

# हरिः श्रीम्

श्रीवेदार्थप्रदीपगिरिधरभाष्यस्य शुद्धिपत्रम्  
श्रीवेदार्थप्रदीपगिरिधरभाष्य के पढ़ने वालों को उचित है कि पढ़ने से पहिले इस शुद्धिपत्र से उसे शुद्ध कर लेंगे

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	भाष्या	दीपो	१६	६	मभि	माभि
३	२१	षड्गों	षड्गों .	१७	१३	सावित्री	सावित्री
४	४	भारथा	भारता	१७	१७	वैश्वदेवी	वैश्वदेवी
७	३	द्विरूप	द्विरूपे	१८	५	ज्ञ	ज्ञो
७	८	ऋषि	ऋषि	१८	१८	गायत्री	गायत्री
८	१	मन्त्रा एत	मन्त्राणा	१८	१८	पाण्डु	पाण्डु
८	६	प्राजापत्या	प्राजापत्यं	२०	५	ऐन्द्री	ऐन्द्री
८	६	सूर्यो	सूर्यो	२०	१०	ब्रह्म	ब्रह्म
८	२०	घर्मो	घर्मोऽसि	२२	१४	विष्णोर्लि	विष्णोर्लि
८	११	वैष्णवे	वैष्णवेऽग्ने	२३	१	वीरप्स्व	वीरप्स्व
८	११	देवर्षे	देवर्षे	२३	७	इन्द्र	इन्द्र
८	१६	यजुरन्ताग्नेः	यजुरन्ताग्नेः	२६	१२	मा	द्वितीया जगती
८	२१	यवमान्	यवमान्	२७	१६	गृत्समद	गृत्समदस्त्रिष्टुभ
१०	२	लिङ्गोक्ते	लिङ्गोक्ते	२८	१६	नाष्टि	सानाष्टि
१०	३	देवत्या	देवत्या	३०	२०	त्रातार	त्रातार
१०	४	॥७॥४॥	॥७॥म	३१	२	यऽइन्द्र-देवत्याति	यऽइन्द्र इन्द्र-देवत्या
१०	६	देवर्षे	देवर्षे	३३	१५	माहेन्द्री-ऐन्द्री-हती	माहेन्द्री-ऐन्द्री-हती
११	२	वुपवत्यो	वुपवत्या	३४	१०	शुक्र	शुक्रः
११	४	देवताश्च	देवताश्च	३६	५	था	या
११	१८	रज्वा	रज्वा	३६	७	दशाग्निष्टोमिके	दशाग्निष्टोमिके
११	२०	स्यत्यः	स्यत्यः	३६	१३	हे	हे
१२	१	नुष्टुवेः	नुष्टुब	३६	२०	इन्द्रोहि	इन्द्रे हि
१२	६	एतदा-उषिह	एतदौद्या-उषिह	३७	१०	इन्द्र	इन्द्र
१२	१४	मनुष्टुभम्	मनुष्टुभम्	३८	२०	द्य	द्य
१२	१५	यो	योः	४०	८	कश्च	काश्च
१२	१६	सुसस्या	सुसस्याः	४१	११	मन्त्रवर्णिको	मान्त्रवर्णिको
१२	१७	स्य	स्व	४२	२	नेमिनिकादिषु	नेमिनिकादिषु सर्वेषु
१२	१८	अधिदे	अधिदे	४२	१४	गुन्यकं	गुन्यकी
१२	२१	सोम	सोम्य	४२	२०	जो जो	जो
१३	१५	यागिनि	यावगनी	४६	८	गमताः	गमताः
१४	२	वक्षं	वक्ष	४६	१६	मत्प	मत्पस्य
१४	१८	हं	हं सोम्यर्षे	४८	४	मनायते-कन्दामि	मनायते-कन्दामि
१५	१३	दानां	दानं	५१	६	माध्या	माध्यागा
१६	२	त्वमङ्ग	त्वमङ्ग	५२	१७	विना नोति	विना नोति

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	१८	कि	किं द्यु (स्वर्ग) से	५५	४	भुवन	भुव
५८	८	यहां	यहां ध्रुवाः (शाश्वतिकी)	५५	७	को	के अर्थ
६२	१	२३	३३	१०१	८	समिदरसीति	समिहसीति
६३	११	बोधमा	बोधमात्र	१०१	१५	+ पुत्र	+ पुर
६४	१७	र्ष	र्ष	१०१	१८	प्रस्तरण	प्रस्तर
६५	५	यः	यो	१०६	४	॥१०॥	॥१०॥ + म-वः ॥ १०॥
६६	१३	( )	(हलसा)				उ-हा ॥ १०॥ १०॥
७०	१३	का० २.३.३२.	का० २.३.३१.३२.सम-	१०६	१३	घं	ध
		- के अन्तर्गर्भ	प्रमाण अक्षरिताग्र	१०७	४	प्रश्नाति	प्रश्नाति
		पत्र	अनन्तर्गर्भ	१०७	१०	२८	१८
७०	१६	हविग्रहण	हविग्रहणी	१०८	११	सविता	सविता देवता
७२	१४	त्य	त्या	१०८	१२	रार्थः ॥	रार्थः तथास्तु।
७३	७	उलूल	उलूलवल	१०८	८	तः ॥	तः इयः विशेषः ॥
७३	१५	अग्नि	अग्नि में	११०	४	करे।	करता है
७३	२१	अपां प्राणयनका	+	११०	६	करे	करते हैं
		ल में खोलनेवाला		११०	८	करूंगा	करता है
७४	१२	नाद्या	नादद्या	१११	४	वात्	त्वात्
७५	५		का० २.४.१५.	१११	१४	हेग.	हेग करिके
७८	१	पहिली	पहिला	११३	४	प्रियत्व	प्रियत्व से
७८	८	उपवेश	उपवेश	११४	८	अध्यायो	अध्यायो
७८	१४	अन्तरि	अन्तरिक्ष	११४	१८	पूर्वक	पूर्वक एकत्र
७८	१७	की	की	११५	२	॥२१॥	॥२१॥ + वे-याः ॥ १०॥
८१	४	पवनात्मिका	पर्वतात्मिका				दे-धाः ॥ १०॥ २१॥
८१	१३	धिषण	धिषण (पेषण)	११८	४	दीरवता	दीरवता
८५	१०	अर्थ	अर्थ प्रवृत्त	११८	१४	आकाश	स्वर्ग
८५	१२	पेषण	पेषण	११८	१७	वर्द युक्त	वर्दयुक्त
८५	१५	पृथिवी	पृथिवीरूपा	१२२	२	रेखा के	रेखा से
८०	५	पर्य	पर्य	१२२	२०	रवाते हुए	रवाते हुए + यथाभाग
८१	३	असर	असुर				माशिवरित्येवैतदादे-
८१	७	दध्यावती	दध्यादिवती				ति २.४.२.२२. श्रुतिः ॥
८१	१४	अत्रेय	अत्रेय	१२३	१४	हेतु	हेतुभूत
८२	१८	हवणि	हवणि का	१२४	१	तुम्हारे विचार	तुम्हारे अर्थ विद्यमान
८२	२०	संमाजन	संमार्जन			से देवः	से देवः विद्यमान धन
८४	१३	उत्तम	उत्तम				से हमलोगों करि दात-
८५	१५	करे ॥	करे ॥ प्राजापत्यापङ्क्तिः				व्य है।
			रायः देवता	१२५	२०	क्रमेण	क्रमेण
८६	१६	पुमार्थी	पुमर्थी	१३३	४	सामान	समान
८८	५	दर्भ	दर्भ तू	१३४	१७	तैसे	तैसे यह
८८	२०	स्वास्था	स्वासस्था	१३५	४	भारद्वाज	भारद्वाज



# शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४१	८	सर्वत	गार्हपत्य को	१७५	१३	की बराबर	की संमित
१४३	२०	कक्षा	कक्षी	१७६	१५	की	को
१४४	१८	हे आने तेरे	अग्नि के	१७६	१६	यज्ञ	यज्ञ की सिद्धि
१४७	६	ध्याय	ध्यान	१७७	१३	गमन	गन्
१४७	१२	नष्टान	नुष्टान	१८०	१७	को	का
१४७	१५	मण्ड	मण्डल	१८१	१	४०	४० इस से होमें ॥
१४८	१०	को	की	१८१	१४	स्म	रूपे
१४८	३	होंजें ॥	होंजें । तथा हिरण्यदि	१८२	६	रूपों	रूपत्व
			पुष्टिकरिबहुमुल्याहर्हि	१८२	२१	हस्तिण	दक्षिणपाद
			रण्यदियुक्तहोंजें ॥	१८३	८	की	को
१४८	११	मेरी प्रजापुत्रादिका	मेरे पशुओं	१८३	११	हो (जा)	होने के लिये जा ।
१५०	५	हमारे	हमारे अर्थ वा	१८३	१८	१६	१६ अभिमन्त्रण के अन-
१५२	१७	रेकेण	रिक्तेन				न्तर उत्तर में लार्द सोमक
१५४	४	रत्य	स्त्य				यणी को अध्वर्युयजमाना
१५६	२	प्रसाद	प्रसाद से				अनुगमन करते हैं ॥
१५६	१४	यम	मय	१८४	११	चलता	रुगता
१६६	१४	का० ७० १० १६	का० ७० १० ३६	१८४	१२	है	है + पृथिव्या लेश मूर्धा
१६६	२०	में	को				यह वयजनमिति ।
१६७	२	क्यों करिके	क्या करते	१८४	२०	कोद्रे	को यजमान के अर्थ देवे
१६८	४	शाला	प्राचीन शाला	१८४	२१	तेरे	तेरे में
१६८	७	को	के अर्थ	१८६	१२	अधिपत्य	आधिपत्य
१६८	१५	मुक्तो	मेरे अर्थ	१८७	१७	कीजिये	करता
१७०	१०	सार्थ	शक्त	१८७	१४	२०	२० कोणों की
१७१	४	दे०	दे० + स्वाहाशब्दस्यनि	१८८	२	लेती (जीती) है	लेवे (जीवे)
			पातत्वेना ने कार्यत्वाद्	१८८	१०	वोले	बुलवावे
			चिता अर्था ३१३२५-	१८८	४	कोहे- वकरी	कहिवावे - अजे
			२८ ब्राह्मणानुसारेण ग्रा	१८९	३	प्रीतिरूप	प्रीतियुक्त
			ह्याः ॥	१८९	५	को	की
१७१	१२	यह सिद्ध हुआ	एवं सिद्ध इति शेष	१८९	६	की	करिये है
१७२	३	करूं	करूंगा	१८९	२१	जिसका	जिस के
१७२	५	करें	करता है	१८१	१०	३	३ उदायुषति
१७२	७	२	विद्याधारणशक्तिमन्	१८२	११	को	को सर्वत
			में होती है २	१८२	१३	पंटे- को	पतवावे - का
१७३	२	और	वा	१८२	१५	आपने किये यग	आपनी आज्ञा
१७३	१२	तैसे ही	तैसी	१८३	७	के	
१७३	१७	अरुक्तामयो	अरुक्तामे वै	१८३	८	के	
१७४	१३	को	का	१८४	५	अश्वपार चदि	अश्वों की तु चलता है
१७४	२१	को	का	१८४	१७	प्रति- प्रदे	को पतवावे
१७५	७	का०	का० ७	१८४	१६	है	है सोम

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८४	२१	चार) मतदीर्घयो	(मर्वतः चलते हुतः) मकार				रतिसे देवता पांचों में
			विशेष) न जानें				ज्यों में हो में॥
१८५	४	घर-तिस-घर	घरों-तिन-घरों	२१३	१२	में हूं	में ही हैं
१८७	१३	करें	करते हैं	२१३	१६	गार्ग	मार्ग
१८७	१६	का	को	२१४	८	जैसे	जैसे दक्षिणशकरके
१८८	१७	थ्य के आठ	ध्येष्टि के	२१४	१०	हो	होओ
१८८	१	नों का	स का	२१५	१	हैं	हैं देवश्रुती
१८८	१२	४	४ + तथा च श्रुतिः ३४	२१५	८	रानेवाले-होनेवाले	रों-होओ
			११२ सा यज्ञायत्रीष्ये	२१५	२०	हुए	ओं के
			नो भूत्वा दिवः सोममा-	२१६	८	दृष्टा	दृष्टे
			हरदिति	२१६	११	कहें	कहते हैं
१८८	१८	हैं	हैं + तदाह तितिरिः। या-	२१७	१२	करिये हैं	करिये हैं सबों करि दु-
			वद्विर्वै राजानुचौरेगच्छ-				ति श्रोय-
			ति सर्वेभ्यो वै तेभ्य आति	२१८	६	प्रति	वर्ति
			थ्यं क्रियते छन्दसि ख-	२१८	१२	रराटियों के प्रान्त	रराटी के प्रान्तों
			लु वै सोमस्य राज्ञोऽनुच-	२१८	१०	देवता में	देवता की आज्ञा में
			राणीति।	२२०	२०	प्रतिक्ष	प्रत्यक्ष है
२००	१४	१०२२	१०२२ उर्वशी वाऽप्रप-	२२०	२१	बराबर	सदृश
			राः पुरुरवाः पतिरथय	२२१	४	फेंता हूं	फेंकता हूं
			लस्मान्निधुनादजाय-	२२१	१५	१६ दूसरे यजमा-	दूसरे को। द्वादशाहादि
			त तदापुरिति।			नों में राजमान।	सबों में राजमान शत्रुघा-
२०१	७	हो	होओ			तीसरे यज्ञ के वि	ती॥२॥ तीसरे यज्ञमानों
२०१	१३	हो	होओ			नाश करनेवाला	में राजमान यज्ञविनाश
२०१	२१	स्था	स्थान			राक्षसों का घाती	करनेवाले राक्षसों का घाती॥
२०२	२१	अज्य	आज्य	२२३	१०	की बराबर	की मात्र
२०३	२०	ही	होते	२२४	२१	करते हैं	किये गये
२०३	२१	हों।	हों।	२२५	६	की	
२०६	४	तीव्रं	त्वषं	२२६	२	से	से कुटी
२०६	१५	द्व	द्वता	२२७	८	४	२४
२०८	३	को	के	२२७	१५	सदस	सद
२०८	१७	ति को	ति के अर्थ	२२४	११	स्तुति समेत	स्तोतु समेता
२१०	१६	नामा	नामा मध्य देश है	२३०	११	वर्ति	वर्ति पुरातन
२१०	१४	करें॥	करें॥ कैसे कि कोण सू-	२३०	१२	अह	अहिः
			त्र प्रदेश करिके। तद्यथा	२३१	१	२१	२१०२२
			पहिले दक्षिण अंस फि-	२३२	१	आज्य	(दधिमिश्रित आज्य)
			रि उत्तर ओण फिर दक्षि-	२३२	५	लीपक	संदीपक
			ण ओण फिर उत्तर अंस	२३२	१२	होमें	होमी
			फिर मध्य में। एवं पांच	२३२	२०	पदे	पद वावे
			स्थानों में हिरण्यगर्भिक	२३३	१४	तब	ततः

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३४	१५	* स्वस्याहा	स्वस्याहा स्वाहा	२५०	१६	कीमनमाकेसंगतहो	किमन की संगत हो
२३४	१६	आत्मीहीमेगहै	आत्मीय में हूं	२५०	१७	हैं।	हैं।
२३५	८	करै	करता हुआ	२५२	१०	अङ्ग-अङ्ग	अङ्ग-अङ्ग
२३५	८	करै	करता हुआ	२५३	१८	संवन्धि	संवन्धि
२३५	१४	के अर्थ	के लिये गमन करने की	२५५	१	अर्थ	अर्थ
२३६	२	यूयों	यूयों	२५५	१५	वहते हुए	वहती हुई
२३६	३	यूपां	यूयों	२५६	१५	वसतीवरी	वसतीवरी को
२३६	४	पाया	पाया निकटों से परे	२५६	१६	हूं	हूं। कैसे अग्नि के कि
			न पाया				नहीं है पतित गृहजि-
२३६	५	में सेवन करूं	हम सेवन करें				स का तिस अविनश्व-
२३६	६	में	के अर्थ				र गृहके
२३६	७	न करै	करै	२५७	४	जो	जो
२३६	८	न करता	करता	२५७	५	है	है
२३६	१८	तेरी मत हिंसा करौ	को तू हिंसा न करि	२५७	६	जिस जल-सो	जिन जलों- ते
२३६	२०	मत हिंसा करौ	को हिंसा न करि	२५८	३	उत्कृष्ट	उत्कृष्ट करिके
२३७	५	को नही भेदताहूं	की पीडा न करनी चाहिये	२५८	६	आपत्य	अपत्य
२३७	६	२०२१	२०२१	२५८	१७	रखि	रखी
२४०	५	इस	ऐसे	२६०	१५	संग्राम-कौ	संग्रामों- करता है
२४०	१०	ब्रह्मर्ष	ब्रह्मर्ष	२६०	१७	पहुंचे	पहुंचा है
२४०	१६	प्रति पढ़े	को पढ़ावे	२६०	१८	में स्थित	संस्थ में
२४१	५	प्रति पढ़े	को पढ़ावे	२६१	११	मे- करूं	को- करता हूं
२४१	७	वाप्त-आदि	व्याप्त-आदित्य	२६१	१३	करूं	करता हूं
२४३	८	हजियों	हजियों पाश करिके	२६१	१५	पढ़े	पढ़ावे
			बंधने में	२६२	३	से प्रीति	को तृप्त
२४३	१३	३८	२८	२६२	५	से प्रीति	को तृप्त
२४३	१४	को	के अर्थ	२६२	१३	४०८८	४०८८
२४४	१८	में पहुंचो-में पहुंचो	करि संगत हों- करि स	२६३	१८	कैसी हो	कैसी हो
			गत हों	२६३	२०	करनेवाली	करनेवाली वा गिता
२४४	२०	में पहुंचो	करि संगत हों				पुत्र देत्य को माने वा
२४५	८	प्रति पढ़े	को पढ़ावे	२६४	५	तुम-दों-कायें	तुम-दों-कायें
२४५	१२	से अपने को	के आत्मा करि	२६४	६	तुम	तुम
२४५	१३	अपने को	आत्मा करि	२६४	७	करो-कायें	करो-कायें
२४६	६	२	१	२६४	१७	अंत पढ़े	को पढ़ावे
२४६	४	१० प्रति पढ़े	को पढ़ावे	२६४	१६	नदी-कहा-कहो	मे इन वाचाओं व विद
२४६	१२	आ	समीप में आ	२६६	४	वायिते	वायिते ७
२४६	१८	॥	॥	२६६	१७	॥	॥
२४८	४	में	में	२६६	१७	॥	॥
२४८	१२	संवाधियों	संवाधियों वि यूयों				
२५०	१७	देवाम	देवाम				

शुद्धिपत्रम्

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८६ ८	अन्न	पाशुग्रहस्य	२८६ १४	विप्रट्	विप्रट्	
२८६ ४	उत्पत्त	अन्नां	२८७ १७	पटे	पट्वावै	
२८६ १४	तुम् परिधिका	उत्पत्ति	२८७ १८	प्राण करि	प्राणरूप करि	
२८६ २१	अभिचारिकं	तुम् परिधि में	२८८ १३	धनी यो	धवनीयो	
२८६ ३	अमर्द से माराहु	आभिचारिकं	२८८ ६	हैं	हुए	
२८६ ४	आ + यह	(अमर्द करिके) मार	२८८ ७	हैं	हुए	
२८६ ४	स्थाप	ते सन् + चाह	२८९ १६	मासो॥	मासो संहते प्रसहना	
२८७ ८	ग्रह से	स्थापन			र्थस्य प्रयोगः प्रसहनम	
२८७ १३	आज्य	ग्रह में			भिभवनं यतो हेमन्तः श्री	
२८७ २१	श्रुत	आग्रयण			तेन नरानभिभवती ॥	
२८७ २०	हस- को	मिश्रित	२८४ १५	द्युलो	द्युलोक	
२८७ २१	में	तिस- करिके	२८६ ८	पयलक्षण	पयस्यलक्षण जिसके	
२८४ ११	हादण	को	२८६ २०	सोम	सोमों	
२८५ ७	प्रत्यय	हादणार्ण	२८६ ११	अभिषुतो में	अभिषुतो का	
२८६ ६	छोड़े विसर्ग-	था प्रत्यय	२८६ १४	महेन्द्र	माहेन्द्र	
	श्रीणि	विसर्ग न- श्रीणिओं	२८७ २१	सोम	स्वर्ण	
२८६ १४	वीर्योपेत		२८८ १	दक्षिण	दाक्षिण	
२८६ १	॥	श्रीर्योपेत	२८८ २	रश्मि	रश्मिर्	
२८७ १०	हं	॥ विष्टुवेन दृष्टा सोमस्तु	२८८ १०	पुक्त	वाङ्मिरसकुत्स	
२८७ ८	संकल	५ (ति	२८४ २१	का	को	
२८७ १२	दोनों	शंकल	३०० ७	हं- सोमपान	हं और अन्नरिक्ष (पि	
२८७ १३	ओ	का ०४ ६ १४ दोनों		भूता	त्यानमार्गी) की देखता	
२८७ १६	तथा-ओ	ओ जे			हं- सोपानभूताओं	
२८७ ३	रि।	तथा जे-ओ ते	३०१ २०-	२१ की आयु काजी	के अर्थ आयु (जीव	
२८७ १४	अर्थ वृष्टिके	रि। और यज्ञपति (यज	३०३ १	वन- का	न)- के अर्थ	
२८७ १०	करते हैं	मान) को रक्षा करि।	३०३ २	विनिनक्ति	विविनक्ति	
२८७ १३	तेसे	अर्थ। ऊर्जे (क्षीरादिक)	३०४ १७	यो	यस्यो	
२८५ ४	२२	के अर्थ। वृष्टिके अर्थ।	३०४ २०	संस्त्रव	संस्त्रवों	
२८५ १२	को।	करता हूं	३०५ १४	इन्द्र	इन्द्र तू	
		तिस		मनुष्य। जन्मनी	जन्मनी देव मनुष्य	
		२२		देव।		
		को। तथा ऋत (यज्ञनि	३०५ १६	से	में	
		मित) में दो अरणियों	३०६ २	सवन	सवन द्युलोकसमान	
		से उत्पन्न की।	३०७ ५	नी	नओ	
२८५ २१	ए	एव	३१० १-२	रूपमभि औरत	रूपत्वमभि- में और	
२८६ २	संस्थान	शसनप्रस्थानं		था में	तथा	
२८६ ८	पूर्वी	पूर्वीऽ	३११ १	८०१०	८०१०	
२८६ १४	ए	ए	३११ १७	जाने हुए	आज्ञापाये	
२८६ १६	ए	ए	३१२ ३	६०८	८०६	

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१३	६	देवत्या	देवदेवत्या	३३४	१२	एक	भिन्न
३१३	४	आ	ब्र	३३४	२०	१२	१२.४
३१४	२	पद्यादि	पद्यादिनव	३३५	१६	पूषणो	पूषणो
३१४	८	करते	करते	३३८	१७	रस	स्कन्नरस
३१४	१८	तुमने	तूने	३३८	१८	सोमरूप	स्कन्न
३१४	१४	चलाओ	चलाय	३३८	२०	ह	स्कन्न ह
३१४	२०	चलाओ	चलाऊ यह कहो	३३४	११	का	के स्कन्न
३१५	१	वा स्वः	घर्म, आदित्यमण्डल	३४०	१५	+ १२	१२.५.१.१०.
			वा स्वः	३४०	१६	प्रति पड़े	को पटवावे
३१७	४	प्रति वांचे	को पटवावे	३४०	२०	दिशा	आगेदिशा
३१७	११	प्रति वांचे	को पटवावे	३४२	१०	श्रीवेदार्थप्रदीपके	नवमो वेददीपके
३१८	८	तिस	तहां	३४२	११	रम्भान्तोनवमोक्त	रम्भान्तोऽध्यायैर्यते
३१४	५	३.४८—अग्न	३.४८॥का०५.५.३५	३४३	१	हमारे अर्थ	हमारे
			स्नामानन्तर लोटिके	३४३	११	१४.२	१४.१
			देवानां समिदिति आ	३४३	१७	य	ग्रह
			हवनीयमें समिधाधा	३४४	८	यजुः	ग्यजुः
			न करे ॥—अग्नि	३४४	११	सोम	प्रजापति
३१४	११	विषे	विषे माता के सकाश	३४५	१६	ज	जी
३२०	२	मयि	मयी मन्त्रेण करिये है	३४६	२	सविता	सवितादेव
३२१	८	यि	यिबी	३४६	१२	और	और जलों के
३२१	२०	हुन	हुन	३४७	१०	जोड़े—अश्व	जोड़े—अश्व तेरे
३२३	१६	अर्थात्	सोही	३४७	१६	पक्षी	पक्षी जो
३२६	५	की	की करें	३४७	१७	और	और जो
३२६	८	दीप्ति	दीप्त	३४८	१४	पूर्वोक्त	पूर्वो
३२६	८	दीप्ति है—नुष्यों	दीप्त है—मनुष्यों	३४८	१६	का	को अन्न की जय करई
३२६	१४	सन्न	सन्न	३५०	५	पड़े	पटवावे
३२७	४	संख्या	सहस्रसंख्या	३५०	१२	अभि	अनु
३२७	८	रे	रे	३५१	२०		। स्वकीः (मुरुचः वा
३२८	२	तुम्हारे	तेरे				स्वन्ननाः।
३२८	१४	वर्धयत्र	वर्धयित्रा	३५२	४	पूजा वा	वड़े वा पूज्य
३३०	१०	ले	मन्त्र	३५३	१	१	१२
३३०	१४	जाने	जाने अंशुओं करि	३५३	१६	पड़े	पटवावे
३३१	७	रश्मि	रश्मिओं	३५४	१०	पड़े	पटवावे
३३१	१२	का	का बहुत बड़ा	३५४	११	हुआ	हुआ पञ्चदशिकः
३३१	१५	से	के अर्थ	३५५	४	हैं।	हैं।
३३३	४	मात्सत्य—सोम	मात्स—साम	३५५	५	हो—हो	हो—हो
३३३	१३	का अक्ष	के अक्ष के	३५५	६	हो—हो	हो—हो
३३३	१४	निकालें।	निकालें। परस्परदृष्ट	३५५	७	हैं।	हैं।
३३४	५	पृष्टि	पृष्टिओं	३५६	१७	दक	दक प्रजापति

शुद्धिपत्रम्

अ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५६	१८	न	नोंको	३८१	११	३४.	२४.
३५७	१८	विषे	विषे हमारे	३८३	१	अरति	अरति
३५७	१८	हो	हो। हे	३८३	४-	१६ हैं - - - - -	हैं-हैं-हैं-हैं-हैं-हैं
३६२	१७	वि	वि			दुई करती हैं	दुई-करती हैं
३६२	२०	में	से	३८३	१८-	२० हैं	हैं-हैं-हैं
३६४	५	का	का राजा हो तिस का	३८४	३	पात्र	पात्रों के
३६५	१	अर्थ।	अर्थ। वड़े जान राज्य	३८५	४	हैं॥	हो॥
			(ज नों के आधिपत्य)	३८५	२१	अनि	अना
			के अर्थ	३८६	८	धुर्यु	धुर्यु
३६५	५	हैं	हो	३८६	१०	अन्तर	उत्तर
३६५	२१	सो	सोचा-१०	३८६	१३	इन्द्रियों	इन्द्रिय
३६६	५	वृक्षपात्र	वृक्ष के पात्रों	३८६	११	बंधे-मणि	बंधे दो-मणिओं
३६६	११	जिस जल	जिन जलों-हैं-पेता:-	३८६	१८	तिस शतमान	तिन ६ गें शतमानों
			नीएँ-लीएँ-लिएँ-जिन	३८२	४	॥	॥ ब्रह्मन् ब्रह्मदेवतम्
			जलों-जिनजलों-तिन				युजमान पहिले ब्रह्मा
			जलों				को आमन्त्रण करें-
३६७	२४	आप	अपि				हे ब्रह्मन् ऋत्विक् तु-
३६८	१४	जल	जलों				मैं आमन्त्रण करता
३७०	८	रने	रती				हूँ इति शेषः॥
३७०	१२	घोड़ा	घोड़शा	३८२	११	को	करि
३७०	२०	कैसे	कैसी	३८२	१२	उपाधि दे वॉले	नर को बुलवावै
३७१	१	कती	करती	३८२	१५	करते हैं	करता हूँ
३७१	१५	सोमों	सामों	३८३	४	भूमि	द्युतभूमि
३७१	१७	सेव्यते	सेव्यते	३८३	१२	स्थान	अवस्थान
३७२	४	जल	अभिषेकार्थी जलों	३८४	४	+पक्षः	+पक्षः श्रेयानिति।
३७३	१	गों	गें पात्रों को आह्वा	३८५	१	कुमार	कुमारों
			न करने वाली गों	४००	४-	५१-३-१०४-७.	५३-४-१०७-१.
३७३	२	स्थान	महस्थान			११६-१३-१२२-५.	११६-१८-१२०-२१.
३७३	४	कैसा जल	कैसे जलों			६-१२६-६-१३१.	१२१-३-१२६-८.
३७३	५	वली	वाली-ओं			१२-१३३-१६-१४८.	१३१-१४-१३३-१५.
३७४	१४	विषे	सकाश से			४-१४८-१२-१५२.	१४८-११-१४८-१४.
३७४	२०	प्रति पढ़े	करि पढ़वावै			८-१६५-२०.	१५२-६-१६५-१४.
३७५	२१	वै	वै	४०२	१७	वैष्णवी	वैष्णवी
३७८	१३	२४	१४	४०३	८	इष्टकाविषय	इष्टकादि विषय
३८०	१	+ मृ-सि।	+ मृ-हि। इ०। ओ-सि	४०३	११	प्रजाति	प्रजापति
			। उ०	४०४	३	विषय	विषया
३८०	७	जीतुं	जीतूंगा	४०४	८	पुण्य	पूराण
३८०	१८	किं	किं जे	४०४	१०	का	का
३८१	१०	यप्रयत्नं स्व	यप्रयत्नं स्व	४०४	१२	अभिज्ञ	प्रयोगाभिज्ञ



शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०५	४	है	है + ब्रह्म शब्देन प्रा-	४२४	११	गमन कुशल	गमन कुशल एसम
			णः सप्त ऋषयो ब्रा-	४२४	१२	प्रजा	प्रजाप्रा
			ह्मणाश्चोच्यन्ते	४२७	१४	कैसी	कैसे
४०५	१५	पृथिवीप्रभृति	पृथिवी प्रभृति तीनों	४२७	१८	का० १६.३.३६.	का० १६.३.१६.
		कों को जाना	लोकों को मान किया	४२८	१८	पञ्चाहुति क्रमे	पञ्चाहुति परिणाम क्रमे
४०६	२	कथ्यन्ते	कथ्यते	४२८	२०	देवमा	देवत्वमा
४०६	४	परिचिति	परचित्त	४२८	२१	को० १६.३.२७.	का० १६.३.२०.
४०६	५	चितिवर्ति	चितवर्ति	४३१	४	+आहवनीयाय	आहवनीयोयस्स
४०६	१४	स्त्रिवदादिक	त्रिवदादिक			सस	स्य
४०७	१६	यशव्य	पशव्य	४३१	१८	१४वाच्यि वना-	वच्यि (कहिता हूँ
४०७	१८	चारण	चार			ताहूँ	
४०८	२	घ्रगामिन्	शीघ्रगामिन्	४३२	३	उरवा	उरवे
४१०	१४	कूडर	कूर	४३३	२	भूत।	भूता .
४११	५	आग्नेयी	त्रीण्याग्नेयानि	४३४	४	अषाढ	अषाढा
४११	७	का० १६.३.१२.	का० १६.२.११.	४३४	८-८	अषाढ	अषाढा
४११	१०	का० १६.२.३.	का० १६.२.१३.	४३५	१०	अवणीय	अवणीय यश
४१२	२	देरेवें	देरेवें हैं	४३८	३-४	सर्वात्मना	सर्वात्मा
४१२	१३	का० १६.१.१७.	का० १६.२.१७.	४३८	६	करो	करोगे
४१३	६	का	को	४३८	११	हो	हो आगमन कराय
४१४	१८	के।	को	४३८	१२.	पोले-करे	पालि-करि
४१५	५२	हम- ते- तेहें	में ता- ताहूँ	४४१	११	आवेतिस- जो	आमें तिन- जे
४१५	१४	परया बहिः	परया-परया बहिः	४४१	१२	हैं तिस- स्तोमा	हैं तिन- स्तोमाओं को
४१५	१७	का	को	४४२	३	अश्रित	आश्रित
४१५	२०	का- का	को- को	४४२	७	हो	हों
४१६	१६	जायते	जायसे	४४२	१४	ओंके	ओंमें
४१७	१८	पात्र	पत्र	४४३	१-४	करे- करे- करे-	करता है- करता है-
४१८	२	समन्ताम्	समन्तात्			देवे जिघांसे	करता है- मारने की
४१८	८	के	की				इच्छा रखता है
४१८	१०	कैसे	कैसी	४४३	१२	शक्ति	शक्ति शरीर शक्ति
४१८	१५	भीतर में	भीतर (उदर) में	४४४	६	डालि	उरव्य
४१८	१७	देवाहवाची	देवाहवाची	४४७	१०	रज्जुग	रज्जुग
४१८	१७	दध्यङ्गामक	दध्यङ्गामक ऋषिः	४४७	१३	निधारण	निवारण
४२०	११	हवि करि पूजता	हवि करि देवताओं	४४८	२	के ऊर्ध्वको	का ऊँचे को
		है	को पूजता है	४४८	३	जः	जः मः।
४२२	४	पिण्डावरूप	पिण्डावरूप	४४८	२४	३.	१३.
४२२	१०	॥३४॥	+॥३४॥ नो है ताव-	४४८	२४	दिश	दिशाओं को
			त्यन्याहुतिगमि य-	४४८	२४	है	आग्नेयीमहामतो-
			थेवेति ६.४.३.४.				सतीनिष्टपु. है
			श्रुतेः।	४४९	२	आहुति	आहुत्युपाहुति

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५२	१	करे	करे	४७०	११	देवः	बाः अद्भिर्ग इति श्रुतिः
४५२	१५	वित	विष्टुप् वित	४७०	१५	जमन्	दिवः
४५३	३-४	रुशता कि	कि रुशता	४७१	१	प॥	जन्मन्
४५३	१४	अर्वि	तप कार्य है अर्वि	४७१	११	और	प॥ सब
४५४	६	ज्योति	ज्योति करि	४७२	१८	अत्यन्त एक	और एक
४५४	१३	२१	२१	४७२	१४	का	एक मत्य
४५६	१७	सहस्य	सहसः	४७३	७	अब	करि
४५७	६	ज्ञान	विज्ञान	४७३	२०	ष	आप
४५७	१८	व्याप्त करता	व्याप्त होता	४७३	२१	रती	वे
४५७	१४	व्याप्त करता	बुलोक को व्याप्त होता	४७४	१८	वयव - जो	रती एक मत्य को प्राप्त
४५८	७	२१	२१	४७५	५	भूत	हुई
४५८	१८	नो	नो	४७५	१३	दति	वयवों - जिस
४५८	२०	करि	करे	४७५	१६	कस्ता	भूति
४६०	३	अन्तर	अनन्तर	४७५	१७	पत	ति
४६०	६	चित्तिभिः	चित्तिभिः (उद्यमन- प्रवीणा	४७६	५	ह	करता
४६०	७	में	हमलोगों का	४७६	६	हल (बैल)	पत
४६०	१४	कातमनाशकारि	ओं को नाश मत करि	४७६	१६	अनाज	वि
४६३	१५	३	३०	४७७	२	गी	हल को बैलों करि
४६३	२०	अग्ने	अग्ने तुमै	४७८	३	की - गो	अनाज लुना हुआ
४६४	३	है	है	४८०	१	जा	ति शेषः
४६४	६	धनपत	(धन) पते	४८०	५	२६	ग
४६४	१४	उठा	उठि	४८०	७	को	— वेगो
४६४	२१		अ०४	४८१	५	प्रयत्न	२६ मनुष्यों की
४६५	७	अध	अर्ध	४८१	११	है	को को
४६६	१५	पूर्व	उत्तर	४८१	१२	षण	बहुता हमारे
४६६	१८	कतुष्क	क्रुतुष्क	४८२	१३	अस्मर्य	बहुना हमारा
४६७	५	में	में नही	४८३	१	विस्तार करें	कार्योपचा
४६८	१	हो	होता है	४८३	१४	ब्री	को
४६८	४	हैं है तिस जल	हैं हैं तिन जलों	४८४	१८	का +	प्रयत्न
४६८	८	व्याधि (-का-कृ)	व्याधि जिन्हें करि (-का (-क्रीः	४८५	१	रू	हैं हीन
४६८	११	अहिंसता - ताः	अहिंसितारः - ताः	४८५	१५	क	षण
४६८	१५	पाद्या	पद्याएँ	४८५	१७	श्या	अस्मर्यमाण
४६८	१५	छेदेन	छेदेन	४८५	१८	शी	स्पर्श करें
४६८	१४	साबधान - अङ्ग	सादन - अङ्गों	४८५	२५		ब्रू
४६८	१३	करि।	करि + + तथा देवत येतिवाग्ने सा देवत याङ्गिरस्वदिति प्राणो	४८५	२७		क +

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४७	१२	३०२४	४०२०	५१८	१	से	स
४४७	१४	रोचन	रोचनों	५१८	३	सन्	सन्
४४७	१५	निवृत	निवृत	५२१	६	प	पा
४४८	१३	जे	जो	५२१	४	पञ्च-पञ्च	पञ्च-पञ्चाप
४४८	११	तिष्ठो	तिष्ठो (चन्दनादिबुद्धों)	५२१	१०	पस्था	पस्था
५००	२	परि सर्पण	परिसर्पण-परिसर्पण	५२३	८	सु	शु
५००	८	कैसा - प्रसित	कैसा - प्रसिति	५२३	११	ज्ञाता	ज्ञाता प्राण
५०१	२०	म्य	मिम	५२५	४	ई	ई सोवर्ह
५०२	१	कर्ष	कार्ष	५२५	१०	यी	न्यी
५०२	७	३	१३	५२७	११	वै	वै
५०३	१		अ०२०	५२८	१	अ	आ
५०४	१८	विस्तर	विस्तार	५३०	४	पालाय	पालयि
५०५	६	आगे - इन	आगे द्वितीये पद्यालो	५३०	१६	हो	हो
			के - इन दो	५३२	१२	करै	करै
५०५	१२	को	को तिन दीप्तिष्ठों में	५३२	१६	बाध	बाध
५०५	१५	सर्वा	सर्वा	५३४	१३	पति	पते
५०५	१६	ह	है	५३५	१	(	(विविध
५०६	३	हित - चो	हिते - चो	५३५	४	निरुक्तानि	निरुक्तानि पशूनि
५०६	४	इष्टका	इष्टका पद्या				रुक्तानि
५०६	१२	सर्व	सर्वज्योतिष्ठों को	५३६	१	चाहते	योग्य
५०६	१३	कारि	करि	५३८	१	इष्टके	इष्टके तू
५०७	५	पाषा	पाषाणा	५३८	१०	२५	५
५०७	६	कल्पता	कल्पन्ता	५४०	४	छन्दः	छन्दः यह लोक
५०७	८	कल्पताम्	कल्पन्ताम्	५४२	१४	तु	तू
५०७	१४	को पत्नी कृता पद्या	पत्नी कृता पद्या को	५४५	६	ख	ख
५०८	६	२७	२७ तीनि अस्वाओं करि	५४६	१२	का	को
५०८	२१	ये	ये	५४६	१४	का	को
५०८	६	पद्या	पद्या लोक	५४६	२०	का है	कार है
५०८	७	ता शेवाल	ता में शेवाल पर	५४७	३	+	इति शेषः । एवं सर्वत्र
५१०	१	रथा	स्था	५४७	१३	जया	जया
५११	५	नार्थ	नार्थः गये धनार्थः	५४८	१५	करतु	करतु
५१३	४	होत्रा	होत्रा	५४८	१८	भूत	भूतों को
५१३	१०	जात	जात और	५४९	६	तुल्यम्	तुल्यम्
५१३	११	और		५४९		करिके	(करिके नव ४ उमेर
५१५	८	अनन्तर	अन्तर				करिके
५१६	३	सूयमानः	सूयमानः सो तू	५५१	१	भूत	देवः
५१६	५	मामा	मा	५५१	२	नाभि में	
५१६	१८	त्य	त्य	५५१	१४	मम	सृजे
५१७	२	एव	म एव	५५२	१२	वी	नी

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५५३	२०	चितिमें	चिति के मन्त्र कहिये हैं॥ का०१७.११.१३				सब यजमानजन वा सब जगत के दूतवत्कार्य करने
५५४	५		पञ्चमी चिति में क्या करते कि अहेडन्	५५४	७	सते	जते
			(कोध छोड़ि शोभनमनस्क हो उपदेश करि इत्यर्थः)	५५४	८	एण्डु	एण्डु
				५५४	१३	गोप	गुप
५५५	४	जिस का	जो	५५५	२०	वृ	हृ
५५५	१३	ककुच्छन्दः	ककुच्छन्दस्त्रिककुच्छन्दः	५५५	११	भमषड्वि	भगषड्वि
५५५	११	इष्टके	इष्टके तू तद्रूपा है	५५५	१६	तूये	तूर्ये
५५६	१८	भ्रजते	भ्राजते	५५५	२		आद्या कुमारवृषोदृष्टा
५५७	८	वृक्षां	वृक्षादिकों	५५७	७	जि	जिसे देवि के घर को लोट ते हैं। अर्थात् जि
५५७	११	भक्षणा	भक्षण	५५८	८	पद	पदप
५५७	१२	सन्तुष	संस्तुष	५५८	१०	इस	इस दिन
५५७	१३	ध्यते-ष्टप	रुध्यते-ष्टप	५५८	१८		ओं करिके।
५५७	१७	धिव्य	धिव्यदर्शन	५५८	१	देवताओं प्रतिजा	देवान्य
५५८	१७	जी	जी	५५८	१३	नाहे	करनेवाले
५५८	१८	+अयु-३	अयु-३३	५५८	१४	करे	प्राप्ति
५५८	८	तिस०	तिस० वसुओं के०	५५८	१४	प्रति	कमणी। होंवे और यह
५५८	८	तिस०	तिस० आदित्यों के०	५५८	१	कर्मविधि) हो	यजमान तेरे प्रसाद से
५५८	१६	तिस०	तिस० ओषधीयों के०				इष्टापूर्ते करि संसृष्ट हो
५६०	२	मन्त्र	मन्त्रा	५५८	१०	की	कृता
५६०	७	को	का	५५८	२१	द्वयलोक-तृतीय	लोकद्वय-तृतीय से
५६०	१३	मुप	उप				आरम्भ करि प्रथम-
५६०	१८	उत्क्रमण	उत्क्रम				चितिवत्
५६०	२०	तू	तू उत्क्रान्ति है	५५९	७	संज्ञा	संज्ञे
५६१	२०	+प्राण	+प्राण	५५९	११	तिस-प्रकाश	तिस से-प्रकाशित
५६२	७	स्तोमः	स्तोमाः	५५९	३	५)	५) के
५६५	८		अ०४	५५९	१४	करिके	करिके प्रेक्षणकरे
५६६	८	सर्प	सर्पः	५५९	२०	सो	सो २०० प्रतिमन्त्र से
५६७	२०	हेमन्तिकी	हेमन्तिकावृत्त	५५९	५	प्राजा	प्राजा
५७०	१८	तिस	तिसो	५५९	२	नेत्य	नेचेत्य
५७१	१६	हुआ	होता है	५५९	६	धिव्या	धिव्या
५७२	११	फल-प्राप्त होता	फलों को-संगत काना	५६०	६	के	को
५७२	१६	नान	नाना	५६०	११	कैलास	कैलाश
५७२	१	चो	चः	५६१	१८	रुद्र	रुद्र देखते सन्
५७५	५	पयाप्त-युक्त	पयीप्त-युक्त शोभन	५६२	२	म्यापि	स्वरूपी
			यज्ञ जिस के तिस	५६२	१८	एक-एक	एक-एक

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५६४	१८	देवी	देवी रहती पञ्चाक्षर	६१७	३	जल	जली
			देवी	६१७	१३	निरम	निरसन
५६५	१६	झा	झ	६१४	२	में- गिनते	में इष्टदा हो-चिनते
५६६	११	का	के	६२०	४	छ्यत	छ्य से
५६७	१८	कही	कहीं	६२१	७	गूणया करि	गूण करि स्थित है
५६८	१५	द्रष्टों	द्रष्टो	६२१	८	वगै	वगेन
५६८	१४	तिन्हों	तिन तुम्हारे	६२३	८	पात्र	पात्री
६००	३	रूपो	रूपों	६२३	१६	न है	ना है
६०१	४	यज्ञों	यज्ञों	६२३	२०	विषे	विषे अधिष्ठातृत्वेन
६०१	१५	+विशेषण	विशेषण	६२५	५	विहव्या	विहव्यो
६०१	२०	यज्ञो	यज्ञे	६२५	७	कर्मण	कर्मण
६०२	७	एड	एिड	६२५	११	स्थितवान्	एक ही रहा
६०२	१३	वेगवान्	वेगवहन्तुओं में हुआ	६२७	१०	ना है	जाता है
६०४	१८	धनुष	धनुष पिनाक	६२७	१४	६०० अनुवाकयो	६०० अनुवाकके ६०० क
६०५	३	मार्गयोग्य	योग्यमार्ग				एिडकयोः
६०५	६	नदी में हुआति	नदी में हुआतिसज्जल	६२८	४-५	ते हैं	ता हैं
			रूप के	६२८	४	से-सन्	हवि में-सन् मेरे य
६०६	४	रूपी	रूपीओं				ज में
६०८	६	शंहार	संहार	६२४	७	करिके	करते
६०४	२०	सन्ने	सन्ने	६३०	६	जिसका	जिस
६१०	५	का	को	६३०	११	अमूर्ते	अमूर्ते मूर्ते
६१०	११	चीन	चीना	६३०	१४	हैं।	हुआ।
६१०	१५	मेडू	मीडू	६३०	१५	हैं	हुआ
६११	१	बा	बा उन्नत	६३१	१०	त हैं	त
६११	६	का	को	६३२	२८	हैं	हुआ
६११	१८	असंख्यात	असंख्यात अमित	६३२	१८	गहिक	ऐहिका मुष्मिक
६१२	७	रुद्र	जेरुद्र	६३३	१४	प्रति	अप्रति
६१२	८	तिन्हों	जिन्हों	६३३	१५	हाद	हादश
६१२	१२	अद्यो	अद्यो	६३४	१	जित	जितुं
६१३	११	वा पाणी	वा जीवन को पाणी	६३५	४	ति	ति वा
६१३	२०	विषे	विषे स्थित	६३६	११	गण्य	उत्कृष्ट शर्थ
६१४	१६	वाधके	वाधिके सबदिशा	६३७	१२	हैं	होते हैं
			ओं में	६३७	२०	हैं	हैं
६१४	१८	हमें	हमें रक्षा करें तरुद्र	६४०	७	वद	बदाड
			हमें	६४०	२०	का	करें हैं
६१४	२४	जिम	जिम	६४२	१		हैं
६१४	२७	हिष्य	हिष्य	६४४	१		गड मध्य
६१५	१८	अन्ना	अन्ना	६४५	१५		उड
६१५	२०	अग्नि में	आग्नीध्र	६४५	२०		हो कि च सबदिशा

शुद्धिपत्रम्

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		को प्रकाश करते सन्	६७७	१४	यद्वा	यद्वा एते
		तू विशेषण दीप्त है।	६७८	७	जल से	जलों में
४७	११	हूँ (पाकंगा	६७८	११	दिवरा	दिवस
४७	१२	ये	६७८	११	। मु	। अमु
४८	७	अग्ने	६७८	१२	ते राज्य	तेरा राज्य
४८	५	मूर्ध	६७८	२	प्रजा	प्रजाओं
४२	५	स्वाद	६७८	१५	॥ यज्ञेन	॥ यज्ञेन दानेन
४२	११	वृष्टा	६८०	८	वप	वपन
४३	१६	का सा तेज	६८०	१८	तम)	त)
६५४	८	उष्णिग्गर्भा।	६८१	७	प्रकृष्टेन	प्र
६५४	१८	कैसे	६८१	१५	देव	ऋतु
६५५	३	अन्न	६८१	१६	ताओं सहित	ओं सहित देवताओं
६५७	१४	घृत	६८३	४	षध	षधश्रेष्ठ (को
६५८	५	से	६८३	८	उदु	औदु
६५८	८	विद्धि	६८३	२	हुतिः	हुतिएँ
६५८	१८	मीव - झी	६८४	७	र	रे
६५८	४	पितु	६८४	१७	ब्रीद्या	ब्रीद्या
६६०	८	तत	६८७	१८	+ ४२ - ६ - मारुत	+ ४२ - ६ - अवस्यू
६६०	१४	तू	६८४	६	नवा	न दवा
६६०	२१	+ अग्निर्ह	६८४	३	धी के	धि को
६६२	१	श्रू	६८१	११	ऐसा	ऐसा है
६६२	४	ऊर्मि (- दक)	६८३	६	वैश्य	वश्य
६६२	२१	तँ	६८३	८	तू	स्तू
६६३	७	+) )	६८४	६७	तुम्हें करता है।	कर्मसमाप्ति में तुम्हारे
		स्वर्गों येन स आजि-				रे प्रति आगमन करेगा।
		र्यज्ञः।	६८४	१४	(वित्त)	
६६३	४	हमारे क	६८४	१६	सब	तब
६६४	५	(मुख)	६८५	१७	एण - नी	एणः - नीएँ
६६४	२	दाना	६८५	२१	आग्नि	अग्नि
६६४	७	देर्निय	६८६	१	कीच	की
६७०	१३	कृषि	६८६	२०	कं भावयति	कत्वं सम्पादयति
६७२	१०	अथो	६८७	४	अहित	हित
६७२	१५	मरुतश्च	६८७	५	आग्ने	अग्नि
६७३	११	इ	६८८	४	भार	भार
६७३	१७	ए	६८८	८	जय	इन्द्र सुतजय
६७४	१२	शम्यु	६८८	६	+) )	+) में
६७५	८	अ० ७	६८८	८	ओर	ओर जो
६७५	१८	एक	७००	८	यष्ट	यजिष्ठ
६७६	३	नाः	७००	१६	प्रकृष्टेन	प्रकर्षण



शुद्धिपत्रम्

११

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७००	२०	समाना	समान ज्ञाना	७३७	२०	इन्द्रियदा	यज्ञदा
७०४	७		(एकी किये	७४०	८	से	से पशुओं की
७०६	७	ऋत्विः	ऋत्विजः	७४०	१८	रूप के	रूप की
७०८	१	होती	होता	७४१	१४	चूर्ण	चूर्ण चरु
७०४	१३	वत्या	वत्या जगती	७४३	२	त्रों	त्रों करि
७०६	१५	ओं के अर्थ पथ्यवा	ओं का पथ्य वा देवताओं	७४३	७	पत्र	पात्र
७११	१७	अग्नि	अग्नि	७४३	४	पात्र-स्य स्थि	पात्र-स्थ शिथिल
७१२	२	पितरों	पितरों	७४४	५	कि तरस्वी वा	कि हरसा तरस्वी (वीर्य
७१४	७	सार	सर			वान्	करि वेगवान्
७१७	१	प्रणवेः	प्रणवेः	७४४	४	रुस-ग्रहों	ग्रहों करि
७१७	४	प्रणव (ओंकार)	प्रणवों (ओंकारों)	७४६	६	नै	नैसे
		पसस्त्र	शस्त्रों	७४६	१०	लेकर	लेकर इन्द्र के अर्थ
७१४	६	+	++ सुरबान्वा एषव-	७४७	१७	सोमा	सोमास
			हिषद्यज्ञो यत्सौत्राम-	७५०	५	वायु	मुखवायु
			णीति १२.८.१.२. श्रुतेः।	७५१	१७	पादा	पदा
१४	१४	ग्रीवखल से दक्षिण	ग्रीवखल से दक्षिण	७५३	७	आनति	आनतिरागतिः
		में अग्नि विषे	ग्नि में	७५३	८	मन	नमम
७२०	५	सोमे	सोमो	७५३	१०	अन	आन
७२१	६	१४.१.१७.	१४.३.१७.	७५३	१६	निति	मि
७२१	४	मन्त्र-मध्यम	मन्त्र करि-मध्यम	७५५	१४	करे	करें
७२२	७	प्रति वांचे	को पढवावे	७५५	१८	मुद्ध	मुद्ध
७२४	१४	सौत्रामणी	सौत्रामणीं	७५७	२	रुक्ता	रुक्ता
७२४	१६	कामित	कामित	७५७	१३	व्रतों (कर्मों)	व्रत (कर्म)
७२५	१२	से	से आज्य	७५८	१०	से	सेस
७२६	१	पितरों-मातरों	पिता-माता	७५८	११	तेरे अंशुओं-	तेरा अंशु-अंशु-तेरा
७२६	१५	ती-ती	ता-ता		१२	अंशुओं-तेरे-	-पवे-हो। तेरा
७२६	१६	एवं प्राथ्या	एवं हविः प्राथ्या			पर्वों-हो। तेरे	
७२७	२	दृशो	दृश	७५८	८	अपृ	अपृप
७२८	२	गून्य	गौरप	७५८	१५	गान	गान करि
७२८	१५	की वेष्टि में	में विष्टि के अर्थ	७६०	८	ख	ख
७३२	१४	चित्त	चित्तत्व	७६१	२०	ह-अप	ह-आ
७३५	५	पातो	यात्री	७६२	६	प	प उग्रवाओं के
७३५	६	दीधित	दीधिति	७६३	२	मान	मान। रिपुओं के पुंका
७३५	११	कारण	करण				वर्णयिता।
७३६	४.१७	नाश	त्याग	७६४	१७	न	न विकान्त
७३६	१२	हुआ-अप	होवे-अप	७६५	५	प्रा	प्रा
७३६	१३	मृत	मृत	७६५	१४	मः	मः अन्वन शीलः (मर्द
७३७	३	ऋजीय	ऋजीय				वर्णयिता।
७३७	२३	नाश	त्याग	७६६	१३	ह	ह

पृष्ठा	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठा	शुद्ध	अशुद्ध
७६६ २०	भू	भू	८०२ १४	को	के
७६७ ४	सू	इति सू	८०४ ४	रक्षया	रक्षण
७६७ १७	युक्तः	युक्त	८०६ १७	दुहे	दुधे
७७० १२	गुणा	गुणा	८०६ ५	दे।	देता है।
७७१ ४	कुमारों के	कुमार	८०७ २	करे (यजै)	करता (यजता) हुआ
७७५ १८	त्यू	चात्यू	८०८ २	?	?) है
७७६ २	ण	ण	८०८ १९	ये	यें
७७७ १३	आह	आहा	८१२ ४	का०२०	का०२०
७७७ २१	हा	हो	८१२ ५	पट्टे	पदवाँवे
७७८ १६	होता	होता जो धनधनान्तर	८१३ २	प्राजापत्यादिक	प्राजापत्यादिक
		है	८१४ १	प्रसीति	प्रसीति
७८० १२	कर्मों-उदको	कर्म-उदक	८१५ ४	प्रति पट्टे	को पदवाँवे
७८१ ३	प्र	प्रे	८१५ ६	करक	कट
७८१ १७	जाके	आके	८१६ १७	कदन	कन्दन
७८१ १८	यन्तों	मन्तों	८१६ ६	कर्मों को	कर्म में
७८३ ७	१७०	७०	८२० ६	हवि	के हवि
७८४ १४	+	+ त्रिष्टुप्।	८२१ ११	ययु	नाम करि ययु
७८६ ५	को	को सुनों	८२२ ८	अग्नि होम	अग्नि होत्र होम
७८६ १०	दे	हैं	८२५ ३	श्रयति	श्रयति
७८६ २०	दीप्ति	दीप्ति	८२६ ४	व्युष्टाये	व्युष्टे
७८७ ४	तनू (जल)	तनूओं (जलों)	८२६ ५	इज्यते	रज्यते
७८७ ११	इडा-ना	इडाओं-नाओं	८३१ ७	मै हविदिया	हवि देते हैं
७८७ १४	को	की	८३२ २०	प्रति पट्टे	को पदवाँवे
७८८ ७	यहो	यहो	८३३ १	और इन्द्र के प्यार	
७८९ ६	१८०	१८०		शरीर को अत्यर्थ	
७८९ ७	वाज्या	वाज्या		गया	
७८९ ११	५४०	५४०	८३६ ११	संनष्टो	संनष्टो
७८९ १५	भेष	भेषज	८३६ ६	क्रमेण +	क्रमेण + रथ गृह्ण करि
७८९ २	करिके	करता	८३६ ७	वा	(संशित है)
७८९ ११	वेद्यो	वेद्यो	८३७ १४	का०२०	
७८९ ६	ओज	ओं	८३८ १४	हो	ही
७८९ १४	यज	यज	८३८ ५	गम	रेत
७८९ १५	अश्वि	अश्वि	८४० ४	यसो	यस
७८९ १६	भेषज	भेषज	८४० ५	नमीच्चारण	नामोच्चारण
७८९ ६	देवताओं	देवताओं	८४२ ७	अग्नीहोत्र	अग्नीहोत्र
७८९ १७	नमः	नमः	८४२ ५	परवन्तवाँदे	परवन्तवाँदे
७८९ १७	चलित	चलित	८४४ १६	+ मन्तो	मन्ततो
७८९ १७	को	को	८४५ १८	में	में रैवत
७८९ १७	पान्ति	पान्ति	८४६ ३	पान्ति	पान्ति

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८४६	१०	+	+ त्रय्यः सूच्यो भव- नीत्यादि १३.२.१०.३	८८२	१३	पूर्वाक्त	त्रके जल १० पुष्पा ०
			श्रुतेः।	८८२	१६	श्रुतेः।	पूर्वाक्त
८४७	१७	देवसंवन्धिनी	देवसंवन्धिनः।	८८८	५	माता और पिता बो	श्रुतेः १३.३.७.५.१।
८४८	१६	५-६२.	५७-६२.			ह ही अदिति है।	माता पिता और पुत्र
८५२	३-४	तिष्ठे हे	तिष्ठे हे			पञ्च	बोह ही अदिति है।
८५३	१	प्रकाशे है।	प्रकाशे है। यज्ञ के वे				सव देवता अदिति है।
			दन हेतु करिके तेरे अ	८८८	१८	करते हैं	। पञ्च
			र्थ भली भांति कहिता	८८९	५	आमि मुरखेना वय	करेंगे
८५४	३	रेतः	रेतो (है)।			ति	आमि मुरखेना वय
८५४	८	अश्व	सीचने हारे अश्व	८८२	१०	प्रक्षिप्त	जति
८५४	१५	नुष्टुप।	नुष्टुप। ह इति प्रसिद्ध	८८२	१७	+	प्रक्षिप्त जो
			म् प्रथम (सब की आ	८८३	४	करे	+) में
			दि) अनादि निधनः	८८३	५	पचें - कों	कों
८५७	१५	मध्ये	मध्ये	८८३	२०	अश्व के मांस	पचें - कों
८५८	१२	रन्ध्रः	रन्ध्रः समन्त सर्वतः				अश्व के (हुत शिष्ट)
			शित रन्ध्रः	८८४	१	हो जायगा	मांस
८५८	१४	लोहितोर्णी	लोहितोर्णी	८८५	८	करने	होमा जायगा
८६०	१	यस्य	यस्य महदस्त्रि यस्य	८८७	६	को जिन अङ्गों में	फिरने
८६१	२०	चिन्हा	चिन्हा	८८७	७	तिन	के जिन अङ्गों को
८६३	२	क्षन्दसे	क्षन्दसे	८८८	२	मरण भङ्ग	तिन-तिन
८६४	११	इन्द्राग्निदेवताः	इन्द्राग्निदेवताः षो	८८९	२३	अग्नि के समीप	मरण भङ्ग
		षो ०।	। कृष्णाः कृष्णा वर्णा	८९३	३	वि वस्वहराणि	सोच के समीप
			स्त्रियः वारुणाः व	८९३	१६	२७	वि वस्वहराणि
			रुण देवताः षो ०।	८९४	८	करे	२६.
८६२	१	क्रमेण	क्रमेण	८९५	३	यह	करे
८६५	६	माहेन्द्रदेवताः	माहेन्द्राः महन्द्रदेव	८९६	२	धनान्ता	इस
			ताः	८९६	३	॥	धनान्तर
८६६	१२	अनुना	अनुना सीर	८९६	४	हे शतक्रतो	॥ सादयति
८६८	२१	वर्ति	वर्तिका				हे इन्द्रदेवत्ये गाय
८७१	२५	पर्जन्यः	पर्जन्यः				यो गम्याक्षि हृष्टे गो
८७५	१८	अश्वमेधत्वात्	अश्वमेधिकत्वात्				मवे यज्ञे ग्रहग्रहणे
८७६	५	।	। स्वपक्षे तु				नियुक्ते सोपयामे
८७६	१३	प्राणामीति	प्रीणा मीति	८९८	७	हित।	हे शतक्रतो
८७७	२५	विरूपनियो	विरुनी ओ				हितः। विप्रादयश्चत्वा
८७७	२१	पार्थीः	पार्थीः	८९८	१०	विमान	विप्राणिः निषादश्चेति।
८८१	३	निङ्गो	निङ्गः	८९८	१२	के अश्व	विमानसे।
८८३	१२	कृष्णा	कृष्णाणा	८९९	६	वर्ता	क अश्व पति प्रति
८८२	१३	शीन ०।	शीन ०। अश्वों ने	९००	१७	आक	वर्ता
							आकर तिस

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१०	२१	सोम	सोम सो	४५८	४	यजमानाह	यजमानमाह
४१३	२	यज्ञा को	यज्ञग्रह को	४५८	१६	चेतनवान्	चेतनावान्
४१३	६	और	और देवों तथा	४६०	२०	यजनीय में	यजनीये
४१३	१६	को	को समन्तात्	४६३	२	अये	मये
४१८	२	यम	जो यम	४६३	८	समाङ्गानि	सङ्गामाङ्गानि
४२०	८	गार्हत्य	गार्हपत्य	४६५	२१	वराः	वाराः
४२५	५	हे	गृत्समददृष्टा। हे	४६६	३	रूदते हैं	रूदते। अनपव्य-
४२५	१६	आङ्गिरस्यो	आङ्गिरसो				यन्तः। (अनप्यन्तः)
४२६	७	अर्थात्	अर्थात् विश्व				समर्थाः। वाजयन्तः
४२६	११	में	दुए और पृथिवी में				(गतिवन्तः)
४२६	१७	प्रगाथः	प्रगाथः बृहस्पतिसुत	४६६	१	अहिरवि	अहिरिव
४२६	२०	सातों	सातों	४७०	७	हविये	हवियों को
४२७	६	मारें	मारें अर्थ	४७३	१६	२० जगती छन्दक	विष्टु ह करिस्तु
४२७	१६	अंश	अंश तुम्हें			रिस्तु सप्तदशस्तो	पञ्चदशस्तोम वृ
४२८	१६	चित्याग्नि	चित्याग्निरभि			म वैरूप सा	हत्साम
४३०	५	प्रगमन	प्रगमन और आ	४७४	५	सहितानि	सहितों
			गमन	४७७	१२	भयकरम्	भयकरम्
४३०	६	हैं कि	हैं कि स्वेच्छा से	४७७	१२	वाचादम्	वाचादम्
४३२	१२	तनूनपान्नशंसा	तनूनपान्नशंसा	४७८	१५	विदलकारिणीं	विदलकारी (वंशवि-
४३४	१६	महत्त्वः	महत्त्वः				दारिणीं
४३७	१६	सत्यं	सत्यं	४७८	१८	शुकमादि	शकुनादि
४३८	८	के	के अर्थ	४७८	१८	अभिप्रश्ननम्	अभिप्रश्ननमभिप्र-
४३८	१०	कृपयन्त्यो।	कृपयन्त्यो। ऊर्जोद्				श्नवन्तम्
			ती (ऊर्जयुत होम हैं)	४८०	५	गोपालकम्	गोपाल (धनुपाल-
			जिन्हों का ते। ऊर्ज				कम्)
			(रम्) को वर्धयन्त्यो	४८२	५	खड्ग	खड्ग
४४५	४	वयोधसे	वायोधसे	४८४	१	जागरूपकम्	जागरूपकम्
४५०	१६	में	की	४८५	१७	परिध	पाणिध
४५०	१६	सुषिरा	ससुषिरा	४८७	१	विरुद्ध	विरुद्ध रूप
४५०	२०	॥५॥	। सुशायणाः (प्रकृष्ट-	४८७	४	का	को
			गमन जिन्हों में सुश	४८७	१६	रणान्तर	रणानन्तर
			मनाः ॥५॥	४८८	१६	विरज	वैरज
४५२	१	हवा	पहवा	४८८	१७	परः	पर
४५२	८	दिशः	दिशाओं को	४८२	१९	+ एतच्च	+ एतच्चाद्यर्चणेत
४५२	१०	भूत	भूतजात				रतापनीये (नृसिं
४५२	१७	प्रति।	प्रति। कैसा वनस्पति				हतापनी २०००००००
			कि देवलोका को ज				ष्टमुक्तम् स जा राष
			नता				भूतानीन्द्रियाणि
४५६	५	मनुष्यसंघा	मनुष्यसंघा				रज देवताः का

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			असुखात्रु प्रविष्ट-	१०३५	१०	प्रतूति	प्रतूति
			इव विहरतीति	१०३५	२०	तदेव	तदेव
८८२	२१	हु (ए	हु (ए	१०३८	१०	तिस	तिस दशांशवेत्त में
८८४	१२	ब्रह्म	ब्रह्मत्व				सोम डालते सन्
८८५	१४	अनुत्पन्नत्वकरि	अनुत्पन्नत्व करि पुरु	१०३८	१८	के	के मध्य में
			षस्वरूप को ही	१०३८	१६	भोक्तार	भोक्तार जीवाः
८८५	७	कार्यो में	कार्यो विषे अग्र में	१०३८	२०	अयस्तात	अवस्तात
१००१	१७	तेमेंही चन्द्रमा	वोह ही चन्द्रमा है	१०४१	१४	देवान्तर	देवतान्तर
१००१	१७	शुक्र	शुक्र (शुक्ल) तत्	१०४१	१७	प्रकर्षण	प्रकर्षण धारण
१००३	१४	तिस	जिस	१०४४	११	किं च	किं च इस
१००४	१	कार	करि	१०४५	१५	वा	वा वहुतो के
१००४	२	वृष्टिजन	वृष्टिजनक	१०४६	७	वशीधनो	वशीकृतधनो
१००४	-	कार्यकारण	कार्यकरण	१०४६	१२	को	को अभिमुख
१००६	२	जानि।	जानि। भूरादिलोको	१०४८	२०	करि	करि उपलब्धिये है
			को ब्रह्मत्व ०।				मन्त्राः कोश नीतिव
१००६	५	प्रथमा	प्रथमजा				त (भूस्थवर्णश्रमों
१००६	१४	ज्ञापक	ज्ञापक				के मनुष्यों करि
१०१२	११	पुरोक्	पुरोक्	१०४८	१८	+ १००२८	+ २०२
१०१३	३	अत्र	अत्रि	१०५०	६	वरुण	वरुण
१०१४	२	में	में जे	१०५१	१०	किं च	किं च इस
१०१५	५	उत्कृष्टा।	उत्कृष्टा। तिसकिमें	१०५४	४०	यह	यह क्या
			कि जिस अन्न करि	१०५७	४	हुजा	हुजा
			हम स्वस्तिमन्त होंगे।	१०५७	१७	सू	सू
१०१५	२१	नियुत्वां	नियुतो	१०५८	१६	बलभि	बलमभि
१०१७	८		त्रिष्टुप्	१०५८	१	लादि	लादि करि
१०१८	१३	और	और सब	१०५८	१५	लोकान्तरः	लोकोन्तरः
१०१८	२०	को	को	१०६१	१	यज्ञ में साधु।	यज्ञ में साधु। सम्यु।
१०१८	१६	सदित्य	गदित्य	१०६३	१६	दोनो	दोनो पियो सोम को
१०१८	२१	पूजत	पूजते				इति शेषः। दोनो
१०२०	७	देत	देत	१०६४	४	वाजसानि	वाजसाति
१०२१	१८	दर्शन-याती	दर्शन-पाती	१०६४	५	करि	विषे
१०२२	१	सिये)	(सय) त्	१०६५	१५	बृहस्पति	ब्रह्मणस्पति
१०२३	१०	नक्षत्र	नक्षत्रचन्द्र	१०६५	६	पदों	पदों ही में
१०२५	१८	आद्या	अद्या	१०६६	१८	को आ	को आ
१०२६	३	हमें	तिस हमारे को	१०७०	१२	सहित	सहित इस स्थान में
१०२६	१३	कूपरक	रुक	१०७२	१	प्रभा - परीक्षा	प्रभा - परीक्षा
१०३०	२	समीप में	समीप में स्थित हो	१०७३	४	दृष्टा	दृष्टा बहुदेवत्याः
१०३०	१३	लौकिक	लौकिक	१०७३	१३	हो	हो। आहूयमानाः।
१०३४	१७	ओजस्वी	ओजस्वी	१०७३	१८	गतिमन्ता	गतिमन्ता

सुहिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०७८	१२	पूर्वा	पूर्वोपर	१११५	१६	गोक्षि	गोहि
१०७८	१७	अश्रमय	अश्रमय	१११५	१७	प्राज्ञा	प्रज्ञा
१०७८	२१	व्यादिन	व्यादन	१११५	१८	हो	हो
१०८०	४	सीतागं	चारि सीतागं	१११८	१०	सं	तू सं
१०८१	३	पृथिवि	पृथिवि	१११८	१२	१०२	२०१
१०८१	४	किये	किये अस्थिरूप	११२०	१२	गो	तहां गो
१०८१	२१	तेरा	तेरे अर्थ	११२२	४	अ- जमते	अभुमते वि- जमते
१०८३	१६	करावेंगे	होंवेंगे	११२२	१४	ते	ते, कैसे के किविश्व
१०८४	२	कायक	कायिक				देवाओं के समूह युक्त
१०८४	१३	यामस्य	यामस्य दिशं	११२३	८	नर	नर हुत तिस०
१०८५	१०	परिधि	इस परिधि	११२४	१३	पिये	पीते हुए
१०८५	१३	गमन	गमन लक्षण	११२४	१४	जाने	जानते हुए
१०८५	२१	कारि	करि	११२५	६	ई	ऐ
१०८६	८	धार	घार	११२७	१६	आर्ची-ज्य)	आर्ची-ज्य) को
१०८७	१०	त्रिष्टुप	त्रिष्टुप दमनदृष्टा	११२७	१८	को	अंश को
१०८८	१०	तुरु	पुनः तुरु	११२८	२	तये	तमः
१०८७	७	देव	देवता हूं	११२८	८	रता	स्ता
१०८८	१८	देवया	देवत्या	११२८	२१	को	से
११००	३	तिः स्वाहा	तिः	११२८	२१	में	में नाभिलग्न
११०१	१०	छोर्गे	छोर्गे	११३०	४	१०३	३०१
११०२	१०	छोर्गे	छोर्गे	११३०	८	श	श से
११०२	११	में	में आज	११३१	४	गाण	माण
११०२	१४	पर	पर प्रतीकाओं के	११३१	५	यम	घर्म
			उत्तर में	११३२	१०	का	को
११०३	१७	मृदा	मृत्पिण्ड	११३२	१२	तेरे	तेरे गृह
११०४	६	इति	इति दक्षिण कर से	११३२	१४	विये	विशेष
११०४	१२	१६	२६	११३६	१५	स्था	स्था विये
११०५	१८	पे	प	११३६	१६	हा	हे
११०७	७	ज्ज	ज्ज	११३६	१६	मा- आ	मामा-अ
११०७	८	में	में अध्वर्यु	११४०	८	ये	य
११०७	१७	लिये	लिये स्वर	११४०	२०	प्रकी	प्रकी
११०८	१८	पढ़े	पढ़ावे	११४१	४	परी	पुरी
११०८	२१	होती	होती विद्युति (विशेष)	११४१	१६	वीर्यः	वीर्यम्
			ए धारण करती उप	११४४	२१	ध्येय	ध्येय
			रिष्टाज्जुह्विकं धियते)	११४८	१७	करता	कगता
११०८	१६	भ्यो	भ्यो मातिभ्यो	११५३	५	मात्र	मात्र
१११०	२	१०	१० अध्वर्यु	११५४	१५	लोपो	लोपो
१११३	६	चल	त	११५४	१७	करता	करता
१११४	५	जान	चल	११६३	१८	कर्माणि	कर्माणि



## शुद्धिपत्रम्

२१

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११६४	४	कै	क	११७६	११	पञ्चश	पञ्चाश
११६४	७	शेमो	शेमो . .	११७७	१३	मूता	भूता
११६४	१३	धर्मी	धर्म	११७७	१४	इश	दश
११६४	१७	क	कै	११७७	१६	शको	दशको
११६५	३	षण्	षण्	११७७	२०	कैको	कैको
११७१	२	पथ्यावृहती	पथ्यावृहती +	११७७	१३	पञ्च	चत्वारः पञ्च
११७१	८	सती-त्प्रस्ता	सती-त्प्रस्तारपङ्क्ति	११७८	२	प्र	विभ्राद्वतुर्दशप्र
			रन्त्यो चेदास्तार	११७८	७	पाद्य-३	पाद्य-२२
११७२	८	तिति	ति	११८०	१६	पुमार्थी	पुमर्थी
११७५	२०	स्यम	स्येमम				इति शुद्धिपत्रम् १

३०१	१६	१७ वरुण-दिया	मुरु अग्निस्त्रयापत्र				अर्थ वरुण तुम्हें
			कै अर्थ वरुण तुम्हें देवै				देवै
३०१	२०	२१ की आयु का	का आयु (जीवन)	३०३	१०-	११ यम-दिया	मुरु यम रूप के अर्थ
		जीवन					वै वरुण तुम्हें देवै
३०२	२३	रुद्र रूप-दिया	मुरु रुद्र रूप के अर्थ	४६५	२१	पुरी	पुरीष
			वरुण तुम्हें देवै	१०००	४	तिस	जिस
३०२	६-७	बृह-दिया	मुरु बृह स्पति के				इति शुद्धिपत्रम् २

वैश्वमेति प्रसिद्धिं गतेऽति प्राची विश्वामित्रपुरीयनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाप्रमयन्त्रालये ज्ञासीगमकगर्हर्मुद्रितम् संवत् १४३० शाका १७४५ फाल्गुण कृष्ण १२ शुक्रवासरे

## प्रसिद्धिपत्रम्

ग्रन्थकर्ता तथा सम्पादकताओं की विदित हो कि ४ अप्रैल १८७९ का श्रीवेदार्थप्रदीपगिरि-धर्मभाष्य एकट २५ मीअर १८६७ अनुसार रजिस्टरी हुआ और इस के लिखने में मैंने तथा मेरे ज्येष्ठ पुत्र ने अतिशयेन परिश्रम किया है इससे मेरी वा मेरे पुत्र की आज्ञा बिना छापने का विचार न करें और जिनों की अपनी पुस्तक वा सम्पादनपत्र में इसमें कुछ विषय लेकर छापना हो वोह सुखेन ग्रन्थ के नाम पूर्वक लिखकर मुझे वाधित करें

भाष्यकार  
गिरिप्रसाद त्रिपाठी

ओम् शान्तिः

ओम् शान्तिः

ओम् शान्तिः













